2023

ISSN 2231-1041

# स्तोम

कलाभिव्यक्ति का माध्यम

यूजीसी-केयर सूचीबद्ध, पिअर रिव्यूड वार्षिक शोध पत्रिका

'शिवम्' सांस्कृतिक मंच, छपरा

ISSN 2231-1041

# 2023

# स्तोम

## कलाभिव्यक्ति का माध्यम

( यूजीसी-केयर सूचीबद्ध, पिअर रिव्यूड वार्षिक शोध पत्रिका )

**संस्थापक**
चन्द्र किशोर सिंह, अधिवक्ता

**आदि मुद्रक**
श्यामा सिंह

**प्रबन्ध सम्पादक**
डॉ० कुमार विमल मोहन सिंह
डॉ० कुमार निर्मल मोहन सिंह

**प्रकाशक**
'शिवम्' सांस्कृतिक मंच, छपरा

**मुद्रक**
कुमार प्रिन्टर्स,
लाह बाजार, छपरा-841301

**पत्राचार का पता**
प्रो० लावण्य कीर्ति सिंह 'काव्या'
फ्लैट नं०- 108
न्यू टीचर्स फ्लैट
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय
दरभंगा (बिहार)
**मोबाईल नं० :** 9835296330
**ई-मेल :** editor.stomresearchjournal@gmail.com

सहयोग राशि- **425/-**

पत्रिका के प्रकाशन से जुड़े सभी संगीतसेवी अवैतनिक हैं ।

लेखकों के विचार से सम्पादकीय सहमति आवश्यक नहीं है ।

**प्रधान सम्पादक**
**प्रो० लावण्य कीर्ति सिंह 'काव्या'**

**सह सम्पादक**
**डॉ० कुमार विनय मोहन सिंह**

'शिवम्' सांस्कृतिक मंच, छपरा

# स्तोम

## कलाभिव्यक्ति का माध्यम

(यूजीसी-केयर सूचीबद्ध, पिअर रिव्यूड वार्षिक शोध पत्रिका)

**सलाहकार मण्डल :**
प्रो० पंकजमाला शर्मा
प्रो० द्वारम वी.जे. लक्ष्मी
विदुषी काजल शर्मा
प्रो० दर्शन पुरोहित
प्रो० के० शशि कुमार

**सम्पादक मण्डल :**
प्रो० संगीता पण्डित
प्रो० बी० राधा
डॉ० विधि नागर
डॉ० अनीता शिवगुलाम
डॉ० हिमांशु द्विवेदी

**सहयोगी मण्डल :**
प्रो० अर्चना अम्भोरे
प्रो० निशा झा
डॉ० राजश्री रामकृष्ण
डॉ० बिन्दु के०
डॉ० आरती एन० राव
डॉ० अरविन्द कुमार
डॉ० ज्योति सिन्हा
डॉ० मधुरानी शुक्ला
डॉ० अवधेश प्रताप सिंह तोमर
डॉ० रवि जोशी
डॉ० शिखा समैया
डॉ० अमित कुमार पाण्डेय
डॉ० समीर कुमार पाठक

# शिवम्-सरगम

आङ्गिकं भुवनं यस्य वाचिकं सर्ववाङ्मयम् ।
आहार्यं चन्द्रतारादि तं नुमः सात्विकं शिवम् ।।

नृत् कला की इस दुनिया में,
है अपना नया कदम ।
जहाँ सुर का संगम होता,
वो सरगम बना शिवम् ।।

लेकर हम चाँद सितारे
आपस में प्रीत सँवारे ।
प्रीत के इस मंदिर में,
नित शीष झुकाते हैं हम ।।

संगीत हो मन्त्र हमारा,
अभिनय हो शस्त्र हमारा ।
हम नेक, एक, जग जीते,
यही नाद सुनाते हैं हम ।।

हो विकसित जग में कलायें,
संस्कृति की अलख जगाएँ ।
यही भावना हमारी,
यही लक्ष्य बनाते हैं, हम ।

मूल रचना : रविभूषण 'हँसमुख'
परिकल्पना : विनय मोहन 'वीनू'
संगीत : लावण्य कीर्ति सिंह 'काव्या'

# सम्पादकीय....

सम्पूर्ण प्रकृति ही संगीतमय सौन्दर्यामिभूत है । फलतः सम्पूर्ण प्राणि जगत पर संगीत का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है । हमारे देश भारतवर्ष के अलग-अलग प्रान्तों में बोली जानेवाली अलग-अलग बोलियों में संगीत की लोक छटाएँ हमें आकर्षित करती हैं । सहज काव्यात्मक तत्त्वों से आच्छादित इनके लोक गीत समस्त लौकिक जीवन को प्रभावित करते हैं । लोक भाषा के ये गीत हमारे मन में बरबस बस जाते हैं । ऐसे गीत अपनी सरल सहज, मधुर अभिव्यक्ति के कारण लोकप्रिय भी होते हैं । ये गीत शनैः-शनैः लोक-जीवन में घुल-मिल जाते हैं, लोक का सहारा बन जाते हैं । असंख्य अनुभूतियों, अनगिनत भावनाओं का सम्बल होते हैं ये लोक गीत । मिलन-विरह, हर्ष-विषाद, सुख-दुःख आदि समेटे हुए हैं ये । ये गीत अपने लोक साहित्य में मधुर धुनों के कारण प्राणवान हैं । इनकी धुनों में लोक-जीवन के अन्तःकरण की आहट सन्निहित है ।

ऐसे गीतों की अकूत सम्पदा पूरब क्षेत्र में बोली जानेवाली भाषा भोजपुरी में है । इस भाषा की सर्वाधिक प्रचलित लोक शैली 'पूर्वी' है । इसकी धुनें मात्र पूर्वी जनपद या पूर्वी अंचलों की सीमा में ही सुप्रसिद्ध नहीं हैं बल्कि अपनी सीमा के पार मॉरिशस, फिजी, नीदरलैंड, त्रिनिदाद, सूरीनाम, गुयाना आदि देशों में भी ये खूब प्रचलित हैं, खूब पसन्द की जाती हैं । ये धुनें हमारे अन्तर्मन तक समा जाने की क्षमता रखती हैं । एक दर्द की सुगबुगाहट है इन पारम्परिक धुनों में । यह क्षेत्र ही परिश्रम और पौरुष का पर्याय है, अतः श्रम की अथाह पीड़ा समेटे हुए है । भोजपुरी के लोकगीतों की बहुत लम्बी यात्रा है । पुनरपि इसकी मधुरता और ताजगी में कोई अन्तर अद्यतन दृष्टिगोचर नहीं होता । इसके साहित्यिक पक्ष पर अनेकानेक शोध हुए हैं, प्रायोगिक पक्ष पर अपेक्षाकृत कम । यद्यपि इसकी अपनी सीमाएँ अवश्य हैं । लोक-धुनों के मूल को परखने के लिए गुणिजनों की संख्या भी अल्प है । सर्वविदित है कि लोकगीतों के प्राण उनकी धुनों में ही व्यक्त होते हैं । इन धुनों की अभिव्यक्ति शब्दों में असम्भव है । इन लोकगीतों के साहित्यिक मूल्यांकन लगातार होते रहे हैं परन्तु सांगीतिक पक्ष प्रायः अछूता ही रहा है । इन लोकगीतों की रचनाएँ पारम्परिक हैं, रचयिता अज्ञात हैं; इनकी धुनें भी पारम्परिक हैं, धुनों के रचनाकार अज्ञात हैं । धुनों में साहित्यानुकूल भावनाओं को ऐसे पिरोया गया है जिसकी स्वरलिपि करना दुरूह कार्य है, परन्तु यदि किया जाता है तो यह श्रेयस्कर भी है । पूर्वी लोकधुनें अत्यन्त मर्मस्पर्शी हैं, अतएव ये लोकप्रिय भी हैं ।

सारण क्षेत्र के बहुप्रिय पूर्वी धुनों के जनक महेन्द्र मिश्र थे । 'अंगुरी में डसले बिया नगिनिया हो, सँइया के बुलाई द' उनकी बहुप्रसिद्ध पूर्वी रचना है । असंख्य गीतों के गीतकार महेन्द्र मिश्र संगीतज्ञ भी थे । लोकगायक भिखारी ठाकुरकृत पूर्वी शैली के लोकगीतों में 'बिदेसिया' की धुन अत्यन्त हृदयस्पर्शी है । 'बिदेसिया' एक भोजपुरी लोक नाटक है । पूर्वी रचनाएँ सारंगी, ढोलक, मजीरा प्रभृति लोकवाद्यों की संगति में दीपचन्दी ताल में प्रायः गाई जाती हैं । कुछ रचनाएँ कहरवा ताल में भी निबद्ध हैं । पूर्वी ऋतु-गीतों में फगुआ, चैता, कजरी, बारहमासा आदि प्रसिद्ध हैं । प्रायः दादरा ताल में फगुआ, दीपचदी में चैता, कहरवा में कजरियाँ गायी जाती हैं । दीपचन्दी में ही बारहमासा भी गाते हैं । झाँझ, खंजड़ी, ढोल, मजीरा, डफ, करताल आदि इनके ताल-वाद्य हैं । फगुआ और चैता के अधिकांश गायक पुरुष होते हैं तो कजरी और बारहमासा स्त्रियाँ गाती हैं ।

'जँतसार' और निरवाही' श्रम-गीतों के अन्तर्गत आते हैं जिसकी धुनें करुण होती हैं, इसे महिलाएँ गाती हैं । निरवाही दीपचन्दी ताल में बद्ध होता है जिसे धान की निरवाही करते समय गाया जाता है । जँतसार में वाद्य-यन्त्र की संगति नहीं होती है । सोहर, यज्ञोपवीत, विवाह आदि के गीत संस्कार-गीतों के अन्तर्गत आते हैं । सोहर की धुनें अधिकांशत: दीपचन्दी में होती हैं । यज्ञोपवीत के गीत भी दीपचन्दी में ही मिलते हैं । विवाह-गीतों में प्राय: कहरवा व दादरा बजता है । ढोलक का प्रयोग ताल-वाद्य के रूप में होता है । बिरहा, पचरा, कहरवा, धोबी गीत आदि जातीय गीत हैं । 'बिरहा' आभीर जाति के लोग गाते हैं । इसे खेत-खलिहानों, चरागाहों में अथवा राह चलते हुए गाते हैं । कभी-कभी इसमें लोक-नृत्य भी करते हैं, जिसे 'चौरासी का नाच' कहते हैं । 'पचरा' प्राय: हरिजनों में प्रचलित है । पैरों में घुँघरू बाँधकर घाघरा और ओढ़नी (दुपट्टा) ओढ़कर लोक-नर्त्तक नृत्य के साथ चलता है और इनके साथ पचरा गायक गाते हुए चलते हैं । वे मृदंग, कटोरी (धातु निर्मित) बजाते हुए देव-मन्दिरों तक जाते हैं । 'कहरवा' की धुनें अत्यन्त आकर्षक होती हैं । इसके गायक कहार होते हैं जो पालकी ढोते समय इसे गाते हैं । कहरवा की दूसरी धुनों पर नाचते हुए हुड़का और झांझ की संगति होती है । इसकी प्राय: तीन धुनें होती हैं, तीनों पर 'धा तिन्नड़ ता धिन्नड़' बजता है । धोबी-गीत भी प्राय: ऐसे ही होते हैं, इनमें भी दीपचन्दी और कहरवा ताल के साथ संगति होती है । मल्लाहों के गीत भी बहुत मधुर होते हैं, मलाहिनें अधिकांशत: गंगा मैया के गीत गाती हैं, जिसमें वे गंगा से भीख मांगती हैं । ये धुनें अत्यन्त मौलिक हैं । पूर्वी प्रदेश में भोजपुरी भाषा में शताधिक लोकधुनों के गीत हैं जिनका आकर्षण सम्पूर्ण धरा पर आच्छादित है ।

लोक धुनों से हमारे शास्त्रीय संगीत की उपज मानी गयी है, उपशास्त्रीय संगीत में इन लोक धुनों की अपनी पैठ है और फिल्म संगीत ने तो इनका भरपूर उपयोग किया है । लोक के गीत-संगीत हमारी सांस्कृतिक सम्पदा हैं । इन लोक सम्पदाओं की विविधा के मूल रूप को सहेजने की आवश्यकता है । यद्यपि यह कार्य आसान नहीं है, श्रम-साध्य और कठिन भी है । हर क्षेत्र की लोक-संस्कृति भिन्न होती है, प्रत्येक क्षेत्र के साहित्य-सेवी और संगीत-सेवी इस ओर कदम बढ़ा कर इस कार्य को मौलिक रूप दे सकते हैं । इनके संरक्षण हेतु इन लोक गीतों और लोक धुनों का अंकन, चाहे वह मुद्रण द्वारा सम्भव हो अथवा तकनीक द्वारा, आवश्यक है । अनगिनत शोध-आलेखों, लेखों, सम्पादनों, व्याख्यानों के संग्रहण द्वारा भी छोटे-छोटे रूपों में तैयार करते हुए आंशिक ही सही, इसे पूर्णता देने हेतु हम अग्रसर हो सकते हैं । ये लोक गीत व धुनें 'अनेकता में एकता' की राष्ट्र-शक्ति को दर्शाती हैं ।

हमारे श्रद्धेय अनेक लेखकों ने अनेक अनछुए पहलुओं पर श्रमपूर्वक सुचिन्तित और सुरूचिपूर्ण शोध-पत्र तैयार कर प्रकाशनार्थ भेजा है जिसे 'स्तोम' के वर्ष 2023 के अंक में प्रकाशित किया जा रहा है । ये लेखकीय, निश्चित ही, जिज्ञासुओं के लिए लाभप्रद होंगे । सभी लेखकों को साभिनन्दन अनेकश: बधाइयाँ । प्रकाशित शोध-पत्रों की समीक्षकीय टीम के अतिरिक्त श्रद्धेया प्रो. पंकजमाला शर्मा (चण्डीगढ़) एवं प्रो. पुनीता झा (दरभंगा) ने विशेष समीक्षकीय सहयोग प्रदान किया, हम सभी के प्रति आभार प्रकट करते हैं । इस अंक को अंतिम रूप देने में हर सम्भव साकांक्ष प्रयत्न किया गया है, पुनरपि त्रुटियाँ अवश्यम्भावी हैं, अतएव क्षमा की अपेक्षा भी है । सम्माननीय पाठकों के समक्ष 'स्तोम' का यह अंक नव वर्ष की मंगल कामनाओं के साथ,

Lavanya

**(लावण्य कीर्ति सिंह 'काव्या')**

# अनुक्रम


| | | | पृ.सं. |
|---|---|---|---|
| | **सम्पादकीय** | | iv-v |
| 1. | तबला, पखावज और नृत्य में कवित्त परन | पं. देवेन्द्र वर्मा 'ब्रजरंग' | 01 |
| 2. | Changing Scenerio of Indian Classical Music | Dr. Sangeeta | 13 |
| 3. | ठुमरी गायन विधा से अलंकृत भारतीय चित्रपट गीत : बंदिशी ठुमरियों के संदर्भ में | डॉ. रीमा शर्मा | 19 |
| 4. | राष्ट्रीय एकता जागृत करने में सांगीतिक विज्ञापनों का योगदान | डॉ. हरप्रीत कौर | 24 |
| 5. | नारदकृत 'संगीत मकरन्द' (संगीताध्याय : एक अध्ययन) | डॉ. राहुल स्वर्णकार | 30 |
| 6. | उत्तर प्रदेश के पूर्वी अंचल का लोकसंगीत : एक अवलोकन | डॉ. रितु सिंह | 38 |
| 7. | भारतीय सांस्कृतिक चेतना में लोकनृत्य और उसके संरक्षण–संवर्द्धन हेतु जन संचार | डॉ. बाला लखेन्द्र | 43 |
| 8. | भारतीय शास्त्रीय संगीत में शास्त्र और प्रयोग : एक विमर्श | डॉ. आकांक्षी | 48 |
| 9. | खावड़ा चित्रित टेराकोटा पात्रों एवं ताम्र–पाषाणयुगीन सिन्धु सभ्यता के पात्रों के मध्य अंतर्संबंध | प्रो. शिशिर सहाना/अर्चना दास | 53 |
| 10. | भारतीय सांगीतिक परिप्रेक्ष्य में लोकगीत : स्वरूपगत विवेचना | डॉ. प्रियंका अरोड़ा | 58 |
| 11. | पं. नारायण लक्ष्मण गुणे का सांगीतिक अवदान | डॉ. अस्मिता मिश्रा | 62 |
| 12. | Sharadchandra Arolkar and his authentic Gwalior Gayaki | Dr. Ranjani Ramachandran | 67 |
| 13. | Exploring the Influence of Art Deco in Fashion : The Spectacular Rise and Fall of the Movement | Tamoghna Mandal/Haiqa Siddiqui/ Aditi Agrawal | 72 |
| 14. | राग सारंग और उसके प्रकार : सामंत सारंग तथा बड़हंस सारंग | डॉ. कुमार अम्बरीष चंचल | 81 |
| 15. | भोजपुरी–अवधी लोक संस्कृति का वाचिक सन्दर्भ | डॉ. अमित कुमार पाण्डेय | 85 |
| 16. | Concept of Siddhasana in Yoga Texts | Dr. Hirdesh Bharti/Dr. Pooja Tiwari | 90 |
| 17. | संहिताओं में संगीत शिक्षा का स्वरूप | डॉ. आकांक्षा पाल | 94 |
| 18. | दक्षिण एवं पश्चिम भारत में क्षेत्रीय विविधताओं के आधार पर रंगबंधक आधारित रंगाई–छपाई का तुलनात्मक अध्ययन | डॉ. प्रज्ञा पाठक | 97 |
| 19. | देशभक्ति और मूर्तिकला के प्ररिप्रेक्ष्य में देवी प्रसाद राय चौधरी और उनकी कलाकृतियाँ | राजेश कुमार | 102 |
| 20. | औषधि–रूपी सांगीतिक रोजगार | डॉ. प्रीति गुप्ता | 105 |
| 21. | भारतीय शास्त्रीय संगीत के नवोन्मेष में संचार–माध्यम एवं प्रौद्योगिकी का योगदान | डॉ. शिप्रा पन्त | 108 |
| 22. | तंत्री वादिका विदुषी अन्नपूर्णा देवी का संगीत जगत में योगदान | डॉ. ममता यादव | 111 |

| | | | |
|---|---|---|---|
| 23. | प्राचीन काल में संगीत का अध्ययन एवं अध्यापन | डॉ. संगीता श्रीवास्तव | 115 |
| 24. | चतुराध्यायिका और पाणिनि सूत्रों का तुलनात्मक अध्ययन | डॉ. ज्योत्स्ना द्विवेदी | 119 |
| 25. | लोकसंगीत के प्रमुख वाद्य | उपासना शर्मा | 124 |
| 26. | अवनद्ध वाद्यों की उत्पत्ति और विकास | शुभम वर्मा | 126 |
| 27. | Essence of Bhakti in Karnatik Music | Voleti Chandrika Sailaja | 129 |
| 28. | विष्णु कुमार कपूर द्वारा रचित बंदिशें | डॉ. ऋतुपर्णा बर्मन गुप्ता | 135 |
| 29. | संगीत एवं पर्यावरण : एक विश्लेषण | डॉ. प्रिया पाण्डेय | 140 |
| 30. | बनारस घराना के तबला–वादन में मुखड़ा–मोहरा का प्रयोग एवं महत्व | डॉ. कंचन सिंह | 143 |
| 31. | A Language for Gogi : The Inherent Capacity to attain a Human Condition and Fantasies for Anthropomorphic Beasts or Feminine Beasts | Dr. Binoy Paul | 147 |
| 32. | ललित कलाओं में साहित्य एवं संगीत : महत्त्व एवं परम्परा | अमित कुमार शर्मा | 151 |
| 33. | संगीत एवं योग का अन्तर्संबंध | राकेश पॉल खजूरिया | 156 |
| 34. | ध्रुपद गायन शैली एवं ख्याल गायन शैली का सौन्दर्य | डॉ. आशुतोष बाजपेयी | 160 |
| 35. | मंदिरों एवं अन्य धार्मिक संस्थाओं में संगीत का प्रयोग | डॉ. महिमा | 163 |
| 36. | तनाव, अनिद्रा और मानसिक विकास को दूर करता है – संगीत | डॉ. गौरव शुक्ल | 167 |
| 37. | कलाओं में कौशल एवं रोजगार के अवसर (संस्कृत नाटकों के सन्दर्भ में) | डॉ. गटुलाल पाटीदार | 169 |
| 38. | फर्रूखाबाद घराना के विकास में युवा तबला वादकों का योगदान | प्रभात बाली | 174 |
| 39. | राग में वादी स्वर का महत्व | प्रो. के. शशि कुमार/प्रशान्त मिश्र | 180 |
| 40. | विदुषी बागेश्वरी देवी जी की ठुमरी गायकी | प्रो. संगीता पंडित/अंजली गुप्ता | 183 |
| 41. | ख्याल की बंदिशों में वर्ण्य–विषयों की भूमिका | प्रो. रेवती साकलकर/कुमारी शालिनी | 187 |
| 42. | लोक संगीत एवं 'टप्पा' गायन शैली | डॉ. वन्दना तिवारी/दीपक वर्मा | 191 |
| 43. | आधुनिक रंगमंच और स्टूडियो : रंगमंडपों का बदलता स्वरूप | डॉ. स्मृति भारद्वाज/मनीष जोशी | 194 |
| 44. | भोजपुरी लोक कथाओं में स्त्री : आज भी उपेक्षिता | डॉ. गौरव रंजन/डॉ. सुजीत कुमार/प्रमोद कुमार पांडेय | 199 |
| 45. | संगीत का समाजशास्त्रीय अध्ययन : प्रयोग एवं चिकित्सा के सन्दर्भ में | प्रो. अरविन्द कुमार जोशी/डॉ. पूनम वर्मा | 203 |
| 46. | Music as one of the modes of earnings in private institutes : Gangtok, East Sikkim | Dr. Krishnendu Dutta/Raju Rawat | 208 |
| 47. | Music in Major Agricultural Festivals of the Adi Tribe of Arunachal Pradesh | Dr. Santosh Kumar/Ms. RebikaTaying | 213 |
| 48. | Analysis of the lyrics of Dr. Bhupen Hazarika in context of Nationalism | Dr. Surendra Kumar/Parishmita Phukan | 219 |
| 49. | The Impact of Music Therapy on Patients Suffering from Insomnia : A study | Prof. Arvind Sharma/Purnendu Bains | 224 |
| 50. | तैयब मेहता का महिषासुरमर्दिनि : एक विवरणात्मक अध्ययन | नेहा वर्मा | 230 |

| | | | |
|---|---|---|---|
| 51. | चिढ़गाँव क्षेत्र की देव तालों का सांगीतिक अध्ययन | डॉ. लता / यशवंत | 234 |
| 52. | तिहाइयों के प्रकार : तबला–वादन के विशेष सन्दर्भ में | डॉ. ज्ञानेश चन्द्र पाण्डेय / आनंद कुमार मिश्रा | 238 |
| 53. | कथक नृत्य में प्रयुक्त हस्ताभिनय : 'नाट्यशास्त्र' के सन्दर्भ में | डॉ. विधि नागर / अपराजिता पटेल | 245 |
| 54. | नारदकृत 'संगीत मकरन्द' में वर्णित ताल एवं नृत्य विमर्श | डॉ. राहुल स्वर्णकार / सागर आकाश जैन | 252 |
| 55. | भारतीय संगीत में क्रमिक विकासात्मक गतिशीलता | प्रो. (डॉ.) निशा झा / शिवेश कुमार | 255 |
| 56. | आधुनिक संगीत में ध्वनि–विज्ञान तथा ध्वनिग्राही तकनीक का प्रयोग | डॉ. ज्ञानेश चन्द्र पाण्डेय / पंकज कुमार पटेल | 259 |
| 57. | Aesthetic Aspects of Music and its realization in Modern Era : A Novel View | Dr. Kiran Singh/Mitali Mukherjee | 263 |
| 58. | वैदिक वांङ्मय में संगीत चिकित्सा के सूत्र | डा. ममता रानी ठाकुर/रीना दत्त | 268 |
| 59. | भक्ति का स्वरूप : यौगिक दृष्टिकोण से | नम्रता चौहान / चंचल सूर्यवंशी | 272 |
| 60. | संगीत का अन्य ललित कलाओं के साथ अन्तःसम्बन्ध | डॉ. ज्ञानेश चन्द्र पाण्डेय / प्रीति सिंह | 278 |
| 61. | भारतीय संगीत में शिक्षा व शिक्षक : आधुनिक परिप्रेक्ष्य में | प्रो. (डॉ.) नीलम पॉल / गुरप्रीत कौर | 281 |
| 62. | स्थानीयता के नवीन बोधों को संदर्भित करती सुबोध गुप्ता की कला | सोनू कुमार | 285 |
| 63. | अध्यापक शिक्षा में नाट्य और कला : राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 के संदर्भ में | डॉ. अखिलेश कुमार मिश्र / वन्दना कुमारी | 289 |
| 64. | मानव जीवन पर संगीत का चिकित्सकीय प्रभाव | डॉ. शिवेन्द्र प्रताप त्रिपाठी / कल्याणी गुप्ता | 292 |
| 65. | योग और संगीत का आत्मीय और वैज्ञानिक सम्बन्ध | डॉ. सौरव कुमार नाहर / कु० शालिनी | 296 |
| 66. | बनारस घराने की पाँचवी पीढ़ी के महान तबला शिल्पी पं0 छोटेलाल मिश्र | प्रो. संगीता सिंह / जयप्रकाश शर्मा | 300 |
| 67. | उस्ताद अकील अहमद खाँ : व्यक्तित्व तथा कृतित्व | प्रो. सुधा सहगल / राहुल निवेरिया | 305 |
| 68. | स्वातंत्र्योत्तर मैथिली नाटकों का अधुनातन स्वरूप | प्रो. लावण्य कीर्ति सिंह 'काव्या' / अक्षय कुमार | 310 |
| 69. | Yoga for Self-Regulation : A Systematic Review | Pardeep Kumar | 313 |
| 70. | भारतीय शास्त्रीय संगीत में बंदिश और उसका महत्त्व | प्रो. (डॉ.) नीलम पॉल / अर्शदीप सिंह | 323 |
| 71. | 21वीं सदी में योग के परिप्रेक्ष्य में मानसिक स्वास्थ्य की अवधारणा | सचिन भारद्वाज | 327 |
| 72. | शास्त्रीय एवं उपशास्त्रीय संगीत की विभिन्न गायन–शैलियाँ : एक अध्ययन | डॉ. किरण सिंह / रेखा कुमारी | 332 |
| 73. | Blurring the line between fact and fiction in Colleen Hover's Verity | Dr. Anurag Kumar/Rashmi Jasrotia | 336 |
| 74. | बनारस और यहाँ के कलाकार | प्रो. (डॉ.) नीलम पॉल / जगजीत शाह | 346 |
| 75. | उत्तराखण्ड के लोक गीतों में स्वर, लय एवं ताल | प्रो. आशा पाण्डे / कु० शैलबाला | 349 |
| 76. | पंजाब के समकालीन गायक : गुरदास मान, सरदूल सिकंदर और हंसराज हंस | श्रुति होरा / सुनीता रानी | 352 |

# तबला, पखावज और नृत्य में कवित्त परन

**पं. देवेन्द्र वर्मा 'ब्रजरंग'***

साहित्य और संगीत सहोदर हैं। दोनों की महत्ता अवर्णनीय है। साहित्य संगीत का और संगीत साहित्य का अनुगामी है। गायन, वादन और नृत्य में साहित्य का उपयोग बहुविधि देखने और सुनने को मिलता है। साहित्य ख्याल, ध्रुपद–धमार, ठुमरी, दादरा, कजरी, चैती, गीत, ग़ज़ल, भजन, लोक संगीत में काव्य के रूप में, तबला और पखावज वादन में कवित्त रचना और स्तुति परन के रूप में तथा नृत्य में कवित्त, स्तुति परन और भाव प्रदर्शन में साहित्य सदैव से अपेक्षित रहा है तथा अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता रहा है। मीरा, सूर, तुलसी, कबीर एवं अन्य कवियों की काव्य रचनायें गायकों को सदा से लुभाती रही हैं। मूर्धन्य तबला/पखावज वादकों और नर्तकों की विविध रचनाओं से संगीत जगत भलीभाँति परिचित है तथा लाभान्वित होता रहा है जिनमें पं. पर्वत सिंह, पं. कोदऊ सिंह, पं. नाना साहब पानसे, पं. बिंदादीन महाराज, पं. कालिका प्रसाद, पं. बिरजू महाराज, पं. नारायण प्रसाद, पं. दुर्गा लाल, पं. गोपी कृष्ण, विदुषी सितारा देवी, पं. तीरथराम आज़ाद आदि अनेक विद्वानों की रचनाएँ संगीत जगत में बड़े सम्मान के साथ गाई, बजाई और नाची जाती हैं। पंडित किशन महाराज द्वारा गणेश वंदना 'गणानाम गणपति गणेश लम्बोदर सोहे' के वादन से गुणीजन भली–भांति परिचित हैं।

संगीत सृजनात्मक कला है। कलाकार नित नया सृजन कार्य करते रहते हैं और उन्हें अपनी प्रस्तुतियों में शामिल कर सुधीजनों के समक्ष लाने का प्रयास करते हैं। उनमें से कुछ बहुत प्रचलित हो जाती हैं और कुछ, कुछ समय पश्चात् प्रचार–प्रसार के अभाव में दम तोड़ देती हैं। गुरुजनों की बहुत सारी उत्कृष्ट रचनायें उनके साथ ही अवसान कर गईं। वर्तमान काल में भी अनेक सृजनशील कलाकार नई–नई रचनायें कर अपनी मेधा को जनमानस के समक्ष प्रस्तुत कर रहे हैं। इसी निमित्त सुधीजनों के समक्ष 'ब्रजरंग' द्वारा सृजित कुछ रचनायें प्रस्तुत हैं–

### नौरंगी परन

नौरंगी परन आदिकाल से वर्तमान काल तक के नौ विविध सांगीतिक रंगों के समायोजन से रचित एक नव सृजित रचना है जिसमें 1. भगवान शिव का डमरू 2. गणेश जी का मृदंग 3. माँ पार्वती का लास्य नृत्य 4. माँ सरस्वती की वीणा 5. मंदिरों का ध्रुपद गायन 6. पखावज 7. तबला 8. ख्याल गायन के विविध अवयव– ख्याल, सरगम, तराना, तराना, तिरवट, चतुरंग एवं 9. नटवरी नृत्य आदि को काव्य, तबला, पखावज, वीणा, नृत्यादि के बोलों के सांकेतिक स्वरुप रचा गया है। रचना चतस्त्र जाति तथा तीनताल में निबद्ध है। रचना 10 आवर्तन की है, अतः झपताल में भी इसका प्रयोग यथावत सम्भव है। यह रचना तबला, पखावज और कथक नृत्य, तीनों में समान रूप से प्रयोग की जा सकती है–

**नौरंगी परन**

**तीनताल**

| | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| डमडम | डमरु– | बजतशि | वा–को– | । | गणपति | हा–थमृ | दं–गलि | ये––– | । |
| x | | | | | 2 | | | | |
| धिधिकिट | धुमकिट | तकिटत | का–किट | । | दि–व्यना | –दका– | घो–षकि | ये––– | । |
| 0 | | | | | 3 | | | | |
| नृ–त्यक | रतमॉ– | गौ–रा– | पा–र्वती | । | श्रृंगारला | –स्यके– | रु–पलि | ये––– | । |
| x | | | | | 2 | | | | |

*सूर्य नगर फेस– 2, सेक्टर– 91, फरीदाबाद

ता–धिलां –गधुम किटतक दिगतक । तकतक दिगतक तकिटत का––– ।
0 3
बजतबी –नसुप्र वी–नसु री–ली– । दा–दिर दा–रा– दा–रदा –रदा– ।
x 2
धुरपद गा–वें– दे–वद नुजमुनि । जयजय जयगिर धा–री– महिमा– ।
0 3
ते–री– न्या–री– पा–रक रतभव । क्षणमें– सुमिरन करबन वा–री– ।
x 2
नवगति नवलय नवलता –लदे– । ता–री– मैं–हा– री–गिर धा–री– ।
0 3
आ–ड़कु आ–ड़बि आ–ड़अ नै–खी–। धा–नधिकिट धात्रकधिकिट क–तधिकिट गेघेनाना––।
x 2
गुणिजन सुखउप जा–वत भा–री– । इतगाव तख्या–ल संगसुघ ड़ता–ल ।
0 3
नाधिंधिंना –धिंधिंना –तिंतिंना त्रकधिंधिना । धिंनाधिंना नाधिंधिंना तिंनातिंना नाधिंधिंना ।
x 2
गावतत रा–ना– तिरवट चतुरंग । नई–न ई–सर गमबो– लनसंग ।
0 3
सरेसग –गमग रेस,रेग रेम–म । पमगरे, गमगप –पधप मगरेस ।
x 2
दानीदानी दिरदिरदानी दिरदानीत दारेदानी । 'ब्रजरंग' नाचतका –न्हसंग रा–धा– ।
0 3
गो–री– संगबर सा–नेकी छो–री– । विविधता –लगति नई–न ई––– ।
x 2
ता–थेई दिगदिगथेई आ–थेई दिगदिगथेई । ताथेई–ता थेई–दिगदिग आथेई–ता थेई–दिगदिग ।
0 3
तीधादिगदिग थेई–तीधा दिगदिगथेई– तीधादिगदिग । थेई–ता थेई–ता थेई–ता थेई–––।
x 2
सं–गत करतमृ दं–गसा रं–गी–। धागे–तकिटधागे तिटघिड़ा–नधा– तिटकतगदिगन धा–नधा ।
0 3
–नधा– नधा–न धा–क्ड़ां धागे–तकिटधागे। तिटघिड़ा–नधा– तिटकतगदिगन धा–नधा –नधा–।
x 2
नधा–न धा–क्ड़ां धागे–तकिटधागे तिटघिड़ा–नधा–। तिटकतगदिगन धा–नधा –नधा– नधा–न ।
0 3
धा
x

### भारत माता परन

माँ भारती को समर्पित भारत माता परन एक उत्कृष्ट रचना है। यह तीनताल में निबद्ध 8 आवर्तन रचना है जिसमें भारत की भौगोलिक एवं सांस्कृतिक संपदा का सुंदर वर्णन किया गया है। रचना में सुंदर काव्य तथा तबला और पखावज के बोलो का समन्वय किया गया है। प्रस्तुत रचना को देश के अनेकों उच्चकोटि के कथक नर्तक एवं नृत्यांगनाओं ने राष्ट्रीय स्तर के अनेकों मंचों पर प्रस्तुत किया है। रचना में काव्य एवं बोल संयोजन सराहनीय है–

### भारत माता परन

### तीनताल

धिटतिट कृधातिट तकिटधि किटता– । ––धि किटता– ––धि किटता– ।
X 2
श्वे–तमु कुटउत् तुं–गशि खरपर । शो–भित उ–ज्ज्वल प्रभा–लि ये––– ।
0 3
कलकल ना–दक रतगं– गा–जल । शु–भ्रहा –रसम बहतहि ये––– ।
X 2
तकिटधि नतकिट तकिटधि नतकिट । तकिटधि नतकिट तकिटधि नतकिट ।
0 3
ना–दनि ना–दक रतनद निरझर । श–स्यश्या –मला– करतप्रि ये––– ।
X 2
सा–गर चरणप खा–रत मॉं–के– । घं–टा– घो–षप्र भा–तकि ये––– ।
0 3
गा–यन वा–दन नृ–त्यक रतजन । वरनत बहुविधि कथा–हि ये–––।
X 2
धागेतिट तागेतिट कृधातिट धागेतिट । कृधा–न कतकत धातिरकिटतक ता––– ।
0 3
बजतमृ दं–गझां –झसा– रं–गी– । हरषित देवगं– ध–र्वहि ये––– ।
X 2
भा–रत मॉं–की– शा–ननि रा–ली– । बरनीन जायकछु जतनकि ये––– ।
0 3
वं–देमा –तरम् वं–देमा –तरम् । भा–रत वा–सी– घो–षकि ये––– ।
X 2
ध–न्यध –न्यजग ता–मॉं– मे–री– । 'ब्रजरंग' नमतशी –शजय जयभा– ।
0 3
रतमा– ता–जय जयभा– रतमा– । ता–जय जयभा– रतमा– ता–1– ।
X 2

2–'ब्रज रंग'नम तशी–श जयजय । भा–रत मा–ता– जयजय भा–रत ।
0 3
मा–ता– जयजय भा–रत मा–ता– । 1–2– 'ब्रजरंग' नमतशी –शजय ।
x 2
जयभा– रतमा– ता–जय जयभा– । रतमा– ता–जय जयभा– रतमा– ।
0 3
ता
x

**भारत भारती परन**

भारत भारती परन भी भारत माता को समर्पित एक सुंदर रचना है। यह आठ आर्वतन की मिश्र जाति की रचना है। इस रचना में भारत माता की वंदना की गई है तथा गुणीजनों द्वारा सराही गई हैं–

**भारत भारती परन**

**तीनताल**

धातिट दिड़दिड़ नातिट ता–किड़नग । तिरकिटतक धिरधिरकिटतक धा–त धा–––।
x 2
जयति मा–ता– भा–र ती–जय । जयति मा–ता– भा–र ती–चहुँ ।
0 3
दिशिआ लो–कित दि–व्य गा–था– । गावत सुरनर आ–र ती––– ।
x 2
धातिट धाधातिट तातिट धाधातिट । धातिट धाधातिट तातिट धाधातिट ।
0 3
नृ–त्य की–चहुँ ओ–र थिरकन । वंदे– चरणमॉ भा–र ती––– ।
x 2
हिममु कुटगल गं–ग सो–हे– । सिं–धु चरणप खा–र ती–जय ।
0 3
जयति 'ब्रजरंग' भा–र ती––ता । धा–– ––जय जयति 'ब्रजरंग' ।
x 2
भा–र ती––ता धा–– ––जय । जयति 'ब्रजरंग' भा–र ती––ता ।
0 3
धा
x

### 'गणेश परन'

मंगल मूर्ति गणेश मंगलकर्ता तथा विघ्नहर्ता हैं। भारतीय सनातन परंपरा में प्रत्येक मांगलिक कार्य एवं पूजाकार्य इत्यादि भगवान गणेश की पूजा से ही प्रारम्भ होता है। गायन, वादन और नृत्य में भी यह परंपरा प्रचलित है। सांस्कृतिक एवं धार्मिक आयोजनों का शुभारम्भ प्रायः गणेश वंदना से ही होता है। गायन की अनेकों बंदिशें, तबला/पखावज वादन और नृत्य की अनेकों रचनाएं गणपति को समर्पित हैं। प्रस्तुत दोनों गणेश परन नवसृजित रचनायें हैं। दोनों में गणेश जी के सुंदर स्वरूप का वर्णन किया गया किया गया दोनों रचनाएं आप सभी गुणीजनों के समक्ष प्रस्तुत हैं। दोनों रचनायें तीनताल की हैं तथा प्रथम रचना चतुस्त्र एवं दूसरी रचना तिस्त्र जाति में निबद्ध है–

### गणेश परन

तीनताल एवं आड़ाचार ताल

| | |
|---|---|
| धेतधेत त्रकधेत धागेतिट तागेतिट । | कृधातिट धागेतिट गदि–न्न किटधागे । |
| x | 2 |
| तिटघिड़ा –नधा– कतकधि किटकत । | कतकधि किटधागे तिटकत गदिगन । |
| 0 | 3 |
| जयजय जयगं– गणपति दे–वा– । | सुरनर कि–न्नर करतहैं से–वा– । |
| x | 2 |
| शिवगौ– रा–सुत मू–षक वा–हन । | वि–घ्नह रनदुःख रो–गन शा–वन । |
| 0 | 3 |
| मो–दक प्रियमुद मं–गल दा–ता– । | दि–व्यरु –पशो– भितसुख दा–ता–। |
| x | 2 |
| मुकुटशी –शचं– द्रमा–वि रा–जे– । | ब्र–ह्मा– वि–ष्णुम हेशगुन गा–वें– । |
| 0 | 3 |
| मृदं–ग ता–लस जततुम्ह रे–कर । | धाकिटतकधुम किटतकधा– बजतहैं भरभर । |
| x | 2 |
| ए–कदं –तगुन वं–तप्र वी–ना– । | नृ–त्यक रतबहु विधिसुख दी–ना– । |
| 0 | 3 |
| धा––धि किटता– –––धि किटता– । | –––धि किटता– तिटकतगदिगन धा–ता– । |
| x | 2 |
| धा––धि किटता– –––धि किटता– । | –––धि किटता– तिटकतगदिगन धा–ता– । |
| 0 | 3 |
| 'ब्रजरंग' शरणप ड़तविन तीकरत । | करकल्या –णलं– बो–दर प्रभुता– । |
| x | 2 |
| धा–ता– धा–ता– धा––– 'ब्रजरंग' । | शरणप ड़तविन तीकरत करकल्या । |
| 0 | 3 |

–णलं– बो–दर प्रभुता– धा–ता– । धा–ता– धा––– 'ब्रजरंग' शरणप ।
x 2
ड़तविन तीकरत करकल्या –णलं– । बो–दर प्रभुता– धा–ता– धा–ता– ।
0 3
धा
x

**गणेश स्तुति परन (तिस्त्र जाति)**

**तीनताल**

धा–नधिकिट धात्रकधिकिट क–तधिकिट गेघेननना–– ।
x
क–तधा–– तिरकिटतकता–– जयजयजय गं–गणपति ।
2
ए–कदं–त दया–वं–त व–क्रतुं–ड ल–म्बो–दर ।
0
वि–घ्नहरन दे––वा–– दि–व्यरु–प शो–भितहै– ।
3
सुरनरमुनि मो–हितहैं– मो–दकमि– ष्ठा–नचढ़त ।
x
औ–रचढ़त मे––वा––– मुकुटशी–श चं–द्रमा–– ।
2
अद्भुतवि– शा–लरु–प 'ब्रजरंग'से– वतचरण– ।
0
नृ–त्यकरत विविधभॉ–ति धागेतिटता– तागेधिटधा– ।
3
धागेतिटता– तागेधिटधा– धिटधिटधिट धिकिटता–न ।
x
कतिटता–न ता––ता–न धा–––––– धिटधिटधिट ।
2
धिकिटता–न कतिटता–न ता––ता–न धा–––––– ।
0
धिटधिटधिट धिकिटता–न कतिटता–न ता––ता–न ।
3
धा
x

**'नटराज परन'**

आदिदेव महादेव नृत्य के आद्याचार्य हैं। ताण्डव नृत्य नटराज महादेव का सुपरिचित नृत्य है तथा देवाधिदेव महादेव नटराज स्वरूप में सर्वपूजित हैं। नटराज परन देवाधिदेव महादेव को समर्पित रचना है। गुणीजनों की सेवा में तीनताल मे दो नटराज परन प्रस्तुत हैं जिनमें पहली रचना तिस्त्र जाति में तथा दूसरी रचना मिश्र जाति में निबद्ध है। दोनों ही रचनाओं में भगवान शिव के रौद्र स्वरूप का वर्णन किया गया है। दोनों ही अप्रतिम रचनायें तालांगी एवं नृत्यांगी हैं तथा तबला/पखावज वादन एवं कथक नृत्य में प्रयोग की जा सकती हैं–

**नटराज परन (तिस्त्र जाति)**

**तीनताल**

ना–च तनट रा–ज शिव– । गिरिजा –पति महा– दे–व ।

X 2

धाकिटतक धुमकिटतक धाकिटतक धुमकिटतक। कतिट ता–न धिकिट ता–न ।

0 3

रौ–द्र रु–प अतिअ नू–प । दे–व दनुज भयका –री– ।

X 2

खो–ल तत्रि– ने–त्र शं–भु । धिटधि टधिट धिकिट ता–न ।

0 3

कतिट ता–न धा–न धा–न । धा–– –नट रा–ज तांडव ।

X 2

करत जा–त धरा– धा–म । कपक पा–त सुरज नसू– ।

0 3

झतन बा–त नमन करत । गिरिजा मा–त ध्या–न धरो–।

X 2

विनती सुनो– शां–त करो–। जगत मा–त जगत पति– ।

0 3

महा– दे–व त्रा–हि मा–म । त्रा–हि मा–म त्रा–हि मा–म ।

X 2

करत दे–व धिटधि टधिट। धिकिट ता–न कतिट ता–न ।

0 3

धिकिट ता–न धा–न धा–न । धा–– ––– लखत नट– ।

X 2

रा–ज रं–ग अतिअ धी–र । 'ब्रज– रं–ग' जै–जै –नट ।
0 3
रा–ज महा– दे–व कृधान । धा–– कृधान धा–– कृधान ।
x 2
धा–– ––– जै–जै –नट । रा–ज महा– दे–व कृधान ।
0 3
धा–– कृधान धा–– कृधान । धा–– ––– जै–जै –नट ।
x 2
रा–ज महा– दे–व कृधान । धा–– कृधान धा–– कृधान ।
0 3
धा
x

## नटराज परन (मिश्र जाति)

### तीनताल

धागेन धिटधा– तागेन धिटधा– । धिकिट गेघेतिट धिं–त धा––– ।
x 2
जयति जयनट रा–ज प्रभुवर । करत तां–डव धुमकिटतक धा––– ।
0 3
धिं–त धा–कत धिरकिटतक धा–कत । धिं–त धा–कत धिरकिटतक धा––– ।
x 2
नटन टे–श्वर ना–च ना–चत । ने–त्र खो–लत ती–स रा––– ।
0 3
डिमिक डिमडिम डिमिक डिमडिम । बजत डमरु– धिरकिटतक ता––– ।
x 2
धरा– मे–रु– कंपत दसदिश । सुरअ सुरअरु दे–व दा–नव ।
0 3
विनत चरनन कतक धा–कत । कतक धा––– शां–त हो–प्रभु ।
x 2
वरम हे–श्वर त्रा–हि मामप्रभु । त्रा–हि मा––म जगत मा–ता– ।
0 3
पा–र्व ती–कर जो–र गा–वत । आ–र ती–किट धाकिटतक धाधाकिटतक ।
x 2
ताकिटतक धा–'ब्रज रं–ग प्रभुके– । चरण से–वत करोकृ पा–प्रभु ।
0 3

| | |
|---|---|
| करोकृ पा–तक तकिट धिनगिन । | तकिट धिनगिन धा–त धा–नट । |
| X | 2 |
| रा–ज प्रभु–म हे–श्व रा–नट । | रा–ज प्रभु–म हे–श्व रा–नट । |
| 0 | 3 |
| रा–ज प्रभु–म हे–श्व रा––– । | ––– ––नट रा–ज प्रभु–म । |
| X | 2 |
| हे–श्व रा–नट रा–ज प्रभु–म । | हे–श्व रा–नट रा–ज प्रभु–म । |
| 0 | 3 |
| हे–श्व रा––– ––– ––नट । | रा–ज प्रभु–म हे–श्व रा–नट । |
| X | 2 |
| रा–ज प्रभु–म हे–श्व रा–नट । | रा–ज प्रभु–म हे–श्व रा–ता– । |
| 0 | 3 |
| धा | |
| र | |

**'भारत सैन्य शक्ति परन'**

भारत की सेना को समर्पित यह अप्रतिम रचना है जो भारत की सैन्य शक्ति के विभिन्न स्वरूपों को संजोए हुए है। इस रचना के माध्यम से रचनाकार ने नमन करने का प्रयास किया है जिसकी बदौलत आज भारत सुरक्षित है तथा प्रत्येक भारतीय चैन की नींद सोता है। सेना के विभिन्न साधनों जैसे बंदूक, स्टेनगन, तोप, हेलीकॉप्टर, पनडुब्बी इत्यादि का सुंदर वर्णन है। यह परम वंदे मातरम् का जयघोष करते हुए भारत माता की जय जयकार करती है। मेरा तबला / पखावज वादकों एवं कत्थक नृत्य साधकों से निवेदन है कि इस रचना को स्वयं प्रयोग करें तथा अपने शिष्य–शिष्याओं को सिखाकर राष्ट्रीय पर्व पर प्रयोग करके भारत माता को नमन करें–

**भारत सैन्य शक्ति परन**

तीनताल

भारतीय सेना को सादर समर्पित

| | |
|---|---|
| तड़तड़ तड़तड़ तड़तड़ तड़तड़ । | दिड़दिड़ दिड़दिड़ दिड़दिड़ दिड़दिड़ । |
| X | 2 |
| धागेनातिं ––– ––ता– धा–ता– । | धा–ता– धा––– ––ता– धा––– । |
| 0 | 3 |
| चलतबं दू–कतो –पऔर गो–ला– । | से–ना– डटे–मै दा––न में–दुश् । |
| X | 2 |
| मनकी– छा–ती– फा–ड़ल हू–पी– । | जा–ते– सै–निक आ––न में–,जो– । |
| 0 | 3 |

नजर– इधर– उठाये– गा–बर । बा–दत भी–हो– जा–ये– गा–,ये– ।

x 2

भा–रत कीसै–न्य श–क्ति– है–दुश् । मनबेमौ –तमर जा–ये– गा–,जय ।

0 3

भा–रत वं–दे– मा––त रम्,जय । भा–रत वं–दे– मा––त रम्–– ।

x 2

धाकिटतकधुम किटतकगदिगन ताकिटतकधुम किटतकगदिगन ।

0

धाकिटतकधुम किटतकगदिगन ताकिटतकधुम किटतकगदिगन ।

3

फरफर फरफर नभमें– चलते– । सै–न्यवि मा–नदे –शर– क्षा–हित ।

x 2

सरसर सरसर जलमें– र–क्षा– । पनडु– ब्बी–कर ती–निशि वा–सर ।

0 3

'ब्रजरंग' सै–न्यम हा––न है–,कर । ती–क्षण में–बलि दा––न है–, जय ।

x 2

भा–रत श–क्तिम हा––– –न,जय । भा–रत श–क्तिम हा––– –न,ता– ।

0 3

धा–ता– धा–ता– धा–जय भा–रत । श–क्तिम हा––– –न,ता– धा–ता– ।

x 2

धा–ता– धा–जय भा–रत श–क्तिम । हा––– –न,ता– धा–ता– धा–ता–।

0 3

धा

x

**'गुरुदेव स्तुति परन'**

गुरु महिमा महान है। साहित्य, संगीत, कला, विज्ञान इत्यादि प्रत्येक क्षेत्र में गुरु महिमा का गुणगान निरंतर होता रहा है। भारतीय साहित्य में गुरुदेव का स्थान ईश्वर से भी श्रेष्ठ है। गुरुदेव के नमन हेतु अनेकों रचनाएं संगीत जगत में उपलब्ध है। तालज्ञ और कथक नृत्य साधक भी गुरुदेव का यशोगान निरंतर करते आ रहे हैं। प्रस्तुत रचना नवसृजित रचना है। यह रचना सहज, सरल एवं सुग्राही है। इसे विद्यार्थी, गुरुजन, शोधार्थी एवं जिज्ञासु जन सहज रुप से प्रयोग कर सकते हैं–

## गुरुदेव नमन परन

### तीनताल

जयजय जयगुरू दे–व,क रतजग । से–व,ज्ञा –न,गुन खा–न,क रतकल ।
x 2
या–न,त धा–ता– धा–,मे– रे–भग । वा–न,च रण में– षी–श,दे ओ–,आ–।
0 3
शी–ष,त धा––– 'ब्रजरंग' करत,गा । –न,ता– धा–ता– धा–ता– धा–,कर ।
x 2
तगा–न ता–धा– ता–धा– ता–धा– । करत,गा –नता– धा–ता– धा–ता– ।
0 3
धा
x

## गुरुदेव स्तुति परन

### तीनताल

नमन,क रत,गुरु दे–वच रण,ता– । धा–ता– धा–,दे– ज्ञा–न,ब ढ़ा–यो– ।
x 2
मा–न,मू –ढ़मति पा–यो– जगसम् । मा–न,प्र भू–गुनि करत,गा –न,क्ड़ां– ।
0 3
तिटकतगदिगन धा–ता– धा–,देओ ज्ञा–नत । धा––त धा––त धा––गु ननकी– ।
x 2
खा–नक रो–कल् या–न,मे रे–गुरु । दे–व,क रतनित से–व,दे वनके– ।
0 3
दे–व,च रणधरो शी–श,पा ऊॅ–आ– । शी–श,मे रे–जग दी–श,त धा––– ।
x 2
'ब्रजरंग' करतगा –न,तेरो धरतध्या । –न,जै– जै–गुरु देवजै– जै–गुरु ।
0 3
देवजै– जै–गुरु देवक्ड़ां– तिटकतगदिगन । धा––धा तिटकतगदिगन धा––धा तिटकतगदिगन ।
x 2
धा–जै– जै–गुरु देवजै– जै–गुरु । देवजै– जै–गुरु देवक्ड़ां– तिटकतगदिगन ।
0 3
धा––धा तिटकतगदिगन धा––धा तिटकतगदिगन । धा–जै– जै–गुरु देवजै– जै–गुरु ।
x 2

देवजै– जै–गुरु देवक्ड़ां– तिटकतगदिगन । धा––धा तिटकतगदिगन धा––धा तिटकतगदिगन ।

0 3

धा

x

**'राधा परन'**

राधा कोई नारी नहीं बल्कि आद्यशक्ति हैं। कृष्ण और राधा–आत्मा और परमात्मा का साक्षात स्वरूप हैं। राधा कृष्ण की शक्ति हैं। यदि राधा नहीं होतीं तो कृष्ण भी संसार में अपना पदार्पण नहीं करते। राधा कृष्ण की लीलाओं का अद्भुत वर्णन सर्वविदित और सर्वसुलभ है। राधा स्वरूपिणी मातृशक्ति को नमन करने हेतु इस रचना का सृजन किया गया है। अनेकों साधकों ने इस रचना को अपनी प्रस्तुतियों में सम्मिलित किया है। राधारानी को समर्पित इस रचना से रचनाकार को विशिष्ट अनुभव प्राप्त हुआ है। इस रचना के प्रभाव से स्वयं राधारानी ने रचनाकार को बरसाने बुला लिया जो एक अवर्णनीय एवं वर्णनातीत अनुभव है–

**राधा परन**

**तीनताल**

धेतधेत त्रकधेत धागेतिट तागेतिट । गदि–न्त किटधागे तिटघिड़ा –नधा– ।

x 2

ब्रजबा– ला–वृष भा–नुकि शो–री– । नचतस खी–ललि ता–संग भो–री– ।

0 3

ता–धिलां –गतक धिलां–ग तकतक । धिलां–ग तकधुम किटतक दिगतक ।

x 2

रा–धे– सकुचस कुचकछु गा–वे– । ब्रजवा– सिन्हछवि अतिमन भा–वे–।

0 3

बरसा– ने–में– बजतता –लमिर । दं–गझां –झढफ तकतकि टधिकिट ।

x 2

तकतकि टधिकिट तकधिकि टता–न । धिकिटता –नधकि टता –न 'ब्रजरंग' ।

0 3

शरणमा –तुतेरी करतगा –नरा– । धा–रा– धा–रा– धा––– करतगा ।

x 2

–नरा– धा–रा– धा–रा– धा––– । करतगा –नरा– धा–रा– धा–रा– ।

0 3

धा

x

# Changing Scenerio of Indian Classical Music

**Dr. Sangeeta***

**Abstract**

*The strength of Hindustani classical music lies in its rich and sustained tradition, which was passed down for generations through the traditional practice of Guru-Shishya Parampara. The classical music managed to survive despite the fact that it requires rigorous practice and devotion. Presently, with the emergence of various popular styles of music, it has become difficult for classical musicians to practice and perform solely classical Hindustani music.Classical music is definitely not the preferential form of music amongst the general populace today still there are countless Indian classical musicians and singers who are well respected and heard even in contemporary times. To revive and sustain this musical heritage, classical musicians in this country have opted to fuse elements from different musical systems. This research paper discusses the various changes taking place in Indian classical music in current scenario.*

**Keywords :** *classical, music, education, tradition, traditional, rich*

***Methodology :*** *The descriptive-evaluative method has been mainly used in this paper. This review based study is supported by secondary source of data e.g. journals, books, articles and websites.*

## Introduction

Music has always been deeply connected with the society. Music system develops by the interaction of individuals in the context of different social and cultural situations. The majority activities of social life cannot be imagined without music. Thus, musical tones are symbolic of social facts (N. Singh 2004).1 Music has been evolving over the years it has always flourished as per the need of the society. It has undergone sea change of the evolutions, with the time and situations. Indian music is the witness of huge changes since its of huge changes since its provenance. Through the process of evolvement, it has accommodated many features which have completely changed its identity and place. From the philosophical religious music to the court, from court to the public, it is in the continuous process of evolution till date. But in all these phases of time, the Indian classical music, along with adaptation and rejection, has always struggled for maintaining its immaculacy or the classicism.As Music is a performing art, which requires a lot of creativity and cannot be static, so the gradual developments and experiments have always given new ideas to the modern generation. In this modern age of science, things are in continuous flux and changing by following the process of experimentation. Although, our classical music is based on the highest traditional forms of music yet this oldest form of music, which was conceptualized thousand Years ago, have undergone changes in various stages due to Experimentation. Music is cultivated as an Art to attain perfection. From the ancient times to modern age, great musicians made and adopted critical observations in Classical Music through experimentation. Thus, the scope of experimentation becomes too wide. As the globalization swept across the world in the last two decades, Indian performing arts,also went through many changes without being noticedthat great traditions and Indian classical music had

*Associate Professor, Deptt. Of Music (Inst.), Dev Samaj College For Women, Ferozepur City

changed its course. Globalization has impacted music and performing arts in India.Classical music is definitely not the preferential form of music amongst the general populace today still there are countless Indian classical musicians and singers who are well respected and heard even in contemporary times. The classical music managed to survive despite the fact that it requires rigorous practice and devotion. Some believe that the reason solely responsible for its survival is the Indian "Guru-Shishya Parampara" in which a teacher or guru is given the utmost respect and a student or shishya always adheres to his teachings. Other reasons for its survival are highly scientific structure within which a musician could perform with total freedom, the aesthetic appeal of the music, the melodies and the unmistakable spiritual aspect of the music. From time to time,several attempts were made to revive and re-popularize the Indian classical music amongst the masses. However, with the passage of time modern society gradually began to accept new styles of various performing arts.The Indian government has made consistent efforts to revive the classical arts but the present trend completely turned the face of Indian music around. There is a very popular perception that Indian classical music is 'too cerebral' or 'too heavy'. Nevertheless, recent times have seen a resurging interestof masses in the field of Indian classical music. An increase in the number of artists indulging in fusion and a growing number of organizations dedicated to spreading the richness of its tradition has helped revive interest in classical music. This fact is quite evident from the reality shows which are telecast from time to time on different platforms of social media and TV. Despite ofso many adversitiesthe Indian classical music has managed to survived.

**E-learning in Music,**

E-learning has been used for imparting technical education to some extent. And for such courses in distance learning mode, use of e-learning is prevalent and well documented. But use of ICT in music education is rather limited. However, there are good reasons to explore e-learning technology for music education.Firstly, it is less tried thing, so there is a lot of untapped potential. Music industry is already using software and hardware technologies for composing and fine-tuning music. There are several aspects of music, especially recording, storage and retrieval of music which are better facilitated by technology. Infact CD and YouTube are two most important reasons behind mass availability of music audio and video. In future we mayfind even more sophisticated software application for Indian classical music composition and appreciation. Invention of electronic media is a boon to Indian Music. From gramophone, records, radio, Compact Disc (CD) to mobiles applications, YouTube, iTunes to electronic instruments. The use of technology is increasing day by day in Indian classical music adding more updated versions with the changing times. In music industry almost everything is completely digitized. From listening, manufacturing to the marketing of the musical tools, all are trapped in the web of digitization. Digitization has reduced the cost of distribution and production of recorded music. As compared to the traditional methods. Internet plays a significant role in marketing and promotion of music. Freedom to download individual songs and ragas has taken the place of traditional music product which includes the full-length album. Independent artists are able to find audience with the help of social media (Mathew 2013). Nowadays people have easy access to music. Illegal sharing of music via file sharing and other such platforms has been the reason of drop insales of entertainment industry. There is drop of physical music sell, much to the chagrin of those in the industry. But on the flip side the accessibility of digital recording equipment and the ability of artist to distribute their material worldwide,have opened new horizons for the artists (Gallagher 2013). The social media acts as a bridge between the artist and audience.Today music industry is rapidly growing with the use of advanced technology in music, there is keen competition between production and marketing companies. like Storage

and reproduction technology, once began, have advanced rapidly, and competition between production and marketing companies around the world is keen (Wetzel 2012). Beyond recording, listening and archiving electronic/digitized gadgets, like Amazon, eBay, snap deal and other online shopping sites makes instruments and other accessories available at very reasonable rates at the door.Instruments like tuners, electronic tabla, electronic tanpura etc. are becoming the necessitiesthese days. Electronic tabla and tabla mobile applications are great innovation in Indian Classical Music which are available at one click. These applications have the manual tabla at least for practice. Increasing popularity of electronic sitar worldwide is quite surprise at least to the traditional sitar players.

The followers of Indian classical music continue to this day to have faith in the tradition, and the music itself stays true to its roots. Nevertheless, the core has been altered somewhat, or we may even say quite a little. Therefore, the Talim can only take place during the lessons held on the weekends or at a maximum of two or three times each week. Traveling to different locations to provide them Talim takes up a significant amount of time for gurus. They are gone for a considerable amount of time, which cuts into the amount of time students may spend with them. Even the genius needs to produce results in order to keep their freelancing job going. Extremely little resources are made available by the government to artists, who also get very few of these resources. On the other hand, students who are required to strike a balance between the many areas of life in today's fast-paced world sometimes find it difficult to devote as much time as they should to their musical pursuits. According to comments made by UstadImrat Khan in an interview, ".....Today what is occurring is that there is much more material knowledge." When it comes to performers, art or music is now far more accessible to them, typically in the form of recordings. However, there is not access to this extensive base of support. The constructions on the top, rather than the base, are what are now available (Khan 1992). Students who do not come from musical families tend to start music instruction fairly late; as a result, they do not have the time to learn talim and riaz. They are needed to both focus on the music and the financial aspects of the business. One of these difficulties, which affects both sides to a greater extent than the others, is the age-old tradition of the interaction between a guru and a shishya. In today's increasingly digital and notated world, the accessibility of music via the internet is gradually displacing the traditional role of the guru in the student's life. Learning from a single guru or inside a single gharana is almost impossible to maintain due to a variety of factors. Furthermore, in this highly communicative society, no one is immune to the effect that various gharanas have had on them.

**Teaching Aspects :**

It is not always possible to have a tabla player, and the instrument might serve as a good alternative in these kinds of circumstances. Therefore, there is no time limit associated with the tabla in riaz. The fact that it is a machine that can play practically all taals at varying tempos makes it far more effective than a manual tabla for preserving laya. Within the space of around five years, the instrument rose to great prominence as a consequence of all of these factors. It seems somewhat weird, at least to those who play conventional sitar, that electronic sitar is becoming increasingly popular across the world.This represents a significant step forward for the genre. A musician absolutely cannot function without e-instruments.

Students have a tendency to praise the origin of their musical abilities and comprehension while speaking publicly or writing about it. One can discover through word-of-mouth and private accounts that although many gurus may give the impression that they are demi-gods, in reality they have shifting moods, weaknesses, and oversights. In spite of the fact that they are exceptional musicians, they are still people at heart. Many

gurus spend their lives in the twenty-first century, travelling the world in private jets and playing with the latest and greatest technological gadgets, while they want their followers to remain stuck in the nineteenth century (Schippers, 2007). In addition to this, good performers do not necessarily become good instructors, and good teachers do not necessarily make good performers; yet, teaching and performance are the two sides of the same coin. When music education is conducted in an institutional setting, its essential nature cannot be taught or learned in a balanced manner. Therefore, the strategy and labour put out by gurus are an essential component that must be attended to. Gurus that are willing to go out of their comfort zones, change the way they teach, and strike a healthy balance between upholding ancient ideals and recognising the imperatives of the modern world are the ones who have the greatest apparent influence on society. They are developing newly experimental techniques of instruction in order to strike a balance between the teaching of music, its technical aspects, and the passage of time.

**Career Options**

The majority of parents do not encourage their children to pursue a profession in music, with the exception of a very small number who have musical training or an interest in music. The educational system does not foster an environment that is conducive to music education. Students that have musical aspirations don't get a lot of encouragement and assistance from teachers. The pupils are left in a state of confusion over whether or not they should pursue this field of study as a career option since they lack understanding of future perspectives in the field of music. The society also places lower importance to music.Parents provide financial support to children for participation in music related activities and encourage them to learn instrumental and vocal music.In the majority of schools, music teachers pay-scale is comparatively low whilstmusic teachers feel more pressured, exhausted, and negatively influenced by both the demands of their jobs and the attitudes of others around them. The majority of staff members stated that students' motivation, well-being, self-esteem, and confidence had improved as a result of their participation in musical programmes. These programmes also pushed the students to collaborate with one another. This amount of time is far too limited for someone who is truly interested in pursuing a career in music, at the very least in Classical Music.

**Written/Recorded Music**

According to Widdess's explanation, "Indian music is dependent to a large extent on oral transmission, memorization, and improvisation; and although these processes may be assisted by various systems of 'oral notation,' for drums, dance, and melody, these oral systems serve a mnemonic function, and are seldom written down." He went on to say, "The western belief that memory is short-term, limited in capacity, and treacherously fallible, whereas writing is relatively long term and reliable, is reserved in India: there, collective memory can transmit a complex tradition with astonishing accuracy over centuries, whereas writing is perishable and lead to misunderstandings" (Widdess, 1996).

Writing music down and recording became common practice in Indian classical music as a result of the necessity of preserving the traditional compositions of great ustads in an environment marked by political upheaval and the impact of western culture. The works of the pioneers that were less well known at the time are still kept alive on the texts and are performed by contemporary artists. They have also provided precise documentation of the traditions of the previous masters, as well as a source of new ideas for the musicians to study the techniques and approaches of other musicians, which has enabled them to incorporate such techniques into their own performance styles. Additionally, they have provided precise documentation of the traditions of the past masters. Certain classical musicians have been able to virtually followed the styles of

gharana without having conducted any direct study within those traditions. Some of these musicians have even gone so far as to identify themselves explicitly as exponents of the traditions (for example, the disciples of the late vocalist Amir Khan) (B. Q. Silver, 2000). "Pt. Vishnunarayan Bhatkhande (1860-1936) and Pt. Vishnu Digambar Paluskar (1872-1931), Sourindra Mohan Tagore (1840-1914), and a number of other academics have made major contributions in this respect, which has resulted in the music taking on a new dimension. As a result of their efforts, even the most obscure ancient compositions may be found even now, and they continue to pass on their heritage to subsequent generations. All Indian Radio (AIR), and in its latter phases, the Sangeet Natak Academy (SNA), both have works that are commendable in this respect.

**Notation System**

The notation system is continuously being made more accurate by the use of new innovations and sustained efforts notwithstanding the passage of time. Things are getting better day by day. The ability to show and draw staff notation on computers has recently been made possible by the development of a number of different systems, such as Swara Shala. Investigations are now being carried out in order to develop suitable software that can adequately represent the myriad complexities of Indian classical music. Institutions such as Sangeet Research Academy (SRA), Archives and Research Centre for Ethnomusicology (ARCE) New Delhi, and Archive of North Indian Classical Music at Jadavpur University are making significant contributions to the preservation of music by utilising all contemporary and practical techniques of archiving. Nevertheless, it is impossible to avoid the question of whether or not the system can take the place of the value of oral tradition and direct instruction from guru. Are these notated papers capable of indicating the level of difficulty in music? Is there a symbol that can be used to represent Rishav of Bhairav? That is something that can only be comprehended via the taalim and through self-realization. In a similar vein, there are many facets of Indian Classical Music that are hard to convey in words or indicate by any sign. These facets cannot be represented in any way. On a single piece of paper, it is impossible to convey all the melodic subtleties, the intricacies, refinementsand colours, the overwhelming complexity, and the overpowering variety. The glorious orality of music's transmission through the guru-shishya parampara, which is too overpowering for any notation system, has been passed down for generations (Bakshi 2002-2003).

**Digitization**

The digitization and creation of electronic media have been extremely beneficial to the field of Indian music. The use of technology is growing increasingly prevalent in Indian classical music, with examples ranging from the gramophone and 78 rpm records to the radio and compact discs (CDs) as well as electronic and robotic instruments. Mobile applications, YouTube, iTunes, and electronic instruments are just a few examples of this trend. The process of converting analogue information into digital information is what is meant when we talk about digitization. The current age has almost everything related to entertainment converted into digital format fully. The act of listening to music, the production of musical instruments, and the distribution of those instruments are all caught up in the web of digitalization. When compared to the costs associated with the distribution and manufacturing of recorded music using traditional methods, the costs associated with digitization have become significantly lower. The marketing and promotion of musical works are greatly aided by the use of the internet. Musicians now have access to new and exciting opportunities due to the widespread availability of digital recording equipment and the capacity to disseminate their work internationally without the need for a record agreement (Gallagher, 2013). According to Dean Shapero, who states that

"current marketing and media have humanised the celebrity to a greater degree than ever before," the social media helps bridge the gap that exists between the artist and the audience. As a result, the iconic image of the beginning is not as significant as it once was; but the influence is as big as it has ever been owing to the high rates of social interaction that are now available (Shapero, 2015).

Everything that is said regarding the current state of technology in the music industry is quickly rendered obsolete, out of date, or irrelevant as soon as it is articulated since the state of technology is always evolving.

Electrical jack can boost and improve the volume, but the complex techniques like Bol patterns for the right hand and left hand, Gamaks, etc.cannot be played on electric sitar.This instrument is nothing more than a poor copy of an actual electric guitar. Many musicians like to perform it in a standing stance. Such types of innovations may fulfil the goals of an engineer, but it will not meet the goals of a musician. This is a question that must be answered despite the fact that such sorts of technologies often lead younger generations astray. The India youth has more western influence than Indian.

**Conclusion**

Technology mixed with traditional values can be an absolute advantage to the antiquated institution of music. Be it notation, modern instruments or musical styles all have come up as need of the time and will continue with more developed processes. Indian Music education has not fully tapped the potential of technology. Technology have pervaded all the walks of life. Its use has affected music in general to a great extent. The advantage of using technology is that they facilitate accurate and fast processing, and once programmed, can work indefinitely afterwards. As explained by Rajeev S Patke "one the positive side, art gets disseminated widely because of technology. Music educators need to devise innovative new methods of instruction to pique their students' attention and enable them to study music in a way that strikes a healthy balance between the classical canon and contemporary trends.

**References :**


1. Farell, Gerry (1997). Indian Music and the west. Clarendon Press.
2. Farrell, Gerry (2002). The Senia Style of Sitar Playing in Contemporary India. British Journal of Ethnomusicology 11.2:29-60.
3. Mudgal, Subha (2011). Changing trends in performing Arts. The Hindu E-Newspaper. (Accessed on 25/3/2018)Back, L. and Puwar, N. (eds) (2012) Live Methods. Malden, MA: Wiley-Blackwell.
4. Raja, Deepak S (2005). Hindustani Music: A Tradition in Transition. New Delhi: D.K. Printworld (P) Ltd. Silver, Brian and R. Arnold Burghardt (1976). On Becoming an Ustad: Six Life Sketches in the Evolution of a Gharana. Asian Music 7.2:27-58.
5. Singh, Nivedita(2004). Tradition of Hindustani Music, A sociological Approach. New Delhi: Kanishka Publishers
6. Shapero, Dean (2015). The Impact of Technology on Music Star's Cultural Influence. The Elon Journal of Under Graduate Research in Communications, Vol. 6(1): 20-27.
7. Broadbent, D., and Grocott, R. (eds) (2013) GCSE History: Modern world history complete revision & practice. Kirkby in Furness: Coordination Group Publications.
8. Gaunt, H. and Westerlund, H. (eds) (2016) Collaborative Learning in Higher Music Education. London: Routledge.
9. Haddon, E. and Burnard, P. (eds) (2016) Creative Teaching for Creative Learning in Higher Music Education. London: Routledge.
10. Keep, A. (2013) 'Wrong Pro Tools: A pedagogical tool for sonic experimentation'. Paper presented at the 'From Tape to Typedef: Compositional methods in electroacoustic music' conference, University of Sheffield, 30 January-2 February 2013.

# ठुमरी गायन विधा से अलंकृत भारतीय चित्रपट गीत : बंदिशी ठुमरियों के संदर्भ में

**डॉ. रीमा शर्मा***

**सारांश**

*भारतीय शास्त्रीय एवं उपशास्त्रीय संगीत में ठुमरी गायन विधा को एक प्रकृष्ट स्थान प्राप्त है। यह विधा न केवल शास्त्रीय संगीत रसिकों अपितु सामान्य जन वर्ग को भी सदैव आनन्दविभोर एवं अनुरक्त करती रही है। इस विधा की जनप्रियता का मूल कारण इसमें विद्यमान भावाभिनय, रसात्मक, श्रृंगारात्मक एवं सौन्दर्यात्मक तत्व हैं। जिस प्रकार एक नर्तकी अपने नृत्य में आंगिक अभिनय, मुद्राओं एवं भावभंगिमाओं के प्रयोग द्वारा अपने श्रोताओं के समक्ष विभिन्न भावों की सफल अभिव्यक्ति करती है, उसी प्रकार एक ठुमरी गायक अपने गायन में मुर्की, कण, खटका, पुकार इत्यादि सौन्दर्यवर्द्धक गायन क्रियाओं का समावेश कर गीत के बोलों की सुन्दर अदायगी करता हुआ गीत के भावों को बड़ी कमनीयता से श्रोताओं के समक्ष प्रस्तुत करता है। ठुमरी की इन्हीं विशेषताओं से प्रभावित होकर चित्रपट के संगीतकारों ने इस गायन विधा का सहारा लेकर चित्रपट के अनेक गीतों की रचना की। चित्रपट संगीत में ठुमरी पर आधारित गीतों का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि इन गीतों पर बोल–बनाव की ठुमरी एवं बंदिशी, दोनों प्रकार की ठुमरी शैलियों का प्रयोग एवं प्रभाव है। बंदिशी ठुमरी चूंकि कथक नृत्य के साथ अधिकतर प्रयोग की जाती रही है। इसलिए भारतीय चित्रपट इतिहास के प्रारम्भिक दशक से ही चित्रपट संगीत में ठुमरी की इस शैली का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। बंदिशी ठुमरी की परम्परागत बंदिशों एवं रचनाओं का प्रयोग बहुतायत से चित्रपट संगीत में किया गया। साथ ही, इसके आधार पर अनेक गीत भी रचे गये जिन पर प्रकाश डालना इस शोध पत्र का लक्ष्य है।*

**मुख्य शब्द** : *ठुमरी, बंदिशी ठुमरी, चित्रपट, संगीत*

**शोध माध्यम** : *द्वितीयक माध्यमों से इस पत्र के लिए सहायता ली गई है ।*

**चित्रपट में ठुमरी गायन–विधा का अवतरण :**

वास्तव में भारतीय चित्रपट में ठुमरी गायन विधा का प्रयोग मूक चित्रपट के समय से ही होना प्रारम्भ हो गया था। इस सम्बन्ध में भारतीय चित्रपट संगीत के उत्कृष्ट संगीतकार नौशाद साहिब बताते हैं कि 'उस समय संगीत की एक मंडली पहले मूक फिल्म का ट्रायल देखकर सूची बना लेती कि कहाँ लड़ाई, रंज, खुशी, शादी या नृत्य है। फिर उसके अनुसार ठुमरी, दादरा और गज़ल गाते थे। कोई संजीदा दृश्य होता तो उसी तरह का संगीत होता था। इससे वाणी–विहीन चित्रपट में भी जान आ जाती थी।'[1]

धीरे–धीरे चित्रपट में वाणी एवं संगीत की कमी को दूर करने का प्रयास करते हुए 1931 से सवाक् चित्रपट का निर्माण प्रारम्भ हुआ परन्तु उन वर्षों में ध्वनि रिकॉर्डिंग की सुविधाएँ अल्प–विकसित थी। चित्रपट में गीतों की रिकॉर्डिंग अलग से पार्श्व संगीत के रूप में करनी सम्भव नहीं थी। चित्रपट में जहाँ भी कहीं गीत का दृश्य फिल्माया जाता था उसमें अभिनय कलाकारों को स्वयं ही अभिनय के साथ गीत गाना होता था और उनके साथ संगीतकारों का समूह या तो दृश्य के फ्रेम से बाहर या फिर पेड़ पर बैठकर संगीत देता था।[2] इसका उदाहरण हमें सन् 1938 के चित्रपट 'स्ट्रीट सिंगर' में भी देखने को मिलता है जिसमें चित्रपट संगीत के महान गायक के.एल. सहगल साहिब अपने गले में हारमोनियम टांग कर गली में चलते हुए नवाब वाजिद अली शाह द्वारा रचित अत्यन्त प्रसिद्ध परम्परागत ठुमरी 'बाबुल मोरा नैहर छूटो ही जाय' गाते हुए दिखाई देते हैं। इसमें पार्श्व गायन का प्रयोग नहीं किया गया है। इस प्रकार से उन दिनों चित्रपट में नायक–नायिका की प्रमुख भूमिका के लिए उन्हीं कलाकारों को लिया जाता था जो गायन एवं नृत्य में निपुण होते थे। ऐसे समय में कई ठुमरी गायिकाओं का भारतीय चित्रपट में प्रवेश हुआ।

*असिस्टेंट प्रोफेसर, खालसा कॉलेज फॉर वीमेन, सिविल लाइन्स, लुधियाना

जैसा कि ठुमरी के इतिहास से ज्ञात होता है कि ठुमरी का प्रारम्भिक प्रयोग कथक नृत्य के साथ किया जाता था। अतः इसका प्रचलन अधिकतर तवायफों द्वारा कोठों पर होता था, जो नृत्याभिनय के साथ भावपूर्ण ढंग से इसे प्रस्तुत करती थीं। बीसवीं शताब्दी की शुरुआत में अंग्रेजों ने 'एंटी–नच आंदोलन' चलाया जिसके चलते संगीत की व्यवसायिनी महिलाओं का विरोध शुरु हो गया, जिस कारण उनकी आर्थिक स्थिति बहुत दयनीय हो गई। अतः अपना अस्तित्व बचाने एवं रोजी–रोटी कमाने के लिए उनमें से बहुत–सी ठुमरी गायिकाएँ पारसी एवं मराठी रंगमंच और कुछ भारतीय चित्रपट में बतौर अभिनेत्री काम करने लगी।[3] शुरुआती चित्रपट में अभिनय एवं गायन का कार्य अभिनेता एवं अभिनेत्रियों को ही सौंपा जाता था। क्योंकि उस समय पार्श्व गायन की व्यवस्था नहीं थी इसलिए शुरुआती दौर के चित्रपट में मुख्य नायिका के लिए अधिकतर संगीत की व्यवसायिनी महिलाओं को ही लिया गया। क्योंकि ये ठुमरी, दादरा एवं गज़ल इत्यादि गाने के साथ–साथ नृत्य में भी प्रवीण थीं और पर्दे पर दिखने में सुन्दर एवं आकर्षक भी लगती थीं। ऐसी कलाकारों में कज्जन बाई, खुर्शीद बानो, बिब्बो और जद्दन बाई के नाम उल्लेखनीय हैं। ये उस समय की बेहतरीन गायिकाएँ एवं अदाकारा मानी जाती थी। चित्रपट में जहाँ इनसे ठुमरी, दादरा गवाये गये, वहीं कई सरल गीत भी गवाये गये। परन्तु चूंकि ये मूलतः उपशास्त्रीय संगीत की कलाकार थीं इसलिए इनके द्वारा गाए गीतों में ठुमरी गायकी का प्रभाव स्वभाविक ही दिखाई देता है। सम्भवतः यही कारण है कि चित्रपट के प्रारम्भिक दशक से ही चित्रपट संगीत में ठुमरी गायकी का प्रभाव दिखाई देने लगा। साथ ही, यह भी कहा जा सकता है कि इन गायिकाओं के द्वारा ही चित्रपट संगीत में ठुमरी गायन विधा का अवतरण हुआ।

भारतीय चित्रपट संगीत में ठुमरी विधा के प्रभाव का एक और कारण दिखाई देता है जब भारतीय चित्रपट में संगीत का प्रचलन आरम्भ हुआ तो उस समय शास्त्रीय एवं उपशास्त्रीय संगीत तथा गज़ल एवं लोकसंगीत की विधाएँ ही प्रचार में थी। चित्रपट संगीत का अपना कोई अस्तित्व प्रस्थापित नहीं हुआ था। इन विधाओं में से उपशास्त्रीय संगीत की विधा ठुमरी लोकप्रिय संगीत के रूप में प्रचलित थी। यह शब्दों पर विशेष महत्व देती थी और दिलों को आकर्षित करने में सक्षम थी। इसकी रचनाएँ सरल राग–रागिनियों में निबद्ध होती थीं। नृत्य और अभिनय के कलाकार इसे अपनी मुद्राओं और भाव–भंगिमाओं द्वारा सरलता से और प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत कर सकते थे।[4] अतः ठुमरी में निहित कलात्मकता एवं माधुर्य गुणों से चित्रपट के संगीतकार भली–भांति परिचित और प्रभावित भी थे। सम्भवतः इसी कारण उन्होंने चित्रपट के गीतों की रचना ठुमरी के प्रभावाधीन की। शुरुआती चित्रपट में तो ठुमरी की परम्परागत बंदिशों का प्रत्यक्ष प्रयोग भी दिखाई देता है। साथ ही इन पर आधारित चित्रपट की ठुमरियों की रचनाएँ भी संगीतकारों ने की। इनके अतिरिक्त चित्रपट के कुछ गीत ऐसे भी हैं जिनकी रचना ठुमरी गायकी के कुछ अंश सम्मिलित करके की गई। इन गीतों को ठुमरी की तर्ज के गीत अथवा ठुमरीनुमा गीत भी कहा जा सकता है।

**चित्रपट संगीत में बंदिशी ठुमरी का प्रयोग एवं प्रभाव :**

चित्रपट में प्रयुक्त ठुमरी की रचनाओं का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि इनमें बोलबाँट अर्थात् बंदिशी ठुमरी और बोल–बनाव की ठुमरी दोनों प्रकार की ठुमरियों का प्रयोग बड़ी सफलतापूर्वक किया गया है। पर बंदिशी ठुमरी चूंकि कथक नृत्य के साथ अधिकतर प्रयोग की जाती रही है। इसलिए भारतीय चित्रपट संगीत में बंदिशी ठुमरी का प्रयोग बहुतायत से किया गया। भारतीय चित्रपट में बंदिशी ठुमरी के प्रयोग व प्रभाव का अध्ययन करने से पूर्व बंदिशी ठुमरी की विशेषताएँ जान लेना अनिवार्य है। शास्त्रकारों एवं संगीतकारों द्वारा इस ठुमरी की जो विशेषताएँ बताई गई हैं उनके अनुसार प्रारम्भिक काल में ठुमरी द्रुत ख्याल के समरूप दिखाई देती थी। द्रुत ख्याल में पेचीदा तानें एवं कला–कार्य के प्रयोग के स्थान पर छोटी–छोटी तानों एवं मुर्कियों द्वारा बंदिश को अलंकृत कर ठुमरी गायन विधा का आविर्भाव हुआ। इसमें कलाकारिता के बजाय बंदिश के शब्दों को अधिक महत्व दिया गया तथा पूरा गीत द्रुत ख्याल के समान तीनताल में गाया गया और इस गीत का प्रयोग विशेषतः कथक नृत्य की संगत के लिए किया जाने लगा। अतः इसे शुरुआत में त्रिताल ठुमरी कहा गया जो ख्याल अंग से गाई जाती थी।[5] बाद में इसी को बोलबांट अथवा बंदिशी ठुमरी की संज्ञा प्रदान कर दी गई। इसका प्रयोग अधिकतर कथक नृत्य के साथ ही किया जाता था। भारतीय चित्रपट में ऐसे गीतों के अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं। इनकी चर्चा आगे की जा रही है।

**चित्रपट में बंदिशी ठुमरी की परम्परागत बंदिशों का प्रयोग :**

बोलबांट की ठुमरी की बात करें तो इसकी परम्परा रही है कि इसमें बंदिश को सर्वाधिक महत्व दिया जाता है। यह अधिकतर सीधे और सरल रूप में ही गाई जाती है क्योंकि इसका गायन नृत्य की संगत के लिए अधिकतर किया जाता है। अतः इसकी बंदिश के शब्दों को स्पष्ट उच्चारण के साथ गाया जाना ही इसकी विशेषता है। आरम्भिक अवस्था में कथक नृत्य के साथ इसका गायन किया जाता था। गायक गीत गाते थे और नर्तक उसी के अनुकूल आंगिक अभिनय के साथ नृत्य करता था। जैसे गायक 'कोयलिया कूक सुनावे' ठुमरी गा रहा है और नर्तक आंगिक अभिनय सहित नाचते हुए कल्पना करता था कि कोयल किसी वृक्ष के ऊपर बैठी हुई है और कूक सुना रही है इत्यादि।[6] भारतीय चित्रपट में बंदिशी ठुमरी की परम्परागत बंदिशों का प्रयोग के उदाहरण देखने को मिलते हैं। चालीस के दशक में सन् 1943 में चित्रपट 'प्रार्थना' में जहाँआरा कज्जन बाई द्वारा 'काहे नेहा लगाए सजनिया', पचास के दशक में सन् 1952 में चित्रपट 'नौबहार' में राजकुमारी दुबे द्वारा गाई गई 'कजरारी मतवारी मदभरी दो अखियां', सन् 1956 में 'परिवार' चित्रपट में लता जी द्वारा 'जा तोसे नहीं बोलूं कन्हैया' इत्यादि गीत बंदिशी ठुमरियों पर ही आधारित प्रतीत होते हैं जिन्हें नृत्य के साथ प्रदर्शित किया गया। इन सब ठुमरियों का प्रयोग नृत्य के साथ किया गया।

'बाजूबन्द खुल–खुल जाय' उस्ताद फैयाज खाँ द्वारा राग भैरवी में रचित एक अत्यन्त प्रसिद्ध बंदिशी ठुमरी है। सन् 1954 में चित्रपट 'बाजूबन्द' में स्वर साम्राज्ञी लता मंगेशकर द्वारा गीत 'बाजूबन्द खुल–खुल जाय', इसी परम्परागत ठुमरी पर आधारित है। लता जी द्वारा गाये गीत 'बाजूबन्द खुल–खुल जाय' बंदिशी ठुमरी समरूप गीत भी अत्यन्त प्रसिद्ध रहा है। इस गीत के आरम्भ में आलाप एवं शेयर तथा गीत के मध्य में दोहों का गायन लता जी द्वारा अत्यन्त खूबसूरती से किया गया है। इसकी रचना भी राग भैरवी में तीनताल में की गई। गीत के साथ अभिनेत्री द्वारा उत्तम नृत्याभिनय भी प्रस्तुत किया गया। गीत के अंत में तबले की लग्गी का क्षणिक प्रयोग और फिर इसका समापन तबले पर तिस्र जाति और चतुस्त्र जाति का टुकड़ा बजाकर किया गया जिस पर अभिनेत्री द्वारा नृत्य भी प्रस्तुत किया गया। इस ठुमरी का प्रयोग विशेषकर मुजरे का दृश्य फिल्माने के लिए किया गया।

इसी ठुमरी की परम्परागत रचना का प्रयोग वर्तमान समय के चित्रपट 'वो तेरा नाम था' (2003) में किया गया। इसका गायन 'पद्मभूषण' पं0 राजन मिश्रा द्वारा परम्परागत रीति से किया गया। इसी ठुमरी के आधार पर चित्रपट 'बनारस' (2006) में भी एक गीत की रचना की गई।

बंदिशी ठुमरियों में नृत्य का प्रयोग इसकी विशेषता है। इस प्रकार की ठुमरियों के गायन में बीच–बीच में बोल–विस्तार तथा कुछ छोटी–छोटी बोलतानें ली जाती हैं। भावपक्ष को इसमें प्राथमिकता दी जाती है और कलात्मकता का प्रदर्शन अधिक नहीं किया जाता। यद्यपि इन ठुमरियों में कभी–कभी कुछ छोटी–छोटी बोलतानों का प्रयोग भी कर लिया जाता है किन्तु गीत के बोलों को भिन्न लय–बांट के अनुसार बरतते हुए बंदिश को द्रुत लय में बढ़ाकर गाना भी इस गायकी की मुख्य विशेषता है।[7] चित्रपट 'रानी रूपमती' (1959) में प्रयुक्त ठुमरी 'बाट चलत नई चुनरी रंग डारी' ऐसी ही परम्परागत बंदिशी ठुमरी के प्रयोग का एक उत्तम उदाहरण कहा जा सकता है। इसका गायन चित्रपट संगीत के उत्कृष्ट पार्श्व गायक मोहम्मद रफी और शास्त्रीय संगीत के गायक श्री कृष्णराव चौकर द्वारा अत्यन्त खूबसूरती से किया गया। छोटी–छोटी तानों, सरगमों एवं मुर्कियों का प्रयोग इस में देखते ही बनता है। बंदिशी ठुमरी की शुद्धता का विशेष ध्यान रखा गया।

साठ के दशक में सन् 1966 में चित्रपट 'ममता' में 'सांवरा रे तोरे नैना लागे' अत्यन्त आकर्षक एवं मधुर बंदिशी ठुमरी का उदाहरण है। 'सांवरा रे तोरे नैना लागे' बंदिशी ठुमरी ही के 'भाव नृत्य' की ठुमरी का भी एक उत्तम उदाहरण कही जा सकता है और इसका गायन संध्या मुखर्जी द्वारा बड़ी खूबसूरती से किया गया है। इसमें इस फिल्म की अभिनेत्री सुचित्रा सेन ने इस ठुमरी के रस और भाव को अपनी भाव–भंगिमाओं द्वारा अत्यन्त खूबसूरती के साथ सफलतापूर्वक चित्रित किया है।

सत्तर के दशक में भी बंदिशी ठुमरियों के बेहतरीन उदाहरण देखने को मिलते हैं जिनमें सन् 1971 में बनी एक अत्यन्त प्रसिद्ध चित्रपट 'पाकीज़ा' में कई ठुमरी–दादरों का सफल प्रयोग किया गया है। 'ठाढे रहियो ओ बांके यार' ठुमरी को लता जी ने अपनी मधुर आवाज़ में गाकर अमर

बना दिया जो आज भी जनसाधारण के हृदय में बसी हुई है। सन् 1977 में चित्रपट 'शतरंज के खिलाड़ी' में बिन्दादीन महाराज द्वारा लिखित बंदिशी ठुमरी 'कान्हा मैं तोसे हारी छोड़ो साड़ी' का प्रयोग किया गया। इस ठुमरी का गायन एवं इस पर नृत्य–निर्देशन कथक के मूर्धन्य कलाकार 'पद्मभूषण' पं0 बिरजू महाराज द्वारा किया गया तथा उनकी जानी–मानी शिष्या शाश्वती सेन ने अपने नृत्य के माध्यम से इस ठुमरी के भावों को खूबसूरती से व्यक्त किया। चित्रपट में इस ठुमरी का प्रस्तुतिकरण ठुमरी के अन्वेषक माने जाने वाले अवध के नवाब वाजिद अली शाह के समक्ष उनके दरबार में नृत्यांगना द्वारा करते हुए दर्शाया गया है। ठुमरी को मध्यलय में अद्धाताल में निबद्ध किया गया है। ठुमरी की शुरुआत पं0 बिरजू महाराज के द्वारा खूबसूरत छोटे आलाप से की जाती है और ठुमरी में मध्य में सितार पर मधुर टुकड़े का प्रयोग किया गया है तथा अन्त में कवित के बोलों के साथ नृत्य का उत्तम प्रदर्शन किया गया है।

1999 में बंगला चित्रपट (स्वप्नोदिए) में राग मिश्र खमाज में रचित खूबसूरत बंदिशी ठुमरी 'कोयलिया कूक सुनावे' का प्रयोग किया गया जिसे पटियाला–कसूर घराना के उत्कृष्ट शास्त्रीय गायक पद्म भूषण पं0 अजय चक्रवर्ती जी ने अपनी मधुर आवाज से सजाया। इस ठुमरी की रचना तीन ताल में की गई तथा साथ ही अभिनेत्री द्वारा कथक नृत्य प्रस्तुत किया गया है। सन् 2004 में चित्रपट 'यात्रा' में आगरा घराना की गायिका शुभ्रा गुहा द्वारा 'डारे जा डारे जा' राग भैरवी की एक प्रचलित परम्परागत बंदिशी ठुमरी का गायन किया गया, जिसे अभिनेत्री रेखा ने नृत्य के साथ प्रस्तुत किया।

सन् 1990 में चित्रपट 'लेकिन' में 'झूठे नैना बोले सांची बतिया' आशा भोंसले जी द्वारा गाई गई बंदिशी ठुमरी का अच्छा उदाहरण कहा जा सकती है। चित्रपट में इसे भी हेमा मालिनी द्वारा राज दरबार में नृत्य सहित प्रस्तुत किया गया है। ठुमरी की शुरुआत अत्यन्त सुन्दर एवं कठिन तान के साथ की गई है। सन् 2001 में चित्रपट 'गदर–एक प्रेमकथा' में 'आन मिलो सजना' ठुमरी की रचना राग मिश्र खमाज में की गई। इस ठुमरी को पं0 अजय चक्रवर्ती और बेगम परवीन सुल्ताना ने गाकर जनसाधारण में ठुमरी गायन के प्रति स्नेह को और बढ़ा दिया। इस ठुमरी की रचना मध्य लय में की गई। बीच में सुन्दर आलाप के द्वारा ठुमरी की सौन्दर्यपूर्ण भावाभिव्यक्ति की गई है। अन्त में लग्गी का सुन्दर प्रयोग भी किया गया है। 21वीं शताब्दी के प्रारम्भ में ही इस ठुमरी ने संगीत रसिकों एवं साधारण जनवर्ग के हृदय में विशेष स्थान प्राप्त कर लिया। इसमें संगीत के लिए परम्परागत वाद्यों के साथ–साथ आधुनिक वाद्यों के प्रयोग ने इसे नवीनता प्रदान की है, जो ठुमरी को जनसाधारण में प्रचलित करने में कारगर भी सिद्ध हुआ है।

### चित्रपट में ठुमरी की तर्ज पर रचित ठुमरीनुमा गीत :

चित्रपट में ठुमरीनुमा गीतों से अभिप्राय ठुमरी की तर्ज अथवा शैली के आधार पर रचित चित्रपट के गीत कहा जा सकता है। दूसरे शब्दों में किसी गीत की धुन में ठुमरी गायकी के कुछ अंश जैसे मुर्की, कण, खट्का इत्यादि सौन्दर्यवर्द्धक क्रियाएँ सम्मिलित कर दें तो ठुमरीनुमा गीत का निर्माण हो जाता है। इसका एक बहुत ही उत्तम उदाहरण हमें चित्रपट कुदरत (1981) से प्राप्त होता है। इस चित्रपट का एक अत्यन्त मधुर, भावपूर्ण एवं सुप्रसिद्ध गीत 'हमें तुमसे प्यार कितना' को पार्श्व गायक किशोर कुमार ने अत्यन्त रूमानी एवं भावपूर्ण आवाज़ में चित्रपट संगीत के ढंग से गाया। इसी गीत की धुन एवं शब्दों को बिना बदले शास्त्रीय संगीत की विख्यात एवं उत्कृष्ट गायिका 'पद्मभूषण' बेगम परवीन सुल्ताना ने ठुमरी के अंश को सम्मिलित करके गाया तो इस गीत का स्वरूप ही बदल गया। गीत से पूर्व परम्परागत ठुमरी के अंदाज़ में छोटे से आलाप ने ही ठुमरी का वातावरण–सा बना दिया फिर उसमें मुर्की, कण, खट्का इत्यादि के समावेश द्वारा परवीन सुल्ताना ने इस गीत के सौन्दर्य को कई गुना निखार दिया। इसमें सारंगी का प्रयोग एवं तबले पर कहरवा ताल का वादन शास्त्रीय ढंग से किया गया है। इसमें अंत में लग्गी का भी सुंदर प्रयोग किया गया है। इस गीत का फिल्मांकन भी नृत्य के साथ परम्परागत ठुमरी की भांति किया गया। इस प्रकार से गीत के बोल और धुन तो समान रहे परंतु गायकी में अंतर आ जाने के कारण चित्रपट का साधारण गीत ठुमरी–शैली में परिवर्तित हो गया। यह गीत इस बात को भी दर्शाता है कि किस प्रकार से चित्रपट गीत में ठुमरी गायन विधा के अंश सम्मिलित कर देने से वह गीत ठुमरी शैली की शक्ल ले लेता है।

परम्परागत बंदिशी ठुमरी के प्रत्यक्ष प्रयोग के अतिरिक्त चित्रपट के ऐसे गीत भी प्राप्त होते हैं जिनकी

रचना बंदिशी ठुमरी के समरूप की गई परन्तु इनमें पाश्चात्य वाद्यों एवं चित्रपट संगीत का रंग भी नज़र आता है। कुछ गीतों के उदाहरण इस प्रकार से हैं–चित्रपट 'बसंत बहार' (1956) में स्वर साम्राज्ञी लता मंगेशकर द्वारा गाया 'जा जा रे जा बालमवा', चित्रपट 'बावर्ची' (1972) में पार्श्व गायिका लक्ष्मी शंकर द्वारा गाया 'काहे कान्हा करत बरजोरी' अत्यन्त मधुर गीत है। 'काहे कान्हा करत बरजोरी' गीत में कवित का सुन्दर प्रयोग भी दिखाई देता है। दोनों गीतों का प्रयोग कथक नृत्य के साथ किया गया है। चित्रपट किनारा (1977) में चित्रपट संगीत और बंदिशी ठुमरी के संगम से रचित गीत के दर्शन मिलते हैं। इसका अत्यन्त सुन्दर व प्रचलित गीत 'मीठे बोल बोले' बंदिशी ठुमरी से प्रभावित प्रतीत होता है। इस गीत को स्वर कोकिला लता मंगेशकर ने गाया तथा इस गीत पर कथक नृत्य की सुन्दर अदाकारी हेमा मालिनी ने की। चित्रपट 'खूबसूरत' (1980) में उत्कृष्ट पार्श्व गायिका आशा भोंसले द्वारा गाया 'पिया बावरी' गीत भी बंदिशी ठुमरी के समान प्रतीत होता है। इसमें कथक के बोल एवं कवित्त का भी सुन्दर प्रयोग किया गया है। आशा भोंसले की लोचशील आवाज़ में मधुर मुर्कियों से सजे गीत के बोलों की प्रस्तुति इसे आकर्षक बनाती है। अभिनेत्री रेखा का सुन्दर नृत्याभिनय इसे और भी सुन्दर और जनप्रिय बनाने में सफल सिद्ध हुआ है। इनके अतिरिक्त वर्तमान समय का अत्यन्त प्रचलित गीत चित्रपट 'देवदास' (2002) से 'काहे छेड़ छेड़ मोहे' भी बंदिशी ठुमरी का एक अत्यन्त सुन्दर उदाहरण है। इस गीत को पार्श्व गायिका कविता कृष्णमूर्ति एवं कथक नृत्य के उत्कृष्ट नर्तक कलाकार 'पद्मभूषण' पं0 बिरजू महाराज ने अपने सुमधुर गायन से सजाया। परम्परागत वाद्यों के साथ–साथ इसमें पाश्चात्य वाद्यों का भी सुन्दर प्रयोग किया गया। इस प्रकार से इसकी रचना वर्तमान समय के संगीत रसिकों की रुचि को ध्यान में रखकर की गई। एकताल में निबद्ध इस खुबसूरत गीत में कवित्त का भी सुन्दर प्रयोग किया गया जिसे सफल अभिनेत्री माधुरी दीक्षित से गवाया गया। इस गीत पर माधुरी दीक्षित एवं समस्त नर्तकियों के समूह का नृत्य व अदाकारी देखते ही बनती है।

**उपसंहार :**

इस प्रकार से भारतीय चित्रपट में बंदिशी ठुमरी का परम्परागत ढंग से प्रयोग अनेक बार हुआ है जिनमें अधिकांश ठुमरियाँ लोकप्रिय भी हुई हैं। चित्रपट संगीत में इन ठुमरियों का बहुमूल्य योगदान रहा है। चित्रपट में जब भी मुजरे का दृश्य होता तो संगीतकारों द्वारा निःसंकोच बंदिशी ठुमरी का प्रयोग किया गया। इस तरह से मुजरा के साथ ठुमरी का स्थान अपने आप बनता गया। अतः इस सुन्दर विधा ने चित्रपट संगीत के प्रारम्भिक युग से ही अपना विशेष स्थान बना लिया और बड़े इतिहास की रचना कर डाली। चित्रपट के इतिहास की लिखित सामग्री तो काफी मात्रा में उपलब्ध है परन्तु प्रारम्भिक दशकों के चित्रपट के रिकार्ड संरक्षित न किये जाने के कारण और कुछ के नष्ट हो जाने के कारण उस समय के चित्रपट में प्रयुक्त ठुमरियों के बारे में कुछ कह पाना कठिन है। परन्तु उपलब्ध जानकारी का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि चित्रपट संगीत के प्रारम्भ से ही ठुमरी गायन विधा का प्रचलन चित्रपट में प्रारम्भ हो गया था जो आज भी चल रहा है। वर्तमान समय में भी जिस–जिस चित्रपट में ठुमरी गायन–विधा का प्रयोग किया गया है चाहे वह बंदिशी हो या बोल–बनाव की ठुमरी उन्हें संगीत रसिकों से अत्यन्त स्नेह प्राप्त हुआ है। यही नहीं, संगीत के भावी कलाकारों को भी ठुमरी गायन के प्रति आकर्षित एवं प्रेरित करने में चित्रपट में इसके प्रयोग ने सराहनीय कार्य किया है।

संदर्भ सूची :

1. काज़मी, स्वामी वाहिद (1998,जनवरी–फरवरी), फिल्म संगीत इतिहास अंक, पृ0–37
2. Anantharaman, Ganesh, Bollywood Melodies, Pg.2
3. Rao, Vidya, (1990, April 28) 'Thumri' As Feminine Voice, Economic and Political Weekly, Vol. 25, Pg. 533, url;http;//www.jstar.org
4. Joshi, Smt. Nirmala, (1957, May) Wajid Ali Shah and Music of his Time, Sangeet Natak Academy, Pg. 37
5. कारवल, श्रीमती लीला, (2015) ठुमरी परिचय पृ0 19
6. सिंह, ठाकुर जयदेव, (1985, April) ठुमरी, दादरा व चैती पर विशेष विचार, Sangeet Research Academy, Vol. 6, Pg. 7
7. शुक्ल, डॉ0 शत्रुघ्न, (1983,) ठुमरी की उत्पत्ति, विकास और शैलियां, पृ0 279–80

# राष्ट्रीय एकता जागृत करने में सांगीतिक विज्ञापनों का योगदान

डॉ. हरप्रीत कौर*

**सारांश**

*आज का युग प्रतिस्पर्धा से भरा हुआ एक व्यावसायिक युग है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति में सबसे आगे निकलने की एक होड़ लगी हुई है। ऐसे में विज्ञापन का अत्याधिक महत्व देखने को मिलता है। आज हम जिधर भी नज़र दौड़ाएँ, उधर ही कोई न कोई विज्ञापन देखने को मिल ही जाता है। विज्ञापन का अस्तित्व अत्यन्त प्राचीन काल से है। यद्यपि अब इसका स्वरूप बहुत ही बदल चुका है। पहले तो गलियों, गाँवों, चौराहों में चीख–चीख कर अपने उत्पाद का विज्ञापन किया जाता था अथवा ढोल, नगाड़ा पीट कर भी अपने उत्पाद की विशेषताएँ अथवा कोई सूचना इत्यादि लोगों तक पहुँचाई जाती थी। इसके अतिरिक्त दीवारों इत्यादि पर भी शिलालेख खुदवाए जाते थे परन्तु आधुनिक समय तो विज्ञापन के लिए क्रांतिकारी साबित हुआ है। आधुनिक विज्ञापन पूर्ण तौर पर चमक–दमक वाले हैं। उत्पाद के बारे में जानकारी प्रदान करने के अतिरिक्त कई नैतिक मूल्यों का भी प्रचार–प्रसार करने में विज्ञापन अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। ऐसा ही एक नैतिक मूल्य है, राष्ट्रीय एकता की भावना। इस प्रकार के कई विज्ञापन निर्मित हुए हैं। जो जनसाधारण में राष्ट्रीय एकता की भावना को जगाने में सक्षम साबित हुए हैं। जिन्हें आज भी अगर सुना या देखा जाय तो देश के प्रति प्रेम में रौंगटे खड़े हो जाते हैं तथा आँखें नम हो जाती हैं। इसी महत्वपूर्ण विषय पर रोशनी डालने का प्रयास इस शोध–पत्र में किया गया है।*

**मुख्य शब्द** : *राष्ट्रीय एकता, विज्ञापन, उपभोक्ता, गीत, देश–प्रेम*

**प्रविधि** : *इस पत्र के लिए द्वितीयक स्रोतों का उपयोग किया गया है ।*

## भूमिका

आज का युग व्यावसायिक युग है। इसलिए इस समय विज्ञापन विशेष महत्व रखते हैं। इसी कारण प्रत्येक कम्पनी अपने उत्पाद की बिक्री बढ़ाने हेतु विज्ञापन पर अधिक से अधिक खर्च करने को तैयार है। कई उत्पादों के लागत और विज्ञापन खर्च के अनुपात को देख कर ये अनुमान लगा सकते हैं कि उत्पाद के विपणन तथा बिक्री में विज्ञापन कितना अहम् स्थान रखता है। विज्ञापन का लक्ष्य किसी उत्पाद की विशेषताएँ तथा अन्य जानकारी लोगों तक पहुँचाना होता है ताकि उपभोक्ता को उत्पाद को खरीदने में सहायता मिल सके परन्तु अब तो विज्ञापन का एकमात्र उद्देश्य किसी उत्पाद की बिक्री बढ़ाने तक ही सीमित रह गया है। परन्तु फिर भी कई विज्ञापन ऐसे हैं, जो हमें नैतिकता से जोड़ने में सक्षम हैं। विशेषतः सरकार की तरफ से ऐसे विज्ञापनों का निर्माण समय–समय पर होता रहता है। ऐसा ही एक नैतिक मूल्य है राष्ट्रीय एकता और अखण्डता का होना, देश के प्रति प्रेम होना। इस दिशा में ऐसे कई विज्ञापन हैं जो हमें देश प्रेम के लिए प्रेरित करते हैं तथा हमारे मन में राष्ट्रीय एकता की भावना को जगाते हैं। इस दिशा में आगे जाने से पूर्व विज्ञापन के अर्थ तथा परिभाषा इत्यादि के बारे में जानना आवश्यक है।

**विज्ञापन की परिभाषा** : विज्ञापन शब्द 'ज्ञापन' शब्द में 'वि' उपसर्ग लगाकर बना है। इसमें 'वि' का अर्थ है, विशेष तथा 'ज्ञापन' का अभिप्राय 'सूचना' से है। इसलिए विज्ञापन शब्द से भाव है– विशिष्ट या विशेष सूचना। विज्ञापन शब्द अंग्रेज़ी के शब्द advertising का हिन्दी अनुवाद है। Advertising शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के 'Advertor' से हुई है, जिसका अर्थ है 'टू टर्न टू' यानि किसी ओर मुड़ना– अर्थात् किसी के प्रति लोगों को मोड़ना या आकर्षित करना।[1] विज्ञापन की अनेक परिभाषाएँ विभिन्न विद्वानों द्वारा विभिन्न किताबों में उपलब्ध हैं।

ब्रिटेनिका कोशकार के अनुसार– विज्ञापन विज्ञापक द्वारा इच्छित भुगतान द्वारा दी गई वह घोषणा है जो किसी वस्तु, अथवा सेवा के विक्रय, प्रोत्साहन, किसी विचार के विकास अथवा कोई अन्य प्रभाव उत्पन्न करने के उद्देश्य से दी गई हो– "A form paid announcement interested

*असस्टिेन्ट प्रोफेसर, संगीत विभाग (गायन), खालसा कॉलेज फॉर विमेन, सिविल लाइन्स, लुधियाना

to promote the sale of a commodity or service to advance an idea or bring about other effect desired by the advertiser."[2] वेबस्टर डिक्शनरी में दी गयी परिभाषा विज्ञापन के सरलतम रूप को प्रकट करती है। उसमें कहा गया है– "Any form of public announcement intended to aid directly or indirectly in the sale of a commodity, in securing employment, etc."[3] भाव विज्ञापन एक सार्वजनिक घोषणा है जो किसी वस्तु को बेचने, नौकरी आदि प्राप्त करने में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सहायक होती है।

''चहकते, चमचमाते, दिलपकड़ विज्ञापनों के बीच एक दबी हुई सूचना ही पत्रकारिता है, जिसमें लोक–सेवा के बहाने व्यवसाय साधना की जाती है।''[4] –डॉ. अर्जुन तिवारी

''टकसाल के अतिरिक्त कोई भी बिना विज्ञापन के मुद्रा उत्पन्न नहीं कर सकता।'' –विन्सटन चर्चिल[5]

अमेरिकन मार्केटिंग एसोसिएशन के अनुसार, ''विज्ञापन का अर्थ, परिचय प्राप्त प्रायोजक द्वारा वस्तु, विचारों या सेवाओं द्वारा व्यक्तिगत प्रस्तुतिकरण या परिवर्तन के ढंग से है, जिसमें भुगतान किया जाता है।''[6]

विज्ञापन विशेषज्ञ शैल्डन के अनुसार, ''विज्ञापन वह व्यावसायिक शक्ति है, जिससे मुद्रित शब्दों द्वारा विक्रय करने, उसकी ख्याति व साख–निर्माण में सहायता मिलती है।''[7] रॉबर्ट जे. लेविस एवं गेरी ए. स्टेनर ने विज्ञापन के कई कदमों की चर्चा की है, ''विज्ञापन लोगों में वस्तु के बारे में जागृति पैदा करते हैं। उन्हें जानकारी एवं ज्ञान देते हैं। उनमें पसन्द को जाग्रत करते हैं तथा लोगों में खरीद के लिए पहल पैदा करके उनकी धारणा को सम्बल प्रदान करते है और अन्त में खरीद और बार–बार खरीद के लिए प्रेरणा का कार्य करते है।[8] फ्रैंक प्रेस्बी के मतानुसार, ''विज्ञापन मुद्रित, लिखित, उच्चारित एवं चित्रित क्रिया–कला है।''[9] विजय कुलश्रेष्ठ के अनुसार, ''विज्ञापन किसी उत्पाद, किसी विचार या सेवा के विक्रय का एक सर्वोत्तम संदेश है, जो कम से कम व्यय में उपभोक्ता तक पहुँचाया जा सकता है। विज्ञापन प्रचार का ऐसा साधन है जो बिना किसी राजनीतिक, धार्मिक या साम्प्रदायिक दबाव के जनता या उपभोक्ता में अपने लिए आवश्यकता का रूझान उत्पन्न करता है तथा अपनी उत्तमता और उपयोगिता की बातें दुहराकर उपभोक्ता की क्रय–सामर्थ्य का विकास करता है।''[10] लीच के मतानुसार– ''उत्पाद वस्तु का सम्बन्ध मात्र उपभोक्ता वस्तु के विज्ञापनों से है जिनका उद्देश्य या तो संस्थान की प्रतिष्ठा वृद्धि होता है या सार्वजनिक सेवा प्रस्तुत करना या आवश्यक सूचना देना होता है।''[11] उपरोक्त सभी परिभाषाओं के सारांश के रूप में हम यह कह सकते हैं कि विज्ञापन का उद्देश्य उपभोक्ता का ध्यान आकर्षित करके उसे उत्पाद या सेवा खरीदने के लिए प्रोत्साहित करना होता है। चाहे उपभोक्ता को उस वस्तु को खरीदने की इच्छा या जरूरत ना भी हो। विज्ञापन के लिए भुगतान दिया जाता है तथा ये व्यवसाय का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण हिस्सा है। ये एक सार्वजनिक घोषणा के रूप में होता है तथा ये एक कला भी है।

**राष्ट्रीय एकता**– हमारा देश विभिन्न भाषाओं, धर्मो तथा संस्कृतियों से सम्पन्न है। यही कारण है कि ये सम्पूर्ण विश्व में अपनी एक स्वतन्त्र पहचान रखता है। भिन्न–भिन्न भाषाएँ तथा संस्कृति होते हुए भी हम सभी एक सूत्र में बंधे हुए हैं। यही राष्ट्रीय एकता है। किसी भी देश के लोग जब एक ही साथ, एक ही सूत्र में, एकता के साथ रहें, उसे ही राष्ट्रीय एकता कहते हैं। संगठन तथा एकता ही सर्वोत्तम शक्ति है। एकता ही है, जिसके बल पर राष्ट्र निर्माण संभव है। एकता ही सबसे बड़ा कारण है, देश की उन्नति तथा प्रगति का, जिससे बड़े से बड़े शत्रु का भी विनाश किया जा सकता है। राष्ट्रीय एकता का मतलब ही होता है, राष्ट्र के सब घटकों में भिन्न–भिन्न विचारों और विभिन्न आस्थाओं के होते हुए भी आपसी, प्रेम, एकता और भाईचारे का बना रहना।[12] राष्ट्रीय एकता में मानसिक, बौद्धिक, वैचारिक और भावात्मक नज़दीकी होना जरूरी है। किसी भी विषय पर राय ना मिलनी अथवा मतभेद होना–ये तो परिवारों में भी होता ही है। पर इस सब के बावजूद भी मिलकर रहना है राष्ट्रीय एकता। राष्ट्रीय एकता का भाव है सभी देशवासी देश प्रेम से भरे हो, चाहे उनका कोई भी धर्म, भाषा अथवा जात हो। इसे अनेकता में एकता कहते हैं। भारत अपनी विविधता में एकता के लिए विश्वभर में विख्यात है।

### राष्ट्रीय एकता जागृत करने में विज्ञापन का योगदान

विज्ञापन एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा एक साथ सार्वजनिक रूप में कोई घोषणा अथवा सूचना, संदेश जन साधारण तक पहुँचाया जा सकता है। विज्ञापन की पहुँच प्रत्येक मनुष्य तक संभव है। आज का युग तो तकनीकी युग है। आज की दुनिया तो बहुत ही छोटी हो

गई है, भूमण्डलीकरण के कारण। आज विज्ञापन प्रसारित करने के कई माध्यम हैं, जैसे टी.वी, रेडियो, इण्टरनेट, होर्डिंग्स, बलॉग, सोशल मीडिया इत्यादि। इसलिए विज्ञापन बहुत ही आसानी से दुनिया के प्रत्येक कोने में पहुँच सकते हैं। विज्ञापन का उपयोग अधिकतर उत्पाद को बेचने के लिए तथा उपभोक्ता को इसे खरीदने के लिए प्रेरित करने के लिए होता है। परन्तु विज्ञापन विशेष सूचना अथवा संदेश लोगों तक पहुँचाने का एक सशक्त माध्यम भी है। किसी भी सरकारी आदेश को लोगों तक पहुँचाने के लिए या किसी सामाजिक विषय से उन्हें अवगत तथा जागृत कराने के लिए भी विज्ञापन का उपयोग होता है, जैसे स्वास्थ्य कल्याण, स्वच्छता–अभियान, साक्षरता, परिवार–कल्याण, इत्यादि विषयों पर भी विज्ञापन निर्मित होते आए हैं तथा ये इस क्षेत्र में कामयाब भी हुए हैं। ऐसा ही एक बहुत महत्वपूर्ण विषय है– राष्ट्रीय एकता। लोगों में राष्ट्र के प्रति प्रेम तथा आपसी भाईचारा व एकता जगाने के लिए भी विज्ञापन ने बहुत ही महत्वपूर्ण योगदान दिया है क्योंकि विज्ञापन से सबका ही सामना होता है। सुबह से लेकर रात तक, घर में, बाहर, प्रत्येक स्थान पर किसी ना किसी रूप में विज्ञापन, हमारे सामने आते ही रहते हैं। इसलिए किसी भी विषय पर लोगों को सचेत कराने में विज्ञापन एक बहुत ही महतवपूर्ण तथा शक्तिशाली माध्यम है। इसलिए समय–समय पर ऐसे विज्ञापन लोगों तक पहुँचाए जाते हैं, जो उन्हें राष्ट्र से जोड़ सकें, आपसी सदभावना तथा देश–प्रेम जगा सकें।

### राष्ट्रीय एकता जागृत करते हुए कुछ विज्ञापन

राष्ट्रीय एकता, अखण्डता तथा राष्ट्र प्रेम जगाने हेतु कई विज्ञापन निर्मित हुए हैं। यहाँ टी.वी. पर प्रसारित विज्ञापनों की बात की जाएगी, क्योंकि टी.वी. दृश्य–श्रव्य संचार माध्यमों में से सबसे सशक्त माध्यम है। टी.वी. पर प्रसारित प्रोग्राम अधिक समय तक लोगों के मस्तिष्क में रहते हैं। ऐसे ही कुछ विज्ञापनों का विवरण दिया जा रहा है–

### मिले सुर मेरा तुम्हारा

ये एक ऐसा विज्ञापन है, जिसने राष्ट्रीय एकता के सूत्र में सब देश वासियों को बांधने का प्रयत्न किया। 'मिले सुर मेरा तुम्हारा' या 'एक सुर' (One Tune), (Languages of India), 26 जनवरी, 1988 को लोक सेवा संचार परिषद द्वारा निर्मित और दूरदर्शन पर प्रसारित हुआ। ये विज्ञापन सभी राष्ट्रवासियों के लिए जागरण गीत साबित हुआ। विविधता में एकता के मूल स्वर को गुंजायमान करने के उद्देश्य से इस विज्ञापन में भारत की विविधमयी प्राकृतिक संपदा, संस्कृति, भाषा, क्षेत्र की आंतरिक एक सूत्रता को दर्शाया गया है।[13] अशोक पत्की द्वारा संगीत से सुसज्जित एवं लुइस बैंक्स द्वारा इसका संगीत संजोया अथवा व्यवस्थित (arranged) किया गया तथा सांगीतिक तरंगों के सागर के समक्ष पं. भीम सेन जोशी जी की गम्भीर आवाज़ ने इसे जो विविधमुखी अतिसुन्दर स्वरूप दिया, वह अविस्मरणीय है। गीत के ये मुख्य शब्द हैं–

मिले सुर मेरा तुम्हारा
तो सुर बने हमारा
सुर की नदियां हर दिशा से
बहकर सागर में मिले
बादलों का रूप लेकर
बरसे हल्के–हल्के
मिले सुर मेरा तुम्हारा

यही (शब्द) भारत की लगभग प्रत्येक भाषा बांगला, तामिल, असमी, गुजराती, मराठी, हिन्दी, पंजाबी, तेलगु, मणिपुरी, कन्नड़, सिंधी, मल्यामलम, उड़िया इत्यादि (जो उस समय भारत के संविधान में मौजूद थीं) में दोहराए गए हैं। इस विज्ञापन फिल्म में भारत की बहुमुखी प्राकृतिक सुन्दरता, नदी, झरने, पहाड़ सागर, फूल, सभी दृष्टिगत होते हैं साथ ही हरे–भरे वन – जीवन भी दिखाया गया है। साथ ही ऐसे दृश्य हैं, जिनमें भारत की रेल–प्रगति तथा उद्योग–उन्नति भी दिखाई गई है। यह विज्ञापन देखते या सुनते प्रत्येक देशवासी की आँख देश प्रेम से नम हो जाती है तथा उसे गौरवमयी होने का आभास करवाती हैं। पंडित जी के साथ ही अन्य कुशल संगीतज्ञों का भी इसमें समृद्धिपूर्ण सृजन में योगदान है, जैसे– लता मंगेशकर, एम. बालमुरलीकृष्णा, कविता कृष्णमूर्ति, शुभांगी, बोस, सुचिता मित्रा इत्यादि। इसमें प्रत्येक वर्ग के लोगों पर दृश्य फिल्माए गए हैं, बड़े–बड़े खेल–व्यक्ति, फिल्मी सितारे, विख्यात संगीतज्ञ और आम लोग। इसके बोल विज्ञापन–क्षेत्र के प्रसिद्ध व्यक्ति पीयूष पाण्डे द्वारा लिखे गए, जो अब ओगिल्वी एण्ड माथर, इण्डिया–विज्ञापन एजेंसी के चेयरमैन हैं। इस परियोजना की कल्पना सुरेश मल्लिक और कैलाश सुरेन्द्रनाथ ने की थी तथा निर्देशन भी कैलाश सुरेन्द्रनाथ द्वारा हुआ। ये विज्ञापन सर्वप्रथम गणतंत्र दिवस (1988) में लाल किले

की प्राचीन (दीवार) से प्रधानमंत्री के भाषण के बाद दूरदर्शन पर प्रसारित किया गया। इस विज्ञापन फिल्म में कई फिल्मी सितारे भी नज़र आए, जैसे अमिताभ बच्चन, जीतेन्द्र, मिथुन चक्रवर्ती, शर्मिला टैगोर, हेमा मालिनी, तनूजा इत्यादि। इसमें एक बहुत विशेष दृश्य है, जिसमे 'तिरंगे' के रंगों में सजे बच्चे दिखाई पड़ते हैं जिनका स्वर राष्ट्र–गान की धुन में परिवर्तित हो जाता है। यह विज्ञापन देश की उन्नति तथा खुशहाली का संदेश सुनाता है जो अब तक भारतीयों के दिलों में गूँज रहा है। इस विज्ञापन को आज भी, इतने वर्षों बाद भी, इन्टरनेट पर खोज कर सुना और देखा जाता है। इसके बीच में एक दृश्य में भीष्म साहनी द्वारा लिखित उपन्यास 'तमस' पर आधारित धारावाहिक के कलाकार भी दिखाई पड़ते हैं। 'तमस' विभाजन की पृष्ठभूमि पर आधारित उपन्यास जो अंततः सांप्रदायिकता और फिरकापर के विरूद्ध आवाज़ उठाता है। ये पूरी टीम पंजाबी में मिल कर गाती है–

सूर दा दरिया बहके सारग में मिले
बदलां दा रूप लै के
बरसन हौले–हौले।

राग भैरवी में निबद्ध इस विज्ञापन के अन्त में 'सारे जहाँ से अच्छा हिंदोस्ता हमारा' संदेश दिखाई पड़ता है, जिसके बाद अंग्रेजी में एक संदेश आता है जिसका भाव है कि हमारी परंपराओं, आदतों, स्वाद और रीति–रिवाजों में अत्यंत विविधता है। देश का हर एक क्षेत्र भिन्न रिवाजों, और परंपराओं को दर्शाता है। भले ही हम अलग–अलग भाषाएँ बोलते है, फिर भी हम सभी भारतीय हैं। विविधता में एकता हमारी संस्कृति की विशेष पहचान रही है।[14] यह विज्ञापन सभी भारतीयों के दिल पर गहरा प्रभाव डालता है।

## फिर मिले सुर मेरा तुम्हारा

इसी उपरोक्त विज्ञापन का नया संस्करण 26 जनवरी, 2010 को जूम टी.वी. पर प्रसारित हुआ।[15] यह पहले विज्ञापन (6 मिनट 9 सैकेण्ड) से अधिक अवधि (16 मिनट 17 सैकेण्ड) का है। कैलाश सुरेन्द्रनाथ ने इसे निर्देशित किया तथा लुइस बैंकस का संगीत – व्यवस्था में योगदान भी रहा। इसमें भी फिल्मी सितारे दिखाई पड़ते है। कुछ पुराने तथा कुछ नए जैसे – आमिर खाँ, शाहरूख खाँ, दीपिका पादुकोण, ऐश्वर्या राय, प्रियंका चोपड़ा इत्यादि। संगीतज्ञों में अल्लाह रक्खा खाँ, शंकर–अहसान–लॉय, सोनू निगम, शिवामणि, शान, कविता कृष्णामूर्ति इत्यादि हैं। आज के समय के आदर्श खेल जगत के सितारे– अभिनव बिंद्रा, विजेन्द्र कुमार, भाईचंग भूटिया, साइना नेहवाल इत्यादि भी इसमें दृष्टिगत होते हैं। यह भी एक बार फिर भारतीयों के मन में राष्ट्रीय एकता का भाव जागृत करने का एक प्रयास था।

## गूँजे बनकर देश राग

15 अगस्त, 1989 की सुबह को दूरदर्शन पर ये विज्ञापन जो देश राग में निबद्ध है, प्रसारित किया गया, जो शास्त्रीय संगीत तथा शास्त्रीय नृत्य से सुसज्जित है। इसमें पं. भीमसेन जोशी जी ने राग देश से भारतीयों को राष्ट्रीय एकता के सूत्र में बांधने का सुन्दर प्रयास किया है। साथ ही इसमें बंकिमचन्द्र चैटर्जी का 'वन्देमातरम' भी प्रयोग किया गया। एक सुन्दर झरने तथा बड़े से पर्वतों के सामने पंडित जी तबले तथा तानपुरे की मधुर आवाज़ में गाते दिखाई पड़ते हैं– लब पे जागे गीत ऐसा, गूंजे बनकर देश राग, साथ ही सुनाई पड़ती है पं. राम नारायण की सारंगी। इसी में पं. रविशंकर की सितार पर भी इसी राग के स्वर गूंजते हैं। पं. हरि प्रसाद चौरसिया की बांसुरी, पं. शिव कुमार शर्मा का संतूर, एम. बालमुरली कृष्ण का वायलिन बजाना तथा तमिल में बजे सरगम गाना सुनाई देता है। उस्ताद अल्लाह रक्खा तथा जाकिर हुसैन के बीच तबले की जुगलबंदी सुनने को मिलती है जिसमें पृष्ठभूमि में तिरंगा दृष्टिगत होता है। साथ ही कथक की विख्यात नर्तकी शोभना नारायण फतेहपुर सीकरी में नृत्य करती हुई दिखाई पड़ती है, जिसके बाद जुहू बीच पर प्रोतिमा बेदी ओडिसी नृत्य करती, फिर मल्लिका साराभाई भरतनाट्म तथा कनक रेले मोहिनीअट्टम तथा स्वप्न सुन्दरी कुचीपुड़ी नृत्य प्रस्तुत करतीं विज्ञापन को अतिसुन्दर दृश्य प्रदान करती हैं। इसमें भी देश की गौरवमई संस्कृति तथा विविधता में एकता का आभास होता है। नारायण के अनुसार, ''ये विज्ञापन भारत के सबसे महत्वपूर्ण स्तंभ– शास्त्रीय कलाएँ, के बारे में भी लोगों को बताता है।''[16] इस विज्ञापन की भी परिकल्पना सुरेश मल्लिक ने की, कैलाश सुरेन्द्रनाथ ने लोकसेवा संचार परिषद के लिए इसे निर्देशित किया। इसे भी पीयूष पाण्डे ने ही लिखा। सरकार द्वारा ''पूर्व–उदार भारत में लोगों का मनोबल बढ़ाने के लिए बनाया गया ये विज्ञापन आज भी लोगों को आकर्षित करता है। इसकी अवधि 13 मिनट से भी ज्यादा थी।

### फ्रीडम रन (Torch Song)

ये विज्ञापन फिल्म जिसे फ्रीडम रन या टॉर्च सान्ग या टॉर्च ऑफ फ्रीडम कहते हैं, 1988 में लोक सेवा संचार परिषद द्वारा निर्मित किया गया। ये विज्ञापन फिल्म सर्वप्रथम 15 अगस्त, आज़ादी दिवस के दिन, दूरदर्शन पर प्रसारित किया गया। ये विज्ञापन कैलाश सुरेन्द्रनाथ द्वारा सूट किया गया तथा आरती सुरेन्द्रनाथ इसकी निर्माता थीं।[17] इस विज्ञापन फिल्म में केवल और केवल वाद्य–संगीत का ही प्रयोग हुआ है। इसकी मधुर तथा प्रसिद्ध धुन लुइस बैंक्स ने दी है। 1988 ओलम्पिक वर्ष होने के कारण वही भावना इसमें देखने को मिलती है। खेल–जगत की प्रसिद्ध हस्तियाँ इसमें दृष्टिगत होती हैं। खेल के प्रति उत्साह को लेकर राष्ट्र–प्रेम जगाने का एक प्रयास है ये विज्ञापन। सुनील गावास्कर, पी.टी. ऊषा, मंसूर अली पटौदी अपनी छोटी बेटी सोहा अली खान के साथ, कपिल देव, मिलखा सिंह, प्रकाश पादुकोण इत्यादि विख्यात हस्तियाँ इस विज्ञापन फिल्म में उपस्थित रहीं। केवल वाद्य–संगीत का ही उपयोग होने के बावजूद भी यह विज्ञापन श्रोताओं के रोंगटे खड़े कर देने में सक्षम हैं। इसे सुनकर आज भी राष्ट्र के प्रति गर्व, प्रेम व सद्भावना जाग उठती है।

### प्यार की गंगा बहे

नरसिम्हा राव पूर्व प्रधानमंत्री के काल में बाबरी मस्जिद से संबंधित दंगों और हिंसा के बाद ये विज्ञापन निर्मित किया गया। ये विज्ञापन प्रसिद्ध फिल्म निर्माता–निर्देशक सुभाष घई द्वारा 1993 में निर्देशित किया गया। इसमें विख्यात हस्तियाँ, प्रसन्नजीत चैटर्जी, चिरंजीवी, गोविंदा, अनिल कपूर, रणवीर कपूर, ऋषि कपूर, सोनम कपूर, आमिर खान, सलमान खान, रजनीकांत, सचिन, नसीरूद्दीन शाह, जैकी शरॉफ, टाइगर श्रॉफ इत्यादि ने अभिनय किया।[18] उस समय देश में राष्ट्रीय एकता जागृत करने की अत्यधिक आवश्यकता थी। इसके गीत को बोल दिए थे आनन्द वक्शी ने, संगीत था लक्ष्मीकांत प्यारेलाल जी का, निर्माता थे– अशोक घई तथा सुभाष घई। इस विज्ञापन को गाया था– मनहर उधास, जौली मुखर्जी, मुहम्मद अज़ीज और उदित नारायण ने। इस के बोल है–

सुन सुन सुन मेरे नन्हें सुन
सुन सुन सुन मेरे मुन्ने सुन
प्यार की गंगा बहे, देश में एका रहे
सुन सुन सुन मेरी नन्ही सुन
सुन सुन सुन मेरी मुन्नी सुन
प्यार की गंगा बहे, देश में एका रहे
खत्म काली रात हो, रौशनी की बात हो
दोस्ती की बात हो, जिन्दगी की बात हो
बात हो इंसान की, बात हिन्दुस्तान की
सारा भारत ये कहे, प्यार की गंगा बहे
प्यार की गंगा बहे, देश में एका रहे
अब ना दुशमनी पले, अब ना कोई घर जले
अब नहीं उजड़े सुहाग, अब नहीं फैले ये आग
अब ना हों बच्चे अनाथ, अब ना हो नफरत की घात,
सारा भारत ये कहे, प्यार की गंगा बहे
प्यार की गंगा बहे, देश में एका रहे
सारे बच्चे बच्चियाँ, सारे बूढ़े और जवां
यानी सब हिन्दुस्तां, एक मंजिल पर चले,
एक साथ फिर चले, एक साथ फिर कहें,
एक साथ फिर कहें, एक साथ फिर कहें, फिर कहें
प्यार की गंगा बहे, देश में एका रहे
प्यार की गंगा बहे, देश में एका रहे
देश में एकता रहे, सारा भारत ये कहे
सारा भारत ये कहे देश में एका रहे।[19]

### भारत निर्माण (Glimples of India Story-Phase-II)

मिनस्ट्री ऑफ इनफॉरमेशन की ओर से राष्ट्रीय एकता की भावना जगाने हेतु एक अन्य विज्ञापन उपलब्ध है जिसके बोल 'विविधता में एकता' पर हैं, जो इस प्रकार है–

हमने वादे किए, इस वतन के लिए
सर उठा के चले, नाज़ इसपे हमें,
.....
सलाम हर सच्चाई को, सलाम हर अच्छाई को,
सलाम हर इस जज़्बे को, मेरा सलाम।''[20]

इस प्रकार के अन्य भी कई और विज्ञापन बने हैं, और बनते रहेंगे, जो हमें अपने देश के प्रति प्रेम और आपसी एकता बनाने में सहायक सिद्ध होते हैं। जैसे कि एक विज्ञापन में राष्ट्रीय गीत के प्रति आदर करने के लिए लोगों को जागृक करने का प्रयास किया गया है। इसमें विदुषी शुभा मुद्गल की आवाज़ में राष्ट्रीय गीत के स्वर गूंजते हैं, जो एक विख्यात गायिका हैं। ऐसा ही एक और विज्ञापन है जो शंकर महादेवन की आवाज़ में निबद्ध है, इसके बोल है– धन धन ये देश धन है, है आग आत्मा में, फौलाद का बदन है, धन धन ये देश धन है .....वन्दे

मातरम। इसे Red elephant factory द्वारा बनाया गया है।[22] यही नहीं, कई उत्पादों के भी विज्ञापन देश–प्रेम जगाने में सक्षम हैं, जैसे बजाज स्कूटर के लिए निर्मित विज्ञापन के बोल इस प्रकार हैं–

''ये जमीं ये आसमाँ
ये जमीं ये आसमाँ
हमारा कल हमारा आज
हमारा कल हमारा आज
बुलंद भारत की बुलंद तस्वीर
हमारा बजाज, हमारा बज़ाज[21]

इस प्रकार के अनेक अन्य उदाहरणात्मक विज्ञापन उपलब्ध हैं, जो भारतवासियों को जोड़ने का कार्य करने में पूर्ण तौर पर सक्षम साबित हुए हैं।

## निष्कर्ष

आज का युग व्यावसायिक युग है। व्यवसाय में विज्ञापन सबसे महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं बल्कि विज्ञापन के बिना तो व्यापार करना या उसमें सफल होना संभव ही नहीं क्योंकि विज्ञापन की पहुँच प्रत्येक व्यक्ति तक तथा दुनिया के प्रत्येक कोने तक है। इसीलिए उत्पाद की जानकारी के अतिरिक्त कोई भी विशेष संदेश अथवा सूचना विज्ञापन के माध्यम से जनसाधारण तक पहुँचाना अत्यन्त सरल एवं लाभप्रद है। इसीलिए नैतिक मूल्यों जैसे राष्ट्रीय एकता जागृत करने में विज्ञापन एक अहम् भूमिका निभाते हैं। दृश्य–श्रव्य माध्यम होने के कारण विज्ञापन जल्द ही सबके दिल–दिमाग में बस जाते हैं। राष्ट्रीय एकता और अखण्डता जैसे नाजुक तथा महत्वपूर्ण विषय पर लोगों को जागृत करना बहुत आवश्यक है। इसके लिए सभी माध्यमों में से विज्ञान बहुत ही सशक्त माध्यम साबित हुआ है।

## संदर्भ सूची :

1. शर्मा, कुमुद, विज्ञापन की दुनिया, प्रतिभा प्रतिष्ठान, नई दिल्ली, 2010, पृ.स. 12
2. वही, पृ. सं. 12
3. सेठी, डॉ. रेखा, विज्ञापन डॉट कॉम, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2017, पृ. सं. 17
4. तिवारी, डॉ. अर्जुन, आधुनिक विज्ञापन कला एवं व्यवहार, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराण्सी, 2010, पृ. स. 1
5. वही, पृ. सं. 10
6. वही, पृ. सं. 12
7. वही, पृ. सं. 13
8. यादव, नरेन्द्र सिंह, विज्ञापन प्रबंध, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, द्वितीय संस्करण, 2013, पृ. सं. 6
9. वही, पृ. सं. 6
10. धवन, मधु, विज्ञापन कला, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2015, पृ. सं. 11
11. वही, पृ. सं. 10
12. hindi.webdunia.com
13. सेठी, डॉ. रेखा, विज्ञापन डॉट कॉम, पृ. सं. 298
14. वही, पृ. सं. 299
15. https://en.m.wikipedia.org
16. https://indianexpress.com
17. 8ate.blogspot.com>2008/027freedomrun
18. https://m.imbd.com
19. www.hindigeetmala.net>song>pyar ke ganga bahe
20. youtube.com
21. वही
22. वही

# नारदकृत 'संगीत मकरन्द'
## (संगीताध्याय : एक अध्ययन)

**डॉ. राहुल स्वर्णकार***

**सारांश**

*नारदकृत 'संगीत मकरंद'– यह प्राचीन ग्रंथ भारतीय संगीत शास्त्र के इतिहास की एक महत्वपूर्ण कड़ी है। यह ग्रंथ इस तथ्य का प्रमाण है कि उक्त युग में संगीत सैद्धांतिक एवं क्रियात्मक दोनों ही रूपों में चर्मोत्कर्ष पर था। यह ग्रंथ 'संगीत रत्नाकर', 'संगीत समयसार' आदि संगीत शिरोमणि शास्त्रों से भी प्राचीन है। 'संगीत मकरंद' के अनेक श्लोक 'संगीत रत्नाकर' जैसे महत्वपूर्ण लक्षण ग्रंथ में उद्धृत किए गये हैं, संगीत रत्नाकर में संगीत मकरंद के श्लोकों का उद्धृत होना इस ग्रंथ के महत्व को प्रतिपादित करता है। यह ग्रंथ 'वृहद्देशी' के पश्चात् का ग्रंथ है। अतः इस ग्रंथ का काल सातवीं एवं नवीं शताब्दी के मध्य का माना जा सकता है। इस ग्रंथ में दो अध्याय–प्रथम संगीताध्याय एवं द्वितीय नृत्याध्याय–हैं। ये दोनों ही अध्याय पुनः चार–चार पादों में विभक्त हैं। इस प्रकार कुल अष्ट पाद इस ग्रंथ में हैं, इन अष्ट पादों में संगीत शास्त्र के लगभग सभी सिद्धांतों का विस्तृत विवेचन नारद के द्वारा किया गया है।*

**मुख्य शब्द** : *संगीत, ग्रन्थ, अध्याय, शास्त्र, सिद्धान्त, श्लोक*

**प्रविधि** : *द्वितीयक माध्यमों द्वारा सामग्री संकलित कर अध्ययन के बाद इस लेख को तैयार किया गया है।*

नारदकृत 'संगीत मकरंद' का संगीताध्याय के प्रथम पाद का प्रारंभ मंगलाचरण से होता है–

''प्रणम्य शिरसा देवं, शंकरं लोकशंकरम्।
संगीतशास्त्रं संगृह्य वक्ष्ये लोकमनोहरम्।।[1]

मंगलाचरण के पश्चात् नारद ने संगीत शास्त्र के प्राणपुरूष नाद का विवेचन किया है। आहत और अनाहत, नाद के दो मुख्य रूप बताये हैं। अनाहत नाद का संबंध योगियों से बताया है–

''योगिनोऽपि महात्मानस्तदानाहतसंज्ञके''[2]

आहत और अनाहत नाद के अतिरिक्त नादोत्पत्ति के पांच स्थानों अर्थात् नखज, वायुज, चर्मज, लौहज व शरीरज का निरूपण एवं वाद्यों के साथ इनके संबंध को प्रदर्शित किया है–

सोऽप्याहतः पंचविधो नादस्तु परिकीर्तितः।
''नखवायुजचर्माणि लोहशारीरजास्तथा''[3]
''नखं वीणादयः प्रोक्ता वंशाद्या वायुपूरकाः।
चर्माणि च मृदङ्गाद्या लोहास्तालादयस्तथा।।[4]

नाद के विवेचन के पश्चात् नारद ने संगीत को परिभाषित किया है–

''गीतं वाद्यं च नृत्यं च त्रयं संगीतमुच्यते।।[5]

संगीत की यह सटीक परिभाषा आज भी बहुचर्चित है। आधुनिक कुछ पुस्तकों में यह परिभाषा 'संगीत रत्नाकर' के नाम से उद्धृत की गई हैं। परन्तु ऐसा नहीं है, आचार्य निःशंक शारंगदेव ने भी संगीत की यह परिभाषा 'संगीत मकरंद' से ही उद्धृत की है। ऐसा भी कदापि नहीं है कि संगीत की यह परिभाषा नारद की ही हो, नारद के पूर्व ग्रंथों में भी यह परिभाषा दृष्टिगोचर हो सकती है किन्तु संगीत की परिभाषा देने के पश्चात् नारद ने सप्त स्वरों के उत्पत्ति स्थान एवं सप्त स्वरों का नामोल्लेख किया है–

''तं नादं सप्तधा कृत्वा तथा षड्जादिभिः स्वरैः।
नाभिहृत्कण्ठतालुषु नासादन्तोष्ठयोः क्रमात्।।
षड्जश्चर्षभगान्धारौ मध्यमः पंचमस्तथा।
धैवतश्च निषादश्च स्वराः सप्त प्रकीर्तिताः।।[6]

कौन पक्षी/पशु किस स्वर में बोलता है, विभिन्न पशु–पक्षियों के स्वरों के संबंध का उल्लेख नारद इस प्रकार करते हैं–

''षड्जं मयूरो वदति चातको ऋषभं तथा।
अजो विरौति गान्धारं, क्रौंचः क्कणति मध्यमम्।।
पुष्पसाधारणे काल पिकः कूजति पंचमम्।
अश्वश्च धैवतं चैव निषादं च गजस्तथा।।[7]

*सहायक प्राध्यापक (तबला), संगीत विभाग, डॉ. हरीसिंह और विश्वविद्यालय, सागर

षड्ज मयूर, ऋषभ–चातक, गांधार–अज (बकरी) क्रौंच–मध्यम, पिक (कोयल)–पंचम, अश्व (घोड़ा)–धैवत, गज (हाथी)–निषाद।

आलाप के दो प्रकार रूपालाप, रागालाप नारद द्वारा उल्लेखित किए गये हैं–

''रूपालप्ती रागालप्तिरिति स द्विविधः स्मृतः।।[8]

संगीताध्याय के प्रथम पाद में आठ श्लोकों (8–24) में नारद ने गीत की प्रशंसा की है। गीत के महत्व को दर्शाते हुए नारद द्वारा विरचित यह श्लोक 'संगीत रत्नाकर' में भी थोड़े–बहुत संशोधन के साथ उद्धृत किए गये हैं। यहां हम कुछ श्लोक उद्धृत कर रहे हैं जो गीत–महत्व से संबद्ध हैं एवं 'संगीत मकरंद' और 'संगीत रत्नाकर' में उद्धृत हैं–

''गीतेन प्रीयते देवः सर्वज्ञः पार्वतीपतिः।
गोपीपतिरनन्तोऽपि वंशध्वनिवशं गतः।।[9]

आशय यह है कि गीत के द्वारा पार्वतीपति शिव प्रसन्न हैं। नारायण अनंत होते हुए भी गोपीपति (कृष्ण) के रूप में वंशी की ध्वनि के वशीभूत हुए। यही श्लोक रत्नाकर में उल्लेखित है।

''सामवेदे रतो ब्रम्हा, वीणासक्ता सरस्वति''।
अन्ये च बहवः पूर्वे यक्षदानवमानवाः।।[10]

अर्थात्– प्रजापति ब्रह्मा सामगान में रत हैं। सरस्वती वीणा वादन में आसक्त हैं। फिर यक्ष, गंधर्व, देव, दानव एवं मानव की बात ही क्या की जाय। नारद एवं आचार्य शारंगदेव ने गीत को पुरूषार्थ का एक साधन कहा है। नारद के अनुसार,

''धर्मार्थकाममोक्षाणामिदमेव हि साधनम्।।[12]

''गीत धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष का एक साधन है'' इसी तथ्य को प्रदर्शित करते हुए आचार्य निःशंक ने कहा है–

''तस्य गीतस्य महाऽत्म्यं कः प्रशंसितुमीशते।
धर्मार्थकाममोक्षाणामिदमेवैकसाधनम्।।[13]

चार प्रकार के वर्णों का उल्लेख नारद ने किया है एवं इन्हें रागोत्पादक बतलाया है–

''स्थायी स्वरेषु संचारी तथारोह्यवरोहकौ।
स्वराश्चतुर्विधा ज्ञेया रागोत्पादनगोचराः।।[14]

इसके अन्यत्र चार प्रकार के स्वर वादी, संवादी, अनुवादी तथा विवादी का उल्लेख नारद के द्वारा किया गया है एवं वादी स्वर को राजा, संवादी को मंत्री, अनुवादी को अनुचर एवं विवादी स्वर को बैरी की उपमा भी सर्वप्रथम नारद ने ही दी है। श्लोक संख्या 28–48 तक नारद ने स्वरों के वंश, वर्ण (जाति) वर्ण, (रंग), द्वीप ऋषि, देवता, छंद गोत्र, राशि, योनि (मानव, देवादि), रस आदि का उल्लेख किया है। यहाँ विस्तार के भय से श्लोक उद्धृत करना अपेक्षित नहीं है।

इसे निम्नलिखित तालिका के माध्यम से सुगमता से समझा जा सकता है–

| स्वर | वंश | जाति (वर्ण) | वर्ण (रंग) | ऋषि | देव | रस |
|---|---|---|---|---|---|---|
| षड्ज | देव | बाह्ण | कमल (लाल) | दक्ष | अग्नि | अद्भुत |
| ऋषभ | ऋषि | क्षत्रिय | पिंजर (हल्का पीला) | अत्री | ब्रह्मा | रौद्र |
| गंधार | देव | वैश्य | स्वर्ण (गहरा पीला) | गौतम/कपिल | सरस्वती | शांत |
| मध्यम | देव | ब्राह्ाण | कुन्द | वशिष्ठ | शंकर | हास्य |
| पंचम | पितृ | शूद्र | सित (आसित) काला | श्रीवत्स/भार्गव | विष्णु | श्रृंगार |
| धैवत | ऋषि | क्षत्रिय | पीत | नारद | गणेश | वीभत्स |
| निषाद | असुर | वैश्य | कुर्वर (चितकबरा) | तुम्बरू | सूर्य | करूण |

नारद ने पंचम स्वर को शूद्र स्वर कहा है, इसके विपरीत आचार्य शारंगदेव एवं आचार्य पार्श्वदेव ने अंतर काकली स्वर को शूद्र स्वर कहा है–

नारद का मत– ''निगौ वैश्यविति प्रोक्तौ, पंचमः शूद्रजातिकः''[15]

आचार्य शारंगदेव का मत– ''शूद्रावन्तरकाकल्यौ स्वरौ, वर्णास्त्विमें क्रमात्।।''[16]

आचार्य पार्श्वदेव का मत–

''वैश्यो द्विश्रुतिकौ ज्ञेयौ शूद्रो चान्तरकस्वरौ।।[17]

नारद ने स्वरों की जन्मभूमि (द्वीप) का उल्लेख किया है– जम्बू, शाक कुश, कौन्च, शाल्मली एवं पुष्कर ये स्वरों के द्वीप हैं। स्वरों एवं छंदो के विनियोग को भी नारद ने प्रदर्शित किया है– अनुष्टुप, गायत्री, त्रिष्टुभ्, पंक्ति, अस्णक् एवं जगती इन छंदो का उल्लेख मकरंद में किया गया है। स्वरों के देवता, ऋषि आदि का उल्लेख करने के पश्चात् नारद ने ग्राम का लक्षण दिया है एवं ग्रामों की संख्या स्पष्ट रूप से तीन कही है–

''ग्रामः स्वरसमूहः स्मान्मूर्च्छना तु स्वराश्रया।
षड्जमध्यमगान्धारग्रामत्रयमुदाहृतम्।।[18]

अर्थात् स्वरों का वह समूह जो मूर्च्छना आदि का आश्रय हो, ग्राम कहलाता है। षड्ज, मध्यम एवं गांधार ये तीन ग्राम कहे गये हैं। भारतीय संगीत के आधार ग्रंथ 'नाट्यशास्त्र' में आचार्य भरत के द्वारा स्पष्ट रूप से ग्रामों की संख्या दो कही गई है। आचार्य ने गांधार ग्राम का नामोल्लेख तक नहीं किया–

''अथ द्वौ ग्रामौ षड्जो मध्यमश्चेति''[19]

संभवतः गांधार ग्राम का वर्णन करने वाले नारद प्रथम संगीताचार्य हैं। नारद ने गांधार ग्राम को स्वर्ग लोक में प्रसिद्ध बतलाया है, एवं गांधार ग्राम का प्रयोग पृथ्वी लोक पर नहीं, होता ऐसा कहा है–

''स्वर्गलोकेऽपि गान्धारः प्रसिद्धो न महीतले''[20]

ग्राम का लक्षण एवं संख्या बताने के पश्चात् मकरंदकार ने तीनों ग्रामों के लक्षण दिए हैं। तत्पश्चात् तीनों ग्रामों के प्रारंभिक स्वर एवं तीनों ग्रामों की सात–सात मूर्च्छनाओं के नाम दिए हैं–

षड्जग्रामिक मूर्च्छनाएँ–

1. उत्तरमंद्रा 2. रजनी 3. उत्तारायता
4. शुद्धषड्जा 5. मत्सरीकृता 6. अश्वकान्ता
7. अभिरूद्गता

मध्यम ग्रामिक मूर्च्छनाएँ–

1. संवीरी (सौवीरी) 2. हरिणाष्वा
3. कलोपनता 4. शुद्ध मध्या
5. मदली (मार्गी) 6. पौरकी (पौखी)
7. हृष्यका

गान्धार ग्रामिक मूर्च्छनाएँ–

1. सरा 2. विशाला 3. सुमुखी
4. चिता 5. चित्रावती 6. शुभा
7. आलापा

ब्रम्हा, विष्णु, एवं शिव इन ग्रामों के देवता कहे गये हैं। ये तीनों ग्राम यथाक्रम हेमन्त, ग्रीष्म एवं वर्षा ऋतु में गाये जाने चाहिए, ऐसा उल्लेख नारद ने किया है।

ग्राम के विस्तारित वर्णन के पश्चात् नारद ने मूर्च्छना का लक्षण दिया है। नारद द्वारा दिया गया मूर्च्छना का यह लक्षण आचार्य शारंगदेव, आचार्य पार्श्वदेवादि आचार्यो ने भी आत्मसात किया है। नारद मूर्च्छना का लक्षण इस प्रकार देते हैं–

''क्रमात्स्वरणां सप्तानामारोहश्चावरोहणम्।
मूर्छनेत्युच्यते ग्रामद्वये ताः सप्त सप्त च।।[21]

अर्थात्– सप्त स्वरों का क्रम से आरोहण व अवरोहण मूर्च्छना है एवं वे दो ग्रामों में सात–सात होती हैं। आचार्य भरत के समान नारद ने भी मूर्च्छनाओं के तीन प्रकार बतलाये हैं एवं मूर्च्छनाओं की कुल संख्या षट्पंचाश (56) कही है–

''चतुर्धा ताः पृथक् शुद्धाः काकलीकलितस्तथा।
सान्तराः सद्वयोपेताः षट्पंचाशशदुदीरिताः।।[22]

मूर्च्छनाओं के भेद/प्रभेदों का उल्लेख करने के पश्चात् नारद ने षड्जादि स्वरों की श्रुतियों का वर्णन किया है। नारद द्वारा प्रतिपादित बाईस श्रुतियों के नाम आचार्य शारंगदेवादि संगीताचार्यो एवं आधुनिक प्रसिद्ध श्रुतिनामों से सर्वथा भिन्न हैं। मकरंद के संगीताध्याय प्रथम पाद के श्लोक संख्या 78–84 में बाइस श्रुतियों का उल्लेख किया गया है जिनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं–

1. सिद्धा 2. प्रभावती 3. कान्ता
4. सुप्रभा 5. शिखा 6. दीप्तिमती
7. उग्रा 8. ल्हादी 9. निर्विरी
10. दिरा 11. सर्पसहा 12. क्षान्ति
13. विभूति 14. मालिनी 15. चपला

16. वाला 17. सर्वरत्ना 18. शान्ता
19. विकलिनी 20. हृदयोन्मलिनी 21. विसारिणी
22. प्रसूना

''चतुश्चतुश्चतुश्चैव षड्जमध्यमपंचमाः।
द्वै द्वै निषादगान्धारौ त्रिस्त्रि ऋषभधैवतो।।[23]

श्रुति एवं स्वरों से संबद्ध यह बहुचर्चित सरल एवं सुगम श्लोक नारद के द्वारा ही प्रतिपादित किया गया है। इसी श्लोक को आगे चलकर पंडित अहोबल ने अपने ग्रंथ 'संगीत पारिजात' में उद्धृत किया एवं आधुनिक काल में आचार्य भातखण्डे ने 'श्रीमल्ललक्ष्यसंगीतम्' नामक ग्रंथ में उद्धृत किया। यह कुधारणा व्याप्त है कि यह श्लोक 'नाट्यशास्त्र' और 'संगीत रत्नाकर' से लिया गया है परन्तु ऐसा नहीं है। श्रुति–संख्या एवं स्वर के संदर्भ में दोनों ही ग्रंथों 'नाट्यशास्त्र' एवं 'सप्ताध्यायी' में भिन्न–भिन्न श्लोक दृष्टिगोचर होते हैं–

''षड्जश्चतुःश्रुतिर्ज्ञेय ऋषभास्त्रिश्रुतिः स्मृतः।
द्विश्रुतिश्चापि गान्धारो महम्मश्च चतुः श्रुतिः।।
चतुश्रुतिः पंचमः स्यागिश्रुतिधैवतस्तथा।
द्विश्रुतिस्तु निषादः स्मात् षड्जग्रामे स्वरान्तरे''।।[24]

नारद ने सभी मूर्च्छनाओं के आरंभिक स्वरों का भी उल्लेख किया है। पूर्ण, अपूर्ण एवं कूट ये तीन प्रकार की तानें नारद ने कही है। आचार्य भरत ने शुद्ध स्वरों के अलावा अंतर गांधार एवं काकली निषाद स्वर कहे हैं परन्तु अंतर गांधार एवं काकली निषाद को आचार्य ने स्वर साधारण कहा है। इन दो साधारण स्वरों के लिए नारद ने सर्वप्रथम विकृत शब्द कहा है–

''या सा प्रकृतिर्विज्ञेया भरते न चर्चिता।
विकृतिश्च निषादादिषड्जान्तस्वरपूरिता।।[25]

यहाँ नारद विचरित 'संगीत मकरंद' का प्रथम पाद समाप्त होता है। इस पाद में कुल 114 श्लोक हैं। संगीताध्याय के द्वितीय पाद में नारद ने मंगलाचरण किया है, यह मंगलाचरण श्लोक 'संगीत रत्नाकर' में भी दृष्टिगोचर होता है–

''चैतन्यं सर्वभूतानां विधृतं जगदात्मना।
नादब्रह्म तदानन्दमद्वितीयमुपास्महे।।[26]

इस पाद का नाम वीणादेहनिरूपण है। इस पाद में कुल 24 श्लोक हैं। नारद ने चंदन की लकड़ी को ब्राह्मण, दारू की लकड़ी को क्षत्रिय कहा है। ब्रह्मा की उपाधि षाडव रागों तथा संपूर्ण रागों की उपाधि विष्णु द्वारा दी गई है।

प्रसन्नादि, प्रसन्नान्त, प्रसन्नाद्यन्त, प्रसन्नमध्य– ये चार अंलकारों के भेद नारद द्वारा उल्लेखित किए गये हैं। गमक का लक्षण भी नारद ने इसी पाद में दिया है, एवं गमकों की संख्या एकोनविंश (19) मानी है। गमकों के नामों का उल्लेख नारद ने नहीं किया।

गमक का लक्षण इस प्रकार दिया है– ''कंपितं कुपितश्चैव विजृम्भितविवर्द्धनौ''[27] इस पाद में नारद ने अपने पूर्वाचार्य हरि, ब्रह्मा, मतंग, कश्यप, विश्वकर्मा हरिश्चंद्र, भरत, चण्डी, शार्दूल, नारद, विश्वावसु आदि का उल्लेख किया है।

मकरंद के तृतीय पाद में नारद ने सर्वप्रथम स्वर का लक्षण (परिभाषा) प्रतिपादित किया, 'संगीत मकरंद' में उद्धृत स्वर का यह लक्षण आचार्य शारंगदेव ने भी आत्मसात किया है।

''श्रुत्यनन्तरभावी यः स्निग्धोऽनुरणनात्मकः
स्वरो रंजयति श्रोतृचित्तं स स्वर उच्यते''।[28]

अर्थात् श्रुति के बाद बिना अंतर के होने वाला जो स्निग्ध अनुरणनरूप (नाद) श्रोता के चित्त को स्वयं रंजित करता है, उसे स्वर कहा जाता है। स्वर का लक्षण प्रतिपादित करने के पश्चात् नारद ने रागों का वर्णन किया है। रागों का क्रमबद्ध एवं व्यवस्थित वर्गीकरण करने वाले नारद प्रथम आचार्य कहे जा सकते हैं। 'नाट्यशास्त्र' में तो रागों का उल्लेख तक नहीं है एवं मतंग मुनिकृत 'वृहद्देशी' में गीतियों के आधार पर रागों का वर्गीकरण किया है। 'संगीत मकरंद' के इस पाद में विभिन्न रीतियों के द्वारा रागों का वर्गीकरण किया गया है, वर्गीकरण के इस क्रम में प्रथम वर्गीकरण का जो सिद्धांत है, वह है समय के आधार पर रागों का वर्गीकरण। इस श्रेणी में मुख्य तीन रूप दृष्टिगोचर होते है 1. सूर्यांश राग 2. माध्याह्न राग 3. चन्द्रांश राग।

सूर्यांश राग– तृतीय पाद के श्लोक संख्या 10–14 तक नारद ने सूर्यांश अर्थात् प्रातः कालीन रागों का उल्लेख किया है। ये राग निम्नलिखित हैं (विस्तार भय के कारण यहाँ श्लोक उद्धृत नहीं किया जा रहा है, रागों के नामोल्लेख इस प्रकार है–

1. गान्धार, देवगांधार, धन्नासी, सैन्धवी, नारायणी, गुर्जर, बंगाल, पटमंजरी, ललित, आन्दोल?, श्री, सौराष्ट्र, जयसाक्षिका, मल्हार, सामवेदी, बसंत, शुद्धभैरव, बेलावली, भूपाल, सोमराग।

''एते रागास्तु गातव्याः प्रातः काले विशेषतः''[29]

2. मध्याह्न राग– श्लोक संख्या 13–14 में नारद द्वारा मध्याह्न अर्थात् दोपहर में गाये जाने वाले रागों का उल्लेख किया गया है– शंकराभरण, पूर्वी, बलहंस, देशी, मनोहरी, सावेरी, दोम्बुली, काम्भोजी, गोपी काम्भोजी, कौशिकी, मधुमाधवी, मुखारी, मंगल कौशिक।

''एते रागविशेषास्तु मध्याह्ने परिकीर्तिता''[30]

3. चन्द्रांश राग– श्लोक संख्या 16–17 में चन्द्रांश रागों अर्थात् रात्रिर्गेय रागों का उल्लेख नारद के द्वारा किया गया है– शुद्धनाट, सालंग नाट, शुद्धवराटिका, गौड, मालवगौड, श्रीराग, रामकृति, रञ्जी छाया, वराटिका, द्रावटिका, देशी, नागवराटिका, कर्णाट।

हिन्दुस्तानी संगीत में आज प्रत्येक राग का एक गायन–समय निर्धारित किया गया है। समय निर्धारण की यह परंपरा प्राचीन है, मकरंद में रागों के समय–निर्धारण का उल्लेख सर्वप्रथम प्राप्त होता है। रागों के समय को लेकर नारद बड़े ही कठोर थे, उन्होंने यह स्पष्ट निर्देश दिया है कि रागों को उनके निर्धारित किए गये समय पर ही गाना चाहिए। साथ ही, नारद ने कहा है कि जो रागों को उनकी काल–विधि के अनुसार गाता है वह सुखी होता है–

''एवं कालविधिं ज्ञात्वा गायेद्यः स सुखी भवेत्।।[31]

इसके विपरीत यह भी नारद ने स्पष्ट रूप से कहा है कि जो रागों के समय के अनुसार नहीं गाता/अथवा सुनता है वह निश्चित रूप से अपनी आयु का विनाश करता है एवं दरिद्रता को प्राप्त होता है–

''रागावेलाप्रगानेन रागाणां हिंसको भेवत्।
यः श्रृणोति स दारिद्री आयुर्नश्यति सर्वदा।।[32]

समय के अनुसार रागों का वर्गीकरण करने के उपरांत नारद ने श्लोक संख्या 35–52 संपूर्ण राग, षाड्वराग एवं औडव रागों का उल्लेख किया है एवं आमुख राग में कौन–सा स्वर वर्जित है, इसके विधान का उल्लेख भी नारद द्वारा किया गया है।

तृतीय राग–वर्गीकरण की प्रक्रिया नारद का लिंग के आधार पर रागों का वर्गीकरण है। इस वर्गीकरण के अंतर्गत पुरूष राग, स्त्री राग, एवं नपुंसक रागों का उल्लेख ग्रंथकार द्वारा किया गया है।

1. पुरूष राग– श्लोक संख्या 35–76 तक नारद ने पुरूष रागों का उल्लेख किया है, ये राग निम्नलिखित है–

बंगाल, सोमराग, श्रीराग, भूपाली, छायागौड, शुद्धहिन्दोल, आन्दोली, दोम्बुली गौड, कर्णाट, पटमंजरी, शुद्धनाट, मालवगौड, रागरंग, छायानाट, सौराष्ट्री बसंत, शुद्धसारंग, भैरवी।

2. स्त्री राग– श्लोक संख्या 57–59 तक नारद ने स्त्री रागों का नामोल्लेख किया है, ये नाम इस प्रकार हैं–

तुण्डी, तुरूष्कतुण्डी, मल्वारी, माहुरी, पौरालिकी, काम्भारी, भल्लाती, सैन्धवी, सालंग, गान्धारी, देवक्री, देशिनी, बेलावली, बहुली, गुण्डक्री, धूर्जरी (गुर्जरी), वराटी, द्रावडी, हंसी, गौडी, नारायणी, अहरी मेघरंजी, मिश्रनाट।

3. नपुंसक राग– श्लोक संख्या 60–61 में नारद ने नपुसंक रागों के नामों का उल्लेख किया है– कैशिकी, ललित, धन्नाशी, कुरंजिका, सौराष्ट्री, द्रावडी, नागवराटिका, कामोद, रामक्री, सावेरी, बलहंस, सामवेदी, शंकराभरण।

पुरूष, स्त्री एवं नपुंसक रागों का संबंध नारद ने विभिन्न रसों से स्थापित किया है–

रौद्र, अद्भुत, वीर– पुरूष राग
श्रृंगार, हास्य, करूण–स्त्री राग
भयानक, वीभत्स, शांत–नपुंसक राग

इस प्रकार, इस पाद में नारद ने तीन रीतियों से रागों का वर्गीकरण किया। इस पाद में नारद ने राग की महिमा का भी बखान मुक्त कंठ से किया है। रागों को गाने से अथवा सुनने से सर्व पापों का विनाश होता है, मानव की आयु में वृद्धि होती है, व्याधि का अंत होता है, भय, शोक आदि का विनाश होता है, धन–धान्य में वृद्धि होती है। इस संदर्भ में नारद द्वारा प्रतिपादित उद्धरण देना समीचीन है–

''आयुर्धर्मयशोबुद्धिधनधान्यफलं लभेत्।
रागाभिवृद्धिसन्तानं पूर्णरागाः प्रगीयते।।
———————————
व्याधिनाशी शत्रुनाशी भयशोकविनाशने
व्याधिदारिद्र्यसन्तापे विषमग्रहमोचने।।[33]

इसके विपरीत जो रागों का गलत रीति से श्रवण करता है अर्थात् जो श्रुतिहीन कुनादयुक्त गायन का अथवा रागों का श्रवण करता है वह अपने आयुष को नष्ट करता है, उस श्रोता के दुखादि में वृद्धि होती है, शोक, संताप, दरिद्रता को प्राप्त होता है एवं वह श्रोता नरक में मार्ग की ओर अग्रसर होता है। ऐसा भी नारद ने स्पष्ट कहा है–

''श्रुतिहीनं च यद्गानं वीणावेण्वादिसम्भवम्।
यः शृणोति स आप्नोति पातकं दुखमेव च।।
अपस्वरं कुनादं च श्रुतिहीनं तथाधिकम्।
यः शृणोति स मूदात्मा पतते नरके चिरम् ।।
शोकसन्तापदारिद्रयमायुः क्षीणं भवेद्भुवम्।
राज्यनाशो मनोदुखं भवत्येव न संशयः।।[34]

हम देखते हैं कि नारद ने रागों को बड़ा महत्व दिया है। मकरंद के इस पाद में कुल 92 श्लोक हैं। पाद के अंत में नारद ने कहा है कि जो शास्त्र के अनुरूप इन रागों का श्रवण करता है वह आयुष को प्राप्त करता है, रोगों से मुक्त रहता है, वांछित फल को प्राप्त करता है एवं ऐश्वर्य को प्राप्त होता है–

''ज्ञात्वा सर्वमिदं शास्त्रं यः शृणोति सदा नृपः।
आयुरारोग्यमैश्वर्य लभते वाछितं फलम्।।[35]

इस प्रकार यह पाद समाप्त होता है।

संगीताध्याय के चतुर्थ पाद में सर्वप्रथम नारद ने मृदंग का लक्षण दिया है। नारद के अनुसार मृदंग के दक्षिण अंग भाग में शिव एवं वाम भाग में पार्वती प्रतिष्ठित हैं। शिव एवं शक्ति के कारण ही मृदंग से नाद उत्पन्न होता है–

''दक्षिणांगे स्थितो रूद्र उमा वामे प्रतिष्ठिता।
शिवशक्तिमयो नादो मर्दले परिकीर्तितः।।[36]

मृदंग के उल्लेख के पश्चात् नारद ने कुछ वीणाओं का नामोल्लेख किया है– कच्छपी, कुब्जिका, चित्रा, बहन्ती, परिवादिनी, जया, घोषावती, ज्येष्ट, नकुली महती, वैष्णवी, ब्राम्ही, रौद्री कूर्मी, रावणी, सारस्वती, किन्नरी, सैरन्ध्री घोषका।

वीणाओं के नामोल्लेख के पश्चात् कुछ वाद्यों का उल्लेख नारद ने किया है। इन वाद्यों में मृदंग, दुर्दर, पणव, झल्लरी, पटह –ये अवनद्ध वाद्य नारद द्वारा कहे गये। शंख, कहला– ये सुषिर वाद्य नारद ने बतलाए हैं। इसके अतिरिक्त हरीतकी, उर्ध्वक, आलिंग्य, ढ़क्का, डमरूगा, डिण्डिमा आदि वाद्यों का उल्लेख नारद ने किया है।

वाद्यों का नामोल्लेख करने के पश्चात् नारद ने पुनः नाद पर विमर्श किया है। नाद के इस विमर्श के अंतर्गत नाद की उत्पत्ति कैसे मानव शरीर में होती है, अर्थात् नाद का उत्पत्ति–क्रम, नाद का शाब्दिक अर्थ, आहत अनाहत से इतर नाद के सूक्ष्मादि अन्य प्रकारों का उल्लेख नारद ने किया है।

नाद की महिमा को दर्शाता हुआ इस ग्रंथ का यह श्लोक अति शोभनीय है, इसलिए यहां उद्धृत करना समीचीन है–

''नादोपासनया देवा ब्रम्हाविष्णुमहेश्वराः।
भवन्त्युपासिता नूनं तस्मादेतत्तादात्मकम्।।[37]

अर्थात् ब्रम्हा, विष्णु एवं महेश ये देवता नादरूप हैं। निःसंदेह नाद की उपासना के द्वारा वे उपासित होते हैं। नाद से संबंधित जितने भी श्लोक इस ग्रंथ में उद्धृत किए गये हैं, चाहे वे श्लोक नाद महिमा से संबंधित हों, नाद के उत्पत्ति क्रम से संबद्ध हों, नाद के प्रकारों से संबद्ध हों, लगभग सभी श्लोक 'संगीत रत्नाकर' एवं अन्य शास्त्र–ग्रंथों में जस–के–तस उद्धृत किए गये हैं। इस संदर्भ में कुछ उद्धरण प्रस्तुत हैं जो 'संगीत रत्नाकर', 'संगीतोपनिषत्सारोद्धार' एवं मकरंद आदि ग्रंथों में एक समान दृष्टिगोचर होते हैं–

''आत्मा विवक्षमाणोऽयं मनः प्रेरयते मनः।
देहस्था बह्निमहती स प्रेरयति मारूतः।।
इति ग्रंथिस्थितः सोऽथ क्रमादूर्ध्वपदे चरेत्।
नाभिहृत्कण्ठमूर्धन्येष्वभिधारयते ध्वनिम्।।
नादोऽतिसूक्ष्मः सूक्ष्मश्च पुष्टोऽपुष्टश्च कृत्रिमः।
इति पंचविधा धत्ते पंचस्थानस्थिताः क्रमात्।
नकारः प्राणमानन्दस्तकारमनलं विदुः।
जातः प्राणाग्निसंयोगात्तेन नादोऽभिधीयते।।[38]

नाद से संबंधित ये उद्धरण 'संगीत रत्नाकर' के प्रथम स्वरगताध्याय के तृतीय प्रकरण में भी दृष्टिगोचर होते हैं। (देखें स.र 1/3/2,3,4,5,6) उपरोक्त उद्धरणों का संक्षिप्त आशय–आत्मा मन को प्रेरित करती है, मन शरीर में स्थित अग्नि पर आघात करता है, वह अग्नि वायु को प्रेरित करती है। ब्रह्मग्रंथि में स्थित वह वायु ऊपर की ओर चलता हुआ क्रम से नाभि, कंठ में स्थित नाद अतिसूक्ष्म, पुष्ट–अपुष्ट तथा कृत्रिम यह पांच नाम धारण करता है।

नादोत्पत्ति के क्रम का उल्लेख करने के पश्चात् नारद ने वाग्गेयकार का लक्षण (परिभाषा) एवं वाग्गेयकार के गुणों का उल्लेख किया है–सर्वप्रथम वाग्गेयकार का लक्षण इस प्रकार दिया–

''वाङ्माधुर्योच्यते ज्ञेयं (गेयं) धातुरित्याभिधीयते।
वाचं गेयं च कुरूते यः स वाग्गेयकारकः।।[39]

अर्थात् वाणी (काव्य, साहित्य) ''मातु'' कहीं जाती है एवं गेय (स्वर–ताल योजना) धातु इस प्रकार कहीं जाती है। जो वाक् एवं गेय को रचता है, वह 'वाग्गेयकार' कहलाता है। श्लोक संख्या 23–31 तक नारद ने वाग्गेयकार के लक्षणों को उद्धृत किया है। यहाँ केवल गुणों का उल्लेख किया जा रहा है, श्लोक मूल ग्रंथ में देखे जा सकते हैं– 1. शब्दानुशासन (व्याकरण शास्त्र का ज्ञाता) 2. विशाल एवं समृद्ध शब्द कोश 3. छंद के भेद–प्रभेदों को जानने वाला 4. विभिन्न अलंकारों (अनुप्रास आदि) के प्रयोग को जानने वाला 5. रस, भाषा का पूर्ण ज्ञान 6. गीत स्थिति को जानने वाला 7. अनेकानेक भाषाओं का ज्ञान रखने वाला 8. कलाओं के शास्त्रों में कुशलता 9. गीत, वाद्य एवं नृत्य में प्रवीणता 10. मनोहर शरीर से संपन्न 11. लय, ताल, कलाविद 12. काकु प्रयोग के विवेक का जानकार 13. विलक्षण प्रतिभा के उदय की पात्रता 14. आकर्षक रीति से गाने वाला 15. देशी रागों का संपूर्ण ज्ञान 16. सभा जीतने में वाकपटुता 17. क्रोध, ईष्या का त्याग 18. सरस 19. नवीन धातु की रचना करने में सामर्थ्य 20. दूसरों के मन का ज्ञान 21. विभिन्न प्रकार के प्रबंधों का ज्ञान एवं नवाचार का सामर्थ्य 22. शीघ्र ही गीत–रचना में समर्थ 23. पदान्तर के निर्माण में कुशलता 24. तीनों स्थानों की गमकों की प्रौढ़ता 25. रागालाप्ति आदि अलापों में निपुणता 26. एकाग्रता– ये छब्बीस गुण नारद ने वाग्गेयकार के निरूपित किए हैं। वाग्गेयकार के गुणों के निरूपण के पश्चात् नारद ने गांधर्व एवं स्वरादि की परिभाषा को उद्घटित किया है–

''मार्गं देश्यं च यो वेत्ति स गन्धर्वोऽभिधीयते।
यो वेत्ति केवलं मार्गं स्वरादिः स निगद्यते।।[40]

अर्थात् जो मार्ग एवं देशी का वेत्ता (जानने वाला) है, वह 'गन्धर्व' कहलाता है जो केवल मार्ग संगीत का वेत्ता है वह स्वरादि कहा जाता है। गांधर्व एवं स्वरादि को स्पष्ट करने के पश्चात् श्लोक संख्या 33–38 में गीत (गायक) के गुण–दोष को नारद द्वारा निरूपित किया गया है– 1. हृदय को आकर्षित करने वाला अर्थात् मधुर कंठ वाला। 2. सुशरीर अच्छे शरीर वाला 3. ग्रह (सम, विषम) को भली–भाँति जानने वाला 4. राग–रागांग–क्रियांग–भाषांग–उपांग का विद 5. प्रबंध गान में निष्णात 6. विभिन्न प्रकार की आलप्ति का जानकार 7. तीनों स्थानों में अप्रयास के गमकों के प्रयोग में पारंगत 8. स्वतंत्र कंठ वाला 9. तालज्ञ (ताल का ज्ञाता) 10. सावधान 11. जितश्रम–अर्थात् श्रम को जीतने वाला 12. शुद्ध, छायालग रागों का ज्ञाता 13. सभी प्रकार के काकुओं का जानकार 14. सभी स्थानों में संचार करने वाला 15. सर्वदोष रहित 16. गान–क्रिया में तत्पर 17. सुस्वर में तत्पर 18. सुख से गाने वाला 19. धारणा शक्ति से युक्त 20. निर्जवन स्थान को स्फूर्त करता हुआ 21. श्रोताओं के चित्तहरण करने वाली मोहिनी उत्पन्न करने वाला 22. राग की अभिव्यक्ति करने में उत्कट 23. गीत के शास्त्र का ज्ञाता 24. सुसम्प्रदायी–अच्छे सम्प्रदाय वाला।

''गुणैः कतिपयैर्हीनो निर्दोषो मध्यमोत्तमः।।[41]

अर्थात् ऊपर कहे गये गुणों में से कुछ गुणों से हीन, दोषरहित मध्यम कोटि का गायक माना गया है।

''महामाहेश्वरेणोक्तः सदोषो गायकाधमः।।[42]

अर्थात् दोषयुक्त गायक को महामाहेश्वर के द्वारा अधम कहा गया है। प्रश्न है कि ये महामाहेश्वर कौन थे ? क्या नारद ने स्वयं को महामाहेश्वर के नाम से संबोधित किया है ? गायक के गुण व दोष 'संगीत रत्नाकर' में भी दृष्टिगोचर होते हैं, ऊपर संबंधित जितने भी श्लोक उद्धृत किए गए हैं, वे समस्त 'संगीत मकरंद' के ही हैं एवं ये श्लोक 'संगीत रत्नाकर' में भी दृष्टिगोचर होते हैं। प्रो. सुभद्रा चौधरी द्वारा संपादित 'संगीत रत्नाकर' में प्रो. चौधरी जी ने (संगीत रत्नाकर द्वितीय खण्ड पृष्ठ क्रमांक 125 पर) महामाहेश्वर आचार्य शारंगदेव को बताया है जबकि 'संगीत मकरंद' का काल सातवीं शताब्दी है। अतः नारद को ही महामाहेश्वर कहना अधिक समाचीन होगा। गायक के गुणों का निरूपण करने के पश्चात् नारद ने गायकों के पांच भेदों का उल्लेख किया है, ये भेद इस प्रकार हैं–

1. शिक्षाकार 2. अनुकार 3. रसिक 4. रंजक 5. भावक

गायक के भेदों को स्पष्ट करने के पश्चात् नारद ने कुछ और भी प्रकार की अन्य वृत्तियाँ भी गायक की कही है। गायकों के ये अन्य भेद किसी और शास्त्र–ग्रंथों में

दृष्टिगोचर नहीं होते–

''व्यक्तं पूर्णं प्रसन्नं च सुकुमारमलङ्कृतम्।
समं सुरक्तं श्चलक्षणं च निकृष्टं मधुरं तथा।।''[43]

1. व्यक्त 2. पूर्ण 3. प्रसन्न 4. सुकुमार 5. अलंकृत 6. समं 7. सुरक्त 8. शलक्षण 9. निकृष्ट् 10. मधुर– ये गायक के अन्य भेद कहे गए हैं। गायक के इन भेदों को नारद ने पारिभाषित भी किया है। चतुर्थपाद के अंत में नारद ने शुद्ध, सालग, संकीर्ण रागों को परिभाषित किया है। इस पाद में कुछ 59 श्लोक हैं। इस प्रकार, 'संगीत मकरंद' के प्रथम अध्याय 'संगीताध्याय' के चारों पाद समाप्त होते हैं।

इस संगीताध्याय में कुल श्लोकों की संख्या 114+44+92+59=289 श्लोक है।

**निष्कर्ष** : यहाँ नारद कृत 'संगीत मकरंद' के 'संगीताध्याय' नामक प्रथम अध्याय का पूर्ण अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। संगीत–शास्त्रों के अध्ययन द्वारा इसके ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य की विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है । यहाँ भी 'संगीत मकरंद' और इसके अनन्तर ग्रन्थों में उद्धृत तथ्यों एवं तत्त्वों को विस्तार से जान पाएँगे ।

**संदर्भ सूची** :

1. नारद, संगीत मकरंद 1/1/1
2. वही, 1/1/6
3. वही, 1/1/7
4. वही, 1/1/8
5. वही, 1/1/9
6. वही, 1/1/11,12
7. वही, 1/1/13,14
8. वही, 1/1/17
9. वही, 1/1/19
10. वही, 1/1/20
11. वही, 1/1/27
12. वही, 1/1/24
13. शरंगदेव, संगीत रत्नाकर 1/1/30
14. नारद, संगीत मकरन्द 1/1/25
15. वही, 1/1/29
16. शारंगदेव, संगीत रत्नाकर 1/3/53
17. पार्श्वदेव, संगीत समयसार 1/48
18. नारद, संगीत मकरंद 1/1/49
19. शास्त्री, बलदेव (सं.), नाट्य शास्त्र, गद्य भाग, चतुर्थखण्ड, अठाइसवा अध्याय, पृष्ठ 14
20. नारद, संगीत मकरंद 1/1/50
21. वही, 1/1/66
22. वही, 1/1/72
23. वही, 1/1/85
24. भरत, नाट्यशास्त्र 28/25,26
25. नारद, संगीत मकरन्द, 1/1/112
26. वही, 1/2/1
27. वही, 1/2/17
28. वही, 1/3/1
29. वही, 1/3/12
30. वही, 1/3/14
31. वही, 1/3/23
32. वही, 1/3/24
33. वही, 1/3/80,82
34. वही, 1/3/89,90,91
35. वही, 1/3/92
36. वही, 1/4/1
37. वही, 1/4/1
38. वही, 1/4/14,15,16,18
39. वही, 1/4/22
40. वही, 1/4/32
41. वही, 1/4/39
42. वही, 1/4/39
43. वही, 1/4/41

# उत्तर प्रदेश के पूर्वी अंचल का लोकसंगीत : एक अवलोकन

**डॉ० रितु सिंह***

**सारांश**

*लोक संगीत 'लोक' तथा 'गीत' इन दो शब्दों के संयोग से बना है जिसका अर्थ है 'लोक के गीत'। सरलता, सहजता, निश्छलता तथा आडम्बरविहीनता 'लोक' के गुण व स्वभाव हैं। ये ही गुण और स्वभाव, आनन्द और सौन्दर्य आदि के स्रोत रहे हैं। ऐसा कोई भी संगीत जिसका उद्‌गम लोक में हो और जो परम्परागत रूप में मिला हो 'लोक संगीत' कहलाता है अर्थात् लोक में प्रचलित, लोक द्वारा रचित एवं लोक के लिये लिखे गए गीतों को 'लोक गीत' कहा जाता है। लोक गीतों को उनमें सन्निहित सहजता, रसमयता, मधुरता आदि गुणों के लिए जाना जाता है। अतः हम कह सकते हैं कि लोक संगीत जन–मानस का प्रतीक है। वह परम्परागत है तथा लोक संगीत वह प्रवाहात्मक अभिव्यक्ति है, जो जनमानस के अन्तः में झरना के समान अविरल गति से निरन्तर प्रवाहित होता रहता है।*

*इस शोध–पत्र को प्रस्तुत करने का मूल प्रयोजन उत्तर प्रदेश के लोक–जीवन की ऐसी अनेकानेक परम्पराएँ जो सामूहिकता, सामाजिकता तथा एकता को रेखांकित करती हैं तथा शास्त्रीय नियमों की विशेष परवाह न किये बिना सामान्य लोक–व्यवहार के उपयोग में लाने के लिये ग्रामीण अपने आनन्द के तरंगों की जो छन्दोबद्ध रचना सहज उद्‌भूत करता है, उन सौन्दर्यपरक रचनाओं की सुन्दर अभिव्यक्ति करना है।*

**मुख्य बिन्दु**– *संस्कार गीत, व्रत गीत, ऋतु गीत, श्रम गीत, जाति गीत, विविध लोकगीत*

**प्रविधि**– *यह शोध–पत्र लोक–व्यवहार में प्रयुक्त तथ्यों तथा द्वितीयक माध्यमों के अध्ययन के आधार पर तैयार किया गया है ।*

एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका में लिखा है– "This Folk music is like a forest tree with its roots deeply buried in the part but which continually puts forth new branches, new leaves, new fruits."

-'V. Williams'

सामान्य लोक जीवन की पार्श्व भूमि में अचिन्त्य रूप से अनायास फूट पड़ने वाले मनोभावों की लयात्मक अभिव्यक्ति लोक संगीत है। दूसरे शब्दों में, मानव हृदय की भावोत्तेजना अपनी देशज क्षेत्रीय बोली में निबद्ध होकर निश्छल, सरल एवं स्वाभाविक भाव के साथ गीतों के बोल बनकर लयात्मक अवरोहावरोह में जब प्रवाहित होती है तो इसे 'लोक संगीत' कहते हैं।

डॉ. चिन्तामणि उपाध्याय ने लोक संगीत के विषय में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा है कि– ''लोक गीत में मानव–हृदय के भाव लोक–जीवन के सामान्य धरातल पर उतर कर आशा–निराशा, आकर्षण–विकर्षण, हर्ष–विमर्श, प्रणय एवं कलह आदि के रूप में व्यक्त हुए हैं।'' लोक गीतों की इस अभिव्यक्ति में हमें मानव–जीवन की उस प्रारम्भिक स्थिति का दर्शन होता है, जहाँ साधारण मनुष्य अपनी लालसा, उमंग, उल्लास, प्रेम एवं घृणा आदि भावों को प्रकट करने में समाज द्वारा मान्य शिष्टाचार में कृत्रिम बंधनों को स्वीकार नहीं करता। स्वच्छन्द भावना और उसकी स्वच्छन्द अभिव्यक्ति लोक संगीत का प्रथम चरण है।

'लोकसंगीत' लोक की वाचिक–परम्परा का एक अंग है। लोक के जीवन में कोई भी अवसर ऐसा नहीं होता जब कोई गीत न गाया जाता हो। चाहे जन्म हो, विवाह हो या कोई मांगलिक अवसर हो, कोई–न–कोई गीत अवश्य गाया जाता है। यहाँ तक कि मृत्यु के अवसर पर भी अवसाद गीत गाये जाते हैं। लोक संगीत का इतिहास एक ऐसा इतिहास है जिसमें मानव का सम्पूर्ण स्वप्रतिबिम्ब होता है।

उत्तर प्रदेश में लोकसंगीत मुख्य रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में अत्यधिक प्रचलित रहा है। निश्चित रूप से यहाँ के लोकसंगीत का दायरा अत्यन्त विस्तृत है। यहाँ प्रत्येक काल में स्थान–स्थान पर लोकसंगीत की धाराएँ प्रवाहित रही हैं। यहाँ के लोकगीतों में सरल, स्पष्ट व आडम्बरहीन रूप से मानवीय भावों की अभिव्यक्ति होती है।

लोकगीतों में वर्णित विषयों के आधार पर उत्तर

*असिस्टेन्ट प्रोफेसर (सितार), कमला आर्य कन्या पी. जी. कालेज, मीरजापुर

प्रदेश के लोकगीतों को निम्नलिखित छः भागों में वर्गीकृत किया गया है– 1. संस्कार–सम्बन्धी गीत 2. ऋतु–सम्बन्धी गीत 3. व्रत–सम्बन्धी गीत 4. जाति–सम्बन्धी गीत 5. श्रम–सम्बन्धी गीत 6. विविध लोकगीत।

संस्कार गीतों में पुत्र–जन्म, मुंडन, अन्नप्राशन, यज्ञोपवीत, विवाह, गवना तथा मृत्यु की चर्चा की जाती है। ऋतु–सम्बन्धी गीतों में कजरी, हिंडोला, होली, चैती तथा बारहमासा का वर्णन मिलता है। होली एक प्रकार का पर्व गीत है तथा चैती चैत्र मास में गाया जाने वाला एक विशेष प्रकार का गीत है। चूंकि इन दोनों ही गीतों का सम्बन्ध बसन्त ऋतु से है, अतः इन्हें ऋतु गीत के अन्तर्गत रखा गया है। व्रत–सम्बन्धी गीतों के अन्तर्गत नागपंचमी, बहुरा, गोधन, पिडिया तथा छठी माता के गीतों की चर्चा की जाती है। जाति गीतों में धोबी गीत, कहार गीत, गौड़ गीत, नाऊ के गीतों का उल्लेख किया जाता है। श्रम गीतों में रोपनी, सोहनी, जैतसार, चरखा तथा कोल्हू गीत को शामिल किया गया है तथा विविध गीतों में झूमर, लाचारी, पूर्वी, निर्गुण, भजन, साँझा, पराती, छाँटो इत्यादि की चर्चा की जाती है। उपर्युक्त गीतों का सोदाहरण वर्णन अग्रांकित है–

### 1. संस्कार–सम्बन्धी गीत

भारतीय परिदृश्य में मानव–जीवन के जन्म से मृत्यु तक की यात्रा में ऐसे कई संस्कारों का विधान है, जो उसके विकास की विभिन्न अवस्थाओं से सम्बन्धित है। भारतीय समाज एवं धर्म–ग्रन्थों में 16 संस्कार माने गए हैं। जीवन की सार्थकता इन विभिन्न संस्कारों के पूरे होने पर ही मानी जाती है। इन संस्कारों के अवसर पर स्त्रियों द्वारा मधुर एवं मर्मस्पर्शी गीतों का गायन किया जाता है। यहाँ कुछ मुख्य संस्कार गीतों का वर्णन द्रष्टव्य है–

**गर्भाधान संस्कार**– गर्भाधान संस्कार गर्भ–धारण के बाद किया जाता है क्योंकि गर्भधारण का कोई समय निश्चित नहीं है। किसी भी माता की रजोनिवृत्ति के बाद गर्भधारण हो सकता है तथा प्रकृति के विधानानुसार गर्भिणी की शारीरिक स्थिति में परिवर्तन होने लगता है। इस अवसर पर गर्भिणी को चौक पर बिठाकर हर्षातिरेक में महिलाएँ कोकिल कण्ठ से गा उठती हैं–

''कवन बने उपजेला कुसुम, कवन बने केसर हो।
ललना कवना बने उपजे गुलाब चुनरिया हम रंगाइब हो।।
बाबा बने उपजेला कुसुम, भईया बने केसर हो।
ललना सईयां बने उपजे गुलाब त चुनरी हम रंगाईब हो।।''

**पुंसवन संस्कार**– जीव जब पिता के द्वारा मातृ–गर्भ में आता है तभी से शारीरिक विकास होना प्रारंभ हो जाता है, बालक का शारीरिक विकास अनुकूलतापूर्वक हो, इसलिए ये संस्कार किया जाता है। यह संस्कार गर्भधारण के तीसरे या चौथे माह में किया जाता है। इस संस्कार पर स्त्रियाँ इस प्रकार गीत गाकर हर्षोल्लास मनाती हैं –

''मोरे पिछुवरिया रे नीलवा के ढोतवा, कि नीले–नीले चमके आकाश।
ओहि नीलवा से रंगबो अपना संईया जी के पगड़िया, इतर मंगइबो गुलाब।।

**जातकर्म संस्कार**– शिशु को गर्भ से बाहर आने में जो शक्ति लगानी पड़ती है, उससे वह शिथिल हो जाता है तो रुदन नहीं करता पर थाली की आवाज सुनकर, चौंक कर वह रुदन करने लगता है। साथ ही, थाली की आवाज सुनकर बाहर बैठे पण्डित गणना करने के लिए सही समय का आंकलन कर लेते हैं। इसके अतिरिक्त नाल काटकर दाई नवजात शिशु को माँ,दादी, बुआ या अन्य परिजन की गोद में डालने से पहले धरती पर लिटा देती है। इसे 'भू लोटनी' भी कहा जाता है–

''भादो रैन भयावन चहुँ दिसि घन गरजे हो,
ललना अष्टमी तिथि शुभरोहिनी नक्षत्र शुभ हो
ललना मंगल सोहर वधु विधि महले नाथ प्रगट भइले हो।''

**नामकरण संस्कार**– यह संस्कार नवजात शिशु के नाम रखने हेतु किया जाता है। इस दिन ब्राह्मण काष्ठ के पाटा पर जातक का नाम, जाति इत्यादि लिख देते हैं। इस संस्कार के अन्तर्गत प्रसूता के नक्षत्र एवं वर्ण के अनुसार बच्चे के नाम का चयन किया जाता है। इस अवसर पर महिलाएँ सामूहिक रूप से गीत गाती हैं–

''आजु के दिनवा सुहावन, शुभ घड़ी आवन हो।
बाबा जल्दी जल्दी पतरा उघारी आ नमवा बिचारी नु हो।।''

**अन्नप्राशन संस्कार**– सोलह संस्कारों में यह भी विशेष संस्कार है, जिसमें नवजात शिशु को प्रथम अन्न खिलाने की क्रिया का विधिवत् शुभारम्भ किया जाता है। मनुस्मृति के 2/34 के अनुसार अन्नप्राशन जन्म के छठवें महीने में किया जाता है। इस अवसर पर स्त्रियाँ मनोहारी गीत गाती हैं–

''आजु मोरे लीपन पोतन और अन्नप्राशन हो,
सासु अरगन नेवतेहु परगन नैहर सासुर नु हो।''

**चूड़ाकरण (मुण्डन) संस्कार**– प्रथम बार सिर के बाल मुँडवाने को चूड़ाकरण, मुंडन या 'छौर–कर्म' कहते हैं।

महिलायें इस अवसर पर इस प्रकार के गीत गाती हैं –

''दादी के जनमल कवन फुआ, फुआ झालर परछेहू हो।
आज हमार मुंडन नेग रउवा मंगहू हो।।
लेबों मैं नाके के बेसर काने के तरिवन हो।
लेबों मैं हाथ के कंगनवा त झालर परिछबी हो।।''

**कर्ण छेदन संस्कार** :– यह जन्म के तीसरे, पाँचवें, सातवें वर्ष में किया जाता है। इसे 'कन छेदन' के नाम से भी सम्बोधित किया जाता है। स्वर्णकार द्वारा सोने या जस्ते की बाली से कर्ण बेध कराया जाता है। इस अवसर पर महिलाओं द्वारा लोकगीत व बधायें गायी जाती हैं–

''सोने बाली से कनवा छिदावे,
त कनछेदने पर नेग लुटावेलु हो।''

**विवाह संस्कार**– षोडश संस्कारों में यह संस्कार सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। यह एक धार्मिक प्रथा है, यह संस्कार सभी जातियों, धर्मों में अत्यन्त उल्लास के साथ मनाये जाने वाला संस्कार है। हिन्दू धर्म में विवाह एक शास्त्रीय प्रथा है। धर्म और नियम के अनुसार स्त्री–पुरूष के पारस्परिक सम्बन्ध दाम्पत्य–सूत्र में आबद्ध होते हैं। विवाह संस्कार हेतु अनेक रस्मों के लोकगीत होते हैं, जो दो मुख्य धारा में होते हैं–

1. वर पक्ष के विवाह संस्कार गीत
2. कन्या पक्ष के विवाह संस्कार गीत

वर पक्ष के तिलक के गीत :–

''ओर झारि जिजिमवा बिछाव हो दशरथ बाबा,
आवतारे तिलकहरू सभे लोग।''

कन्या पक्ष में गुरहत्थी, सिन्दूर दान के गीत –

''बेरिया के बेरी तोहके बरझि ए जनक बाबा
झांझर मंडवा जनि छाव हो।''

विवाह सम्बन्धित विभिन्न विधियों के समय गाये जाने वाले कन्या के गीतों के भेद 22 हैं और वर–पक्ष के गीतों के 16 प्रकार हैं। जहाँ वर पक्ष के गीतों में उत्साह दिखता है वहीं कन्या पक्ष के गीतों में उत्साह के साथ ही कन्या के विदा हो जाने के कारण विषाद व करूण रस की छाया भी दिखायी पड़ती है। विदाई के समय पिता की विवशता के वर्णन का एक उदाहरण–

''ओरि तर ओरि रे तर बइठे वर रे नेतिया
दिनवा हरेलु हो बेटी, भुखिया रे पियसिया
रतिया हरेलु आँखि निनिया नु हो।''

**अन्त्येष्टि संस्कार**– जन्म से प्रारम्भ हुए संस्कारों की यात्रा का अन्तिम पड़ाव अन्त्येष्टि संस्कार है। व्यक्ति की मृत्यु के उपरान्त उसकी आत्मा के मोक्ष के लिए तथा आत्मा के परमात्मा में मिल जाने हेतु इस संस्कार को किया जाता है–

''पिया पिया रटत पियर भईल देहिया न सखी।
पिया मतलबवा के यार, पिरितिया लगाई के भागल रे सखी।।''

ये गीत बड़े ही मार्मिक एवं हृदयस्पर्शी होते हैं।

### 2. ऋतु–सम्बन्धी गीत

ऋतु गीत के अन्तर्गत मौसम के अनुरूप गीत गाने का प्रचलन रहा है। उत्तर प्रदेश में वर्ष का समापन फागुन तथा नये वर्ष का प्रारम्भ चैत्र मास से होता है। इस मौसम में गाए जाने वाले गीतों में फगुआ, चैती, कजरी प्रमुख हैं।

**फगुआ (होली) गीत**– फागुन मास में सामूहिक रूप से गाये जाने वाले गीत को फगुआ कहते हैं। बसन्त पंचमी से होली तक फगुआ गाया जाता है। ये श्रृंगार रस से सम्बन्धित होते हैं। इन गीतों में प्रायः कृष्ण और राधा के होली खेलने का वर्णन रहता है।

''अंग–अंग भंग रंग बिराजै आजै कुसुम चुनरिया
सूर श्याम फागुन की होरी रोके किसन डगरिया।''

**चैती**– चैत्र महीने में राम नवमी होने के कारण अनेक स्थानों पर भगवान राम का वर्णन चैती गीतों में मिलता है।

''अमवा महुइया मधुर रस टपके
मंजरि झुकि–झुकि भावै हो रामा
चैत के ई रतिया।''

**कजरी**– सावन के महीने में गायी जाने वाली कजरी पूर्वी प्रसिद्ध उत्तर प्रदेश और भोजपुरी बोली से जुड़े हुए क्षेत्र की लोकगायन है। सावन के महीने में झूला डालकर कृष्ण–गोपियों की प्रेम–क्रीड़ाओं का वर्णन इन गीतों के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है।

''कइसे खेलन जइबू, सावन मा कजरिया।
बदरिया घेर आई ननदी।।''

### 3. व्रत–सम्बन्धी गीत

व्रत गीतों को धार्मिक या आध्यात्मिक लोकगीत भी कहते हैं। इसके अन्तर्गत देवी माँ के गीत, छठ गीत, बहन

द्वारा भाई के लिए रखे गए व्रत के गीत इत्यादि आते हैं। जैसे–

छठ गीत– ''काँच ही बाँस के बहँगिया,
बहँगी लचकत जाए।''

गोधन गीत– ''लेले अइह ए भईया सिरूका चिउरवा,
भुखल बानी ए भईया पिड़िया बरतिया।''

### 4. जाति–सम्बन्धी गीत

जाति गीतों में अहिर गीत, कहार गीत, धोबिया गीत, पचरा गीत, कजरी गीत, भील गीत इत्यादि सम्मिलित होते हैं, जिनमें से कुछ गीतों का उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है–

धोबी गीत– ''मोटे–मोटे लिटिया पकइहे रे धोबिनिया,
जायेके बा बड़ी दूर।''

अहिर गीत– ''पिया–पिया कहत पियर भइल देहिया,
लोगवा कहेला पिंड रोग।''

### 5. श्रम–सम्बन्धी गीत

'श्रम' का अर्थ ही है मेहनत करना अर्थात् जब ग्रामीण परिश्रम से कार्य करते हैं तो श्रम गीत गाते हैं। इसके अन्तर्गत ये गीत आते हैं –

**रोपनी गीत**– किसान खेत में धान की रोपनी करते समय इस प्रकार के गीत गाते हैं–

''लौटल किसनवा में जान हो भईया,
रोपना अब तू हूँ धान हो भईया।''

**कटनी गीत**– इस प्रकार के गीतों में फसल की कटाई का वर्णन मिलता है–

''पाकी गइले खेतवा जरन लागे रेतवा।
झुमकी बाजे ना, धानी खेत–खेत चूड़ियाँ।।''
होते भिनुसार धनी लिहली हुसँअवा,
चली भईली ना, खेत काटे हो सहेलिया।''

**जतसारी गीत**– ग्रामीण महिलाएँ हाथ चक्की (जाँत या जाँता) चलाते समय जिन गीतों को गाती हैं उन्हें जतसारी कहा जाता है। यह बिलम्बित लय में गाया जाता है–

''एक त मैं बारी मोरी, दूसरे पिया के चोरी
आरे सजनी रे अरि सजनी रे
तीसरे बिरहिया जे रसवा के मातल रे की।''

### 6. विविध लोकगीत

अन्य सभी लोकगीतों के प्रकार को इस वर्ग के अन्तर्गत रखा जाता है, जैसे–झूमर, लाचारी, पूर्वी, बारहमासा, निर्गुण, सांझा, पराती, बारहमासा, चौमासा, फगुई, घाटो, कृषि गीत इत्यादि। विविध लोकगीत के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं–

**पूर्वी**– 'पूर्वी' शब्द पूरबी शब्द का अपभ्रंश है। पूरबी से तात्पर्य पूरब क्षेत्र की गायकी से है। अधिकांश लोगों द्वारा मान्य है कि बलिया, छपरा, सिवान, गोपालगंज, बक्सर आदि भोजपुरी क्षेत्रों में भोजपुरी लोक गीतों की यह विशिष्ट शैली गायी जाती है। यह प्रदेश भारतवर्ष के पूरब में स्थित है जिनकी वजह से इस विशिष्ट गीत के प्रकार को पूर्वी कहा जाता है। इस गीत में विरह भाव की प्रधानता होती है। 20वीं सदी के सर्वोच्च पूर्वी रचनाकार जलालपुर, (छपरा) के पण्डित महेन्द्र मिश्र द्वारा रचित एक पूर्वी इस प्रकार है–

''मधु बनवा से मोर मोहन अइहें कि दुना।
सावली सूरतिया फेरू देखइहें कि दुना।
हमरा अंगना में बंसिया बजइहें कि दुना।''

**निर्गुण**– लोकगीत का यह काफी प्राचीन प्रकार है। भोजपुरी के अलावा अन्य भाषाओं में भी निर्गुण गाये जाते हैं। यह भजन का ही एक प्रकार है जिसमें एक ओर तो निर्गुण ब्रह्म की उपासना होती है। वहीं दूसरी ओर मृत्यु के अकाट्य सत्य का वर्णन मिलता है। कबीर द्वारा रचित निर्गुण इस प्रकार है–

''कवनो ठगवा नगरिया लूटल हो
चंदन खाट के बनल खटोलना,
तापर दुल्हिन सूतल हो।
चार जने मिल खाट उठायें
चहुँ दिशी धू–धू उठल हो।।''

**झूमर**– झूमर शब्द से ही स्पष्ट है कि खुशी से झूम जाना, गा उठना, नृत्य करना आदि। यह एक प्राचीन परम्परागत शैली है। इसे झूमर, झूम्मरि, झुमरि, झूमरा, झूमड़ा आदि एक ही अर्थ के कई नामों से जाना जाता है। प्रत्येक आनन्द के उत्सव में इसे गाया जाता है। भोजपुरी क्षेत्र में झूमर नाम से प्रचलित यह शैली अत्यन्त मोहक है। प्रायः सभी मांगलिक अवसरों पर झूमर गाया जाता है।

झूमर का साहित्य नारी–प्रधान है। महिलाएँ समूह में झूम–झूमकर नृत्य करती हुई गाती हैं। विभिन्न टेकों की पुनरावृत्ति से एक विशेष सौन्दर्यानुभूति होती है, जो अद्‌भुत है। छोटे–छोटे लालित्यपूर्ण बोलों का मोह सौजन्य गीत को सरसता प्रदान करता है।

''बगिया में फूले रामा बेली हो चमेलिया,
कोइलिया बनवा बोले हो सांवरिया।।
आमवा की डारी में रेशम डोरिया,
झूला झुलावे मोरा संग के सहेलिया,
पपीहरा रट लावे सांझ सवेरिया।।''

**सांझा**– संध्याकाल में गाये जाने की वजह से इसे सांझा कहा जाता है।

''सांझा सनसाई गइलें, बेदिया बिसर गइलें
बन में के चंदवा भइलें, बास लहू सुगवा नू हे।।''

**पराती**– जिस प्रकार संध्याकाल में सांझा गाया जाता है, उसी प्रकार प्रातः काल में पराती गाया जाता है। प्रातः शब्द ही विकृत होकर पराती बना है।

''ओरियानी ओरियानी कउवा बोले, केहू नहीं जागेला हे,
एक त जागेले घरवइया बाबू, उनका घरवा जग होला हे।।''

**बारहमासा**– लोकगीत के इस प्रकार में बारहों महीनों का वर्णन होने के कारण इसे बारहमासा कहा जाता है। भोजपुरी में शेक्सपियर कहे जाने वाले भिखारी ठाकुर द्वारा रचित एक बारहमासा इस प्रकार है–

''आवेला आषाढ़ मास लागेला अधिक आस
बरवा में बपया घरे रहिते बटोहिया।
पिया अइतन बुनिया में, राख लेती दुनिया में
अधिक सतावेला सवनवा बटोहिया।।''

**निष्कर्ष**– उपरोक्त लोक गीतों का गम्भीरता से अध्ययन करने के उपरान्त निष्कर्ष के रुप में निःसन्देह यह कहा जा सकता है कि भोजपुरी लोकगीतों का साम्राज्य अपरिमेय है। इसकी धुनें एवं प्रस्तुतियाँ सहज ही हृदय को भावमय सागर में डूबो देती हैं। इसमें अपनी माटी के गंध के साथ ही साथ आत्मीयता के प्रति अटूट विश्वास भी झलकता है। यह वह प्रवाहात्मक अभिव्यक्ति है जो जनमानस के आन्तरिक मन में झरने के समान अविरल गति से निरन्तर प्रवाहित होती रहती है।

**सन्दर्भ सूची :**

1. सिंह, डॉ. वन्दना, 'ब्रज की संगीत परम्परा', राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1996, पृ. 57
2. फात्मा, डॉ. निशान्त, घोषी लोकगीत : समाज, संस्कृति और साहित्य, कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, 2002, पृ. 23
3. संगीत कला विहार, मासिक पत्रिका, अक्टूबर 1999, पृ. 310
4. तिवारी, श्री हंस कुमार एवं श्री राधा वल्लभ शर्मा, भोजपुरी संस्कार गीत, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, 2011, पृ. 2
5. त्रिपाठी, डॉ. रंजना, पूर्वी उत्तर प्रदेश के लोक गीतों में संगीत शास्त्रीयता, सचिव हिन्दुस्तानी एकेडमी, 2009, पृ0 71, 94, 104
6. कुमार, डॉ. सुरेन्द्र, कलसामृत, पुस्तक भारती, टोरन्टो, कनाडा, 2022, पृ. 270, 271

# भारतीय सांस्कृतिक चेतना में लोकनृत्य और उसके संरक्षण–संवर्द्धन हेतु जन संचार

**डॉ. बाला लखेन्द्र***

सार

*मानव सभ्यता के विकास की लम्बी गाथा को याद करते हुए हम पाते हैं कि मानव अपने जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की तलाश में वनों, गुफाओं, कन्दराओं के बीच यायावरी करते हुए पहले समूह और फिर समुदाय में रहने लगा। फल–फूल, कंद– मूल आदि का सेवन करते हुए पत्थरों के औजारों से पशुओं का आखेट करनेवाले मानव अचानक आग की खोज कर लेता है। वर्षों से अंधकार में डूबी अपनी रातों को अग्नि प्रज्ज्वलित कर प्रकाशमान कर लेता है। अपनी आवश्यक आवश्यकताओं की पूर्ति के बाद अपने अन्वेषी स्वाभाव के कारण प्रकृति के रहस्यों को सुलझाने की चाह में नदियों की बहती धाराओं से, चिड़ियों के कलरव से, ऋतुओं के बदलते चक्र से अचानक पीले अमलतास, सुर्ख लाल पलाश, मनमोहक लाल फूलों से ढके सेमल, श्वेत धवल कचनार और रिमझिम वर्षा की बूंदों के बीच नाचते मयूरों को देखते हुए शायद उसके अंतरतम में भी संगीत और नृत्य की कोपलें स्वतःप्रस्फुटित हुई होगी। संभवतः हमारे पूर्वज खुशियों के पल को महसूसने और उसके भावातिरेक को आत्मसात कर लेने के बीच अचानक गाने लगे हों और उसी क्षण नृत्य ने अपना आकार ग्रहण किया हो। नृत्य और संगीत मानव संस्कृति को विशिष्टता के शिखर पर आसीन करते हैं जहाँ लोक–नृत्य, सांस्कृतिक मान्यताओं, धार्मिक परम्पराओं और सामाजिक विविधताओं के परिचायक हैं वहीं यह हमारे उमंग, हमारी खुशियों को अभिव्यक्त करने का एक बेहतरीन माध्यम भी है।*

**सूचक शब्द** : *संस्कृति, लोक नृत्य, संरक्षक, संवर्द्धन, जनसंचार*

**प्रविधि** : *इस शोध आलेख को तैयार करने के लिए द्वितीयक माध्यमों द्वारा सामग्री संकलित कर तथ्यों को प्रस्तुत किया गया है ।*

लोक–नृत्य तीज, त्योहारों, संस्कारों व धार्मिक अनुष्ठानों में नवीन चेतना, उत्साह, उमंग व प्रसन्नता को उत्पन्न करने में सहायक होते हैं। यह राज्य, स्थान, जाति, धर्म, प्रदेश तथा संस्कारों के आधार पर भिन्न–भिन्न होते हैं, और संबन्धित प्रदेश की परंपरा व संस्कारों को उद्घाटित करते हैं। मधुर संगीत, घुंघुरुओं की झंकार, वाद्ययंत्रों की सरगम के साथ कदमताल का संयोजन किसको अपनी ओर आकर्षित नहीं करता। यही कारण है कि ये भारतीयों की संस्कृति की पहचान, दिल की धड़कन, मन का सुकून, भावना–प्रदर्शन का माध्यम, उल्लास बिखेरने का साधन तथा अभिव्यक्ति का उद्घाटन हैं।

लोक–नृत्य विभिन्न शुभ अवसरों पर, हर्षोल्लास, उमंग तथा तनाव से मुक्ति प्रदान करते हैं। संगीतमय रंगारंग नृत्य की प्रस्तुति सभी का मन मोहने में सक्षम प्रतीत होते है। जिस प्रकार भारत की विभिन्न मान्यताएँ, परंपराएँ, भाषाएँ और सभ्यताएँ मिलकर भारत के अस्तित्व को उजागर करती हैं, उसी प्रकर नृत्य भारतीय सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित करते हैं। संगीत के सुरों तथा वाद्य–यंत्रों की ध्वनि से सुसज्जित लोक–नृत्यकला समय के साथ हजारों, लाखों वर्षों में परिमार्जित होता हुआ वर्तमान स्वरुप में हमारे सामने है। भारत में लोक–नृत्य भिन्न–भिन्न राज्यों में वहाँ की संस्कृति तथा सभ्यता के आधार पर प्रतिस्थापित है। विभिन्न राज्यों की संस्कृतियों के द्वारा ही भारत की संस्कृति का निर्माण होता है। इस दृष्टि से लोक–नृत्य भारत की संस्कृति को प्रदर्शित करते हैं। अब नृत्य व भारत के लोकनृत्य के अर्थ को समझना आवश्यक है। शरीर के अंगों की मुद्राएँ, चेहरे के हाव–भाव, कदमों की नियंत्रित गति तथा संगीत के संयोजन के साथ भावों की अभिव्यक्ति के प्रदर्शन को नृत्य कहते हैं। नृत्यकला चौसठ कलाओं में एक महत्वपूर्ण कला है। इस में संगीत का भी विशेष महत्व होता है। संगीत के अभाव में नृत्य का प्रदर्शन अधूरा व नीरस–सा प्रतीत होता है। संगीत और नृत्य मन की भावनाओं को प्रकट करने का श्रेष्ठ माध्यम होता है। लोकनृत्य जिसे फोक डांस, सामाजिक नृत्य, स्वाभाविक

*वरिष्ठ सहायक आचार्य, पत्रकारिता एवं जनसम्प्रेषण विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

नृत्य, जनजातीय नृत्य तथा प्राकृतिक नृत्य की संज्ञा दी जाती है। यह विभिन्न राज्यों के स्थानीय लोगों द्वारा प्रदर्शित किए जाते हैं। लोकनृत्य में किसी विशेष शास्त्रीय नियम व अनुशासन की आवश्यकता नहीं होती है।

ये मानव–मन को आनंदित कर जीवन में उमंग की लहर भर देते हैं। लोकनृत्य पारंपरिक तरीके से विभिन्न शुभ अवसरों, धार्मिक अनुष्ठानों व सांस्कृतिक उत्सवों में सम्पन्न किए जाते हैं। इस प्रकार मनोरंजन के क्षेत्र में लोकनृत्य का अत्यधिक महत्व है। मानव–जीवन विभिन्न कलाओं से सम्पन्न एवं सुसज्जित होता है। कलाएँ मानव मन की भावनाओं व कौशल को उजागर करती हैं। जिस देश में जितनी अधिक कलाओं का प्रचलन होता है। वह देश उतना ही अधिक समृद्धशाली माना जाता है। इस दृष्टि से भारत देश सर्वाधिक धनी व समृद्धि–सम्पन्न देश है। भारत देश की विभिन्न कलाओं चित्र कला, मूर्तिकला, हस्तकला, संगीत कला, अभिनय कला के समान ही लोकनृत्य भी अत्यंत प्राचीन एवं गौरवपूर्ण है। लोकनृत्य का इतिहास बहुत प्राचीन है। अतः प्राचीनता व समृद्धि संपन्नता के आधार पर भी इसका विशेष महत्व है। ये अन्य देशों की अपेक्षा भारत देश को अधिक विशिष्ट बनाते हैं, क्योंकि सरलतापूर्वक, मोहक स्वरूप में अपने भावों, संस्कृति, सभ्यता और परम्पराओं को प्रदर्शित करने की अद्‌भुत कला अन्यत्र दुर्लभ है। सहज, सरस, सजीव, संगीतमय, भावुक तथा प्रभावशाली प्रस्तुति के फलस्वरूप लोक–नृत्य का महत्त्व अधिक बढ़ गया है। ये भारतवासियों में आनंद, उल्लास, उमंग, हर्ष और प्रसन्नता को जागृत करने के साथ–साथ समाज में नवीन चेतना व ऊर्जा का संचार भी करते हैं। लोकनृत्य जन संस्कृति व परम्पराओं को प्रदर्शित करने का मनोहारी माध्यम हैं। धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक उत्सवों, ऋतुओं के अनुसार तथा फसलों के मौसम में लोकनृत्य का प्रदर्शन किया जाता है। यह हमारी सामाजिक परंपरा व मान्यताओं को जीवंत रखते हैं। लोकनृत्य सौहार्द्र, आपसी मेल–जोल, एकता भाव व प्रेम को प्रसारित कर सामाजिक सम्बन्धों को प्रगाढ़ता प्रदान करने में भी विशेष रूप से सहायक हैं।

भारत में नृत्यकला की परंपरा अनादि काल से चली आ रही है। लोकनृत्य का महत्व शब्दों में प्रकट करना संभव ही नहीं है। हम इसे परिभाषित अवश्य कर सकते हैं, किन्तु उन भावों को समझना, आनंद लेना और मुग्ध हो जाना तो बस लोकनृत्य के प्रदर्शन से ही संभव है। जैसा कि हम जानते हैं कि प्रत्येक राज्य के लोकनृत्य भिन्न–भिन्न होते हैं। लोकनृत्य देश की संस्कृति और सभ्यता का अनमोल अंग हैं। सभी राज्यों की पृथक्–पृथक् संस्कृति को यह प्रकट करते हुए देश में अपनी अलग पहचान स्थापित करते हैं। भारत अनेक राज्यों का समग्र स्वरूप है। नृत्य इतिहास को भी जीवित रखता है। नृत्य ऐसे तरीके हैं जिनसे एक समुदाय एक विशेष घटना या महत्वपूर्ण तारीख को समय पर मनाता है।

सभी राज्य मिलकर भारत की संस्कृति को निर्मित करते हैं और लोकनृत्य उन्हीं संस्कृतियों को विश्व में उजागर करने में सहायक सिद्ध होते हैं। भारतीय राज्यों के लोक नृत्य अपनी संस्कृति को प्रकट करते हैं, जब उन्हें विभिन्न अवसरों पर प्रदर्शित किया जाता है। उनके कई लोक नृत्य–रूपों के साथ कई राज्य हैं। प्रत्येक का अपना महत्व है जिसके माध्यम से संबंधित राज्य की छवि को देखा जा सकता है। भारतीय राज्यों के लोक नृत्य जन–संस्कृति का अभिन्न हिस्सा हैं। सभी पारंपरिक नृत्य लंबे समय से आस्था की पवित्र अभिव्यक्ति रहे हैं। भारतीय लोक और आदिवासी नृत्य सरल हैं, और उनका आनंद लेने के लिए उनका प्रदर्शन किया जाता है। नृत्य दैनिक जीवन और धार्मिक अनुष्ठानों का एक हिस्सा है। भारतीय लोकनृत्यों के शाश्वत रूप और लय हैं।

### संबंधित राज्य और उनके लोकनृत्य

लोकनृत्य देश की संस्कृति और सभ्यता का अनमोल अंग हैं। सभी राज्यों की पृथक्–पृथक् संस्कृति को प्रकट करते हुए देश में अपनी अलग पहचान स्थापित करते हैं। भारत अनेक राज्यों का समग्र स्वरूप है। सभी राज्य मिलकर भारत की संस्कृति को निर्मित करते हैं और लोकनृत्य उन्हीं संस्कृतियों को विश्व में उजागर करने में सहायक सिद्ध होते हैं। भारत के विविध राज्यों की अपनी सांस्कृतिक विरासत है, उसकी अपनी भौगोलिक सीमाएँ हैं, उनके अपने पर्व, व्रत और कथाएँ हैं। उसी के बीच उनके अपने रीति–रिवाज और लोक–नृत्य हैं। विभिन्न राज्यों के लोक–नृत्य का एक अवलोकन यहाँ प्रस्तुत है–

**आंध्रप्रदेश** की राजधानी हैदराबाद/अमरावती है। यहाँ की मुख्य भाषा तेलुगू और उर्दू है। आंध्रप्रदेश के प्रसिद्ध लोक–नृत्यों में वीरा नाट्यम, बुट्टाबोम्मलू, भामकल्पम, दप्पू, तपेतागुल्लू, लम्बाडी, धीमसा, कोलट्टम प्रमुख हैं।

**अरुणाचल प्रदेश** पूर्वोत्तर भारत का एक बहुत ही खूबसूरत प्रदेश है। इसकी राजधानी ईटानगर है। यहाँ विविध जनजातियाँ निवास करती हैं जिनकी वेश–भूषा अलग–अलग है और वे अपने वेश–भूषा के आधार पर अपनी पहचान बनाते हैं। यहाँ की प्रमुख भाषाएँ हैं– मिजी, अपोटानजी, मर्डुकपेन, टैगिन, होनपा, बैंगिनी–निशि आदि,। अरुणाचल प्रदेश के प्रमुख लोकनृत्य में बुईया, छालो, वांचो, पासीकोंग की, पोनुंग, पोपीर, बारडो छाम आदि शामिल हैं।

**असम**, उत्तर पूर्वी भारत का एक महत्त्वपूर्ण राज्य है। असम की राजधानी दिसपुर और राजभाषा असमिया है। बिहू, नटपूजा, महारास, नागानृत्य, झूमूरा बीछुआ, कालिगोपाल, बागुरुम्बा, खेलगोपाल, कानोई, होबजानाई आदि असम के प्रमुख लोकनृत्य हैं। इनमें विशेष रूप से बिहू नृत्य का महत्व असम राज्य में है। बिहू अधिकाशतः ग्रामीण क्षेत्रों में फसल की कटाई के समय किया जाता है। इस लोकनृत्य में साधारण पोशाक धोती, कुर्ता, गमछा ही पहना जाता है। बिहू नृत्य को उत्सवों की शान माना जाता है।

**बिहार** भारत के प्रमुख राज्यों में से एक है, इसकी राजधानी पटना है। यहाँ की प्रमुख भाषा हिन्दी है। यहाँ संस्कृत, मैथिली, भोजपुरी, मगही, बज्जिका आदि भाषाएँ अत्यंत समृद्ध हैं। बिहार में जट–जटिन, पवरिया, बिदेसिया, कजरी, झिझिआ, झूमर, सामा–चकेवा, नौटंकी आदि लोकनृत्य प्रमुख हैं।

**छत्तीसगढ़**, मध्यप्रदेश से अलग होकर एक बेहद सुंदर राज्य है जो प्राकृतिक सम्पदाओं से समृद्ध राज्य है, इसकी राजधानी नया रायपुर है। यहाँ की प्रमुख भाषा हिन्दी है। छत्तीसगढ़ के लोकनृत्यों में गौरमारिया, पैंथी, राउतनाच, पंडवाणी, वेडामती, कपालिक, भारथरी चरित्र, चंदनानी आदि प्रमुख लोकनृत्य हैं।

**गोवा** भारत का एक अत्यंत छोटा प्रदेश है। समुद्री किनारे की खूबसूरती के लिए दुनिया भर के लोगों के लिए आकर्षण का केंद्र है। लोग यहाँ अपनी छुट्टियाँ मनाने के लिए बड़ी संख्या में आते है। यहाँ की राजधानी पणजी है। यहाँ मराठी और कोंकणी प्रमुख रूपसे बोली जाती है। गोवा के प्रमुख लोकनृत्यों में देक्खनी, फुग्दी, शिग्मो, घोडे, जगोर, गोंफ, टोन्यामेल आदि शामिल हैं।

**गुजरात**, भारत के पश्चिम दिशा में स्थित एक समृद्धशाली राज्य है जिसकी राजधानी गांधीनगर और राजभाषा गुजराती है। गुजरात के प्रमुख लोकनृत्य गरबा, डांडिया रास, टिप्पनी, जुरुन, भवई भी लोकनृत्य की श्रेणी में आते हैं। इन सभी लोकनृत्यों में गरबा गुजरात का सर्वाधिक लोकप्रिय नृत्य है। यह धार्मिक नृत्य माना जाता है। गरबा लोकनृत्य नवरात्रि के नौ दिनों में विशेष रूपसे आयोजित किया जाता है। यह एक समूह नृत्य है।

**जम्मू और कश्मीर** भारत का सिरमौर है जिसकी प्राकृतिक छटाएँ अत्यंत मनोरम है। इसकी राजधानी जम्मू है। यहाँ लोग प्रमुख रूप से उर्दू बोलते हैं। यहाँ बड़ी संख्या में लोग हिंदी भी बोलते हैं। जम्मू और कश्मीर के प्रमुख लोकनृत्यों में रऊफ, हीकत, मंदजात, कूदडांडी आदि शामिल है।

**हरियाणा**, उत्तर भारत का एक समृद्ध राज्य है। सांस्कृतिक रूप से यह अत्यंत ऊर्जावान है। इसकी राजधानी चंडीगढ़ है। यहाँ की भाषा हिन्दी है। यहाँ लोग हरियाणवी बोलते हैं। हरियाणा के प्रमुख लोकनृत्यों में झूमर, फाग, डाफ, धमाल, लूर, गुग्गा, खोर, जागोर आदि प्रमुख है।

**हिमांचल प्रदेश**, पश्चिम हिमांचल में बसा एक अत्यंत खूबसूरत राज्य है। यहाँ की राजधानी शिमला तथा मुख्य भाषा हिन्दी और पहाड़ी है। यह प्रदेश जितना प्राकृतिक सुषमा से सुशोभित है, उतना ही लोकनृत्य से सुसज्जित और मनमोहक है। यहाँ के लोकनृत्य में छपेली, दाँगी, थाली, झोरा, झाली, धामन, नटीझोरा, छारही, महासू, नटी, डांगी आदि हिमांचल प्रदेश के प्रमुख हैं। यहाँ थाली नृत्य का विशेष प्रचलन है। इस नृत्य में शारीरिक संतुलन आकर्षण का प्रमुख केंद्र होता है। नर्तक सिर पर गागर व कलश रखकर प्रदर्शन करते हैं। ये उत्सवों, पर्वों व धार्मिक कृत्यों में आयोजित किया जाता है।

**मिजोरम**, पूर्वोत्तर भारत का एक प्राकृतिक रूप से समृद्ध राज्य है। यहाँ की राजधानी आइजोल है। यहाँ की भाषा प्रमुख रूप से मिजो और अंग्रेजी है। मिजोरम के लोकनृत्यों में छेरव नृत्य, खुल्लम, चौलम, च्वांगलाईज्वान, जंगतालम, सरलामकई। सोलाकिया, तलंगलम आदि प्रमुख है।

**झारखंड**, प्राकृतिक संसाधनों से समृद्ध एक प्रमुख राज्य है जिसे बिहार–विभाजन के उपरांत गठित किया गया था। यहाँ की राजधानी राँची है। यहाँ प्रमुख रूप से हिन्दी बोली जाती है। झारखंड के प्रमुख लोकनृत्यों में झूमर, जनानी झूमर, मर्दाना झूमर, पैका, फगुआ, मुंदारीनृत्य, सरहुल, बाराओ, झीटका, डांगा, डोमकच, घोरा नाच आदि शामिल है।

**कर्नाटक**, दक्षिण भारत का एक महत्वपूर्ण राज्य है। यहाँ की राजधानी बैंगलोर है। यहाँ की प्रमुख भाषा कन्नड़ है। कर्नाटक के प्रमुख लोक–नृत्यों में यक्षगान, हुट्टारी, सुग्गी, कुनीथा, करगा, लाम्बी आदि शामिल है।

**केरल**, दक्षिण भारत का प्राकृतिक रूप से अत्यंत खूबसूरत राज्य है। यहाँ की राजधानी तिरुवंतपुरम है। यहाँ की प्रमुख भाषा मलयालम है। केरल के प्रमुख लोकनृत्यों में मोहिनीअट्टम, कूरावारकली आदि है।

**मध्यप्रदेश**, इस राज्य की सीमा पाँच राज्यों से मिलकर बनी है। इसकी राजधानी भोपाल तथा राजभाषा हिन्दी, सिंधी व बुन्देली हैं। मध्यप्रदेश के लोकनृत्यों में जवारा, मटकी, अडा, खाड़ानाच, फूलपति, ग्रिदानृत्य, सालेलार्की, सेलाभडोनी, मंच, पंडवानी, गणगौर आदि प्रमुख नृत्य हैं। पंडवानी एकल लोकनृत्य है तथा गणगौर नवरात्रि के चैत्र मास में प्रदर्शित किया जानेवाला लोकनृत्य है।

**महाराष्ट्र**, भारत के प्रमुख राज्यों में से एक है। सांस्कृतिक रूप से यह अत्यंत समृद्ध है। मुंबई यहाँ की राजधानी है। प्रमुख रूप से यहाँ की भाषा मराठी है। महाराष्ट्र के लोकनृत्यों में लावणी, डिंडी, काला, दहीकला, दसावतार आदि प्रमुख है।

**मणिपुर**, पूर्वोत्तर भारत का एक सांस्कृतिक समृद्ध राज्य है। यहाँ की राजधानी इंफाल है। मणिपुरी यहाँ की प्रमुख भाषा है। मणिपुर में डोल चोलम, थांग टा, लाई हाराओबा, पुंग चोलोम, खांबा थाईबी, नूपा नृत्य, रासलीला आदि प्रमुख लोक नृत्य प्रचलित हैं।

**मेघालय**, मेघों का आलय, अर्थात् मेघों का घर। अत्यंत ही मनोरम, प्राकृतिक छटाओं से आच्छादित राज्य है मेघालय। सर्वाधिक वर्षा वाला क्षेत्र चेरापूँजी लोगों के आकर्षण का केंद्र रहा है। यहाँ की राजधानी शिलांग है। यहाँ की प्रमुख भाषा खासी, जयंतिया और गारो है। मेघालय के प्रमुख लोकनृत्य हैं शाद सुक मिनसेइम, शाद नॉन्गरेम, लाहो आदि।

**नगालैंड** पूर्वोत्तर भारत एक राज्य है। कोहिमा इसकी राजधानी है। यहाँ की प्रमुख भाषाएँ ओ, कोन्याक, अंगामी, सेमा और लोथा हैं। नगालैंड के प्रमुख लोकनृत्य हैं रेंगमा, बांस नृत्य चंगी नृत्य, आलूयट्टू आदि।

**ओडिशा**, भारत का एक प्रमुख राज्य है। भुवनेश्वर इसकी राजधानी है। यहाँ की भाषा ओरिया है। ओडीशा के प्रमुख लोक नृत्यों में गोतिपुआ, छाउ, घुमूरा, रानाप्पा, संबलपुरी नृत्य आदि प्रमुख हैं। ऐसा माना जाता है कि ओडिसी नृत्य का प्रारंभ मंदिरों में नृत्य करने वाली देवदासियों के नृत्य के द्वारा हुआ। ओडिसी नृत्य में मुख्यतः भगवान् कृष्ण और विष्णु के अवतार की कथाएँ बताई जाती है एवं भगवान जगन्नाथ का वर्णन भी किया जाता है। ओडिसी नृत्य के भी कई पुरातात्विक प्रमाण पाए जाते हैं। यह बहुत ही प्राचीन कला है। ओडिसी नृत्य में हस्त मुद्राएँ बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है।

**पंजाब**, उत्तर–पश्चिम भारत का एक प्रमुख एवं सर्वाधिक समृद्धिशाली राज्य है। इसकी राजधानी चंडीगढ़ है। पंजाब की आधिकारिक भाषा पंजाबी है। भांगड़ा, गिद्दा, दफ्फ, धामल, दंकारा आदि पंजाब के प्रमुख लोकनृत्य हैं। भांगड़ा पुरुषों के द्वारा किया जाता है और गिद्दा महिलाओं द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। ये दोनों ही लोकनृत्य सांस्कृतिक अवसरों पर आयोजित किए जाते हैं।

**राजस्थान**, भारत के ऐतिहासिक धरोहरों को संरक्षित कर उसे संजोनेवाला एक प्रमुख राज्य है। यहाँ की राजधानी जयपुर है। राजस्थानी और हिंदी यहाँ की प्रमुख भाषा हैं। राजस्थान अपने प्रमुख लोकनृत्यों के कारण दुनिया भर में जाना जाता है जिनमें घूमर, गणगौर, झूलन, लीला, कालबेलिया, छारी आदि प्रमुख है।

**लक्ष्यद्वीप**, भारत का सबसे छोटा संघ राज्य क्षेत्र लक्ष्यद्वीप एक द्वीप समूह है। यहाँ की राजधानी कवरत्ती है। यहाँ की प्रमुख भाषा मलयालम है। यहाँ माही भाषा भी बोली जाती है। लक्ष्यद्वीप के लोक नृत्यों में लावा, कोलकाली, परीचाकली आदि प्रमुख हैं।

**सिक्किम**, पूर्वोत्तर भारत का एक राज्य है जिसकी राजधानी गंगटोक है। यहाँ की भाषा भूटिया, हिंदी, नेपाली, लेप्चा, लिम्बु आदि है। सिक्किम के प्रमुख लोकनृत्य हैं सिंघी छाम और याक छाम, तमांगसेलो, मारूनी नाच आदि।

**तमिलनाडु**, दक्षिण भारत का एक सांस्कृतिक रूप से अत्यंत समृद्ध राज्य है। यहाँ की राजधानी चेन्नई है। तमिल यहाँ की प्रमुख भाषा है। तमिलनाडु के प्रमुख लोकनृत्य हैं कुमी, कोलट्टम, कवाडी अट्टम आदि।

**त्रिपुरा**, पूर्वोत्तर भारत का एक राज्य है। यहाँ की राजधानी अगरतला है। यहाँ की भाषा बंगाली है। त्रिपुरा के लोकनृत्यों में त्रिपुरी, मणिपुरी, काकबोरक त्रिपुरा होजागिरी,

गारिया, झूम आदि प्रमुख लोकनृत्य हैं।

**तेलंगाना**, दक्षिण भारत का एक राज्य है जिसका निर्माण आंध्रप्रदेश के विभाजन के उपरांत हुआ है। हैदराबाद इसकी राजधानी है। यहाँ की भाषा तेलुगू है । तेलंगाना के लोकनृत्यों में पेरीनी शिवतंदवम या पेरीनी थांडवम प्रमुख हैं।

**उत्तर प्रदेश**, यह राज्य भारत के उत्तर भू– भाग में अवस्थित है, इसलिए इसे उत्तर प्रदेश के नाम से जाना जाता है। उत्तर प्रदेश की राजधानी लखनऊ है और राजभाषा हिंदी तथा उर्दू है। यहाँ के लोकनृत्यों में नौटंकी, रासलीला, कजरी, चाप्पेली प्रमुख नृत्य है। नौटंकी नृत्य प्रमुख और अत्यंत लोकप्रिय नृत्य है। इसमें गीत, वाद्य, नृत्य, अभिनय, दोहा आदि का समन्वय होता है।

**उत्तराखण्ड**, यह राज्य पहले जिसे उत्तरांचल नाम से जाना जाता था और उत्तर प्रदेश का एक अंग था। अब उत्तराखण्ड के नाम से अभिहित है। यहाँ की राजधानी देहरादून है। यहाँ की भाषा हिंदी है। उत्तराखण्ड जिसे देवभूमि भी कहा जाता है। इस राज्य के अनेक लोकनृत्य हैं जिनमें झोड़ानृत्य, छौलिया, हारूल, बुड़ियात, चौफला, कजरी भोटिया नृत्य, चमफुली और जागर आदि प्रमुख हैं। छौलिया उत्तराखण्ड का सबसे प्रसिद्ध लोकनृत्य है, जो विवाह के अवसरों पर युद्ध की वेश–भूषा में आयोजित किया जाता है।

**पश्चिम बंगाल**, भारत के पूर्व भाग में स्थित है। इसकी राजधानी कोलकाता तथा राजभाषा बांग्ला है। जात्रा, ढाली, छाऊ, लाठी, गंभीरा, जतरा, बाउल, संथाली डांस यहाँ के प्रमुख लोकनृत्य हैं। जात्रा अत्यधिक प्राचीन परंपरा का लोकनृत्य है। यह नृत्य नाटिका के रूप में प्रसिद्ध है। छाऊ नृत्य गीत–संगीत से परिपूर्ण होता है जो धार्मिक व सांस्कृतिक अवसरों पर आयोजित किया जाता है।

## लोक नृत्य के संवर्द्धन में जन संचार माध्यम

भारत भू–भाग सदियों से अपने लोक गीत, लोक संगीत और लोक नृत्य के लिए एक समृद्ध, सशक्त और जागरूक राष्ट्र रहा है। लोक के बीच से उत्पन्न हुआ गीत, संगीत और नृत्य ही आज लोक संगीत और लोक नृत्य के रूप में हमारे समक्ष विद्यमान हैं। लोक अर्थात् जनसामान्य। अभिप्राय यह कि इन गीत, संगीत और नृत्यों का कोई आविष्कारक नहीं है, कोई लेखक नहीं है, कोई निश्चित कवि नहीं है। कोई निश्चित आदि लोक नर्तक और लोक गायक नहीं है। यह लोक में उत्पन्न हुआ, सहज और सरल गीत है, संगीत है और नृत्य है। विज्ञान के बढ़ते कदम और तमाम वैज्ञानिक अनुसंधानों के बीच जनसंचार के विविध उपस्करों की खोज होती रही और समय–समय पर इनमें नवाचार भी होते रहे। जन संचार माध्यमों के आगमन से निश्चित रूप से लोकनृत्य में बदलाव दिख रहा है लेकिन इन जनसंचार माध्यमों ने इन लोकनृत्यों को संरक्षित भी किया है और संवर्द्धित भी किया है। लोकनृत्य सामान्यतः एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को प्राप्त होता है जिसे हम देखकर और उस कार्यक्रम में भाग लेकर सीखते हैं। जनसंचार माध्यमों के आगमन से उन लोकनृत्यों को सहज रूप से संरक्षित करने का मौका मिला है। इस क्षेत्र में आकाशवाणी और दूरदर्शन का महत्वपूर्ण योगदान है। दूरदर्शन के कार्यक्रमों के माध्यम से हमने अनेक लोकनृत्यों को संरक्षण प्रदान किया है। फिल्मों के माध्यम से हमने अनेक लोक नृत्यों को भी अमरता प्रदान की है। खासतौर से पिछले दशक में, राजस्थान जो सांस्कृतिक रूप से एक समृद्ध राज्य है वहाँ के लोकनृत्यों को फिल्मों में स्थान मिला और वह दुनिया भर में प्रचारित और प्रसारित हुआ लेकिन कई विद्वान ऐसा मानते हैं कि फिल्मों में हमने लोकनृत्य की प्रस्तुति तो की लेकिन कई बार हमने उसके स्वरूप के साथ, उसके मूल के साथ छेड़–छाड़ भी की है। आज जब हम सामुदायिक रेडियो और सामुदायिक वीडियो की बात कर रहे हैं तब ऐसे में भी लोकनृत्य के संरक्षण में जनसंचार के माध्यम प्रमुख भूमिका निभा रहे हैं।

आवश्यकता इस बात की है कि हम अपने सांस्कृतिक धरोहरों को समझें, जानें और उसे अपनाने के लिए युवा–पीढ़ी को प्रेरित करें।

हाँ, निश्चित रूप से जनसंचार के माध्यम इस दिशा में एक प्रमुख उपादान बन सकते हैं परंतु इसके लिए हमें सजग और सचेत प्रयास करने की आवश्यकता है।

**सन्दर्भ ग्रन्थ :**

1. मोहम्मद, प्रोफेसर शरीफ, भारत के लोकनृत्य, मध्यप्रदेश हिंदी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल
2. कुमार, श्री अजय, लोकनृत्य लोक संगीत, रावत प्रकाशन, जयपुर, राजस्थान
3. https://prasarbharati.gov.in
4. https://www.airindia.in

# भारतीय शास्त्रीय संगीत में शास्त्र और प्रयोग : एक विमर्श

**डॉ. आकांक्षी***

**सारांश**

*उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध को हम उत्तर भारतीय संगीत का पुनर्जागरण काल कह सकते हैं। इसी समय संगीताकाश में विष्णुद्वय के रूप में दो प्रखर नक्षत्र प्रकाश में आये जिन्होंने उत्तर भारतीय संगीत को नवीन दिशा प्रदान की। संगीत शिक्षा घरानों के दायरे से निकल कर संस्थाओं में आयी। संगीत एवं संगीत–शास्त्र पर प्रचुर लेखन एवं गहन विचार–विमर्श आरम्भ हुआ। साथ ही, प्राचीन ग्रन्थों का अध्ययन एवं आलोडन पुनः प्रारम्भ हुआ।*

*इस काल में शास्त्र और क्रिया–पक्ष के बीच एक गहरी खाई दृष्टिगोचर होने लगी थी जिस पर ध्यान देना अति आवश्यक था। ऐसी भ्रान्ति का प्रचार हो रहा था कि प्राचीन ग्रंथों में वर्णित लक्षणों का आज के लक्ष्य से कोई सम्बन्ध नहीं रह गया है जिसका निस्तारण अधुना कई विद्वानों द्वारा किया गया है।*

**बीज शब्द** : *श्रुति, स्वर–संवाद, अंश स्वर, वादी–संवादी, राग–ध्यान, राग–रागिणी।*

**शोध–प्रविधि** : *इसमें आलेख में द्वितीयक माध्यमों से सहायता ली गई है ।*

किसी भी कला के दो पहलू होते हैं–लक्ष्य और लक्षण। लक्ष्य यानि क्रिया और लक्षण अर्थात् क्रिया के बारे में विचार। इस बात को हम शास्त्रीय संगीत के परिप्रेक्ष्य में इस प्रकार समझ सकते हैं, जैसे किसी राग का प्रत्यक्ष रूप से प्रस्तुतिकरण लक्ष्य है और उसके विषय में सोचना–समझना और कहना लक्षण है। संगीत की क्रिया को सीखने–सिखाने, समझने–समझाने के लिए लक्षण अत्यन्त आवश्यक है। इस रूप में लक्ष्य के लिये लक्षण है और वही दूसरी ओर लक्षण के बिना लक्ष्य भी संभव नहीं हैं। उदाहरणार्थ इस बात को ऐसे समझा जा सकता है कि जैसे सा, रे, ग इत्यादि शुद्ध स्वर या कोमल तीव्र आदि संज्ञाएँ संगीत की गेय ध्वनियों (स्वर) के लक्षण ही हैं जिनके बिना संगीत सीखना, समझना असंभव ही है। अतः ये कहना गलत नहीं होगा कि लक्ष्य और लक्षण ये दोनों परस्पर अभिन्न और पूरक हैं।

अपने इस शोध–प्रपत्र में मैंने कुछ ऐसी सांगीतिक अवधारणाओं की चर्चा की है जिनके लक्षण और लक्ष्य में अनेक विभिन्नताएँ दृष्टिगोचर हो रही हैं या यों कहें कि उनको प्रयोग करने का ढंग बदल गया है।

भारतीय शास्त्रीय संगीत का आधार श्रुतियाँ हैं। श्रुतियों के बारे मे कहा गया है कि, तीन स्थानों में से प्रत्येक स्थान में जो संगीतोपयोगी नाद अभिव्यक्त होते हैं, शास्त्रकारों ने सामान्यतः उनके बाईस भेद माने हैं और वे बाईस श्रुतियों के नाम से प्रसिद्ध हैं। ये बाईस नाद या श्रुतियाँ ही भारतीय संगीत का मूल आधार हैं क्योंकि हमारे शुद्ध और विकृत स्वरों के स्थान को और उनके परस्पर अन्तर को दिखाने का साधन ये श्रुतियाँ ही मानी गयी हैं। तीन ग्रामों के विभाजन का आधार भी ये श्रुतियाँ ही हैं।

इस प्रकार कह सकते हैं, कि श्रुतियाँ ऊँचे–नीचे नाद के रूप में एक–दूसरे से भिन्न हैं, वही श्रुतियाँ जब गान–वादन में प्रयुक्त होती हैं, तब वे स्वर बन जाती हैं। दूसरी दृष्टि से यह भी कह सकते हैं कि श्रुतियाँ ही स्वर का स्थान पाती हैं, इसलिये श्रुति स्वर का कारण है। जब श्रुति स्वर बन जाती है, तब वह श्रुति नहीं रहती।

मतंग मुनि ने भी यह सिद्ध किया है कि स्वर, श्रुति पृथक् होते हुए भी अभिव्यक्ति के लिये परस्पर आश्रित हैं। श्रुति की सत्ता स्वर के पूर्व नहीं, अपितु स्वर के साथ ही होती है।

इन्हीं 22 श्रुतियों पर हमारा पूरा संगीत आधारित है परन्तु आधुनिक काल में इस भ्रान्ति का प्रचार हुआ कि हमारा पूरा राग–संगीत सात शुद्ध, पाँच विकृत इन बारह स्वरों पर ही आधारित है।

शुद्ध स्वर सात व विकृत स्वर पाँच मिलाकर कुल बारह स्वर एक सप्तक में होते हैं। संगीतोपयोगी 22 नादों

*असिस्टेंट प्रोफेसर (गायन), मंच कला विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी।

में से विकृत स्वरों की रचना 3, 7, 12, 16, 20, इन स्थानों पर होगी। ये विकृत स्वर शुद्ध स्वरों की विशिष्ट अवस्था में होने के कारण इनके नाम भी शुद्ध स्वरों जैसे ही हैं। इस प्रकार इन बारह स्वरों की सहायता से आजकल सभी रागों का निर्माण किया जाता है।[1]

परन्तु आज भी बारह स्वरों के अतिरिक्त विभिन्न रागानुसार उनमें अन्य सूक्ष्म स्वरों का प्रयोग होता है, ये सभी विद्वत्जन जानते ही हैं।

उदाहरणार्थ राग मालकौंस और राग भीमपलासी को ले लें। स्थूल रूप से सभी यह जानते हैं कि इन दोंनों ही रागों में कोमल निषाद का प्रयोग होता हैं किन्तु सूक्ष्म रूप से इन दोनों निषादों में एक श्रुति का अन्तर हैं। मालकौंस के मध्यम के साथ नौ श्रुति के अन्तर से संवाद करने वाला कोमल निषाद क्षोभिणी श्रुति (22वीं) पर रहता है। उस समय क्षोभिणी श्रुति कोमल निषाद स्वर बन जाती है। इसी प्रकार राग भीमपलासी के पंचम के साथ षट्श्रुति के अन्तर से संवाद करने वाला कोमल निषाद तीव्रा श्रुति पर रहता है। उस अवस्था में तीव्रा श्रुति कोमल निषाद स्वर का रूप ले लेती हैं। इस प्रकार मालकौंस में तीव्रा श्रुति रहती है और क्षोभिणी स्वर बन जाती हैं तथा भीमपलासी में क्षोभिणी श्रुति रहती हैं और तीव्रा स्वर बन जाती है।[2]

इसी क्रम में बागेश्री और भीमपलासी को ले लें। बागेश्री में पंचम बहुत अल्प होता है और भीमपलासी में वह बलवान रहता है। इसलिये बागेश्री गाते समय गुनीजन तंबूरे को प्रथम तार मध्यम में मिलाते हैं, और भीमपलासी में वह पंचम में मिलायी जाती है। तंबूरे की प्रथम तार के इस परिवर्तन से स्वरों का स्थान श्रुतिभाषा में स्वाभाविकरीत्या बदल जाता है, क्योंकि स्वर सदैव संवादप्रिय होते हैं, और इसलिये सहज रूप से स्वरों की श्रुतियों में अन्तर पड़ जाता है, यथा– बागेश्री में प्रथम तार मध्यम में मिलाने से उस मध्यम से षट्श्रुति संवाद वाला त्रिश्रुति ऋषभ ही लगेगा, अर्थात् वह ऋषभ सा से तीन श्रुति पर यानी रक्तिका पर रहेगा। तद्वत् उस मध्यम से षड्ज– मध्यम भाव (नौ श्रुत्यन्तर) से संवाद करने वाला कोमल निषाद क्षोभिणी श्रुति पर स्थित होगा। उसी प्रकार भीमपलासी में प्रथम तार पंचम में मिलाने से उस पंचम के साथ नौ श्रुति के अन्तर से संवाद करने वाला चतुःश्रुति ऋषभ ही प्रयुक्त होगा अर्थात् वह ऋषभ सा से चौथी श्रुति रौद्री पर स्थित रहेगा। तद्वत् पंचम से षट्श्रुति के अंतर से संवाद करने वाला कोमल निषाद भी क्षोभिणी पर न रहकर तीव्रा पर रहेगा। इस प्रकार बागेश्री में रक्तिका और क्षोभिणी श्रुतियाँ स्वर बनती हैं, और भीमपलासी में रौद्री और तीव्रा स्वर का स्थान पाती हैं।[3]

इससे यह सिद्ध होता है कि श्रुति और स्वर अलग होते हुए भी एक हैं, और एक होते हुए भी अलग।

रागों में जो स्वर प्रयुक्त होते हैं, वे पारस्परिक स्वर–संगति के कारण रागों में प्रयुक्त राग के मुख्य अंग और राग की विशिष्ट क्रिया के कारण अपना स्थान या श्रुति बदलते हैं, और उन बदली हुई अवस्थाओं को स्थूल मान से चढ़ी या उतरी या तीव्र, कोमल संज्ञाओं से विभूषित किया जाता है और ये स्वर ही भिन्न–भिन्न राग रस की निष्पत्ति कराते हैं।

जिन रागों में स्थूल मान से रे–ध कोमल प्रयुक्त होते हों, तानपूरे के प्रथम तार पर पंचम निनादित होता रहता है और रे–ध पर जिनमें ठहरना मना हो, तद्वत् उनके ऊपर के स्वरों को छुआ न जाता हो, पधप या सारेसा यों केवल छूकर रे ध का प्रयोग किया जाता हो, ऐसे रागों में रे–ध एक–एक श्रुति के ही लगेंगे और उनकी संज्ञा अति कोमल होगी।

इसी क्रम में जिसे हम आज सामान्य भाषा में तीव्र मध्यम कहते हैं, वह शुद्ध मध्यम से दो श्रुति के अन्तर पर स्थित है, अतः उस तीव्र मध्यम और शुद्ध मध्यम के बीच में एक श्रुति का स्थान रहता है, उसी श्रुति को जो शुद्ध मध्यम के ठीक बाद में आती है उसे तीव्र मध्यम संज्ञा दी है और सामान्यतः जिसे तीव्र मध्यम कहा जाता है उसे पं. ओकार नाथ ठाकुर ने तीव्रतर मध्यम का नाम दिया है।

इस तीव्रतर मध्यम से सभी गुणीजन परिचित ही हैं, जो शुद्ध मध्यम से दो श्रुति की दूरी पर स्थित हैं। उदाहरणार्थ ललित राग में सभी को यह मालूम ही है कि जब शुद्ध मध्यम पर अधिक देर तक रूक कर नि़ रे़ ग म– मं– म यों तीव्र मध्यम को मात्र छू कर फिर से शुद्ध म पर रुकते हैं तो ऐसी अवस्था में शुद्ध म के तुरंत बाद की श्रुति वाला तीव्र मं ही लगता है, किंतु जब तीव्र मध्यम पर कुछ समय ठहरते हैं ग रे़ मं– ग रे सा तो ऐसे में शुद्ध म से दो श्रुति की दूरी पर स्थित तीव्रतर मध्यम का ही प्रयोग होता है। इस प्रकार जानकर या अनजाने में ही गुणीजन इन तीव्र और तीव्रतर मध्यमों का प्रयोग ललित में करते हैं।[4]

मारवा और पूरिया के धैवत के प्रयोग में भी कुछ ऐसा ही दृष्टिगोचर होता है। हम यह जानते हैं कि आजकल पूरिया राग में शुद्ध धैवत का ही प्रचलन है किन्तु गमंध गमं– ग इस स्वर सन्निवेश को गाते समय धैवत को केवल छूकर ही आते हैं। ऐसे में द्विश्रुति धैवत का प्रयोग अनायास ही हो जाता है। इसी कारण कई विद्वान स्थूल भाषा में यह कहते हैं कि पूरिया का धैवत न कोमल है और न शुद्ध।

यदि हम अपने गायन–वादन में रस की अभिव्यक्ति चाहते हैं, आलाप और तानों द्वारा केवल गले का व्यायाम नहीं बल्कि भाव का दर्शन भी करना चाहते हैं, तो इन सूक्ष्म श्रुत्यन्तरों को स्वीकारना ही पड़ेगा। उनसे उत्पन्न भाव सृष्टि का विकास करना पड़ेगा। इनको अपनाये बिना हम रागों में रस–सिद्धि और उससे पहले राग–सिद्धि नहीं कर पायेंगे क्योंकि विभिन्न श्रुत्यन्तरों को जाने बिना हम कभी यह नहीं समझ पायेंगे कि मल्हार अंग के गांधार और कान्हड़ा अंग के रागों में प्रयुक्त होने वाले गांधार में कोई अन्तर भी हैं। या मालकौंस और भीमपलासी के कोमल निषाद भिन्न–भिन्न श्रुतियों पर स्थित हैं।

इस प्रकार आधुनिक लक्ष्यसम्मत शुद्ध विकृत स्वरों को श्रुतियों की प्राचीन भाषा में भली–भांति समझ लेने के उपरान्त हमें यह स्वीकार करना ही होगा कि हमारी आज की श्रुति–स्वर–व्यवस्था प्राचीन परम्परा से किसी प्रकार विच्छिन्न नहीं हुई है।

संगीत का सबसे आवश्यक अंग स्वर–संवाद है। प्राचीन ग्रन्थों के अध्ययन के फलस्वरूप यह दृष्टिगोचर होता है कि भरत आदि प्राचीन आचार्यों ने दो ही संवाद कहे हैं–

1. षड्ज– पंचम संवाद 2. षड्ज मध्यम–संवाद क्योंकि इन्हीं के द्वारा ग्राम के स्वरों में परस्पर संवाद सिद्ध हो जाता है। आधुनिक काल में पं. ओंकार नाथ ठाकुर ने षट्श्रुति और सप्त श्रुति अन्तर की चर्चा आधुनिक अवधारणाओं के अनुरूप की है।

पाश्चात्य हार्मनी की व्यवस्था भी इन्हीं चार प्रकार के संवाद के आधार पर बनी हुई हैं। मुख्यतः सागप और सागप वैसे ही मधसां और मधसां– इसी प्रकार की अन्य स्वर–संगतियों से वह हार्मनी बनी हुई है। इससे भी हमारे षट्श्रुति और सप्तश्रुति संवाद को पुष्टि मिलती है। जहाँ–जहाँ जब–जब किसी भी देश में, किसी भी काल में प्राकृतिक स्वर सप्तक का प्रयोग प्रचार में रहा है, वहाँ सर्वत्र, सभी देश और काल में यह षट्, सप्त, नव और त्रयोदश श्रुति का संवाद सर्वमान्य रहा है। ये सभी संवाद और विवाद गणित सिद्ध हैं जिसे प्रो. ललित किशोर सिंह की पुस्तक 'ध्वनि और संगीत' में देखा जा सकता है।

आधुनिक काल के शास्त्रीय संगीत में वादी, संवादी, अनुवादी और विवादी इन पारिभाषिक संज्ञाओं का प्रयोग राग–लक्षण के रुप में किया जा रहा है और ऐसा भी कहा जाता है कि ग्रह, अंश, न्यास आदि प्राचीन जाति–लक्षणों का आज कोई प्रयोग नहीं रह गया है। वास्तव में वादी, संवादी इत्यादि संज्ञाओं का राग–लक्षण में प्रयोग इन संज्ञाओं के परम्पराप्राप्त अर्थ के अनुकूल नहीं है, क्योंकि भरत ने तो स्वरों का पारस्परिक सम्बन्ध या स्वरों के निश्चित अन्तराल निदर्शित करने के लिये इन संज्ञाओं का प्रयोग किया है। संवाद, विवाद और अनुवाद– ये तीन शब्द स्वरों के निश्चित अन्तरालों के द्योतक हैं। 'संवाद' से नव–त्रयोदश श्रुत्यंतर का संवादी अन्तराल, 'विवाद' से दो श्रुत्यन्तर का विवादी अन्तराल और अनुवाद से अन्य निरपेक्ष अन्तराल अभिप्रेत रहे हैं।

स्वर भाषा और राग भाषा, इन दोनों के लिये भरत ने क्रमशः वादी–संवादी इत्यादि और ग्रह– अंशादि के रुप में जो दो प्रकार की पारिभाषिक शब्दावलियाँ दी हैं उनका स्वर तथा राग के संदर्भ में अलग–अलग प्रयोग करना ही वैज्ञानिक है, शास्त्रीय है, पूर्ण है और अपवादरहित है।

रागों का उद्भव जातियों से माना गया है। कुछ विद्वान यह भी कहते हैं कि जाति राग की ही पूर्व संज्ञा थी।

मतंग मुनि ने जाति को राग की जननी कहा है। उनके कथनानुसार संसार में जो कुछ भी गाया–बजाया जाता है वह जातियों के ही अन्तर्गत समाहित है।

जाति का निरूपण सर्वप्रथम भरत के ग्रन्थ 'नाट्यशास्त्र' में मिलता है। उन्होंनें कुल सात शुद्ध और एकादश संसर्गजा विकृता जातियाँ बतायी हैं।

संगीत शास्त्र की भाषा में वैशिष्ट्ययुक्त स्वरावलियों के लिये 'जाति' संज्ञा का प्रयोग हुआ है अर्थात् जिससे रस प्रतीति हो ऐसे स्वर–सन्निवेश को जाति कहा जाता है। ऐसे वैशिष्ट्य प्रदान करने वाले तत्वों को भरत ने दश जाति–लक्षण के रूप में वर्णित किया हैं।

ग्रहांशौ तार मन्द्रौ च न्यासोऽपन्यास एव च।
अल्पत्वं च बहुत्वं च षाड्वौडिवित तथा।। (ना. शा.)

अर्थात् ग्रह–अंश, तार–मन्द्र, न्यास–अपन्यास अल्पत्व–बहुत्व, षाडवत्व–औडवत्व, ये ही वे दश लक्षण हैं जिनसे कोई स्वरावलि जाति का रूप धारण करती है। यह व्यवस्था आज की राग–गायन–पद्धति के साथ भी अविच्छिन्न रूप से जुड़ी हुई है।

**ग्रह स्वर**– आज भी बहुत से रागों में ग्रह स्वर षड्ज से भिन्न भी हैं, यथा– यमन, बिहाग, पूरिया, भीमपलासी इत्यादि।

**अंश स्वर**– अंश अर्थात् जीव या प्राणस्वर, जिस पर राग का अस्तित्व अवलम्बित रहता है। इसे आज वादी स्वर के समकक्ष माना जाता है परन्तु फिर भी दोनों में बहुत विभिन्नता है। इसे पं0 ओंकार नाथ ठाकुर के कथनानुसार समझ सकते हैं–कल्याण में गांधार के बहुल प्रयोग को देखकर प्रयोग की दृष्टि छोड़ कर यदि "यस्मिन्वसति रागस्तु" पर ध्यान केन्द्रित करें तो यह ज्ञात होगा कि कल्याण का रागत्व गांधार में निहित नहीं है अपितु ऋषभ में है, यथा– यदि हम गांधार के बिना भी कुछ देर कल्याण की आलापचारी करें तो कल्याण बना रहता है, उसके रागत्व की हानि नहीं होती यथा– नि़रेनि़धनि़रे, परे । इसके विपरीत यदि रे को छोड़कर केवल गांधार के सहारे कल्याण को खड़ा करना चाहे तो वह असंभव होगा– नि़रे ग नि़ सा ग मंग, नि़ सा ग मं ग। इसलिये बहुल प्रयोग की दृष्टि छोड़कर यहाँ रे को ही अंश का स्थान देना उचित है। इसके विपरीत बहुत बार रागों में बहुल प्रयोग के आधार पर भी प्राण स्वर या अंश स्वर निश्चित किया जाता है, किंतु वैसा तभी होता है जब बहुल प्रयोग स्वर ही राग के रागत्व के साथ भी वही सम्बन्ध रखता है, जैसे भूपाली राग में ग का बहुल प्रयोग भी है और साथ ही वह राग का प्राण स्वर भी है।

**न्यास**– प्राचीन काल में गायन की समाप्ति का स्वर 'न्यास' को माना गया है परन्तु आधुनिक काल में गायन–वादन के बीच में किसी स्वर पर मुकाम करना "न्यास" कहलाता है।

**तार–मन्द्र**– अंश स्वर के जो दस लक्षण बताये गये हैं, उनमें तार और मन्द्र तक उसकी व्याप्ति की मर्यादा का उल्लेख हुआ है। उसी को दोहराते हुए यहाँ स्पष्ट किया गया है कि इन जातियों का गान केवल मध्य सप्तक तक ही सीमित नहीं था बल्कि तार और मन्द्र में भी उसका प्रस्तार है अर्थात् जाति–गायन तीनों सप्तकों में होता था। तार और मंद्र की व्याख्या करते हुए भरत ने कहा है–

अथ पंचस्वरा ..... नातः परमिहेयते।। (ना.शा. 28/92.3)
त्रिविधा मन्द्रगतिः– अंशपरा न्यासपरा चेति अपन्यासपरा चेति वा।

अर्थात् तार की त्रिविध गति है– अंश (न्यास तथा अपन्यास) स्वर लेकर चौथे, पाँचवे अथवा सातवें स्वर तक तार की गति समझनी चाहिये। मंद्र गति भी त्रिविध है। अंशपरा, न्यासपरा और अपन्यास परा। 'अंशपरा' अर्थात् अंश है परे जिसके अर्थात् अंश के नीचे उसी प्रकार न्यास परा और अपन्यासपरा का भी यही अर्थ है जिसके परे न्यास अथवा अपन्यास हो।

परन्तु यहाँ यह ध्यान रखना आवश्यक है कि प्राचीन काल का मंद्र–तार आधुनिक काल के मन्द्र और तार स्थान से भिन्न है। प्राचीन सिद्धांतों ने अंश, न्यास या अपन्यास से नीचे उतरने को मन्द्र और ऊपर चढ़ने को तार कहा है। जबकि आजकल तीन स्थान माने जाते हैं, मंद्र से ऊँचा मध्य और मध्य से ऊँचा तार स्थान या सप्तक। भारतीय दृष्टि सप्तक को स्वर–शास्त्र का आधार मानती है जिनमें एक 'स्थान' एक सप्तक की व्याप्ति का स्थान होता है।[6]

आचार्य बृहस्पति के कथनानुसार, मध्ययुग में राग–रागिणी–परम्परा का उल्लेख मिलता है जिसका आधार संभवतया मतंग के ग्रामराग एवं उसकी भाषा–विभाषादि थी। भाषादि के नाम स्त्रीवाचक थे। यही परम्परा परवर्ती कुछ विचारकों को उचित लगने से उन्होंने इसका वर्णन किया है एवं इस परम्परा में कुछ मतों को भी प्रतिष्ठा मिली, जैसे– भरतमत, शिवमत इत्यादि।[7]

मध्य युग से लेकर आज तक यह पद्धति भारत के उन सभी प्रदेशों में पूर्ण रूप से जनमानस में घुली हुई है। सामान्य जनता भी रागों को पुरूष और रागिणी को स्त्री के रूप मे जानती है। भारत के कलाकारों के मन और हृदय पर इसकी बहुत गहराई तक पैठ है। आज पाश्चात्य सभ्यता के रंग में रंगी हुई जनता भले ही इस परम्परा को पौराणिक या कपोल–कल्पना मान ले फिर भी कलाकार और सामान्यजन राग और रागिणियों के भावपूर्ण अस्तिव को आज भी नकार नहीं सकते बल्कि स्वीकार करते रहे हैं।

राग–रागिणी–वर्गीकरण का उद्भव और विकास पुरुषत्व एवं स्त्रीत्व के प्रतीकों पर आश्रित रहा है। राग–ध्यान–परम्परा भी इसी आधार पर विकसित एवं पल्लवित हुई और साथ ही, रागों को चित्रित करने की

परम्परा ने उसे और भी स्थूल रूप में प्रस्तुत किया।

आचार्य भरत के बाद और लगभग मतंग के समय से पूर्व ही, संगीत नाट्य से अलग स्वतंत्र रूप से चिंतन का विषय बन चुका था। अब चूँकि संगीत, नाट्य से अलग होने लगा तो उसमें भाव की निश्चितता के अभाव में एक रिक्ति आ गयी। संगीतज्ञों ने राग–ध्यान द्वारा इसी कमी को पूरा किया। श्रोता और कलाकार के मध्य भाव–साम्य स्थापित करने का कोई साधन न होने पर राग–ध्यान ही इस समस्या का अत्यन्त वैज्ञानिक समाधान था। गायक राग द्वारा जिस किसी भाव–विशेष को प्रस्तुत करना चाहता था, उसकी सामान्य रुप–रेखा राग–ध्यान द्वारा कह देता था, जिससे श्रोताओं को अनुभूति के लिये एक विशेष प्रारूप मिल जाता था। संगीतज्ञ राग–ध्यानों के माध्यम से अपने भावों को स्पष्ट स्वरूप देकर राग गाने लगे। आगे चलकर, विशेष रूप से मध्यकाल में राग–ध्यान का निर्माण संगीतज्ञों के साथ–साथ कवियों द्वारा भी होने लगा। इस प्रकार, राग–रागिणी–वर्गीकरण, राग–ध्यान तथा राग–चित्रण इन तीनों धाराओं ने क्रमशः संगीत, साहित्य एवं चित्र कला के आश्रय में उत्तरोत्तर स्थूल रूप से एक ही विचार श्रृंखला अथवा अभिव्यक्ति के माध्यम को पुष्पित पल्लवित किया।[7]

निष्कर्ष रूप में यही कहना चाहती हूँ कि भारतीय संगीत की परम्परा विश्व की प्राचीनतम जीवित एवं अविच्छिन्न परम्परा है। परम्परा एक विशाल वृक्ष की भांति है जिसमें प्रतिवर्ष पतझड़ में पुराने पत्ते डाली से गिर जाते हैं, और वसन्त में नव पल्लव आते हैं किन्तु जड़ें (मूल) तथा तना स्थिर रहते हैं। बिल्कुल यही बात शास्त्रीय संगीत की परम्परा पर भी लागू होती है। प्राचीनों द्वारा बताये गये लक्षणों का आधुनिक काल में प्रयोग होने वाले लक्ष्य से अभिन्न सम्बन्ध है। भले ही उनके प्रयोग का तरीका बदल गया है परन्तु जड़ें वहीं हैं।

**संदर्भ सूची :**

1. भातखण्डे, पं. विष्णु नारायण, क्रमिक पुस्तक मालिका, भाग– 2, पृ.सं. 11–12
2. ठाकुर, पं. ओंकार नाथ, संगीतांजलि, भाग– 4, पृ.सं. 3
3 वही, पृ.सं. 16
4. वही, भाग– 6, पृ.सं. 139
5. बैनर्जी, डा. ऊषा, स्वर स्पन्दन, पृ.सं. 98–99
6. स्वर और रागों के विकास में वाद्यो का योगदान, चक्रव्रर्ती, डॉ. इन्द्राणी, पृ.सं. 467
7. बृहस्पति, आचार्य, संगीत चिन्तामणि, पृ.सं. 246

# खावड़ा चित्रित टेराकोटा पात्रों एवं ताम्र–पाषाणयुगीन सिन्धु–सभ्यता के पात्रों के मध्य अंतर्संबंध

**प्रो. शिशिर सहाना****

**अर्चना दास***

**सारांश**

*प्रस्तुत शोध आलेख वर्तमान समय में गुजरात प्रांत के कच्छ जिले में निर्मित होनेवाले' 'खावड़ा चित्रित टेराकोटा पात्रों'' व ताम्र युगीन सैंधव–सभ्यता में निर्मित होने वाले मृदभांडों के मध्य अंतर्संबंध की खोज पर आधारित है। आलेख पात्रों के निर्माण की तकनीक व इनकी सतह पर चित्रित अभिकल्पों इत्यादि के तुलनात्मक अध्ययन के माध्यम से निम्नलिखित तथ्यों पर प्रकाश डालना चाहता है कि क्या कच्छ (गुजरात का एक जिला) के खावड़ा नामक स्थान में निर्मित चित्रित टेराकोटा पात्र, ताम्र युगीन सैंधव सभ्यता में निर्मित होनेवाले पात्रों की परंपरा के वाहक हैं? इन पात्रों के मध्य कोई समानता या विभेद है? इसके अतिरिक्त शोध का केन्द्रीय बिंदु एक ऐतिहासिक विरासत के रूपमें खावड़ा पॉटरी का तकनीकी व सौन्दर्य शास्त्रीय अध्ययन व इन्हें निर्मित करनेवाले कारीगरों की समसामयिक स्थिति का भी अध्ययन करना है।*

**मुख्य शब्द** : *टेराकोटा, खावड़ा,सिन्धु–सभ्यता, ताम्र–पाषाणयुग, विरासत, पात्र*

**प्रविधि** : *गुणात्मक एवं ऐतिहासिक शोध–विधि । पुस्तकें, शोध–ग्रन्थ, पत्र इत्यादि ।*

## गुजरात में ताम्र पाषाण युग एवं प्राप्त मृदभांड

गुजरात भारत के पश्चिम में स्थित राज्य है। इसकी सीमाएँ देश की भूमि और समुद्र दोनों को साझा करती हैं। तृतीय शताब्दी ई.पू. गुजरात में ताम्र पाषाण संस्कृति का विस्तार तटीय सौराष्ट्र, उत्तरी गुजरात और कच्छ क्षेत्रों में था। चौथी सहस्राब्दी ई.पू. में सर्वप्रथम चित्रित मिट्टी के बर्तनों का प्रमाण मिलता है। पुरातात्विक खुदाई के दौरान लोटेश्वर, पाद्री और सोमनाथ के स्थलों से मिट्टी के पात्र बहुतायत में प्राप्त होते हैं।[1] सिंधु–घाटी सभ्यता के पुरातात्विक स्थलों में विश्व–प्रसिद्ध 'धौलावीरा' कच्छ में ही स्थित है। यह भचाऊ नामक तालुका में है व मूल रूप से कच्छ के रण पर विस्तारित मरुभूमियुक्त वन्य अभयारण्य के अंदर खादिर बेट द्वीप पर स्थित है। धौलावीरा सिन्धु के सबसे बड़े ज्ञात नगरों में से एक था तथा यहाँ सिन्धु–सभ्यता के अवशेष बड़ी मात्रा में मिले हैं। राधनपुर से 165 कि.मी. दूर स्थित एक गाँव के नाम पर इस साईट का नामकरण हुआ है। इसे पांच हजार साल पहले तक विश्व के सबसे व्यस्त महानगरों में गिना जाता था। अभी हाल ही में इसको यूनेस्को की विश्व धरोहर सूची में (2021, चीन में संपन्न यूनेस्को की ऑनलाइन बैठक में) शामिल किया गया है व इसे भारत का 40वां विश्व धरोहर स्थल माना गया है।[2] खनन के दौरान धौलावीरा की इस साईट से विभिन्न प्रकार की सामग्रियाँ प्राप्त हुई हैं जिनमें मुख्य रूप से प्राप्त अवशेषों में बड़ी मात्रा में चित्रित काले–पर–लाल मिट्टी के बर्तन प्राप्त हुए हैं। धौलावीरा शास्त्रीय हड़प्पा के प्रकारों, रूपों और सजावटी पैटर्न के पूरे प्रदर्शनों की सूची को दर्शाता है। धौलावीरा स्थल के पास स्थित संग्रहालय में इन कलाकृतियों को संरक्षित किया गया है।[3]

## ब्लैक एंड रेड वेयर का परिचय व तकनीकी स्वरूप

भारतीय पुरातत्व में ताम्र पाषाणकालीन ब्लैक एंड रेड वेयर (बीआरडब्ल्यू) शब्द दो सतही रंगों की विशेषता वाले पात्रों को इंगित करता है– आंतरिक सतह काली और बाहरी रिमलाल। ये पात्र उल्टी या डबल–फायरिंग तकनीक का नतीजा होते हैं। पात्र का अंदरूनी भाग ज्वलनशील पदार्थ में मौजूद कम आक्सीजन वाली लौ के संपर्क में काला हो जाता है जबकि बर्तन का ऊपरी भाग हवा के संपर्क में आता है व पर्याप्त ऑक्सीकरण के परिणामस्वरूप लाल हो जाता है (व्हीलर, 1947)। अन्य पुरातत्त्वविद, जैसे– शर्मा (1960), सिंह (1969), मिश्रा (1967), सुब्बाराव (1961), और श्रीवास्तव (1980) जिन्होंने इस प्रकार के पात्रों के बारे में काफी कुछ लिखा है। इन मिट्टी के बर्तनों को पहली बार भारत में 1945 में मोर्टिमर व्हीलर द्वारा चिह्नित

*शोध छात्रा एवं असिस्टेन्ट प्रोफेसर, डिपार्टमेंट ऑफ़ डिज़ाइन, सिरामिक्स एंड ग्लास, कला भवन, विश्वभारती, शान्तिनिकेतन

**शोध–निर्देशक, डिपार्टमेंट ऑफ़ डिज़ाइन, सिरामिक्स एंड ग्लास, कला भवन, विश्वभारती, शान्तिनिकेतन

किया तथा 1947 में ब्लैक एंड रेड वेयर के रूप में नामित किया।[4]

ब्लैक एंड रेड वेयर की सबसे गूढ़ विशेषता निर्माण की तकनीक है। इस सन्दर्भ में विभिन्न भारतीय और गैर भारतीय विद्वानों ने अपने–अपने मत प्रकट किये हैं। यह माना गया था कि मिट्टी के बर्तनों का रंग, बर्तनों को भट्ठे में उल्टा करके रखने का परिणाम था। मिस्र में मिट्टी के बर्तन के लिए (कोलस 1973 : 152) गॉर्डन चाइल्ड नामक विद्वान ने भी इसी तकनीक का समर्थन किया है। भारतीय संदर्भ में भी, यह माना जाता था कि उल्टी फायरिंग तकनीक के कारण ही मिट्टी के बर्तनों को विशिष्ट रंग मिलता था किन्तु यह राय भी व्यक्त की गयी कि मिट्टी के बर्तनों में विशिष्ट रंग की उत्पत्ति, उल्टी फायरिंग के कारण नहीं बल्कि डबल फायरिंग तकनीक (बर्तन के अंदरूनी हिस्से को ढँककर) के कारण हुई थी (कुमार 2019: 397–404)। पात्र संभवतः गोबर, भूसी आदि जैसे कुछ कार्बनिक पदार्थों के साथ काला हो गया होगा। कुछ लेखकों के अनुसार केवल दो तरीकों से ऐसे मिट्टी के बर्तनों को बनाया जा सकता था अर्थात् (1) शरीर के लाल और आंतरिक भाग के काले रंग को एक साथ उत्पन्न कर (2) पहले पूरी तरह से बर्तन में एक रंग उत्पन्न करना तथा फिर इंटीरियर व रिम को किसी पद्धति से काला करना।[5] भारतीय संदर्भ में पुरातत्त्वविद आमतौर पर यह मानते हैं कि उल्टी फायरिंग तकनीक बीआरडब्ल्यू के निर्माण के लिए नियोजित की गई है। इस तकनीक में बर्तनों को भट्ठे में, बाहरी ऑक्सीकरण की स्थिति के अधीन उल्टी स्थिति में रखा जाता है। धूल या कुछ कार्बनिक पदार्थ की उपस्थिति में पात्र का इंटीरियर काले और बाहरी तह पर लाल रंग में बदल जाता है।[6] मजूमदार (1969: 93) के अनुसार महापाषाण काल में रेड वेयर के डबल फायरिंग तकनीक द्वारा निर्मित होने की अधिक संभावना थी जब बर्तन को पहले काला किया जाता है और विशेष व्यवस्था के साथ इसे फिर से फायर किया जाता है तब एक भाग लाल हो जाता था। ताम्र–पाषाण काल के काले और लाल मृदभांड के संबंध में यह सम्भावना भी व्यक्त की गयी है कि संभवतः एकल फायरिंग प्रक्रिया के दौरान ऑक्सीकरण की स्थिति के चलते इस प्रकार के परिणाम उत्पन्न होते हैं।[7]

### रेड एंड ब्लैक वेयर पर चित्रण

मिट्टी के बर्तनों पर चित्रों के सांस्कृतिक और सामाजिक अध्ययन सम्बन्धी जानकारी प्राप्त करने के लिए किया जाता है। ''चित्रित सजावट'' का अर्थ है वस्तु की सतह पर पेंट लगाकर किसी वस्तु को सुशोभित करना। मिट्टी के बर्तनों पर चित्रों के माध्यम से समाज में कला की ग्रहणशीलता के विभिन्न पहलुओं की परख की जा सकती है। कुम्हार/चित्रकार का सौंदर्य संवेदनाओं की अभिव्यक्ति हैं, जैसे प्राकृतिक परिवेश का भी प्रतिबिंब। इन पात्रों पर डिजाइन पैटर्न रूपांकनों और तत्त्वों का गठन (यानी एक डिजाइन की मूल इकाई या घटक) किया गया है। इन रूपंकानों को विद्वानों द्वारा ज्यामितीय, गैर–ज्यामितीय, मानव, पुष्प आकृति आदि के रूप में वर्गीकृत (राव 1963; मनचंदा 1972; जोशी 1972)। और इनके पैटर्न या व्यवस्था के आधार पर पुरातत्वविद उन्हें अर्थ देने का प्रयास करते हैं।[8] हाल ही में संपादित एक शोध के अनुसार ताम्र–पाषाण युग के चित्रित अभिकल्पों को निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है, इन प्रतीकों के निश्चित अर्थों का भी विद्वानों ने अनुमान लगाया है[9]–

| ज्यामितिक मोटिफ | रैखीय आकृतियाँ एवं बेसिक शेप (चित्र संख्या 1, 2, 3) |
|---|---|

1. ऊर्ध्वाधर, क्षैतिज, तिरछी, परस्पर संयुग्मित (क्रिस क्रोस)
2. जिगजैग और तरंगयुक्त रेखाएं
3. लूपयुक्त
4. त्रिभुजाकार एवं वर्गाकार
5. वृत्ताकार एवं बिन्दुयुक्त
6. हीरे की आकृति

| | | |
|---|---|---|
| प्राकृतिक मोटिफ | पशु एवं पक्षी आकृति | बैल, बैल के साथ मनुष्य, मछली, सांप, बतख, मोर |
| | फूल–पौधे | पीपल, केला, ताड़, कमल, गेंहू की बाली, आलंकारिक वृक्ष |
| | मनुष्य आकृति | सदैव किसी अन्य आकृति के साथ अन्य प्रतीक |
| अन्य प्रतीक | | सूर्य, लंगर |

**कच्छ स्थित खावड़ा में चित्रित टेरा कोटा पात्रों की परम्परा**

भारत के अधिकतर राज्यों में टेराकोटा अर्थात् पकी हुई मिट्टी से निर्मित पात्रों की परम्परा देखने को मिलती है। गुजरात के कच्छ–भुज जिले के लोदई गांव एवं खावड़ा नामक गाँवों में विशिष्ट प्रकार के टेराकोटा पात्रों, जिन्हें चाक पर निर्मित कर हाथ से खनिज रंगों द्वारा पेंट किया जाता है तथा देसी पद्धति से पकाया जाता है, की सदियों पुरानी शिल्प–परम्परा आज भी जीवित है। गुजरात के इस सबसे बड़े जिले का अधिकांश हिस्सा रेतीला और दलदला है। यहाँ स्थानीय तौर पर उपलब्ध मिट्टी से पात्रों के अतिरिक्त हस्तनिर्मित खिलौनों व अन्य सजावटी सामानों का निर्माण भी किया जाता है[10] (चित्र संख्या 1, 2)। यह परिक्षेत्र, सिन्धु–घाटी सभ्यता के खनन स्थलों की निकटतम रेंज में आता है तथा कच्छ में स्थित होने के कारण, पुरातत्त्व की दृष्टि से भी काफी महत्वपूर्ण हो जाता है।

**मिट्टी एवं चाक पर बर्तनों का निर्माण** : इन पात्रों को बनाने के लिए कच्छ में मिलने वाली स्थानीय मिट्टी का प्रयोग किया जाता है, जो सामान्यतः सफ़ेद होती है। इसे ''रण की मिट्टी'' कह कर संबोधित करते हैं तथा यह गाँव के निकट की झील जिसे एकड़ कहा जाता है, के तटवर्ती क्षेत्र से मिलती है। मिट्टी को पहले बारीक पीस कर और छलनी से छानकर उपयोग के लिए तैयार किया जाता है।

इस शिल्प में पुरुष एवं महिलाओं के मध्य कार्य–विभाजन स्पष्ट है। पुरुष चाक पर मिट्टी के बर्तनों को निर्मित करने का काम करते हैं। अन्य आकार, मुख्य रूप से खिलौने व अन्य सजावटी सामान भी पुरुषों द्वारा हाथ से ढाले जाते हैं जबकि महिलाएँ पात्रों व अन्य वस्तुओं की सतह को चित्रित करने का कार्य करती हैं। मिट्टी को आवश्यकतानुरूप तैयार करते हैं व चाक पर थ्रोइंग द्वारा कुम्हार पात्र तैयार करता है। तत्पश्चात् पात्रों को छाया में सूखने के लिए छोड़ दिया जाता है (चित्र 3)।[11]

**पात्रों को पकाना व चित्रण** : पात्रों को पकाने के लिए सर्वथा देसी–पद्धति का उपयोग करते हैं। मुख्य रूप से गाय के गोबर व सूखी लकड़ी, जो सहजता से उपलब्ध ईंधन होता है, द्वारा संचालित भट्टी में इन पात्रों को पकने तक निश्चित अवधि के लिए छोड़ दिया जाता है। बर्तन पर चित्रण से पूर्व गेरू (लाल रंग) की पतली सतह चढ़ाई जाती है, जो एक प्रकार की भारतीय लाल मिट्टी होती है। चित्रण–कार्य में काले और सफेद मिट्टी पर आधारित रंगों का उपयोग होता है। चित्रण के लिए अत्यधिक निपुणता और कौशल की आवश्यकता होती है क्योंकि बर्तन को एक हाथ से पेंट करते समय उसे दक्षता के साथ संचालित करना कारगर होता है। बर्तन को बाएँ हाथ में लेकर घुमाते हुए दाएँ हाथ से शिल्पकार पेंट करता है। पेंटिंग के लिए हस्तनिर्मित बांस स्टिक ब्रश का उपयोग किया जाता है। पेंटिंग पूर्ण करने के पश्चात् पात्रों को भली–भाँति साफ कर धूप में सूखने के लिए छोड़ दिया जाता है। ये आकार मुक्त हस्तांकन द्वारा निर्मित किये जाते हैं। जैसे ही हाथ से बर्तन घुमाया जाता है, रंग में डूबी हुई टहनी निर्मित ब्रश की नोक सतह पर चित्रण को उकेरने का कार्य करती है। एक बार डिजाइन पूर्ण हो जाती है तो लेख निकाल दिए जाते हैं। बर्तन का आकार और डिजाइनों के स्वरूप को निर्धारित करने का निर्णय, उस समुदाय विशिष्ट को ध्यान में रख कर लिया जाता है, जिसके लिए बर्तन बनाए जाते हैं। चित्रण करने के लिए सर्वप्रथम तैयार बर्तन को क्षैतिज बैंड द्वारा विभाजित किया गया है। कारीगर बड़ी सावधानीपूर्वक इस प्रक्रिया को संपादित करते हैं। वांछित रूप देने के लिए पात्रों को सही डिग्री पर रखना आवश्यक होता है।[12]

**अभिकल्पनः** इन पात्रों पर निर्मित अभिकल्पों में सिन्धु–घाटी–सभ्यता के चित्रित पात्रों का प्रभाव स्पष्ट होता है। विभिन्न प्रकार के आकर्षक अलंकरण बनाने के लिए बिन्दुओं और धारियों का प्रयोग किया जाता है तथा ज्यामितीय पैटर्न में लंबवत् व क्षैतिज रेखाएँ बहुतायत से

प्रयुक्त की गयी हैं। अलंकरणात्मक अभिकल्पों के साथ वर्ग–त्रिकोण व लूप इत्यादि का प्रयोग दिखता है। इसके अतिरिक्त फूल–पौधों, मनुष्यों, पक्षियों, जानवरों, जैसे– बिच्छू व मछली और हेरिंग बोन अभिकल्प का प्रयोग इन पात्रों में सामान्य रूप से दिखाई पड़ता है जो बनावट में ताम्र–पाषाण–काल के समकक्ष दिखते हैं।[13]

**तुलनात्मक अध्ययन, व्याख्या एवं निष्कर्ष**

ताम्र–पाषाणयुगीन पात्रों की सभी चित्रण–शैलियों को मोटे तौर पर रैखिक, गोलाकार/घुमावदार/डॉट्स, अन्य प्रकार के ज्यामितीय और प्राकृतिक रूपकों में विभक्त किया जा सकता है। खावड़ा पात्रों में भी उपरोक्त रूपांकनों की बनावट दिखाई पड़ती है। पात्रों को चित्रित करने की तकनीक भी एक–सी दिखाई पड़ती है। मुख्य रूप से बिन्दुओं व रेखाओं का प्रयोग खावडा पॉटरी में प्रभावी है।

परिपक्व हड़प्पा काल के बाद अभिकल्पों में अंतर स्पष्ट होता है, जैसे ज्यामितीय रूपांकनों में बदलाव। हड़प्पा काल और लेट हड़प्पा काल के बाद के कुछ अपवादों के साथ, अभिकल्प पात्रों के रिम और गर्दन के हिस्सों में पैनलों या रजिस्टरों के भीतर प्रतिबंधित हो जाते हैं। इस तरह की विविधताओं का कारण इस तथ्य को माना जा सकता है कि गुजरात में चित्र हड़प्पा कलाकारों द्वारा नहीं बनाए गए थे, बल्कि यहाँ के स्थानीय निवासी कुम्हारों द्वारा बनाए गए थे, जिन्होंने नए प्रभाव पैदा करने के लिए अपनी कल्पना को लागू किया था।[14] कच्छ से सौराष्ट्र, उत्तर गुजरात तक फैली मिट्टी के बर्तनों की पेंटिंग शैलियों में एक निश्चित मात्रा में एकरूपता देखी जाती है, जो हड़प्पा सांस्कृतिक लोकाचार के दूर–दराज के प्रभाव की ओर इशारा करती है। राजस्थान और उत्तर भारत के कई अन्य हिस्सों में महिलाओं को कुम्हार का पहिया छूने की मनाही है। इसलिए महिला सदस्य थालियों की सजावट और बर्तनों की पेंटिंग सहित अन्य गतिविधियों में सक्रिय भागीदार थीं।

इसी तरह का एक अध्ययन अर्चना चोकसी (1994) ने कच्छ के दो गांवों गुंडियाली और लोदलाई (जहाँ खावड़ा पॉटरी का निर्माण देखने को मिलता है) में किया था। वह देखती है कि गुंडियाली कुम्हारों के बीच लाइन का काम पुरुषों द्वारा किया जाता है और महिलाओं द्वारा भरने का काम किया जाता है। लोदलाई में रहते हुए, गुजरात के ताम्र पाषाण स्थलों से मिट्टी के बर्तनों पर सजावट पूरी पेंटिंग की जिम्मेदारी महिलाओं की है। इन्हें केवल श्रम–विभाजन के उदाहरण के रूप में देखा जा सकता है, या कुछ हद तक राजस्थान और गुजरात के कुम्हारों के बीच एक पितृवंशीय सामाजिक संगठन का संकेत दे सकता है। हालाँकि, इस तरह के किसी भी मॉडल को विकसित करने के लिए और अध्ययन की आवश्यकता है।[15]

**वर्तमान स्थिति** : दुर्भाग्य से, कच्छ का यह पारंपरिक खावड़ा मिट्टी के बर्तनों का शिल्प कम होता जा रहा है। शिल्पकार परिवार आजीविका के कारण स्थानांतरित हो रहे हैं। अधिकतर मिट्टी के बर्तनों का निर्माण स्थानीय बाजार के लिए होता था, लेकिन इन पात्रों की मांग में नाटकीय रूप से कमी आई है। वर्तमान समय में प्लास्टिक, स्टील और रोजमर्रा के उपयोग के चीनी उत्पादों के चलते इस शिल्प के उत्पादन पर भारी असर पड़ा है। आज कारीगर बाहरी बाजार पर निर्भर हैं। वर्तमान समय में, कच्छ में इस शिल्प का अभ्यास केवल कुछ कारीगर परिवारों द्वारा किया जा रहा है। संभवतः दो या तीन परिवार ही आज शेष हैं जिनमें कुछ प्रमुख नामों में, रहीमा बानो (चित्र संख्या 9) व हसन उमर कुम्हार और उनकी पत्नी अमीना हसन शामिल हैं जिनमें हसन उमर कुम्हार और उनकी पत्नी अमीना हसन राष्ट्रीय पुरस्कार विजेता भी हैं। इन दोनों के द्वारा निर्मित कृतियों में अधिकतर बर्तन, खिलौने, दीया, मोबाइल, प्लेट और कटोरे इत्यादि हैं।[15]

**निष्कर्ष** : इस शिल्प के संरक्षण और संवर्द्धन के लिए जागरूकता अत्यन्त आवश्यक है ।

चित्र सं.– 1

चित्र सं.– 2

चित्र सं.– 3

**संदर्भ सूची :**


1. पंजवानी, प्रीति ए., सेन भारती. (2009). पेंटेड डेकोरेशन ऑन पॉटरी फ्रॉम चाल्कोलिथिक साइट्स ऑफ़ गुजरातः अ प्रिलिमिनरी स्टडी. एनशियेंट एशिया. वोल्यूम 2. 60
2. केनोयर, हड्सन, जोनाथनमार्क–किम्बर्ली (2005). द एनशियेंट साउथ एशियन वर्ड. ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस. पृ० 55.
3. शर्मा, ऋतिक एवं अन्य. (2019). एनसियेंट सिविलाइजेशन स्टडी श्रोधौलावीरा ऑर्कियोलोजिकल साईट इन कच्छ डिस्टिकः अ स्टडी. GRD जर्नल्स/ग्लोबल रिसर्च एंड डिवेलपमेंट जर्नल फॉर इंजीनियरिंग/इंजीनियरिंग रिसर्च एंड इनोवेशंसइन सिविल इंजीनियरिंग (E RICE. 2019). 97
4. कुमार, विनय. (2019). ब्लैक एंड रेड वेयर कल्चरः अ रीअप्रेज़ल हेरिटेजः जर्नल ऑफ़ मल्टी डिस्प्लीनरीस्टडीज़ इन ऑर्कियोलोजी. वोल्यूम 7. 397–98
5. वही, 400
6. वही, 401
7. वही
8. पंजवानी, प्रीति ए., सेन भारती. (2009). पेंटेड डेकोरेशन ऑन पॉटरी फ्रॉम चाल्कोलिथिक साइट्स ऑफ़ गुजरातः अ प्रिलिमिनरी स्टडी. एनशियेंट एशिया. वोल्यूम 2. 59
9. वही, 61–67
10. रंजन, अदिति., रंजन, एम.पी. (2007). हैण्डमेड इन इण्डियाः अ जियोग्रॉफिकल एन्सायक्लोपीडिया ऑफ़ इन्डियन हैन्डीक्राट. गुजरात. अहमदाबादः मैपिन प्रकाशन, 467
11. वही
12. वही
13. पंजवानी, प्रीति ए., सेन भारती. (2009). पेंटेड डेकोरेशन ऑन पॉटरी फ्रॉम चाल्कोलिथिक साइट्स ऑफ़ गुजरातः अ प्रिलिमिनरी स्टडी. एनशियेंट एशिया. वोल्यूम 2. 67–68
14. वही
15. टीबीआई ब्लॉग्सः इन अ स्माल विलेज ऑन द रिम ऑफ़ कच्छ, अ फॅमिलीइज कीपिंग एन एनशियेंट क्राट अलाइव. betterindia.com एवं कारीगरों का साक्षात्कार

# भारतीय सांगीतिक परिप्रेक्ष्य में लोकगीत : स्वरूपगत विवेचना

**डॉ. प्रियंका अरोड़ा***

**सारांश**

*भारतीय संगीत बहुमूल्य एवं विभिन्न सांगीतिक निधियों का एक विशाल कोष है, जिसके अन्तर्गत शास्त्रीय संगीत की गहनता के साथ–साथ लोक संगीत की समृद्ध रीति भी पाई जाती है। लोक संगीत की इसी परिपाटी में लोकगीतों ने भारतीय समाज के उस रूप को प्रतिबिंबित किया है, जिसका मूल सम्बन्ध जन–साधारण से रहा है। संगीत भारत की धरा, परिवेश व आम जन के अन्तस् में रचा बसा है। मानव–मन के हर्षोल्लास, शोक, अनुराग आदि संवेदनाओं की अभिव्यक्ति का जितना सरल माध्यम लोकगीत हैं, उतना संभवतः कोई अन्य नहीं। यही कारण है कि भारत वर्ष की विविध भाषाओं में लोकगीतों का प्रचलन अपनी प्रसिद्धि तथा परम्परा की गाथा स्वयं कहता है। भारतीय जन–मानस के जीवन में लोकगीतों का महत्त्व अक्षुण्ण है। ये न केवल जीवन के विभिन्न पक्षों को यथा तथ्य वर्णित करते हैं अपितु उसे एक निधि के समान संजोकर भी रखते हैं। इन गीतों में समाज का प्रतिबिंब परिलक्षित होता है। साधारण जन की सहज दिनचर्या, सरल जीवन और उसमें त्यौहारों, उत्सवों, मेलों, सस्कारों का आगमन एक ओर जहाँ चित्त को हर्ष से अतिरेक कर देता है वहीं वियोग और रूढ़ियों में जकड़ी मर्यादा अपनी व्यथा को कहने का सहज मार्ग भी ढूँढ ही लेती है। मनुष्य के जन्म से लेकर मृत्यु तक के जीवन की झाँकी, पारिवारिक रिश्ते–नाते, सामाजिक बन्धन, लोक विश्वास, परम्पराएँ, रूढ़ियों आदि की छटा बिखेरते लोकगीत अपना महत्त्व स्वयं प्रतिपादित करते हैं।*

**सूचक शब्द** : *लोकगीत, वैशिष्ट्य, उद्भव, विषय, महत्व, परिप्रेक्ष्य*

**शोध प्रविधि** : *प्रस्तुत शोध का उद्देश्य लोकगीतों के महत्व को प्रतिपादित करते हुए, भारतीय समाज में उसके वरेण्य स्थान से अवगत करवाना है। मनुष्य जीवन विविध रंगों का समन्वय है, जिसमें लोकगीत सम्पूर्ण जीवन की झांकी प्रस्तुत करते दिखाई देते हैं। इसी मंतव्य को वरीयता देते हुए भारतीय संस्कृति की समृद्धि को प्रस्तुत करते लोकगीतों का प्रादेशिक भाषाओं में वैशिष्ट्य निरूपित किया गया है। प्रस्तुत शोध–पत्र में दत्त सग्रंह हेतु वर्णनात्मक विधि का प्रयोग किया गया है। प्रस्तुत शोध–पत्र में दत्त स्रोत के लिए विभिन्न पुस्तकों का प्रयोग किया गया है। प्रस्तुत शोध–पत्र में दत्त सामग्री का विश्लेषण, गुणात्मक विधि द्वारा किया गया है।*

'लोक' शब्द 'देखने वाला' के मूल अर्थ को प्रतिपादित करता है, जिसके लिए अंग्रेज़ी भाषा में 'FOLK' शब्द का प्रचलन है। वस्तुतः 'लोक' से अभिप्राय उन साधारण जन से हैं, जिनका जीवन सरलता और अकृत्रिमता पर आधारित होता है। उनके ज्ञान का आलम्ब कोई शास्त्रीय ग्रन्थ नहीं होते, वह तो अपनी परम्परा के निर्वाह के दायित्व की पूर्ति करते हैं। वहीं लोकगीत अपने आशय को प्रस्तुत करते हुए उस निर्मल सुरभि के स्त्रोत कहे जा सकते हैं, जिसके बीज देश की माटी में पनपे होते हैं और उसे वहाँ के परिवेश ने सींचा होता है। मानक हिन्दी कोश के अनुसार "लोकगीत गाँव–देहातों में गाए जाने वाले जन साधारण के वे गीत हैं, जो परम्परा से किसी जन–समाज में प्रचलित तथा लय–प्रधान हों। (फोक सांग) जैसे भिन्न–भिन्न ऋतुओं में त्यौहारों पर अथवा धार्मिक उत्सवों, संस्कारों आदि के समय गाए जाने वाले गीत।"[1] वस्तुतः यह गीत मानव के जीवन की समष्टिगत अभिव्यंजना करते दिखाई देते हैं, जिनमें "मानव का समस्त जीवन व्यक्त हुआ है। यह प्रकृति का गान है। शिशु के जन्म से लेकर मरण तक लोकगीतों में विभिन्न रूपों में जीवन का रंग मिलता है। लोकगीतों का जन्म मस्तिष्क से नहीं, हृदय से हुआ है। ये तर्क पर नहीं भावना पर आधारित है। इनमें छंद–शास्त्र की बेड़ी नहीं, नदी की स्वच्छंद धारा का प्रवाह है।"[2] संगीत की किसी भी विधा का विलक्षण वैशिष्ट्य ही उसे अन्य विधाओं से अलगाता है। लोकगीत अपने पारम्परिक रूप में कई विशेषताओं को प्रकट करते दिखाई देते हैं। अकृत्रिमता, सरलता, सादगी, स्वाभाविकता, मौखिकता, गेयता, रूढ़िवादिता, सामूहिक भाव भूमि आदि गुणों को इसके वैशिष्ट्य के अन्तर्गत रखा जा सकता है। जीवन के अनुभवों

*असिस्टेंट प्रोफेसर, संगीत विभाग, गुरु नानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर

को वास्तविक परिदृश्य पर निरूपित करना इनका मंतव्य है, जिनमें कृत्रिमता की कोई भूमिका नहीं होती। यह अपने सहज स्वरूप में हृदय से उद्‌भूत होकर सदैव के लिए परिवेश विशेष में व्याप्त हो जाते हैं। सत्यागुप्त के शब्दों में, "इन गीतों में जिस सभ्यता–संस्कृति, आचार–विचार एवं रीति–रिवाज़ों का उल्लेख मिलता है, वह अक्षरशः सत्य होता है। उसमें असत्यता, अतिरंजना तथा अस्वाभाविकता का तो कहीं स्थान भी नहीं होता। इन गीतों में न कला है, न भाषा सौष्ठव और न गीतकारों ने इनकी रचना बंद कमरों में ही की है। ये गीत तपते सूर्य के नीचे खेतों में काम करते हुए लोक मानव ने गाए हैं। चूल्हे पर कसार भूनती तथा दीपक जलाती नारी ने गुनगुनाए हैं।"[3] समाज में पीढ़ी–दर–पीढ़ी आगे हस्तांतरित होने का लोकगीतों का प्रमुख आलम्बन इनका मौखिक रूप में उपलब्ध होना है, जो हमारी प्राचीन संस्कृति का अभिन्न अंग रहा है। वैदिक काल में गुरु मुख से उच्चरित वाणी शिक्षा के रूप में प्रदत्त की जाती थी। लोकगीतों ने इसी परम्परा का अनुसरण किया। इसका साहित्य मुद्रण की अपेक्षा मौखिक प्रवृत्ति को लेकर आगे बढ़ता गया। चूंकि लोकगीतों के विषय में व्यक्ति की तुलना में समूह या समाज को वरीयता दी गई है इसलिए ये सम्पूर्ण समाज की निधि माने जाते हैं। ध्यातव्य है कि गीत मन के भावों की अभिव्यंजना करते हैं, गीत को लिखा तो व्यक्ति–विशेष द्वारा ही होता है परन्तु इनमें सामूहिक तत्व सम्मिलित होने के उपरांत वह लोकगीत की परिधि में आ जाता है। गेयता इनका प्रधान गुण है। लोकभाषा में अस्तित्व ग्रहण करने के उपरांत इन गीतों का गायन स्वच्छन्द व उज्ज्वल धारा के समान होता है। "मनुष्य के कंठ ही उनके घाट बन जाते हैं, जहां वे टकराते, ठहरते और फिर बहते चले जाते हैं।"[4] जहाँ तक इनके रचयिता के नाम की बात होती है, तो वह साधारणतः अव्यक्त ही रहता है। लोकगीतों की रचना का अधिकतर श्रेय स्त्री वर्ग को जाता है क्योंकि इनके विषय में नारी–सम्बन्धी नातों का विशद् वर्णन मिलता है। पीहर और ससुराल में निभाए जाने वाले रिश्तों, उनसे प्रगाढ़ता, स्नेह, वियोग आदि की भावनाओं को चित्रित करते यह गीत स्त्री के अन्तस् को व्यक्त करने का सार्थक माध्यम है। वैदिक काल स्त्री के सशक्त अस्तित्व का सुदृढ़ उदाहरण कहा जा सकता है। शनैः शनैः काल परिवर्तन के फलस्वरूप स्त्री की दशा में भी बदलाव आने शुरू हुए। जो नारी सम्मान और पुरुषों के समतुल्य अधिकार की स्वामिनी थी, मध्ययुग तक आते–आते दयनीय दशा की पात्र बन गई। बाल–विवाह, पर्दा व सती–प्रथा जैसी कुरीतियों ने उससे उसके सभी अधिकार भी छीन लिए। उसने अपने जीवन की वेदना, हताशा, घृणा, आनंद, उत्साह जैसी संवेदनाओं को सूक्ष्मता से गीतों में न केवल रचा बल्कि अपने जीवन के अभावों को अपनी करुण आवाज भी दी। इस सन्दर्भ में श्याम परमार लिखते हैं कि "जितना अधिक नारी का गीतों से सम्पर्क आया उतना ही अधिक उसके जीवन का यथार्थ चित्र गीतों ने प्रस्तुत किया। भारतीय लोकगीतों ने तो जैसे नारी के जीवन का चित्र प्रस्तुत करके सब कुछ कह डाला है। नारी ने रीति–रिवाजों, उत्सवों, प्रथाओं और त्यौहारों के निमित्त जो गाया है, उसमें अनजाने ही उसके मानस के विभिन्न भावों को गति मिल गई है।"[5] इसके अतिरिक्त प्रश्नोत्तरी शैली, अर्थहीन शब्दों का प्रयोग और दोहराव की प्रवृत्ति भी इनमें पाई जाती है। लय और संगीतात्मकता से आबद्ध प्रस्तुत गीत मनोरंजन की आपूर्ति तो करते ही हैं, पीढ़ियों से चलते रहने के कारण इनमें परिवर्तन का होना भी आश्चर्यजनक नहीं माना जा सकता।

अपनी प्रवृत्तियों को आलोकित करते लोकगीतों का धर्म लोक जीवन की उन अनुभूतियों का प्रकटीकरण करना है, जिनमें समाज के सुख–दुःख की, उत्थान–अवनति की, रहन–सहन आदि की पूर्ण झलक दिखाई दे। मानव सभ्यता का प्रत्येक युग उसकी जाति व प्रान्त लोकगीतों में चित्रित हुआ है। लोकगीतों के उद्‌भव के परिप्रेक्ष्य में इतिहास के पृष्ठ किसी विशेष समय का प्रमाण प्रस्तुत नहीं करते। इनका उद्‌गम हमारी मनुष्य–सभ्यता के साथ ही हुआ कहा जा सकता है क्योंकि आदिमानव के रूप में जंगलों में रहते हुए प्रकृति के कई रूपों से साक्षात्कार कर उनसे प्रभावित हो भाषा के रूप में कई संकेतों का जन्म हुआ होगा, जिनमें गुनगुनाना भी शामिल होगा। शरीफ मोहम्मद आदि–मानव में गाने के इस गुण के आविर्भाव की जन्म प्रक्रिया के परिप्रेक्ष्य में कहते हैं कि "मानव की यह अवस्था शताब्दियों तक बनी रही। इस अवधि में वह प्रकृति के अति निकट रहा। उसका सूक्ष्म निरीक्षण भी वह अनजाने में करता रहा। उसके चित्त में क्रोध, भय, ईर्ष्या, प्रेम, उमंग, उल्लास, घृणा, कौतूहल आदि अनेक मनोवैज्ञानिक भावों का प्रादुर्भाव हुआ। प्राकृतिक सौन्दर्य ने उसे अपनी ओर आकृष्ट किया, उसमें जिज्ञासा जगी। इस प्रकार, आदि–मानव में सौन्दर्य–शक्ति का विकास हुआ। उसने गुनगुनाना,

बुदबुदाना, झूमना, उछलना, कूदना, ताली बजाना आदि सीखा। इन्हीं से गाए जाने की प्रवृत्ति का जन्म हुआ होगा।''[6] श्याम परमार भी गीत को आदि–मानव के कण्ठ से निकले विकृत भाव मानते हैं। प्राचीन ग्रन्थ यद्यपि लोकगीतों के उद्‌गम की तिथि स्पष्ट करने में अक्षम हैं परन्तु तत्कालीन समय में लोकगीतों के स्वरूप के दर्शन अवश्य हो जाते हैं, यथा– ऋग्वेद में प्रस्तुत 'गाथिन' शब्द 'गाने वाले' के अर्थ की अभिव्यंजना करता है। 'रैमी' या 'नाराशंसी' शब्द उन गीतों के लिए थे, जो विवाह के अवसर पर गाए जाते थे। पुरातन साहित्य में जिन गाथाओं का उल्लेख मिलता है, वे लोकगीतों की ही प्राचीन प्रतिनिधि मानी जाती हैं। पाली, प्राकृत, अपभ्रंश भाषा में लोकगीतों का वर्णन उपलब्ध है। प्राकृत भाषा के समय इन गीतों ने उन्नति के शिखरों को छुआ। 'गाथा सप्तशती' उस समय के लोकगीतों के निर्माण–सम्बन्धी समृद्ध धुनों का उदाहरण प्रस्तुत करता है। कालांतर में गुजराती, पंजाबी, बांग्ला, मराठी, राजस्थानी, भोजपुरी, मैथिली, मालवी, छत्तीसगढ़ी आदि कई भारतीय भाषाओं में लोकगीतों की प्रचलित रीति दृष्टिगोचर होती है।

लोकगीतों में विवेच्य विषय अत्यन्त व्यापक है, जिसके अन्तर्गत संस्कारों, ऋतुओं, जातीय, पर्व आदि का विवेचन मिलता है। भारतीय संस्कृति में जन्म से मृत्यु तक कई संस्कार होते हैं, जिनमें आनंदोल्लास के साथ शोक, वियोग की कई भावनाएँ जुड़ी होती हैं। हालाँकि संस्कार अपनी मूल संख्या में तो सोलह माने गए हैं परन्तु डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय पुत्र–जन्म, उसके मुण्डन–क्रिया उपरांत यज्ञोपवीत, विवाह, गवना और अन्त में मृत्यु को प्रमुख संस्कारों की कोटि में रखते हैं। पहले पांच में तो स्त्रियों द्वारा मंगल गायन कर हृदय के उमंग–उत्साह को प्रकट किया जाता है परन्तु अन्तिम अर्थात् मृत्यु के समय गीतों के द्वारा मन के दुःख और वियोग को प्रकट किया जाता है। भारतीय संस्कृति में पुत्र–प्राप्ति प्रसन्नता का सूचक है। इस अवसर पर गाए जाने वाले गीत 'सोहर' गीत कहलाते हैं। 'सोहर' शब्द की व्युत्पत्ति शोभन से हुई अनुभूत होती है। काल परिवर्तन के प्रभावस्वरूप यह शब्द परिवर्तित होता हुआ शोभिलो, सोहिले, सोहद तत्पश्चात् सोहर के रूप में प्रचलित हुआ प्रतीत होता है। सोहर छन्द में होने के कारण भी इन्हें सोहर कहा जाता है। शिशु के कुछ बड़ा होने पर उसका मुण्डन–संस्कार किया जाता है। यज्ञोपवीत अथवा जनेऊ के गीतों में इससे सम्बन्धित विधान का वर्णन होता है। भारत के विविध प्रान्तों में विवाह–सम्बन्धी कई रिवाज एवं विधि–विधान किए जाते हैं। इनमें गीतों क गान भी उतना ही आवश्यक माना जाता है। विवाह के गीत वर और वधू दोनों पक्षों में गाए जाते हैं, अन्तर मात्र इनके भावों में निहित होता है। वर–पक्ष के गीत उत्साह से परिपूर्ण होते हैं, वहीं कन्या–पक्ष के गीतों में पुत्री की विदाई का दुःख समाहित होता है। लड़के के विवाह के समय घोड़ी चढ़ने के गीत गाए जाते हैं, जिनमें उसके रिश्ते–नातों का नाम लिया जाता है और घोड़ी की प्रशंसा की जाती हैः–

''बन्ने की घोड़ी तेज वन में अकेली खड़ी
शीश तेरे ककरे जी चीरी लडियाँ संभालू तेरी खड़ी
गल तेरे सोने का तोड़ा जुगनूँ सँभालू तेरी खड़ी
अंग तेरे मखमल की चोली झगा सँभालू तेरी खड़ी
हाथ तेरे सोने की घड़ियाँ चैन सँभालू तेरी खड़ी
पैर तेरे रंगरेजी जूता मोजे सँभालू तेरी खड़ी
बन्ने की घोड़ी तेज वन में अकेली खड़ी।''[7]

"सोने दी घोड़ी ते रेशम डोरां,
चांदी दे पैखड़ पाए रामा,
बाबा विआहुण पोते नू चल्लिया,
लट्टे ने खड़–खड़ लाई रामा।
सोने दी घोड़ी ते रेशम डोरां,
चांदी दे पखड़ पाए रामा,
बाबल विआहुण पुत्त नू चल्लिया,
दमां ने छन–छन लाई रामा।"[8]

बेटी के विवाह–संस्कार के गीत जहाँ उनके पिता के घर में बिताए समय को व्याख्यायित करते हैं वहीं अपने अनुरूप भावी वर की अपेक्षा की मांग भी करते दिखाई देते हैं।

"देवीं वे बाबला ओस घरे,
जित्थे सस भली प्रधान,
सोहरा सरदार होवै।
डाह पीहड़ा बैहन्दा साहमणे वे,
मत्थे कदे ना पांदी वट्ट,
बाबल तेरा पुन्न होवै।
तेरा होवेगा वडड़ा जस,
बाबल तेरा पुन्न होवै।''[9]

ऋतुओं के अन्तर्गत कजली, होली, चैता, बारहमासा के लोकगीत विख्यात हैं। उत्तर–प्रदेश में मुख्यतः सावन के मास में तीज पर कजली गाई जाती है। इस रीति में गाँव में किसी तालाब के किनारे, या फिर बाग में झूले डालकर पुरुष और स्त्रियाँ उसका आनंद लेतीं हैं। कज़ली का मुख्य

विषय ही अनुराग है। इसके गीतों में श्रृंगार–रस की मुखरता पाई जाती है। आनंद और त्यौहार–रूपी अवसर अर्थात् होली पर गाए जाने वाले गीतों की ख्याति भी कम नहीं है। होली के प्रसगं को आलोकित करते लोकगीतों में सार्वजनिक उमंग का समष्टिगत भाव निहित रहता है। 'चैता' चैत के मास में गाए जाने वाले गीतों को द्योतित करता है। इसमें माधुर्य, सरलता जैसे तत्वों को दृष्टिगोचर किया जा सकता है। झलकुटिया और साधारण इसके दो भेद हैं। झाल, जो एक तरह का वाद्य है, से बजाने के कारण और समूह में गाए जाने पर उसे झलकुटिया चैता कहा जाता है, वहीं किसी व्यक्ति विशेष के गाने पर इसे साधारण चैता की कोटि में रखा जाता है। जब इसका सामूहिक गान होता है तो गायकों के दो वर्ग बन जाते हैं, जिसमें एक पहली पंक्ति गाता है और दूसरा वर्ग उसका टेक ऊँचे स्वर से गायन करता है। चैता का विषय भी प्रणय गीतों को समाहित किए हुए है। संयोग–श्रृंगार को रेखांकित करते ये गीत पति–पत्नी के प्रेम, ननद–भाभी के वार्तालाप, श्री कृष्ण के ग्वालिनों से गोरस मांगने जैसे विषयों को वर्णित करते हैं। चैता की विशेषता ही यह है कि यह लोकगीतों के अन्य प्रकारों में कोमलता एवं मधुरता के परिप्रेक्ष्य में श्रेष्ठ कोटि का माना जाता है। इसके समकक्ष अन्य कोई नहीं आता।

बारहमासा के गान का प्रचलन विशेषतः पावस ऋतु में होता है। विरह से संतप्त स्त्री अपने पति के वियोग में जिन कष्टों का सामना करती है, उसी को बारहमासा में चित्रित किया गया है। स्पष्टतः वियोग–श्रृंगार की प्रधानता इसमें पाई जाती है। वस्तुतः ''बारहमासी गीतों में प्रत्येक मास का वर्णन क्रम से किया जाता है। हर मास की रूप–रेखा संक्षेप में दी जाती है, किन्तु इस बात का अवश्य ध्यान रखा जाता है कि जिन उपकरणों से ऋतु–वर्णन की योजना की जाती है, वे प्रचलित और सर्वानुभूत हों। विरहिणी उन्हीं को लेकर अपने प्रवासी प्रियतम का स्मरण करती है। इसी प्रकार ऋतुओं पर मानवी भावों का पूर्ण आरोप होता है।''[10] पर्व अथवा त्यौहारों के लोकगीतों में नाग पंचमी, छठी माता, गोधन, बहुला, नवरात्र, पिड़िया आदि के मनाए जाने की परम्परा आती है।

कतिपय लोकगीत किन्हीं विशेष जातियों से सम्बन्धित होते हैं, जिनमें धोबियों के गीत, अहीरों, तेलियों, कहारों, दुःसाधों, गड़ेरियों आदि जातियों को इनके निर्माण और गायन का श्रेय दिया जाता है। इनके अतिरिक्त विषय की दृष्टि से कई ऐसे लोकगीत भी हैं, जो किसी श्रेणी में आबद्ध तो नहीं होते किन्तु इससे उनके महत्व को कम नहीं आंका जा सकता, इस सूची में मेले के गीत, लोरी और खेलों के गीत लिए जा सकते हैं।

**निष्कर्षतः** कहा जा सकता है कि लोकगीत साधारण जन के अन्तर्मन की स्वाभाविक अभिव्यक्ति का सुगम माध्यम है। यह 'लोक' से सम्बन्ध स्थापित करते हुए वह गीत हैं, जिन्होंने अपनी परिधि में सम्पूर्ण मानव–जीवन ही व्याप्त कर लिया है। इसका क्षेत्र मनुष्य के जीवन के उतार–चढ़ाव, शोक–प्रसन्नता, संयोग–वियोग की गाथा का परिचायक है। अंतस् से उद्भूत लोकगीत हमारी आशाओं, आकांक्षाओं, अवसाद, अभाव को शब्द व धुनों के द्वारा व्यक्त कर सामूहिक धरा पर प्रतिष्ठित करते हैं। अस्तु, नदी की स्वच्छ, स्वतन्त्र धारा के समान प्रवाहित होते लोकगीतों के बिना लोक–जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

**सन्दर्भ सूची :**

1. वर्मा, रामचन्द, (संपा.), मानक हिन्दी कोश (खण्ड चार), (1965), हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, पृ. 597
2. मोहम्मद, शरीफ (2018), मध्य प्रदेश का लोक संगीत, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, पृ. 197
3. सत्यागुप्त (1965), खड़ी बोली का लोकसाहित्य, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, पृ. 112
4. कुलदीप (डॉ.), (1972), लोकगीतों का विकासात्मक अध्ययन, प्रगति प्रकाशन, आगरा, पृ. 02
5. परमार, श्याम (1954), भारतीय लोक साहित्य, राजकमल प्रकाशन, बम्बई, पृ. 125
6. मोहम्मद, शरीफ (2018), मध्य प्रदेश का लोक संगीत, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, पृ. 194
7. कुलदीप (डॉ.), (1972), लोक गीतों का विकासात्मक अध्ययन, प्रगति प्रकाशन, आगरा, पृ. 96
8. https://www.punjabi-kavita.com
9. वहीं
10. परमार, श्याम (1954), भारतीय लोक साहित्य, राजकमल प्रकाशन, बम्बई, पृ. 111–112

# पं. नारायण लक्ष्मण गुणे का सांगीतिक अवदान

**डॉ. अस्मिता मिश्रा***

***शोध सारांश***

*ग्वालियर घराना के ख्यातिलब्ध संगीतज्ञ पं. नारायण लक्ष्मण गुणे का सम्पूर्ण जीवन संगीत की सेवा में बीता। माधव संगीत महाविद्यालय, ग्वालियर एवं प्रयाग संगीत समिति, प्रयागराज के अध्यक्ष पद पर कार्य करते हुए उन्होंने संगीत–शिक्षा को सर्वसुलभ बनाने की दिशा में अतुलनीय योगदान दिया। गुणे जी कुशल वाग्गेयकार, सुयोग्य सङ्गीताचार्य एवं विलक्षण गायक थे। उनके शिष्य–प्रशिष्यों ने देश के विभिन्न भागों में अध्ययन, अध्यापन एवं मंच–प्रदर्शनों के माध्यम से संगीत का प्रचार–प्रसार किया। विद्यार्थियों को सरलतापूर्वक रागों का स्वरूप आत्मसात हो सके, इसके लिए उन्होंने बहुत–सी बंदिशों की रचना की और इनका संकलन किया। इनकी पुस्तक 'संगीत प्रवीण दर्शिका' और 'संगीत प्रभाकर दर्शिका' में विभिन्न प्रचलित, अप्रचलित रागों और विभिन्न तालों में रची गयी बंदिशों का संकलन है। इनमें मुख्यतः तीनताल, एकताल, तिलवाड़ा, चारताल, धमार, झपताल की बंदिशें हैं। आपने ख्याल के अतिरिक्त ध्रुपद, धमार, चतुरंग एवं तराना की भी बंदिशों की रचना की।*

**बीज शब्द** : *संगीत, ग्वालियर घराना, बन्दिश, संगीतज्ञ, मंच–प्रदर्शन*

**शोध–प्रविधि** : *इस पत्र के लिए पुस्तकों, पत्रिकाओं तथा साक्षात्कार द्वारा प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोतों से सहायता ली गई है ।*

**'संगीत साधक'**

जैसो नाम तैसो गुण कहाँ लौ बखानौ कहौं ,
गुणे गुरु आप तो ज्ञान की मूरत थे।।
कदली तरु बीच जैसे पात में पात बसे,
तैसों गात आपके ज्ञान की परत थे।।
कलाकार, रचनाकार, नायक अरु वाककार,
शिक्षक संगीत आप शिष्यन की सुमत थे।।
श्रद्धांजलि सुमन अर्पि "रामरंग" विनवै पद,
आप तो संगीत के साधक समरत्थ थे।।[1]
–पं रामाश्रय झा "रामरंग"

ग्वालियर घराना के ख्यातिलब्ध संगीतज्ञ पं. नारायण लक्ष्मण गुणे का जन्म 6 अप्रैल 1906 में हुआ। उनके पिताजी पं लक्ष्मण राव गुणे जी संगीत प्रेमी थे। उनकी प्रेरणा से आपकी संगीत–शिक्षा पं. कृष्ण गोपाल राव दाते एवं पं राजा भैया पूंछवाले के सान्निध्य में हुई। ग्वालियर रियासत के तत्कालीन महाराज श्रीमंत माधव राव सिंधिया ने 10 जनवरी 1918 को पं. विष्णु नारायण भातखंडे जी के सहयोग से ग्वालियर में माधव संगीत महाविद्यालय की स्थापना की। गुणे जी का इस विद्यालय में प्रवेश इसकी स्थापना के साथ ही हुआ। 17 वर्ष की आयु में सन् 1923 में पं. गुणे जी यहाँ प्राध्यापक नियुक्त हुए। पं. भातखंडे रचित 'क्रमिक पुस्तक मालिका' की तीसरी पुस्तक का नोटेशन करने में गुणे जी का महत्वपूर्ण योगदान रहा। इस संबंध में पं. गुणे ने स्वयं ही 'भातखंडे स्मृति ग्रंथ' में लिखा है "सन् 1924 या 25 में 'क्रमिक पुस्तक मालिका' का नोटेशन करने स्व गुरुजी राजाभैया, भास्करराव खाँड़ेपारकर और स्वयं मैं जून महीने में बंबई गए"।[2] 1 मई सन 1936 में भारतीय मध्यवर्ती हिन्दुस्तानी संगीत मण्डल, लश्कर, ग्वालियर की स्थापना हुई। इसके अध्यक्ष पद का भार भी आपने ग्रहण किया। 1957 में आपने स्वेच्छा से माधव संगीत महाविद्यालय में प्राचार्य पद से अवकाश लिया और तीर्थराज प्रयाग आ बसे। यहाँ आपने प्रयाग संगीत समिति के अध्यक्ष पद को सुशोभित किया। 11 अक्तूबर 1960 में भातखंडे शताब्दी समारोह, ग्वालियर में आपको सम्मानित किया गया। सन 1964 में भारतीय संगीत तथा ललित कला विद्यापीठ, कानपुर के दीक्षांत समारोह में आपको 'संगीतमार्तंड' की उपाधि से सम्मानित किया गया। सन् 1972 में इंदिरा कला संगीत वि.वि., खैरागढ़ (छ.ग. ) द्वारा आपको प्राध्यापक पद के लिए आमंत्रित किया गया पर आपने अपने जीवन का शेष समय प्रयाग में ही बिताने का निश्चय किया और उस पद को अस्वीकार कर दिया। आपको संगीत जगत में बहुमूल्य सेवाओं के लिए उ. प्र. संगीत नाटक अकादमी

*निर्देशक : "स्वरांगन", ओल्ड बोवेनपल्ली, हैदराबाद

द्वारा वर्ष 1985 में सम्मानित किया गया। दुर्भाग्यवश 27 सितंबर 1987 को रात्रि 10 बजे संगीत जगत का यह दीप अपनी आभा समेटते हुए बुझ गया।[3]

बहुमुखी प्रतिभा के धनी पं. गुणे एक उच्चकोटि के संगीतज्ञ और शिक्षक तो थे ही, साथ ही एक कुशल वाग्गेयकार भी थे। एकांत में अथवा व्यस्तता के मध्य, घर पर या समिति के कार्यों में, प्रवास में या शिष्यों के बीच उनका भावुक एवं सरस हृदय निरंतर अभिव्यक्ति करता रहा। नए–नए गीतों की रचना करना, भावगीत, कविता, स्वागत गीत आदि को स्वरबद्ध करना आपके लिए सहज था। दिल्ली की बात है– रेडियो में प्रोग्राम था, आप घर से निकले, रास्ते में चीज तैयार की और वही चीज रेडियो में गाकर आये। माधव म्यूजिक कॉलेज, ग्वालियर में अपनी विदाई समारोह के दिन आपका गायन हुआ, राग दरबारी में नया खयाल जो उस दिन के प्रसंग पर आधारित था, गाकर श्रोताओं को प्रभावित किया।[4] उन्हें करीब से जानने वालों का कहना है कि वे प्रायः, कहीं भी, बंदिशों की रचना कर लिया करते थे। आप आकाशवाणी इंदौर, भोपाल, दिल्ली तथा इलाहाबाद के 'ए ग्रेड' कलाकार थे। आकाशवाणी की रिकॉर्डिंग के लिए जाते समय, न तो बंदिश, न हि राग, कुछ भी तय कर वे नहीं जाया करते थे। रास्ते में ही गुनगुनाते हुए जो भी बंदिश बन जाती, जिस भी राग की इच्छा होती, वही उनकी अभिव्यक्ति का माध्यम बन जाती। अपनी इस आदत के फलस्वरूप उन्होंने न जाने कितनी ही बंदिशें बनायीं और विद्यार्थियों तथा भावी पीढ़ी के संगीतज्ञों के कल्याण के लिए उन्हें लिपिबद्ध कर पुस्तकों का रूप दे दिया।

जीवन का अधिकांश भाग हिंदी भाषी प्रदेशों में (मध्य प्रदेश एवं उत्तर प्रदेश) में व्यतीत होने के कारण उन्होंने न केवल हिंदी, बल्कि ब्रजभाषा, अवधी और उर्दू का भी अच्छा ज्ञान प्राप्त किया। ग्वालियर के गायक प्रायः अप्रचलित रागों का गायन कम करते थे। इसका अधिक प्रचार–प्रसार डॉ.एस.एन. रातजनकर साहब द्वारा ही किया गया। सन् 1933 से 1948 तक वे प्रतिवर्ष ग्वालियर में 15–20 दिन तक मुकाम करते रहते थे। उस समय अप्रचलित रागों को ही वे प्रायः गाया करते थे । प्रतिदिन 2–3 घंटे उनका गायन घर पर अथवा महफिलों में सुनने का लाभ संगीत व्यवसायियों को मिलता था। पं. गुणे उनसे अत्यंत प्रभावित हुए और अपने प्रतिभाशाली व्यक्तित्व एवं चिंतन करने की क्षमता के कारण उन्होंने अप्रचलित रागों में स्वयं की बंदिशें और उनकी गायकी तैयार कर पुस्तकों में प्रकाशित की।[5] ऐसे अल्प प्रचलित राग जिनके स्वरूपों का मानकीकरण नहीं हो सका था और जिनमें परंपरागत बंदिशों का अभाव था, जैसे– कुकुभ, चन्द्रकान्त, गारा, ललितपंचम, हंस नारायणी, मालीगौरा, हँसकिंकणी, गोपीबसंत, शुक्ल बिलावल, आनंद भैरव, पंचम, भूपाल तोड़ी, मधुवंती आदि अनेक रागों में विभिन्न बंदिश– प्रकारों की रचना कर, राग–संगीत की धरोहर को उन्होंने लुप्त होने से बचाने में सहायता की और रागों के स्वरूपों को स्पष्ट कर विद्यार्थियों का मार्ग प्रशस्त किया।

पं. गुणे की बंदिशों में वर्णित विषय–वस्तु पर ध्यान दिया जाय तो यह ज्ञात होगा कि उन्होंने गायन के समय एवं ऋतुओं पर विशेष ध्यान दिया। जिस ऋतु में जो राग गाया जाता है उस राग की बंदिश में वैसे ही प्रसंग का साहित्य एवं उसी के अनुकूल विषय–वस्तु का चयन किया गया है। इसी प्रकार अष्टयाम के रागों में रचना करते समय इसी अवधारणा का अनुसरण किया गया है, यथा– प्रातः कालीन बंदिशों में सूर्योदय के समय का वर्णन, अपराह्न काल की बंदिशों में धूप की प्रखरता से व्याकुल जन–जीवन, संध्या समय में सूर्यास्त के समय चिड़ियों के अपने घोंसले में लौटने और नायक की प्रतीक्षा में द्वार पर खड़ी नायिका के चिंतातुर मनःस्थिति का वर्णन और रात्रिकालीन बंदिशों में रात्रि के अन्धकार में डूबी प्रकृति के सौंदर्य का वर्णन आदि। पं. गुणे की बंदिशों में प्रयुक्त विषय–वस्तु का अध्ययन करने पर हम पाते हैं कि रचनायें मुख्यतः इन विषयों पर आधारित होती हैं– राधा–कृष्ण एवं गोपियों की छेड़छाड़, ईश्वरोपासना, देव या देवी स्तुति, गुरुभक्ति, ऋतु–वर्णन, प्रकृति–चित्रण, प्रहरसूचक, नायक–नायिका भेद आदि।

पं. गुणे द्वारा रचित बंदिशों में शृंगार रस के संयोग और वियोग दोनों अंगों का बहुतायत में प्रयोग किया गया है। 'संगीत प्रवीण दर्शिका' के चारों भागों में संयोग–शृंगार की 33 बंदिशें और वियोग शृंगार की 41 बंदिशें हैं। करुण रस की 13, शांत रस की 3 और भक्ति रस की 34 बंदिशें हैं। 'संगीत प्रभाकर दर्शिका' में संयोग और वियोग शृंगार की नौ–नौ बंदिशें हैं। करुण रस की 12, शांत रस की 2 और भक्ति रस की 9 बंदिशें हैं। इसके अतिरिक्त ऋतु–वर्णन, नायिका–भेद और प्रहर–सूचक साहित्य की बंदिशों में यदा–कदा शांत, करुण या शृंगार रस के दर्शन होते हैं।

राधा–कृष्ण और गोपियों की छेड़–छाड़ के प्रसंग

से सम्बंधित राग नन्द, तीनताल (मध्यलय) की यह बंदिश द्रष्टव्य है :–

स्थाई – छेड़ो न मोहे हो बनवारी, काहे करत हो मोसे बरजोरी।
अन्तरा – लाज शरम छोरी सारी, सास ननद देगी गारी।।[6]

प्रस्तुत बंदिश में एक गोपी कान्हा से विनती कर रही है कि हे बनवारी मुझे न छेड़ो, मुझसे बरजोरी क्यों करते हो। तुमने तो लाज शरम सब छोड़ दी है पर मेरी सास और ननद ये सब देखेंगी तो मुझे गालियाँ देंगी।

पं. गुणे की बंदिशों में ईश्वरोपासना की बंदिशें बहुतायत मिलती हैं। इन बंदिशों में भिन्न–भिन्न तरीकों से भक्त द्वारा अपने इष्ट प्रभु का स्मरण, उनके दर्शन के लिए भक्त की लालसा एवं दुखों से तारने की उसकी विनती का चित्रण बड़े ही मार्मिक और भावपूर्ण तरीके से हुआ है। कुछ बंदिशों के माध्यम से इन विषयों और प्रसंगों पर दृष्टिपात करते हैं, यथा–

**राग देवगिरी विलावल–तीनताल (विलंबित लय)**

स्थाई – आन परी हूँ तुम्हरे द्वारे, तुम बिन दूजो कौन संभारे।
अन्तरा– नित करती हूँ साँझ सकारे, सुमिरन चरनन का प्रभु जी तुम्हरे।।[7]

भक्त स्त्री अपने प्रभु से कहती है– हे प्रभु! मैं तुम्हारे द्वार पर आ गयी हूँ। तुम्हारे बिना मुझे सम्हालने वाला और कौन है ? इसलिए हे प्रभु! मैं आपके चरणों का नित्य शाम–सवेरे सुमिरन करती हूँ।

वियोग से व्याकुल नायिका पति के आने की प्रतीक्षा में है। ऐसे में बादल के गरजने से वो अधीर हो उठती है और बादलों से निवेदन करती है कि हे बादल, तुम मत गरजो, मेरे पति आने वाले हैं। मैं उनकी प्रतीक्षा में हूँ, अगर तुम बरस पड़े तो मेरे पति घर कैसे आएँगे?

**राग सूर मल्हार–एकताल (विलंबित लय)**

स्थाई– बादर मत गरजो तुम, इतनी अरज मोरी मान लो तुम।
अन्तरा– उनके आवन की बाट जोहत हूँ, कैसे आवेंगे मेहा बरसत।।[8]

**राग शुद्ध सारंग–तिलवाड़ा (विलंबित लय)**

स्थाई– सीस पर आयो सूरज,
छांह की आस करत है सब जीव जौंत।
अन्तरा– तपत है सारी भूमि भारी,
घर के कछू काम धाम नाही सूझत।।[9]

मध्याह्नकालीन राग शुद्ध सारंग के गायन–समय को ध्यान में रख कर दोपहर की तेज धूप से व्याकुल जीव–जंतु की दशा का प्रस्तुत बंदिश में बड़ा ही सजीव चित्रण किया गया है। भावार्थ है 'दिन के दूसरे प्रहर के आगमन के साथ ही सूरज की प्रखरता बढ़ने लगी है, सूरज अब सर पर आ गया है। सब जीव–जंतु गर्मी से बेहाल हैं और छाँव में ही रहना चाह रहे हैं। सारी धरती बुरी तरह तप रही है, व्याकुलता के कारण घर के किसी काम–काज में मन ही नहीं लग रहा है।

पं. गुणे भातखंडे जी की शिक्षण–पद्धति से प्रभावित थे। उनके सिखाने की पद्धति के सम्बन्ध में गुणे जी का कहना था "कोई भी चीज जब वे सिखाते थे, तब प्रारंभिक टुकड़ों से नहीं सिखाते थे। उस चीज के बीच–बीच के वाक्य सिखाते थे, उसमें उनकी बहुत ही गहराई थी, जो हर व्यक्ति की समझ में आना कठिन है। किसी भी चीज में जिस वाक्य पर रागों के मुख्य स्वर समुदाय रहते थे, वह वाक्य पण्डित जी सर्वप्रथम सिखाते थे जिसमें राग का प्रमुख अंग पहले ही तैयार हो जाये व राग समझ में आ जाये, यह उनका उद्देश्य रहता था।[10] अध्यापन में रूचि, विद्यार्थी के हित के प्रति जागरूकता, अनालस्य, प्रेम, उत्सुकता आदि समस्त गुण जो एक शिक्षक में होने आवश्यक हैं, वे सब आप में थे। कक्षा में दो–दो विद्यार्थियों को एक साथ बैठाकर आप तालीम दिया करते थे और शेष विद्यार्थी सुनते थे। एक राग अधिक–से–अधिक दो बार अपने विद्यार्थियों से गवा लिया तो उस राग की समस्त विशेषताओं से विद्यार्थी भली–भांति परिचित हो जाते थे।

गुणे जी का गायन पारम्परिक और शुद्धता से भरपूर था। उनकी बंदिशें प्रायः सरल होती थीं। आलाप छोटे–छोटे और राग की पूर्णरूपेण अभिव्यक्ति करने वाले होते थे। आकार में मुँह खोलकर साफ–सुथरी तानें वह स्वयं भी लेते थे और शिष्यों को सिखाते भी थे। उनके गायन में सरगम वगैरह ज्यादा नहीं होती थी। जो भी राग गाते थे उनमें मुर्कियों और खट्कों की बड़ी खूबसूरत जगहें तलाश लेते थे, जिससे न तो राग–हानि होती थी और न हि रंजकता में कोई कमी आने पाती थी। राग यमन कल्याण, बिलसखनी तोड़ी, देशी, जौनपुरी, दरबारी कान्हड़ा, मारु बिहाग, बागेश्री, मालकौस, चंद्रकौस एवं भैरवी राग आपके विशेष प्रिय राग थे।[11] गायन की बारीकियाँ, रागदारी, ताल की कलात्मकता एवं मुखड़ों की विविधता, स्थाई–अन्तरा

ताल में पूरी तरह गूँथा हुआ, सधा हुआ कंठ और सुरीली आवाज सभी का सुन्दर समन्वय उन्हें अन्य ग्वालियर गायकों से भिन्न रखता था। अपने शिष्यों को गायन की ये सारी बारीकियाँ सिखाने में कभी कोई कृपणता नहीं करते थे बल्कि योग्य शिष्यों के लिए वे सदैव ही सहृदय रहे।

गुणे जी की गायन–शैली के बारे में सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ पं. रामाश्रय झा 'रामरंग' का कथन है "वर्तमान गुणी श्रोताओं का कहना है कि ग्वालियर घराने की मूल गायकी–कला की दृष्टि से तो सर्वश्रेष्ठ है, परन्तु शब्दालाप न करने एवं प्रदर्शन में बंदिशों की कविता के भावयुक्त हृदयस्पर्शी गायन न होने के कारण सरसता की मात्रा कम है। श्रोताओं की यह धारणा सही है या गलत, इस चक्रव्यूह में मैं नहीं फँसना चाहता, परन्तु नारायण लक्ष्मण गुणे विशुद्ध रूप से ग्वालियर घराने के कलाकार होने पर भी उपरोक्त कमियों से परे थे।[12] गुणियों का कहना है कि संगीत–क्षेत्र में गायन के शिक्षा–कार्य से अपने गायन के प्रदर्शन का आकर्षण जाता रहता है, यह कथन बिल्कुल सत्य है क्योंकि बहुत से प्रतिभाशाली कलाकार, युवा संगीतकार इसके शिकार हो चुके हैं। पं. गुणे जी इस सत्य के बिल्कुल ही अपवाद थे, क्योंकि 18 वर्ष की उम्र से ही संगीत–शिक्षा देने का कार्य करने पर भी उनके गायन–प्रदर्शन में अत्यंत आकर्षण था। विशेष रूप से शिक्षा का कार्य होने के कारण आवाज की जेवारी फैली (बिखरी) होने पर भी आवाज बहुत ही सुर में थी। मुख्य रूप से सप्तक के मध्य में और तार षड्ज के पास जाकर उनका स्वर इतना अच्छा लगता था कि कभी–कभी तो रोमांच हो उठता था। गायकी की दृष्टि से वे राग–धर्म को समझ कर ही गाते थे अर्थात् दरबारी को कितनी देर और अडाना को कितनी देर गाना चाहिए, इसका निर्वाह वे पूर्ण रूप से करते थे। आवाज में तो ऐसी सहजता और स्फूर्ति थी कि गायन प्रारंभ करते ही राग–धर्म के अनुसार अत्यंत सौंदर्यपूर्ण रीति से आवाज फिरने लगती थी। खासकर राग–विस्तार में न्यास, बहुत्व के स्वरों एवं तार षड्ज पर जब वे आरोहावरोह क्रमों के छोटे–छोटे स्वर–समूहों से आलाप एवं द्रुत तानों के द्वारा स्वर–गुच्छ बनाने लगते थे, तो वह सुनते ही बनता था। चूंकि प्रचलित राग एवं प्रचलित राग–गायकी की दृष्टि से वे संगीत के सिद्ध पुरुष थे, इस कारण अप्रचलित राग पर भी उनका पूर्ण अधिकार था।"[13]

उनके द्वारा प्रशिक्षित सुयोग्य शिष्य–प्रशिष्यों ने देश के विभिन्न भागों में अध्ययन, अध्यापन एवं मंच–प्रदर्शनों के माध्यम से संगीत का प्रचार–प्रसार किया। इनमें से उल्लेखनीय नाम हैं :

1. स्व. पं दत्तात्रेय शंकर बेलसरे (वाराणसी के सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ एवं संस्थापक– काशी संगीत समाज)
2. स्व. पं नारायण राव शहाणे (प्रसिद्ध संगीतज्ञ एवं भूतपूर्व शिक्षक– माधव संगीत महाविद्यालय, ग्वालियर एवं संगीत भारती, दिल्ली)
3. स्व. पं रघुनाथ तलेगाँवकर (संस्थापक– संगीत कला केंद्र, आगरा)
4. स्व. विष्णु कृष्ण जोशी (सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ, संस्थापक– श्रीराम संगीत महाविद्यालय, रायपुर)
5. प्रो. सज्जन लाल भट्ट (नूतन कॉलेज, भोपाल से संगीत विभागाध्यक्ष पद से सेवानिवृत्त, निर्देशक– खैरागढ़ विवि से सम्बद्ध काकिली संगीत विद्यालय)
6. स्व. प्रो के व्ही गड़कर (प्राध्यापक– माधव संगीत महाविद्यालय, ग्वालियर)
7. प्रो. हरीश कुमार सलूजा (सङ्गीताचार्य )
8. पं भीमसेन शर्मा (वरिष्ठ प्राध्यापक संगीत विभाग, हिमाचल प्रदेश विवि)
9. प्रो श्यामलाल विद्यार्थी (प्रोफेसर– प्रयाग संगीत समिति, प्रयागराज)
10. डॉ. महारानी शर्मा (सेवानिवृत्त प्रवक्ता, डी पी गर्ल्स इन्टर कालेज, निर्देशक– आशीर्वाद संगीत महाविद्यालय)
11. प्रो सीताराम व्यवहारे (अवकाशप्राप्त विभागाध्यक्ष संगीत विभाग– बैकुंठी देवी महाविद्यालय, आगरा)
12. श्रीमती रश्मि चौधरी (कार्यक्रमाधिकारी, आकाशवाणी, लखनऊ)
13. श्रीमती सुषमा सिंह (जय विलास पैलेस, ग्वालियर)
14. श्री समरेन्द्र घोष (प्राध्यापक– प्रयाग संगीत समिति, प्रयागराज)
15. श्री सुदेव राय ( प्रवक्ता– राजकीय महाविद्यालय, अंडमान)
16. श्रीमती छाया घोष (प्रवक्ता– महिला सेवा सदन कालेज, प्रयागराज)

निश्चय ही, पं. गुणे के संगीत जगत को समर्पित कार्यों के लिए हम सभी संगीत साधक, प्रेमी और विद्यार्थी उनके ऋणी हैं। उनकी मान्यता थी कि "प्रत्येक घराने की कुछ विशिष्ट गायन–शैली है। संगीत के छात्रों को चाहिए कि जिस घराने की गायन–शैली में जो अच्छाइयाँ हैं, उन्हें आत्मसात करें।" उनकी लगन और ज्ञान की प्यास ने उन्हें संगीत में मूर्धन्य स्थान प्राप्त कराया। उनकी साधना किसी संकीर्णता की शिकार नहीं हुई। समन्वय उनकी साधना का मूल मंत्र था।[14] पं. गुणे एक संगीतज्ञ कलाकार थे, वाग्गेयकार थे । संगीत जगत् में उनका अभूतपूर्व योगदान था ।

**संदर्भ सूची :**


1. झा, पं. रामाश्रय, पं नारायण लक्ष्मण गुणे स्मारिका, 27.9.1988, प्रथम पुण्यतिथि, पृ. 7
2. शर्मा, डॉ महारानी, पं नारायण लक्ष्मण गुणे स्मारिका, पृ. 43
3. पाठक, डॉ राजकुमार, शांकरी, साप्ताहिक पत्रिका, 24.9.1991
4. गड़कर, प्रो. के व्ही, पं नारायण लक्ष्मण गुणे स्मारिका, पृ. 16
5. पूछवाले, श्री बालासाहब, पं नारायण लक्ष्मण गुणे स्मारिका, पृ. 14
6. गुणे, पं. नारायण लक्ष्मण, संगीत प्रवीण दर्शिका, भाग एक, पृ. 25
7. वही, पृ 59
8. वही, भाग दो, पृ. 56
9. वही, भाग–2, पृ. 5
10. गड़कर, प्रो. के व्ही, पं. नारायण लक्ष्मण गुणे स्मारिका, पृ. 16
11. शर्मा, डॉ. महारानी, साक्षात्कार के अंश से साभार
12. झा, पं. रामाश्रय, पं ना. ल. गुणे स्मारिका, पृ. 24
13. वही, पृ. 25
14. अवस्थी, डॉ. मोहन, प्रयागराज टाइम्स, इलाहाबाद, मंगलवार 27.9.1984

# Sharadchandra Arolkar and his authentic Gwalior Gayaki

**Dr. Ranjani Ramachandran***

**Abstract**

*Sharadchandra Arolkar (1912-1994) was a practitioner of the Gwalior Gharana. His gayaki was based on deep introspection of the very ethos of khyal vocalism and an interpretation of his talim. This article is an exploration of his gayaki through the process of an objective analysis based on the recorded music of Arolkar. This analysis further reiterates the notion of diversity within a gharana and in Hindustani music practice. Commencing with an introduction to the important features of Arolkar's gayaki, the article includes the methodology followed to analyse selected recordings. It further brings a fresh perspective of studying a gayaki with reference to the selected audio materials. The discussion section includes an account of Arolkar's musical tutelage and influences which had an imprint on his personality as a musician and in turn shaped his independent interpretation. The concluding sections provide a detailed account and a comparative note on the features of the Gwalior gharana, taken as primary parameters for analysis, with the corresponding treatment of the same by Arolkar. In the wider context, this process gives a glimpse of the musical process of a musician who charted a unique expression in interpreting khyal itself in modern India.*

**Keywords :** *Gharana, Khyal, Analysis, Gayaki, Improvisation*

**Research Methodology :** *The gayaki of Sharadchandra Arolkar has been studied through an objective analysis of his recorded music based on the features of Gwalior gharana of khyal as the essential parameters. Hence, research with critical analysis is the primary methodology which has been adopted to understand the gayaki of Arolkar. While the conclusions are based on the recordings and hence an objective viewpoint is followed, additional information about his gayaki has been supplemented primarily through conducting interviews with practitioners who were his disciples such as Neela Bhagwat and Sharad Sathe. The parameters for analysis of a recording sample, drawn from the Gwalior gayaki features are voice production or swar lagaav, prelude alaap before the commencement of the bandish (vilambit khyal in most cases), bandish (the number of times the sthayi and antara has been rendered, the adherence to the authenticity of the rendition of the bandish) and mode of improvisation (treatment of alaap, bol-alaap, behelawa, bolbant, bol-tana and varieties of tana). Additionally other details such as genre, raga, laya and lyrics of the bandish were also noted for each recording sample.*[1]

## Introduction

Hindustani classical music performance practice is predominated with two genres today namely dhrupad and khyal. The notion of stylistic diversity within these genres is what makes them part of a living tradition. The khyal form which has an inherent ability for the manifestation of individual creativity became a vital means for the establishment of the gharana concept. This article focuses on the important work of musician scholar Sharadchandra Arolkar, who was a practitioner of the Gwalior gharana with an individual interpretation and gayaki. The milieu of Hindustani music is strewn with examples of musicians who were exemplary practitioners and did not frequent the concert stage as much as their contemporaries. Perhaps due to their disinterest in conforming to the etiquette of the performing

*Assistant Professor, Department of Hindustani Classical Music, Sangit Bhavana, Visva Bharati, Santiniketan,West Bengal

world or simply due to their quiet confidence in their language of expression, these musicians often remain known in the extremely close-knit circles of Hindustani music. Sharadchandra Arolkar is one such name. The expansiveness of his renditions in a laya which did not deviate from the slow-medium tempo of typical Gwalior khyals, evocative expression through meend in his alaaps and the myriad ways in which he explores and expands an idea in a khyal rendition, gives a sense of a thinking musician who was both contemplative and analytical.

**Study Area**

Arolkar is acknowledged as a musician's musician who had a somewhat subdued career as a concert artiste but nevertheless had a profound impact on the aesthetics of the khyal form that he had studied in detail. Literature survey on available sources reveals that a number of short biographies describing the gayaki of vocalists from different gharanas, is available. Ashok Ranade in his book "Some Hindustani Musicians-They lit the way!" describes the musical contributions of some vocalists with whom he interacted. B.R. Deodhar, who was a disciple of Vishnu Digambar Paluskar, gave insightful accounts of the musicians with a short biographical sketch and salient features of the gayaki of each, published in Sangeet Kala Vihar and later compiled in the book Thor Sangeetkaar. Neela Bhagwat in her book Sharadchandra Arolkar: Lene Pratibheche has documented the contribution of Arolkar. The above sources have been used as reference material, nevertheless, the current work relies more on objective analysis of the recordings of Arolkar. For the purpose of analysis, the following recordings were selected for review: Miyan ki todi (laala manaavana; vilambit khyal in tilwada and pathakawa gailo, drut khyal in teentala), Bihag (patiya payore, vilambit khyal in tilwada and hamare gusaiyan aan mile, drut khyal in teentala), Bhairav (balamava, vilambit khyal in tilwada; aaj nandlaal sakhi in jhaptal, tarana in drut ektala), Gaudmalhar (kahe ho, vilambit khyal in tilwada; jhuki ayi badariya, drut khyal in teentala).

**Discussion**

Sharadchandra Arolkar was born in Karachi in 1912. He did not belong to a family of musicians but his father's interest in philosophy led to his own inclinations towards spirituality and a philosophical mindset. As he himself states in an interview conducted by P.L. Deshpande[2], he had a keen sense of retentive power and could assimilate the nuances of other performing musicians (even at a young age) after having heard them a couple of times. He was a traditional khyal vocalist but had acquired a vast repertoire in others genres such as thumri, tappa, tarana, bhajan and even ghazal. To each of the genres that he presented, he gave a highly individual interpretation based on the premise that a sound integration of the shabda (poetry), dhun (raga) and theka is the basis of all good music.

Arolkar had his initial training from Laxman Bodas, who was a disciple of Vishnu Digambar Paluskar. He was exposed to eclectic training at the Gandharva Mahavidyalaya, where Laxman Bodas taught, and became adept at playing instruments like the sitar, harmonium, organ and tabla in addition to vocal music. This expertise came in handy in his music training at a later period. Arolkar was deeply inspired by Rehmat Khan's gayaki (son of Haddu Khan of the Gwalior gharana) and as admitted by himself, his special yearning for music developed upon listening to the 78 rpm records of Rehmat Khan. The mellow vocalization that Arolkar projected in his singing seems to be a direct influence of Rehmat Khan's music on him. Arolkar eventually went to Gwalior and had training under Krishnarao Shankar Pandit, the well-known exponent of the Gwalior Gharana, for a period of four years from 1932-36. He learnt the nuances of the gharana through the traditional mode of teaching adopted

in the Gwalior gharana[3]. Teaching of bandish is accorded primary importance. The raga vistar or improvisation is mainly executed through bol-alaap and behelawa both of which are done in accordance to the bandish anga. Arolkar's repertoire of tappa is perhaps attributed to his association with Krishnarao Pandit since the latter also used to sing tappa. Arolkar's vast repertoire of bandishes is attributed to his association with beenkar exponent Eknath Pandit, with whom he trained till 1950. Bhagwat opines that the concept of the form of khyal compositions and the improvisation of the song form are the two things Arolkar learnt from Eknath Pandit (1992: 32-35). Arolkar's repertoire of thumri was essentially from his third guru Krishnarao Mule, who was a very knowledgeable musician. He was a beenkar, primarily trained by Bande Ali Khan. He received extensive talim (training) in the thumri genre from Ganpatrao Apte.

Thus, the lineage that Arolkar represented shaped his gayaki, which was contemplative, demanding and required a very high degree of aesthetic sensibility in order to be appreciated.

The next section will give detailed observations of Arolkar's gayaki based on the analysis of selected audio material. As mentioned earlier, the analysis of his recordings has been carried out with respect to the salient features of the Gwalior gharana khyal gayaki.

**Results and Conclusion**

Arolkar adhered to the basic features of voice projection as prescribed for the Gwalior idiom such as open throated, natural voice production and preference for a high pitched voice. Nevertheless, individual voice quality plays a significant role in shaping up the voice projection of an artiste. This individual trait is both cultivated and subjective. Arolkar had a thin voice and he adopted a mellow and caressing approach towards voice projection. Continuity maintained between the phrases through a reasonably sustained note production was one of the principal features of his gayaki.

Introductory alaap performs the function of creating the right mood for the rendition of a raga. Arolkar usually sang a short characteristic phrase of the raga before commencing the vilambit khyal rendition and the melodic structure of the alaap was always in relation to that of the bandish to be sung later. He perceived the utility of the introductory alaap to test one's voice on a particular occasion and subsequently aid in the choice of the bandish to be presented. As an extension of the same approach, singing the words of the bandish as part of the prelude alaap, was also a strategy adopted by Arolkar.

The Gwalior gharana gayaki pays due attention to the faithful rendition of the bandish. Sthayi and antara of the bandish is sung successively in the beginning. Arolkar observed complete integration of swara (Raga), shabda (lyrics), and theka (tala) in bandishes and considered this as an important trait of the Gwalior gayaki. Interpretation of the bandish was his primary focus. The lyrics of the bandish are also important and the pauses between words are present essentially to assimilate or internalize the overall mood of the bandish. He was adept at utilizing the syllables of the song text (bandish) to achieve an effective impact through the extension of vowels and consonants.

Gwalior khyals lean more towards a medium and slow-medium tempo and the gayaki is synchronous with the laya. Arolkar had a very acute sense of laya which was unobtrusive yet effective. He was more of a layadaar than a layakaar which only meant that he perceived laya in a very subtle manner. He launched his khyals at a tempo of 27-40 beats per minute and concluded with slight variation in tempo, at 32-56 beats per minute. While he confirmed to the medium tempo that Gwalior gharana gayaki adheres to, his music gave the impression of being

unhurried and expansive.

There is focus on rendering alaap in accordance to the bandish structure in the Gwalior idiom. In Arolkar's renditions, this notion is prominent; for instance, if the sam of a bandish is on the note pancham, the alaap phrases start with focus around pancham (pa) rather than commencing from shadja (sa). He laid emphasis on meend as a prominent melodic expression, portraying subtle shrutis of the raga. Bol-alaap featured prominently in improvisation; additionally, the specific elongation of syllables of the song text was a special feature of Arolkar's gayaki. His use of pause just before the mukhada, enhanced the arrival of the sam of a bandish. This particularly accentuated the effect of the sam which Arolkar termed as the 'highest emotional point' of music[4]. Another feature in his gayaki that is noteworthy is that, he maintains a co-relation between the mukhada and the preceding alaap design. This lends a high degree of continuity and flow in his gayaki.

Sapaat and avarohi taans are a speciality of the Gwalior gharana khyal renditions. Arolkar also focused on saral taans involving single notes rather than double notes and sapaat movement in the avaroha often plunging to the mandra notes (lower register) before ascending again. In most renditions by Arolkar, articulation in taans is a combination of akaar and bols of the bandish wherein the syllables of the song text are elongated as in alaap.

In terms of the choice of raga, Arolkar preferred to sing siddha raga-s which have an inherent scope for expansive improvisation and hence enjoyed a vast repertoire of bandishes in ragas like Yaman, Bhairav, Bihag, Bhoop, Darbari and Todi to name a few[5]. But, additionally some rare raga-s like Shankara-bihag, Bhairav-bahar, Maand-jogiya and Jogiya-asavari were also included in his raga repertoire. As already mention earlier, apart from khyal, Arolkar also studied tappa and thumri in considerable detail. He nevertheless used the khyal form as the predominant medium of expression. It is imperative that forms that thrived on evocative expression found a place in his repertoire[6].

In conclusion, it is observed that, the detailed analysis of the many facets of each salient feature as prescribed for the Gwalior gharana, has thrown up greater possibilities of how the gayaki of an artiste can be perceived. The individual musicianship and creativity of practitioners like Sharadchandra Arolkar can add fresh dimensions to an already established musical style or gayaki (Gwalior khyal vocalism in this case), resulting in progressive refinement and enrichment of the gharana. This study gives a new and analytical perspective of the musician who gave a personalized dimension and a contemporary interpretation of his gharana and in the larger context, to the khyal genre. Arolkar, who was born in the pre-independent era and trained under multiple gurus, embraced the tools of modernity and archived his discourse and thoughts on music. In this respect, he is an inspiration to a new generation of serious musicians who want to engage in Hindustani music, with an integrated approach.

**Notes**

1. For more detailed reading of this research methodology see Ramachandran (2013: 6-10)
2. Arolkar's interview conducted on 26th March 1980 by P.L. Deshpande in a programme held to felicitate Arolkar for receiving the central Sangeet Natak Akademy award. I would like to thank Sharad Sathe, his disciple for providing me the interview recording.
3. Arolkar's views on music and recordings of bandishes were conducted by the Sangeet Research Academy, Kolkata between 24th March to 5th April 1990. Neela Bhagwat has documented excerpts of this interview conducted by K.G. Ginde in her book Sharadchandra Arolkar: lene pratibheche. See Bhagwat (2012: 84-85)

4. This viewpoint of the sam has been mentioned by his close associates Neela Bhagwat and Suresh Talwalkar, acknowledging Arolkar's acute understanding of the finer aspects of laya.
5. This preference for siddha ragas is corroborated by his disciple Sharad Sathe. It is also commensurate with the fact that he laid stress on developing a raga on the basis of a bandish through bol-aalap.
6. For a detailed discussion on selected audio recordings, see Ramachandran (2013: 141-149)

**References :**

Arolkar, Sharadchandra. (1995). Gwalior gharana aur gayaki. In Shreerang Sangoram (Ed.), Mukta Sangeet Samvad (pp. 82-93). Pune: Gaan-vardhan.

Bhagwat, Neela. (1992). Krishnarao Shankar Pandit: A doyen of Khyal. Bombay: Popular Prakashan Pvt Ltd.

-.(2012). Sharadchandra Arolkar: Lene Pratibheche. Mumbai: Lokavangmaya Griha. [Marathi]

Deodhar, B. R. (2007). Thor Sangeetkaar. Mumbai: Popular Prakashan. [Marathi]

Nadkarni, Mohan. (2005). The Great Masters: Profiles in Hindustani Classical Vocal Music. New Delhi: Rupa & Co. Ramachandran, Ranjani. (2013). Stylistic diversity within the Gwalior gharana: an analytical study of the gayaki of some Gwalior gharana vocalists from the 20th century[Doctoral Thesis, Savitribai Pule Pune University]. Shodhganga@INFLIBNET. http://hdl.handle.net/10603/250317

Ranade, Ashok Da. (1984). On Music and Musicians of Hindoostan. New Delhi: Promilla & Co. Publishers.

-. (2006). Music Contexts A Concise Dictionary of Hindustani Music. New Delhi: Promilla & Co. Publishers.

-. (2011). Some Hindustani Musicians They Lit the Way!. New Delhi: Promilla & Co. Publishers.

**Interview/Personal Communication**

Bhagwat, Neela. (2012, April 5). Interview. Pune.

Sathe, Sharad. (2012, April 12). Interview. Pune.

**Audio Materials**

Arolkar, Sharadchandra. (1969). Raga Miyan ki Todi. Private collection

Arolkar, Sharadchandra. Raga Bhairav. Private collection of Sharad Sathe

**Private Recordings, Personal Collection of Sharad Sathe:**

Arolkar, Sharadchandra. (1980, March 26). P. L. Deshpande interviews Sharadchandra Arolkar. Mumbai.

Arolkar, Sharadchandra, & Athavle, V.R. (1989, January 15). On Gharana and Gwalior Gharana. (P. L. Deshpande, Interviewer) At Gwalior Gayaki Parampara Music Festival, Deenanath Natyagriha, Mumbai.

# Exploring the Influence of Art Deco in Fashion : The Spectacular Rise and Fall of the Movement

**Aditi Agrawal*** Haiqa Siddiqui** Tamoghna Mandal***

**Abstract and Purpose**

*Fashion is volatile, it embraces change, emancipation, and progress. It has evolved as a progeny with racing times, created using a strong colligation of elements like the arts, architecture, status, gender, symbolism, culture, and fiction. It is a colossal explosion of various design ideations, curated with imagination, and made commercially viable by the so-called designers. Fashion is a new terminology with less than 100 years, taking ideas that already existed and putting them forward to consumers with a new attitude.Art has always had a structural relationship with fashion, which began from Art Nouveau, Dadaism, Baroque, Cubism, or the Art Deco Movement. Thepaperis a discussion about the indelible period of Art Deco and its influence on mainstream Fashion design. The idea is also to find out the reason why Art Deco has never been cultivated in Fashion scenario,despite a fine beginning in the early 1920s. Sumptuously modern, its influence on fashion is undeniably impressionable. Although it's assessed as to why it did not upsurge in mainstream Fashion Industry and perhaps has never been discussed or been published in anyresearch paper so far. Although this movement marked a new era when art was not only subjugated to paintings and sculptures but became more exposed to the masses in the field of Design. There are many modern designers who gave it a new look to inspire statement pieces.In lieu to further exploration of relevance, this research will serve the purpose of finding how various art forms keep recurring and how the principles of Art Deco are reflected in Fashion and creativity. The paper also discusses the reasons why the Art Deco did not grow up to be one of the mainstream design elementsused by designers all around the world.*

**Keywords :** *Art Deco, Time frame, Characteristics of Art Deco, Designers invoking Art Deco, Paul Nystrom's Theory, Revival of the Art Deco, Art Deco and its movement in Fashion, Art Deco in future.*

**Methodology :** ***APPROACH***

*The approach of the current study is purely empirical with thorough discussion based on the statistical data of the views and opinions of different people in the field of Fashion. It has both secondary (qualitative) and primary (quantitative) methods of data collection and analysis [22,24]. Firstly, relevant secondary data was reviewed extensively from sources like published research papers, reputed fashion publications, books, and articles. The data has strong and vivid logic on the concept and the analysis of Art Deco Fashion. As for the primary data, it was collected through 5 steps which are-; 1. Interviews, 2. Trend Study, 3. Study of Paul Nystrom's Zeitgeist theory, 4. Art Deco Photography and Drawings,5. Trend Study and recent analysis of Designers to adhere three important reasons for this conceptual research study [22]. First, accruing knowledge on why Art Deco perished so easily. Secondly, why has it been less nurtured in the Fashion Industry [26]. Lastly, will it be back in the recent fashion scenario amidst Post Fashion change or will it be an amalgamation of two or more concepts that will brew together and form a new genesis of Art Deco Fashion, focusing on consumer needs related to androgynous styles? [25,26].*

*Assistant Prof (Fashion Department), Amity University Kolkata
**Amity Student (Fashion Design, UG Course), Amity University Kolkata
***Amity Student (Fashion Design, UG Course), Amity University Kolkata

***DATA COLLECTION***

*Phase 1: Collection of Data – In this phase, data is collected from various books, the internet, research papers, articles published in newspapers, E-magazines, and interviews with 1 or 2 designers in the relevant field to achieve the first and second objectives [22,27].*

*Phase 2: Analysis of Data – This phase is solely devoted to comparing Art Deco and Fashion in its roaring period. Also, its decline to establish similar influences led us to our third objective, understanding the gap.*

*Phase 3: Evaluation of Data – Evaluation of analyzed data was done by Fashion designers to validate findings with the help of an Opinionnaire and charts. Results were discussed under different categories.*

## Introduction

Arguably the most revolutionary art movement, Art Deco is hardly an expression of a definite style [4]. It is a conspicuous assemblage of distinct styles brought together by an array of artists and designers. Originated in the 1920s, its complexion can be perceived in fashion, graphics, and architecture [1]. The movement is considered a significant one due to its impregnability and willingness to adopt change without compromising traditional values. It is a wholesome brew of luxury and finesse where functionality is indispensable [3].

Bevis Hiller an English Historian, author and Journalist, in his book gave cogent reasons for selecting the label, Art Deco of the 20s and 30s, says that the movement responded to the demands of the machine and of new materials. Three years later, he redefined his definition, identifying two main strands: the feminine, somewhat conservative style of 1925, chic, elegant depending on exquisite craftsmanship and harking back to the eighteenth century; and the masculine reaction of the thirties, with its machine age symbolism and use of new materials like chrome and plastics in place of old beaux-arts materials such as ebony and ivory. Later and even today, designers and artists are highly captivated by the words of Hiller and his oration is well preserved and acknowledged in the evolution of the Art Deco style[3]. The current research deeply emphasizes the connection between Fashion and Art Deco. Details and materials for this study have been collected from both, primary and secondary sources. Books, publications, web journals have contributed to the secondary sourcing of data and facts. Whereas, the primary sources include interviews, photographs, and trend studies of eminent designers who have extensively worked on the art form[1,5].

## CONCEPT FRAMEWORK : ART DECO & FASHION

Art Deco appearing first in France just after the World War 1 captured the essence of visual arts, architecture and painting. After the disesteem of Art Nouveau, itentered the world of art and later architecture as a streamlined aesthetic, combining both the geometric look of cubism and admiring the inherent design features of machine-made objects [6]. It is recognised as Art Decoratifs from the Exposition Internationale des Arts Décoratifs et Industriels Modernes held in Paris, 1925.The diverse styles that characterize Art Deco had already appeared in Paris and Brussels before World War I [7]. It was apparently seen in paintings, architecture, films, and visual design [8]. Gradually, it took an elaborate form with subtle embellishmentsand entered the world of fashion in the 1920s. Shimmery fabrics and body-hugging silhouettes reflected Art Deco's visible influence on fashion. In all the studies, it is observed that Art Deco was eclectic in design, purely decorative, elegant, and modern. Its opulent style is attributed to the reaction from forced austerity imposed by World War I. Artists like Erte, Louis Icart, and Tamara de Lempicka are

well-known artists of this style. (Art Deco Artists - Daring, Exotic and Erotic! - Decolish!, n.d.) It has been observed that Art Deco gave birth to a new optimism after a morbid World War. It took several years after its emergence to rise as a new art form and paved its way into fashion, but declined easily or still remains unexplored. The most common form of its mannerisms are evocative designs, vivid colours, powerful lines, and geometric patterns that empower the very soul of Art deco. Conceptual studies and research followed, that the impact can be traced in all fields of arts and visual design but less in clothes and garments. Few exceptions include the early era after the Edwardian period (1900-1912) and later revived by few designersand Design houses like Gucci, Veronica Etro, Holly Fulton andothers ofthe millennium period.

**REVIEW OF LITERATURE**

1.1 THE ENTRY OF ART DECO

Many fashion books and theological understanding have pointed out that Fashion is about the zeitgeist.Immersed in the surrounding ideas and affairs of the world, it resonates creativity with purpose. Very contradictory to the assertion, it is also believed that fashion is about history and reliving the past. Bringing parity, fashion imbibes values from the past and alters them suitably to the spirit of times.Famous Art Deco fashion designers included Paul Poiret (1879-1944), founder of the Ecole d'Art Decoratif Martine and Atelier Martine, while famous Art Deco fashion illustrators included George Barbier (1882-1932), (Barbier, 1988) Umberto Brunelleschi (1879-1949), Erte (1892-1990) and Charles Martin (1884-1934) who have embraced the Art form [9]. Poirot's art (Fig 1.1) and illustrations had an early evidence of the Deco style, which started developing into gowns and dresses from 1910. It is observed that Art Deco rose around the year 1910. From 1920-1935, the movement reached its zenith especially in areas of visual arts and design. It had a promising growth till 1940-1942, however it suffered a rapid decline by 1945 until, influential Parisian designer Christian Dior took over the Fashion game by storm in 1947, introducing"the new look."

The most vivid and august creation of Art deco in the field of architecture has been the Chrysler Building and Radio City Music Hall in New York City. The most important artists during the times of Art Deco invasion have been Pablo Picasso, Fernand Leger, Sonia Delaunay, and Wassily Kandinsky, who have mastered and experimented the meadows of art along with few others working on furnishings, textiles, jewellery, and advertising.

Fig 1.1

Fashion by Paul Poiret, illustrated by Georges Lepape in Les Choses de Paul Poiret, 1911.

After taking inspiration from textile and fashion design, Paul Poiret in the year 1910 made a pioneering entry of Art Deco into the Fashion world. Eon Bakst had concocted oriental costumes in dazzlingcolours; this brought a demand from the fashion world for exoticism, that was answered by the couturier Paul Poiret. In 1912, he created his own design school, the Atelier Martine, to expand his Art Deco ideas. By the 1920s, the effect of Art Deco style cubist paintingswas seen in advertising and product designs.Coco Chanel used cubist colours and forms in creating women's fashion, especially seen in her line ofArt Deco

jewellery[10].

Fig 1.2

Fig 1.2- Chanel illustration in American Vogue, October 1926 showing tubular silhouette with art deco accessories. (Picture from Vogue.com)

## 1.2 THE EMERGENCE OF ART DECO IN FASHION WORLD

The immense contribution of Paul Poiretcannot be ignored. Known as the "King of Fashion" he paved his way into fashion through theatre, envisioning the stage as his runway [11]. After learning under the shadow of Charles Frederick Worth, Poiret helped in the liberation of women from the S-shaped silhouette.He also prompted an uncorseted silhouette which led to the introduction of bias-cut dress,(Fig 1.3) & (Fig 1.4) geometric shapes and long lines with exaggerated neckpiece and accessories. Poiret paved the way to fine drapery by abandoning the archaic ideas of dressing, which wasostentatiously dramatic. However, vibrant ideas of Orientalism directed his ideals of creativity and design [1,11].

"It is ironic that Poiret rejected modernism, given that his technical and commercial innovations were fundamental to its emergence and development. But although Poiret's Orientalism was at odds with modernism, both ideologically and aesthetically, it served as the principal expression of modernism." [18].

Fig 1.3 Fig 1.4

Fig 1.3-Evening coat by Paul Poiret, c. 1912, silk and metal featuring Art deco Style with tubular silhouette, bias-cut dress, and bright prints of Floral designs (Metropolitan Museum of Art)

Fig 1.4- Evening Dress of Art Deco-inspired Floral impressions with a large bow at the back by Paul Poirot in 1929 [14].

The middle era of the 1920s brought a major shift in women's clothing [13]. The Women's liberation Movement led to a historical change, women had recently gained the right to vote and were seen filling the void created by men who lost their lives in the World War. With the arrival of Coco Chanel, (Fig 1.1) a young French designer, functionality was being preferred over aesthetics. With the introduction of the 'Flapper' style in fashion, Coco Channel was well aligned with the Art Deco style. The main characteristics of this style were short hemlines, tubular silhouettes giving a streamlined look, geometric designs along with floor-length hemlines[15]. Luxurious fabrics like silk, satin, chiffon, lace along with heavy embellishments of gold and diamond were quite popular. The period was also known as 'The Machine Age' which saw the tremendous mass production of goods, and the economy was at its peak [8,12]. This led to the emergence of the luxury goods market. As women got aware of their rights, a new interest came out to be sports, and this leisurely activity generated the need for a new dress style [16]. The 1920s fashion was very androgynous, women's clothing no longer

emphasized their breasts and butt. Women did not wear corsets with heavy embellishments, instead, they preferred comfort and functionality over aesthetics [14]. However, every bright morning has its gloomy end. A ghastly world war (Frist world War, 1914-18) followed by the Great Depression (1929, in Britain) and the threat of another World War (1939-45) led to a huge political disturbance. This caused a change of acceptance among people, along with the emergence of class division. The upper classes were feeding on luxury while the lower strata of the society suffered a high unemployment rate and poverty. "The optimism of the 1920s was beginning to be replaced with a bleak sombreness." [16,17]. However, the elites of the society still preferred the luxury and grace offered by the Art Deco Movement. "Less expensive materials were being co-mingled with luxury materials which satisfied the less affluent consumers- people were still able to purchase luxury products, albeit at a more palpable price." The Great Depression had badly affected the economy and with the threat of a second world war, the glitter and grandeur offered by Art Deco were gradually depleting in popularity as people considered it to be a hazy future [16]. Once World War II broke out, Art Deco declined.

## 1.4 NYSTROM'S FRAME-WORK OF ZEITGEIST AND END OF ART DECO STYLE

In the year 1928, a well-known economist and academician, Paul Nystrom tried to name certain factors for observing a process of changes in the spirit of times[19]. His framework for observing the "zeitgeist" which means "spirit of times" provides certain dominating factors to help observe the sociocultural changes [19,20]. These changes control the occurrence and recurrence of certain fashion naivety. It helps the consumers identify new changes and understand whether they want to accept or reject them. The factors responsible can be divided into 5 major heads: dominating events, dominating ideals, social groups, attitudes, and technology. To understand this further one needs to consider what drives a trend. Trend depends on three characteristics [22].

These are:

1. Emerging trends
2. Building trends
3. Declining Trends

The visual pattern of these trends come under 3 patterns of Fashion derivatives:

1. Fashion Curves
2. Fashion Cycle
3. Pendulum Swing

Technological changes, the introduction of new fibers and fabrics, etc, leads to alterations that can be seen in the visual patterns, affecting the fashion scenario [21,22]. It has been observed that Art Deco has its significance directing towards the Fashion Curve. Among the three types of visual patterns as discussed above, any trend adopted by the consumers falls out of time due to new entries, lack of adulation, or spark of excitement. This was mainly due to Dominating events as per Nystrom's framework of Zeitgeist theory, where the '40s saw a periodical, political and social change due to the outbreak of the second work war. This was when the rise of unadorned styles and structured silhouettes was accepted. Just after the world war in 1945, the emergence of the "New Look" by Christian Dior gave a stoical end to the artistic fashion of Art Deco Style.

## 1.5 REVIVAL OF ART DECO

"Art Deco would have died out completely, it seems, had it not been for the generation that came of age in the 1960s, born during and just after the style's original heyday. The mid-to-late 1960s presented a melting pot of conditions favorable to the revival of the Art Deco Style."After the traumatizing effects of the post-war economic crisis and recession, the younger crowd was looking for inspiration through old movies and the post-modernist era [23]. Art Deco

was known for clear and precise lines, geometrical patterns, and vivid decoration. Modern artists and designers like Yves Saint Laurent, Pierre Paulin, Joe Colombo, Elton John, and Verner Panton, were not necessarily looking at Art Deco for inspiration but the eclectic mix of styles that their work represented was concurrent with Deco in the 1920s. Strong use of vivid colors, like black, gold, and silver along with vibrant blues, yellows, and oranges made up the Art Deco Colour palette. Strong geometric patterns, streamlined silhouettes, and forms, depicting a very modern outlook reflected a taste in art and design that paid homage to the sumptuousness of Art Deco in the 1920s. During the 1960s-1970s, one of the prominent moments in fashion was the length of women's skirts and dresses. This is when the famous "Mondrian collection" by a young designer taking the position at the Dior House in 1965, showed a glimpse of Art Deco again (Fig 1.5) [30]. Though Art Deco had its heyday in the 1920s and 1930s, the style has made an important comeback, dominating the luxury interior design market due to its elegant, sophisticated look and application.

Fig 1.5

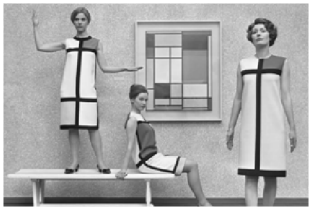

Fig 1.5 The Mondrian collection by Yves Saint Laurent, 1965. (Picture from Wikipedia.com)

The vibrant prints and colours matched the zeal of young, optimistic, modern women. Futuristic Designer Andre Courreges was inspired by the space age. His designs were minimalistic, functional, and very futuristic [27]. All these styles faintly echoed the knells of Art Deco and its principles.

"Art Deco can be simply defined as a style 'characterized by precise and boldly delineated geometric shapes and strong colours…'as per Oxford Dictionaries and perhaps Gucci's Spring/ Summer RTW for 2012 was an accurate reflection of the words asserted by the Oxford Dictionary. A gorgeous blend of textiles, colours and embroidery with crisp shapes and silhouette. According to Frida Giannini, the motifs showed on the runway of Gucci Spring/Summer 2012, were a pure coincidence. It was a collection where the architectural shapes of the New York Skyscrapers of the period was emanated to perfection. The clothes had an interesting mix of colour-blocking and embroideries that gave the collection an anti-retro appeal. A tribute to the 1920s, her designs included a fairly androgynous silhouette, short and boxy jackets, geometric prints with Deco buttons and fastenings. (Fig 1.6,1.7.1.8)

Fig 1.6

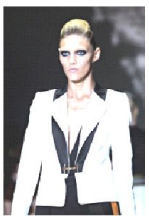

Fig 1.7

Fig 1.8

(Gucci Spring/Summer 2012. Pictures reference: Vogue.com)

Frida Giannini was not the only one inspired by the flux of colours, prints and geometry of the 1920s fashion. Veronica Etro gave us a modern, fun and a playful collection with the right amount of sophistication and luxury of the Art Deco style [28,29].

The signature pattern of the label was deconstructed into black and white Art Deco graphics and prints. A sorbet of colours, prints and geometry making the Art Deco Movement proud. (Fig 1.9.1.10.1.11)

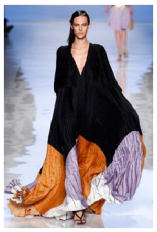

Fig 1.9

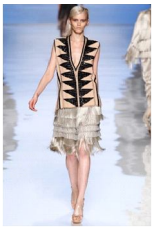

Fig 1.10

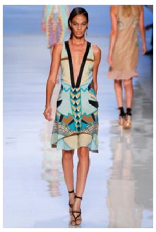

Fig 1.11

(Etro Spring/Summer 2012.Pictures reference: Vogue.com)

Designer Holly Furton, known to have disparate sources of inspiration is often seen attached to the Deco style of Architecture [24,25]. Her use of luxurious fabrics, elaborate embellishments, futuristic decor, and retro prints form the very DNA of the brand. (Fig 1.11 & 1.12)

Fig 1.12

Fig 1.13

Fig 1.14

(Holly Furton Spring/Summer 2011. Pictures reference: Vogue.com)

ART DECO AND ITS INFLUENCE ON DESIGNER'S TODAY

Creativity is one of the key aspects of a designer's journey in fashion, architecture and design. Influences from the past play a major role in moulding a future, full of hope and ideas.

Art Deco takes hints on futurism with its casual references of geometrical shapes, sharp angles and strong colours. Art Deco is identified by geometric designs, bold coloursand these elements are applied to decorative items that are now being used dramatically by the designers of today. The patterns represented in Fig 1.15, 1.16 and Fig 1.17 are created keeping in mind these various elements like lines, circles and curves, amongst various other elements. The vivid colours have been inspired from the famous paintings of Tamara De Lempicka while the lines and shapes have been inspired from ted Silvera's artwork.

A clever question is to ask, how can we "budding designers" of today reminisce the glorifying beauty of art Deco in current fashion times.

Fig 1.15

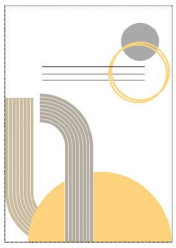
Fig 1.16

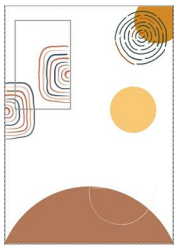
Fig 1.17

Fig 1.18

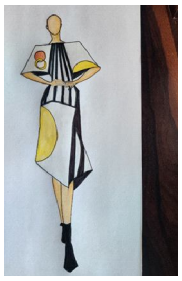
Fig 1.19

(Fig 1.18 and Fig 1.19, are inspired from the patterns created above, keeping in mind the trends of Spring/Summer 2022)

**RESULTS /FINDINGS :**

An Analysis of Art Deco over the period of 30 years was done and it has been observed that the main criteria of Art Deco features had been the Colour story, Silhouette, and Design Details. Scaling down, it is observed that Art Deco is always characterized by smooth fabrics, clean sharp silhouettes, decorative edging, and designs that symbolize elegance and grace [24]. From the below figure it is observed that,

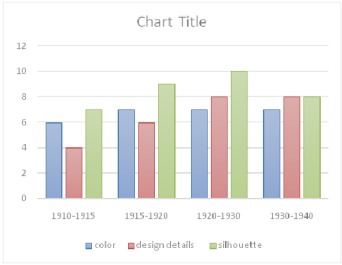


Fig 1.20: (The chart represents an analysis of Art Deco during the period from 1910-1940)

In the year 1910-15, most people agreed that the silhouette was the main area of concentration for designing an Art Deco-inspired collection. Designs mostly featured straight tubular, and boxy silhouettes. Designers are well known for popularizing those silhouettes; Jean Lanvin, Paul Poirot, Chanel, and others.

In the next 5 years (1916-21) the consumers found that the designers at that time concentrated more on colors, silhouette, and fabrics than on design details. Layers of glossy fabric with a high-waisted tubular silhouette were very popular. Variations of colors were still experimental and had boundaries on simple vivid and selected color patterns.

The next 10 years (1922-29) we saw the huge impactful emergence of Art Deco in films and theatres as people accepted bolder, brighter tints of orange, blue along with geometrical prints and patterns. Jeanne Lanvin's evening dresses were famous Art Deco pieces as they captured the Hollywood sense of glamour. We saw a bold combination of simple, long, fluid shapes mingled with severe geometry and characteristics of the Cubism-influenced strand of Art Deco design.

The last phase (1930-40): After the severe economic depression in Europe and America, (Great Depression,1929) most parts of Europe were on the verge of another War (WWII). 92% of consumers agreed that the silhouette of costumes changed according to the change in time. This is when the phase of Art Deco started to decline steadily.

According to the result of the test of proportion: the value 3.1**>1.54 >3.33(which is highly significant.) This calculated value lies in the critical region hence we reject the null hypothesis and accept the alternate hypothesis. The proportion of "agree" is more than the proportion of "disagree". Thus, proving that the concept of Art Deco changed according to changes in time, during the entry of new designers, and also during industrial, political, and social upsurge.

## CONCLUSION

Fashion and art have always been interconnected. It has been fascinating to see that the modern elegance of design and its application spread its wings to other visual arts and design. It is a boon and a blessing that Art Deco's influence was not only limited to architecture, but it also had its impact in all the fields of art and design including fashion, music, movies, photography, etc. It is considered to be a significant movement in the history of art and has influenced fashion drastically. Art students all over the world procreate the modern techniques of Art Deco. An inspiration to draw, to design, to write, to portray their ideas. Art Deco can be seen in drawings, paintings, sculptors, editorials, and every other form of art that exists in today's world. By taking a long leap from its usage, primarily seen in decorative items like furniture, interior, architecture it has shown its reach towards fashion even though the application was short-lived. But it was due to this limitation that the Art Deco from the "Roaring 20s," a time remembered by many for its economic boom is now reinvented and perhaps will be redesigned in the modern fashion consumer market. The various reasons for Art Deco's revival explores the point of having a natural flair to the mainstream design. The modern style of the usage of distinct lines be it in silhouette or details like it is to be during the times of Art Deco, emphasizing more texture and vivid color detail. As in the pattern of fashion trends, we have already discussed that the recurring cycle of Fashion is the 3rd most important visual pattern. Due to the long latent period of Art deco's non-existence, it has recurred only in bits and scraps. It is presumed that Art Deco will evolve and rise again from its dead past to rule the Fashion genre for the future years to come. Since Art Deco was

a major artistic influence for artists in the 1920s and 1930s, we see Coco Chanel's designs to have that underlying hint of modernity which can be solely credited to the influence of Art Deco on Fashion. All this positivity will surely give rise to a hope that Art Deco might revive and cultivate, and exponentially be used by young and futuristic designers, again.

**REFERENCES :**


1. Art Deco (1910-1939). In T. A. Benton. V & A publications. (2003).
2. Hiller, B.. Art deco Style(1997).
3. Bloom PL. Dressing up modernity: Decoration as strategy in Art Deco images of women. Rutgers The State University of New Jersey-New Brunswick; 2002.
4. Pai, D.. Decomania: A Comparitve Visual Analysis of Art Deco Architecture in Chicago & Mumbai(1920-1940). (2020)
5. Rousso C, Ostroff NK. Fashion forward: A guide to fashion forecasting. Bloomsbury Publishing USA; 2018 Feb 22
6 Duncan, A.. ART DECO COMPLETE. HARRY N. ABRAMS Incorporated(2009).
7. Gronberg, T. Designs on modernity: exhibiting the city in 1920s Paris. Manchester University Press (2003).
8. Fischer, L. Designing women: Cinema, art deco, and the female form. Columbia University Press. (2003).
9. Hart, K.. Bold and beautiful-that's Art Deco (2015).
10. The Art Deco style and its influences from Charles Rennie Mackintosh to Josef Hoffmann, Clarice Cliff and Le Corbusier. (n.d.). Retrieved from https://antique-marks.com/art-deco.html
11. Edelstein, T. J. Chicago Encounters Art Deco. Art Deco Chicago: Designing Modern America (2018) pg2.
12. Bloom, P. L.. Dressing up Modernity:Decoration as Stategy in Art Deco images of Women:. Rutgers The State University of newjersey-New Brunswick. (2002).
13. D, G. L.. The Gibson girl goes to college: Popular culture and women's higher education in the Progressive Era, 1890-1920. (1987) pg14.
14. Boland, J. (n.d.). Exotic Fashion and Style: Art Deco in the 1920s. Fashion-and-music.com. (2012)
15. R, P. Selling the Art Deco Lifestyle: The Distinction of the Modern Woman in 1920s Fashion Illustration(2016).
16. Marta. Artdecostyle.ca. Retrieved from http://artdecostyle.ca/art-deco-style-blog/art-deco-fashion-part-1 (February ,2009).
17. Schrenk, L. D.. Art Deco at Chicago's 1933-1934 Century of Progress International Exposition. In The Routledge Companion to Art Deco. Routledge (2019).
18. Koda, H. A. (n.d.). Paul Poirot (1879-1944). Met Museum Page(2011).
19. Vinken, B. Fashion Zeitgeist: Trends and Cycles in the Fashion System. Oxford:Berg (2005).
20. Daring, Exotic and Erotic! - Decolish! (n.d.). Art Deco Artists (2011) Retrieved from https://www.decolish.com/artdecoartists.html
21. Marcangeli S. Undressing the power of fashion: The semiotic evolution of Gender Identity by Coco Chanel and Alexander McQueen.
22. Chelsea, R.. Fashion Forward: A Guide to Fashion Forecasting. New York: Fairchild books (2012).
23. Reddy, K.. 1920-1929, 20th century, decade overview. Retrieved from https://fashionhistory.fitnyc.edu/1920-1929/ (2018, May 11).
24. James, L. Modesty in Dress: An Inquiry into the Fundamentals of Fashion(1969).
25. Philib B. max, The history of graphic design, Design house, pp. 449.
26. Sproles, B. Fashion: Consumer Behavior toward Dress. Minepolis: Burgress Publishing Company. (1979).
27. Khaled dewidar art deco architectural style/the British university in Egypt (2018).
28. Chao huang, liyuan hu research on color application of art-deco style/ proceedings of the 4th international conference on arts, design and contemporary education/(icadce 2018)/
29. Art Deco architectures as inspiration source in fashion design International journal of Science Commerce and Humanities by Rehab Mahmoud Kotb Volume No 2 No 3 April 2014
30. Art Deco: Polemics and Synthesis, Richard Striner, Winterthur Vol. 25, No. 1 (Spring, Portfolio 1990), pp. 21-34 (14 pages) Published By: The University of Chicago Press.

# राग सारंग और उसके प्रकार : सामंत सारंग तथा बड़हंस सारंग
## (गतांग से आगे)

**डॉ. कुमार अम्बरीष चंचल***

**सार**

*भारतीय शास्त्रीय संगीत में व्याप्त गायन, वादन तथा नृत्य इत्यादि विधाओं में रागदारी की परम्परा स्वतः ही देखने व सुनने को मिलती है। विभिन्न काल क्रमानुसारों के अन्तर्गत शास्त्रीय संगीत विधा की परम्परा कुछ सूक्ष्म प्रयोगों अथवा परम्पराओं के प्रभाव से दृष्टिगत हुई है। हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति रागदारी के इन्हीं परम्परागत प्रयोगों एवं प्रयोजनों से प्रभावित होने के कारण अपनी एक अलग पहचान को दृष्टिगोचर करती है। रागों का एक विशाल सागर हमारे हिन्दुस्तानी संगीत में विभिन्न सूक्ष्म प्रकार एवं भेदों को समग्र करते हुए अपने विराट स्वरूप एवं सारगर्भित तथ्यों से अलंकृत है।*

*भेद एवं प्रकार की इस मध्यकालीन अवधारणा जिसमें शारंगदेव ने रागों के इन्हीं विशाल स्वरूपों को वर्गीकृत करते हुए एक निश्चित स्वरूप प्रदान किया, वर्गीकरण का वह चलन भिन्न–भिन्न रूपों में भिन्न–भिन्न कालों में दृष्टिगत होता रहा है जिसका क्रमशः एक परिणाम प्रकार रागांग के रूप में प्रस्तुत हुआ। रागांग वर्गीकरण के अन्तर्गत नारायण मोरेश्वर खरे ने कुछ ऐसे भी रागों का विवरण दिया, जिन्हें पूर्व किसी भी वर्गीकरण व्यवस्था में रख पाना पर्याप्त नहीं था, जैसे– कान्हड़ा, मल्हार, बागेश्री, कौंस, सारंग इत्यादि।*

**सूचक शब्द**– *सारंग, प्रकार, रागांग, सूक्ष्म, राग*

**प्रविधि**– *इस लेख के लिए द्वितीयक स्रोतों के साथ–साथ प्रयोग एवं प्रदर्शन में रागों के स्वरूप का अध्ययन किया गया है ।*

**विषय प्रवेश**– रागांग वर्गीकरण पद्धति का एक बहुमुखी राग सारंग मुख्य रूप से प्रचार–प्रसार में गुणीजनों द्वारा गाया–बजाया जाता है। इस राग की अपनी प्राचीनता भी है, जो विभिन्न ग्रन्थों में प्राप्त विवरणें से ज्ञात होता है। सर्वप्रथम सारंग का विवरण नारदकृत 'संगीत मकरंद' में प्राप्त होता है, परन्तु इसमें राग के स्वरूप अथवा चलन का विशेष वर्णन नहीं बताया गया है, किन्तु नारद के समयावधि में सारंग का वर्णन इसकी प्राचीनता को दर्शाता है।

सारंग शब्द संस्कृत, हिन्दी इत्यादि शब्द कोषों में विभिन्न पौराणिक ग्रन्थों में तथा लोक व्यवहार में भिन्न–भिन्न अर्थों में वर्णित हुआ है जैसे– हिरण, चातक झरना, भ्रमर, धनुष, कमल, पुष्प, सारस, कृष्ण इत्यादि सारंग शब्द का साहित्यिक प्रयोग श्रीमद्भागवत महापुराण में ''हरिण'' के पर्यायवाची के रूप में हुआ है। श्रीमद् वाल्मीकीय रामायण में भी ''हरिण'' के पर्यायवाची के रूप में सारंग शब्द का प्रयोग हुआ है।[1]

बाल हिन्दी शब्द कोष में सारंग के तीन अर्थ प्राप्त होते है– हरिण, हाथी, कोयल[2] । सारंग स्वयं एक रागांग राग होते हुए विभिन्न उप–रागांग रागों का जनक भी है। कुछ सूक्ष्म चलन–भेद अथवा स्वरूप–भेद के परिणाम स्वरूप विभिन्न उप रागों का निर्माण अस्तित्व में आया है। जैसेः– शुद्ध सारंग, मधमाद सारंग, मियाँ की सारंग, बड़हंस सारंग, सामंत सारंग, लंकादहन सारंग, अम्बिका सारंग, अल्हैया सारंग, पूर्वी सारंग इत्यादि। ऐसे अनेक प्रकारों में से कुछ प्राचीन, कुछ नवीन तथा कुछ प्रचलित–अप्रचलित रूप में विद्यमान हैं।

राग बड़हंस सारंग तथा सामंत सारंग के विषय में प्राप्त तथ्यों तथा प्रमाणों के आधार पर एक सूक्ष्म विवरण अथवा विश्लेषण इस प्रकार है–

**राग सामंत सारंग**– राग सामंत सारंग, सारंग के प्रकारों में से एक विशिष्ट प्रकार है। इस राग की चर्चा कतिपय प्राचीन ग्रन्थों में भी उपलब्ध है, परन्तु राग के स्वरूप के विषय में ठोस वर्णन प्राप्त नहीं होता है। रामामात्य ने इस राग को मेल के रूप में माना है तथा इसके स्वरूप को बताते हुए अपने ग्रन्थ में यह वर्णन किया है–

रिधौ षट्श्रुतिकौ चैव काकल्यंतरनामकौ।
शुद्धाः षड्जमपाः एतैः स्वरैर्युक्तो भवेद्यदा।।62।।
तदा सामंतमेलः स्यात् तत्र रागास्तदादयः।।63।।[3]

*सहायक आचार्य, गायन विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

अर्थात् षट्श्रुति रे–ध इस प्रकार काकली निषाद नामक नि से युक्त शुद्ध षड्ज, मध्यम, पंचम इन स्वरों से युक्त यह सामंत मेल कदाचित राग कहलाता है। यह राग काफी थाट से उत्पन्न सारंग अंग का एक उप–राग है। वृन्दावनी सारंग के अवरोह में धैवत के प्रयोग से प्रस्तुत राग का आर्विभाव मान पड़ता है। इस राग में दोनों निषाद एवं अन्य स्वर शुद्ध प्रयोग किये जाते है। आरोह में गान्धार व धैवत तथा अवरोह में केवल गान्धार वर्जित होने के कारण इस राग की जाति औडव–षाडव है। इस राग का वादी स्वर ऋषभ तथा सम्वादी पंचम है। गायन समय दिन का प्रथम प्रहर है।

**प्रचलित स्वरूप–**

सा, नि़ सा रे, रे सा, नि़ सा रे म प, प म रे, रे म प म म नि ध प, नि़ प म रे, म रे नि़ सा। म प नि सां, सां नि़ प, म प नि़ ध प नि़ प म रे अथव म प नि सां, प नि़ प, म प ध नि़ प म रे, रे नि़ सा।[4]

**पं0 रामाश्रय झा** के अनुसार वृन्दावनी सारंग में प म नि़ ध प या म प नि़ ध प या म प ध नि़ प म रे स्वर समूहों के माध्यम से शुद्ध धैवत का प्रयोग करके देश राग का आभास उत्पन्न करके प्रस्तुत राग की रचना की गई है। इसमें शुद्ध धैवत का प्रयोग राग भिन्नता की दृष्टि से की गई है। राग देश का शुद्ध धैवत प्रस्तुत राग में आभास मात्र के लिए किया गया है। सां नि ध प इस प्रकार धैवत का प्रयोग वर्जित है। केवल प ध नि़ प अथवा म प म नि़ ध प या म प नि़ ध प म प ग्रे इत्यादि प्रकार से धैवत का प्रयोग किया जाता है।[5] पं0 जयसुखलाल के अनुसार राग सामंत सारंग का सम्पूर्ण चलन वृन्दवनी सारंग की तरह एवं अवरोह के बीच–बीच में प म नि़ ध प सां नि़ ध प, रे, म प नि़ ध प, म ध प, म, रे सा अथवा म ध प, म, रे सा इस प्रकार 'म–ध' की संगति से ध का प्रयोग करते है। इस प्रकार इसका गायन समय दोपहर मान पड़ता है।[6]

इसमें धैवत का अल्प प्रयोग ही इसे सारंग के अन्य प्रकारों से भिन्न करता है।[7] नि़ प म रे, रे म प म रे, नि़ सा इसमें सारंग अंग की प्रबलता के कारण धैवत के प्रयोग से जो सोरठ एवं देश राग का आभास उत्पन्न होता है वह उपर्युक्त स्वर में सारंग अंग होने के कारण नष्ट होता है, अतः इसमें सारंग अंग की प्रबलता होती है। धैवत के प्रयोग, स्वर साम्यता की दृष्टि से राग सूर मल्हार सामंत के समप्राकृतिक राग की श्रेणी में आता है परन्तु राग सूर मल्हार एवं सामंत सारंग, सारंग अंग का राग है एवं इनमें वादी–सम्वादी मुख्य चलन एवं गायन समय इत्यादि राग लक्षण दोनों रागों में भिन्न–भिन्न होने के कारण से राग भिन्न प्रतीत होते हैं। इसमें षड्ज, ऋषभ और पंचम पर न्यास वृन्दावनी सारंग की भाँति ही प्रयोग होते है। मध्यम और निषाद का अनाभ्यास एवं लंघन अल्पत्व है।

आरोह– सा रे म प नि सां

अवरोह– सां नि़ प, म नि़ ध प, रे म प ग्रे म रे, नि़ सा

स्वर विस्तार–

1. सा नि़ प़, नि़ सा, रे, म रे, म प, म नि़ ध प, ध प, म रे, प म नि ध प (प म ध प), म प, म, रे, प म रे, सा रे, नि़ सा।
2. सा, नि़ सा, रे, म रे, प म रे, सा रे, नि़, सा, रे, म प, म नि़ ध प (म ध प), म रे, नि़ सा, नि़, प़, म़ नि़ ध़ प, (म़ ध़ प़) म़ प़, नि़ सा, रे, प म रे, नि़ सा।
3. रे, म प, नि़ प, नि, सां, रें सां, नि़, प, म प, म नि़ ध प (म ध प) मरे, पम, धप, मरे, प म रे, सारे, नि़, सा, सां, नि़ ध प, (सां, नि़ प, मधप) मरे, मप, निसारें, सां रें, नि़, सां, पनिसां, मपनिसां, नि प, मप, धप मनिधप (मधप), मरे, सारे, नि़, सा।

**तान–**

1. रेसा निसा, रेम रेसा निसा रेम पम रेसा निसा रेम पम प– मनि धप मरे सानि सा– रेंम पनि सारें सांनि पम निध प– मरे सानि सा–, रेम पनि सारें मरे सारें सांनि पम रेम पम निध प– मरे सानि सा–
2. सारे निसा रेम रेसा पम रेम पम रेसा पम निध पध पम रेम पनि सारें सांनि सांसां निप निनि पम पप मरे मप निनि धप मप पम रेम रेसा निसा, सांनि रेंसां, निसां पनि मप रेम सारे निसा रेम पनि सारें मरे सारें सांनि पनि पम मप मनि धप मप सांनि धप धप मप पम रेम रेसा निसा।
3. सारे, निसा रेम सारे मप रेम पनि मप निसां पनि सारें निसां रेंमं, रेंसां निसां निप मप मनि धप मप सांनि

सांनि पम रेम पनि सांरें निसां मप मनि धप मप रेम पम रेसा निसा रेंरें मंरें मंमं रेंसां निसां रेंरें सांरें सांनि पनि सांरें सांरें निसां पनि पम पम रेप पम निध पध मप निसां निप मप रेम पम रेम रे– निसा।

**राग बड़हंस सारंग**– यह सारंग का एक अप्रचलित राग प्रकार है। इस राग के विषय में अनेक मत दिखाई पड़ते हैं क्योंकि यह अधिक प्रचलित राग नहीं है। यह राग वृन्दावनी सारंग के अवरोह में गान्धार के अल्प प्रयोग से सृजित होता है।

आरोह– सा रे म प नि सां

अवरोह– सां नि प म प ग म रे सा।

लोचन ने अपने ग्रन्थ में मंगलाष्टक शब्दों में इस राग का नाम लिया है–

गौर्या च बड़हंस स्यात् कानराद्धवलादपि।
पूरिय रागिणी सैव मंगलाष्टकशब्दिकता।।

'अथ सकल देश साधारण गुणिगण प्रसिद्ध राग संकराः' के अन्तर्गत लोचन ने बड़हंस का उल्लेख किया है।

यह राग काफी थाट जन्य राग है। आरोह में ग ध तथा अवरोह में ध वर्जित होने से इस राग की जाति औड़व–षाडव मानी गयी है, गायन समय दिन का द्वितीय प्रहर माना गया है। इस राग की प्राचीनता लोचन के इस वर्णन से ज्ञात होती है–

सारंगस्वरस्थाने प्रथमा पटमंजरी।
वृंदावनी तथा ज्ञेया सामंतो बड़हंसकः।।

अर्थात् सारंग स्वर संस्थान में पहले पटमंजरी, वृन्दावनी तथा इसके बाद सामंत एवं बड़हंस गाया जाता है।

इस राग में कुछ गुणीजन शुद्ध धैवत तथा कुछ गुणीजन शुद्ध धैवत व शुद्ध गान्धार दोनों का प्रयोग करते है। साथ ही तीव्र म का प्रयोग भी चर्चा में मिलता है। चूँकि यह राग अप्रचलित है, अतः राग स्वरूप में विभिन्न मत तथा भ्रान्तियाँ मिलना स्वभाविक है।

**स्वर प्रस्तार–**

1. सा, नि़ प़, म़ प़, नि़, सा, रे, म प, नि ध नि प, म प, नि म, प, रे प म, रे, नि़ सा, रे, म प, नि, सां, रें सां, नि ध नि प, म प, प नि ध नि प, म रे, प म रे सा
2. सा, नि़ सा रे, म प, नि प, म रे, म, सा रे, नि़, सा, रे, म प, नि ध नि प, म रे, प, म रे नि़ सा, नि, प़, नि़ सा रे, सा।
3. नि़सा, रे, मप, नि, सां, रेपम, नि, सां, रें, सारें, नि, सां, निधनिप, म, रेम, प, निधनिप, मप, रे, पम, रेमपम, रे, सारें, नि़, सा, मरे, मपनिधनिप, मरे, नि़, सा

   मप, नि, सां, पनि, सां, रें, मंरें, पंमंरें, नि, सां, निधनिप, मप, नि, सां, रें, सारें, नि, सां, निधनिप, मप, पनिधनिप, मप, सां, निप, मरे, रें, निसां, निम, प, निधनिप, मरे, पमरे, नि़, सा

**तान–**

1. रेरे सारे सानि सा– पम रेसा रेनि सा– मप पम पम रेम पनि धनि पम प– रेम पम रे– निसा निसा रेम पनि सारें मरें सारें सांनि सा– निध निप मप रेम पनि धनि पम रेम पम रेम रे– निसा रेंरें सारें सारें निसां निध निप मप रेम पनि धनि पम प– मप रेसा निसा।
2. पनि सारे मरे नि़सा मप नि़सा मप निध निप मप पनि सारें मरें निसां निध निप मप रेम पनि धनि पम रेम पम रेम रे– नि़सा रेरे मम पप निनि सारें मरें सां– निसां, रेंमं रेंसां रें– निसां निध निप मप रेम पनि धनि पम पम पम रेम मरे नि़सा, नि़सा रेम सारे मप रेम पनि मप निसां निध निप मप रेसा नि़सा।
3. सारे, मप मम रेम मप निप निप मप निनि पम पप रेम सांनि सारें सांनि पनि सांनि पम रेम मप निसां रेंमं रेंसां निप मप मरे मप पम पम पम रेम पम रेम रे– निसा सारे निसा रेम रेसा निप मप निनि पम सांनि सारें सांनि पम पम रेम रेसा निसा।

**गांधार युक्त प्रकार–**

1. सारे मप निध निप मग मरे पम रेम पम रेम रे– निसा पनि सांरें मरें निसा निध निप मग मरे पनि धनि पम गम पम रेम रेसा निसा रेम पनि सारें निसां निध निप मप निसां निप मप मग रेप मग मप मरे मप मरे मरे निसा।

**निष्कर्ष**:–

सारंग एक रागांग राग होते हुए अपने प्रभुत्व एवं स्वरूप के कारण अधिक प्रचलित एवं प्रसिद्ध राग रूप में भी विद्यमान है। प्रयोग एवं शास्त्र सदैव ही एक–दूसरे के पूरक होते है, अतः शास्त्रों में वर्णित राग प्रयोग में भिन्न–भिन्न मतों से कुछ भिन्न हो जाते हैं। रागांग रागों का यह लक्षण होता है कि वह किसी मुख्य स्वरावलि अथवा विशेष स्वर संगति से पहचाना जाता है। इसके अतिरिक्त वादी–सम्वादी स्वर–चलन, गायन–समय इत्यादि से मिलते–जुलते जो राग बनते हैं वे इन रागांग रागों के उप–रागांग राग कहलाते हैं। सारंग की प्राचीनता तथा उससे जन्य राग एवं वर्तमान में नित नवीन प्रयोगों से निर्मित विभिन्न नवीन रागों में सारंग के ही स्वर परिलक्षित होते हैं। यद्यपि कुछ रागों में अन्य रागांग रागों के भी अंश दिखलाई पड़ते हैं, परन्तु स्वर लगाव तथा चलन भेद से उन सभी रागों में अन्तर ज्ञात होता है। प्रस्तुत शोध पत्र में लिखित सामंत तथा बड़हंस सारंग, सारंग के प्राचीन जन्य राग हैं। इन रागों में सारंग के स्वरूप जिनमें गान्धार व धैवत सर्वथा वर्जित होते हैं, प्रयुक्त हुए हैं किन्तु उनके प्रयोग से भी राग की क्षति नहीं होती है, क्योंकि मूल सारंग राग का प्रभुत्व बना रहता है।

**सन्दर्भ सूची** :

1. वागेश्वरी पत्रिका, अंक–1 जनवरी–जून 1987 पृष्ठ सं. 66
2. पाठक, प्रो. रामचन्द्र, (सम्पादक) बाल हिन्दी शब्दकोष, पृ.सं. 400
3. रामामात्य, स्वरमेल कला निधि, राग प्रकरण पृ.सं. 16
4. झा, पं. रामाश्रय, अभिनव गीतांजलि, भाग–3, पृ.सं. 185
5. वही, पृ.सं. 185
6. शाह, जयसुखलाल त्रि., सारंग के प्रकार, पृ.सं. 55
7. झा, पं. रामाश्रय, अभिनव गीतांजलि, भाग–3, पृ.सं. 186
8. लोचन, राग तरंगिणी, जन्यरागाः पृ. 10
   http://www.ibiblio.org
9. शाह, जयसुखलाल त्रि., सारंग के प्रकार, पृ.सं. 79

# भोजपुरी–अवधी लोक संस्कृति का वाचिक सन्दर्भ

**डॉ. अमित कुमार पाण्डेय***

**संक्षेपण**

*भारत में संस्कृति एक ऐसी अवधारणा है जिसकी हमें दो धाराएँ प्राप्त होती हैं। एक है शिष्ट संस्कृति तथा दूसरी लोक संस्कृति। शिष्ट संस्कृति का तात्पर्य समाज के उस वर्ग से है जिसका बौद्धिक बल श्रेष्ठ होता है तथा वह समाज के लिए पथ–प्रर्दशक माना जाता है एवं जिसके ज्ञान का आधार वेद और शास्त्र था। जबकि लोक संस्कृति का अभिप्राय सहज साधारण उस जनता से है जिसके ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं थीं, शास्त्र नहीं थे। वह तो सरल और अकृत्रिम जीवन जीने का आदी है।*

*भोजपुरी–अवधी लोक संस्कृति में लोक गाथाओं, लोक गीतों तथा लोक कलाओं की भरपूर हिस्सेदारी है। इन भाषाओं में महाकाव्य, आख्यान और गीतों की आपको ऐसी श्रृंखला मिलेगी जो पीढ़ियों से संरक्षित, सुरक्षित होकर लोक कंठों के माध्यम से आज भी प्रवाहमान है। लोक गीतों, कथाओं, कहावतों, लोक विश्वासों तथा लोकोक्तियों सहित साहित्य के अनेक पक्षों को ही हम लोक साहित्य की वाचिक–परम्परा कहते हैं।*

*यह परम्परा यूँ ही आगे बढ़े ताकि हमारी पीढ़ियाँ बलवती बन सकें वाचिक परम्परा की लोक संस्कृति विकसित और पुष्ट हो सके।*

**मुख्य शब्द** : *संस्कृति, लोक, भोजपुरी, अवधी, वाचिक, परम्परा*

**शोध–प्रविविध** : *इस शोध–आलेख को द्वितीयक स्रोतों से सामग्री संकलित कर अध्ययनपूर्वक प्रस्तुत किया गया है ।*

भारतीय संदर्भ में विद्वानों ने लोकसंस्कृति की स्वतंत्र सत्ता स्वीकार की है। सामान्य रूप से भारत में संस्कृति एक ऐसी अवधारणा है जिसकी दो धाराएँ शिष्ट संस्कृति तथा लोक संस्कृति हैं। यद्यपि दोनों संस्कृतियों में परस्पर पूरकता अद्‌भुत रूप से पाई जाती हैं। आचार्य बलदेव उपाध्याय लिखते हैं कि–'लोकसंस्कृति शिष्ट संस्कृति की सहायक होती है। किसी देश के धार्मिक विश्वासों, अनुष्ठानों तथा क्रिया–कलापों के पूर्ण परिचय के लिए दोनों संस्कृतियों में परस्पर सहयोग अपेक्षित है। इस दृष्टि से अथर्ववेद ऋग्वेद का पूरक है। ये दोनों संहितायें दो विभिन्न संस्कृतियों के स्वरूप की परिचारिकायें हैं। यदि अथर्ववेद लोक संस्कृति का परिचायक है तो ऋग्वेद शिष्ट संस्कृति का दर्पण है। अथर्ववेद के विचारों का धरातल सामान्य जन–जीवन है तो ऋग्वेद का विशिष्ट जन–जीवन से' (उपाध्याय, पृ. 12)।

संस्कृति में सामान्यतः हमारी, बोली, भाषा, रहन–सहन, तीज–त्यौहार, व्रत, पर्व, गीत, संगीत, आस्था, विश्वास और अध्यात्म सब कुछ समाहित हो जाता है। ऐसे में भारतीय लोक संस्कृति ने स्वयं को व्यक्त करने के लिए लोक साहित्य के उस स्वरूप को चुना जिसमें सम्पूर्ण समाज की भागीदारी हो। समाज के प्रत्येक पायदान पर स्थित मनुष्य उसमें अपनी आवाज मिला सके। पीढ़ी–दर–पीढ़ी उसमें रचनात्मक अनुभव जोड़ सके। परिणाम यह हुआ कि लोक गाथाओं, लोक गीतों तथा लोक कलाओं की भरपूर हिस्सेदारी बन गई, आज भी तमाम महाकाव्य, आख्यान और गीत ऐसे मिलेंगे जो पीढ़ियों से संरक्षित, सुरक्षित लोक कंठों के माध्यम से प्रवाहमान हैं। लोक गीतों, कथाओं, कहावतों, लोक विश्वासों तथा लोकोक्तियों सहित साहित्य के अनेक पक्षों को लोक साहित्य की वाचिक परम्परा कहा गया। भारतीय वाङ्मय की सबसे बड़ी खूबसूरती यही है।

पीढ़ी–दर–पीढ़ी एक कण्ठ से दूसरे कण्ठ तक हस्तान्तरित होती चली आ रही इन लोक कथाओं, कहावतों, लोक विश्वासों तथा लोकोक्तियों और गीतों का लोक संस्कृति के विस्तार में सर्वाधिक योगदान माना गया है। पूरब से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण तक फैले सम्पूर्ण भारतीय भू–भाग पर लोक कथाओं का गढ़न और कहन–शैली लगभग एक–सी मिलेगी तथा उनकी एक बड़ी विशेषता यह है कि उनमें सुखी जीवन की सामूहिक आकांक्षा भरी

*सेण्टेनरी विज़िटिंग फेलो, भारत अध्ययन केन्द्र, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी–221005

होती है। यह कामना 'निजी' जीवन तक सीमित नहीं होती। जो कमजोर और साधनहीन है लोक उनके सुख की भी कामना करता है। 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' का मंत्र हमें लोक कथाओं की तरह अधिक प्रभावी रूप में व्यक्त होता है। लोक–कथाएँ गरीब मेहनतकश सीधे सरल तथा छल–कपट से दूर रहने वाले लोगों के सुख की कामना करती हैं। राजा–रानी की कथा, तोता–मैना, ऊँट और सियार की कथा, गाय और शेर की कथा, सात भाइयों के बीच एक बहन की कथा और सबसे महत्वपूर्ण राम की कथा जहाँ राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, राजा दशरथ और माता कौशल्या के चरित्र को उद्घाटित कर एक आदर्श स्थापित करने की हमारी पुरानी परम्परा आज भी कायम है। इन लोक कथाओं का अंत एक सूत्र वाक्य से होता है– 'जैसे उनके दिन फिरे वैसे सबके फिरे या कहनी गईल बन में, सोच अपने मन में'।

भारतीय जन–जीवन के बहु सांस्कृतिक परिदृश्यों में लोकगीत हमारी साझा सांस्कृतिक विरासत की अमूल्य धरोहर है। निर्वैयक्तिक अभिव्यक्ति के कारण तथा समूह अथवा जातीय विशेषता से सम्पन्न होने के कारण लोकगीत भावनाओं की साझेदारी के लिए पुल का काम करते हैं। आचार्य विद्यानिवास मिश्र ने लिखा है कि 'लोक काव्य अलंकरण नहीं है, न फैशन है, वह भारतीय संदर्भ में संस्कृति का मर्म स्थल है। लोक काव्य में भारत की आँख झांकती है। धैर्य और आकुलता का संतुलन पाने के लिए लोक काव्य के मर्म तक पहुँचने का यत्न करना चाहिए। स्त्री संवेग और स्त्री कंठ से निकले ऐसे लोकगीतों को देवन्द्र सत्यार्थी नें 'संस्कृति के मुँह बोले चित्र' कहा है। इसमें समाहित स्त्री का संसार एकांतिक और वैयाविक अवसाद के आवेगों पर ही टिका नहीं रहता बल्कि सामाजिक और राष्ट्रीय स्तर तक की यात्रा भी करता है और नये परिवेश के साथ मिलता भी है क्योंकि लोकगीत न तो पुराना होता है और न हि नया, वह एक जंगल के वृक्ष की तरह है जिसकी गहरी जड़ें अतीत से जुड़ी हुईं हैं लेकिन उनमें निरन्तर नयी शाखाएँ, नयी पत्तियाँ प्रस्फुटित होती रहती हैं। देशज भाषाओं तथा जनपदीय लोक–जीवन के विविध पक्षों को प्रस्तुत करते इन लोकगीतों का रंग बहु सांस्कृतिक और बहुवर्णी होता है।

पति से मिले अपमान, उपेक्षा और उसके कटु वचनों से आहत पत्नी का स्वाभिमान दर्द बनकर एक अवधी लोकगीत में उभरता है। पति की कटु वाणी से टूटे हृदय वाली पत्नी कहती है कि जिस प्रकार हवा के झोंकों से वस्त्र फट जाता है उसी प्रकार मेरा चित्त पति की कटु वाणी से फट गया है, स्नेहरूपी बंधन बिखर गया है–

चलतु फिरत ओढ़नी मोरी फाटी।
लहंगा त फटत झकोरन से।
चित्त फाटत राजा की बोलन से।। (सिंह, पृ. 287)

इन लोकगीतों में जहाँ संयोग–श्रृंगार तथा मान–मनुहार से जुड़े गीतों की एक लम्बी श्रृंखला मिलती है तो वहीं वियोग–श्रृंगार की उपस्थिति भी बड़ी मार्मिक है। एक विधवा स्त्री अपने जीवन के अवसाद को पिता के सम्मुख बयान कर रही है–

बाबा सिर मोरा रोवेला सिंदूर बिन!
नयना कजलवा बिनु ए राम।
बाबा गोद मोरा रोवेला बालक बिनु
सेजिया कन्हैया बिनु ए राम।।

अवध की वाचिक–परम्परा में न सिर्फ संयोग और वियोग के गीत वरन् संस्कार, ऋतु, श्रम, जातीय, व्रत, पूजन, अनुशील, लोरी एवं प्रणय–निवेदन के गीत भी पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। लोक और शास्त्र की मान्यता है कि माता के ऋण से कोई मुक्त नहीं हो सकता। इसी मर्म को व्यक्त करते हुए एक अवधी लोकगीत का भाव यह है कि–

सरग तरैया मइया, भले गिनि जइहैं, माई क दूध अनमोल
(सिंह, 276)

माँ की ममता का एक और उदाहरण देखें। यह अनूठा है। जहाँ माँ के द्वारा अपनी बेटी के लिए इतनी करूणा विगलित होती है कि उसके निर्बाध रोने से नदी बह जाती है लेकिन पिता के रोने से तालाब भरता है, क्योंकि वह मर्यादा की सीमा में रोता है–

मइया के रोवे से नदिया बहत है।
बाबा के रोये भरे ताल।

अवध की लोकसंस्कृति में 'राम' का नाम इस प्रकार घुला–मिला है कि 'राम' को लोक से अलग किया ही नहीं जा सकता। यहाँ गीतों की टेक 'राम' से ही प्रारम्भ और पूर्ण होती है। कड़ी के मध्य में 'राम' कहकर गायक साँस लेता है। एक लोकगीत है जो उस अयोध्या की कौशल्या का बखान करता है जहाँ श्रीराम ने जन्म लिया।

राम–जैसे पुत्र का फल कठिन व्रत के पालन से मिलता है। अवध के लोकमानस ने अपने को सांगोपांग राममय कर अंग–प्रत्यंग से राम स्तवन की प्यास को अभिव्यक्त किया है–

रामहि राम रटन लागि जिभिया।
मुहवां कहै हम हरिगुन गाइब।
कनवा कहै हम सुनब पुरान।
अंखिया कहै हम दरसन करबै।
मनवा कहै हम करब धियान।
गोड़वा कहै हम तीरथ करबै।
हथवा कहै हम देबइ दान।

अवधी की वाचिक परम्परा पर पं0 रामनरेश त्रिपाठी ने ग्राम साहित्य में लिखा है कि 1924 में मैं इलाहाबाद से जौनपुर रेल से जा रहा था। एक स्टेशन पर गांव के कुछ लोग अपनी–अपनी स्त्रियों सहित कलकत्ते जाने के लिए उसी डब्बे में आ बैठे, जिसमें मैं था। जो स्त्रियाँ उसमें बैठी थी उनमें से कई नवयुवतियाँ थीं, अचानक उन्होंने गाना प्रारम्भ किया जिसका मेरे मस्तिष्क पर जोर का धक्का लगा और वह यह है–

पुरूब से आई रेलिया पछिउं से जहजिया।
पिय के लादि लै गई हो।
रेलिया होई गय मोरि सवतिया
पिय के लादि लै गई हो।

रामनरेश जी कहते हैं कि इसमें सबसे ज्यादा कौतूहलजनक बात जो मुझे लगी वह थी रेल की सौत से उपमा। सौत के लिए यह उपमा तो बिल्कुल सोची ही नहीं थी। हिंदी या उर्दू के किसी कवि को यह नहीं सूझी थी। मैं सोचने लगा ऐसे गीतों को बनाता कौन है। इसमें न तुक है, न मात्राओं की गिनती, कवियों की रचना तो यह हो नहीं सकती। ग्राम गीतों का सबसे पहला बीज यही था जो आगे चलकर शीघ्र ही अंकुरित पल्लवित हुआ (शाही, पृ. 54)।

अवधी लोकगीत विरासत पर चर्चा ''छापक पेड़ छिउलिया'' लोकगीत के बिना पूरी नहीं मानी जाती।

छापक पेड़ छिउलियां त पतवन गहवर।
रामा तेहितर ठाड़ि हरिनियां हरिन क बिसूरइ।।

अवध की वाचिक–परम्परा का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण अकेले यह गीत है जिसमें राजा दशरथ अपने बेटे राम के जन्म पर हिरण का मांस परोसने के लिए नर हिरण को मार देते हैं, हिरणी दुखी है और मांस पकने की गंध जैसे–जैसे उसकी नाक में प्रवेश करती है, वह हिरण को याद करती है और रोती है, अंततः वह रानी कौशल्या से यह कहती है कि मुझे मेरे हिरण की खाल ही दे दीजिए जिससे मैं उसका संग साथ महसूस कर सकूंगी, कौशल्या मना करती है और कहती हैं–

जाहु हरिनी घर अपने खलिरिया नाहीं देबइ।
हरिनी, खलरी, क खंजड़ी मढ़ौबै त रामा मोर खेलिहैं।

अर्थात् मैं खाल नहीं दूंगी, उस खाल से खंजड़ी बनेगी जिससे मेरे राम खेलेंगे। अब जंगल में जो दृश्य उपस्थित हुआ, वह मर्मस्पर्शी है–

जब–जब बाजई खंजड़िया सबद सुनि अनकइ।
हरिनी दौरि ढकुलिया के नीचे हरिन क बिसूरइ। (मिश्र, पृ. 10)

हरिनी को अपने पति की खाल से निकले हुए शब्द से भी प्रेम हो गया, करूण रस के अजस्र प्रवाह से युक्त ऐसी कविता दुर्लभ है जो लोकमानस में ही विकसित होकर आज भी व्यापत है।

भारतीय संस्कृति को 'आरण्यक संस्कृति' कहा जाता है। हमारे पूर्वज सर्वज्ञ थे। वे सृष्टि के सबसे बड़े सत्य को जान गये थे कि सृष्टि का अस्तित्व प्रकृति की समृद्धि पर आश्रित है, इसलिए उन्होंने ऐसा जीवन दर्शन विकसित किया जो प्रकृति उपासना को पुष्ट करे, उन्होंने ऐसी जीवन–शैली विकसित की जो पर्यावरण के प्रति सजग और आस्थावान थी। पर्यावरण के तत्त्वों पृथ्वी, जल, आकाश, वायु और अग्नि के प्रति अवधी लोक–संस्कृति में असीम श्रद्धा का भाव परिलक्षित होता है और वाचिक–परम्परा में हजारों हजार वर्षों का यह निर्मल गीत फूटता है जिसे पर्यावरण संरक्षण की सशक्त अभिव्यक्ति के रूप में समझा जा सकता है–

बाबा निमिया के पेड़ जिन काटियो बाबुल।
निमिया पे चिरैया के बसेर, बलईया लेहु बीरन के।
बाबा सगरी चिरैया उड़ी जइहैं।
रहि जइहैं निमिया अकेल, जलइयां लेहु बीरन के ।
(अवस्थी, मालिनी, 2022, 5 जून)।

नीम का वृक्ष न काटें, इसकी चिंता में यह सत्य भी उपस्थित है कि वृक्ष ही पर्यावरण के मुख्य आधार हैं, वृक्ष कट गए तो पंछी कहा जाएंगे। इस प्रकार पर्यावरण– संरक्षण की मूल चिन्ता भी हमें इन गीतों में स्पष्ट दिखाई पड़ती है।

भारत की समस्त जनपदीय और देशज भाषाओं तथा बोलियों में वाचिक साहित्य का स्वरूप लगभग एक–सा

ही है, बस अन्तर अलग–अलग संस्कृतियों का है। जहाँ कथा और लोकगीतों का स्वरूप वहाँ के क्षेत्रीय आधार पर थोड़ा बदल–सा जाता है। जैसे लोरिकायन उत्तर भारत का एक प्रमुख लोक आख्यान है। कथा उत्तर प्रदेश के बलिया जिले से जुड़ी है लेकिन इसका स्वरूप तथा इसके गायन की परम्परा उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, तथा राजस्थान तक अलग–अलग रूपों में मिलेगी। अकेले उत्तर प्रदेश का पूर्वी अंचल जिसे भोजपुरी अंचल भी कहा जाता है, में हमें कई रूप मिल जाएंगे, लगभग यही स्थिति मध्यप्रदेश से प्रारम्भ होने वाले आल्हा का है,जिसके विविध रूप मिलते हैं। यही कारण है कि लोक संस्कृति के विकास और विस्तार में वाचिक–परम्परा की भूमिका को महत्त्वपूर्ण माना गया।

अपनी आन–बान–शान के लिए प्रसिद्ध भोजपुरी बोली में सामान्यतया अवधी और ब्रज की तरह लिखित साहित्य की परम्परा अपेक्षाकृत कम रही है लेकिन वाचिक परम्परा में भोजपुरी की जड़ें अपनी सहधर्मी भाषाओं की ही तरह गहरी धंसी हुई हैं। भोजपुरी की एक समृद्ध वाचिक–परम्परा रही है जिसमें सोहर, चांचर, जँतसार, बिरहा, खेलौना, संझा पतकाली, नकटौरा, सहित विविध लोक गीत एवं लोक नाट्य जहाँ एक प्रकार के हैं तो वहीं लोकाचार, अनुष्ठान एवं व्रत, पर्व त्यौहारों पर गाये जाने वाले गीतों प्रकार के हैं। इन गीतों का बिम्ब–विधान अभूतपूर्व तथा अद्वितीय होता है।

एक गीत प्रस्तुत है–

ए भोर रे भइले भिनुसार
चिरइया एक बोलेले, मिरिग बन चुंगेले।
एक भोरे खेतवन, हर लेके चले हरवहवा, त बहुवर जाँते।
(मिश्र, पृ. 17)

अर्थात् भारतीय परम्परा में काल या समय आनुभविक होता है, यांत्रिक नहीं, भोर की प्रतीति घड़ी से नहीं बल्कि एक छोटी–सी चिड़िया के बोलने से होती है, मृग के वन में चुगने के लिए चलने से होती है, हलवाहे के खेत में हल ले जाने से होती है, घर में बहू के हाथ में जाँत लेने से होती है।

भोजपुरी लोक संस्कृति में समय के लम्बे अंतराल का उदाहरण इस रूप में प्रस्तुत किया गया है कि– एक व्यक्ति एक छोटा–सा पौधा लगाकर परदेश चला जाता है। पौधा बड़ा हो जाता है, उसमें फूल आ जाते हैं,फल आ जाते हैं और प्रिया प्रतीक्षा ही करती रह जाती है। वह उस पौधे को छूकर कहती है कि इसमें फूल आ गये, फल आ गये लेकिन इतने दिनों बाद भी प्रियतम– तुम नहीं आए! प्रिया सोचती है कि शायद उस देश में बसंत नहीं आता होगा, कोयल नहीं बोलती होगी, आम नहीं बौरते होंगे– क्योंकि ऐसा होता तो प्रिय को बसन्त की प्रतीति होती और वे अवश्य आते। वह कहती है कि– ओहि देसवा अमवा न बउरै, कोईलिया न बोलै। यह स्पष्ट करता है कि अपना देश, अपना घर एक उत्कण्ठित बसन्त से सम्पृक्त है। यह उत्कण्ठा ही मनुष्य को कुछ नया करने को प्रेरित करती है, यह उत्कण्ठा ही सम्बन्धों की जड़ता को पिघलाती है, मनुष्य के सम्बन्धों में उष्मा भरती है। भारत सम्बन्धों की उष्मा का देश है जिसकी प्रतीति वाचिक–परम्परा में सर्वत्र व्याप्त है।

भोजपुरी संस्कृति में कुछ गीत ऐसे हैं जो किसी रचनाकार द्वारा लिखे गए हैं लेकिन एक लम्बे समय से लोककण्ठ में प्रवाहित हो रहे हैं। भोजपुरी जनपद के ऐसे ही एक कवि हुए श्री रामजियावन दास बावला, जिन्हें भोजपुरी साहित्य में गोस्वामी तुलसीदास जैसा सम्मान मिला। खेती–किसानी, प्रकृति तथा श्रद्धा और भक्ति से सम्पृक्त बावला जी के गीत भोजपुरी लोकसंस्कृति के आदर्श हैं। बावला जी के लिए राम आदर्श थे, उनके जीवन और रचना दोनों में राम की उपस्थिति अद्‌भुत है, उन्होनें मर्यादा पुरूषोत्तम श्रीराम के मिथकीय आदर्शों को तोड़कर एक ऐसे सर्वसुलभ राम की कल्पना की जो हमारे अपने लगें, जिनसे हम कुछ कह सकें। रामकथा को आधार बनाकर उन्होनें जो काव्य रचे, वे अभूतपूर्व हैं। राम वनवास के प्रसंग से जुड़े एक गीत में वे राम को एक ऐसे व्यक्ति के रूप में देखते हैं जिसका कोई ठिकाना नहीं है। उसे किसने वनवास दे दिया जिसको कोई पूछने वाला नहीं है। वह कौन–सा अभागा नगर है जिसे चाँदनी अच्छी नहीं लगती, जिसकी रिद्धि–सिद्धि रूठ गई हैं। जबकि ऐसा लगता है कि इस सम्पूर्ण संसार में प्रकाश उसी एक व्यक्ति के कारण है–

कहवाँ से आवैला कवन ठाँउ जइबा, बबुआ बोलता ना,
के हो दिहलें तोहके बनवास, बबुआ बोलता ना!
कवने करनवाँ बतावा अइला बनवाँ?
कोने कोने घूमला भंवरवा जइसे मनवाँ
कउनी हो नगरिया में अंजोरिया नाही भावै, बबुआ बोलता ना,
कहवाँ रात भावै बरहो मास, बबुआ बोलता ना!
रूठि गइलीं रिधि–सिधि चललीं रिसियाइ के
कउनी हो नगरिया मे अगिया लगाइ के

कहवाँ के लोगवा के भोगवा नाही भावे, बबुआ बोलता ना,
दिहलै तोहके घरवा से निकास, बबुआ बोलता ना!
बिधना जरठ मति अटपट कइलै रे
किया कवनों भूल तीनों मूरति से भइलै रे
किया रे अभागा,कउनों लागा बाँदी कइलै, बबुआ बोलता ना,
किया कतहूँ पउला ना सुपास, बबुआ बोलता ना!
हम बनबासी बबुआ माना हमरी बतिया,
बावला समाज मे बिताला एक रतिया
कंद–मूल–फल–जल सेवा मे जुटइबै, बबुआ बोलता ना,
सेवा करबै, माना बिसवास, बबुआ बोलता ना!

भोजपुरी में ही महाभारत की एक कथा द्रौपदी चीर–हरण को आधार बनाकर एक बहुत सुन्दर खण्डकाव्य लिखा पं. चन्द्रशेखर मिश्र ने। सम्पूर्ण भोजपुरी अंचल में यह रचना जिस प्रकार लोककण्ठ में समादृत है वह अन्यतम है। खण्डकाव्य के प्रारम्भ में वे भगवती सरस्वती की आराधना करते हैं और उस आराधना के माध्यम से देवी से अपनी रचना के लिए आशीर्वाद मांगते हैं तथा देवी को चुनौती देते हुए कहते हैं कि हे माँ! द्रौपदी की लाज अब तुम्हारे हाथ में है, देखना है कि ऐसे गाढ़े समय में आपका हंस तेज उड़ता है कि धीरे–धीरे चलता है–

देखले कबौ न बाटी पढ़ले जरूर बाटी सुनीले कि ऋषि मुनि झूठ नाही बोलेले।
ब्रह्मा बिसुन औ महेश तीनिउ मोहि गईले माई तोर बीन कौन कौन सुर खोलेले।
द्रौपदी बेचारी बाटे खाली एक साड़ी बाटे उहो न बचत बाटे बैरी मिली छोरेले।
अस गाढ़ समय मे देखब तोहार हंस हाली–हाली उड़ेले कि धीरे–धीरे डोलेले।। (कविता कोश)

वाचिक काव्य–परम्परा की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसमें सभी को जोड़ने की, सर्व मंगलकामना की, सभी की इच्छाएँ पूरी करने तथा पूर्णता में ही जीवन की सार्थकता महसूस करने–कराने की क्षमता होती है। एक की शोभा दूसरे पर कैसे निर्भर करती है उसे इस सोहर में देख सकते हैं–

एक सइ अमवा लगवलीं, सवा सइ जामुन हो।
रामा तबहु न बगिया सोहावन, एक रे कोइल बिनु।
नइहर में पांच बिरनवा, त सात भतिजवा बाड़े हो।
रामा तबहुं न नइहर सोहावन, एक रे मयरिया बिनु।
(मिश्र, पृ. 36)

भारत की स्वतंत्रता में इस देश की जनता अपने प्राणों की आहुति दी है, एक समय था जब स्त्रियों ने अपने सुहाग और बच्चों तक की चिंता नहीं की। एक स्त्री जिसे पुत्र नहीं है, ईश्वर की कृपा और तमाम प्रयासों के बाद उसे पुत्र की प्राप्ति होती है लेकिन पुत्र के जन्म के बाद वह माता उसे भारत–भूमि का सेवक बनाने की कामना करती है–

सून लागे दिया बिनु मंदिर मांग सेनुर बिन हो।
ललना ओइसन सून गोद तिरिया त एक रे ललन बिनु हो।
सून लागे महल–अटरिया, त खेत धरतिया नू हो।
बड़–बड़ भइले जतनवा, उपइया उपचरवा नू हो।
ललना जब भइली राम जी की किरिपा ललन गोद खेलेला हो।
पुतवा के देबो भारत मइया के, मतवा के सेउआ में हो
ललना पूत करिहैं देसवा के काम त जनम सुफल होइहैं हो।
मनवा में इहे अभिलाख, इहे एक साध, इहे एक सधिया नू हो।
ललना पूत मोरे होवै देस–सेवक, राम से बिनितिया नू हो ।
(मिश्र, पृ. 36)

ऐसे असंख्य उदाहरण हमारी परम्परा में जीवन्त हैं।

**निष्कर्ष :**

भोजपुरी समाज अपनी माटी के प्रति वफादारी का निर्वहन आज भी कर रहा है। आज भी देश में सीमा–सुरक्षा में सर्वाधिक संख्या भोजपुरी जनपद की है। भोजपुरी अपनी समस्त सांस्कृतिक समृद्धि के लिए निरन्तर प्रयासरत है। वाचिक–परम्परा में भोजपुरी आज की समान धर्मा भाषाओं में अग्रणी है। यह परम्परा यूँ ही आगे बढ़े ताकि हमारी पीढ़ियाँ बलवती बन सकें और वाचिक–परम्परा की लोक संस्कृति विकसित और पुष्ट हो सके।

**सन्दर्भ सूची :**

1. मिश्र, आचार्य विद्यानिवास, वाचिक कविता : भोजपुरी, 2003, भारतीय ज्ञानपीठ
2. उपाध्याय, कृष्णदेव, लोक संस्कृति की रूपरेखा–लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 12
3. अवस्थी, 'पद्मश्री' मालिनी, श्रद्धा के सनातन भाव से हो पर्यावरण संरक्षण, दैनिक जागरण, 5 जून 2022
4. सिंह, डॉ. विद्याबिन्दु, अवधी लोकगीत विरासत, 2018
5. शाही, प्रो. सदानंद, जनपदीय अध्ययन की भूमिका, 2017, भोजपुरी अध्ययन केन्द्र, का.हि.वि.वि., वाराणसी,
5. कविताकोश वेवसाइट

# Concept of Siddhasana in Yoga Texts

**Dr. Hirdesh Bharti**** **Dr. Pooja Tiwari***

**Abstract**

*Siddhasana is one of the best meditative asanas. The description of which is found in most of the texts of yoga, such as Gherand Samhita, Hathapradipika, Hatha-Ratnavali, Yogapanishad (Kshurikopanishad, Tejobindu Upanishad, Trishikhibrahmanopanishad, Dhyanabindupanishad, Shandilyopanishad but the description of Algae is found in Siddhasana). There are some similarities and some changes are seen in different texts. There may be different methods of doing Siddhasana. According to different texts, therefore their benefits are also obtained differently in different places. Keeping this in mind, working on its concept in the texts of Yoga, so that all the information about Siddhasana can be easily obtained.*

**Keywords** : *Sidhhasan, Yogic Text, Yoga Upanishads, Asan.*

**Methodology :** *This is a theoretical research. In this we had refer to following scriptures kshurikopanishao, Tejobindu Upanishad, Trishikbibrahmanopanishad, Dhyanabindupanishad, Shandilyepanishad, Gherand Samhita, Hathapradipika. Siddhasana is one of the most important meditative asana which is explained in upnishad.*

**Upnishads are originated from Vedas & Music is originated from samaveda. We can improve the mental ability and concentration by performing Nadayoga in siddhasane. In siddhasana we can also perform music and meditation together.**

**Introduction :** Siddhasana is one of the oldest asanas, described as a meditation posture in the 10th century Goraksh century. Siddhasana is a symbol of power and dexterity, that is why the asana is called Siddhasana (Saraswati, 2011). Siddhasana is described in yogic texts as a meditative posture. Siddhasana is used for doing pranayama, mudra, bandha, dharana and meditation.The description of Siddhasana is found in yogic texts such as Gherand Samhita, Yogapanishad (Kshurikopanishad, Tejobindupanishad, Trishikhibrahmanopanishad, Dhyanbindupanishad, Shandilyopanishad), etc. Siddhasana is the best asana in a meditative posture. Siddhasana is used for attaining salvation.

**Kshurikopanishad :** Kshurikopanishad says to sit in Padmasana or Siddhasana to practice Pranayama.It has also been told in the Kshurikopanishad that, if there is a problem in sitting in Siddhasana in the beginning, then one can sit in Padmasana, but if there is difficulty in Padmasana also, then it is appropriate to use Vajrasana or Sukhasana (Sharma, 2016).

**Tejobindupanishad :**

Sukhenaivabhavedyasminnajasrambrahmchintanam.
Asanamtadvijaniyadanyatsukhvinashanam ||25||

**Meaning-** The position in which one is sitting comfortably with constant stability is called asana. In any other situation, one gets sorrow (Bhavan Singh, 1999).

Siddhayesarvabhutadivishwadhisthanamdvayam.
Yasminsiddhi Gata: Siddhastatsiddhasanmuchyate.
||26||

**Meaning-** All beings have attained the siddhis of the base, shelter and unique Brahman of the world, that easy is called Siddhasana (Bapatshastri, 2007).

*Lecturer, Departmentof Yoga and Naturopathy, Jayoti Vidyapeeth Women's University, Jaipur (Rajasthan)
**Assistant Professor, Swasthya Kalyan Institute of Naturopathy and Yogic Sciences, Jaipur (Rajasthan)

**Trishikhibrahmanopanishad**

Sarvavastunyudaseenbhavamasanamuttamam. ||29||

**Meaning-** Detachment or detachment from all the things of the world is called asana (Srinivasa Ayyangar et al., 2019).

Yonim Vamen Sampadya Medhradupari Dakshinam. ||49||
Rijukayahsamasinahsiddhasanmudiritam.

**Meaning-** The space between the anus and the urinary tract is called the vagina. Putting the heel of the left foot at that place and the heel of the right foot should be placed in the place of the inguinal root. By doing this all the weight of the body comes on the heel of the left foot. The waist should be kept straight. The practice of sitting in Siddhasana should be increased gradually. Siddhasana is the best posture. This asana is considered very helpful and useful for meditation (Ayyangar, 1938).

**Dhyanabindu Upanishad**

Asananichtavantiyavantyojivajaatayah.
Eteshanatulanbhedanvijanati Maheshwar: ||42||

**Meaning-** There are as many asanas as there are types of vaginas in the universe. Only Shiva knows all these asanas (Podar, 2012).

Chhiram Bhadram and Simham Padmam Cheti Chatushtayam.

**Meaning-** These four asanas are useful for yoga practice: Siddhasana, Bhadrasana, Throne and Padmasana (Shastri, 2015).

**Shandilopanishad**

Yoni vamensampedyamedhradruparidakshinam.
Bhrumadhe cha manolaksyamsiddhasanamidambhavet ||7||

**Meaning-** Pressing the anal region with the left foot, keep the right foot at the root of the penis and later concentrate on the equatorial place between the two eyebrows (Vidhyalankar, 2018).

**According to Gherand Samhita**

In Gherand Samhita, in the second chapter Yogasan episode, the first asana Siddhasana is described in verse number 3. In Gherand Samhita, a total of 32 asanas are described, in which a detailed description of Siddhasana is found in the 7th and 8th verse number of the second chapter (Saraswati, 2011).

**Method of doing Siddhasana-**

To do Siddhasana, put one foot between the scrotum and the anus. Keep the other leg bent in such a way that the ankles keep touching each other. Keep the waist and neck straight and sit in its place. Keep the Mediterranean view l and keep the chin on the chest. After some time, change the legs and sit down (Saraswati, 2011).

**Benefits of Sidhsasan**

By doing Siddhasana, the stability of the spine remains. By doing Siddhasana, there is pressure on the pubic bone, which puts pressure on the sacrum region, due to which the Vajroli / Sahjoli posture is automatically engaged. By doing Siddhasana, it controls the secretion of reproductive hormones, which is necessary for spiritual progress and celibacy. Practicing Siddhasana brings harmony to the abdominal region, pelvic region and the organs of the stomach. In awakening the Muladhara chakra, in making Apana Vayu upwards, in the prevention of mental diseases, attainment of emptiness. A special contribution of Siddhasan is received (Saraswati, 2011).

**Precautions**

This asana should not be practiced if there is a problem of sciatica and lower back of the spine.

**According to Hathapradipika**

Swatmaram Suri, the author of Hathapradipika, while describing Siddhasana in

the first chapter, has said.

Atha siddhasanam
Yoni-sthanakamandhri-mool-ghatimkatvadandvinyaset
Mendre padmathakmevhdayyekatvahanunsustathiram|
Sathanu: sanymitendriyoachal-dishapasyedbhruvorantram
Haytanmoksha-kapat-bheda-janakamsiddhasanamparochyate ||
(Hathapradipika- 1/37)

**Meaning-** Press the heel of the left foot firmly against the perineum and the right heel against the male part. Keeping the chin pressed on the chest, the senses should be controlled and one should sit calmly and look at the space between the eyebrows with a fixed gaze. This is called Siddhasana, which is the one who opens the doors of salvation.

Mendhradupari Vinyasya Savyam Gulpham Tathopari |
Gulfantaramchnikshipyasiddhasanamidambhavet ||
(Hathapradipika-38)

**Meaning-** This Siddhasana is also performed by placing the left heel on the Mehra (above the male organ) and then placing the right heel on it.

Ettasiddhasanam Parahuranye Vajrasanam Viduh |
Muktasanam Vadantyeke Parahurguptasanam Pare ||
(Hathapradipika-39)

**Meaning-** Some call it Siddhasana and some call it Vajrasana. Others call it Mukta Asana or Gupta Asana.

Yameshhviva Mitaharamahimsa
Main sarvasaneshvekamsiddhaahsiddhasanamviduh ||
(Hathapradipika-40)

**Meaning-** Just as there is restraint in Yamas and non-violence in rules, similarly Siddhasana is called Siddhasana, the main of all asanas.

Chhaturshiti-Peetheshu Siddhameva Sadabhyaset |
Dawasaptati-sahasranamnadinam mal-shodhanam ||
(Hathapradipika-41)

**Meaning-** Of the 84 asanas, Siddhasana should always be practiced, as it removes the impurities of 72,000 nadis.

Atma- Dhyaya Mitahari Yavadvadash-Vatsaram |
sadasiddhasanaabhyasayoginishhappatimapnuyat ||
(Hathapradipika-42)

**Meaning-** By contemplating one's self, by eating with restraint and by practicing Siddhasana for 12 years, a yogi attains success.

Kimanyarbahubhihpeethaiahsidhesiddhasane sati.
Paranile careful bounded keval-kumbhake |
Utpadyatenirayasatsvaymevonmani art ||
(Hathapradipika-43)

**Meaning-** When success is achieved in Siddhasana, other asanas are of no use and only by Kumbhaka the Prana Vayu becomes calm and restrained.

Tathikasminnevadandhesidhesiddhasane sati |
bandha-tarayamnayasatsvaymevopajayate ||
(Hathapradipika-44)

**Meaning-** One gets success only by being firmly established in one Siddhasana, one attains Unmani at once, and the three bandhas (bandhas) are self-perpetuated.

Nasanam siddha-sadashamnakumbhahkevalopamah|
Neither khechari-sama mudra nor naad-sadsho rhythm || (Hathapradipika-45)

**Meaning-** There is no posture like Siddhasana and there is no Kumbhaka like Kevala. There is no mudra like khechari and no rhythm like naad (anahatnaad) (Sinh, 1914).

**Conclusion-** Siddhasana is considered to be the main asana among all the asanas. Therefore, its description is found in most of the yogic texts. Its information has been collected here, so that all yoga seekers can get all the information about Siddhasana and complete information about Siddhasana. By achieving this, one can attain the highest position in the field of sadhana and it will be easy to achieve siddhis as well.

**References** :

Ayyangar, T. R. S. (1938). THE YOGA-UPANISAD-S. Adyar Library.

Bapatshastri, V. V. (2007). Subodh Upanishat Sangrah, part-1. Mu. D. Jog.

Bhavan Singh, R. (1999). 108 Upanishads. Dimond Poket Books.

Podar, H. P. (2012). Upanishad ank (p. 802). Geeta Press Gorakhpur.

Saraswati, S. N. (2011). Gherand Samhita (2nd ed.). Yoga Publication Trast.

Sharma, S. R. (2016). 108 Upanishad saral. Yug Nirman Yojana Vistar Trust.

Shastri, A. K. (2015). Upanishatsanchyanam (1st ed, Vol. 1st). Choukhamba Sanskrit Pratishthan.

Sinh, P. (1914). Hatha Yoga Pradipika: Chapter 1. On Âsanas. https://www.sacred-texts.com/hin/hyp/hyp03.htm

Srinivasa Ayyangar, T. R., Penna, M., & Upani?adbrahmayogi (Eds.). (2019). Yogopani?ada?: The Yoga Upani?ad's: Sanskrit text with the commentary of ?r?Upani?ad-Brahmayogin, English translation, notes & index (First edition). New Bharatiya Book Corporation.

Vidhyalankar, S. (2018). Yoga Upanishadah (1st ed., Vol. 1st). Pratibha Prakashan.

# संहिताओं में संगीत शिक्षा का स्वरूप

**डॉ. आकांक्षा पाल***

**सारांश**

*संस्कृति के मूल्यों को रूप–विधान में बांधना कला का कृतित्व है। कला, अपनी मूल भारतीय संस्कृति में अनवच्छिन्न एवं अविच्छेद रूप से सम्पृक्त है। संगीत, मानव समाज की एक सहज कलात्मक उपलब्धि है जो सांस्कृतिक परम्पराओं का मूर्तिमान प्रतीक है। वैदिक काल से ही निरन्तर चली आ रही हमारी भारतीय सांगीतिक–परम्परा के अन्तर्गत गुरू का शिष्य को विद्या–दान करना एवं शिष्य द्वारा शिक्षा ग्रहण करने की परम्परा रही है। उस समय आचार्य का घर ही पाठशाला हुआ करता था। जहाँ शिक्षा नियमित रूप से प्रदान की जाती थी। वेदों की शिक्षा भी इन्हीं गुरूकुलों के अन्तर्गत दिए जाने का प्रावधान रहा जिसमें ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद, और सामवेद इन सभी संहिताओं का ज्ञान प्रदान किया जाता था। इन्हीं संहिताओं के जो वेद–मंत्र गायन योग्य होते थे, उनके संग्रह को 'संहिता' कहा गया। कहने का तात्पर्य यह है कि उस समय भी भारतीय संगीत का शास्त्र–पक्ष सुनियोजित एवं प्रामाणिक रूप में स्थिर हो चुका था।*

*इन्हीं विचारों के साथ ऐतिहासिक शोध–प्रविधि को अपनाते हुए इस शोध–विषय का पल्लवन हुआ जिसका विस्तारपूर्वक वर्णन मेरे मुख्य शोध–प्रपत्र के माध्यम से प्रस्तुत किया जा रहा है।*

**बीज शब्द** : *संगीत, शिक्षा, संहिता, परम्परा, संस्कृति, कला, मंत्र ।*

**शोध–माध्यम** : *अनेक पुस्तकों के अध्ययन के बाद संकलित सामग्री के आधार पर यह लेख तैयार किया गया है ।*

प्राचीन काल से ही समय–समय पर विभिन्न भारतीय सांगीतिक परम्पराओं का विकास होता रहा है। परम्परा ही शास्त्रीय कला को जीवन्तता प्रदान करती है। इन परम्पराओं का पालन करने व नवीन सौन्दर्य दृष्टि अपनाने से ही कला की नींव सुदृढ़ होती है व विकास का क्रम सहज रूप से बना रहता है।

वैदिक युग से चली आ रही हमारी परम्परा जिसमें गुरु से शिष्य को किस प्रकार कैसी शिक्षा दी जाती थी, फिर धीरे–धीरे संगीत का इतिहास बना, राग बने, ताल बने, शनैः–शनैः प्रचार होने लगा, विभिन्न शैलियाँ बनने लगीं। विभिन्न परम्पराएँ बनीं, फिर गुरुकुल पद्धतियों ने हमारे यहाँ एक महत्वपूर्ण स्थान ग्रहण कर लिया। इसके पहले सभी वेदों का ज्ञान गुरुकुल के अन्तर्गत ही होता था, जिसमें अथर्ववेद हो या ऋग्वेद, यजुर्वेद अथवा सामवेद सभी को शिक्षा प्रदान की जाती थी।

जो वेद–मंत्र गायन योग्य होते हैं, उनके संग्रह का नाम है– संहिता। ऐसा कहा जाता है कि जब लिखने की भाषा इतनी उन्नत नहीं थी, उस समय साहित्य को मन्त्रों की सहायता से याद कर लिया जाता था। यही मंत्र वैदिक साहित्य को वास्तविक एवं प्राचीनतम रूप प्रदान करता है, इसे ही 'संहिता' कहा जाता है। प्रायः ये मंत्र पद्य के रूप में प्राप्त होते हैं।

प्रो. कर्ण सिंह के अनुसार– "संहिताएँ रचनात्मक साहित्य के अन्तर्गत आती हैं और इनमें काव्य तत्त्व की प्रधानता होती है।"[1]

### ऋक् संहिता में संगीत का स्वरूप–

विश्व का प्राचीनतम ग्रन्थ है–ऋग्वेद। वेदों में प्रथम वेद ऋग्वेद माना जाता हैं। सर्वप्रथम भारतीय संस्कृति एवं संगीत का विवरण इसी ग्रन्थ में प्राप्त होता है। इसे पाठ्य वेद भी कहा जा सकता है क्योंकि ऋग्वेद के आरंभ में ऋचाओं का पाठ किया जाता था एवं इनमें तीन स्वर उदात्त, अनुदात्त एवं स्वरित इन तीनों के प्रयोग का उल्लेख हैं। इसमें गीत के लिए गीर, गातु, गाथा, गायत्र, गीति एवं साम आदि शब्दों का प्रयोग ऋग्वेद में हुआ है। इसमें लगभग 1088 सूत्र एवं 10 मण्डल हैं।

'ऋक् शब्द 'ऋच्' धातु से उत्पन्न हुआ है। 'ऋच्–स्तुतौ' अर्थात् 'ऋच्' धातु का प्रयोग स्तुति और

*अतिथि प्रवक्ता (गायन), संगीत विभाग, सी.एम.पी. डिग्री कॉलेज, प्रयागराज

प्रार्थना आदि के लिए होता है। ऋक् 'ऋच्' धातु का संज्ञा रूप है। ऋक् का अर्थ है–स्तुति मंत्र'[2] अर्थात् जिस ग्रन्थ में ऋक् या स्तुति मन्त्रों का संग्रह हुआ है, उसे ऋक् संहिता कहा जाता है।

'ऋग्वेद की गेय ऋचाएँ 'स्तोत्र' कहलाती थीं, स्तोत्रों का आवर्तिपूर्वक पाठ 'स्तोम' कहलाता था, जो तीन ऋचाओं पर आधारित होता था।'[3]

संहिताओं में गायक के लिए 'गातुवित्तम' शब्द का प्रयोग भी देखा जाता है वैसे तो ऋग्वेद पदात्मक है, परन्तु इसकी अधिकांश ऋचाएँ गेय हैं।

**यजु संहिता में संगीत का स्वरूप**

'यजुस्' या 'यजुः' शब्द यज् धातु से उत्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ है– यज्ञ या पूजन करना अर्थात् जिन मंत्रों का व्यवहार यज्ञों में गान के लिए हुआ करता था, उनको "यजुस्' या 'यजुः' कहा जाता है।

यजुर्वेद में यज्ञों एवं उनके कर्मकाण्डों की प्रधानता होते हुए भी संगीत को उचित स्थान प्राप्त था। इसलिए प्राचीन संगीत को जानने के लिए यजुर्वेद का अध्ययन आवश्यक है क्योंकि इसमें मूलतः मंत्र व देव–स्तुति के गायन का उल्लेख प्राप्त होता है।

'यज्ञों के कार्य–सम्पादन में चार ऋत्विजों – होता, अर्ध्वयु, उद्गाता एवं ब्रह्मा की आवश्यकता हुआ करती थी। सर्वप्रथम 'उद्गाता' अपने अन्य सहयोगियों के साथ स्तोत्र गायन करता था तथा उसके बाद उन्हीं देवताओं को ध्यान में रखते हुए 'होता' शास्त्र का पठन अर्थात् ऋचाओं का पाठ करता था। यजुर्वेद में वर्णित सोमयाग में साम गायक का सर्वप्रथम स्थान है। यज्ञ के कार्य का संचालन अर्ध्वयु नामक ऋत्विज् के द्वारा सम्पन्न किया जाता था अर्थात् जिन मन्त्रों के माध्यम से यह यजन–कर्म किये जाते हैं, उन्हीं का संकलन उस संहिता में हुआ है–'ऋग्भिः यजुभिः सामभिर्यदेन ऋग्भिः शंसन्ति यजुभिर्यजन्ति सामभिः स्तुवन्ति।'[4]

यजुर्वेद को दो भागों में विभाजित किया गया है–कृष्ण यजुर्वेद अथवा तैत्तरीय संहिता, शुक्ल यजुर्वेद अथवा वाजसनेई। कृष्ण यजुर्वेद से सम्बन्धित तैत्तिरीय ब्राह्मण एवं शुक्ल यजुर्वेद से सम्बन्धित शतपथ ब्राह्मण है।

यद्यपि यजुर्वेद का संगीत कला से सीधा सम्बन्ध नहीं है परन्तु इस काल में संगीत का पर्याप्त वर्णन प्राप्त होता है।

**अथर्व संहिता में संगीत का स्वरूप–**

चारों संहिताओं में अथर्व संहिता का एक विशिष्ट स्थान है। इसके लिए 'अंगिरोअथर्वागिरस' एवं 'ब्रह्मवेद' आदि अन्य संज्ञाएँ भी प्राप्त होती हैं।' जो मन्त्र सुखमूलक और मंगल प्रदान करने वाले होते हैं, उन मन्त्रों के लिए 'अथर्वन्' संज्ञा का प्रयोग करते हैं। जारण–मारण इत्यादि कार्यों के लिए जिन अभिचार मन्त्रों का प्रयोग किया जाता है, उनका सम्बन्ध आंगिरस से होता है।

अथर्व संहिता का आकार ऋग्वेद के दशवें मण्डल के बराबर है। साथ ही, इसके अधिकांश मन्त्र भी ऋग्वेद के दशवें मण्डल से ही लिए गए हैं।

अथर्व संहिता में विशिष्ट सामों एवं स्तोत्रों के अतिरिक्त लोकगीतों (गाथा, रैभी, नाराशंसी) इत्यादि का वर्णन भी प्राप्त होता है। विवाहादि प्रसंगों पर इन लोक गीतों का गायन किया जाता था। इसके अतिरिक्त कर्करी, आघाट और दुन्दुभि आदि वाद्यों का उल्लेख भी अथर्व संहिता में अनेक स्थानों पर प्राप्त होता है।

इस प्रकार जिन मंत्रों का प्रयोग शान्ति, स्वस्त्ययन एवं रक्षण हेतु किया जाता है उनके संग्रह को अथर्व संहिता कहा गया है।

**सामसंहिता में संगीत का स्वरूप–**

सामवेद पूर्णतया संगीतमय है। ऐसा कहा जाता है कि साम संगीत से ही भारतीय संगीत का विकास हुआ हैं। संगीत का मूल स्रोत है– सामवेद। इसके मंत्र यज्ञों में देवताओं की स्तुति करते समय गाए जाते थे। 'गान्धर्व वेद' को सामवेद का ही उपवेद कहा गया है। ऋचा, सामगान का आधार है, जैसा छान्दोग्य उपनिषद में वर्णित है– "ऋषि अध्यूढ़ं साम गीयते।"[5]

सामगान के मुख्य तीन भाग होते थे– प्रस्ताव, प्रतिहार एवं उद्गीत। इसके साथ ही साथ उनके तीन उपांग भी थे जिन्हें हिंकार, उपद्रव व निधन कहा जाता था। साम का प्राणभूत तत्व स्वर है। सामगान का आरम्भ ओम् स्वर से ही किया जाता था– ओमिति सामानि गायन्ति।[6]

साम अपना आधार जिन ऋचाओं को बनाता है

उनको 'सामयोनि' कहा गया है। साम का उत्पत्ति स्थान भी इन्हीं ऋचाओं को माना गया है। प्रारम्भ में सामगान में केवल तीन स्वर प्रयोग किए जाते थे जिन्हें क्रमशः उदात्त, अनुदात्त एवं स्वरित कहा जाता था परन्तु आगे चलकर वैदिक काल में ही सामगान सात स्वरों में किया जाने लगा– "सप्त स्वरास्तु गीयन्ते सामपिः गावधै।"[7]

वायु पुराण, भागवत पुराण एवं विष्णु पुराण के अनुसार मूल साम–शाखाओं के प्रवर्तक वेद व्यास ने यज्ञ की आवश्यकता को ध्यान में रखकर अपने चार शिष्यों को चार स्वतन्त्र संहिताओं की शिक्षा दी, जिसमें जैमिनी को साम की शिक्षा का अध्ययन कराया 'सामगो जैमिनिः कविः। जैमिनि ही साम के आद्य आचार्य के रूप में माने गये हैं। इसी परम्परागत क्रम में जैमिनी से उनके पुत्र सुमन्तु, सुमन्तु से उनके पुत्र सुन्वान और सुन्वान से उनके पुत्र सुकर्मा को साम संहिता एवं गान की शिक्षा प्राप्त हुई।

पुराणों के अनुसार साम संहिता को प्रसृत करने का श्रेय सामवेद आचार्य सुकर्मा एवं इनके दो शिष्यों हिरण्यनाभ और पौष्यन्जि को जाता है जो क्रमशः पूर्वीय प्रान्त के होने के कारण 'प्राच्य सामग' तथा 'उदीच्च' कहलाए। इस प्रकार इनकी परम्परा का प्रचार–प्रसार उत्तर भारत से सम्बद्ध होने के कारण इनकी ख्याति 'उत्तरीय सामग' नाम से प्रचलित रही हैं।

इस प्रकार उपरोक्त कथनों से यह विदित होता है कि सर्वप्रथम भावी उद्गाता को आर्चिक ग्रन्थों की शिक्षा–दीक्षा दी जाती थी, जिससे गान की आधारभूत ऋचाएँ उनके कंठगत हो जाएँ। गान की ये ऋचाएँ केवल रूप–रेखा मात्र ही हुआ करती थीं, इन्हें ही यथायोग्य परिवर्तन और परिवर्द्धन करने की शिक्षा प्रदान की जाती थी।

**सन्दर्भ सूची :**


1. सिंह, डॉ. कर्ण, वैदिक साहित्य का इतिहास, (मेरठ–साहित्य भण्डार, प्रथम संस्करण, 1986–87) पृष्ठ संख्या–19
2. कुमार, डॉ. अशोक (यमन), भारतीय संगीत का इतिहास (भाग–1), के.के. पब्लिकेशन्स, प्रथम संस्करण–2014, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या–66
3. सोनी, डॉ. राकेश, संगीत, नाट्य परम्परा और बुन्देलखण्ड, मध्यप्रदेश विश्वविद्यालय प्रकाशन, सागर, प्रथम संस्करण, 2006, पृष्ठ संख्या 61
4. परांजपे, डॉ. शरच्चंद्र श्रीधर, भारतीय संगीत का इतिहास (वाराणसी, 2015, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, पृष्ठ संख्या–26
5. सिंह, डॉ. ठाकुर जयदेव, (सम्पादित) शर्मा, प्रेमलता, भारतीय संगीत का इतिहास, 2010, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृष्ठ संख्या–40
6. तिवारी, डॉ. हरीश कुमार, मंच प्रदर्शन में कलाकार एवं श्रोता, प्रथम संस्करण–2005, संजय प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ संख्या–24
7. शर्मा, प्रो. स्वतंत्र, भारतीय संगीत एक ऐतिहासिक विश्लेषण, प्रथम संस्करण–1988, टी.एन. भार्गव एण्ड सन्स, इलाहाबाद, पृष्ठ संख्या–10

# दक्षिण एवं पश्चिम भारत में क्षेत्रीय विविधताओं के आधार पर रंगबंधक आधारित रंगाई–छपाई का तुलनात्मक अध्ययन

**डॉ. प्रज्ञा पाठक***

**सारांशिका**

*रंगबंधकों द्वारा रंगाई–छपाई हमारे देश की पुरातन परम्परा रही है। यह एक विशेष तकनीक को इंगित करता है जिसके अंतर्गत वस्त्रों को रंगाई–छपाई से पूर्व एक विशिष्ट विधि द्वारा (द्वारा रंगबंधकों) तैयार किया जाता है। इसमें प्रकृतिप्रदत्त जैविक पदार्थों का लेपन कपड़े पर किया जाता है, तत्पश्चात् रंजकों को वस्त्र पर अलंकरण के अनुरूप लगाया जाता है। इस प्रकार रंगबंधकों से मिश्रित होकर अभीष्ट रंजक चटकीली रंगतों के रूप में कपड़े पर उभर आता है। ये रंगबंधक रंगों के टिकाऊपन को बनाए रखने में सक्षम होते हैं। दक्षिण एवं पश्चिम भारत में रंगबंधकों के प्रयोग से निर्मित होने वाले वस्त्रों में माता–नी–पछेड़ी (गुजरात) एवं कलमकारी (आन्ध्र प्रदेश) हैं, जो प्रमुख रूप से धार्मिक प्रयोजनों के लिए निर्मित किये जाते हैं। ये वस्त्र वानस्पतिक रंगों व पूर्णतः स्थानीय स्रोतों पर निर्भर होते हैं व स्थानीय कारीगरों द्वारा निर्मित किये जाते हैं। प्रस्तुत शोध–पत्र रंगाई–छपाईयुक्त भारतीय वस्त्रकला के तकनीकी विश्लेषण पर आधारित है। इसमें दोनों स्थलों पर निर्मित होने वाले इन वस्त्रों के सम्पूर्ण स्वरूप के विवरण एवं विभेद तथा समानताओं पर प्रकाश डाला गया है। साथ ही, समसामयिक बदलाओं को भी परिलक्षित किया गया है।*

**शब्द कुंजिका** : *रंगे–छपे वस्त्र, रंगबंधक रंगाई, कलमकारी, वानस्पतिक रंगाई*

***शोध प्रविधि*** *: प्रमुख रूप से गुणात्मक एवं ऐतिहासिक शोध–विधि, पुस्तकें, शोध–ग्रन्थ एवं पत्र, द्वितीयक विधि के अंतर्गत सर्वेक्षण, साक्षात्कार इत्यादि।*

## शोध परिप्रेक्ष्य : रंगबंधक रंगाई–छपाई का सामान्य परिचय

रंगबंधक रंगाई–छपाई वस्त्र–अलंकरण की एक ऐसी विधि है, जो आदिम सभ्यता के उदय से लेकर अब तक, निरंतर परिवर्तित और परिमार्जित स्वरूप धारण कर हमारे साथ यात्रा कर रही है। जब से मनुष्य ने पेड़ों की छाल, पत्तियाँ और पशुओं की खाल इत्यादि को त्याग कर, वेश–भूषा के रूप में, बुने हुए वस्त्र धारण किये है, तब से वस्त्रकला के लिए उपयुक्त माध्यमों में, बदलती अभिरुचियों के साथ क्षेत्रीय विविधता का आयाम भी जुड़ गया। रशिया की वातावरणीय परिस्थितियों ने वहाँ फर के प्रयोग को बहुप्रचलित बनाया। यूरोप ने लाईनिन और ऊनी वस्त्रों के प्रयोग को परिस्थितिजन्य अनिवार्यता के कारण स्वीकार किया। मध्यवर्ती प्रदेशों में रेशम का प्रयोग अत्यंत लोकप्रिय हुआ। प्राचीन मिस्र ने लाईनिन के उत्पादन पर सिद्धहस्तता प्राप्त की। चीन कई शताब्दियों तक, रेशम के उत्पादन पर एकाधिपत्य जमाये रहा। इसी प्रकार, पश्चिमी एशिया में, सीरिया से इंडोनेशियायी द्वीप समूहों तक और पूर्व में चीन तक सूत की खेती होती थी। यह नहीं कहा जा सकता है कि उस समय सूत के उत्पादन पर किसी एक देश का एकाधिपत्य था, जैसा कि रेशम के मामले में चीन का।[1]

रंग बंधकों का उपयोग प्राचीन काल से सूती वस्त्रों के लिए होता रहा है। ऑकर एकमात्र ऐसा रंग था, जिसे सूत द्वारा सरलतापूर्वक, अवशोषित कर लिया जाता था, किन्तु अन्य रंगों की आभाओं को प्राप्त करने के लिए, रंगाई से पूर्व कपड़े को रंगबंधकों के लेपन द्वारा तैयार किया जाता था। तत्पश्चात् रासायनिक प्रतिक्रियाओं द्वारा, मनवांछित रंग में रंगाई की जाती थी। रंग बंधकों को कपड़े की पूरी सतह पर या निश्चित भाग पर कलम या ठप्पों की सहायता से लगाया जाता था। कपड़े की बुनाई सदैव सादी टैबी की होती थी[2], हड़प्पा की खुदाई में प्राप्त रंगबंधक विधि द्वारा रंगा एक सूत का टुकड़ा रंगाई–छपाई की विधा का प्राचीन प्रमाण है। यद्यपि इस तकनीक का उपयोग विस्तृत क्षेत्र में होता था, पर भारत और ईरान दो प्रमुख केंद्र थे, जहाँ रंग–छपे वस्त्रों का उत्पादन होता था।[3] रंगाई के दो प्रमुख तरीकों में एक तो छींट (Block) द्वारा रंगाई

*असिस्टेंट प्रोफेसर, पी.आई.डी. पारुल यूनिवर्सिटी, वड़ोदरा, गुजरात

थी, और दूसरी आरोपण तकनीक (Transfer method) द्वारा, जिसमें बाद में अभिकल्पों को कागज पर उतारा जाता था, और म्यूज़लिन–बैग की मदद से कपड़े पर छापा जाता था।[4]

जॉन इरविन और कैथरीन ब्रेट द्वारा 'ओरिजिन ऑफ़ शीन्त्ज़' नामक पुस्तक में, इन वस्त्रों के लिए विभिन्न शब्दावलियाँ प्रयुक्त हुई हैं। पिन्तादो (पुर्तगाली), शीन्त्ज़ (इंग्लिश), सीट्स (डच) और कलमकारी (ईरानी) भाषा के शब्द हैं, जो इन वस्त्रों के लिए उत्तर मध्यवर्ती काल में प्रयुक्त होते थे।[5] यूरोपियन लोगों ने मध्य काल के प्राकृत शब्द छींट से 'शीन्त्ज़' शब्द का निर्माण किया। डच भाषा में, रंगे कपड़ों के लिए 'सीट्स' और छपे कपड़ों के लिए 'चीट्स' शब्द का प्रयोग प्रचलित हुआ। पुर्तगाली में 'पिन्तादो' और फ्रेंच में 'चित्ते' शब्द तोइल्स पेंट्स (रंगे हुए) और तोइल्स इम्प्रीमिस (छपे हुए) को उद्बोधित करता है। 19वीं. शती के पूर्वार्द्ध तक किसी भी प्रकार के छपे कपड़े का तात्पर्य उत्तर में पटना और पश्चिमी तट में गुजरात में छपे कपड़ों से लिया जाता था। भारत में इन्हें छींट, प्रिंटेड कैलिको और कलमकारी के नाम से जाना जाता है। दक्षिण भारतीय आन्ध्र प्रदेश की स्थानीय भाषा तेलुगू में इसे 'व्राथपनी' कहा जाता है।[6] भारत में रंगाई–छपाई के प्रचलित प्रकार श्रीमती पुपुल जयकर ने हस्त–निर्मित इन रंगे–छपे वस्त्रों के विविध और व्यापक चरित्र के यथोचित अध्ययन के लिए एक वर्गीकरण प्रस्तुत किया है, जिसमें सभी प्रकार के मशीन निर्मित वस्त्रों को बहिष्कृत किया गया है। छपे हुए वस्त्र, जिन पर नमूनों (Motif) को, कपड़ों की बुनाई के पश्चात् रंजक–द्रव्य[7] या रंगद्रव्य[8] की मदद से सतह पर अलंकृत किया जाता है। इन्हें अलंकृत करने की विभिन्न प्रविधियाँ निम्नांकित हैं;[9]–

1. प्रत्यक्ष लेपन विधि (Direct method)
2. प्रतिरोधक या नील रंगाई विधि (Resist-Indigo dying)
3. रंगद्रव्य या गाढ़े रोगन की लेपन विधि (Mordant method)
4. रंगबंधक, मंजीठ, एलीज़रीन विधि (Mordant, Alizerine discharge method)

रंगबंधक या एलीजरीन विधि में कपड़े को रंगाई से पूर्व विभिन्न रंगबंधकों से तैयार किया जाता है। कपड़े का वह हिस्सा जो रंगबंधकों के लेपन द्वारा पहले से तैयार किया होता है, रंगाई के दौरान रंजक पदार्थों से रासायनिक प्रतिक्रिया स्वरुप निश्चित रंग उत्सर्जित करता है। इनकी मदद से मनवांछित रंग की अनेक प्रकार की तानें निकाली जा सकती हैं। रंगबंधक और रंजक दोनों ही तूलिका या ठप्पों की सहायता से वस्त्र की सतह पर लगाये जाते हैं। निस्सारण विधि में कपड़े की पृष्ठभूमि को पहले मनपसंद रंग से रंग लिया जाता है, व नमूनों के अलंकरण के लिए रसायन को कपड़े की सतह पर लगाया जाता है, फलस्वरूप उस हिस्से से पृष्ठभूमि का रंग गायब हो जाता है।[10]

उपरोक्त सभी प्रकार की छपाइयाँ भारत में होती हैं। ब्लॉक और स्क्रीन छपाई प्रायः शहरों में होती हैं। इसमें अधिकतर रेशम, रेयान और सूती कपड़ों का प्रयोग होता है। रेशम पर निस्सारण विधि द्वारा छपाई कुछ बड़े शहरों तक सीमित है। नील, एलीजरीन या मंजीठ और रोगन रंगाई विधियाँ ज्यादातर गाँवों में छीपाओं (छपाई करने वाले) द्वारा पारंपरिक शिल्प के बतौर प्रयुक्त होती हैं। ये छीपा प्रायः हिन्दू और मुस्लिम दोनों परिवारों से होते हैं। अधिकतर छपाई केंद्र प्रायः नदियों, तालाबों और कुओं के इर्द–गिर्द होते हैं, जिनके पानी में विशिष्ट प्रकार के रासायनिक तत्व, जैसे– एलम (फिटकरी) और कैल्शियम (चूना) आदि होते हैं। ये तत्त्व वानस्पतिक रंगों को गहरा और चटक बनाते हैं। पिछले एक दशक से मंजीठ के स्थान पर एलीज़रीन का प्रयोग होने लगा है, और नील के स्थान पर कृत्रिम नील का, जो कोल–तार का अनुत्पाद है। इन कृत्रिम रंगों के कारण वानस्पतिक रंगों की रंगाई लगभग गायब हो चुकी है, किन्तु तकनीकी दृष्टि से अभी भी पुरानी प्रविधियों का प्रयोग हो रहा है।[11] रंगी–छपी भारतीय कलमकारी रंग बंधकों द्वारा छपाई का सर्वप्रचलित उदाहरण कलमकारी है। शब्द कलमकारी का उपयोग, वस्तुतः था तो निर्माण की तकनीक से प्रेरित किन्तु समयांतराल के साथ अलंकरण के पारंपरिक बिम्बों से जुड़ गया। अग्रेज़ी में डाई पेंटेड एंड प्रिंटेड और हिंदी में रंगे–छपे वस्त्र का उद्बोधन करने पर, जो समस्या सामने आती है, वह, यह कि, इनके विविध स्वरूपों में, विषयवस्तु सम्बंधित विभेद स्पष्ट नहीं हो पाता है। यद्यपि कलम के अधिकाधिक प्रयोग के कारण इस शब्द का प्रयोग किया गया था, किन्तु अपने धार्मिक–पारंपरिक तथा लोक–प्रचलित स्वरूप के कारण कलमकारी शब्द शुद्ध व्यावसायिक अर्थों से काफ़ी–कुछ मुक्त रहा, यही कारण है कि रंगे–छपे वस्त्रों

में धार्मिक अभिव्यक्ति की पहचान कलमकारी वस्त्रों के रूप में की जाती है, और ऊपर दिये गए, छींट, शीन्त्ज़ या अन्य शब्दों का प्रयोग इन वस्त्रों के शुद्ध व्यावसायिक स्वरूप का प्रतिनिधित्व करता है। भारत और ईरान दोनों देशों में शताब्दियों से रंगबंधक और प्रतिरोधक रंगाई की तकनीकों का ज्ञान मौजूद था। पश्चिमी भारत के समान ही, ईरानी शिल्पकार भी ठप्पों का प्रयोग रंजक–द्रव्यों के लेपन में करते थे। कलमकारी शब्द का, पहले–पहल उपयोग इन्हीं शिल्पकारों द्वारा प्रयुक्त तकनीक के लिये किया गया। इन शिल्पकारों को छीट–साज़ कह कर संबोधित किया गया। मध्यकाल के दौरान गोलकोंडा कोरोमंडल समुद्रतटीय क्षेत्र व्यापारिक उद्देश्य से निर्मित इन वस्त्रों के लिए खासा प्रसिद्ध था। ईरानी–व्यापारी बाज़ार की तलाश में इन तटवर्ती दक्षिण–पूर्वी क्षेत्रों में आये और इस प्रकार सफाविद–ईरान व कुतुबशाही गोलकुंडा के मध्य व्यापारिक संबंधों ने कलमकारी तकनीक को भारत में भी लोकप्रियता प्रदान की। गुजरात और दक्षिण में, रंगे–छपे इन सूती वस्त्रों के लिए, कलमकारी शब्द का प्रयोग प्रचलन में तब आया, जब सफाविद ईरान से, भारत के व्यापारिक सम्बन्ध सुदृढ़ हुए। कुतुबशाही गोलकोंडा में, मसुलिपत्तम इन वस्त्रों के निर्यात का प्रमुख केंद्र था। गोलकुंडा के सुल्तान द्वारा कलमकारी को विशेष प्रोत्साहन दिया गया, और दक्षिण के कोने–कोने में ले जाया गया। साधारण–सी कलम द्वारा असाधारण वस्त्रों का निर्माण करने वाले इन कलाकारों को सुल्तान ने, कलमकार और इनके द्वरा बनाए जाने वाले वस्त्रों को कलमकारी कहा।[12]

**पश्चिम और दक्षिण भारत के रंगबंधक वस्त्रों का अध्ययन**

पश्चिम और दक्षिण भारत में क्षेत्रीय विविधताओं और समानताओं के आधार पर रंग बंधक वस्त्रों का अध्ययन अनेक कोणों से किया जा सकता है। स्पष्टतः स्थान–विशेष की भौगोलिक संरचना, सामाजिक–सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के साथ–साथ वहाँ की राजनयिक परिस्थितियाँ कलाकर्म को आंतरिक और वाह्य दोनों ही प्रकार से प्रभावित करती हैं। दक्षिण और पश्चिम दोनों ही स्थानों पर समुद्रतटीय विस्तार ने कलमकारी कलाकार के लिए उपयुक्त वातावरण मुहैय्या कराया। समुद्र के लवणीय जल और सूर्य के प्रखर प्रकाश के साथ वानस्पतिक रंगों के संयोग से चटकदार और पक्की रंगतों के निर्माण में दोनों ही जगहों पर शिल्पकार सिद्धहस्त रहा है। गुजरात और दक्षिण भारत, दोनों ही स्थानों पर वस्त्र–कला–सम्बन्धी यूरोपीय गतिविधियों के अनेक तथ्य प्राप्त होते हैं। 17वीं. शती में बढ़ती हुई वस्त्र–निर्यात की मांग के चलते, उत्पाद और विपणन केंद्र पश्चिम से दक्षिण की ओर विकेन्द्रित होने लगे। तब से, हस्त–शिल्प के क्षेत्र में इन वस्त्रों ने अपनी एक सुनिश्चित जगह बना ली है, जहाँ तकनीकी दृष्टि से भी कोई विशेष बदलाव दिखाई नहीं पड़ता है।

गुजरात और कोरोमंडल (आंध्र) दोनों ही स्थानों पर, सूत तैयार करने की विधि में कोई विशेष अंतर नहीं दिखाई पड़ता है, किन्तु जहाँ एक ओर, गुजरात में, रंगबंधकों हेतु, लकड़ी के ठप्पों का प्रयोग प्रचलन में दीखता है, वहीं दूसरी ओर, कोरोमंडल में प्राचीन स्थानांतरण तकनीक (ट्रांसफर तकनीक) और कलम या तूलिका (ब्रश) का प्रयोग बहुतायत से दिखाई पड़ता है। दोनों ही बाजारों के लिए बनायी जाने वाली कलमकारियों की रंग–रेखा और अभिकल्पों का अपना मौलिक स्वरूप है, जो इन उत्पादों की बिक्री सुनिश्चित करता है। 17वीं शती में बड़ी मात्रा में व्यापारिक उद्देश्य से निर्मित किये जाने के कारण, गुजरात से लेकर दक्षिण तक, इन वस्त्रों के स्वरूप में विविध और व्यापक विकास हुआ। पुरातन समय में गुजराती वस्त्र अफ्रीका, खाड़ी देशों और इंडोनेशिया, दोनों ही स्थानों पर समान रूप से लोकप्रिय हुए। कोरोमंडल और आंध्र के सूती वस्त्र, दक्षिणी समुद्र तट, मलेशिया, इंडोनेशिया और फिलिपीन्स में अधिक लोकप्रिय हुए। ये गुजराती उत्पाद, थोड़ी बहुत शैलीगत विविधता के अतिरिक्त, भारत के दक्षिण–पूर्वी समुद्र तट पर निर्मित होने वाले उत्पादों के समान प्रतीत होते हैं। यूरोपीय मांग के अनुरूप, मानवाकारों वाली कलमकारियाँ, कोरोमंडल के मंदिरों के लिए बनने वाली दृष्टान्तयुक्त कलमकारियों का ही विकसित स्वरूप कही जा सकती हैं। इन्हें पश्चिमी समुद्रतट में निर्मित होने वाले वस्त्रों से तुलनात्मक रूप से अलग रखा जा सकता है। जॉन इरविन ने इन्हें बुरहानपुर स्कूल के अंतर्गत रखा है। इसके अलावा अध्ययन के पश्चात् ज्ञात होता है कि इस दौर में, वस्त्रकला के अभिकल्पीय सिद्धांतों और अलंकारिक कला में प्रयुक्त होने वाले विभिन्न प्रकार के अलंकरणों के स्वरूपों के मध्य, पर्याप्त समानता दिखाई पड़ती है या कहें कि विभिन्न विधाओं में निर्मित हस्तशिल्पों के अलंकरणों का आदान–प्रदान दिखाई पड़ता है। रंगों की आभाओं के लिए सुगमता से प्राप्त क्षेत्रीय वनस्पतियाँ अलग–अलग होती थीं, जिनसे रंगों के चटकीलेपन पर भी प्रभाव पड़ता था। उदाहरणस्वरूप

गुजरात में, गहरे लाल रंग के लिए प्रयुक्त होने वाला, अल मोरिंडा सिट्रीफोलिया (Al morinda citrifolia), कोरोमंडल में प्रयुक्त होने वाले, चाय, ओल्डेनलान्डिया अम्बेलेटा (Oldenlandia umbrellata) के समान रंगत उत्पन्न नहीं करता था। कोरोमंडल उपक्षेत्र को भी तीन उपस्थानों में विभक्त किया जा सकता है, जहाँ कलमकारी का कार्य व्यापक पैमाने पर होता रहा है। मसुलिपत्तम के निकट, पुलिकत के निकट और तंजौर के आस–पास। कैलिको संग्रहालय में सुरक्षित सिंघली प्रभावयुक्त कलमकारी संभवतः तंजौर क्षेत्र में निर्मित हुई है, तथा कुछ–अन्य कलमकारियां श्रीलंका के जाफ्ना क्षेत्र की बनी हुई प्रतीत होती हैं। यह प्रकल्पना प्राप्त सामग्रियों और चित्र षडंग के सिद्धांतों पर आधारित है। मसुलिपत्तम में व्यावसायिक उत्पादों के रूप में कलमकारी रही है, किन्तु पुलिकत और तंजौर दो प्रमुख केंद्र रहे हैं। जहाँ धार्मिक कलमकारियों का निर्माण अपनी शैलीगत मौलिकता लिए हुए है।[13]

तकनीकी दृष्टि से दक्षिण एवं पश्चिम में निर्मित होने वाली कलमकारियों में कपड़े को तैयार करने, रेखांकन, रंगबंधकों और रंगों के लेपन की विधि में कोई महीन अंतर नहीं दिखता है। मुख्य विभेद वहाँ प्राप्त स्थानीय सामग्रियों व विषयवस्तु–सम्बन्धी अंकन ही है, जैसा कि पूर्ववर्ती अध्ययन में निर्दिष्ट है। उदाहरणस्वरूप गुजरात में कपड़े को तैयार करने के लिए ऊँट के गोबर व दूध का प्रयोग दीखता है, तो दक्षिण में भैस के गोबर व दूध का या कलम के लिए गुजरात में बबूल तो दक्षिण में बांस या पल्मीरा का प्रयोग दीखता है। गुजरात में सप्तमातृकाओं का अंकन प्रमुखता से मिलता है। सप्तमातृका–सम्बन्धी आख्यान हमें वैदिक साहित्यों में भी मिलते हैं,[14] और लोक–जीवन में भी इन्हें अपनाया गया, किन्तु जाति या समुदाय की विशेष मान्यताओं और परिकल्पनाओं को ध्यान में रखते हुए। सप्तमातृकाओं के शास्त्रीय स्वरूप से इतर इन्हें गुजराती लोक जीवन में, विभिन्न नामों और निर्धारित स्वरूपों के साथ पहचाना जा सकता है, जैसे– चामुंडा, दशमा या दशमाता, हदक्षा या हद्कोई या हद्कई, हिंगलाज, विहत, जीवंतिका, भगवती, रांडल, मेदिली या मेलड़ी चंडी–चामुंडा, शक्ति, खोड़ियार, मीनावाड़ा दशमा, मोमई माँ, फूल जोगिनी माता, श्री गेल माता, वाहनवती या सिकोतार, वेराई विसोता, महाल्सा, शीतला कर्क माँ आदि। स्वभाव में रूढ़ व रेखांकन में एक ठोस अनगढ़पन लिए ये आकृतियाँ दक्षिण की शास्त्रीयता की अपेक्षा लोक रेखांकन से अधिक सामीप्य रखती हैं। कारण इन्हें बनाने वाली जनजाति वाघरी एक यायावरी समुदाय रहा है जिसके पास प्रतिदिन जीविकोपार्जन की आर्थिक चुनौती रही है।[15]

पछेड़ी निर्माण इनके लिए मात्र देवों का अलंकरण नहीं, बल्कि दिन–ब–दिन की चुनौतियों और जीवन के संकटों को हल करने का स्रोत है। ये उनकी आर्थिकी का भी स्रोत है, और दैनिक समस्याओं से निदान पाने का भी। जबकि दक्षिण की कहानी कुछ अलग रही है। यहाँ कलमकारियाँ मंदिर की शास्त्रीय परम्परा और राजदरबारों के निकट काफी पहले ही आ गई थीं। विभिन्न राजवंशों और सुल्तानों के कला–प्रेम ने यहाँ के कलाकारों को आर्थिक–सामाजिक सुरक्षा प्रदान कर जीवन के संकटों से काफी–कुछ मुक्त कर दिया था। कलाकार दिन–प्रतिदिन की चिंताओं से इतर यहाँ कलाकर्म पर पूरा ध्यान केन्द्रित करने में गुजराती यायावरों की अपेक्षा अधिक सफल रहा, यही कारण है कि यहाँ कलमकारी परम्परा नूतन प्रयोगों के साथ समृद्ध दिखाई पड़ती है। कलाकार की व्यक्तिगत स्वतंत्रता ने आकृतियों को किसी भी प्रकार की रूढ़ता से मुक्त करते हुए अधिक लोचात्मक और गत्यात्मक बनाया है। यद्यपि इसका एक प्रमुख कारण तकनीक भी है। ठप्पों की अपेक्षा ब्रश के साथ रेखांकन करना कलाकार को हर बार मौलिकता और सिद्धहस्तता प्रदान करता है।

गुजरात और दक्षिण में, एक मुख्य विभेद यह भी है कि दक्षिण भारत की कलमकारियों में न केवल हिन्दू धर्म बल्कि इससे इतर ईसाई और बौद्ध धर्म–सम्बन्धी कथानकों को भी स्थान मिला है, जबकि गुजरात में जनजातीय देवी–देवताओं के अतिरिक्त आजकल अगर कुछ नए कथानकों पर काम हो रहा है तो सिर्फ हिन्दू पौराणिक गाथाओं, जैसे– रामायण या महाभारत पर ही। इन तमाम बातों के अलावा, संयोजन की दृष्टि से कोई विशेष विभेद नहीं दिखाई पड़ता है। दोनों ही स्थानों पर मुख्य विषयवस्तु के इर्द–गिर्द छोटे–छोटे खानों में विभाजित कर कथा का निरूपण किया गया है। वहीं दूसरी ओर, पश्चिम और दक्षिण दोनों ही स्थानों पर, पारम्परिक विषय–वस्तुओं से हट कर (जैसे पश्चिम में विभिन्न माताओं और दक्षिण में रामायण और भागवत जैसे काव्यों के अंकन सुरुचिपूर्वक अंकन, के साथ ही साथ) लोक–गाथाओं और नायक–नायिकाओं को भी विषय–वस्तु बनाया गया है। उदारणस्वरूप, गुजरात में बाथेजी महराज और दक्षिण में

माता गंगम्मा और मथम्मा की कर्मकांडी पूजा भी लोकप्रिय पर्व है। श्रीकलाहस्ती में माता मथम्मा का दस दिवसीय बड़ा उत्सव मनाया जाता है, जिसमें कलमकारियों का विशेष महत्व होता है। माता गंगम्मा और मथम्मा के लिए क्रमशः यादव जाति और आंध्रप्रदेश की मदिगास जाति कलमकारी कलाकारों से चित्रण करवाती है। गंगम्मा की पूजा पूर्णमासी को रातभर आनुष्ठानिक रूप से की जाती है। मदिगास कर्तवीराजुना नामक स्थानीय योद्धा नायक की अनुयायी जनजाति मानी जाती है।[16]

**निष्कर्ष :**

वर्तमान समय में कलमकारियों का निर्माण–परिदृश्य काफी कुछ बदल चुका है। चाहे दक्षिण हो या पश्चिम, दोनों स्थानों पर कलमकारियाँ मात्र धार्मिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए नहीं बल्कि स्थानीय बाजारों की व्यावसायिक मांग को ध्यान में रखते हुए निर्मित हो रही हैं। इनका प्रयोजन घर में पूजा–पाठ से ले कर सजावट तक हो सकता है। मांगों में बदलाव के कारण इनकी विषय–वस्तुओं में भी विविधता देखने को मिलती है। दक्षिण की तुलना में पश्चिम की कलमकारी आज भी धर्मिक उद्देश्यों के अधिक निकट है। इनका निर्माण–प्रयोजन अधिकतम घर में टाँगे जाने या नवरात्रि आदि पर्वों में पूजा–विधानों के लिए होता है, इसलिए विषयवस्तु–सम्बन्धी विविधता का अभाव दीखता है। कथानकों में जो भी नवीन बदलाव हैं वे सप्तमातृकाओं के अलावा प्रचलित काव्यों, जैसे– रामायण या महाभारत की कथाओं पर आधारित हैं। जबकि दक्षिण में पौराणिक कथाओं या काव्यों से इतर भी अंकन किया गया है, जैसे– पंचतंत्र ईसा और बुद्ध की कहानियाँ। प्रसिद्ध कलमकारी शिल्पकार 'पदमश्री' गुरप्पा चेट्टी के अनुसार कलाकार को जब भी यहाँ नवीन प्रयोगों के लिए आमंत्रित किया गया, उसने चुनौतियों को स्वीकार करते हुए रुढ़िवादिता को तोड़ा और इस शिल्प में नए आयामों को जोड़ा, यद्यपि विषय–वस्तुओं में बदलाव का एक कारण बदलती वस्तुगत स्थितियाँ और आर्थिक चुनौतियाँ भी रही हैं। माता–नी–पछेड़ी के कलाकार जगदीश चतारा भी विषयवस्तु–सम्बन्धी नवीन प्रयोगों और अभिकल्पनाओं को साकार करने में विश्वास रखते हैं। कुल मिलाकर जिन स्थानीय कलाकारों को संरक्षण और संवर्द्धन मिला उन्होंने पारंपरिक तौर–तरीकों को आधुनिक चेतना के साथ सम्बद्ध करने हेतु महत्वपूर्ण कार्य किया है।

सन्दर्भ सूची :

1. वरदराजन, लोतिका. (1982). साउथ इन्डियन ट्रेडिशन ऑफ़ कलमकारी. अहमदाबाद. नेशनल इंस्टीटयूट ऑफ डिजाइन. पृ0–14
2. वही
3. वरदराजन, लोतिका. (1979). टुवार्ड्स द डेफिनीशन ऑफ कलमकारी. होमेज टू कलमकारी. मुम्बई. मार्ग प्रकाशन. पृ0–19
4. वही, पृ0–20
5. राय, जे0सी0. (1917). जर्नल ऑफ बिहार एंड उड़ीसा रीसर्च सोसायटी. पृ0–227,
6. टेक्सटाइल इंडस्ट्री ऑफ एंसियेंट इण्डियाः जर्नल ऑफ द इन्डियन टेक्सटाइल इंडस्ट्री. (1959). भाग–4. पृ0–227
7. जयकर, पुपुल. (1979). जायटी इन कलर एंड फॉर्म पेंटेड एंड प्रिंटेड क्लोद्स. होमेज टू कलमकारी. मुम्बई. मार्ग प्रकाशन. पृ0–23
8. रंगबंधक, रंगाई से पूर्व कपड़े पर लगाया जाने वाला रासायनिक तत्व, मौरडेंट
9. रोगन या डाई
10. जयकर, पुपुल. (1979). जायटी इन कलर एंड फॉर्म पेंटेड एंड प्रिंटेड क्लोद्स. होमेज टू कलमकारी. मुम्बई. मार्ग प्रकाशन. पृ0–23
11. वही
12. रमानी, शकुंतला. (2007). कलमकारी एंड ट्रेडीशनल डिजाइन हेरिटेज ऑफ इण्डिया. नई दिल्ली. विज़डम ट्री प्रकाशन. पृ0–39
13. वरदराजन, लोतिका. (1982). द प्राइमरी आर्टिज़न एंड टेक्सटाइल प्रोडक्शन; कास्ट एंड कम्यूनिटी इन गुजरात एंड साउथ इण्डिया, ले आउट, मोटिफ्स एंड कलर्स, साउथ इन्डियन ट्रेडिशन ऑफ़ कलमकारी. अहमदाबाद. नेशनल इंस्टीटयूट ऑफ डिजाइन. पृ0–11
14. एरिक्सन, जे0. (1968). माता–नी–पछेड़ीः अ बुक ऑन द टेम्पल क्लॉथ ऑफ मदर गॉडेस. अहमदाबाद. नेशनल इंस्टीटयूट ऑफ डिजाइन प्रकाशन. पृ0–30
15. वही, पृ0–28
16. रमानी, शकुंतला. (2007). कलमकारी एंड ट्रेडीशनल डिजाइन हेरिटेज ऑफ इण्डिया. नई दिल्ली. विज़डम ट्री प्रकाशन. पृ0–19

# देशभक्ति और मूर्तिकला के प्ररिप्रेक्ष्य में देवी प्रसाद राय चौधरी और उनकी कलाकृतियाँ

**राजेश कुमार***

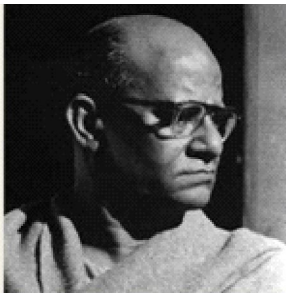

**सारांश**

*देश भक्ति की इसी भावना को उजागर और प्रबल करने के उद्देश्य से अनेक कवियों, लेखकों व संगीतकारों ने अपनी–अपनी तरह से काव्य, लेखों व संगीत की रचनाएँ की। कवि एवं गीतकार प्रदीप के लिखे गीत जिसे लता मंगेशकर ने अपना स्वर दिया ''ये मेरे वतन के लोगों जरा याद करो कुर्बानी जो शहीद हुए है उनकी जरा याद करो कुर्बानी..... को सुनकर एक सभा में प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू के आंखों में आंसू भर गए और देश की जनता को स्तब्ध कर दिया। यह देश–भक्ति की भावना को दर्शाता है। मूर्तिकार देवी प्रसाद राय चौधरी की कलाकृतियों में हम ऐसी ही देश भक्ति की भावना को प्रधानता से देख पाते हैं ।*

**सूचक शब्द** : *कलाकृति, मूर्तिकला, देशभक्ति, भावना, आजाद*

**शोध–प्रविधि** : *इस लेख के लिए द्वितीयक स्रोतों का उपयोग किया गया है ।*

देश–भक्ति की भावना किसी भी नागरिक के भीतर सबसे पवित्र और प्रबल भावना होती है। देश–भक्ति की इन्हीं भावनाओं के साथ भारतीय वीर शहीदों और बलिदानियों ने त्याग और सत्याग्रह के बल पर अपने प्राण न्योछावर कर देश को स्वतंत्र कराया, जो हमारे लिए चिरस्मरणीय रहेगा। आज हम स्वतंत्र भारत में साँसे ले रहे हैं, आजादी का उत्सव मना रहे हैं और आजादी के 75 वर्ष पूरे होने पर इसी उपलक्ष्य में उन वीर सपूतों की कुर्बानी और जज्बें को याद करते हुए आजादी का अमृत महोत्सव मना रहे हैं। आजाद भारत के आजाद नागरिक होने का गौरव हमें देश भक्ति की भावना के कारण हासिल हुई है। इसे अक्षुण्ण रखना हम सब का दायित्व ही नहीं, अपितु परम कर्तव्य है खासकर, युवा और भावी पीढी का.....

देवी प्रसाद राय चौधरी के बारे में आज की नयी पीढ़ी को अवश्य जानकारी होनी चाहिए। अविभाजित भारत के रंगपुर जिले के ताजघाट में 15 जून 1899 को जन्मे देवी प्रसाद राय चौधरी भारतीय आधुनिक कला के प्रमुख कलाकारों में शुमार रहे। इन्होंने सामाजिक यथार्थवाद को अपनी कला का आधारशिला बनाया । वे पेटिंग तथा मूर्तिकला के अलावा बांसुरी–वादन, पहलवानी और शिकार करने में विशेष रूचि रखते थे। उन्होंने चित्रकला की प्रथम शिक्षा चित्रकार अवनिन्द्रनाथ टैगोर और बाद में मूर्तिकला का प्रशिक्षण हिरण्यमय राय चौधरी के मार्गदर्शन में प्राप्त किया। राय चौधरी ने 1929 में अंग्रेजों द्वारा चलाए जा रहे शैक्षिक संस्थान मद्रास स्कूल आफ आर्ट में अधीक्षक का पद स्वीकार किया। उनकी रचनाओं के विषय ज्यादातर पौराणिक और पारंपरिक (आधारित) थे। अपने द्वारा बनायी गई कलाकृति को वे पूजा योग्य समझते थे और कार्य करने के स्टूडियों को मंदिर। उनकी अकादमिक शैली की मूर्तियाँ यथार्थवादी, जीवंत और संदेशपूर्ण होती थीं। हालॉकि उनकी कलाकृतियों की खासियत स्मारकीय और अकादमिक शैली का होने के कारण उनकी कलाकृतियों को किसी गैलरी में नहीं बल्कि सार्वजनिक स्थलों पर स्थापित किया गया। उनके, यहाँ उद्धृत विशेष मूर्तियों के कारण, विशेषकर मूर्तिकार के रूप में ख्याति मिली और इन कलाकृतियों को भारत सरकार ने सार्वजनिक प्रदर्शन हेतु राष्ट्रीय देश प्रेम की भावना का जन–जन को संदेश देने योग्य माना और स्थापित कराया। जब ललित कला अकादमी की स्थापना 1954 में हुई तो इन्हें संस्थापक अध्यक्ष के रूप में नियुक्त किया गया। भारत सरकार ने उन्हें कला के क्षेत्र में इस योगदान के लिए 1958 में सर्वोच्च तृतीय नागरिक सम्मान 'पद्मश्री' से सम्मानित किया। 1947 में भारत की स्वतंत्रता के बाद उनकी भव्य मूर्तियाँ और सामाजिक प्रतिबद्धता ने देश के उपनिवेश–विरोधी संघर्ष को यादगार बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

**शहीद स्मारक** : पटना के सचिवालय के बाहर

*मूर्तिकला, कृष्णदेव नगर कॉलोनी, सरायनंदन, वाराणसी

खुले आसमान के नीचे उर्ध्वाधर असमतल धरातल पर सात युवाओं की घोती–कुर्ता में गतिमान कांस्य प्रतिमा किसे आकर्षित नहीं करती, इस शहीद स्मारक का निर्माण देवी प्रसाद राय चौधरी ने ही किया था जिसमें अग्रणी स्थिति में पहला व्यक्ति एक झंडा थामे गंतव्य को इशारा करते हुए जोश के साथ आगे बढ़ रहा है और अपने साथियों को अनुसरण करने का आग्रह करता है। इस प्रतिमा को भारत की स्वतंत्रता के बाद अक्टूबर 1956 में स्थापित किया गया। इसे भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में शहीद हुए युवाओं की अमर कृति के रूप में देखा जाता है। भारत छोड़ो आंदोलन के लिए महात्मा गांधी के आह्वाहन पर स्वतंत्रता सेनानियों ने अहिंसक नेतृत्व करते हुए 11 अगस्त 1942 को सचिवालय पर कांग्रेस झंडा फहराने का विरोध में मार्च निकाला और यह सात युवाओं की टोली बेखौफ, निडरतापूर्वक सचिवालय पर झंडा फहराने में सफल हुई और हंसते–हंसते देश के लिए कुर्बानी दी। 80 साल पहले बिहार के ये सात सपूत अंग्रेजों द्वारा गोली चलाए जाने के कारण शहीद हो गए थे और ये सभी छात्र 1942 में अगस्त क्रांति के दौरान 11 बजे दिन में पटना के सचिवालय पर झंडा फहराने निकले थे और पटना के तात्कालिक जिलाधिकारी डब्ल्यू जी आर्थर के आदेश पर पुलिस ने गोलियाँ चलाई थी। यह प्रतिमा सार्वजनिक विरोध का कालातीत प्रतिनिधित्व करती है और भारत के निर्माण में अग्रणी छात्र–जीवन की याद दिलाती है। 1942 के अगस्त क्रांति की याद के रूप में भारतीय डाक टिकट पर इसका अंकन कर जारी किया गया ।

**दिल्ली में ग्यारह मूर्ति** : भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में अहिंसा के गांधीवादी आदर्श को श्रद्धांजलि स्वरूप देवी प्रसाद राय चौधरी ने ग्यारह मूर्ति का निर्माण किया जिसमें 1930 के दांडी मार्च के रूप में गांधीजी द्वारा दस लोगों का नेतृत्व करते हुए दर्शाया गया है। इसलिए इसे दांडी मार्च नाम से भी जाना जाता है। यह अंग्रेजों द्वारा लगाए गए दमनकारी नमक कर के विरोध में 240 मील की पैदल दूरी तय करते हुए अहिंसा का मार्ग पर चलते सत्याग्रहियों के दृढ़ संकल्प और विरोध को दर्शाता है। असमान व पथरीले पथ पर महात्मा गांधी नेतृत्व करते अपने तेज कदमों से आगे की ओर बढ़ रहे हैं, उसके ठीक पीछे मातंगिनी हाजरा, सरोजनी नायडू, ब्रह्मबंधन उपाध्याय, अब्बास तैयबजी आदि कदम से कदम मिला कर साथ चल रहे हैं। देश–प्रेम की भावना का प्रतिमांकन झलक शेष अन्य मूर्तियों में भी मिलती है, जिसमें अहिंसा के मार्ग पर साथ चलने की प्रेरणा जागती है। राष्ट्रपति भवन के समीप सरदार पटेल मार्ग, नई दिल्ली में एक किनारे यह स्थापित है जिसे 1972 में भारत सरकार ने लगवाया।

**श्रम की विजय** : इस प्रतिमा में देवी प्रसाद राय चौधरी ने मजदूर वर्ग के परिश्रम का चित्रण करते हुए एक चट्टान को हिलाते हुए चार मेहनतकश श्रमिकों को दर्शाया है, यह प्रतिमा मरीना बीच, चेन्नई के समुद्र किनारे तट पर गणतंत्र 1959 की पूर्व संध्या पर स्थापित की गयी, यहाँ देश का पहला 'मई दिवस' स्मरणोत्सव के रूप में मनाया गया था। इसे श्रम प्रतिमा के रूप में भी जाना जाता है।

राय चौधरी द्वारा निर्मित इस धातु शिल्प में मेहनतकश परिश्रमी मजदूरों के एक बड़े चट्टान को हटाने में एकजुट प्रयास और उनकी भंगिमा बहुत कुछ प्रेरणा और संदेश देती है। इस अकादमिक पद्धति के मानवीकृत आकृति

में मांशल शारीरिक बनावट और नशों का खिंचाव बखूबी उसकी अंदरूनी शक्ति और एकजूट प्रयास से संघर्षपूर्ण सफलता का प्रतिमांकन ही इस कला और कलाकार को श्रेष्ठता प्रदान करती है। यही संदेश हमें आम–जीवन से लेकर आजादी के लिए किए गए एकतापूर्ण संधर्ष की गाथा का भी स्मरण कराती है। इसलिए एक आदर्श कला के रूप में इसे देखा जाता है और अद्यतन यह मई दिवस समारोह का केन्द्र–बिन्दु बनी हुई है। इसकी अनुकृति देश की राजधानी नई दिल्ली में स्थित राष्ट्रीय आधुनिक कला संग्रहालय में भी लगायी गयी है।

देवी प्रसाद राय चौधरी की मूर्तिकला में जीवन्त देश–प्रेम दृष्टिगोचर होता है। सजीव मूर्तियों को गढ़ना उनकी कला की महत्ता थी। इस महान् मूर्तिकार का 15 अक्टूबर 1975 को 76 वर्ष की आयु में निधन हो गया।

**निष्कर्ष :**

देवी प्रसाद राय चौधरी की इन धातु मूर्तिशिल्पों में राष्ट्रीयता व देश–प्रेम की भावना का जिस खूबसूरती से प्रतिमांकन दिखलाई पड़ता है वह हमारी भावी और वर्तमान पीढी को अपने कालातीत इतिहास को याद कराते हुए झकझोरने में सफल साबित हो रही है। आधुनिक मूर्तिकार देवी प्रसाद राय चौधरी ने अपनी इन्हीं अमर कृतित्व के कारण आज पब्लिक आर्ट का प्रमुख हिस्सा बन कर अमरत्व हासिल की।

सन्दर्भ सूची :

1. प्रताप, रीता (डॉ.), भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास, प्रकाशक– राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
2. चौधरी, डी.पी. रय, समकालीन भारतीय कलाकार श्रृंखला, प्रकाशक– ललित कला अकादमी
3. Parimoo, Ratan, Studies in Modern Indian Art by, page 35
4. कासलीबाल, डॉ. मीनाक्षी, भारतीय मूर्तिशिल्प एवं स्थापत्य कला, प्रकाशक– राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी

# औषधि–रूपी सांगीतिक रोजगार

**डॉ. प्रीति गुप्ता***

**संक्षेपिका**

*जीवन–यापन के लिये शिक्षा जितनी आवश्यक है उतना ही आवश्यक है रोजगार। संगीत के कलाकारों की वर्तमान स्थिति सोचने पर मजबूर कर देती है। संगीत विषय में सम्भावनाएँ तो अनन्त हैं परन्तु प्रशस्त मार्ग दर्शन के अभाव में यह विषय केवल शिक्षक तक ही सीमित रह गया और कलाकारों की स्थिति दयनीय होती चली गई किन्तु वर्तमान में इसके अलावा भी सम्भावनाएँ परिलक्षित हुई हैं जिस ओर संगीत शैक्षिक प्रणाली को भी ध्यान देने की आवश्यकता है। ऐसे संगीत से सम्बन्धित अनेक क्षेत्र हैं । इससे संगीत के कलाकारों को रोजगार भी मिलेगा और वह संगीत की सेवा भी कर पायेंगे । इस लेख में ऐसे ही कुछ क्षेत्रों के विषय में चर्चा की गई है जिससे संगीत विद्यार्थियों को भी समुचित रोजगार उपलब्ध हो पायेंगे।*

**शब्द सूचक** : *संगीत, क्षेत्र, औषधि, शिक्षण, रोजगार*

**शोध प्रविधि** : *इस पत्र के लिए पुस्तकों पत्र–पत्रिकाओं आदि द्वितीयक माध्यमों से सामग्री लेकर अध्ययनोपरान्त विश्लेषण किया गया है।*

शिक्षण वह प्रक्रिया है जिसमें कोई व्यक्ति दूसरे या व्यक्ति समूह को आवश्यक बातों का ज्ञान प्रदान करता है। शिक्षण एक व्यापक प्रक्रिया है, जिसके अनुसार शिक्षण का तात्पर्य उस प्रक्रिया से है जिसमें व्यक्ति अपने आस–पास के वातावरण के घटकों, जैसे– परिवार, पड़ोसी, मित्र, शिक्षक आदि जन्म से लेकर मृत्यु तक कुछ–न–कुछ सीखता रहता है। शिक्षण के संकुचित अर्थ में शिक्षण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा शिक्षक किसी शिक्षा–संस्थान में शिक्षार्थियों को पूर्व निश्चित ज्ञान प्रदान करता है।

वर्ल्ड बुक एनसाइक्लोपीडिया के अनुसार, शिक्षण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को ज्ञान–कौशल तथा अभिरूचियों को सीखने या प्राप्त करने में सहायता करता है।

शिक्षण–कार्य में शिक्षक एक ऐसा स्त्रोत है जिससे विद्यार्थी अपने उद्देश्य की प्राप्ति में सफलता प्राप्त कर सकता है। शिक्षक शैक्षिक प्रक्रिया का एक आधारभूत तत्व है। जिसके अभाव में शिक्षा–प्रक्रिया पूरी नहीं हो सकती। शिक्षण प्रत्येक व्यक्ति के लिये कोई आसान कार्य नहीं है। ऐसा सम्भव है कि एक व्यक्ति अत्यधिक विद्वान हो किन्तु आवश्यक नहीं है कि वह एक उत्तम अध्यापक हो। विषय वस्तु का सम्पूर्ण ज्ञान और नये–नये तथ्यों को खोजने की प्रवृति– दोनों ही उत्तम शिक्षण के प्रमाण नहीं है– 'To raise new questions, new possibilities, to regard old problems from a new angle, require creative imagination and marks real advance in science.' - Albert Einstein

किसी भी राष्ट्र की विकास–प्रक्रिया की पृष्ठभूमि से उस देश की कला, संस्कृति, साहित्य, धर्म आदि की चर्चा होना स्वाभाविक–सी बात है। भारतीय संस्कृति, जो विश्व की महानतम एवं प्राचीनतम संस्कृतियों में से एक है, की नीव 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' की अवधारणा पर आधारित है। इस संस्कृति की अखंडता तथा 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना को जीवित रखना ही हमारा मुख्य लक्ष्य रहा है। संस्कृति के साथ शिक्षा स्वतः ही अप्रत्यक्ष रूप से जुड़ी होती है। शिक्षा जहाँ हमारे बौद्धिक ज्ञान को परिष्कृत करती है वहीं कलाएँ हमारे व्यावहारिक ज्ञान एवं सौन्दर्यमयी अभिव्यक्ति में वृद्धि करती हैं। शिक्षा–अर्जन के क्रम में प्रशिक्षण अत्यन्त आवश्यक है। शिक्षण मनुष्य के जीवन में निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है– Teaching has been referred to an art. संकुचित अर्थ में शिक्षण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति को निश्चित योजना के अनुसार एक निश्चित समय तक एक निश्चित तथ्य का ज्ञान प्रदान किया जाता है। Dictionary meaning of Teaching- 'The art of assisting another to learn which

*एसोसिएट प्रोफेसर, कला विभाग, फाईन आर्ट कॉलेज, स्वामी विवेकानन्द सुभारती विश्वविद्यालय, मेरठ

includes, providing of information(instruction) and of appropriate situation,conditions or activities designed to facilitate learning.' -Dictionary of Psychological and Psycho analytical Terms. शिक्षण के अभाव में मनुष्य के मन की अमूर्त्त उदारतम भावनाएँ न तो प्रस्फुटित होती हैं और न हि मनुष्य की कलात्मक आकांक्षाएँ तृप्त हो पाती हैं। प्राभावी शिक्षण के लिये शिक्षक को सामान्य सिद्धान्तों से परिचित होना आवश्यक है, जैसे– क्रिया द्वारा सीखने का सिद्धान्त, रूचि का सिद्धान्त आदि।

संगीत मनुष्य के मन की मूर्त्त अभिव्यक्ति का एक सशक्त माध्यम है जो मानव समाज की कलात्मक उपलब्धियों और सांस्कृतिक परम्पराओं का मूर्तिमान प्रतीक है। अतः संगीत–जैसी सर्वोत्कृष्ट कला, जो मानव जीवन के अति निकट है, की शिक्षा व्यक्तित्व के निर्माण के लिये प्राप्त करना अति आवश्यक है।

सन् 1932 में जब पूज्य बापू जबलपुर पधारे तब उन्होंने कहा कि– 'संगीत एक गंभीर विषय है, इसके द्वारा हम एकदम आंनदित हो जाते हैं। हम आशावादी हैं, मलिनता गंदगी और कष्ट जहाँ है वहाँ संगीत नहीं रहता। अतएव एकता में बॉधकर संगीत द्वारा विजय प्राप्त करना हमारा लक्ष्य है।'

प्रो. वि.रा. अठावले के अनुसार– 'शिक्षा अपने साथ दो प्रकार के उद्देश्यों को लेकर चलती है, एक का सम्बन्ध समाज धारणा से तथा दूसरे का व्यक्ति के मानसिक विकास से है।'

संगीत शिक्षा उपर्युक्त दोनों उद्देश्यों की पूर्ति में सक्षम है। प्लेटो ने आज से वर्षों पहले अनुभव कर लिया था कि– 'संगीत–शिक्षण दूसरी शिक्षाओं की अपेक्षा शिक्षण का एक सशक्त साधन है क्योंकि स्वर और लय व्यक्ति की आन्तरिक गहराईयों में अपना स्थान रखते हैं।' संगीत तनाव को दूर करता है, मानसिक शांति प्रदान करता है। अवसाद से मुक्त करता है लेकिन आज संगीत से तनाव दूर करने वाले संगीतकार तनाव ग्रस्त होते जा रहे है। मन को शांति प्रदान करने वाले युवा संगीतकार रोजगार पाने के लिए सोशल मिडिया से लेकर सड़क तक संघर्ष कर रहे है।

आज के ग्लोबलाइजेशन के परिवेश में शिक्षार्थी, चाहे वह लड़का हो या लड़की, पर्याप्त ज्ञान कौशल एवं अभिवृत्तियों से परिपूर्ण होकर लाभप्रद रोजगार प्राप्त करना पसंद करता है। इसके लिये वह अपनी रूचि के अनुसार विषय का चयन करता है, जिससे उसे भविष्य में लाभ हो। इसी आधार पर कोई इंजीनियरिंग के कार्य को पसन्द करता है तो कोई डॉक्टरी, कोई समाज सेवा पसन्द करता है तो कोई अध्यापन। संगीत को महज शौक मानने वालों की कमी नहीं है लेकिन विश्व के तेजी से बदलते परिदृश्य में संगीत एक महत्त्वपूर्ण प्रोफेशन का रूप धारण कर चुका है। खासतौर से युवाओं में इसका क्रेज आए दिन तेजी से बढ़ता जा रहा है। मैं स्वयं संगीत विषय की शिक्षिका व छात्रा होने के दायित्व को पूरा करते हुए कहना चाहती हूँ कि वर्तमान में परिस्थितियों व सामाजिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए संगीत प्रणाली को भी वैज्ञानिक व सुनियोजित रूप देने की आवश्यकता है। आज संगीत रोजगार का रूप ले रहा है।

भारत के छात्र को संगीत के क्षेत्र में अपना कैरियर बनाने में रुचि होती है। संगीत के क्षेत्र में जाने को इच्छुक छात्रों के लिए रोजगार के कई अवसर हैं। प्रतिभाशाली और योग्य व्यक्ति टेलीविजन, संगीत चैनल, टीवी चैनलों, आकाशवाणी और निजी एफएम चैनल स्टेशनों, संस्कृति और जनता के संबंधों के सरकारी विभागों, एक संगीतज्ञ के रूप में संगीत अनुसंधान संगठनों, संगीत कंपनियों, शैक्षिक संस्थानों, कला केंद्र आदि में रोजगार के अवसर पा सकते हैं। इसके अलावा घर पर निजी कक्षाएँ लगाने या एक संगीत स्कूल खोलने या उत्पादन और स्वतंत्र कार्यक्रमों के निर्देशन के रूप में स्व–रोजगार के लिए कई अवसर हैं। संगीत को अपना करियर बनाने की इच्छा रखने वाले युवाओं के लिए महज संगीत में रुचि रखना ही काफी नहीं है। इसके अलावा उन्हें सृजनात्मक प्रतिभा का धनी, धुन का पक्का, मेहनती, संगीत की समझ, वाद्य–यंत्रों का ज्ञान आदि गुणों से भरा–पूरा होना भी जरूरी है।

अमूमन यही माना जाता है कि संगीत को कैरियर का आधार बनाकर ज्यादा कुछ करने की संभावनाएँ सीमित हो जाती हैं। अगर वास्तविकता के धरातल पर बात करें तो कम–से–कम आज के संदर्भ में स्थितियां बहुत भिन्न हैं और तमाम नए विकल्प उभरकर सामने आ चुके हैं।

यदि देखें तो संगीत को रोजगार के रूप में अपनाने पर यह अनेक रूपों में लाभप्रद सिद्ध होता है। आइए दृष्टि डालते हैं इन संगीतमय कैरियर विकल्पों पर :

म्यूजिक इंडस्ट्रीः इस उद्योग में कई प्रकार के म्यूजिक आधारित प्रोफेशनलों की अहम् भूमिका होती है, इनमें

विशेष तौर पर म्यूजिक सॉफ्टवेयर प्रोग्रामर, कंपोजर, म्यूजिशियन जैसे कार्यकलापों के अलावा म्यूजिक बुक्स की पब्लिशिंग, म्यूजिक अलबम रेकार्डिंग, म्यूजिक डीलर, म्यूजिक स्टूडियो के विभिन्न विभागों इत्यादि का उल्लेख किया जा सकता है।

वर्तमान में देश–विदेश में युवाओं में म्यूजिक बैंड बनाने और परफॉर्म करने का ट्रेंड जोर पकड़ता जा रहा है। इस प्रकार के बैंड्स में वोकल आर्टिस्ट (गायक) और इंस्ट्रूमैंटल आर्टिस्ट (वाद्ययंत्र कलाकार) दोनों का ही समन्वयन होता है। स्कूलों, कॉलेजों और अन्य छोटे स्तरों पर इस प्रकार के सैकड़ों हजारों बैंड्स आज अस्तित्व में आ चुके हैं।

टेलीविजन : साउंड रिकार्डिस्ट, म्यूजिक एडिटर, प्रोडक्शन, आर जे एवं डीजे म्यूजिक लाइसेंस में ऐसे जानकार और अनुभवी लोगों की जरूरत पड़ती है। स्टेज परफार्मेंस : म्यूजिक शो, टेलीविजन म्यूजिक प्रोग्राम, म्यूजिक कंपीटिशन आर्ल्ड फोर्सेज बैंडज, सिंफनी आर्केस्ट्रा, डांस बैंड, नाइट क्लब, कसर्ट शो, रॉक और जैज ग्रुप इत्यादि में भी इनकी भूमिका को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है।

म्यूजिक थेरेपिस्ट : विकलांगता के शिकार बच्चों और युवाओं के अलावा मानसिक तनाव से ग्रस्त व्यक्तियों के उपचार में आजकल संगीत को काफी महत्वपूर्ण माना जाने लगा है। इस प्रोफेशन में सफल होने के लिए संगीत–अध्ययन और थेरेपी का जानकार होना जरूरी है। इनके लिए हॉस्पीटलों, मेंटल टैम्थ सेंटरों, नर्सिंग होम्स इत्यादि में रोजगार के अवसर हो सकते हैं।

स्टूडियो टीचिंग : म्यूजिक टीचर के रूप में स्कूलों, कॉलेजों और अन्य संगीत प्रशिक्षण संस्थाओं में करियर बनाने के बारे में भी सोचा जा सकता है। इनमें भी विशेषता प्राप्त शिक्षक का खासा महत्व है। विशेषताओं में खासतौर पर म्यूजिक थ्योरी, म्यूजिक हिस्ट्री एंड लिटरेचर, म्यूजिक एजुकेशन, म्यूजिकोलॉजी, इलेक्ट्रॉनिक म्यूजिक कंपोजिशन अथवा म्यूजिक थेरेपी की बात की जा सकती है।

इन सबके अतिरिक्त फिल्म इंडस्ट्री, चर्च म्यूजिशियन, म्यूजिक लाइब्रेरियन, म्यूजिक अरेंजिंग, म्यूजिक सॉफ्टवेयर, प्रोडेक्शन म्यूजिक, वर्चुअल रिअल्टी साउंड एंवायरनमेंट इत्यादि विधाओं में भविष्य बनाया जा सकता है।

दुनिया में शायद ही कोई ऐसा इंसान होगा जिसे गीत–संगीत में रुचि न हो। भारतीयों को तो संगीत से हमेशा से ही विशेष लगाव रहा है। भारतीय शास्त्रीय संगीत की विविधता तथा प्रचुरता का सारा विश्व कायल है। गीत–संगीत बॉलीवुड फिल्मों का हमेशा सबसे अहम् अंग रहा है। ऐसे में संगीत में रुचि के साथ–साथ इस क्षेत्र में प्रतिभावान लोगों के लिए यह एक उम्दा करियर भी बन सकता है। किन्तु इन सब के लिये योग्य शिक्षक का होना आवश्यक है। संगीत गुरूमुखी विषय है। संगीत शिक्षक में वे सब गुण विद्यमान होने चाहिए जो आज के परिवेश में व्यवसाय के लिये होने चाहिए।

वर्तमान में कुछ ही विश्वविद्यालय हैं जहाँ बी.एड स्तर पर संगीत शिक्षण विषय के रूप में है। आज के व्यावसायिक परिवेश में संगीत शिक्षक को भी प्रशिक्षण देने की आवश्यकता है। संगीत शिक्षक की रोजगार प्रगति के लिये हर उस पहलू का प्रशिक्षण देना चाहिए जो उसके शिक्षण को अधिक प्रभावी बना सके।

आज के टेंशन–भरे माहौल में हर इन्सान सुकून के दो पल जीना चाहता है। ऐसे में संगीत एकमात्र ऐसी औषधि है जो इन्सान को उस घुटन–भरे वातावरण से दूर करती है। आज सभी आयु–वर्ग के लोगों से लेकर हरेक स्टेटस के लोगों में संगीत सुनने की चाह बढ़ी है। ऐसे में संगीत एक रोजगार के रूप में लिया जा रहा है। औषधि रूपी सांगीतिक रोजगार को आगे बढ़ाने में शिक्षा संगठन ही एकमात्र सहायक है।

आशा करती हूँ कि संगीत शिक्षकों की व्यावसायिक प्रगतिकरण के लिये शैक्षिक संगठन अवश्य ही कुछ सकारात्मक कदम उठायेंगे।

**सन्दर्भ सूची :**

संगीत कला विहार पत्रिका, अ.भा.गा. महाविद्यालय मंडल प्रकाशन, मार्च, 2015

संगीत, मासिक पत्रिका, संगीत कार्यालय, हाथरस, जून 2006

बसंत, संगीत विशारद, संस्करण जुलाई 2015

चौबे, अमरेश चन्द्र, संगीत की संस्थागत शिक्षा प्रणाली, प्रथम संस्करण 1988, कृष्णा ब्रदर्स, अजमेर

पोतदार, श्रीमती प्रतिभा, शिक्षण संस्थाओं में संगीत का गिरता स्तर, शास्त्रीय संगीत शिक्षा एवं समाधान, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस

अमर उजाला, मेरठ संस्करण

# भारतीय शास्त्रीय संगीत के नवोन्मेष में संचार–माध्यम एवं प्रौद्योगिकी का योगदान

डॉ. शिप्रा पन्त*

**शोध–सारांश**

*संचार के अनेक सशक्त माध्यम हैं जिसके अन्तर्गत रेडियो, टेलीविज़न, सिनेमा, इंटरनेट, प्रिन्ट मीडिया (समाचार–पत्र, पत्रिकाएँ, किताब, ई–मैगज़ीन, ई–समाचार पत्र, वैब पेज इत्यादि) तथा सोशल मीडिया भारतीय प्ररिप्रेक्ष्य में वॉट्स ऐप, गाना, सावन, स्पॉटिफाई, हंगामा, फेसबुक, ट्विटर, इंस्टाग्राम आदि प्रमुख रूप से आते हैं। युवा–वर्ग के मध्य यह अत्यन्त लोकप्रिय माध्यम है, अधिकांश युवा इन माध्यमों का बहुतायत से प्रयोग करते हैं। इन माध्यमों के द्वारा प्रसारित सामग्री इनके मन–मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव डालते हैं। भारतीय शास्त्रीय संगीत को उसका उपयुक्त स्थान दिलवाने हेतु सतत् प्रयत्नों की आवश्यकता है। तभी यह परम्परा अक्षुण्ण रह पाएगी। मीडिया वह शक्ति–स्तम्भ है जो, संगीत कला को प्रकाशित कर सबका ध्यान आकृष्ट करने में सक्षम है।*

**मुख्य शब्द** : *मीडिया, संचार, प्रौद्योगिकी, इंटरनेट, गाना, सावन, स्पॉटिफाई*

**प्रविधि** : *द्वितीयक माध्यमों, यथा–पुस्तकें, पत्रिकाएँ, इण्टरनेट, वेवसाइट आदि के सहयोग से शोध–पत्र तैयार किया गया है ।*

शास्त्रीय संगीत के प्रचार में सूचना एवम् संचार अत्यन्त महत्वपूर्ण माध्यम है। सर्वप्रथम यह जान लेना आवश्यक है कि, मीडिया क्या है? ''मीडिया संचार का एक ऐसा महत्वपूर्ण साधन है जिसकी सहायता से कोई सूचना या ख़बर अन्य लोगों तक पहुँचायी जाती है। ''मीडिया का प्रधान कार्य सूचनाओं को एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाना है। सूचनाओं का यह आदान–प्रदान क्षेत्र–विशेष से लेकर वैश्विक स्तर पर किया जा सकता है जिससे किसी भी सूचना से अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर जुड़ाव तथा विश्वबन्धुत्व की भावना का विकास हो सके। मीडिया प्रत्येक इच्छुक व्यक्ति को यह अवसर प्रदान करता है कि वह अपने विचारों एवम् भावनाओं को स्वतन्त्रतापूर्वक प्रदर्शित कर सके, अभिव्यक्त कर सके। यह ऐसा सशक्त माध्यम है ,जो व्यक्ति के जीवन के समस्त महत्वपूर्ण पक्षों, यथा– शिक्षा, मनोरंजन, खेल–कूद, संस्कार, पर्यावरण, वित्त–प्रबन्धन, सांस्कृतिक गतिविधियों तथा कलात्मक गतिविधियों, को सशक्त मंच प्रदान करता है।

विविध काल–खण्डों में यदि हम संगीत–कला की जन–साधारण में पहुँच देखें तो सर्वप्रथम प्राचीन काल में संगीत–कला का अवलोकन करने पर हमें ज्ञात होता है कि मन्दिरों में संगीत को आश्रय प्राप्त हुआ और उनके माध्यम से यह संरक्षित भी हुआ और विकसित भी। मध्यकाल में संगीत–कला को राजदरबारों में आश्रय मिला । इस समय संगीत विशेषकर शास्त्रीय संगीत उच्च स्तर विशेष के लोगों तक ही सीमित था, जनसाधारण के मध्य नहीं। केवल एक वर्ग–विशेष के लोग ही शास्त्रीय संगीत का आनन्द ले सकते थे। ब्रिटिश भारत के अर्न्तगत संगीत आम–जनता के मध्य पहुँचने लगा और स्वातन्त्र्योत्तर भारत में जहाँ एक ओर शास्त्रीय संगीत के संरक्षणकर्त्ता परिवर्तित हुए, वहीं दूसरी ओर, इसके प्रस्तुतिकरण के तरीकों में भी पर्याप्त परिवर्तन हुए। बीसवीं शताब्दी में भारतीय शास्त्रीय संगीत के पुनरूद्धार हेतु दो महापुरूषों ने अथक प्रयत्न किए, वे थे पण्डित विष्णु दिगम्बर पलुस्कर और पण्डित विष्णु नारायण भातखण्डे। पण्डित विष्णु दिगम्बर पलुस्कर ने संगीत–जैसी पतित पावनी विद्या के पवित्र स्वरूप को जन–साधारण के मध्य पुनर्स्थापित किया और पण्डित विष्णु नारायण भातखण्डे ने सन् 1904–05 में सम्पूर्ण भारत में भ्रमण कर भारतीय शास्त्रीय संगीत को नव जीवन प्रदान किया, संगीत–विद्यालयों की स्थापना, संगीत–सम्मेलनों का आयोजन आदि अनेकानेक क्रान्तिकारी कार्यों से संगीत का पुनरूत्थान किया। पण्डित विष्णु दिगम्बर पलुस्कर के प्रयत्नों का ही परिणाम था कि, सार्वजनिक स्थानों पर संगीतज्ञों की कला का जन–सामान्य के मध्य प्रदर्शन किया जाने लगा, जिसे टिकट खरीदकर साधारण संगीतप्रेमी व्यक्ति भी देख–सुन सकता था। पश्चात्वर्ती समय में अनेकानेक संगीत –सम्मेलनों का देश के विभिन्न स्थानों

*असिस्टेंट प्रोफेसर, संगीत, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रामनगर (नैनीताल)

पर आयोजन प्रारम्भ हुआ जो वर्तमान में भी गतिमान है। आज शास्त्रीय संगीत की संगोष्ठियों की रिपोर्टिंग की जाती है जिस हेतु इस कला के समीक्षकों और जानकारों के द्वारा कला–समीक्षा एवम् समाचार समय–समय पर प्रकाशित किए जाते हैं। कई पत्रिकाओं में और समाचार–पत्रों में तो शास्त्रीय संगीत एवम् कला जगत् से जुड़ी बातों को नियमित रूप से लिखा जाता है।

प्रचार के मुख्य साधनों में से एक महत्वपूर्ण स्तम्भ मीडिया को स्थूल रूप से चार प्रकारों में विभाजित किया जा सकता है–प्रिन्ट मीडिया, ब्रॉडकास्ट मीडिया, आउटडोर मीडिया एवम् इण्टरनेट मीडिया। समाचार–पत्र, पुस्तक, पत्रिकाएँ, स्मारिका, इश्तेहार, विज्ञापन, वेबसाइट्स, ब्लॉग, ई–मेल, सोशियल मीडिया नेटवर्क, टेलीविज़न एवम् संगीत–स्ट्रीमिंग संबंधी ऐप ब्रॉडकास्ट तथा इण्टरनेट मीडिया के ऐसे आधुनिक अवतार हैं जिनके द्वारा लोगों को अपनी रूचि के संगीत को सुनने का अवसर प्राप्त होता है।

संचार के अधिकतर माध्यम निजी कम्पनियों द्वारा चलाये जाते हैं। वर्तमान में जिन साधनों के द्वारा मीडिया संगीत के प्रचार हेतु कार्यरत है उनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है–

1. **रेडियो**– रेडियो द्वारा संगीत सुनने की दिशा में बहुत प्रगति हो गई है। पहले जहाँ केवल आकाशवाणी का इस क्षेत्र में एकछत्र साम्राज्य था वहीं आज इस क्षेत्र में निजी कम्पनियों का प्रवेश हो गया है, यथा– एफ.एम. गोल्ड, ए. आई.आर. एफ.एम. रेनबो, अमृतवर्षणी, विविध भारती, रागम्, संदेश रेडियो, वर्ल्ड स्पेस इण्डिया द्वारा स्थापित श्रुति (कर्नाटक संगीत) एवम् गान्धर्व (हिन्दुस्तानी संगीत), तरंग आदि ऐसे रेडियोस्टेशन या फ्रीक्वेंसीज़ हैं जिनके द्वारा शास्त्रीय संगीत का नियमित रूप से संचालन किया जा रहा है।

2. **टेलीविज़न**– शास्त्रीय संगीत के प्रचार–प्रसार की दृष्टि से यह माध्यम हमेशा से महत्वपूर्ण रहा है। डी. डी. भारती पर ''माई फेवरेट रागा'' कार्यक्रम, इसी चैनल पर शास्त्रीय संगीत पर आधारित अन्य कार्यक्रमों का भी नियमित रूप से प्रसारण किया जाता है। इसके अतिरिक्त परफेक्ट ऑक्टेव एवम् इन्सिंक द्वारा सर्वप्रथम 24x'7 चलने वाला शास्त्रीय संगीत आधारित चैनल है जिसके द्वारा सभी सांगीतिक विधाओं, यथा– ग़ज़ल, सूफी, फ्यूजन, आध्यात्मिक, नृत्य और संगीत–शिक्षा पर आधारित कार्यक्रमों को बढ़ावा दिया जा रहा है। स्वयंप्रभा चैनल, एच.सी. एल. द्वारा 'मैस्ट्रोज. इन स्टूडियो' नामक वैब शो, पिंक लोटस अकैडिमिया के सहयोग से 'रससिद्वि' संगठन के द्वारा आयोजित कार्यशाला स्वराध्याय इत्यादि कई कार्यक्रम हैं जो भारतीय शास्त्रीय संगीत की परम्पराओं को सहेजने और प्रसारित करने की दिशा में निरन्तर प्रयासरत हैं, इन्हें आवश्यकता है तो केवल उत्साहवर्धन प्रतिभागिता एवं आर्थिक संरक्षण की।

3. **सिनेमा**– शास्त्रीय संगीत से सम्बन्धित कई वृत्तचित्र और सिनेमाई चलचित्र निर्मित हुए हैं जो आधुनिक तकनीक के इस युग में इस विधा की लोकप्रियता और जनमानस के मध्य इसके प्रचार–प्रसार को अभिव्यक्त करता है। बैजू बावरा (1952)–हिन्दी, गूँज उठी शहनाई (1959)–हिन्दी, थिल्लाना मोहनाम्बल (1968)–तमिल, रागा : ए फिल्म जर्नी इनटू द सोल ऑफ इण्डिया (1971)–भूमिका, (1977)–हिन्दी, ला म्यूजिक इण्डिएने वोकेल एट इन्स्ट्रूमैन्टेल (1978)–फ्रेन्च–हिन्दी, शंकराभरनम् (1980,)–तेलगु, रूद्र वीणा (1988)– उन्नल मुदीयम् थाम्बी (1988)– ख्याल–गाथा (1989)–हिन्दी, सरदारी बेगम (1997)–हिन्दी, भारथम् (1991)– स्वाति किरानम् (1992)– सरगम (1992)–हिन्दी, ख्याल–दर्पण(), द विसडम् ट्री (2013)– कट्यार कालीजट गुसाली (2015)–मराठी, राग–प्रयाग (2017)–, संगीत सरूप सतगुर 2(2019)–पंजाबी–हिन्दी, धुनि–द लॉस्ट ट्यून्स 3 (2020)–पंजाबी, द डिसाइपिल (2020)–मराठी 1, बंदिश –बैंडिट (2020)–हिन्दी इत्यादि की लोकप्रियता से यह पुष्ट होता है कि,यह विधा आज भी भारतीय संस्कृति में अपनी पैठ बनाए हुए है।

4. **इंटरनेट**– वर्तमान में संचार का सर्वाधिक लोकप्रिय माध्यम है इण्टरनेट। ऐसी कोई जानकारी विरले ही मिलेगी जिसे इस माध्यम के द्वारा साझा न किया गया हो। इंटरनेट के अर्न्तगत प्रिन्ट मीडिया के ई–संस्करण और एप बेस्ड संगीत–चैनल, लाईव स्ट्रीमिंग, सोशियल मीडिया के द्वारा शास्त्रीय संगीत का प्रचार–प्रसार किस प्रकार किया जा रहा है, यह निम्नांकित बिन्दुओं द्वारा स्पष्ट किया गया है–

अ. प्रिन्ट मीडिया–इसके अन्तर्गत दो प्रकार से प्रचार होता है, प्रथम के अर्न्तगत ऐसी प्रकाशित सामग्री समाहित है जो कागज़ में मुद्रित की गई हो और द्वितीय के अन्तर्गत ई–पत्रिका, ई–समाचार पत्र, ई–पुस्तक, वैब पेज इत्यादि प्रचारार्थ प्रयुक्त होते हैं।

संगीत नाटक, वागेश्वरी, समकालिक संगीतम्, श्रुति, संगीत गैलेक्सी, संगीतिका, स्वर–सिन्धु, नाद–नर्तन, कुतप, अनहद लोक, स्तोम आदि शास्त्रीय संगीत पर आधारित–जर्नल्स हैं जो, संगीत–प्रेमी जन–मानस के मध्य लोकप्रिय हैं।

ब. एप बेस्ड संगीत– रागा, हंगामा, सावन, स्पॉटिफाई, यू–ट्यूब (दरबार–ए–ताज़, टॉप क्लासिकल म्यूज़िक, क्लासिकल ट्यून्स, इण्डियन म्यूज़िक आर्ट,ब्रिलियन्ट क्लासिक्स, क्लासिकल म्यूज़िक–रेफरेन्स रिकॉर्डिंग, गीतांजलि–इण्डियन क्लासिकल म्यूज़िक, क्लासिकल म्यूज़िक 1, क्लासिकल म्यूज़िक ऑनलाईन,द क्लासिकल म्यूज़िक चैनल,), रागम्, षड्ज–मध्यम डॉट कॉम, आदि शास्त्रीय संगीत पर आधरित अनेक एप हैं जिनके द्वारा अनवरत रूप से रागों, बन्दिशों, तालों, वाद्य–संगीत एवं नृत्य से सम्बन्धित कार्यक्रमों का अनवरत प्रसारण होता रहता है।

युवावर्ग को सर्वाधिक आकृष्ट करने वाले सोशियल मीडिया का प्रारम्भ 1995 में 'क्लासमेट्स डॉट कॉम' नामक साइट से माना जा सकता है। उसके बाद कई साइट्स 'वोल्ट डॉट कॉम' 'एशियन एवेन्यू से धीरे–धीरे आज इन्स्टाग्राम, लिकर, माई स्पेस, ट्विटर, फेसबुक आदि कई साइट्स प्रचलित हैं, जिनके द्वारा शास्त्रीय संगीत के कार्यक्रमों का ऑनलाईन भी प्रसारण किया जाता है तथा भविष्य में होने वाले कार्यक्रमों का विवरण भी दिया जाता है जिससे अधिक–से–अधिक लोग इन कार्यक्रमों से जुड़ सकें और कलाकारों से रू–ब–रू हो सकें। आज 70,000 से अधिक समाचार–पत्र, 690 उपग्रह चैनल, 80 समाचार चैनल इन साधनों के अर्न्तगत कार्य कर रहे हैं। मोबाईल फोन के द्वारा कम मूल्य में उपलब्ध इंटरनेट सेवा सबके मध्य आ जाने के कारण इसका दायरा भी बढ़ गया है।

## निष्कर्ष

शास्त्रीय संगीत का उद्गम वेदों से माना गया है। सामवेद आदि से अन्त तक संगीतमय है, शास्त्रीय संगीत के उदात्त, अनुदात्त एवं स्वरित से सातों स्वरों तक यह ऋग्वेद से लेकर सामवेद तक पर्याप्त रूप से विकसित हो चुका था। सामवेद के मन्त्र जिस तरह से इन स्वरों में पिरोए गए उसे समझना आज भी अत्यन्त कठिन कार्य है। सर्व साधारण के मध्य शास्त्रीय संगीत को व्यापक रूप से लोकप्रिय करने के लिए मीडिया के सभी प्रकारों में आज संगीत–रसिकों हेतु सांगीतिक सामग्री पर्याप्त रूप से उपलब्ध है। शास्त्रीय संगीत को आम जन–जीवन का अनिवार्य अंग बनाने हेतु मीडिया द्वारा पर्याप्त प्रचार–प्रसार करना होगा जिससे, संगीत–जैसी पतित पावनी विद्या की महत्ता को सभी समझ भी सकें और उसे अपने जीवन का अनिवार्य अंग बना लें।

**संदर्भ सूची :**

1. बाजपेयी, अम्बिका प्रसाद, (1986), समाचार पत्रों का इतिहास, ज्ञानमण्डल, वाराणसी
2. कुमार, डॉ. नरेश, हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत में प्रयोग एवम् परिवर्तन, कनिष्क पब्लिकेशन्स, दिल्ली
3. चटर्जी, पी. सी. ब्रॉडकास्टिंग इन इण्डिया, सेज पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली
4. सहस्त्रबुद्धे, श्रीमती स्मिता, जनवरी 2015, संगीत के प्रचार–प्रसार में संचार साधनों की भूमिका, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ रिसर्च ग्रन्थालया, 3 (ISE), 1–4
5. शर्मा, एस.पी., (1996), द प्रेसः सोशियो–पॉलिटिकल अवेकनिंग सेंचुरी, एन.बी.टी. और आई आई सी, नई दिल्ली
6. नायर, के. एस., (1998) ग्रेजुएटिंग फ्रॉम इनफॉरमेशन साइडवॉक टम हाइवे, इण्डिया एब्रॉड, 9 अक्टूबर
7. राजू सागी, 03 मार्च, 2016, रियैलिटी शोज. बेस्ड ऑन इण्डियन क्लासिकल म्यूजि.क, टाइम्स ऑफ इण्डिया, सितम्बर 2013
8. माई फेवरेट रागा'' द पायनियर, सैटरडे, 12 जून, 2021
9. 15 क्लासिकल म्यूजिक, यू–ट्यूब चैनल्स फॉर क्लासिकल म्यूजिक चैनल फैन्स, फीडस्पॉट, 12 जुलाई, 2022
10. षड्ज–मध्यम डॉट कॉम : ए कम्पलीट म्यूजिक पोर्टल गजानन बुआ जोशी, शिवानन्द संगीत प्रतिष्ठान
11. David, Holmes, 2005,Communication theory media, technology and society, London, thousand oaks, india, sage publications

# तंत्री वादिका विदुषी अन्नपूर्णा देवी का संगीत जगत में योगदान

**डॉ. ममता यादव***

**सारांश**

*अनादि काल से सांस्कृतिक, राजनैतिक, सामाजिक इत्यादि क्षेत्रों में महिलाओं का विशेष व महत्वपूर्ण स्थान रहा है। आधुनिक काल में ऐसा कोई विषय या क्षेत्र नहीं है, जिसमें किसी महिला का योगदान न रहा हो। संगीत की सभी विधाओं में अनेक विदुषी महिलाओं का वर्णन है। परन्तु साधारण तंत्री वाद्य के सम्बन्ध में विदुषी अन्नपूर्णा देवी का नाम सर्वोपरि है। 'पद्मविभूषण' आचार्य अलाउद्दीन खाँ की पुत्री श्रीमती अन्नपूर्णा देवी का जन्म मध्य प्रदेश में सन् 23 अप्रील 1927 में पूर्णिमा के दिन हुआ, अन्नपूर्णा देवी में जन्म से ही सांगीतिक प्रतिभा थी। उनकी साधना परम शक्ति के उद्देश्य से थी। अन्नपूर्णा देवी प्रारम्भ में अपने पिता से गायन व सितार की शिक्षा ली और इसके बाद उन्होंने सुरबहार का अभ्यास आरम्भ किया। उस्ताद अलाउद्दीन खाँ साहब ने अपनी पूरी तालीम अन्नपूर्णा जी को दी। विदुषी अन्नपूर्णा देवी एकमात्र पहली सुरबहार वादिका थीं। वास्तव में जिस–जिसने भी अन्नपूर्णा जी का सुरबहार वादन सुना वो प्रभावित हुए बिना नहीं रहा। अन्नपूर्णा देवी जी एक उच्च कोटि की कलाकार थीं जिन्होंने अनेक मूर्धन्य कलाकर संगीत जगत को दिया। उनके शिष्यों एवं शिष्याओं के नाम–श्री हरिप्रसाद चौरसिया, बहादुर खाँ (सरोद), आशीष खाँ, निखिल बनर्जी इत्यादि।*

*श्रीमती अन्नपूर्णा देवी उच्च कोटि की गुरू एवं संगीत साधिका भी थीं। इसके अतिरिक्त उन्हें एकमात्र सुरबहार वादिका होने का भी गौरव प्राप्त था। अन्नपूर्णा देवी की वादन–शैली में बाबा के वादन–शैली का स्पष्ट रूप से दर्शन होता है। श्रीमती अन्नपूर्णा देवी जी को अपने श्रेष्ठ संगीत के लिए 26 जनवरी 1977 को 'पद्मभूषण' की उपाधि भी मिली है।*

**शब्द कुंजी** : *स्मरणीय घटनाएँ, मार्गदर्शन, योगदान, वादन–शैली, पुरस्कार, सम्मान।*

**शोध–माध्यम** : *इस पत्र को तैयार करने के लिए द्वितीयक माध्यमों के अतिरिक्त अनेक ऑडियो–विडियो माध्यमों का भी उपयोग किया गया है।*

संत–शिरोमणि 'पद्मविभूषण' आचार्य अलाउद्दीन खाँ की पुत्री श्रीमती अन्नपूर्णा देवी का जन्म मैहर (म0प्र0) में सन् 1927 में पूर्णिमा के दिन हुआ, जबकि उस्ताद अलाउद्दीन खाँ बाबा उदयशंकर पार्टी के साथ विदेश–भ्रमण पर थे। मैहर में महाराजा बाबा के शिष्य थे। इस पुत्री का नाम 'अन्नपूर्णा' रखा। वास्तव में यह नाम इस दृष्टि से सार्थक ही था कि उनकी उदारता सर्वदा कला सेवियों की भूख को शांत करने में संगीत–जगत् के लिए एक दृष्टान्त है।

एकान्त–साधना की व्रती श्रीमती अन्नपूर्णा देवी के शिक्षण में वैसी ही कठोरता सम्मान–भावना और सहृदयता है, जैसी कि बाबा में थी। प्रचार से दूर रहने वाली निराभिमानी अन्नपूर्णा देवी की साधना परम शक्ति के उद्देश्य से है।

बाल्यकाल से ही अन्नपूर्णा देवी को बाबा ने सितार–शिक्षा देनी शुरू की, जो कोई इस बालिका के सितार–वादन को सुनता, वह चकित रह जाता। अन्नपूर्णा भी अपने पिता के बताए मार्ग पर बढ़ रही थीं। सितार–वादन की शिक्षा सन् 1940 तक चली। बाबा ने अन्नपूर्णा से कहा था संगीत भगवान गुरु को अर्पित करने की चीज है। अतः मैं तुम्हें संगीत दूँगा, जिससे आंतरिक शांति मिले, ईश्वर का सान्निध्य प्राप्त हो। यह बाह्य दर्शन की चीज नहीं है। ध्रुपद अंग का आलाप सुरबहार पर ही संभव है और इसी से संगीत विद्वानों, प्रेमियों से आदर मिलेगा। इसके पश्चात् श्रीमती अन्नपूर्णा ने सितार छोड़ दिया और सुरबहार की शिक्षा ग्रहण करना आरम्भ की।

**सांगीतिक स्मरणीय घटनाएँ :–**

अन्नपूर्णा देवी में जन्म से ही सांगीतिक प्रतिभा थी। उस्ताद अलाउद्दीन खाँ साहब ने अन्नपूर्णा जी से पहले अपनी बड़ी पुत्री जहाँआरा को संगीत की शिक्षा दी थी, जिसका विवाह पूर्वी पाकिस्तान में एक बंगाली मुसलमान

*असिस्टेन्ट प्रोफेसर, गुरूकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

से हुआ था, किन्तु उनके ससुराल में उन्हें सौहार्द्रपूर्ण व्यवहार नहीं मिला। यहाँ तक कि जहाँआरा के तानपूरे को भी उन लोगों ने जला दिया था। बाद में जहाँआरा की मृत्यु हो गयी थी। इससे अलाउद्दीन खाँ साहब को गहरा सदमा पहुँचा था और उन्होंने सोचा था कि अब पुत्रियों को संगीत शिक्षा नही दूँगा। किन्तु एक दिन अली अकबर खाँ को जो सबक अलाउद्दीन खाँ साहब ने सिखाया था उसी का अनुकरण अल्प आयु में ही अन्नपूर्णा जी को करते हुए सुना तो उन्होंने अन्नपूर्णा जी को अपने पास बुलाया और उसी सबक को पुनः दोहराने को कहा। अन्नपूर्णा ने डरते–डरते उसे वैसा ही गा दिया, इससे अलाउद्दीन खाँ साहब अन्नपूर्णा की सांगीतिक प्रतिभा व ग्राह्य शक्ति से प्रभावित हुए और इसी घटना के बाद से अन्नपूर्णा जी की संगीत–शिक्षा आरम्भ हो गयी।

**सांगीतिक मार्गदर्शन :–**

अन्नपूर्णा देवी ने प्रारम्भ में अपने पिता से गायन व सितार की शिक्षा ली और इसके बाद उन्होंने सुरबहार का अभ्यास आरम्भ कर दिया। उस्ताद अलाउद्दीन खाँ साहब ने अपनी पूरी तालीम अन्नपूर्णा जी को दी। ''स्वयं खाँ साहब अन्नपूर्णा जी को साक्षात् सरस्वती कहा करते थे। खाँ साहब कहा करते थे कि ''अन्नपूर्णा, अली अकबर और रविशंकर से किसी प्रकार कम नहीं है। ध्रुपद अंग की मेरी जो शिक्षा है, वह सब मैंने उसे दी है। मेरी विद्या अन्नपूर्णा के पास है।''[1]

उस्ताद अलाउद्दीन खाँ ने एक बार एक संवाददाता को भी यह बताया था कि ''सुर की साधना के लिए जीवन में काफी कुछ त्याग करना पड़ता है, तभी तो उसे पाया जा सकता है।'' यदि धर्म नहीं रहा, तो फिर ईश्वर की आराधना होती है? अन्नपूर्णा का है–मेरी पुत्री का। वह बजाना जानती है।[2]

''संगीत'' मासिक पत्रिका के सम्पादक लक्ष्मीनारायण गर्ग ने लिखा है, कि बाबा की सुपुत्री श्रीमती अन्नपूर्णा पर बाबा का विशेष अनुराग था। ''श्रीमती अन्नपूर्णा में बाल्यकाल से ही यह गुण विद्यमान था कि वे किसी भी चीज की तुरन्त नकल कर दिया करती थीं, बाबा जो भी सिखाते, वह हू–ब–हू अन्नपूर्णा जी करके बता देती थी तथा नई चीज को रचना करने का गुण भी इनमें विद्यमान था। इसी से बाबा अन्नपूर्णा को बहुत प्यार करते थे। उस प्यार का ही परिणाम है कि आज सम्पूर्ण जगत में अन्नपूर्णा–जैसा दूसरा कलाकार नहीं। रविशंकर का सितार अन्नपूर्णा जी के सुरबहार के समक्ष नत–मस्तक होते हुए हमने देखा है। प्रचार–प्रसार से सर्वथा दूर रहती हैं। इसीलिए न वे अपना कोई चित्र किसी को लेने देती हैं और न अपना वादन ही कहीं प्रस्तुत करती है।

उस्ताद अलाउद्दीन खाँ अपनी बड़ी पुत्री जहाँआरा के जीवन की दुःखद घटना से इतने दुःखी हुए कि वे अन्नपूर्णा जी से यहाँ तक कहते थे कि तेरी शादी नहीं करूँगा। अपनी समस्त कठिन विद्या तुझे दे दूँगा। तेरा विवाह संगीत से होगा। बाद में जब अलाउद्दीन खाँ साहब रविशंकर जी के साथ विदेश भ्रमण कर चुके व रविशंकर जी खाँ साहब के शिष्य भी बन गये तथा रविशंकर जी से अलाउद्दीन खाँ साहब अच्छी तरह परिचित हो गये, तब उदयशंकर जी के कहने पर अन्नपूर्णा जी का विवाह सुप्रसिद्ध सितार वादक पण्डित रविशंकर के साथ अलाउद्दीन खाँ ने सन् 1941 में कर दिया।

विवाह के पश्चात् अन्नपूर्णा जी अपने पति के साथ ''इप्टा संस्था'' में भारत–भ्रमण को निकल पड़ी। ''इप्टा'' की ओर से पण्डित जवाहर लाल नेहरू की ''डिस्कवरी ऑफ इण्डिया'' मंच पर अभिनीत की जा रही थी, इसमें अन्नपूर्णा जी ने पण्डित जी के साथ पार्श्व संगीत दिया था।

**सांगीतिक योगदान :–**

विदुषी अन्नपूर्णा देवी एकमात्र पहली महिला सुरबहार वादिका थीं। वास्तव में जिस–जिसने भी अन्नपूर्णा जी का सुरबहार–वादन सुना, प्रभावित हुए बिना नहीं रहा। आपने अपने कार्यक्रम दिल्ली, बम्बई, कलकत्ता आदि स्थानों पर दिये किन्तु बजाना वहाँ पसन्द करती थी जहाँ संगीत के गम्भीर पारखी होते थे। पण्डित रविशंकर जी के साथ भी आपकी जुगलबन्दी (सुरबहार, सितार) के अनेक कार्यक्रम सन् 1946 से 1955 तक बम्बई तथा दिल्ली में हुए किन्तु बाद में अन्नपूर्णा देवी जी अपना कोई कार्यक्रम कहीं प्रस्तुत नहीं करती थीं। प्रचार से दूर श्रीमती अन्नपूर्णा अपनी संगीत साधना आत्मिक सुख के उद्देश्य से ही करतीं । यद्यपि संगीत की शिक्षा अनेक शिष्यों को दिया जिनमें से कई तो उच्चकोटि के कलाकार भी बन गये। उनके शिष्यों एवं शिष्याओं के नाम–श्री हरिप्रसाद चौरसिया (बांसुरी वादक), बहादुर खाँ (सरोद), शुभेन्द्र शंकर (सितार), आशीष खाँ (सरोद), निखिल बनर्जी (सितार), इन्द्रनील भट्टाचार्य (सितार), बसंत काबरा (सरोद), लक्ष्मीनारायण गर्ग (सितार),

कार्तिक कुमार (सितार), देवी चटर्जी (सितार), ज्योतिन भट्टाचार्य (सरोद), विनयभरत राम (गायन), दक्षिणामोहन टैगोर (दिलरूबा), गौतम मुखर्जी (गायन), श्रीमती उमा गुहा (सरोद), राधा मोहन दास (सितार), सुरेश व्यास (सरोद), नित्यानन्द हल्दीपुर (बाँसुरी) इत्यादि।

**वादन शैली** :–

संगीत–साधना के द्वारा परम शक्तिमान से सान्निध्य स्थापित करने के लिए एकांत यत्नशील कलाकार ही सच्चा परमानन्द साधक है। पार्थिव मालिन्य से परे आध्यात्मिक दृष्टि का अधिकारी–आदर्श गुरू थीं। श्रीमती अन्नपूर्णा देवी इसी कोटि की गुरू थीं एवं संगीत साधिका थीं ।

उनकी वादन–शैली की परिपक्वता एवं श्रेष्ठता का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि पिता एवं गुरु अलाउद्दीन खाँ ने यह विचार प्रकट किया– ''अन्नपूर्णा अली अकबर खाँ और रविशंकर से किसी प्रकार कम नहीं। ध्रुपद अंग की मेरी जो शिक्षा है, वह सब मैंने उसे दी है। मेरी विद्या अन्नपूर्णा देवी के पास है। वह जब सुरबहार बजाती है, मानों साक्षात् देवी सरस्वती ही विराजमान हैं।''

अन्नपूर्णा देवी की वादन–शैली में बाबा के वादन–शैली का स्पष्ट दर्शन होता है। उनकी वादन शैली सुनकर ऐसा लगता है कि बाबा स्वयं बजा रहे हैं। आपकी तानों में स्वरों की शुद्धता एवं बोलों का अद्भुत संतुलित संयोजन दिखाई पड़ता है। वादन में पूर्ण रूप से ध्रुपद व बीन अंग की आलापचारी दिखाई पड़ती है। उनका रूझान आलाप पर अधिक रहा । वादन में कभी–कभी ऐसा प्रतीत होता कि एक सप्तक के मींड का वादन कर रही हैं परन्तु वास्तव में घसीट, जमजमा एवं मीड़ का इतना संतुलित एवं सधा हुआ प्रयोग करतीं कि एक–एक सप्तक की मींड का आभास होता जिसे निम्न उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है–

यदि मन्द्र सप्तक में 'प' से मध्य सप्तक के 'ध' तक मींड़ लेना हो तो मन्द्र सप्तक के 'प' से घसीट द्वारा तर्जनी से मध्य सप्तक के 'सा' तक आती है। तत्पश्चात् 'सा' एवं 'रे' को जमजमे जैसे प्रयोग करते हुए 'रे' से 'ध' तक की मीड से आती है। इस प्रकार अन्नपूर्णा देवी अपने वादन में तकनीक एवं परम्परा दोनों का निर्वाहन करतीं।

चूंकि उनके वादन की अति अल्प रिकॉर्डिंग उपलब्ध है, अतः कुछ रिकार्डिंग सुनकर निम्नलिखित तथ्य प्रस्तुत किये जा सकते हैं–

1. सच्चा सुर स्वर–समष्टि की सृष्टि के लिए उसके माध्यम से ईश्वर से सानिध्य स्थापित करना।
2. आध्यात्मिक–दृष्टि एवं ज्ञान के अधिकारी तथा प्रकृति द्वारा सृष्ट संगीत के दर्शन करना।
3. उनके वादन में सर्वोत्तम संगीतज्ञता का सार है। तकनीक की व्यावहारिक क्रिया में परिणति। सुरबहार पर पूर्ण प्रभुत्व, गायन का माधुर्य वादन की विशेषता है।
4. उनके वादन में आत्मा का परमात्मा से सानिध्य का रूप परिलक्षित होता है तथा स्वरों का लगाव हृदयस्पर्शी है।
5. वादन में शुद्ध ध्रुपद–शैली से आलाप व जोड़ आलाप दिखाई देता है जिसमें कोई मिलावट नहीं है।
6. अति विलम्बित लय की आलापचारी एवं प्रत्येक स्वर पर विश्रांति देकर दूसरे स्वर पर जाना, कठिन मीड़ व गमक, खटका, मुर्की तथा घसीट का सधा प्रयोग आपके वादन में स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है।
7. उनके द्वारा प्रस्तुत राग माँझ खमाज को सुन कर ऐसा लगता है कि कोई ध्रुपद गा रहा है।
8. ऐसे जटिल वाद्य को सुनकर बजा पाना मुश्किल ही नहीं, असम्भव है।

सच ही कहा है– "The Sitar notes floated in the air. The little girl was not playing any particular raga. She was moving up and down the three octaves. There was strength and clearity in the girl's hands. As she practised the Murcharna with gamak, each swara came out with the sciintillating beauty of shining pearls.[3]

आगे "I am playing whatever I have learnt from Baba. He taught us the dhrupad and alap. I dwell on each swara for a long time and love to play alap. I do not know what the changing times will required."[4]

अन्नपूर्णा देवी के इन विचारों से यह स्पष्ट है कि अपने संगीत में स्वयं के विचारों की अपेक्षा 'बाबा' द्वारा सिखाये गये चीजों को बजाना अधिक पसन्द करती थीं तथा उन्हें आलापचारी ज्यादा पसन्द रहा। विशेष रूप से ध्रुपद अंग का आलाप। उन्हें हर स्वर पर बहुत देर तक

रूकना, अतः उन स्वरों में अति विलम्बित मीड़ का आलाप करना अधिक पसन्द था। वे बाबा की शैली को अपने वादन में पूर्ण रूप से स्थापित करने के प्रति कितनी जागरूक थीं। इस बात का अनुमान निम्नलिखित कथन से लगाया जा सकता है– ''I want to play Baba's music whatever happens. All my life I shall play that I won't budge an inch.''

अन्नपूर्णा देवी का लगाव प्रारम्भ से ही आध्यात्मिकता की ओर रहा जिस कारण उनको एकांतवास तथा मात्र अपनी संगीत–साधना से अत्यन्त प्रेम रहा। इन्हीं कारणों से उन्होंने अपनी वादन–शैली को श्रोताओं के अनुरूप नहीं ढाला एवं अति अल्प मात्रा में अपनी संगीत की प्रस्तुति की।

प्रसिद्ध सितार वादक पं. निखिल बनर्जी के अनुसार– ''वर्तमान समय में अन्नूपर्णा जी– जैसा कोई श्रेष्ठ कलाकार नहीं है। वे व्यावसायिकता से दूर अपने वादन का प्रयोग स्वांतः सुखाय ही करती हैं।[5]

पं0 रविशंकर के अनुसार–''यदि किसी ने भारत में रीति व पद्धति के अनुरूप सुरबहार बजाया है, तो वह एकमात्र अन्नपूर्णा है। राग की शुद्धता, ध्रुपद अंग, आलापचारी एवं जोड़ जो हृदय को छू लेने वाले होते हैं। एकमात्र वो ही बजाती हैं। अन्नपूर्णा के बजाने के सम्बन्ध में यही कह सकता हूँ कि वह अति उच्च स्तर का बजाती है। कुछ लोगों के रक्त में ही संगीत होता है। उनके सुर व हाथ में बहुत मिठास है, रस से भरा हुआ है। बाबा के जिस अंग को उन्होंने सीखा उसे बिना किसी गलती के वैसा का वैसा ही ग्रहण किया।

विभिन्न श्रोतों द्वारा केवल उनकी छः प्रस्तुतियों का वर्णन मिलता है, जो इस प्रकार हैं[6] –

Concerts :-

1. First played before the Maharajah of Maihar Brijnath Singh at the request of Baba Allauddjn Khan. She played Raga Malkauns.

**Jugalbandi with Ravi Shankar**

2. Constitution Club Barracks. They played Raga Yaman Kalyan. The performance was organized by Narayan Menon, Ravi Sharika's friend who worked with the BBC.
3. Constitution Club. They played Kaushi Kanhara. The performanc was organized by the Jhankar Music Circle set up by Ravi Shankar.
4. Santa Cruz: The performance was organized by the Suburban Music Circle.
5. Constitution Club, Delhi. The played Ragashree. 30 March 1955.

**Solo**

6. Ranji Stadium, Calcutta. She played iagas Kaushiki and Majh Khamaj. Organized by the Au Akbar o1lege 0fMisic Opening: 14 April 1956.

**पुरस्कार एवं सम्मान :–**

श्रीमती अन्नपूर्णा जी को अपने श्रेष्ठ संगीत के लिए 26 जनवरी 1977 को 'पद्मभूषण' द्वारा सम्मानित किया गया। 1968 में 'नाद विश्व भारती' 'देशिकोत्तम्' से 'डी.लिट्' उपाधि, सन् 1988 में सुरसिंगार संसद 'शारंगदेव फैलोशिप', सन् 1991 केन्द्रीय संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार आदि भी प्राप्त हुए।

अपने पिता श्री अलाउद्दीन की शिक्षा का प्रचार व प्रसार करने के उद्देश्य से श्रीमती अन्नपूर्णा जी की अध्यक्षता में सन् 1975 को बम्बई में ''आचार्य अलाउद्दीन म्यूजिक सर्कल'' की स्थापना की गई। 13 अक्टूबर 2018 को इस विदुषी सुरबहार वादिका का निधन हो गया ।

**सन्दर्भ सूची :**


1. व्यास, पं. मदन लाल, भारतीय संगीत के प्रमुख स्तम्भ, पृ.सं. 1
2. जैन, डॉ. प्रभा, भारतीय संगीत के उन्नायक उस्ताद अलाउद्दीन खाँ, पृ.सं. 50
3. Bandyopadhyay, Swapan Kumar, Annapurna Devi, Pg. No. 28
4. ibid, Pg. No. 30
5. जैन, डॉ. प्रभा, भारतीय संगीत के उन्नायक उस्ताद अलाउददीन खाँ, पृ.सं. 60
6. Bandyopadhyay, Swapan Kumar, Annapurna Devi, Pg. No. 179

यूजीसी–केयर सूचीबद्ध, पिअर रिव्यूड वार्षिक शोध पत्रिका

**स्तोम 2023**

# प्राचीन काल में संगीत का अध्ययन एवं अध्यापन

**डॉ. संगीता श्रीवास्तव***

**सारांश**

*भारतीय संगीत अनादि काल से ही प्रचलित है। 'इसकी उत्पत्ति कब हुई' को सटीक रूप से बता पाना अत्यंत कठिन है। प्राचीन काल से ही संगीत का अध्ययन एवं अध्यापन होता रहा है परंतु अध्ययन का स्वरूप क्या था, किस प्रकार संगीत की शिक्षा दी जाती थी, इसका प्रमाण स्पष्ट रूप से हमें प्राप्त नहीं होता है किंतु उस समय अन्य विषयों की भांति संगीत की शिक्षा भी गुरुकुल के अंतर्गत होती होगी, इसमें कोई संदेह नहीं है। संगीत लोकरंजन का प्रमुख साधन है। संगीत–अध्ययन हेतु हमारी पूर्व परंपरा निश्चय ही गुरु–शिष्य–प्रणाली रही होगी।*

***मुख्य शब्द** : संगीत, शिक्षण, गुरु शिष्य परंपरा, अध्ययन, अध्यापन*

***अनुसंधान पद्धति** : प्रस्तुत शोध–पत्र के लिए पुस्तकालय से प्राप्त पुस्तकों का अध्ययन एवं कुछ प्रमुख संगीतज्ञ के साक्षात्कार का आधार लिया गया है।*

**अध्ययन क्षेत्र** : इस शोध–पत्र का अध्ययन क्षेत्र अथवा प्रासंगिक क्षेत्र प्राचीन समय से आधुनिक काल तक भारतीय संगीत का अध्ययन एवं अध्यापन किस प्रकार विकसित हुआ है और उसका क्या महत्व है, इससे संबंधित तथ्यों का एकत्रीकरण एवं अध्ययन है।

शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके अंतर्गत एक व्यक्ति हर दूसरे व्यक्ति को शिक्षित करता है। स्वामी विवेकानंद के अनुसार' शिक्षा की व्याख्या शक्ति के विकास के रूप में की जा सकती है, शिक्षा मनुष्य की अंतर्निहित पूर्णता की अभिव्यक्ति है।'[1] ललित कलाओं में अपना उच्च स्थान रखने के कारण संगीत में निहित लालित्य का अर्थ एवं उद्देश्य मानव के मन मस्तिष्क को आकर्षित कर उसी आकर्षण में तल्लीन होने पर रस की अनुभूति कर उसके चरित्र का उत्थान करना होता है। संगीत की शिक्षा अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि यह नाद विद्या सर्वश्रेष्ठ है और मां सरस्वती की कृपा होने पर ही संगीत का गुण मनुष्य के अंदर आता है। संगीत एक ऐसी विधा है जिसकी शिक्षा प्राप्त कर मनुष्य का व्यक्तित्व उन्नत हो जाता है। 'संगीत को सीखने वाला व्यक्ति आत्म–संतुलन बनाए रखने में सफल होता है। अतः संगीत का अध्ययन व अध्यापन अत्यंत महत्वपूर्ण है। मनुष्य की पाशविक प्रवृत्तियों को दूर करने में संगीत कला अत्यंत सहायक सिद्ध हुई है।'[2]

भारत देश में संगीत का अत्यंत प्राचीन रूप हमें प्राप्त होता है। सामवेद संगीत का वेद है, हमारा संगीत ही अन्य देशों में भी किसी–न–किसी रूप में प्रचलित हुआ अथवा अन्य देशों के संगीत को हमारे संगीत ने प्रभावित किया। ठाकुर जयदेव सिंह ने अपनी पुस्तक 'भारतीय संगीत का इतिहास' में लिखा है 'भारत के सबसे प्राचीन संगीत का उदाहरण सामवेद में मिलता है। अरब, फिनिशिया, मिश्र इत्यादि देशों के प्राचीन संगीत का उदाहरण अब नहीं मिलता किंतु इस बात का पर्याप्त प्रमाण मिलता है कि भारत के साम संगीत से इन देशों के संगीत का साम्य था। इनके यज्ञ और मंदिरों में जो संगीत गाया जाता था उनके लिए वे जिस शब्द का प्रयोग करते थे वह 'साम' शब्द से मिलते हैं।'[3]

भारत में संगीत के अध्ययन–अध्यापन हेतु मुख्य रूप से दो प्रकार की शिक्षण प्रणालियाँ प्रचलित रही हैं : 1) व्यक्तिगत प्रणाली 2) संस्थागत प्रणाली

व्यक्तिगत प्रणाली को गुरुकुल शिक्षा–प्रणाली के रूप में जाना जाता है जिसके अंतर्गत शिष्य गुरु के सानिध्य में रहकर संगीत की शिक्षा ग्रहण करता था तथा गुरु के प्रति सच्ची श्रद्धा व समर्पण रखते हुए कठोर साधना करता था। शिष्य अपनी शिक्षा गुरु–गृह में रहकर पूरा करते थे, गुरु भी पूर्ण स्नेह व प्रेम से शिष्य को सिखाते थे । गुरु–शिष्य का पारस्परिक संबंध अत्यंत पवित्र होता

*एसोसिएट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, संगीत, दयानंद गर्ल्स पीजी कॉलेज, कानपुर

था, शिष्य संगीत के शिक्षा–ग्रहण के साथ–साथ गुरु से धर्म, अध्यात्म व दर्शन का भी ज्ञान लेता था जिससे उसके उच्च कोटि के चरित्र का निर्माण होता था। प्राचीन काल में संगीत–शिक्षा की विभिन्न शालाओं का उल्लेख भी कहीं–कहीं मिलता है।

भारतीय परंपरा के अनुसार संगीत को मोक्ष–प्राप्ति का सुगम साधन माना गया है, संगीत की साधना से मनुष्य का अज्ञान दूर होता है, संगीत साधक अन्य प्राणियों के अज्ञान को दूर कर स्वयं में ईश्वर को देखता है । गुरुकुल में सारी शिक्षा गुरु और शिष्य की व्यक्तिगत शक्ति और रूचि के अनुसार होती थी। मानव–जीवन के लिए उपयोगी आध्यात्मिक अलौकिक एवं सभी विधाओं के अध्ययन की सुविधा इन गुरुकुलों में थी। संगीत का अध्ययन एवं अध्यापन में इन गुरुकुलों का अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान रहा है। शिक्षा के समाप्त होने पर शिष्य को विद्वानों से शास्त्रार्थ कर अपनी योग्यता को प्रमाणित करना होता था। 'वैदिक साहित्य में कहा गया है कि अध्ययन और अध्यापन दोनों ही आनंद के निस्पंद हैं, स्वतंत्र होकर व्यक्ति नित्य समृद्धि पाता है और शांति को प्राप्त करता है।'[4]

'वैदिक काल में संगीत–शिक्षा का विधान परंपरागत प्रणाली द्वारा हुआ करता था । उस समय स्वर, लय, ताल में वेदों की रचनाओं का गान होता था। हृदय कंठ और तालु से स्वरों का अभ्यास गुरुकुल में कराया जाता था और उसके बाद उदात्त, अनुदात्त और स्वरित के ज्ञान के अनुसार लय और ताल में संगीत का प्रदर्शन होता था।'[5]

वैदिक कालीन संगीत–शिक्षा का जो स्वरूप सामने आता है वह काफी समय के बाद भी संगीत शिक्षा का मुख्य आधार रहा है। ऐसा भी माना जाता है कि वैदिक शिक्षा–प्रणाली ही सभी युगों में प्रामाणिक शिक्षा प्रणाली थी । समय के परिवर्तन के साथ–साथ अन्य कई शिक्षा–प्रणालियों का आज तक प्रयोग होता रहा है परंतु वैदिक प्रणाली इन सब का मूल रहा है।

बाल्मीकि रामायण के अध्ययन से संगीत–संबंधी ऐसे कितने ही सूत्र प्राप्त होते हैं जिनके द्वारा उस युग में प्रचलित गीत, वाद्य और नृत्य की विभिन्न शैलियाँ, उनके प्रयोग के अवसर तथा जनमानस में उनके प्रति अभिरुचि पर प्रकाश पड़ता है। 'रामायण काल में भी हर गृह में प्रातः काल होते ही ईश्वर आराधना हेतु संगीत की स्तुति प्रस्फुटित हो उठती थी। सार्वजनिक रूप से समाज में संगीत के आयोजन हुआ करते थे और इन आयोजनों में सर्वसाधारण लोग भी विशेष दिलचस्पी लिया करते थे।'[6] संगीत की शिक्षा गुरु द्वारा शिष्य को दी जाती थी और उसका स्वरूप भी गुरुकुल–पद्धति के आधार पर प्रत्यक्ष रूप से शिक्षा देना होता था। शिष्य अपने गुरु द्वारा प्राप्त शिक्षा का निर्वाहन भली प्रकार करता था। संगीत के संदर्भ में मुनि बाल्मीकि द्वारा लव–कुश को दी गई स्वर, पद, काल, प्रमाण मूर्च्छना आदि की शिक्षा–सम्बन्धी उन लेखों से ज्ञात होता है कि उस समय संगीत शिक्षा का व्यवस्थित स्वरूप था जिसके अंतर्गत संगीत के शास्त्र व क्रिया पक्ष दोनों ही समाविष्ट थे। 'इस काल में संगीत शिक्षा का आंतरिक पक्ष अत्यंत प्रबल था तथा रामायण में ही वाल्मीकि मुनि द्वारा मेधावी तथा मधुर स्वर–संपन्न लव कुश को अपना शिष्य बनाने का उल्लेख प्राप्त होता है।'[7] रामायण–काल में स्त्रियों को भी संगीत की प्रचुर शिक्षा दी जाती थी । स्त्रियों का संगीत विशेष रूप से आकर्षक होता था । स्त्रियों में स्वर की कोमलता के कारण वे ऊंचे स्वर में ले सकती थीं। इस काल में समाज के प्रत्येक क्षेत्र, वर्ग व विभिन्न आयोजनों व समारोह में संगीत का सर्वत्र गुंजन होता रहता था, जैसे– स्वागत, विदाई, विवाह, रितु, युद्ध–भूमि आदि में संगीत का प्रयोग प्रचुर मात्रा में किया जाता था। संगीत की शिक्षा प्राप्त करना उनके जीवन का एक अभिन्न अंग था।

संगीत–शिक्षण एवं अध्यापन की दृष्टि से महाभारत–काल एक अत्यंत महत्वपूर्ण काल है। भगवान कृष्ण तो संगीत के प्रकांड विद्वान हुए। ऐसा मानना था कि समाज में वही व्यक्ति मान्य होगा जिसमें संगीत का गुण होगा। लोगों में संगीत शिक्षा प्राप्त करने के लिए ललक रहती थी। लौकिक संगीत के बजाय साम गान की अधिक महत्ता थी क्योंकि यह धार्मिक संगीत था। संगीत एवं संगीतकार को समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त थी।' इस काल में भी गुरु–शिष्य–परंपरा चली आ रही थी। नृत्य गीत में निपुण गंधर्व होते थे। यही संगीत के आचार्य होते थे। इन्हीं के द्वारा संगीत की शिक्षा का प्रसार होता था। गुरु को अत्यंत सम्मान प्राप्त था। यह बात अर्जुन के इस कथन से स्पष्ट होती है–जब वह विराट से कहता है कि उत्तरा से उसका संबंध पिता के समान है, वह किसी प्रकार भी उससे विवाह नहीं करेगा।'[8] महाभारत काल में संगीत–शिक्षा का स्वरूप अत्यंत व्यवस्थित था। इस काल में राजाओं में

रसास्वादन पर्याप्त था क्योंकि उनके शैक्षणिक पाठ्यक्रम में भी धनुर्विद्या, हस्त विद्या, रथ–विद्या आदि के साथ–साथ गांधर्व तथा अन्य कलाओं का भी समावेश होता था। स्त्रियों की संगीत–शिक्षा के लिए गुणी जनों को राजभवन में नियुक्त किया जाता था। बृहन्नला के रूप में अर्जुन की नियुक्ति विराट की राजकन्या तथा राज स्त्रियों को संगीत की शिक्षा देने के लिए ही की गई थी। 'विश्व बंधु गांधर्व की परंपरा से ही अर्जुन गीत, वाद्य तथा नृत्य की शास्त्र–शिक्षा प्राप्त कर गांधर्व विशाल कहलाए। बड़े–बड़े नगरों में संगीत–शालाओं का प्रबंध शासन की ओर से किया जाता था। युवतियों की नृत्य–शिक्षा के लिए भी मत्स्य राज की राजधानी में ऐसी शालाओं का निर्माण किया गया था।'[9]

इस काल के विद्वानों द्वारा लिखित ग्रंथों में गायन, वादन व संगीत–शिक्षण–संबंधी अनेक उल्लेख मिलते हैं। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में संगीत का प्रयोग होने के कारण जनमानस में संगीत की शिक्षा प्राप्त करने की अटूट लगन दृष्टिगोचर होती थी। वैदिक संस्कृति का उत्कर्ष–काल होने के कारण इस काल में वैदिक संगीत की परंपरा अक्षुण्ण रूप से प्रचलित थी। स्वर, पद, स्तोभ आदि अंगों का अध्ययन वैदिक शिक्षा के अभिन्न अंग के रूप में किया जाता था। ऋषियों के आश्रम में साम गीतों का गायन निरंतर प्रचलित रहता था। राज स्त्रियों तथा अंतःपुर की अन्य महिलाओं के लिए संगीत–शिक्षा का विशेष प्रबंध होता था और इस कार्य के लिए वृद्ध एवं गुणी व्यक्तियों की योजना की जाती थी। बड़े–बड़े नगरों में संगीत–शिक्षा के लिए संगीत–शालाओं का प्रबंध शासन की ओर से किया जाता था तथा इनके समय–संचालन का समुचित प्रबंध रहता था।'[10]

गुरुकुल–प्रणाली में भारत की राजनीतिक स्थिति अच्छी थी। राज्य का शासन राजा अपना कर्तव्य समझकर जनता के हित को ध्यान में रखते हुए चलाता था। इससे सर्वत्र सुख व शांति थी जिसके बीच संगीत को काफी महत्व दिया गया। राजा भी संगीत के जानकार हुआ करते थे और राजा अपनी पुत्री को विशेष रूप से संगीत की शिक्षा दिलवा देते। जातक साहित्य के अनुसार राजा एवं संभ्रांत कुलीन वर्ग सदा गांधर्व नट, नर्तक, गायक, वादक आदि से घिरा रहता था। संगीत का राजाओं के साथ इतना गहरा संबंध था कि सिद्धार्थ ने गृह–त्याग से पूर्व रात्रि को संपूर्ण गायन–वादन का श्रवण कर ही गृह त्यागा था।

संगीत के अध्यापन एवं अध्ययन में गुरु–शिष्य–परंपरा सबसे प्राचीनतम प्रणाली है। गुरुकुल में रहकर नियमित संयमित जीवन व्यतीत करते हुए और कठोर अनुशासन का पालन करते हुए शिष्य निरंतर साधना करता था और गुरु के बताए हुए मार्ग पर उसके द्वारा दी हुई शिक्षा को अपनाकर अपना जीवन सफल करता था। कालांतर में गुरुकुल–व्यवस्था से निकलकर संगीत–शिक्षा घरानों के रूप में विकसित हुई। घराना गायन, वादन, नृत्य तीनों की विधाओं की शैलियों का सूचक है। प्राचीन गुरु–शिष्य–परंपरा का सबसे विशिष्ट गुण यह था कि शिक्षा की नींव चरित्र–निर्माण पर रखी गई थी । मात्र किसी विषय का ज्ञान देना ही शिक्षा का उद्देश्य नहीं होता था अपितु गुरु का यह कर्तव्य होता था कि वे अपने शिष्य को ज्ञान देने के साथ–साथ उसका आध्यात्मिक उन्नति करें एवं उसके चरित्र का उत्थान भी करें। गुरुकुल–प्रणाली में शिष्य की शिक्षा अत्यंत बाल्यावस्था से ही प्रारंभ हो जाती थी जो एक उचित समय होता है और गुरु–शिष्य–परंपरा अत्यंत मनोवैज्ञानिक थी । बालक का मनोवैज्ञानिक अध्ययन कर गुरु बालक को विकसित होने का पूर्ण अवसर देते थे। गुरुकुल के अच्छे व स्वस्थ वातावरण में बालक का मानसिक विकास भी उचित होता था एवं अन्य बालकों के साथ शिक्षा ग्रहण करता था और उसके अंदर सामाजिक भावनाओं का भी उचित विकास होता था।

गुरुकुल–प्रणाली में शिष्य पूरे दिन अपने गुरु के सानिध्य में रहता था जिससे उसकी दिनचर्या उसके रहन–सहन और उसके सभी कार्यों पर गुरु की निगाह रहती थी। सही इलाज करवाना, सही स्वरूप का उच्चारण, उसके अभ्यास के समय, गलतियों को सुधारना, अभ्यास का सही तरीका बताना, ये सारी चीजें गुरुकुल–प्रणाली में बहुत अच्छी तरह विकसित हो जाती थीं। शिष्य गुरु के सामने अनुशासित रहकर अच्छा ज्ञान प्राप्त करने में समर्थ रहता था। इस परंपरा में विद्यार्थियों का शिक्षण–कार्य प्रकृति के खुले वातावरण में होता था जहाँ उसे शुद्ध वायु एवं मनमोहक प्रकृति का साथ मिलता था और वह अपनी साधना और अच्छे मन से कर सकता था। संगीत के अध्ययन–अध्यापन में गुरु–शिष्य–परंपरा अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि इस परंपरा में शिष्य पूरी श्रद्धा एवं समर्पण से अपनी शिक्षा प्राप्त करता था तथा गुरु को भगवान मानकर उसकी आज्ञा का पालन करता था। यद्यपि समय जरूर

लगता था किंतु शिष्य संगीत की बारीकियों को आत्मसात कर एक सफल संगीतज्ञ बनता था एवं उसका संगीत भी अत्यंत आकर्षक होता था। शिष्य का जीवन सादा होता था तथा वह तड़क–भड़क तथा गंदी आदतों से दूर रहता था तथा ब्रह्मचर्य का पालन कर वह अपने शरीर को निरोग रखता था तथा संगीत के प्रति वह पूर्ण रूप से समर्पित होता था।

संगीत के अध्ययन–अध्यापन के इस गुरु–शिष्य–परंपरा में उस समय लिखने का कोई साधन नहीं था । इसलिए शिष्य गुरु की हर बात को बहुत ध्यान से सुन कर याद कर लेता था जिससे उसकी शिक्षा भी उच्च स्तर की हो जाती थी। गुरु–शिष्य–परंपरा में धार्मिक तत्वों की प्रधानता रहती थी। शिशु में यह धारणा बनाई जाती थी कि यज्ञ आदि से किस प्रकार वातावरण शुद्ध होता है व प्रकृति संतुष्ट होती है। इस परंपरा में सम्मान व आदर का रिश्ता होता था। संगीत–शिक्षण की गुरु–शिष्य–परंपरा अत्यंत उत्कृष्ट कोटि की परंपरा थी। इसमें शिष्य कठिन–से–कठिन चीजों को अथवा स्वरावलियों को गुरु से सीख लेता था और सीख कर संगीत–शिक्षा में पारंगत हो जाता था । उसके अंदर अनुशासन और संस्कार विकसित हो जाते थे।

**निष्कर्ष**: संगीत के अध्ययन एवं अध्यापन के लिए गुरु–शिष्य–परंपरा का विशिष्ट महत्व है। प्राचीन काल में गुरुकुल में रहकर शिष्य संगीत–शिक्षा के साथ–साथ अनुशासनात्मक शिक्षा भी प्राप्त करता था तथा एक आदर्श संगीतज्ञ के रूप में उसका विकास होता था। इसी परंपरा के आधार पर घरानों की नींव पड़ी तथा वर्तमान में जो संगीत की शिक्षा दी जा रही है, संगीत का अध्ययन एवं अध्यापन किया जा रहा है, वह भी गुरु–शिष्य–परंपरा से अछूता नहीं है।

**संदर्भ सूची** :

1. पाठक एवं त्यागी, शिक्षा के सिद्धांत, पृष्ठ 303
2. मुकेश, महावीर प्रसाद, संगीत सूक्ति सुमन, पृष्ठ 145
3. सिंह, ठाकुर जयदेव, भारतीय संगीत का इतिहास, पृष्ठ 133
4. अवस्थी, डॉ. शशि, प्राचीन भारतीय समाज, पृष्ठ 137
5. प्रयाग संगीत समिति, प्रयाग वार्षिक संस्करण (1956–57), पृष्ठ 53
6. जोशी, डॉ, उमेश, भारतीय संगीत का इतिहास, पृष्ठ 89
7. शुक्ल, प्रोफेसर विश्वनाथ, आदि काव्य वाल्मीकि रामायण में संगीत शिक्षा, संगीत, शिक्षा अंक, पृष्ठ 16
8. श्रीवास्तव, धर्मावती, प्राचीन भारत में संगीत, पृष्ठ 56
9. सक्सेना, प्रोफेसर मधुबाला, भारतीय संगीत शिक्षण प्रणाली एवं उसका वर्तमान स्तर, पृष्ठ 70
10. परांजपे, शरच्चन्द्र श्रीधर, भारतीय संगीत का इतिहास, पृष्ठ 164

# चतुराध्यायिका और पाणिनि सूत्रों का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ ज्योत्स्ना द्विवेदी*

**शोध संक्षेप**

*प्रायः सभी भारतीय एवं पाश्चात्य भाषा मर्मज्ञ विद्वान् प्रातिशाख्यों को प्राचीन शिक्षा ग्रन्थ मानते हैं। अतः प्रातिशाख्यों का अध्ययन ध्वनि विज्ञान का सम्पूर्ण परिचय प्राप्त करने के लिये अतीव महत्वपूर्ण है। पं. युधिष्ठिर मीमासंक ने 'व्याकरण शास्त्र के इतिहास में मुख्यतः 15 प्रातिशाख्यों के विषय में चर्चा की है जिनमें सभी वेदों और उनकी शाखाओं का भी उल्लेख किया है, जिनमें ऋक्प्रातिशाख्य सबसे प्रमुख या सर्वांगपूर्ण माना है। इस शोध–पत्र में अथर्ववेद के प्रसिद्ध प्रतिशाख्य ग्रन्थ 'चतुराध्यायिका' एवं महर्षि पाणिनि के व्याकरण ग्रन्थ 'अष्टाध्यायी' पर तुलनात्मक विवेचना है जिसमें सूत्र संख्या, सूत्रार्थ, उदाहरण आदि पर शोध–पूर्ण विवेचना प्रस्तुत की गई है।*

**विशिष्ट शब्दावली** : *चतुराध्यायी, प्रातिशाख्य, चतुराध्यायिका, आख्यात, नियात, उदात्तश्रुति, जात्य, क्षैप्र, विकम्पित।*

**शोध प्रविधि** : *विभिन्न ग्रन्थों के अध्ययन के बाद इस शोध–पत्र को तैयार किया गया है।*

'चतुराध्यायिका' (चतुराध्यायी) अथर्ववेद का प्रातिशाख्य है। यह भी ऋक्प्रातिशाख्य के भाँति शौनककृत है। इसमें चार अध्याय हैं जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है। प्रत्येक अध्याय में 4 पाद हैं।

| अध्याय | सूत्र सं. |
|---|---|
| 1 | 105 |
| 2 | 107 |
| 3 | 96 |
| 4 | 126 |
| | **434 कुल** |

वर्तमान में लौकिक एवं वैदिक शब्दों के साधु परिज्ञान के लिए पाणिनि कृत अष्टाध्यायी सर्वोच्च प्रतिष्ठित व्याकरण ग्रन्थ है जो कि निःसन्देह यथार्थ है।

पणिनि के सूत्रों एवं प्रातिशाख्यों में अनेक विषमतायें होते हुये भी अनेक स्थलों में आश्चर्यजनक समानतायें भी विद्यमान हैं, यथा– पाणिनीय शिक्षा ग्रन्थ के अनुसार 64 वर्ण हैं परन्तु अथर्व– प्रातिशाख्यानुसार निर्दिष्ट वर्णसंख्या निश्चित नहीं हैं। इसमें कुल 47 वर्णों की चर्चा है, अ, कवर्ग, = 9 तथा विसर्ग = 8, जिह्वामूलीय = 1, इ, चवर्ग, य और श = 8, ऋ , ख, वर्ग, रेफ और ष = 8, लृ, तवर्ग, ल और स = 8, ओष्ठ्य (उ. पवर्ग, व, उपध्मानीय 7) तथा नासिक्य (चार यम, अनुस्वार, अनुनासिक = 6) = 47 (वस्तुतः अथर्वप्रातिशखय में वर्णमाला नहीं ही है, स्थान प्रयत्न का भी उल्लेख नहीं है; स्वर, व्यंजन, ऊष्म की चर्चा अवश्य है।) परन्तु पाणिनि ने अपने प्रत्याहार सूत्रों[1] में वर्णमाला को एक नया रुप, नई दृष्टि दी है। पाणिनि ने अपने प्रत्याहारसूत्रों में कुल 9 स्वर तथा 34 व्यंजनों को ही स्वतंत्र वर्ण माना है। स्वरों में दीर्घ प्लुतत्वादि भेद एवं 34 भेद आदि करने से स्वरों के 132 भेद हो जाते है। अतः वर्णों की गणना जातिपक्ष से करना चाहिए व्यक्तिपक्ष से नहीं।

चतुराध्यायिका के प्रथम अध्याय के सूत्रों में वैदिक व्याकरण विषय परम्परा के अनुसार नाम, आख्यात, उपसर्ग, निपात तथा पद सान्निध्य से रूप परिवर्तन का निरुपण है।

**स्वर** :–

चतुराध्यायिका के प्रथम पाद के 14, 15 और 16 सूत्रों में स्वरों का निरूपण है। यहाँ पाणिनि से भिन्नता दिखाई देती है। 'समानयमे'[2] अर्थात् एक ही सन्तान में तुलनात्मक उच्चता से ध्वनि में उदात्तत्व, नीचता से अनुदातत्व होता है। अन्यथा निम्न ध्वनि उच्चारण में सभी उदात्त ही हो जायेंगे। पाणिनि ने स्वरित को उदात्त तथा अनुदात्त का समाहार[3] माना है। स्वरित में पहले उदात्त फिर अनुदात्त[4] होता है। चतुराध्यायिका में 'अक्षिप्तं स्वरितं'[5] अक्षिप्त अर्थात् फेंका हुआ स्वर स्वरित होता है। पाणिनि ने तीन प्रकार के स्वरों को उदात्त, अनुदात्त, स्वरित कहा है अतः इनका प्रयोग पुलिंग में है। किन्तु चतुराध्यायिका में एतद् प्रकार के

*सहायक प्राध्यापक (संस्कृत), शास. शहीद केदारनाथ स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मऊगंज, रीवा (म.प्र.)

स्वरों से युक्त अक्षरों को उदात्त, अनुदात्त, स्वरित बताया गया है अतः इन शब्दों का प्रयोग नपुंसक में किया है।[6] जो सूत्र सोलहवें[7] की व्याख्या है और यह पाणिनीय सूत्र 'तस्यादित उदात्तमर्धहस्वम्' का समानार्थक है।

अब हम सभी अध्यायों के उन सूत्रों को क्रमशः उद्धृत करेंगें जो पाणिनिसूत्रों के समानार्थक या सदृश है–

| चतुराध्यायी | पाणिनि (अष्टाध्यायी) |
|---|---|
| 1. उच्चैरूदात्तम् 1,14 | उच्चैरूदात्तः 1,2,29 |
| 2. नीचैरनुदात्तम् 1,15 | नीचैरनुदात्तः 1,2,30 |
| 3. स्वरितस्यादिवोमात्रार्धमुदात्तम्, 1,16 | तस्यादित उदात्तमर्धह्रस्म्, 1,2,32 |
| 4. हस्वं लघ्वसंयोगे, 1,51 | ह्स्वं लघु, 1,4,10<br>संयोगे गुरू, 1,4,11 |
| 5. एकमात्रो ह्रस्वः, 1,59 | |
| 6. द्विमात्रों दीर्घः 1,61 | ऊकालोज्झस्वदीर्घप्लुतः |
| 7. त्रिमात्रः प्लुतः, 1,62 | 1,2,27 |
| 8. कृपे रेफस्य लकाररू, 1,64 | कृपो रोलरू, 8,2,18 |
| 9. नकारमकारयोर्लोपे पूर्वस्यानुनासिकः, 1,67 | अत्रानुनासिकः पूर्वस्य तु वा, 8/3/2 |
| 10. उकारस्येतावपृक्तस्य, 1,72 | उञः, 1,1,17 |
| 11. दीर्घ प्रगृह्यचश्च, 1, 73 | ऊ, 1,1,17 |
| 12. ईकारोकारौ च सप्तयर्थे, 1,74 | ईदूतौ च सप्तम्यर्थे, 1,1,19 |
| 13. द्विवचनान्तौ 1,75 | इदूदेदद्विवचनं प्रगृह्यम्, 1,1,11 |
| 14. एकारश्च, 1, 76 | |
| 15. अभी बहुवचनम्, 1,78 | अदसो मात् 1,1,16 |
| 16. अस्मे युष्मे त्वेमे इति चोदात्तः, 1,77 | शे, 1,1,13 |
| 17. निपातोड्पृक्ताः अनाकारः, 1,79 | निपातएकाजनाड्, 1,1,14 |
| 18. ओकारान्तश्च, 180 | ओत् 1,1,15 |
| 19. आमन्त्रितं चेतावनार्षे, 1,81 | सम्बुद्वौ शाकल्यस्येतावनार्षो, 1,1,16 |
| 20. हनिगम्योः सनि, 1,86 | अज्झनगमां सनि, 6,4,16 |
| 21. शान्मान्दानाम्, 1,87 | मान्बधदान्शान्भ्यो दीर्घश्चाभ्यासस्य, 3,1,6 |
| 22. वर्णादन्त्यात्पूर्वउपधा, 1,92 | अलः अन्त्याप्रर्व उपधाः 1,1,65 |
| 23. व्यञ्जनान्यव्येतानि स्वरैः संयोगः | हलः अनन्तराः संयोगः, 1,1,7 |
| 24. सोष्मणि पूर्वस्यानुपधा, 1,96 | झलां जश् झशि, 8,4,53 |

आचार्य शौनक प्रथमाध्याय के द्वितीय पाद[8] में विसर्जनीय को ''अभिनिष्टान'' कहते हैं। पाणिनि ने ''अभिनिसस्तनः शब्दसंज्ञायाम्''[9] से अभिनिष्टान शब्द सिद्ध किया है। दूसरे अध्याय के प्रथम सूत्र से संहिता का अधिकार चला है। और, इस अध्याय के समाप्ति पर्यन्त केवल सन्धि सूत्र है। इस अध्याय के तुलनीय सूत्र निम्न हैं–

| चतुराध्यायी | पाणिनि (अष्टाध्यायी) |
|---|---|
| 1. संहितायाम् 2,1 | संहितायाम्, 6,1,72 |
| 2. पदान्त्रानानुन्तमानां तृतीया घोषवत् स्वरेषु 2,2 | झलां जशोन्ते, 8,2,39 |
| 3. पदान्ते चाघोषाः, 2,3 | वावसाने 8,4,56 |
| 4. अघोषेषु च 2,4 | खरि च, 8,4,55 |
| 5. उत्तमा उत्तमेषु, 2,4 | यरः अनुनासिकेः अनुनासिको वा 8.4.45 |
| 6. द्वितीयाः शषसेषु | 'अनचि च' 8,4,47 इस सूत्र में कात्यायन की वार्त्तिक चयोः द्वितीयाः, शरि पौष्करसादेः इति वाच्यम्, द्रष्टव्य है। |
| 7. तेभ्यः पूर्व चतुर्थो हकारस्य, 2,7 | झयो होऽन्यतरस्याम्, 8,4,62 |
| 8. टकारात् सकारे तकारे, 2,8 | डः सि धुट् 8,3,29 |
| 9. डण्नेभ्यः कटतैः शषसेषु, 2,9 | डणोः कुक्टुक्शरि, 8/3/28 नश्च, 8, 3,30 |
| 10. नकारस्य शकारे ञकारः 2,10 | स्तोः श्चुना श्चुः 8/4,40 |
| 11. चवर्गीये घोषवति 2,11 | ष्टुना ष्टुः 8,4,41 |
| 12. तकारस्य शकार लकारयोः परसस्थानः, 2,13,8,4,43 | न पदान्ताट्टोरनाम् 8/4, 82 तोः षि, |
| 13. चटवर्गयोश्च 2,14 | शात्, 8,4,44 |
| 14. टवर्गीये वकारः, 2,12 | |
| 15. ताभ्यां समानपदे तवर्गीयस्य पूर्वसंस्थानः 2,15 | |

| | |
|---|---|
| 16. षकारान्नानापदे अपि, 2,16 | |
| 17. तवर्गीयाच्छकारः शकार 2,17 | शश्छोटि, 8,4,63 |
| 18. लोप उदः स्थास्तम्भोः सकारस्य, 2,18 | उदः स्थास्तम्भाः पूर्वस्य, 4,61 |
| 19. रेफस्य रेफे, 2,19 | रोरि, 8,3,14 |
| 20. स्पर्शादुत्तमादनुत्तमस्यानुत्तमे 2,20 | झरो झरि सवर्णे, 8,4,65 |
| 21. स्वरात् यवयोः पदान्तयोः 2,21 | लोपः शाकल्यस्य, 8,3,9 हलि सर्वेषाम् 8,3,22 |
| 22. नाकाराद् वकारस्य 2,22 | व्योर्लघुप्रयत्नतरः शाकटायनस्य, 8,3,18 |
| 23. लेशवृन्त्रिधिस्पर्शः शाकटायनस्य 2.24 | पुमः खय्यम्परे, 8,3,6 |
| 24. पुमो मकारस्य स्पर्शे घोषे अनूष्म– परे विसर्जनीयो अपश्चादिषु, 2,25 | |
| 25. नकारस्य चटतवर्गे 0,2,26 | नश्छव्यप्रशान् 8,3,7 |
| 26. आकारोपधस्योप 0,2,27 | |
| 27. वृक्षो वनानीति 0,2,28 | दीर्घादटि समानपादे |
| 28. नाभ्युपधस्य रेफ त्रपू, 0,2,29 | 8/3,9 |
| 29. मकारस्य स्पर्शे परसस्थानः 2,30 | अनुस्वारस्य ययि 0,8,4,58 |
| 30. न समो राजतौ, 2,36 | मो राजि समः क्वौ, 8,3,25 |
| 31. विसर्जनीयस्य परसंस्थानः, 2,30 | (अष्टा0 8,3,34–40–37) |
| 32. स्वरे यकारः, 2.41 | भो भगो अघो 0,8,3,17 |
| 33. अकारोपधस्योकरो अकारे, 2,53 | अतो रोरप्लुवादप्लुते, 6.1,113 |
| 34. घोषवति च 2,54 | हशि च, 6,1,111 |
| 35. आकारोपधस्य लोपः, 2.55 | लोपः शाकल्यस्य, 8,3,19 |
| 36. एष स्य व्यञ्जने, 2.56 | अष्टा0 6,1,132 |
| 37. निर्दुरवि 0,2,63 | इदुदुपधस्य 0,8,3,41 |
| 38. कुरूकरं, 0,2,65 | कः करत्करति 0,8,3,50 |
| 39. पञ्चम्याश्चा 0,2,67 | अष्टा0, 8,3,51 |
| 40. पष्ठ्याश्चा, 0,2,71 | पष्ठयाः 0,8,3,53 |
| 41. इडायास्पदे, 2,72 | अष्टा0 8,3,54 |
| 42. अत्रनाम्युपधस्य 0,2,81 | अष्टा0 8,3,57 |
| 43. नामित रेफात् 0,2,87 | अष्टा0 8,3,59 |
| 44. सहेः साङ्भूत 0,2,82 | अष्टा0 8,3,56 |
| 45. तद्धिते तकारादौ 2,83 | अष्टा0 8,3,101 |
| 46. युष्मदादेशे0 2,85 | अष्टा0 8,3,103 |
| 47. उपसर्गात् धातोः 2,90 | अष्टा0 8,3,65 |
| 48. अभ्यासाच्च, 2,91 | अष्टा0 8,3,64 |
| 49. अभ्यासव्या0, 2,93 | |
| 50. स्था सहि सिची0 2,92 | अष्टा0 8,3,63 |
| 51. अग्नेः स्तोम सोमयोः, 2,96 | अष्टा0 8,3,82 |
| 52. सुञ, 2,97 | अष्टा0 8,3,107 |
| 53. न सृपिसृजि0 2,102 | अष्टा0 8,3,110 |

द्वितीय अध्याय में कुल 107 सूत्र हैं। पाणिनीय अष्टाध्यायी से तुलना करने पर यह तथ्य सामने आता है कि इस अध्याय के पचास प्रतिशत सूत्र पाणिनीय अष्टाध्यायी के सदृश हैं। परन्तु कुछ स्थल ध्यातव्य है यथा–

1. सूत्र संख्या 2.7 'तेभ्यः पूर्व चतुर्थो हकारस्य' के अनुसार पदान्त में अघोष वर्ण ही विहित है, घोष नहीं। 'गोधुक्' ही होगा, 'गोधुग्' नहीं। पाणिनि ने 'वावसाने' (8.4156) से दोनों को सही माना है।
2. द्वितीयाः शषसेषु (2, 6) सूत्र से शौनक ने श. ष. स. से पहले द्वितीय वर्ण का विधान किया है परन्तु पाणिनि ने ऐसा नहीं कहा, कात्यायन ने 'शरोचि' (8.4.46) सूत्र मे इसका वर्णन किया है।
3. चतुराध्यायी सूत्र संख्या 2.42 से 52 तक में विभिन्न स्थलों में विसर्ग का र् विहित है। पाणिनि की दृष्टि से यह विपरीत प्रक्रिया है।
4. सूत्र 2, 32 तथा 33, 34 मे म् और न् का लोप कर 1, 67 से अनुनासिक किया है। पाणिनि ने अनुस्वार और अनुनासिक भिन्न–भिन्न किया है।

तीसरे अध्याय में कुल 96 सूत्र हैं। प्रथम पाद में पूर्वपद के अंतिम स्वर के दीर्घ का वर्णन है।[10] दूसरे पाद मे द्वित्व प्रकृतिभाव स्वरसन्धि, जात्य उदात्तादिस्वरों का वर्णन तथा चतुर्थपाद में णत्व विधान और निपातन है। इस अध्याय में अष्टाध्यायीसूत्रतुल्य निम्न सूत्र हैं–

| | |
|---|---|
| 1. विश्वस्य नरवसुमित्रेषु, 3,9 | अष्टा0–6, 3, 128–129–130 |
| 2. उपसर्गस्य नामिनो दस्ति, 3,11 | अष्टा0–6, 3, 124 |
| 3. रलोपे 3.20 | अष्टा0 –6.3,111 |
| 4. ड़णना0 3,27 | अष्टा0– 8.3.32 |
| 5. संयोगादि0 3,28 | अष्टा0 –8.3.47 |
| 6. प्रगृह्याश्च0 3,33 | अष्टा0–प्लुतप्रगृह्याचि0–6.1.125 |
| 7. स्वरे नामिनो0 3,38 | इको यणऽचि, 6.1.77 |
| 8. सन्ध्यक्षरस्य0 3.40 | एचो0 6,1,78 |
| 9. पूर्वपरयोरेकः, 3.41 | एकः पूर्वपरयोः 6/1/84 |
| 10. समानाक्षरस्य सवर्णे दीर्घः 3,42 | अकः सवर्णे दीर्घः 6.1.101 |
| 11. अवर्णस्येवर्ण एकारः, 3,44 | |
| 12. अवर्ण ओकारः 3,45 | आद्गुणः 6,1.87 |
| 13. अरमुवर्णे, 3,46 | |
| 14. उपसर्गस्य धात्वादावारम् 3,48 | उपसर्गा0 6.1.91 |
| 15. ओकारौकारयो0 3.50 | |
| 16. एकारैका0 3.51 | वृद्विरेचि, 6.1.88 |
| 17. शषसाः स्वरे, 3.32 | अष्टा0,4,49 |
| 18. एकरौ0 3.53 | अष्टा0–6.1,109 |
| 19. एकादेश उदात्तेनोदात्तः, 3,66 | एकादेश उदात्तेनोदात्तः, 8,2,5 |
| 20. उदात्तादनूदात्तं स्वर्यते, 3.67 | अष्टा0–8,4,66 |
| 21. नोदात्त0 3,70 | अष्टा0–8,4,67 |
| 22. ऋवर्ण0, 3,75 | अष्टा0–8,4,1 |
| 23. अकारान्तात्0 3.77 | अष्टा0–8,4,7 |
| 24. विभक्तव्य0, 3,7 | अष्टा0–8.4.14 |
| 25. अवगृह0 3.85 | अष्टा0–8.4.26 |
| 26. पदान्तस्पर्श0 3,89 | अष्टा0–8,4,37 |
| 27. नषेः षान्तस्य 3.90 | नषेः षान्तस्य 8.4.36 |
| 28. स्वर लोपे हनृस्य 3.91 | अष्टा0–8,4,22 |
| 29. क्षुभ्नादीनाम् 3.92 | अष्टा0–8.4.39 |
| 30. व्यवाये0 3.93 | अद्कुप्वाड्0 8.4.2 |
| 31. चटतवर्गे0 3.94. | |
| 32. पदेनावर्जितेच, 3,95 | अष्टा0–8.4.2 |

**इस अध्याय में निम्न तथ्य विचारणीय हैं–**

1. शौनक ने रात्रि और ओषधि शब्द का दीर्घ विधान किया है, पर पाणिनि ने उसकी चर्चा नहीं की किन्तु 'बाह्वादिभ्यश्च'[11] 'सूत्र पर 'कृदिकारात्किनः' कहकर वार्तिककार ने रात्रि और रात्री दोनों प्रयोग सर्वत्र शुद्ध और ऐच्छिक माने हैं। स्त्रीलिंग में ओषधि और ओषधी दोनों रूप साधु हैं।
2. प्रयुक्त या प्रयोक्तव्य पदों की व्याख्या के विभिन्न प्रकार हैं। चतुरध्यायी मे 'यवलोपे न यौ सन्ध्यौ' द्वारा प्र तिभाव से संधि का निषेध है, किन्तु अष्टाध्यायी यहाँ 'असिद्धत्व'[12] से संधि का निषेध है। यथा 'नदीन्तरति' में परसवर्ण के असिद्ध होने से अनुस्वार आ जायेगा तो 'नश्छव्यप्रशान्'[13] की स्वयं प्रवृत्ति नहीं होगी। एक अन्य उदाहरण ''धियेहि'' की सिद्धी से यह और स्पष्ट हो जायेगा।

चतुराध्यायी के अनुसार–

| | |
|---|---|
| धिया + आ + इहि | 'पूर्वम् धातुरूपसर्गेण, युज्येत' नियम धिया + एहि से आ + इहि मिला। अब यहां बुद्धि की प्राप्ति होने से अशुद्ध रूप ''धियैहि'' बनने लगा इसलिये शौनकाचार्य ने नियमसूत्र बनाया– |
| धिया + आ = धिया | ''आकारः केवल प्रथमः पूर्वेण''। |
| धिया + इहि धियेहि। | इस अवस्था में गुण करके बना– |

पाणिनीयानुसार –

| | |
|---|---|
| धिया + आ + इहि | ''ओमाङोश्च''[14] नियम बनाकर– |
| धिया + एहि | वृद्धि का निषेध करके पररूप द्वारा ''धियेहि'' सिद्ध किया। |

3. चतुराध्यायी[15] में अ + इ = ए, अ + उ = ओ तथा अ + ऋ = अर् करने के लिऐ पृथक्–पृथक् सूत्रों की रचना की किन्तु पाणिनि ने ''आद् गुणः''[16] एक ही सूत्र बनाया।
4. चतुराध्यायी 3,55 सूत्र में निम्न अष्ट सन्धि स्वरों का

उल्लेख है– अभिनिहित, प्रश्लिष्ट, जात्य, क्षैप, तैरोव्यञ्जन, पादवृत, सविध और विकम्पित। पाणिनि के सूत्रों मे जात्य, क्षैप्र के अलावा उल्लेख नहीं है।

5. चतुराध्यायी के 3,75वे सूत्र ''ऋवर्ण रेफषकारेभ्यः'' में रेफ और षकार के अलावा ऋ को भी णत्व का कारण माना है। परन्तु पाणिनि ने णत्वविधि में ऋ का ग्रहण नहीं किया अपितु ''अप्तृन्तृच्0''[17] मे णत्व तथा ''तासि च क्लृपः''[18] में लत्व करके पाणिनि ने ऋ में र् को सम्मिलित माना है।

6. पाणिनि ने स्वरित के बाद आये अनुदात्त की एकश्रुति[19] की है। चतुराध्यायी में उसकी उदात्तश्रुति की है। चतुराध्यायी में स्वरित या उदात्त के बाद आये स्वर को अनुदात्त बताया है पर अष्टाध्यायीकार ने किसी भी पद मे कहीं भी एक स्वर को छोड़कर शेष सबको अनुदात्त[20] किया है। जैसा कि यह सर्वविदित है कि प्रातिशाख्य वेदों के मंत्रों के सही अर्थ को समझने के लिये बनाऐ गये विशिष्ट व्याकरणसिद्धान्त्र ग्रंथ हैं क्योंकि वेद और उनकी विभिन्न स्वरप्रणालियों से पठित होने के कारण शाखाओं का निर्माण हुआ और विभिन्न शाखाओं को उच्चारण परम्परा का संवाहक माना गया। चतुराध्यायिका (चतुराध्यायी) चतुर्थ अध्याय में विशेष रूप से मंत्रों के पद एवं क्रमपाठं पर विवेचना है। इस अध्याय मे 126 सूत्र हैं। इस अध्यायगत विशेषतायें पाणिनि के संदर्भ में कुछ इस प्रकार देखी जा सकती हैं– 1 पाणिनि ने ''स्वादिष्वसर्वनामस्थाने''[21] सूत्र से भिस् भ्याम्, सुप्–स्वादि प्रातिपादिक को पद माना है किन्तु 'मतुबर्थक' प्रत्यय के पूर्व तकारान्त और सकारान्त शब्दों को पद नही मानते। ''चतुराध्यायीकार'' ने ''तकार सकराभ्यां मत्वर्थे[22]'' तथा पाणिनि का ''तसौ मत्वर्थे20'' सूत्र समान है। इसी प्रकार चतुराध्यायी के चौथे अध्याय के कुछ अन्य सूत्र भी है–

| चतुराध्यायी | पाणिनि |
|---|---|
| 4.40 | अष्टा0– 3,1,8 तथा 2,4,71 |
| 4,40 से 44 तक | अष्टा0– 8,1,11,9 तथा 101 |

4,84 में लिट्लकार के लिये परोक्ष शब्द का प्रयोग तथा 91 में प्रेरणार्थक णिजन्त धातु के लिये कारित शब्द का प्रयोग है जो कि संज्ञा भिन्न होते हुये भी पाणिनि के अनुकूल ही है। इसी प्रकार ''कृत्वसुच्'' को पाणिनि ने एक प्रत्यय माना है किन्तु चतुराध्यायी मे इसे शब्द स्वीकार किया गया है।

चतुर्थ अध्याय का विषय पाणिनि से भिन्न होने के कारण इसके अधिकांश सूत्र पाणिनि सूत्र के समान नहीं हो सकते थे क्योंकि पाणिनि ने पदपाठ एवं क्रमपाठ के लिये कोई भी सूत्र नही बनाया है। चौथे अध्याय को छोड़कर 3 अध्यायों के 308 (तीन सौ आठ) सूत्रों में प्रायः 114 सूत्र पाणिनि सूत्रों के तुल्य है।

शोध–पत्र में अर्थ तुल्यता पर विशेष आग्रह रखा गया है, शब्द सादृश्य की अपेक्षा।

**संदर्भ :**

1. अइउण् / ऋऌक् / एओङ् / ऐऔच् / हयवरट् / लण् / ञमङण्नम / झभञ् / घढधष् / जबगडदश् / खफछठथचटतव् / कपय् / शषसर् / हल्।
2. चतुर0 – 1 / 141
3. समाहारः स्वरितः – अष्टा0 1,2,31
4. तस्यादितउदात्तमर्धहस्वम् – 1,2,32
5. चतुरध्यायिका –1,16
6. अष्टा0 1,2,–29,30,31 चतुर0 1,14–15–16
7. ''स्वरितयादितोमात्रार्धमुदात्तम्''।
8. प्रथमाध्याय के बयालिसवें सूत्र से द्वितीय पाद शुरू है तथा सूत्र 63 तथा 93 से क्रमशः तृतीय तथा चतुर्थ पाद शुरू होते हैं।
9. अष्टा0– 8,3,83
10. यथा विश्वामित्र, श्वापद।
11. अष्टा0– 4.1.45
12. ''पूर्वत्रासिद्धम्''–अष्टा0 8,2,1
13. अष्टा0– 8,3,7
14. अष्टा0– 6.1.95
15. चतुर0–3 – 44,45,46
16. अष्टा0–6,1,87
17. अष्टा0 6,4,11
18. अष्टा0 7,2,60
19. ''स्वरितात् संहिता0'' अष्टा0 1,2,39
20. अनुदात्तं पदमेकवर्जम् (अष्टा 6,1,152)।
21. अष्टा0– 1,4,19
22. संख्यायाः क्रियाभ्या0 5,4,17

**सहायक ग्रंथो की सूची :**

1. अष्टाध्यायी, महर्षि पाणिनिकृत, रामलाल कपूर ट्रस्ट सोनीपत बहालगढ़
2. चतुराध्यायिका, महर्षि शौनककृत, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी
3. प्रथमावृत्ति–3 भाग, पं0 ब्रह्मदत्त जिज्ञासुकृत, रामलाल कपूर ट्रस्ट सोनीपत बहालगढ़
4. प्रातिशाख्य ग्रन्थावली संग्रह, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी

# लोकसंगीत के प्रमुख वाद्य

**उपासना शर्मा***

**सारांश**

*लोक संगीत में वाद्यों का विशिष्ट महत्व है। गीत व नृत्य को लोकरंजित बनाने हेतु व लय तथा ताल को नियंत्रित करने हेतु वाद्यों की मुख्य आवश्यकता होती है। विशेषकर नृत्य के लिए लोक वाद्य प्राण समझे जाते है। लोक संगीत के अन्तर्गत ताल व लय वाद्य अर्थात् अवनद्ध व घन वाद्यों का प्रयोग विशेष रूप से किया जाता है। गुजरात के गरबा एवं डाण्डिया के डण्डे, बिहार में भील एवं संथाली नृत्य के साथ मादल तथा अन्य जातियों के नृत्यों के साथ ढोल, झाँझ आदि वाद्य संगीत का आनन्द चौगुना कर देते है। इसी प्रकार जब नौटंकी में नक्कारा, फाग गायन में ढोलक तथा कहारों के गायन में हुडुक बजते है तो मानो आनन्द की वर्षा हो जाती है।*

**सूचक शब्द** : *लोक संगीत, लोकवाद्य, लय, ताल*

**शोध–प्रविधि** : *द्वितीयक माध्यमों से सहायक सामग्री प्राप्त की गई है ।*

लोकसंगीत जन–जीवन के उल्लास और मानव की आत्मिक भावनाओं को उजागर करने का सशक्त माध्यम है। इसके द्वारा मानव शब्दों एवं स्वरों के माध्यम से अपने हृदय के सरल भाव प्रकट करता है। लोक संगीत में वाद्यों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है तथा ताल, लय और स्वर को वाद्य–यंत्रों द्वारा ही नियंत्रित किया जाता है। इसके गीतों में लय की प्रमुखता होती है जिसके लिए वाद्य की आवश्यकता हुई। फलस्वरूप लोकगीतों में वाद्यों का वादन प्रारम्भ हुआ।

पौराणिक कथाओं में भी हम वाद्यों को किसी न किसी रूप में पाते हैं, जैसे– भगवान विष्णु के हाथ में शंख, शिव के हाथ में डमरू, कृष्ण के हाथ में वंशी, इत्यादि। शास्त्रीय संगीत की अपेक्षा लोक संगीत में वाद्यों का महत्व अधिक है। घन और अवनद्ध वाद्यों का प्रयोग लोकसंगीत में बहुतायात रूप से मिलता है। इनके प्रयोग से गायन व नृत्य का रंग दुगुना हो जाता है। आनन्द और उत्साह बढ़ाने में वाद्यों का सदैव ही प्रयोग देखने को मिलता है।

सामान्यतः प्राचीन ग्रंथों में वाद्यों को चार भागों में वर्गीकृत किया गया है– तत, सुषिर, घन एवं अवनद्ध वाद्य। किन्तु लोकसंगीत में मुख्यतः दो ही वर्ग दिखाई देते है। प्रथम वर्ग स्वर वाद्य तथा दूसरा वर्ग ताल वाद्य। स्वर वाद्य को सुषिर व तत् वाद्य की श्रेणी में रखा गया है तथा घन व अवनद्ध वाद्य के अन्तर्गत लय वाद्यों को रखा गया है।[1]

लोक संगीत के प्रमुख लोक वाद्यों का विवरण निम्न है :–

1. **रावणहत्था** : यह वाद्य राजस्थान के प्राचीन एवं लोकप्रिय वाद्यों की श्रेणी में आता है। नारियल के सहारे बाँस पर नौ तार लगाकर इसे निर्मित किया गया है। इसका बाज व गज का तार घोड़े की पूँछ के बालों का बना होता है। इसे आदिवीणा भी कहा जाता है।[2]
2. **एकतारा** : यह तुँबा एवं तार से निर्मित वाद्य है। बाँस पर डंडा लगाकर खूँटी के सहारे तार को कसा जाता है। बहुधा भिक्षुक व साधु–संत एकतारा के साथ ही गायन करते है।[3]
3. **तोनक्या** : भील जाति में इस वाद्य का विशेषकर प्रयोग किया जाता है। इसका निर्माण बाँस के सिरे पर टिन का एक छोटा–सा गोलाकार डिब्बा लगाकर किया जाता है तथा डिब्बे के बीच में एक तार खूँटी के सहारे पिरोया जाता है। इसका वादन अंगुली या लकडी की सींक के द्वारा किया जाता है।[4]
4. **जन्तर** : इस वाद्य का आकार वीणा के समान होता है। इसमें बाँस की डाँड व दो तुम्बे लगाये जाते हैं तथा 22 पर्दे मगर की खाल पर मोम से चिपकाये जाते हैं। परदों के ऊपर 5 या 6 तार लगाये जाते हैं।[5]
5. **कामाइचा** : यह सारंगी की आकृति का वाद्य है। इसमें 27 तार होते हैं। साधु–संत विभिन्न प्रकार की कथा के गीत इस वाद्य के साथ गाते हैं। यह राजस्थान का प्रमुख वाद्य है।[6]
6. **रमझौल** : घुंघुरू की चौड़ी पट्टी रमझौल कहलाती

*सहायक प्रोफेसर, विद्यावती मुकुन्दलाल महिला महाविद्यालय, गाजियाबाद

है। राजस्थान में होली के अवसर पर लोकनर्तकों द्वारा इसका प्रयोग किया जाता है। ''समर नृत्य'' के समय गोड़वाड़ क्षेत्र के लोक नर्तक रमझौल को पैर में बाँधकर हाथों में तलवारें लेकर नृत्य करते हैं। युद्ध कला के भावों को भी इसके द्वारा दिखाया जाता है।[7]

7. **श्रीमण्ड़ल** : यह राजस्थान का सबसे प्राचीन वाद्य माना जाता है। इसका वादन मुख्यतः माँगलिक अवसरों पर किया जाता है। इसमें चाँद की तरह गोल व छोटे टकोरे लटके रहते हैं।

8. **टुनटुना** : महाराष्ट्र के लोक नाट्य में इस वाद्य का वादन किया जाता है। बाँस पर कुछ घुघँरू बाँधकर इसे निर्मित किया गया है। इसका वादन जमीन पर पटककर किया जाता है।

9. **गिलबड़ा** : यह वाद्य आंध्र प्रदेश की चेंचु जनजाति द्वारा बनाया गया है। यह उन सूखे फलों द्वारा निर्मित किया गया है जिनमें बीज होते हैं। उन सभी फलों को एक साथ बाँधकर लय–ताल को दृष्टिगत रखते हुए इसका वादन किया जाता है।[8]

10. **झाँझ (मंजीरा)** : यह पीतल और काँसे की मिश्रित धातु से बना गोलाकार कटोरीनुमा युग्म वाद्य होता है। दोनों मंजीरो को आपस में आघात कर इसका वादन प्रायः देवी–देवताओं के गुण–गान में किया जाता है। झाँझ का छोटा स्वरूप मंजीरा कहलाता है। तेरह–ताली नृत्य, जो कामड़ जाति की महिलाओं द्वारा किया जाता है उसमें भी मंजीरा वाद्य का प्रयोग किया जाता है।

11. **मुखचंग** : इसकी आकृति त्रिशूल के समान होती है। इसे मुँहचंग या मोरचंग के नाम से भी जाना जाता है। बीच में लगी पत्ती को अँगुली द्वारा स्प्रिंग की तरह झटकाकर तथा मुँह में दबाकर इसका वादन किया जाता है।

12. **गुबगुबिया** : यह कद्दू, टीन या मिट्टी के चुक्के से निर्मित वाद्य है। चुक्के के मुँह की ओर झिल्ली बँधी रहती है। झिल्ली के छोटे छिद्र से तॉत को खींचने पर चुक्का खोल से बाहर निकल कर अंदर की तरफ आ जाता है। इस प्रकार इसका वादन किया जाता है।[9]

13. **घुमट** : दो मुख वाला यह वाद्य सुराही की आकृति–जैसा प्रतीत होता है। इसके मुँह पर बैल या भैंस का चमड़ा लगाकर डोरी से बाँध दिया जाता है। बड़े मुख पर हाथों की अंगलियों से व छोटे मुख पर हाथ की हथेली द्वारा वादन किया जाता है।[10]

14. **किंगरी** : इसका निर्माण बाँस के सिरे पर नारियल की नरेटी में चमड़ा लगाकर किया जाता है तथा खूँटी के सहारे दो या तीन तार लगाये जाते हैं। इसका वादन धनुष के आकार के बने गज (जो घोड़े की पूँछ के बाल का बना होता है) द्वारा किया जाता है।

15. **सम्बल** : महाराष्ट्र में विशेष उत्सवों पर इस वाद्य का प्रयोग किया जाता है। यह तबला की आकृति के समान होता है। इसके ऊपरी भाग का मुँह खुला रहता है तथा नीचे वाले भाग को बंद कर दिया जाता है। खुले मुख पर चमड़ा मढ़ दिया जाता है तथा दोनों अंगों को आपस में बाँधकर दो डॉडियों से इसका वादन किया जाता है।

16. **माँदल** : यह मृदंग की आकृति के सदृश होता है। दो मुँहों पर मढ़ी हुई खाल पर जौ का आटा चिपकाया जाता है। इसके साथ थाली का वादन भी किया जाता है। इस वाद्य को शिव–गौरी का वाद्य–यंत्र कहा जाता है।[11]

**निष्कर्ष** : लोक वाद्यों का लोकसंगीत में विशेष महत्व है क्योंकि इन वाद्यों के अभाव में न तो लोक नृत्य ही मनोरंजित होता है और न ही लोक गीत। अतः लोक वाद्य–यंत्रों का गायन व नृत्य के साथ प्रयोग लोक जनों में आनन्द एवं उल्लास का संचार करता है, एवं प्रभावशाली बनाता है।

**संदर्भ सूची** :

1. शर्मा, प्रो. स्वतंत्र, सौन्दर्य रस एवं संगीत, अनुभव पब्लिशिंग हाऊस, पृ.सं. 283
2. वसंत, संगीत विशारद, संगीत कार्यालय, हाथरस, पृ.सं. 576
3. www.saptswargyan.in
4. शर्मा, प्रो. स्वतंत्र, सौन्दर्य रस एवं संगीत, अनुभव पब्लिशिंग हाऊस, पृ.सं. 286
5. www.gkhub.in
6. वसंत, संगीत विशारद, संगीत कार्यालय, हाथरस, पृ.सं. 576
7. www.ranuacademy.in
8. शर्मा, मृत्युंजय, संगीत मैन्युअल, पृ.सं. 365
9. शर्मा, स्वतंत्र, सौन्दर्य रस एवं संगीत, अनुभव पब्लिशिंग हाऊस, पृ.सं. 288
10. वही, पृ.सं. 287
11. www.gkhub.in

# अवनद्ध वाद्यों की उत्पत्ति और विकास

**शुभम वर्मा***

**सारांश**

*भारतीय संगीत वाद्य में अवनद्ध वाद्यों का एक पृथक् अस्तित्व है। जब इन अवनद्ध वाद्यों की चर्चा प्रारम्भ करते हैं तो हमें प्रारम्भिक अवनद्ध वाद्य भगवान शिव के डमरू के विषय में चर्चा करना अत्यन्त महत्वपूर्ण हो जाता है। आधुनिक युग में भारतीय सांगीतिक वाद्यों का ज्ञान हड़प्पा और मोहनजोदड़ो सभ्यताओं में देखा जा सकता है। यह ज्ञान वेदों, बाल्मीकि रामायण, महाभारत, बौद्ध तथा जैन मन्दिरों तथा प्राचीन गुफाओं में मिलता है। हड़प्पा की सभ्यता से ढ़ोल बजाते हुये एक आदमी का चित्र प्राप्त हुआ है। पुष्कर, मृदंग, पणव, दुर्दुर आदि को चर्माच्छादित वाद्यों के अन्तर्गत रखा गया है, पुष्कर वाद्य को अन्य चर्म वाद्यों की अपेक्षा अधिक सम्मान प्रदान किया गया है। इसका कारण यह है कि पुष्कर वाद्य में 16 अक्षर, चतुर्मार्ग, षट्करण, विलेपन, त्रिलय, त्रिगति, त्रियोग, त्रिपाणि, त्रिप्रहर, पंचपाणि, त्रिमार्ग, 18 जातियाँ आदि तत्व विद्यमान हैं।*

**मुख्य शब्द** : *अवनद्ध, पुष्कर, दुन्दुभि, मृदंग, पणव, दुर्दुर*

**प्रविधि** : *इस पत्र के लिए द्वितीयक माध्यमों का उपयोग किया गया है।*

भारतीय संगीत वाद्य में अवनद्ध वाद्यों का एक पृथक् अस्तित्व है। इनके बिना गायन, वादन और नृत्य अपूर्ण है। प्राचीनकाल से अद्यतन आनद्ध वाद्यों की उत्पत्ति एवं उनका प्रयोग कला व्यवहार हेतु किया गया है। उनकी उत्पत्ति का स्थान एवं उनका अस्तित्व एक वार्तालाप का विषय है। दोनों शब्दों अवनद्ध और आनद्ध में 'नद्ध' शब्द इनकी उत्पत्ति के मूल में है जो संस्कृत में 'नह' मूल से लिया गया है। 'नह' का अर्थ है बांधना, आवरण करना, लपेटना या सुसज्जित करना, इसलिये 'नद्ध' से तात्पर्य है चारों तरफ से बांधना या लपेटना। 'नद्ध' शब्द के पहले 'आ' उपसर्ग लगने से आनद्ध की रचना हुयी है। समान रूप से दोनों शब्दों का तात्पर्य किसी चीज का बंधा हुआ होने से है। भारतीय संगीत में विशेष रूप से इन दोनों शब्दों का अर्थ वाद्य यंत्रों से है जो चमड़े से निर्मित है।

जब इन अवनद्ध वाद्यों की चर्चा प्रारम्भ करते हैं तो हमें प्रारम्भिक अवनद्ध वाद्य भगवान शिव के डमरू के विषय में चर्चा करना अत्यन्त महत्वपूर्ण हो जाता है। संस्कृत व्याकरणवेत्ता 'पाणिनी' मुनि ने अपनी पुस्तक व्याकरण 'सिद्धान्त कौमुदी' में भगवान शिव के डमरू के आह्वान के साथ संस्कृत व्याकरण के विषय में कहा है–

''नृत्तावसाने नटराजराजो ननादढक्कांनवपंचवारम्।
उद्धर्तुकामः सनकादिसिद्धिर्नेतद्विमर्शे शिवसूत्रजालम्।।[1]

जिसका अर्थ है, एक शाम नटराजों के राजा शिव नृत्य कर रहे थे और उसी समय सनक एवं दूसरे ऋषि भी उपस्थित थे उनकी मुक्ति के लिये अपने नृत्य की समाप्ति के समय भगवान शिव ने 14 बार अपना डमरू बजाया और इससे 14 अक्षरों का प्रादुर्भाव हुआ– अइउण्, ऋलृक्, एओङ्., ऐऔच्, हयवरट्, लण्, ञमङणनम्, झभञ्, घढ़धष्, जबगडदश्, खफछठथचटतव्, कपय्, शषसर्, हल्।[2]

इन्हीं 14 सूत्रों से पाणिनी ने संस्कृत व्याकरण की रचना की। इसलिये अवनद्ध वाद्यों के इतिहास का मूल महादेव शिव के डमरू में निहित है। दूसरे शब्दों में यह कहने में अतिशयोक्ति नहीं होगी कि भगवान शिव अवनद्ध वाद्यों के आविष्कारक हैं।

सिन्धु–घाटी–सभ्यता के दौरान ताल वाद्यों की लोकप्रियता को देखा गया था, उस समय गायन एवं नृत्य के साथ दुन्दुभी वाद्य–यंत्रों की संगत दी जाती थी। इसका स्पष्ट उल्लेख मिलता है।

ऋग्वैदिक काल में दूसरे वाद्य–यंत्रों और गायन के साथ अवनद्ध वाद्यों की संगत प्राप्त होती है। ऋग्वेद में अनेक वाद्यों का उल्लेख स्पष्ट रूप से मिलता है, जैसे– बाण, वेणु, दुन्दुभी, करकरी, गरगर, अघाटि आदि। दुन्दुभी की आवाज में दुश्मन को परास्त करने की शक्ति विद्यमान थी, ऐसा उल्लेख ऋग्वेद में है–

*असिस्टेन्ट प्रोफेसर, संगीत विभाग, छत्रपति शाहू जी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर

स दुन्दुभे सजुरिन्द्रेणदेवैरदूराद्दविद्वियो अप सेधशत्रुना।[3]

अघाटि वाद्य का उल्लेख ऋग्वेद 10/146/2 में है। अनेक अवनद्ध वाद्यों का उल्लेख ऋग्वेद में है जिन्हें विभिन्न उत्सवों या युद्ध के अवसर पर प्रयोग में लाया जाता था। कर्मकाण्ड अर्थात् विभिन्न धार्मिक अनुष्ठानों में भी इन वाद्य–यंत्रों का प्रयोग होता था। यजुर्वेद में भी अवनद्ध वाद्य, जैसे– दुन्दुभि, शंख, भूमि, बाण, भूमि दुन्दुभि, तब्ल आदि उपलब्ध थे। यजुर्वेद में इस बात का उल्लेख मिलता है कि भूमि दुन्दुभि कोई विशेष वाद्य नहीं था वरन् यह साधारण रूप से पृथ्वी में एक खुदा हुआ छेद था जो बैल के चमड़े से आच्छादित था। इस तरह यजुर्वेद में विभिन्न वाद्यों का अनेक स्थानों पर है। वीणा के साथ संगीत के तालवाद्यों का भी उल्लेख है।

अथर्ववेद में भी अवनद्ध वाद्यों का उल्लेख है। पाँचवे अध्याय में प्रथम, पंचम तथा षष्ठ श्लोकों में दुन्दुभि का उल्लेख है। आगहाट और करकरी जैसे दूसरे वाद्यों का भी उल्लेख मिलता है।

अथर्ववेद में दुन्दुभि से गूंजने वाली आवाज शत्रुओं के मन में भय उत्पन्न करती थी तथा बहादुर व्यक्तियों के मन को शक्ति प्रदान करती थी। अथर्ववेद में दुन्दुभि की आवाज सभी दिशाओं में व्याप्त होने का उल्लेख है–

ज्याघोषा दुन्दुभयोडमि क्रोशन्तु यादिशः।[4]

अथर्ववेद के समय दुन्दुभि लकड़ी से ही निर्मित होती थी तथा उसे चमड़ा से आच्छादित कर प्रयोग किया जाता था। दुन्दुभि के आवरण के लिये मृग की त्वचा का प्रयोग किया जाता था–

परामित्रान् दुंदुभिना हरिणस्याजिनैनच।[5]

सामवेद में दुन्दुभि के अतिरिक्त अन्य वाद्य–यंत्रों का भी वर्णन है।

बाल्मीकि रामायण में भगवान राम के जन्म और उनके विवाह के अवसर पर देवताओं ने स्वयं दुन्दुभि बजायी। रावण के दरबार में अवनद्ध वाद्यों का वर्णन के क्रम में बाल्मीकि जी ने मृदंग, पट, डिमडिम और अन्य वाद्य–यंत्रों का वर्णन किया है। रामायण में अनेक अवसरों पर मुरज, चलिका और दुन्दुभि का वर्णन मिलता है। स्वर, मूर्च्छना, ताल, लय, प्रमाण जाति और रस आदि का भी उल्लेख है।[6]

''जैन ग्रन्थों में 'रायपसनिया' में 64 वाद्यों का उल्लेख है, जैसे– पणव, पट, दुन्दुभि, मुरज, मृदंग, भेरी, करटक, तालिमा, भमा और मुकुन्द इन अवनद्ध वाद्यों के साथ 'गोधिका' का भी उल्लेख किया गया है।''[7]

तीसरी शताब्दी में भरत के 'नाट्यशास्त्र' की रचना हुई जिसमें अवनद्ध वाद्यों का स्पष्ट और विस्तृत उल्लेख है।

'नाट्यशास्त्र' के अनुसार उस समय मुख्य अवनद्ध वाद्य का नाम त्रिपुष्कर था, स्वाति मुनि ने इसका आविष्कार किया। इस संदर्भ में भरतमुनि ने कहा है–

एतेषांतु पुनर्भेदाः शतसंख्याः प्रकीर्तिताः।
किन्तु त्रिपुष्करस्यास्य लक्षणं प्रोच्यते मया।।[8]

भरतमुनि का 'नाट्यशास्त्र' अपने 28 वें अध्याय में वाद्यों के वर्गीकरण के सम्बन्ध में प्रकाश डालता है। वाद्यों का वर्गीकरण चार प्रकार का है–

1. तत, 2. अवनद्ध, 3. सुषिर, 4. घन

अवनद्ध और घन वाद्यों का नाट्य–सम्बन्धी प्रस्तुति के लिये अत्यधिक प्रयोग किया जाता था। नाट्यशास्त्र का निम्न श्लोक इस तथ्य को स्पष्ट करता है–

ततं तन्त्रीकतं ज्ञेयमवनद्ध तु पोष्टकरम्।
धनं तालस्तु विज्ञेयः सुषिरो वंश उच्यते।।
प्रयोगस्त्रिविधो घोषां विज्ञेयो नाटकाश्रयः।[9]

पुष्कर, मृदंग, पणव, दुर्दुर आदि को चर्माच्छादित वाद्यों के अन्तर्गत रखा गया है, पुष्कर वाद्य को अन्य चर्म वाद्यों की अपेक्षा अधिक सम्मान प्रदान किया गया है। इसका कारण यह है कि पुष्कर वाद्य में 16 अक्षर, चतुरमार्ग, षट्करण, विलेपन, त्रिलय, त्रिगति, त्रियोग, त्रिपाणि, त्रिप्रहर, पंचपाणि, त्रिमार्ग, 18 जातियाँ आदि तत्त्व विद्यमान हैं।

**प्राचीन एवं भरतकालीन अवनद्ध वाद्य**

पुष्कर

दुन्दुभि

डमरू

नक्कारा

**पं0 शारंगदेव कालीन अवनद्ध वाद्य**

हुडुक अथवा आवज

भेरी

निसान

**मध्यकालीन अवनद्ध वाद्य**

खंजरी

चंग

डफ

मृदंग, मुरज तथा मर्दल

**आधुनिक प्रचलित अवनद्ध वाद्य**

तबला

पखावज

ढोलक

घटम

खोल

ढोल

**निष्कर्ष** : हमारे भारतीय शास्त्रीय संगीत की परम्परा में प्रयोग होने वाले वे वाद्य जो भीतर से खोखले और चर्माच्छादित होते हैं, जिनका आवरण मिट्टी, लकड़ी या अन्य धातु का होता है जो एकमुखी, द्विमुखी और उर्द्धवक स्वरूप में होते हैं, जिन्हें हथेली/उंगलियों अथवा लकड़ी/धातु से निर्मित स्टिक/छड़ी आदि से आघातित कर ध्वनि वर्णों की ऊर्जा को संचालित/निकासित किया जाता है, वे सभी अवनद्ध वाद्य की श्रेणी में आते हैं।

महर्षि स्वाति मुनि जो उच्चकोटि के वैदिक ज्ञान और संगीत के विद्वान थे उन्हें अवनद्ध 'वाद्य का पितामह' कहा जाता है। स्वाति मुनि ने पुष्कर वाद्य का आविष्कार किया जिसके तीन भाग थे–

1. आंकिक, 2. उर्द्धवक, 3. आलिंग्य

पुष्कर वाद्य को आधार मानकर ही समय–समय पर विद्वानों ने आवश्यकतानुसार नवीन अवनद्ध वाद्यों का आविष्कार किया। लय ताल के व्यवहार हेतु प्राचीन पुष्कर वाद्य का विकास हुआ और इसी वाद्य को आधार मानकर नवीन अवनद्ध वाद्यों का सृजन किया गया।

**संदर्भ सूची** :


1. भवसार, गौरांग, तबला नो इतिहास वन परम्परा, पृ.–89
2. पृ.–89
3. ऋग्वेद, मण्डल 01/28/मंत्र–05
4. अथर्ववेद/काण्ड–4/28/मंत्र–07
5. भवसार, गौरांग, तबला नो इतिहास वन परम्परा, पृ.–9
6. परांजपे, श्रीशरच्चरन्द्र श्रीधर, भारतीय संगीत का इतिहास, पृ.–137, 142, 143
7. वही, पृ.– 182, 189
8. शास्त्री, बाबूलाल शुक्ला (अनुवादक), पं0 भरतमुनि कृत नाट्य शास्त्र, 33 अध्याय, श्लोक सं. 25
9. वही, श्लोक सं. 02–03, पृ.–04

# Essence of Bhakti in Karnatik Music

**Voleti Chandrika Sailaja***

**Abstract**

*Music is one among 64 Art forms (chatursasthikalas).*

*The ultimate motto of Fine Arts are 'Manolayam' and 'Manoharam'. Music holds a special place in Indian culture. A Kriti or keertana can be defined as musical melody comprising of good lyrical values which emerged spontaneously from within the hearts in a blissful state. This Article's main idea is to narrate briefly the thought of Bhakti instigated in the compositions in Karnatic Music by various Composers.*

**Main Body:** *The ultimate goal of The Karnatic Music in the Indian Classical Music system is to reach the undefinable state of blissful experience. This aspect is being explored through the definitions of Bhakti involved in the works of various Karnatic Music composers.*

*This article will also narrate the Madhura Bhakti and Nava vidha Bhakti aspects observed in karnatic music compositions. The importance of 'Keertana Bhakti' from Nava vidha Bhakti will also be described in this article.*

*The key points about sacred and secular Music will be described. Bhajana-propagation of Bhakti. Utilization of Instrumental and Vocal music in the temple rituals in service of Lord.*

**Key Words:** *Bhakti, Sankeertana, Bhajana, Lyrical Values*

**Methodology:** *Study Area: Bhakthi aspect in the karnatic music compositions.*

*Discussion: about Essence of Bhakthi in Karnatic music.*

*Results and conclusion: The Devout Composers have used Bhava Raga, Talas in Music as a striking expression mainly to promote Bhakthi.*

*Purpose of my research paper is to study about the relation between two variables:*

*1. Sangeetham 2. Bhakthi.*

*Concept of my Article is related to Qualitative and Ethnographic studies.*

*It belongs to Historical and Descriptive research.*

*Data in this article is following a qualitative approach, because the aim of this study is about spiritual reality and culture.*

*This can be considered as secondary Data because the evidences of this study, are available in some published form.*

*Data collection method used in this study is by survey of Related literature*

**Objectives :**

- Bhakti, Madhura Bhakti, Nava vidha Bhakti aspects in various compositions of karnatic music Composers.
- Sankeertana Seva
- Bhajana and Bhakti Propagation
- Sacred and Secular Music
- Importance of Lyrical values .
- Blissful state – ultimate moto of karnatic Music

**Introduction :**

The Human longing for God being

*Music Teacher & Research Scholar, Sri Padmavati Mahila University, Tirupati, A.P.

Universal, it is natural that song of a religious nature should be found in the Music of every country. Music is rooted from Gaandharva Veda. Lord Brahma has created Gandharva Veda combining Literature from Rig Veda, Music from Sama Veda, and Abhinaya from Atharvana Veda. This Gandharva Veda was practiced by Apsarasas, Gandharvaas, Sanaka, Sanandana yogis to perform in front of Lord Parama Siva to make Him happy. In this regard Acharyas had emphasised that Music should be used only to sing the glories of God. In India religion and music are intimately connected with each other. God is said to reside in the hearts of devotees who Sing.

'Naham Vasami Vaikunthe Na yogi hrudaye, ravau,
Madbhakata, yetragaayanti , tatratishtaami Naarada.'
(Naradaparivraajika Upanishad}

The above thinking was responsible for the large output of devotional compositions in different languages of India.

In this paper I shall mainly deal with a brief study on the Essence of Bhakti in the Karnatic Music compositions.

Once upon a time, Indian Music was mainly based on Rakti. But Composers who were in Upasanamarga (devout practices) and their singing with ecstasy in Glory of God, has given rise to Bhakti bhava. The main idea of this article is to substantiate that Karnatic Music evolved as Music for Bhakti, Music involving Bhakti and reaching the state -MUSIC IS BHAKTI

Features of Bhakti observed in Karnatic Music Compositions of Vageyakaras (Composers).

We can observe the Ideology of Madhura Bhakti narrated in Tirruppavai of Goda devi, Geeta Govinda work of Sri Jayadeva (12th century), Kshetrayyapadaas, Sringarasankeertans of Annamacharya (15th century), Krishna leelatarangini of Narayana Teertha (16th Century).

Bhakti and Nava vidha Bhakti aspects can be observed mainly in Sri Tyagaraja compositions. Similarly, in Ramadasa compositions, we can observe the Bhajana Sampradaya aspects.

Daasarapadagalu of Purandaradaasa (15th century) , Utshava sampradaya keertanas of Sadguru Tyagaraja swamy (18th century), Bhakti sankeertanas of Annamayya are performed during Temple rituals, festivals, Ditty processions as part of SANKEERTANA SEVA.

In the compositions of Sri Muttuswami Deekshitar (18thcentury), the Bhakti aspect is dealt more deeply involving Sri Vidypasanatatwarahasyaas.

In the compositions of Sri Syama Sastry (18th century) whose compositions are reflective of Ananya Bhakti.

Ananya Bhakti – 'Anyaasrayaanam Tyaagoonanyata' - (Narada Bhakti Sutra)

1. Bhakti , Madhura Bhakti, Nava vidha Bhakti aspects in compositions of karnatic music Composers.

**A. Bhakti :**

Bhakti is defined as 'Parama premarupa' Amruta swarupaacha'

-Narada Bhakti Sutra 1 & 2 According to Narada Bhakti Sutras, Devotion is characterized by a calm heart, affection, love, service, friendship and always enjoying oneself with one's self-satisfaction. It is a mixture of compassion and peace. It is a feeling which cannot be described but only experienced. It is a complete capsule of treating everything worshiped as its own soul

Sadguru Tyagaraja Swami derived Bhakti as 'Niravadhika Sukhaanubhavamu', kamala bhava sukhamu . Also praised Lord Rama as 'Naadabrahmanandarupa' . He also composed many compositions singing Highness of Bhakti. i.e Anuraagamuleni Manasunasugyanamuraadu

– saraswatiragam-Rupakatalam. He said that love for God is true devotion.

In Sudhabangalaraaga 'Rama bhakti Saamrajyam ye maanavulakuabbuno aa manavulubramhadulu " Sri Tyagaraja says that worldly emperorship is not what Humans should look for but should realize that Rama Bhakti should be ones territory.

In 'Swararaaga Sudha yuta bhakti swargaapavargamura ' – Thyagaraja says.

It has been revealed that the Sankeertana of Parameshwara combined with Uttam Bhakti Yoga with the grace of Sangeet Shastra is the main means of Moksha.

Rishis worshiped it in the form of Omkara and proved that the liberators of life are those who know that raga is the main element of music but its foundation is Naadam. – this context is found in the composition 'Raaga Sudha Rasa Paanamujesi' Andolikaraagam, Adi talam.

In the Kriti 'Geetardhamu Sangeetaanandamu' in Surati Raga Sri Tyagaraja says: Hanuman knows well how to experience the bliss of Brahmanandam by making the mind feel the bliss of music. He said that the entire creation is nothing but the power of God.

In Sri Tyagaraja Kritis, the perfect blend of Musical, Lyrical and Philosophical aspects is the embodiment of Bhakti Yoga which leads to the ultimate goal of Gnayana Yogam culminating in realizing the Universal Consciousness.

**B. Madhurabhakthi :**

The relationship between Nayaka-Nayika is the Jeevatma and Paramatma which is the concept of Madhura Bhakthi. We find the srungara rasa combined with devotion. In the sringarasankeerthanam the human or physical body becomes the jeevathma. This is considered as the Nayika. The God is the Paramatma-Nayaka, and the mind of the humanbeing is picturized as Sakhi or Friend. Here, 'Sri Krishna'is the most favourite form of God, selected as Nayaka by many composers.The concept of Madhura Bhakthi can be seen in many compositions in almost all the composers of India. Among these prominent Madhura Bhakthi composers Andal takes the foremost place. Andal also known as Goda Devi was an ardent devotee of Sri Ranganatha. She composed 30 songs which are in Tamil language called 'Tiruppavai'. These songs are sung by Srivaishnavas during Dhanurmasam. All the Tiruppavai songs are based on the concept of Madhura Bhgakthi.

Jayadeva's Geeta Govindam which is written with the concept of Radha Madhava Prmathathvam, Narayana Theerthas Krishna leelatarangini, Sringarasan keerthanas of Annamaacharya, Kshethrayyapadalu, and composers of Hindusthani Music like Meerabai etc., are prominent for Madhura bhakthi compositions.

**C. Navavidha bhakti in Tyagaraja's compositions:**

According to Bhagavatam sravanam, keerthanam, vishnosmaranam, padasevanam, archanam, vandanam, dasyam, sakhyam, atmanivedanam are the Navavidhabhakthis.

a. Sravanam: In the krithi " Sudha Madhurya Bhashana, he said about Shravana Bhakti, which is in the raga Sindhuramakriya.

   In this composition the manner in which his mind was excited on hearing the Ramakathaamrita is described.

b. Keerthanam: In the krithi "Inthasowkhyamanicheppajala" in the raga kapi, It is said that Brahmananda will be attained by those who always glorify Sri Rama's name with Swaralayads.

c. Smaranam: In Janaranjani raga, krithi "smaranesukhamuramanamasmaranesukhamu" he described about keerthana bhakthi.

d. Paadasevanam: Best example for padasevana bhakthi is sriramapaadamaneekripa chalone in the raga Amruthavahini, set to aditala.

e. Archanam: Upacharams performed during puja is reported in the composition "Upacharam Chekonavaiyaya in Bhairavi Ragam".

f. Vandanamu: Vandanamu Raghunandana in the raga sahana is the best example for Vandana bhakthi.

g. Dasyabhakthi: Example : Tavadaasoham in the raga punnagavarali_aditalam

h. Sakhyam: Sakhyam in the addresses of Thyagaraja Sakhudou and Thyagaraja Mitrasambhodhanas. example : orama o rama-In Arabhi raga Divyanama kirtana, Tyagaraja was glorified as "TyagarajaMitra".

i. Athmanivedanam: Surrendering oneself to God is athmanivedanamu.which is called as sampoornasharanagathi example : kalaharanamelara hare- suddhasaveriragam – roopaka taalam in the charanam, he says " thanuvudhanamuneeveyanti"and surrendered himself to Lord Sri Rama.

**2. Sankeerthana Seva:**

In the Nava vidha bhakthi margas, keetrtanam is supposed to be one of the easiest way to reach God.

Sat+keerthana= sankeerthana. Sat means the eternal, all-pervasive form of Parabrahma. Sankirtana is to sing the glorify of Nirguna Tattva as Sagunam, the embodiment of such *sat-chit-ananda*. It is called sankirtana when beautiful melodious swaracharas, rhythmical patrons are sung with devotional lyrics which are truly from the heart.

Sankeerthanas Swaroopam: Idea of Devotion as Soul the literary nuances as the embodiment, the arrangement of Raaga, Taala etc. as embodiment of dress and ornaments – all these form the essence of Bhagavat-Sankeertana .

Sankeerthanayagnam: Bhagavad Sankirtan is a Yajna, for which the hotha is the singer, Antaryami in the hearts of the listeners is the Yajna Purusha, the seven tones are His ranges and vocal movements are Samidas.

Sakeerthana Seva: God is a form of Nada Brahma. Sankirtana is the best seva in the part of worship. Sankirtan is vocally powerful, sarvajanasammohanakaari and pleasing to the Lord. One of the best easiest ways to reach the god.

There are two kinds of keerthanam: 1. Bhakthi Sankeerthanam which is praised,both directand indirect of Gods and Goddesses .2. Srungaarasan keerthanam which is having the 'Bahisringaaramantar bhakthi'. Annamayya's Sringarasan keerthanas are full of Madhura Bhakthi. Example : 'PalukuTenelatalli', 'Emakochigurutadharamuna' etc.,

**3. Bhajana-bhakthi Propagation:**

The Bhakthi movement of 14$^{th}$, 15$^{th}$ and 16$^{th}$ centuries led to the Bhajana Sampradayam as a form of collective worship. Bhajana became an established and populer form of congregational worship. Todays mangalam and songs in praise of various deities and Istadevata,comprised the first part and second part was occupied with Divyanamasankeerthasnam and Dolotsavam. Bhajana Mandirams have played a great part in the preservation and development of sacred music. Bhajanas are of two kinds.1) stationary and 2) Mobile. In the stationary bhajanas, there was no such padhathi and participants were free to sing bhakti compositions they liked. The mobile bhajana parties accompany temple processions and also during the month of Margazi(dec to jan). In the bhajanas congregation participated in singing of namavali and pundarikam.

4. **Sacred And Secular Music :**

A. Sacred Music:

Bhakti Sankeerrtanam, Bhajanas, Harikatha kaalakshepam are the important branches of Sacred Music,

The music of Bhakti sankeertanam and Bhajana sampradaya keertanas are simple which tells about Bhagavat Bhakti. And having neither terse sancharas nor intricate sangatees. The range of pieces rarely exceed 1½ octaves.

The Slokas, Namavalli, Stotraas, Mangala Haarati songs are also part of the Sacred Music Naamavali is the simplest of sacred form in Sanskrit language and is intended for congregational singing within the space of 1,2 or 4 avartaas not only in raga swarupa carefully portrayed but also a complete devotion idea is expressed.

There are many composers who composed sacred music compositions in Sanskrit. Sadasiva Brahmendra (17$^{th}$centure), Pydala Gurumurthy Sastry (17$^{th}$ century), Tyagaraja (18$^{th}$ century), Muttuswami Deekshitar, (18$^{th}$ century) Syama Sastry (1762-1827), HH Swati Tirunal (1813-46) etc..

The Tevaarams, Tiruvaachakam of Manikavachagar, the Hymens of Vaishnava Acharyas, Tiruppugazh of Aruna Girinaadhar constitute the cream pf Tamil Sacred Music. These songs are even now sung in the temples of Tamil Nadu.

The Daasa Sampradaya Kirtana in Kannada are referred to as Devarnamas, and Dasarapadagalu which are the composition of Sri Purandara Daasa structured with spiritual flavour.

Devotional songs in Malayalam exist in planty. Besides the soopanam songs there are various songs pertaining to Kali Worship.

From very early times down to the present day, there has been continued output of songs belonging to the realm of Sacred Music.

B. Secular Music :

Secular Music in praise of Kings, Chieftains and Patrons was the dominant influence in the centuries before the 6th, while religious music occupied a fairly important but rather secondary place. During this period of secular dominance in the performing Arts, in the political realm in India was quite strong and successive efforts were made to integrate India politically through imperial conquest.

Musicians are distinguished several types of songs appropriate to sacrificial purposes on the one hand and weddings and social occasions are described. It is clear on the whole that this Music existed independently of Samagaana was Secular used for the pleasure of Kings, Chieftains. During the later Puranic and Kavya period, there are more references to the secular nature of Music. Most of the Musical occasions referred to in Kalidasas Meghasandesam. Is description of Himavans capital in Kumara sambhavam and references in the plays the language indicate that Music was more associated with secular romantism. Secular Music mainly contains music being associated with the romantism of ideal rich lovers. In the concept of Madhura Bhakti Sri Krishnas PremaTatvam was both secular and sacred in North India Kathak dance and Hindustani Music incorporating both Secular and Sacred elements. In the Hindustani Music, Ghajals and Thumiris are based on the secular romantism.

We can finally say that the main idea is to show the religious roots of Indian music is to establish socio-historic contest and to stress that secular and sacred aspects of Indian performing Arts.

**5. Impartence of Lyrical Values:**

Goddess Saraswathi is Presiding Deity for both Sangeeta and Sahitya. There is a saying of elders Aapatamadhuramu Sangeetam,

Alochanaamruthamu Sahityamu. Both are treated as Sarada Sthanyas.

Music is an Art Form where the Naadam is of prime importance. Vocal music involves blend of Swara, Saahitya and Naadam. If we take the analogy of Triveni Sangamam Swara and Sahitya are line Ganga and Yamuna whereas Naadam blends with these in he background like the legendry Saraswati. But it is Naadam that helps one express Bhava in music. If we listen to vidwans music at just mental level this swara sahitya combination is sufficient. But our music doesn't stop with mental enjoyment, it aims at grater objective which is the Divine. (these lines are from the book 'Nedunuri Antarangam by P H Tyagaraju and S Narayanan in the chapter 4.9 Naadayogi Nedunuri expressed by Sri garimella Balakrishna Prasad.)

**Conclusion:**

I am concluding with the following:-

**Blissful State – Ultimate Moto Of Karnatic Music :**

*Trivarga PhaladaSarve Daana Yagnya Japaadayaha Eekam Sangeeta Vignyanam Chaturvarga Phalapradam*

More than the results of Daana, Yagnya, Japa, the Sangeeta Vignyanam will bestow the fruitful results of Chaturvidhaphalas i.e. Dharma, Artha, Kaama and Moksha. Knowledge of Swara, Raaga Laya aspects the blended with the lyrical aspects which describes the Tatvardham is called Sangeet Gnanam. Therefore Sri Tyagaraja in one of his compositions sings 'Sangeeta Gnyanamu Bhakti vina Sanmargamugaladu" describing that Sangeetam with Bhakti only leads Right path.

Sarangadeva, in his book 'Sangeeta Ratnakara' says that geetam alone is the important practice which leads to Chaturvidha Purushardhas.

'*Tasya Geetasyamaahatyamke Prasantum Eesate Dharmaarthakaamamookshanamidamevayikasadhanam.*

**References :**


- Satyanarayana, Dr. Nookala, (2002) 'Tyagaraja Saaraswata Sarvaswam' Self Publication, Hyderabad
- Chary, Mr. C Ramanuja & Raghavan, Dr.V. (1994) 'The Spiritual Heritage of Tyagaraja' Sri Ramakrishna Mutt, Mylapore Madras
- Murthy, Prof. P Samba, 'South Indian Music' Indian Music Publishing House, Volume IV
- Rao, Sri Manchala Jagannadha & Purushottam, Sri Vadrevu, (1980) 'Annamacharyulavari Adhyatma Sringara Sankeertanalu' (Telugu), Tirumala Tirupati Devasthanam, Tirupati
- Veerabhadrasastry, Sri Kalluru, (1948) ' Tyagaraja Keertanalusavyakhyanamu' Andhra Gaana Kala Parishat, Rajahmundry.
- Chinmayananda, Swami, (1986) 'commentary on Narada Bhakti Sutras' Chinmaya Publications Telugu Division, Produtturu, AP


**References from Journals & Magazines :**


- Prabha, Dr. Rama, Naada Sudharnava Sri Annavarapu Rama swamy, Kinnera , Vol:3, Oct-Dec 2011, pp10-17
- Lakshmi, Smt.Vemuri, Sri Narayana virachita Sri Krishna Tarangini', Gaanakala, Vol:51, Oct 2012, pp 2-7
- Lakshmi, Smt.Vemuri, "Manasu Sariram" Ganakala, vol:56/12, May 2019, pp 9-11
- Suribabu, Sri Malladi, 'Nirmohatvame Nischalatatvaaniki Mulam', Ganakala, Vol 56/ 4, Sept 2019, pp 2-4
- Smt. M A Padmapriya , "Madhura Bhakti – Andal' , Ganakala, vol 56/8, Jan 2019, pp 5-6

# विष्णु कुमार कपूर द्वारा रचित बंदिशें

**डा० ऋतुपर्णा बर्मन गुप्ता***

**सारांश**

*इस पत्र में विष्णु कुमार कपूर की रचनाओं का संकलन एवं उनकी बंदिशों का साहित्यिक व सांगीतिक विवेचन किया है। आपने रागों में सितार–वादन में प्रयुक्त गत शैली व झाला और अन्य रचनाएँ की। लगभग सभी गायन–शैलियों के लिए भी रचनाएँ की हैं जो 'संगीतोद्यान' भाग–1 से 4 तक में प्रकाशित है। पाठ्यक्रम के अतिरिक्त आपने बच्चों के लिए उपयुक्त साहित्य व सांस्कृतिक समारोह में प्रस्तुत किये जाने वाले विषयपरक गीत, जैसे– सरस्वती वंदना, स्वागत गीत, झण्डा गीत, महात्मा गांधी की जयन्ती हेतु गीत, गणतन्त्र दिवस व स्वतंत्रता दिवस विषयक गीत व छोटे बच्चों के लिए प्रेरणादायक गीतों की रचना की व अन्य प्रचलित गीतों जैसे झण्डा गान, राष्ट्रगान, राष्ट्रगीत तथा प्रसिद्ध भजनों की स्वरलिपियाँ आदि भी दी है जिससे सीखने वालों को गीतों के गायन के साथ–साथ हारमोनियम–वादन करने में भी सरलता हो। इसी प्रकार के गीत आपकी पुस्तक 'बालमयंक' भाग–1 व 2 में प्रकाशित है परन्तु इसके अतिरिक्त आपने स्नातकोत्तर के पाठ्यक्रम के रागों व अन्य प्रचलित व अप्रचलित रागों में भी बंदिशों की रचनाएँ की जो अभी अप्रकाशित है। प्रस्तुत शोध–पत्र आपके द्वारा रचित गायन–शैलियों की बंदिशों से संबंधित संक्षिप्त सिंहावलोकन मात्र है।*

**बीज शब्द** : *बंदिश, ध्रुपद, धमार, ख़्याल, चतुरंग, लक्षणगीत*

**प्रविधि** : *इस शोध–पत्र के लिए द्वितीयक स्रोतों का उपयोग किया गया है।*

भारतीय संगीत की पुरातन शुभ–परम्परा को पुर्नजीवित करने के लिए संगीत की पुरानी तथा लुप्तप्राय शैलियों पर ऐतिहासिक, वैज्ञानिक, व्यवहारिक आदि सभी दृष्टियों से पुनः विचार करने की आवश्यकता है। कला मात्र मनोरंजन का साधन नहीं है अपितु 'कला' मनुष्य की एक मधुर और सुकुमार कल्पना है, जिसे व्यक्ति रंग, धातु, मिट्टी, स्वर शब्द आदि के माध्यम से व्यक्त करता है। कला की मधुरता श्रोताओं, दर्शकों आदि के मनोरंजन के साथ–साथ उनमें निर्विकार भावनाओं का भी विकास करने में जो कलाकृति जितनी अधिक सफल होगी, वह उतनी ही अधिक श्रेष्ठ होगी। इस दृष्टि से ख्याल, ठुमरी, टप्पा आदि ऐसी ही कलाकृतियाँ हैं, जिनकी रचनाओं का संकलन एवं संवर्धन संगीतज्ञों ने किया।

19 जुलाई 1919 को मथुरा में विष्णु कुमार का जन्म हुआ और फैजावाद (अयोध्या) में 19 अगस्त 2009 को इनका देहान्त हो गया। मथुरा निवासी विष्णु कुमार कपूर ने अल्पायु में नेत्र–ज्योति खोने के पश्चात् अपना जीवन संगीत को समर्पित कर दिया। विद्यालयीन शिक्षा अवरूद्ध होने के पश्चात् आपने पंडित शंकर रघुनाथ कुलकर्णी से संगीत की शिक्षा प्राप्त की। आपने बेला वाद्य (Violin) में 'संगीत प्रवीण' की उपाधि प्राप्त की। गायन की शिक्षा आपको ग्वालियर घराने के पं० नारायण राव व्यास से प्राप्त हुई। विष्णु कुमार कपूर की रचनाओं का संकलन एवं उनकी बंदिशों का साहित्यिक व सांगीतिक विवेचन किया है। कपूर जी ने हाईस्कूल से लेकर स्नातक के पाठ्यक्रम के रागों के अन्तर्गत अपनी रचनाएँ लगभग सभी गायन शैलियों में की हैं जो 'संगीतोद्यान' भाग–1 से 4 तक में प्रकाशित है। पाठ्यक्रम के अतिरिक्त आपने बच्चों के लिए उपयुक्त साहित्य व सांस्कृतिक समारोह में प्रस्तुत किये जाने वाले विषयपरक गीत जैसे सरस्वती वंदना, स्वागत गीत, झण्डा गीत, महात्मा गांधी की जयन्ती हेतु गीत, गणतन्त्रा दिवस व स्वतंत्रता दिवस विषयक गीत व छोटे बच्चों के लिए प्रेरणादायक गीतों की रचना की।

**ध्रुपद**– प्रबन्ध–गान से पूर्व ध्रुवा–गीत की चर्चा हमें शास्त्रों में प्राप्त होती है। वाक्य, वर्ण, अलंकार, यति, पाणि और लय जहाँ ध्रुव रूप में परस्पर संबद्ध रहते थे उसे 'ध्रुवा' कहा जाता था। कुछ गुणीजन इस शैली का उद्भव 'रूपक' प्रबन्ध जिसमें 'ध्रुवा' नामक प्रबन्ध से ध्रुपद की उत्पत्ति मानते हैं। ध्रुपद का जनक ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर को माना जाता है जो स्वयं एक संगीतज्ञ

*645 ए/1211 सरस्वतीपुरम, जानकीपुरम, लखनऊ, उत्तर प्रदेश

थे। प्राचीन ध्रुपद में ईश्वर व राजा बादशाहों की प्रशस्ति व गुण–वर्णन, पौराणिक आख्यान, देवदासियों की लीला, प्रकृति–वर्णन, विवाह आदि सामाजिक समारोह तथा सांगीतिक विषयों का उल्लेख आदि उपलब्ध हैं। ध्रुपद में वृज भाषा के सहित्यिक रूप को प्रधानता दी गयी। ये विभिन्न राग–रागिनियों में चौताल, तीव्रा, धमार, सूल आदि लघु तथा ब्रह्म, रूद्र, सवारी, मत, आदि लम्बे तालों में बद्ध कर गाये जाते हैं। साथ में, मृदंग या पखावज की संगत होती है, जिससे ध्रुपद में अत्यंत गंभीरता और भव्यता आती है। इसी कारण मध्ययुगीन दरबारों में ध्रुपद गायक को सर्वोच्च स्थान दिया जाता था।

पद–रचना की भाँति ध्रुपद की गायन–शैली भी विशिष्ट है जिसे चार भागों में बाँटा गया है, यथा– रागालप्ति, गीत, लय वैचित्र्य और भंजनी रूपकालप्ति। लयरहित मींड व गमकयुक्त आलापों से प्रारम्भ कर क्रमशः विलम्बित व द्रुत गति की ओर बढ़ते हुए नोम्–तोम् जैसे निरर्थक वर्णों के आलाप को ही रागालप्ति कहते हैं, यह प्रबन्ध के तेन अंग से गृहीत है। द्रुत आलापों के पश्चात् ध्रुपद का पद विलम्बित मध्यलय में गाया जाता है, यह बंदिश अंग है। गीत–गायन के पश्चात् दुगुन, तिगुन, चौगुन, छगुन, आड़, कुआड़, बिआड़ आदि क्लिष्ट व कठिन लयों का प्रयोग लयकारी कहलाता है। गीतों के शब्दों को विविध प्रकार से सुसज्जित करना ही रूपकालप्ति है जिसे आज की भाषा में उपज और बोल–बाँट कहते हैं। स्वर, ताल और पद का उत्कृष्ट रूप ध्रुपद–शैली है एवं पखावज–जैसे गम्भीर वाद्य का प्रयोग इसकी भव्यता में वृद्धि करता है।[1] कपूर जी द्वारा रचित ध्रुपद का एक पद :

**राग देश (ध्रुपद)**

स्थाई– सोहत श्री कृष्ण चन्द्र, राधावर हरिगोविन्द,
परम विमल आनंदकंद, वृज पति माधव मुकुन्द।।
अन्तरा– श्याम सुन्दर श्यामल तन, ब्रह्म इन्द्र गरव हरन,
दलन करन दानव दल, करत दरश कटत फन्द।।

**राग दरबारी कान्हड़ा (ध्रुपद)**

स्थाई– वंदन करु गुरु चरनन, जेहि किरपा हरि पावत,
पाप कटत जनम जनम, सुगम होत पथ जीवन
अन्तरा– ज्ञान ज्योति हृदय भरत, उर के सब तिमिर हरत
शुचि पावन सुरसरि सम, धन्य धन्य गुरू वचनन

**धमार**– धमार का मूल स्वरूप धम्माली से लिया गया है जिसका सर्वप्रथम 'संगीत शीरोमणि' में उल्लेख है। 'धम्माल' अथवा 'धमाल' शब्द से तात्पर्य है उत्साहपूर्वक नाचना या गाना। धमार जैसे शास्त्रीय गायन के लिए लोक जीवन में धमाल और धमारी जैसे शब्द भी प्रचलित रहे हैं। इसकी व्युत्पत्ति संस्कृत के 'धम्' धातु से हुई है। ''**धम इव ऋच्छति**'' जिसका अर्थ है गायन का वह प्रकार जो प्रेरित करता अथवा फड़कता हुआ सा चले।'' धमा–चौकड़ी, धूम–धाम और धमा–धम जैसे शब्दों में भी 'धम' धातु का प्रभाव है। धमार का जन्म बृजभूमि के लोक संगीत में हुआ इसका प्रचलन ब्रजक्षेत्र के लोक गीतों के रूप में बहुत पुराने समय से चला आता है। इस लोकगीत का वर्ण्य–विषय राधा–कृष्ण के होली खेलने का था, जिसमें ब्रज भाषा थी और श्रृंगार रस था। लोक संगीत में धमार एक सामूहिक गान विधा थी, होली खेलने वाली टोलियाँ धमार गाती हुई होली खेलती हैं। इनका प्रधान वाद्य ढोल होता है। चर्चरी प्रबंध जो प्रायः चर्चरी ताल में ही गाये जाते थे। होली गायन का प्रिय ताल (चरचरी) दीपचंदी बन गया, होरी की बंदिशें पूर्ववत् रहीं, वह विभिन्न रागों में निबद्ध कर दी गईं । गायन–शैली वही लोक संगीत के आधार पर पहले विलम्बित अंत में द्रुत गति में हो जाती है। नायक बैजू ने धमारों की रचना छोटी की और इसकी गायन–शैली का आधार ध्रुपद जैसा ही रखा गया। बाद में मंदिरों में कीर्तनकार वैष्णव संतों द्वारा रचित और धमार ताल में निबद्ध कीर्तनों को भी धमार कहा जाने लगा, इनकी संगति पखावज पर होती है। पहले इनके साथ झांझ भी बजते थे, जो लोक जीवन और लोक संगीत से इनके जुड़ाव को प्रकट करते थे लेकिन बाद में ध्रुवपद की लोकप्रियता बढ़ने के साथ ही इसे भी कुछ नियमों में बांध कर शास्त्रीय परम्परा में ढाल दिया गया। हवेली संगीत में ऐसे भी धमार प्रचलित हैं जिसमें किसी भी उत्साह अथवा आनंद की पराकाष्ठा का सूचक है। अतः आनंदोत्सव में धमार ताल में निबद्ध जिन रचनाओं का गायन होता है, वे भी धमार ही है। इसलिए हवेली संगीत के संगीतकारों के अनुसार होलीविषयक धमारों को होरी या पक्की होरी कहना ही उचित होगा, जो प्राचीन चर्चरी का एक विशिष्ट रूप है।

इसमें शब्द, लय और ताल की खूब नोंक–झोंक होती है। धमार को ध्रुपद से अलग और कुछ नया करने के उद्देश्य से ही यह आयाम धमार में जोड़ा गया है। सह–संगति और लड़ंत की यह शैली प्रायः हर विधा में आज लोकप्रिय है। धमार में उपज का अत्यधिक काम होता है। उपज का

अर्थ है नवीन उद्भावना, जो स्वर और शब्द के संयोग से की जाती है, जैसे– बोलतान आदि। लड़ंत की संगति में एक प्रकार की होड़ दिखती है। गायक प्रायः सम–विषम का प्रयोग कर पखावज वादक को चकमा देने की कोशिश करते हैं, जबकि पखावजी असली सम को ध्यान में रखते हुए उनके हर भ्रमात्मक सम पर धा मारने का प्रयास करते हैं। इसे गुप्त प्रकार भी कहा जा सकता है। यही लाग–डाट और नोंक–झोंक धमार की पहचान है।

### राग जौनपुरी (धमार)

स्थाई– गान मनहर सरस सुन्दर, राग वरणत फाग ब्रज कर, गात गुनि जन मृदु धमारन।

अन्तर– लय विभाजन दुगुन, चौगुन, तिगुन, छैगुन संग मृदंगन, यह पुरातन कला दरशन।

**ख़्याल**– आज ख़्याल उत्तर भारतीय संगीत–शैली का सर्वाधिक लोकप्रिय विधा बन गया है। वाद्य–यन्त्रों में भी ख़्याल की लोकप्रिय शैली ही प्रचलित हुई। यूँ तो ख़्याल के आविष्कारक के रूप में 15 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में जौनपुर के सुल्तान हुसैन शाह शर्की को माना जाता है, परन्तु कैप्टन विलर्ड जैसे कुछ विदेशी लेखकों ने इसका श्रेय 13वीं शताब्दी के अमीर खुसरो को दिया है। उल्लेखनीय है कि किसी भी कला को पुष्पित व पल्लवित करने में सदियों तक संघर्ष करना पड़ता है। 18 वीं शताब्दी के सदारंग–अदारंग को ख़्याल का प्रर्वतक भी माना जाता है। पंडित भातखण्डे ने लिखा है ''यह मानना युक्तिसंगत नहीं है कि अमुक व्यक्ति ने ख़्याल का आविष्कार किया। ख़्याल की तरह का गाना समाज में प्रचलित रहा होगा, जिसे जौनपुर के सुल्तान हुसैन शर्की ने पसंद किया और प्रोत्साहित किया होगा, अतः वह लोकप्रिय हुआ होगा।''[2]

'ख़्याल' शब्द फारसी का है जो संस्कृत 'ध्यान' का पर्याय है। मतंग के समय से चली आ रही राग–ध्यान–परम्परा में शुरू से रागों के ध्यान गाये जाते थे जो श्रोता और गायक को एक स्वर पर लाने की दृष्टि से प्रयुक्त होते थे। ठाकुर जयदेव सिंह के अनुसार 'ख़्याल–गायन पर सूफी प्रभाव की कल्पना की जाती है। ख़्याल का मूल अर्थ कल्पना की प्रधानता से है।' आज भी राजस्थान तथा ब्रज के कुछ प्रदेशों में ख़्याल नामक लोक–गीतों की परम्परा उपलब्ध है। 'चौरासी वैष्णवन' की वार्ता साहित्य में एक गायिका द्वारा ख़्याल और टप्पा नामक गायन का उल्लेख है। 18वीं सदी के सुल्तान मुहम्मद शाह रंगीले के दरबारी गायक नियामत खां ने इस शैली को शास्त्रीय संगीत में प्रतिष्ठित किया। उनकी ख़्याल की अनेक रचनाएँ पीढ़ी–दर–पीढ़ी प्रचलित होती गयी हैं। सदारंग स्वयं तानसेन के वंशज थे और इनकी अपनी तथा उनके वंशजों की गायकी ध्रुपद–गायकी थी परन्तु युग की प्रवृत्तियों को ध्यान में रखकर इन्होंने ख़्याल गीतों का प्रर्वतन किया, जिनमें स्वर–सौन्दर्य के आविष्कार के लिए पर्याप्त स्थान था।

### ख़्याल की विशेषताएँ

1. ख़्याल की भाषा संस्कृत न होकर उत्तर भारतीय होती है। अधिकांश ख़्यालों के पद ब्रज–भाषा में और उसके उपरान्त राजस्थानी, पंजाबी और कुछ हिन्दी में होते हैं। राजस्तुति, नायिका–वर्णन, श्रृंगार–रस– संबंधी परिस्थितियों और विवाह–प्रसंग से सम्बन्धित ख़्याल अत्यधिक सुने जाते हैं।
2. सदारंग द्वारा ख़्याल में जो राग–विस्तार या स्वर–विस्तार लाया गया, वह रूपक प्रबन्ध की विशेषता है। स्वर–विस्तार की प्रधानता होने के कारण ख़्याल का आलाप सीमित हो गया।
3. ख़्याल में ध्रुपद की स्थिरता व गंभीर गमक के अलावा छूट, मुर्की, जम–जमा आदि की प्रधानता वांछनीय है। ख़्याल में आलाप की अपेक्षा स्वर–विस्तार या बढ़त का ही महत्व अधिक है।
4. ख़्याल के स्वर–विस्तार में भी परिवर्तन हुआ और वैचित्र्य के लिए तान को भी प्रयुक्त किया गया। ख़्याल में सरगम का प्रयोग और भी आधुनिक है।
5. ख़्याल में स्थायी और अन्तरा दो ही खंड होते हैं। स्थायी के शब्द अपेक्षाकृत अत्यन्त कम रखे जाते हैं जिससे ताल के आवर्तन में बोल–तानों को गाने में सुविधा रहे।
6. ख़्याल में खट्का, मुर्की आदि लघु अलंकरणों के कारण स्वरों में वक्रगति होती है।
7. एकताल, तिलवाड़ा, झूमरा, आड़ा चौताल आदि तालों का विलम्बित ख़्याल में तथा मध्य द्रुत ख़्याल में तीनताल, एकताल, झपताल, रूपक, द्रुत चौताल आदि का प्रयोग होता है तथा तबला की संगति होती है।

ख़्याल प्रायः लयों के आधार पर दो प्रकार के होते हैं– बड़ा ख़्याल या विलम्बित ख़्याल व छोटा ख़्याल या द्रुत ख़्याल।

इसके अतिरिक्त मध्य लय के ख़्याल भी प्रचलन में हैं। विष्णु कुमार कपूर द्वारा रचित ख़्याल का एक उदाहरण–

**राग मालकौंस (विलम्बित ख़्याल)**

स्थाई– सागर अति घोर। निरखि–निरखि नभ पूरण चन्द्र को।
अन्तरा– रत्न भरे रतनाकर। अति अगाध सरिता वर।

**राग मुल्तानी (द्रुतख़्याल)**

स्थाई– प्रभु चरनन से प्रीति लगा मन, औसर बीतत पल–पल छिन–छिन
अन्तरा– मित्र बन्धु माया सब सपना, हरि बिना जग में कोई न अपना मिट जाए सब धरिणी गगन।

**लक्षण गीत**– लक्षण गीत वे गीत होते हैं जिसमें प्रयुक्त राग के लक्षण अर्थात् स्वर, वादी–सम्वादी, गायन–समय आदि का वर्णन गीत के रूप में किया जाता है, इससे राग की विशेषताएँ एवं स्वरूप कंठस्थ करने में सहायता मिलती है। सैद्धान्तिक दृष्टि से इस शैली के महत्व को अनदेखा नहीं किया जा सकता। लक्षण–गीतों की परम्परा प्राचीन काल से आज तक अनवरत रूप से चली आ रही है। लक्षण गीत के कई भेद हो सकते हैं, जैसे– राग लक्षण गीत, ताल लक्षण गीत, शास्त्र लक्षण गीत इत्यादि। इसकी सीमा शाब्दिक रचना तक ही सीमित नहीं परन्तु इसको ख़्याल, ध्रुपद, धमार, चतुरंग आदि शैलियों में भी गाया जा सकता है। उपर्युक्त शैलियों से इसकी भिन्नता शाब्दिक नहीं स्वरात्मक है।

आधुनिक लक्षण गीतों का स्वरूप देने वाले अविष्कारकर्ता पं० भातखण्डे माने जाते हैं। आधुनिक युग में लक्षणों का प्रयोग गेय रूप में भातखण्डे जी ने प्रचलित किया जिसके बाद ये लक्षण गीत जिनका प्रयोग सैद्धांतिक पक्ष तक ही सीमित था, अब गेय रूप में भी प्रचलित हो रहे थे। विष्णु कुमार कपूर ने अपनी चारों पुस्तकों के सभी रागों में लक्षण गीतों की रचना की। विष्णु कुमार कपूर के द्वारा रचित लक्षण गीत साहित्यिक व सांगीतिक विवेचन सहित प्रस्तुत है।

**राग कल्याण (लक्षणगीत)**

स्थाई– गावत शुभ कल्याण राग गुनि, याम प्रथम निशि मध्यम तीवर, सम्पूरन स्वर लागत पुनि पुनि।।
अन्तरा– गनि वादी सम्वादि सुहावत, दोऊ मध्यमयुत यमन कहावत, मन भावत सुर तान।।

**रागमाला**– 'रागमाला' का शाब्दिक अर्थ है रागों के गुँथाव से बनी एक सांगीतिक रचना जैसे फूलों के गुँथाव से माला बनती है। उसी प्रकार रागों के गुँथाव से रागमाला बनती है। इसका सर्वप्रथम वर्णन गुरू ग्रंथ साहिब में मिलता है। इसके सभी गीतों के बाद रागमाला का प्रयोग है। हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत में विभिन्न मतों के अनुसार राग–रागिनी की परिकल्पना की गयी है। आधुनिक युग में रागमाला का प्रयोग अल्प ही किया जाता है व कल्लिनाथ को इस विधा का आविष्कारक माना जाता है। रागमाला में प्रत्येक पंक्ति को एक भिन्न राग के स्वरों में लिपिबद्ध किया जाता है एवं उसी पंक्ति में उस राग विशेष का नाम भी आता है। आधुनिक वाग्गेयकारों में से कई ने रागमाला की रचना की है, जैसे– पं० रामाश्रय झा जी द्वारा रचित रागमाला की बंदिश पूर्वी उत्तर प्रदेश में अधिक प्रचलित है। विष्णु कुमार कपूर की पुस्तक 'संगीतोद्यान', भाग–2 में पृ० सं० 342 पर रागमाला की एक बंदिश है, यथा–

**रागमाला**

स्थाई– मन भाई राग बिहाग सरस, सोहत हमीर मनहर रूचिकर केदार सजत गम्भीर सुखद, छायानट सुधबुध मनकी हरत।
अन्तरा– सोहत हत सोहिनी करूणामयी, मोहत बागेश्वरी मन हरनी छाई बहार ऋतुराज नटी, जैजैवन्ती सजि रागमाला।

**ठुमरी**– लखनऊ के नवाब वाजिद अली शाह को ही ठुमरी का आविष्कारक माना जाता है। नृत्य के ठुमकने का भाव होने के कारण इसका नामकरण 'ठुमरी' हुआ। लखनऊ और बनारस ठुमरी के लिए प्रसिद्ध है। बनारसी ठुमरी में सुन्दरता और मधुरता अधिक पायी जाती है। ठुमरी में प्रायः राग की शुद्धता की ओर ध्यान नहीं दिया जाता। अनेक गायक ठुमरी गाते समय भिन्न–भिन्न रागों के स्वरों का मिश्रण कर उसे सुन्दर बनाने का प्रयत्न करते हैं। विषय–वस्तुओं में ठुमरी मधुर, कोमल, करूण, उत्सुक, निराशा आदि भावों व रसों के अनुकूल रची जाती है। ठुमरी में बोल–विस्तार अधिक होता है। ठुमरी में संकीर्ण रागों अर्थात् एक से अधिक रागों का मिश्रण कर गाया जाता है व ताल वाद्य संगति दीपचंदी, जत ताल, अद्धाताल में होती है।

**राग तिलंग (ठुमरी)**

स्थाई– बांके साँवरे घनश्याम, आजा अब तो मोरे धाम।
अन्तरा– मुख दिखला दे रसिया प्यारे, जोहत नैन पथ अविराम।।

**टप्पा**– टप्पा हिन्दी मिश्रित पंजाबी भाषा के श्रृंगार–रस–प्रधान गीत को कहते हैं। टप्पा गायन–शैली का पंजाब प्रान्त से अटूट सम्बन्ध है, कुछ विद्वान ऐसा मानते हैं कि पंजाबी लोकगीत टप्पे से ही टप्पा गायन–शैली विकसित हुई है।

सुप्रसिद्ध ख्याल गायक गुलाम रसूल के पुत्र मिंया गुलाम नबी शोरी को टप्पा गायन–शैली का आविष्कारक मानते हैं। शोरी मियां अठारहवीं शताब्दी में लखनऊ के नवाब आसफउद्दौला के काल में हुए। आपने अपने पंजाब प्रवास में पंजाबी भाषा सीखी व पंजाबी में ही टप्पा की बंदिशों का निर्माण किया। लखनऊ के अन्तिम नवाब वाजिद अली शाह के समय में ख्याल को टप्पा अंग से गाने की प्रथा रही। इसी 'टप्पा' अंग आधारित रचे हुए ख्यालों को 'टप्प ख्याल' कहते हैं। बाद में लखनऊ से यह गायन–शैली ग्वालियर पहुँची और कई ख्याल की बंदिशें इसी अंग में रची गयीं।

'टप्पा' पंजाबी भाषा के शब्द 'टप्पणा' से ग्रहण किया गया है जिसका अर्थ है उछलना व कूदना। इसकी प्रकृति चंचल, लच्छेदार तानें, मुर्की, खट्का आदि से ज्ञात होता है कि ख़्याल और ठुमरी की गम्भीरता से अत्यन्त दूर है। टप्पा में प्रारम्भ से ही आलाप न होकर छोटी–छोटी दानेदार तानों से सुसज्जित कर बढ़त की जाती है। स्वर पर विशेष बल देकर विश्रान्ति टप्पा में नहीं की जाती। टप्पा अधिकतर गारा, पीलू, काफी, झिंझोटी, बरवा, भैरवी, खमाज, तिलंग, झिझोंटी इत्यादि रागों में गाया जाता है। इसमें स्थायी व अन्तर दो भाग होते हैं। यह क्षुद्र प्रकृति की गायकी है। इसके गीतों में श्रृंगार–रस की प्रधानता होती है और पंजाबी भाषा के शब्दों के प्रयोग के साथ–साथ पंजाबी ताल का ठेका भी बजाया जाता है। यह अत्यन्त चपल गति से गायी जाने वाली शैली है। कुछ विद्वान मानते हैं कि प्राचीन 'बेसरा' गीति से इस गायकी की उत्पत्ति हुई है।

### राग खमाज (टप्पा)

स्थाई– म्हारी सुध लिज्यो जी महाराज, तुम तो हो गरीबनिवाज।
अन्तरा– आन परी हूँ द्वार तिहारे, दरस दिखाज्यो जी महाराज।

**चतुरंग**– जिस शैली में ख्याल (पद), तराना के बोल, सरगम व अंत में तबले के बोल–चारों अंग सम्मिलित होते हैं, उसे चतुरंग कहते हैं। इस प्रकार चतुरंग में स्वर, तेन, ताल, पद और पाट चतुरंग में पाँच अंग होते हैं। इस दृष्टि से यह 'संगीत–रत्नाकर' के 'वर्ण–स्वर' प्रबन्ध से मिलता है। पं० विष्णु दिगम्बर पलुस्कर ने चतुरंग को उत्कृष्ट बताया है। चतुरंग की गति ख्याल की तरह है, किन्तु इसमें तानों का प्रयोग ख्याल की अपेक्षा कम होता है।

### चतुरंग (बालगीत)

स्थाई– सा रे ग म चन्दा मामा, प ध नि सां सुन्दर कैसा,
सां नि ध प आ गये पापा, म ग रे स मिल गया पैसा
अन्तरा– धा धि धिं ता अब क्या चिन्ता, ता थेई थेई तत्,
ले टॉफी खा, आ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ, हँसते हँसते बढ़ता जाऽ

विष्णु कुमार कपूर के वृहद् रचना–संसार में से कुछ रचनाओं को यहाँ प्रस्तुत किया गया है जिससे संगीत के मौन साधक एवं उनके कार्यों को यथोचित सम्मान प्राप्त हो सके और संगीत सरिता में नये स्त्रोतों का संचार सदैव गतिमान रहे।

**संदर्भ सूची** :

1. देवांगन, तुलसीराम, (जनवरी 1964), 'संगीत' पत्रिका, (ध्रुपद अंक) संगीत कार्यालय, हाथरस, पृ० सं० 10–11
2. मिश्र, विजयशंकर (2001) मनके : भाव, सुर, लय के, प्रकाशन विभाग, सूचना प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, पृ० सं० 52
3. कौर, डॉ० मनदीप, (जुलाई 2014), संगीत पत्रिका लेख, त्रिवट एक विश्लेषणात्मक दृष्टि, संगीत कार्यालय हाथरस, पृ० सं० 31
4. बन्दोपाध्याय, श्रीपद, 1985, संगीत भाष्य, दिल्ली आर.पी.बी.सी. , पृ० सं० – 415, 416

# संगीत एवं पर्यावरण : एक विश्लेषण

**डा. प्रिया पाण्डेय***

**सारांश**

*कला कोई भी हो, उसका उद्देश्य मानव मन के अमूर्त मनोभावों को मूर्त रूप देना तथा उसका लक्ष्य जीवन को सौन्दर्यमय बनाना एवं सौन्दर्य के प्रति आकृष्ट कर धीरे–धीरे चरमोत्कर्ष की ओर ले जाकर दिव्यता का दर्शन कराते हुए मानव का आत्म–उत्थान करना ही है। साधारण रूप से कोई भी व्यक्ति संगीतात्मक अभिव्यक्ति कर सकता है, परन्तु वह सारगर्भित व उद्देश्य पूर्ण हो, यह क्षमता संगीत के उचित प्रशिक्षण से ही आ सकती है। संगीत का प्रभाव सभी सजीव तत्त्वों पर पड़ता है, यथा– मानव, पशु–पक्षी, पेड़–पौधे इत्यादि। सम्पूर्ण पर्यावरण इससे प्रभावित है।*

**मुख्य शब्दावली**– *संगीत, पर्यावरण, चिकित्सा, मनोभाव*

**अनुसंधान पद्धति**– *द्वितीयक माध्यमों द्वारा सामग्री संकलित की गई है।*

साहित्य संगीत कला विहीनः । साक्षात् पशुपुच्छविषाणहीनः ।।

अर्थात् साहित्य, संगीत, कलाविहीन को मनुष्य ही नहीं माना गया है, उसे पूँछविहीन पशु कहा गया है।

संगीत केवल मनुष्य को ही नहीं प्रभावित करता, अपितु समस्त जीव–जन्तु एवं वनस्पति जगत पर इसका प्रभाव पड़ता है, विश्व के कण–कण में संगीत परमात्मा के अंश की तरह व्याप्त है। संगीत न केवल आधुनिक युग में अपितु आदिम काल से जन–जीवन की सुखानुभूतियों की ललित अभिव्यक्ति का मधुरतम माध्यम रहा है। प्राचीन काल में जब पुस्तकों और चलचित्रों आदि का अभाव था तब दैनिक परिश्रम के बाद नर–नारी दोनों के ही मनोरंजन का एकमात्र साधन सामूहिक गायन तथा नृत्य था। संगीत में पुरातन समय से ही दीप प्रज्ज्वलित करने तथा वर्षा न्योतने का अलौकिक सामर्थ्य है, साथ ही उत्तम कृषि के लिये तथा जीवन के प्रत्येक रीति–रीवाजों के लिये एक अलग प्रकार का संगीत माना गया। संगीत से जितना मनुष्य प्रभावित होता है उतना ही पर्यावरण भी। डॉ0 जगदीश चन्द्र बसु ने संगीत का प्रभाव वनस्पति पर सिद्ध कर दिखाया था । संगीत आज चिकित्सा के रूप में भी उपस्थित है। लंदन की स्वास्थ्य पत्रिका, हॉस्पीटल एण्ड हैल्थ मैनेजमेन्ट में प्रकाशित एक लेख के अनुसार रोगी व्यक्तियों को यदि नियमित थोड़ी देर मधुर संगीत सुनाया जाय तो वे शीघ्र ही आरोग्य लाभ कर सकते है। डॉ. विसेन्ट पीवा ने संगीत को सभी मानसिक तनावों के निराकरण की अचूक औषधि कहा है। संगीत विशेषज्ञ डॉ. वी. सी. देव का कहना है कि अनेक मानसिक रोगियों को जिन्हें असाध्य घोषित कर दिया गया था, संगीत के प्रयोग से रोग–मुक्त किया जा चुका है। संगीत द्वारा रोगों को दूर करने की बात पुरानी है। सामवेद में रोगों के निवारण के लिये राग–गायन का विधान मिलता है। संगीत के प्रभाव का विश्लेषण करने पर पाया गया कि इसका प्रभाव उन समस्त स्थानों पर समान रूप से होता है, जहाँ से सांगीतिक ध्वनि एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचती है। अतः स्पष्ट है कि जहाँ–जहाँ सांगीतिक ध्वनि स्पर्श करेगी अर्थात् यह आवश्यक नहीं कि सांगीतिक ध्वनि तरंगों का प्रभाव जीव–मात्र पर ही हो अपितु प्रकृति–पर्यावरण इत्यादि पर भी समान रूप से होता है।

संगीत और पर्यावरण का सुन्दर समन्वय है, हिन्दुस्तानी संगीत में मुख्यतः राग–रागिनियों का सबसे महत्वपूर्ण स्थान है, और इन रागों का गायन–समय निर्धारित है, जिसमें प्रातःकालीन, सायंकालीन, दोपहर इत्यादि के साथ–साथ ऋतुओं का भी निर्धारण किया गया। हिन्दुस्तानी राग भाव पर आधारित होने के कारण हर समय नहीं गाये–बजाये जाते है, भावों का सम्बन्ध मन से होता है। मन की स्थिति सुबह, दोपहर, शाम, रात में भिन्न होने के कारण बदलती रहती है। सूर्योदय के साथ दिन का आरंभ होता है, धीरे–धीरे सूर्य का प्रभाव बढ़ता है और दोपहर तक प्रचण्ड रूप धारण कर लेता है, उसके बाद धीरे–धीरे सूर्य ढलने लगता है, संध्या तक प्रकृति शान्त होते–होते मध्य रात्रि तक पूर्ण

*सहायक प्रवक्ता, संगीत विभाग, श्री गुरू राम राय विश्वविद्यालय, पटेल नगर, देहरादून

शान्त हो जाती है। मानव के मन पर प्रकृति का सीधा प्रभाव पड़ता है। प्राचीन मनीषियों ने इस पर सूक्ष्म चिन्तन कर रागों का समय–चक्र निर्धारित किया, जिससे मन के भावों और रागों में लगने वाले स्वरों के अन्तरालों का संबंध स्थापित हो। रागों के समय का संबन्ध दिन–रात के चौबीस घंटों में ही नहीं, बल्कि वर्ष–भर में परिवर्तित होनें वाले ऋतुओं से भी जोड़ा गया। इस प्रकार छः मुख्य रागों का संबन्ध छः मुख्य ऋतुओं से जोड़ा गया, जैसे–

1. हिन्दोल – बसन्त ऋतु
2. दीपक – ग्रीष्म ऋतु
3. मेघ – वर्षा ऋतु
4. भैरव – शरद ऋतु
5. श्री – हेमन्त ऋतु
6. मालकौंस– शिशिर ऋतु

इस प्रकार निर्धारित किया गया कि अमुक राग को किस ऋतु अथवा दिन के कौन से प्रहर में गाना उचित है ? जैसे– राग बसंत की बन्दिश–'ऋतु बसंत मन भाय सखी री।'

इसे बसंत के समय गाने का ही प्रचलन है, इसी प्रकार मल्हार अंग के रागों का गायन वर्षा–ऋतु के समय माना गया है। जैसे–

राग गौड़ मल्हार– 'गरजत बरसत भीजत आइलौ।'
राग सूर मल्हार– 'घेरी घन आयो री चहुँ ओर,
गरजे घनघोर जियरा डर पावे।।

इसे और अधिक स्पष्ट करते हुए 'संगीत दर्पण' में कहा गया है कि–

''श्री रागोरागिणीयुक्तःशिशिरेगीयतेबुधैः।।
बसंतस्वसहायैस्तुबसन्ततौं प्रगीयते।।
भैरवः स्वसहायैस्तु ऋतु ग्रीष्में प्रगीयते।।
पश्चमस्तु तथागेमो रागिव्या सहशारदे।।
मेघरागो रागिणीभिःयुक्तोवर्षा सुयुगीयते।।
नर–नारायणोरागोरागिष्यासहहेमके।।
यथेच्छया वा गातव्यः सर्वतुषु सुखाप्रदा।।''
संगीत दर्पण–पं. दामोदर (29)

उपर्युक्त उदाहरण से संगीत और पर्यावरण का अटूट तथा परस्पर संबन्ध पूर्णतया स्पष्ट होता है। जैसे कि पहले भी वर्णित किया गया है कि संगीत मानव को शारीरिक, मानसिक, तथा मनोवैज्ञानिक तीनों प्रकार से प्रभावित करता है, शारीरिक प्रभाव के साथ–साथ मानव को मष्तिष्क पर निश्चित रूप से प्रभाव पड़ता है, संगीत–रचना, संगीत गायन–वादन और संगीत–श्रवण का उपयोग मानसिक रोगों के लिये किया जा सकता है। मानसिक दृष्टि से अविकसित बच्चों की शिक्षा के लिए संगीत बहुत सहायक हैं। शोध द्वारा निष्कर्ष निकाला गया कि ''एर्थायड'' नामक बीमारी के रोगियों के लिए संगीत सबसे उपयुक्त रहा। संगीत मानव की संवेदनाओं को भी प्रभावित करता है। दुःख, प्रसन्नता, वीरता, रस–भाव इत्यादि संवेदनाएँ संगीत के माध्यम से संचारित होती हैं, जैसे– ''वन्देमातरम्'' में देश–प्रेम की ज्वाला तथा 'ठुमुक चलत रामचन्द्र' में भक्ति–भावना संबोधित होती है। इसी प्रकार, संगीत का उपयोग हमारे घरों में विभिन्न प्रकार के कार्यों, जैसे– चक्की पीसना, धान कूटना, फसल की रोपाई, नाव खेना आदि इन सब कार्यों के समय होता है तथा सबके अलग–अलग गीत भी बनाये गये हैं। संगीत का प्रभाव केवल मनुष्य पर ही नहीं बल्कि समस्त जीव–जन्तु, पशु–पक्षी एवं वनस्पति जगत पर पड़ता है।

ये भाव मनुष्य एवं पशु दोनों व्यक्त करते हैं, बस उनकी भाषा एवं हाव–भाव में पर्याप्त अंतर होता है, जैसे– मनुष्य द्वारा हर्ष के आवेग में हर्षसूचक ध्वनि, विपत्ति के आवेग में भयसूचक चीख वाली ध्वनि, असह्यय दुःख में कराहने की ध्वनि सहज ही निकल जाती है। इसी प्रकार, पशु भी विभिन्न प्रकार की ध्वनि उत्पन्न कर अपने हर्षोल्लास एवं दुःख को प्रकट करते हैं। इन दोनों को पर्यावरण भी प्रभावित करता है। वर्षा–ऋतु में जब हमारे चारों तरफ पेड़–पौधे, हरे–भरे तथा हरियाली की छटा बिखर जाती है, तब न केवल मनुष्य में बल्कि पशुओं तथा वातावरण में भी हर्षोल्लास की भावना आ जाती है। इसी मौसम में कजरी, चैती, झूमर इत्यादि गीतों के माध्यम से अपने मनोभावों को व्यक्त करने की परंपरा है। वास्तव में ये सारे संबंध तथा इन पर संगीत का प्रभाव रसों पर आधारित है, कोई भी प्रभाव बिना मानव मन को उद्वेलित किये नहीं प्रभावित कर सकता । आचार्य भरत ने अपने ग्रन्थ 'नाट्यशास्त्र' में आठ प्रकार के रसों का वर्णन किया है, तथा उनके स्थायी भाव भी बताये हैं जिनसे विभिन्न प्रकार के भावों का संबंध भी जोड़ा गया है। रस भी व्यक्ति के दृष्टिकोण पर निर्भर है– वन–उपवन, जल–प्रपात, पक्षियों के कलरव इत्यादि देखकर किसी व्यक्ति को आनंदानुभूति हो सकती है तथा प्रकृति के अनन्त सौन्दर्य के दर्शन हो सकते हैं। किसी अन्य के लिये वे पानी, पेड़, पक्षी मात्र भी हो सकते हैं। जो व्यक्ति 'डेस्क' के अन्दर बैठकर पढ़ रहे हों, वे केवल नदी पार कर जाते हैं, और उनके लिये नदी एक सामान्य व्यवहार की वस्तु है लेकिन बाहर बैठकर ऊपर–नीचे गिरती–उठती पानी की छोटी–छोटी लहरों

तथा घूँघट में झाँकती सल्लज नव वधू की भाँति पानी की लहरों में कभी छिपती, कभी दिखती सूर्यास्त की लालिमा, इन सबका दर्शन लेने वाले व्यक्तियों के लिये नदी आंनदानुभूति की वस्तु है। उन्हें तो ऐसा नौका–विहार समाप्त होने का अफसोस ही होगा ।

संगीत और पर्यावरण का अकाट्य सम्बन्ध है। सभी प्राकृतिक तत्त्व, सूर्योदय, सूर्यास्त, सभी वनस्पतियाँ, मानव, पशु–पक्षी, पेड़–पौधे, नदी, झरने आदि भौगोलिक पर्यावरण हैं। इन सभी का मानव–जीवन पर प्रभाव पड़ता है। प्राकृतिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक घटकों का प्रभाव पर्यावरण पर पड़ता है। आज प्रदूषण की पराकाष्ठा की स्थिति में हमें विचार करना अति आवश्यक है। पर्यावरण पर खतरा पैदा करने वाले तत्त्वों पर ध्यान देना भी आवश्यक है। दूषित जल, खादपूर्ण मिट्टी का खुला रहना आदि नदियों के जल को दूषित करते हैं, इससे मिट्टी भी खराब होती है। आज जल–संरक्षण भी आवश्यक हो गया है। दूषित वातावरण से भी बचने की ओर आकृष्ट किया जाता है। पर्यावरण अगर समृद्ध और शुद्ध है तो ऋतुएँ भी प्रफुल्लित होती हैं, वातावरण भी सही और शुद्ध रहता है। उत्सव और त्यौहार जो ऋतुओं से संबंधित हैं, समृद्ध होते हैं। पेड़–पौधे–पुष्पादि स्वस्थ होते हैं। प्रकृति में, ऋतु में परिवर्त्तन का असर साहित्यकार, लेखक, कवि, वाग्गेयकार आदि रचनाकारों पर स्पष्ट दिखाई देता है जिससे उन्हें अनेकानेक विषय सूझने लगते हैं जिसके सुन्दर परिणाम उनकी रचनाओं में दिखाई देते हैं। संगीत में पर्यावरण से सम्बन्धित अनेकानेक बन्दिशों नदी, जल, फूल, पर्वत, हवा आदि आधारित दृष्टिगोचर होते हैं। ऋतुओं से सम्बन्धित राग–देश, बहार, मल्हार, बसन्त आदि पर्यावरणीय दृष्टिकोण से समृद्ध हैं। इन रागों में निहित बन्दिशें भी पर्यावरण को सम्पुष्ट करती हैं। पर्यावरण का लाभ संगीतकारों, संगीतज्ञ गायक, वादक और नर्तकों ने खूब उठाया है। सर्वविदित है कि मशहूर शहनाईवादक उस्ताद बिस्मिल्ला खाँ बनारस में रहते थे और प्रातः बेला में नदी के तट पर बैठ कर अभ्यास करते थे। ऐसे अनेक वृत्तान्त हम देखते–सुनते हैं। इस पर्यावरण का प्रभाव हमारे संगीतज्ञों पर पड़ता है, खुली हवा में प्रसन्नचित्त एकाग्र होकर रियाज करना बहुत शुभ फलदायी होता है। शास्त्रीय ही नहीं, लोकगीतों में इन पर्यावरणीय तत्त्वों का खूब प्रयोग हुआ है। इतना ही नहीं, नदी, वायु, वृक्ष, फल, फूल इत्यादि से युक्त गीत व्रत–त्यौहारों में हमारे लोक अंचलों में बहु प्रसिद्ध हैं। नदी में नाव खेते समय मल्लाह का गायन, अन्न कूटने, काटने, रोपने का गीत आदि भी इसके प्रमाण हैं। वाद्यों के निर्माण में हमारे प्राकृतिक तत्त्वों का प्रयोग होता है। विभिन्न प्रकार के वृक्षों की लकड़ियों का उपयोग अलग–अलग वाद्यों के निर्माण में किया जाता है। ऐसे अनेक उदाहरण हैं जिससे पर्यावरण और संगीत का सम्बन्ध प्रामाणित होता है।

युद्ध के ढोल–नगाड़े की आवाज मानसिक भावों को उत्तेजित करती है। संगीत के माध्यम से सहयोगिता की भावना विकसित होती हैं। स्पष्ट है कि संगीत का प्रभाव केवल मनुष्यों पर ही नहीं, बल्कि समस्त जीव–जंतु, वनस्पति जगत पर पड़ता है। उदाहरण के लिये सूर्योदय के समय सूर्योदय के आभास मात्र से, सूर्य बादलों से ही क्यों न ढका हो, पक्षी चहचहाकर और सूर्यास्त के शांतिपर्व अपने नीड़ो में प्रस्थान कर अपनी अनुभूति का परिचय देते हैं। पशु–पक्षियों पर भी संगीत का प्रभाव पड़ता है। स्वीडेन की गौशालाओं में गाय दूहते समय संगीत बजते रहने से गायें अधिक दूध देने लगीं। अब तक प्राप्त पर्याप्त प्रमाणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि संगीत के भाव को लेकर और भी वैज्ञानिक और मनौवैज्ञानिक परीक्षण किये जाने चाहिये। प्रत्येक मनोभाव, मनोदशा, दृष्टिकोण इत्यादि विभिन्न दृष्टि से पर्यावरण सौन्दर्य को देखते हैं, एवं इसका अनुभव प्रत्येक जीव अपने अन्तःकरण में करता है, और उसको अपनी भावनाओं में व्यक्त करता है।

**निष्कर्ष** : इस प्रकार, इन सभी तथ्यों पर ध्यान देते हुए कहा जा सकता है कि संगीत में सम्पूर्ण मानव, पर्यावरण, प्रकृति सभी को प्रभावित करने की अटूट क्षमता है।

**सन्दर्भ** :

1. परमिता, त्रैमासिक शोध पत्रिका, जुलाई–सितम्बर–2013, पृष्ठ–4
2. शरण, पंडित भगवत, संगीत निबन्ध मंजरी, पृष्ठ–154
3. शर्मा, डा. स्वतंत्र, सौन्दर्य रस एवं संगीत, पृष्ठ–129
4. चौधरी, डॉ सुभद्रा, भारतीय संगीत में ताल और रुप विधान, पृष्ठ–399
5. शर्मा, डॉ. मृत्युंजय, त्रिपाठी, रामनारायण, संगीत मैनुअल, पृष्ठ–381
6. गर्ग, डॉ. लक्ष्मी नारायण, निबंध संगीत, पृष्ठ–389
7. परांजपे डॉ. शरच्चन्द्र श्रीधर, भारतीय संगीत का इतिहास, पृष्ठ–211
8. पाठक पं. जगदीश नारायण, संगीत निबंध माला, पृष्ठ–43
9. हिन्दुस्तानी संगीत में बंदिशों का स्वरुप–पत्रिका, पृष्ठ–55
10. नानल, माधवी, पर्यावरण और संगीत, सोदाहरण– व्याख्यान, ई श्रृंखला, वि.वि. संगीत एवं नाट्य विभग, ल.ना.मि.विश्वविद्यालय, दरभंगा, दिनांक 9 अगस्त 2020 (ऑनलाइन)

# बनारस घराना के तबला–वादन में मुखड़ा–मोहरा का प्रयोग एवं महत्व

**डॉ. कंचन सिंह***

**शोध सारांश**

*हिन्दी के प्रसिद्ध कवि बिहारी द्वारा दोहों के विषय में कही गयी निम्न पंक्ति मुखड़े तथा मोहरे के संदर्भ में भी बिल्कुल सटीक लगती है– 'देखन में छोटे लगैं, घाव करैं गम्भीर'। कहने का तात्पर्य है कि थोड़े से बोलों की एक छोटी–सी रचना मुखड़ा–मोहरा के प्रभाव एवं महत्व को नकारा नहीं जा सकता। इसका प्रयोग गायन, वादन तथा नृत्य तीनों विधाओं में होता है। तबला–वादन में मुखड़ा–मोहरा अविस्तारशील वर्ग की बन्दिशों में सबसे छोटी रचना है, जिसकी भूमिका तबला संगत तथा स्वतन्त्र वादन दोनों में महत्वपूर्ण होती है। यद्यपि मुखड़े–मोहरे की संरचना के विषय में विद्वानों में मतभेद पाया जाता है तथापि दोनों का प्रयोग एकमत से 'सम' पर आने के लिए किया जाता है। बनारस घराना के तबला वादक केवल ठेका पकड़ने के लिए ही मुखड़े का उपयोग नहीं करते बल्कि विस्तारशील एवं अविस्तारशील दोनों बन्दिशों के वादन में मुखड़े का प्रचुर प्रयोग करते हैं। यह बनारस घराने की वादन सामग्री की एक महत्वपूर्ण रचना है।*

**प्रमुख शब्द** : *सम, अविस्तारशील, तालवाद्य, आवर्तन, प्रभावोत्पादक, मात्रा।*

**शोध–प्रविधि** : *वर्णनात्मक, व्याख्यात्मक एवं विभिन्न पुस्तकों का आश्रय लेकर उपरोक्त विषय का विशलेषण किया गया है।*

**शोधकार्य का क्षेत्र** : *संगीत वादन(तबला)*

**प्रस्तावना** : सम पर आने के लिए पूर्व के गायकों या तन्त्र वादकों ने जिस प्रकार मुखड़ा, तान एवं तिहाई का प्रयोग किया होगा, सम्भवतः उसी का अनुसरण कर अवनद्ध वादकों ने भी टुकड़ा, मुखड़ा, मोहरा जैसी बन्दिशों का विकास किया। फलतः आधुनिक काल में अवनद्ध वाद्यों की विविध बन्दिशों का विकास हुआ। तबले की वादन सामग्री में पेशकारा, कायदा, बॉट, रेला, फर्द, लग्गी–लड़ी, मुखड़ा–मोहरा, गत, तिहाई, चक्रदार, परन आदि अनेक रचनाएं सम्मिलित की जाती हैं। इनमें मुखड़ा या मोहरा एक ऐसी रचना है जिसका विस्तार नहीं होता परन्तु इसका प्रयोग तबला–वादन की अविस्तार एवं विस्तार दोनों ही श्रेणी की रचनाओं के पूर्व किया जाता है। तन्त्र वाद्य हो या कथक नृत्य, इनमें भी मुखड़े या मोहरे की अपनी विशिष्ट भूमिका है।

तबले पर बजने वाली वे बन्दिशें जिनका विविध विस्तार सम्भव नहीं हो, उन्हें 'अविस्तारशील बन्दिश' कहते हैं। इन बन्दिशों में ताल की ताली, खाली का विशेष महत्व नही होता है। ऐसी बन्दिशें अलग–अलग लय अथवा जाति में हो सकती हैं। अविस्तारशील बन्दिशें किसी भी मात्रा से प्रारम्भ हो सकती हैं परन्तु उनका ताल के सम पर समाप्त होना आवश्यक है।

मुखड़ा तथा मोहरा तबले के अविस्तारशील वर्ग की बन्दिशों में सबसे छोटी रचना है, जिसकी भूमिका तबला संगत और तबला स्वतंत्र वादन में महत्वपूर्ण होती है। यद्यपि मुखड़े–मोहरे की संरचना के विषय में विद्वानों में मतभेद पाया जाता है तथापि विद्वानों ने दोनों का प्रयोग, 'सम' पर आने के लिए ही किया है।

ताल–वाद्यों पर बजाये जाने वाले कुछ बोलों की प्रभावशाली रचना, जिसे बजा कर वादक सम से मिलता है, 'मुखड़ा' कहते हैं। इसी से मिलती–जुलती एक रचना है, जिसे 'मोहरा' कहते हैं। कुछ विद्वान इन दोनों में अन्तर नहीं मानते। परन्तु जो अन्तर मानते हैं, उनके अनुसार मोहरा मुखड़े से बड़ा, किन्तु टुकड़े से छोटा होता है। साथ ही, मोहरा के अन्त में एक तिहाई भी जुड़ी होती है। मोहरा के सन्दर्भ में एक बात और याद रखनी चाहिए कि किसी भी ताल का मोहरा एक आवर्तन से अधिक का नहीं होना चाहिए। यदि किसी ताल के अन्त में अगर दो अथवा चार मात्राओं के बोल बजाएँ जाएँ तो वह मुखड़ा कहलायेगा। जैसे– 'कतेटेतगीनतक तेटेकतगदिगन' या 'धाऽतूना किटतकतातिर किटतकतिरकिट तकतातिरकिट धा' किन्तु अगर तीनताल के अन्तिम 8 मात्राओं में 'धाऽतूना किटतकतातिर किटतकतिरकिट तकताऽ धाऽतिरकिट

*एम.ए. (संगीत तबला), यू.जी.सी. नेट, पी–एच.डी., प्रवीण (तबला, कथक), 46/35ए कूँचा राय गंगा प्रसाद, मालवीय नगर, प्रयागराज

तकतातिरकिट धाऽतिरकिट तकतातिरकिट धा' का वादन किया जाये तो मोहरा कहलायेगा। मोहरा और मुखड़ा एक ही चीज़ है, जो स्थान भेद से दो नाम के हो जाते हैं। उदाहरण के लिए यदि 'धिरधिरकिटतक धातिरकिटक तक्क्ड़ान् धातक् क्ड़ान्धा तक्क्ड़ान' का बिल्कुल प्रारम्भ में बजाकर ठेका बजाना शुरू करेंगे तो इसका नाम 'मोहरा' होगा। किन्तु जब तीनताल के ठेके की आठ मात्राएँ बजाकर अगली आठ में इन बोलों को बजा देंगे तो अब यही रचना 'मोहरा' न कहलाकर मुखड़ा कहलायेगी। गायक वादक जब स्वर अलंकारों की एक आवृत्ति समाप्त कर सम पर आने के लिए गीत का मुखड़ा पकड़ते हैं तो आवश्यकतानुसार तबलिया जिस छोटे या बड़े, तीहे य बेतीहे के बोल का उपयोग सम पर आने के लिए करते हैं, उसे मुखड़ा या मोहरा कहेंगे। छोटे बोलों को मोहरा तथा बड़े व जोरदार को मुखड़ा कहना ठीक नहीं। मुखड़े–मोहरे का प्रयोग सौन्दर्योत्पादन के लिए किया जाता है। अतः हम कह सकते हैं कि मुखड़ा तथा मोहरा दोनों का प्रयोगात्मक स्वरूप एक ही है।

मुखड़ा, एक व्यापक शब्द है, जिसका प्रयोग ताल को प्रस्तुत करने में विशेष रूप से किया जाता है। बिना मुखड़ा के सीधे ताल का ठेका सुनने में नीरस प्रतीत होता है। 'इसका सम्बन्ध कंठ एवं वाद्य संगीत दोनों से है। (गायक, गायन की प्रथम पंक्ति के जिस छोटे से भाग को गाकर प्रभावी ढ़ंग मिलता है, उसे मुखड़ा कहते हैं। इसी प्रकार तंत्रवादक समं से पूर्व एक छोटा भाग, जिसे बजाकर वह सम पर आता है, उसे भी मुखड़ा कहते हैं।) किन्तु मुखड़े का सर्वाधिक प्रयोग तबला–वादन में किया जाता है। विभिन्न प्रकार के बोलों से निर्मित मुखड़ों को ताल के अलग–अलग स्थान अर्थात् मात्रा से प्रारम्भ कर बहुत ही आकर्षक एवं प्रभावोत्पादक ढ़ंग से सम पर मिला जाता हैं। पूरब बाज में मुखड़े अधिक बजाये जाते हैं। ये ठेके से दुगुनी या चौगुनी लय मे ही बजाते जाते हैं। सम को स्पष्ट करने के लिए तबला वादक प्रायः दो, तीन या चार मात्राओं के कुछ अनिश्चित बोलों का वादन करन कुछ इस प्रकार आते हैं कि वह स्थान शेष स्थानों से बिल्कुल अलग प्रतीत होता है। 'मुखड़ा' की ऐसी विविधता तथा क्रमिक विस्तार बनारस घराने में अधिक मिलता है।

मुखड़ा के विविध विस्तार में 'ना धिं धिं ना' के बादशाह एवं अविस्मरणीय तबला विद्वान पण्डित अनोखेलाल मिश्र का विशेष योगदान है। वे किसी भी एक मुखड़ा से अनेक प्रकार की तिहाईयाँ एवं चक्रदार आदि बनाकर तुरन्त प्रस्तुत करने में निपुण थे।

बनारस घराना के स्वतंत्र तबला–वादन में मुखड़े का विशिष्ट स्थान है। बनारस के तबला वादक केवल ठेका पकड़ने के लिए ही मुखड़े का उपयोग नहीं करते बल्कि बनारस घराने की विस्तारशील एवं अविस्तारशील दोनों बन्दिशों के वादन में भी मुखड़े का प्रचुर प्रयोग करते हैं। बनारस घराने में कायदा, बाँट, रेला या कोई विशिष्ट बंदिश मुखड़ा बजाने के पश्चात् ही प्रस्तुत की जाती है। कायदा, बाँट आदि की दुगुन करने से पूर्व भी छोटा–सा मुखड़ा बजाकर ही दुगुन लय में इनका वादन किया जाता है। इसी प्रकार टुकड़ा, चक्रदार या परन में तिहाई के पहले जो बोल जुड़े होते हैं, उसे भी मुखड़ा कहते हैं। बनारस के कलाकार बमुश्किल ही किसी ठेके का पूरा आवर्तन बिना मुखड़े का बजाते हैं, साथ ही वे मुखड़े की अल्प पुनरावृत्ति का प्रयास करते हैं। मुखड़े के सन्दर्भ में यह तथ्य भी महत्वपूर्ण है कि बनारस के विद्वान तबला वादक अपनी प्रखर बुद्धि व अभ्यास से एक मात्रा में सोलह मात्रा के मुखड़े के अनेक प्रकार निर्मित कर बजाते रहते हैं। प्रस्तुत है, तीनताल में 4,8,16 मात्राओं का मुखड़ा–

**चार मात्रा का मुखड़ा या मोहरा :**

(i) 9 10 11 12। 13 14 15 16।
0
। तिरकिट तक्ड़ां ऽतक तिरकिट। धा
3 x

(ii) 9 10 11 12। किटतक तिरकिट तकताऽ तिरकिट। धा
0 3 ग

**आठ मात्राओं का मुखड़ा :**

(i) धा तुंना किटतक ताऽतिर। किटतक तिरकिट तकताऽ तिरकिट। धा

0 3 x

(ii) धिरधिरकिटतक धाऽतिरकिटतक तिरकिटतकतक तिरकिटक्ड़ांऽ।

0

किटतकतिरकिट धाऽकिटतक तिरकिटधाऽ किटतकतिरकिट। धा

3 x

**सोलह मात्राओं का मुखड़ा :**

(i) धा तूना किटतक ताऽतिर। किटतक तिरकिट तकधिर किटतक।

x 2

धा तिरकिट तकधिर किटतक । धा तिरकिट तकधिर किटतक। धा

0 3 x

(ii) धा तूना किटतक ताऽतिर। किटतक तिरकिट तकतक तिरकिट।

x 2

धा तिरकिट तकतक तिरकिट। धा तिरकिट तकतक तिरकिट।

0 3

(iii) धे–तिर किटतक धागे तिटी। कता –धि ना धा।

x 2

तुं ना धिन तुंना। धातुं नधा तुंना धातुं।[10] धा

0 3 x

पं. अनोखेलाल जी द्वारा वादन किया हुआ

**ताल रूपक में चार मात्राओं का मुखड़ा :**

(i) ती ती ना। कत्रकधे तेटेधागे। तेटेकते टेक्रधाती। ती।

0 1 2 0

(ii) ती ती ना। धिरधिरकिटतक धाऽतिरकिटतक। तिरकिटतक्घड़ा ऽन्ततिरकिट। ती।[11]

0 1 2 0

**ताल रूपक में मुखड़े से निर्मित तिहाई :**

धिरधिरकिटतक धातिरकिटतक तिरकिटतक्घड़ा। ऽन्तकतिरकिट धा।

0 1

धिरधिरकिटतक धाऽतिरकिटतक। तिरकिटतक्घड़ा ऽन्तकतिरकिट धा।

2 0

धिरधिरकिटतक धाऽतिरकिटतक। तिरकिटतक्घड़ा ऽन्तकतिरकिट। ती

1 2 0

निष्कर्ष : उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर हम कह सकते हैं कि बनारस घराना के स्वतन्त्र तबला–वादन में मुखड़ा–मोहरा का विशिष्ट स्थान है। साथ ही, यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि मुखड़ा या मोहरा तबला–संगति तथा तबला–स्वतन्त्र वादन का अभिन्न अंग है।

संदर्भ सूची :


1. श्रीवास्तव, गिरीश चन्द्र, 1996, तालकोश, प्र.सं., पृ.–178, रूबी प्रकाशन, इलाहाबाद।
2. मिश्र, विजय शंकर, 2012, तबला पुराण, द्वि.सं., पृ.–85, कनिष्क पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।
3. शर्मा, भगवतशरण, अक्टूबर 2010, ताल प्रकाश, तेरहवॉ सं., पृ.–39, संगीत कार्यालय, हाथरस, उ.प्र.।
4. गोडबोले, मधुकर गणेश, 2007, तबला शास्त्र, नवीन सं., पृ.–73, अशोक प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद।
5. श्रीवास्तव, गिरीश चन्द्र, 1996, तालकोश, प्र.सं., पृ.–178, रूबी प्रकाशन, इलाहाबाद।
6. सिंह, प्रेम नारायण, 2011, बनारस घराने के तबला वादन में मुखड़ा, प्र.सं., पृ.–(XX), कनिष्क पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।
7. वशिष्ठ, सत्यनारायण, जुलाई 1994, तबले पर दिल्ली और पूरब, पंचम सं., पृ.–20, संगीत कार्यालय, हाथरस, उ.प्र.।
8. मिश्र, विजय शंकर, 2012, तबला पुराण, द्वि.सं., पृ.–85, कनिष्क पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।
9. सिंह, प्रेम नारायण, 2011, बनारस घराने के तबला वादन में मुखड़ा, प्र.सं., पृ.–(XX), कनिष्क पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।
10. मिश्र, लालमणि, 2011, भारतीय संगीत वाद्य, चौथा सं., पृ.–340, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली।
11. सिंह, प्रेम नारायण, 2011, बनारस घराने के तबला वादन में मुखड़ा, प्र.सं., पृ.–09, कनिष्क पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।

# A Language for Gogi : The Inherent Capacity to attain a Human Condition and Fantasies for Anthropomorphic Beasts or Feminine Beasts

**Dr. Binoy Paul***

**Abstract**

*Known as an Indian contemporary female artist, Gogi Saroj Pal was born in a small town in Uttar Pradesh called Neoli. She has a captivating personality and comes from a famous family. Her grandmother was a social worker, and her father was a freedom fighter. Only female protagonists are depicted in her recent paintings that celebrate sexuality. Using a unique approach to depict all of the horrific situations that women face, Pal has raised awareness of gender issues. To produce an artistic representation of these themes, she has studied a large number of literary works and mythologies. She is a real thinker and a virtuous artist because she understands how to symbolically express such problematic qualities. The Woman is her most frequently painted subject, reflecting her feministic influences in modern Indian art. It is a spectacular mash-up of Hindu mythology and her creativity.*

**Keywords:** *Indian art, Contemporary art, Painting, Gogi Saroj Pal*

**Methodology:** *The present paper is based on primary and secondary surveys. In the primary sources, a personal interview with an art critic, academician and art historian has been conducted by the author, and an interview guide has been followed. In the secondary sources, all published sources, such as books, journals, and online materials, have been reviewed by the author to determine the research gap relevant to the study.*

## Introduction:

Gogi Saroj Pal, a prominent Indian contemporary female artist, was born in Neoli, a small town in the state of Uttar Pradesh. Her grandmother was a social worker, and her father was a freedom fighter. She is charismatic and comes from a famous family. Only female protagonists are depicted in her recent paintings. She has been mixing Hindu mythology and her creativity in her artistic journey. Consequently, several questions have been raised and produced by the author about her paintings to understand the essence of her painting style. (Doniger, 1993)

She began her career as a graphic designer after graduating from the Vanasthali College of Art in Rajasthan in 1961. Her main mediums were woodcuts, linos, lithographs, and monoprints, among others, during this period, when she displayed a large number of artworks at the Lucknow Information Centre. She specialized in woodcut intaglio painting as there were few zine publications after the Chinese war.

As a charismatic individual, she comes from an illustrious family where her grandmother worked as a social worker, and her father served as a freedom fighter. Recently, she has emphasized the sexuality of female protagonists in her paintings. As an artist, she has combined Hindu mythology with her imagination in a fantastic amalgamation. She depicts women most often, which indicates her feminist encounters in modern Indian art. To understand her approach to painting, the author prepared some questions regarding her paintings. Despite being a bio-product, painting has its own identity, which can be seen in themes, compositions, structures, etc.

*Department of Visual Art, Assam University, Silchar

She further added that painting, or any produced work, is the property of civilization, not the artists or individuals. Rather than satisfying or approaching the universal spectator's rather individual one, a painting's meaning must be conveyed to satisfy or approach it. Art is a serious engagement that involves lots of energy and commitment.

**Discussion:**

The role of women in ancient Indian painting is discussed by Pal, who states that women have been depicted in ancient Indian paintings depending on their status, and as society developed, women's depictions also became more liberal as time progressed. Other factors, including mythological aspects and social values, also played a role in the changing representations of women in Indian paintings. (Mandakini, 2015)

Since earlier times, art was a medium of expression, not a mere commodity. Modern industrialization and marketing values have also contributed to the changing portrayal of women in society. According to the answer to the other question, relating to how she gets inspired or gives meaning, the way she lives, her curious nature, and her explorations of the environment gave her a lot of energy and force. She also stated that her paintings reflect the philosophical and mythological readings she has been exposed to since she was a child. Colors have played a major role in her paintings, enhancing not only the beauty of the paintings but adding value to space creation as well, but they have also been used to balance these themes. Pal's paintings are also very lively because she paints directly with colors. Indeed, Pal reinvents the mythological representation of women in her paintings. There is a remarkable contribution of the artist in respect of womanhood in Pal, as the protagonists are more liberal and empowered than in the previous one.

There are several terms used in ancient Indian art to describe how women are depicted in sculpture and painting, including *Devi, Nayika, Nagini, and Yakshini*. Stereotypical depictions of women persisted until the colonial era in the 1850s. Amrita Sher Gill was the first woman to revolutionize conventional depictions of women in art. Her art was dominated by the lady, with a mix of western and Indian models inspired by Ajanta wall paintings and *Pahari miniatures*. She established an "Indian" image in her paintings, a shift from an idealized lady to a woman in general. It has been difficult to find evidence of early female painters throughout history. She exemplified such women with her natural skin tones, sitting posture, and rough-textured clothing, among other things.

In 1970 she created a series called *"Reminiscent"* based on her experiences in a solum in old Delhi, where her figures were quite expressive and solid. Her understanding of Independence in a patriarchal society was heightened by experiencing the conditions of people at the time. While staying in the Jama Masjid area, she paints until the wee hours of the morning. She displayed a novelty in art in her paintings by her immense patience to sit and paint for hours and end in the Ibadite or playing posture, working vertically. Later, they worked on a series of images of wistful women. She looked at women from two different perspectives. For her, they were both subjects and objects. (Jain, 2015) *"Being a Woman"* was a series she painted in 1983 focusing on the widows of Banaras, and their insecurities, but still focusing on their self-determination. A woman in 1966 played the role of *Kunti*, another time she played Mother Earth, and in 1986 she played Hailey's comet. During her visit to Bishnupur, she saw *Menaka* steered by *Kartikeya* in medieval terracotta. The image of the half-horse, half-woman gave her a new subject for future years. Her figures became more expressive, showing a sense of self-determination and internal strength that Indian society demand greatly of women. In the *Nayika* series, tradition and

mythology are linked powerfully. In 1989, the *nayika* (heroine) became the protagonist of the drama, dance, and storyline in classical Indian art. In some instances, she was submissive, diminutive to the mall presence that controlled him in every conceivable way. Her *nayika* was a symbol of womanhood, her moods being influenced by her lover's presence and absence. She picked up images from her study of the Vedas, Puranas, and other ancient texts and synthesized them with the staunch realities of today. *"Homecoming"* is based on mythological images. This painting depicts a bird in a lush green landscape on a large canvas. They looked lonely, hiding under a dark sky in the forest, especially in the hills of Himachal Pradesh. Another bird figure that personified womanhood in terms of vision and experience was Kinnari. She recalled the days at Santiniketan in the year 1989 hoping to wait for migratory birds. Her experience was overwhelming upon observing these birds as they would frolic on the surface of the water, dipping deep to feel its depth. In addition to the *Kamdhenu* series, Pal created a series about women who are half women and half cows. As a reply to a query about her *Kamdhenu* series, she pointed out that while *Kamdhenu* appears in Indian mythology as a wish-fulfilling cow, there is no evidence in the literary sources to suggest that her wishes are fulfilled. According to her, she approached the topic as a question but unexpectedly addressed it through her paintings. (Nair, 1996)

She has created several series that reflect the plight of women, symbolically and sarcastically. Her most popular painting series is *"Kamdhenu"*, which depicts a woman with the body of a cow. *Kamdhenu* is an anthropomorphic creature made up of half a woman and half a cow. According to Hindu scriptures, a heavenly cow was created when the ocean was churned by Hindu deities. This story of ocean churning has been told in different Hindu scriptures for centuries. A Sanskrit word for love is *kama*, while a Sanskrit word for cow is Dhenu. *Kamadhenu* is a cow goddess who is also known as the mother of all cows. According to numerous hymns, all Hindu deities live within *Kamadhenu*. The worship of *Kamadhenu* has been this way since Hinduism began. According to tradition, the *Kamadhenu* (Cow Goddess) symbolized Indian womanhood and fulfilled its owners' every desire without expecting anything in return. Another Pal series, *Kinnari*, features a hybrid being once more.

Throughout Indian history, there have been many depictions of *kinnara*. Ajanta's paintings and sculptures, for example, are replete with references to the kinnara motif. These sculptures are often found at the edges of stupas. The worshippers hold flower-laden garlands or platters aloft in this situation. Typically, kinnara figurines are displayed with their right hand holding a garland and their left hand holding a plate. It is also possible to find images of Kinnaras in early Indian sculpture, including Bodhi-Drumas and Dharmaccakras.

In the *Kinnari* series, another major problem of women is addressed diplomatically. In the image above, it can be seen that a woman is portrayed with wings. Women are typically tied at the threshold of their homes, so this imagery of flying with wings reflects the dreams of every woman. There are no options for them as they are not allowed to go anywhere as per their will, or if they are allowed then they are not safe. In this context, the journey usually takes them through their imagination.

In 1992 she undertook a project *"Swayamvaram"* at the International Exhibition of Contemporary Art in Germany. In an installation titled *"Memory wall,"* she presented a woman's role as a *nayika* on the stage of life, ironically an unacknowledged one. Gogi's Wall is where all those cherished and unforgettable moments of their family life are framed and

displayed. Describe all the images recollected depicting and symbolically illustrating the life cycle and creating visual images for those who are onlookers. (Jain, 2015)

Women artists began to dominate the national and international scene in the 1970s and 1980s. Gogi Saroj Pal, among others, appeared in the 1960s. As women artists began to develop their activities in the early 1970s, specific social ideas, recall and memory, myths, and symbolism were used to tell and present their history. In addition to being incredibly creative and original, these women artists proved to be. The mythology of Hinduism, childhood memories, mythical birds and snakes, everyday objects of rambunctious children, demons, goddesses, family and friends, a dead and living city, folk motives, miniature traditions, and forms shifted to modern images, a combination of Persian Japanese and Chinese pointing techniques, and soon all of these women artists were painted and sculpted.

**Conclusion:**

To raise awareness of gender politics, Gogi Saroj Pal has depicted all of the horrible situations of a woman's life uniquely. To create an artistic representation of these themes, she has studied literature and mythologies. Because she understands how to symbolically convey problematic features, she is a real thinker as well as a virtuous artist. To establish new paradigms of power and force, she first investigated how women are hindered and limited. The strong female symbols she uses, such as Hat-Yogini and Nirbhaya, also contribute to her approach. She is fighting against patriarchal systems, which treat women as commodities, and provides remedies for this problem. By frightening them, she merely made them aware of social injustice, and then encouraged them to resist changing it.

**References :**

Burley, M. (2000). *"Hath-Yoga: Its Context, Theory and Practices",* Motilala Banarasidass, Delhi

Bose, M. (2018). *Gogi Saroj Pal: The Feminine Unbound*, Delhi Art Gallery

Doniger, W. (1993). "*Asian Mythologies*", University of Chicago Press

Jain, A. (2015). The Journey of Contemporary women artists of India from National to International. *JETIR , 2* (6), 831-833.

Mandakini, I. G. (2015). An Encounter with Gogi Saroj Pal: A Feministic Quest. *Art & Deal, 11* (85).

Nair, U. (1996). *"Gogi Saroj Pal: between Myth & Reality.*" In Expressions and Evocations: Contemporary *Women Artists of India*, by Gayatri Sinha, 124-133. New Delhi

यूजीसी–केयर सूचीबद्ध, पिअर रिव्यूड वार्षिक शोध पत्रिका

**स्तोम 2023**

# ललित कलाओं में साहित्य एवं संगीत : महत्त्व एवं परम्परा

**अमित कुमार शर्मा ***

**शोध–आलेख सार**

*ललित कलाओं में वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला, संगीत कला और काव्य कला की गणना होती है। उपयोगी कलाएँ मनुष्य की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति से संबद्ध हैं। उपयोगी कलाओं में भी थोड़ा–बहुत सौन्दर्यबोध का भाव तो रहता है, पर वह गौण है। कुर्सी, मेज आदि वस्तुओं में 'डिजाइन' का ध्यान रखा जाता है, किंतु यह डिजाइन प्रायः उपयोगिता की दृष्टि से बनाई जाती है। इस प्रकार उपयोगी कला व्यवहारजनित और सुविधाबोधी है तथा ललितकला मन के संतोष के लिए है। साथ ही, उसमें उस विशिष्ट मानसिक सौन्दर्य की योजना है, जो उपयोगितावाद से भिन्न वस्तु है। भावात्मक प्रदर्शन जिसका मुख्य ध्येय विशुद्ध आनन्द प्राप्ति हो, उसे ललित कला कहेंगे। ललित कला के उपयोग में पाँच में से केवल दो ही इन्द्रियों का उपयोग होता है– दर्शनेन्द्रिय (आँख) और श्रवणेन्द्रिय (कान), बाकी इन्द्रियों से हम जगत को जानते हैं किन्तु ललित कला में बाकी तीनों इन्द्रियों का कोई काम नहीं रह जाता। कई विद्वानों ने ललित कलाएँ पाँच मानी हैं।*

**मुख्य–शब्द** : *ललित कला, संगीत, साहित्य, संस्कृति, काव्य*

**प्रविधि** : *प्राथमिक एवं द्वितीयक माध्यमों द्वारा यह शोध–आलेख तैयार किया गया है ।*

यद्यपि कला को अखंड, अभिव्यक्त तथा अविभाज्य माना जाता है। सुविधा की दृष्टि से उसे वर्गीकरण के योग्य भी माना गया है। 'कामसूत्र' तथा 'शुक्रनीतिसार' में चौसठ, प्रबन्धकोष में 'बहत्तर' तथा ललितविस्तार में 'छियासी' कलाओं का उल्लेख प्राप्त होता है।[1] क्षेमेन्द्र ने अनेक कलाओं के नाम बताये हैं, किन्तु चौसठ कलाओं वाला मत ही अधिक मान्य है।[2] डॉ॰ श्यामसुन्दर दास ने उपयोगी कला और ललित कला को ही मान्यता दी है।[3] जिसको गुलाबराय आदि विद्वान भी मान्यता देते हैं। श्री आर॰ जी॰ कलिंगवुड का कथन है कि–कला एक जाति है, जो दो उपजातियों में विभक्त है– लाभदायक कलाएँ और ललित कलाएँ।[4] पाश्चात्य विद्वान 'हेगल' ने प्रतीकात्मक, प्रबन्धात्मक तथा भावात्मक कलायें मानी है। कतिपय विद्वान सामान्य कलाएँ और सांस्कृतिक कलाएँ– दो ही भेद मानते हैं, किन्तु अधिकांश विद्वान उपयोगी और ललितकला के पथ में है।[5] अतः उपयोगी और ललित कला– इन दो भेदों की मान्यता ही उपयुक्त प्रतीत होती है।

ललित कला में सौंदर्य का तथा उपयोगी कला में उपयोगिता का प्राधान्य होता है। ललित कलाएँ मनुष्य के नैतिक, बौद्धिक और भावात्मक विकास में योगदान देती हैं और उपयोगी कलाएँ उसके शारीरिक और भौतिक उत्कर्ष में सहायक होती हैं।[6] उपयोगी कला के अंतर्गत तमाम कारीगरी के कार्य आते हैं, जिनका दिन–प्रतिदिन के जीवन में उपयोग होता रहता है। कुम्हार की मिट्टी के बर्तन बनाने की कला से लेकर बड़े–बड़े हवाई जहाज तक की कलाएँ उपयोगी कलाओं के अंतर्गत ही आयेंगी।[7] और जो कलाएँ हमारी रागात्मक चेतनाओं और भावात्मक क्षुधाओं को संतृप्ति प्रदान करती हैं, वही वास्तव में ललित कलाएँ हैं।[8]

विद्वान ललित कला के सामान्यतः पाँच भेद मानते हैं– वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला, संगीत कला, काव्य कला। "वर्सफील्ड" इनके अतिरिक्त अभिनय कला, नृत्यकला और व्याख्याकला को भी नृत्य कला के अंतर्गत मानते हैं।[9] किन्तु इनका समावेश संगीतकला में तथा साहित्य के अंतर्गत नाट्यकला में हो जाता है। ज्ञानेन्द्रियों की दृष्टि से ललित कलाओं के दो वर्ग माने जाते हैं– दृश्य, वास्तुकला, मूर्त्तिकला और चित्रकला, श्रव्य संगीत और काव्यकला[10], किन्तु ध्यानपूर्वक देखें तो संगीत में नृत्य और काव्य में नाटक का समावेश होने के कारण काव्य और संगीत कला, दृश्य और श्रव्य दोनों ही श्रेणी में आती हैं।

ललित कलाओं को निम्नलिखित रूप में विश्लेषित किया जा सकता है :–

*पूर्व–शोधार्थी, पीएच॰ डी॰, संगीत एवं नृत्य विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

**1. वास्तुकला :**

वास्तुकला के अंतर्गत मन्दिर, गिरजाघर, स्मारक, प्रसाद तथा अन्य कलात्मक भवन आदि आते हैं। दक्षिण में देव मन्दिर, आवपर्वत के जैन मन्दिर, साँची के स्तूप, ताजमहल आदि वास्तुकला के उत्कृष्ट नमूने माने जाते हैं, जिनमें वास्तुकार की उत्कृष्ट भावना, सुरूचि एवं भव्यता आदि के दर्शन होते हैं। धर्मस्थानों में निर्मित कलश, गुम्बज, मिहराबें, जालियाँ, झरोखे आदि वास्तुकार के मानसिक भावों को स्पष्ट अभिव्यक्त करते हैं।[11] माध्यमों की प्रधानता होने के कारण उसमें सूक्ष्मता का अभाव है।

**2. मूर्तिकला :**

इस कला का मूर्त आधार वास्तुकला की अपेक्षा सूक्ष्म होता है। मूर्तिकला में प्रस्तरखण्ड, धातु, मृत्तिका आदि में मनोभावों, जीवधारियों की प्रतिच्छाया, शारीरिक और प्राकृतिक सौंदर्य का प्रदर्शन होता है। इसमें कुशल एवं प्रतिभासम्पन्न मूर्तिकार पाषाण, मृत्तिका आदि को स्थापित कर उसे सजीव एवं आकर्षक बना देता है। विभिन्न मुद्राओं एवं भावों से समन्वित तथा भारतीय संस्कृति की परिचायक खजुराहो आदि की मूर्तियाँ इस कला के उत्कृष्ट नमूने हैं।[12]

**3. चित्रकला :**

इस कला में मूर्तिकला की अपेक्षा मूर्ताधार अधिक कम रहता है। इसमें चित्रकार वस्त्र, काग़ज, काष्ठ, कांच आदि पर कूंची, कलम, रेखा तथा रंग आदि के माध्यम से बाह्य और अन्तः भावों को अभिव्यक्त करता है।[13] कुशल चित्रकार तो रेखाओं और विभिन्न रंगों द्वारा समस्त परिवेश, आकृति, वर्ण, मुद्रा आदि को सहज ही समाहित कर देता है। वह अपनी तूलिका या कलम से समतल या सपाट सतह पर स्थूलता, लघुता, दूरी और नैकट्य आदि दिखाता है। उसकी कृति में मूर्तता कम और मानसिकता अधिक रहती है ।[14]

**4. संगीतकला :**

संगीतकला चित्रकला से सूक्ष्मतर है। संगीत का आधार 'नाद' है। नाद के दो भेद हैं– अनाहत नाद और आहत नाद। आहत नाद संगीतोपयोगी होता है। स्वारादि संगीतात्मक– तत्त्व इसी से निसृतः होते हैं, जिनसे संगीत की सृष्टि होती है। संगीतकला में गायन, वादन और नृत्य का समावेश होता है, जो अन्योन्याश्रित है। यह कला गतिशील है। स्वर, ताल, लय सब संगीत के रूप हैं और कलाश्रित हैं। इनसे नृत्य वाद्य भी सम्बन्धित है।[15] संगीत सर्वग्राह्य एवं भावाद्दीपक होने के साथ–साथ नवरसों की अभिव्यक्ति में भी सक्षम है। इस कला से मानव ही नहीं, पशु–पक्षी तथा वातावरण भी प्रभावित है। संगीत कला रंजक हैं तथा आध्यात्मिक उत्कर्ष में सहायक है। यह कला चक्षुरिन्द्रिय एवं कर्णेन्द्रिय का विषय है। आज इस कला का क्षेत्र अधिक विस्तृत हुआ है, जिसका श्रेय विशेष रूप से सिने–संगीत को है। वर्तमान में संगीत पाश्चात्य और हिन्दुस्तानी संगीत के रूप में अधिक प्रचलित है।

**5. काव्यकला :**

काव्यकला का मूर्ताधार सूक्ष्मतम माना जाता है। काव्य का मुख्य आधार भाव है, क्योंकि प्रकृति और मानव–जीवन की अनुभूति से उत्पन्न भाव मानस–पटल पर संचित होकर काव्य के रूप में मुखरित हो जाते हैं। काव्य में भाव–सम्प्रेषण, सार्थक शब्दों के माध्यम से होता है। शब्दों से भाषा का रूप सामने आता है, अतः भावाभिव्यक्ति में समुचित भाषा का प्रयोग उपयुक्त है। "भाषा और भाव का जल–बीचि का–सा ही सहज सम्बन्ध है।[16] अस्तु, काव्य के साधन शब्द और अर्थ ही हैं जिनकी प्राप्ति हेतु महाकवि कालीदास ने पार्वती और परमेश्वर (शिव) की वन्दना की है।[17]

ललित कलाओं में संगीत का सहयोग, किसी–न–किसी रूप में प्राप्त होता है तथा संगीत भी इन कलाओं से सहयोग लेता है। वास्तुकला को किसी अंग्रेजी लेखक ने 'जमा हुआ संगीत' कहा है। संगीत की भाँति वास्तुकला की भी भाषा सार्वजनिक है।[18] वास्तुकला में संगीत को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ है। दक्षिण के देव–मन्दिरों के मण्डलों में सप्त स्वरों के साथ–साथ श्रुतियों के भी स्तम्भ प्राप्त होते हैं।

वेदपाठी ऋत्विजों के सहायक, उदात्त, अनुदात्त और स्वरित स्वरों को ध्वनित करने वाले स्तम्भ भी वास्तुकारी द्वारा निर्मित किए गए हैं। हमारे शिलाशिल्पियों के उत्कृष्ट नमूने संगीतजनक स्तम्भ हैं, जिन्हें बजाने से संगीतमय स्वर–लहरी निकलती है।[19] आधुनिक वास्तुकला तथा ध्वनि–पद्धति से समन्वित भवन आदि संगीत–कला के अनुरूप देखे जाते हैं। संचार–प्रसार–माध्यम–आकाशवाणी,

दूरदर्शन, चित्रपट, ग्रामोफोन कम्पनी, नाट्यगृह, कला–सभागार आदि के निर्माण में भी वास्तुकला संगीत का सहयोग लेता है। भवनों आदि में संगीत–वाद्य यंत्रों तथा नृत्य–मुद्राओं से युक्त नर्तकियों के चित्रों की रचना, वास्तुकार की संगीत मर्मज्ञता की सूचक है। संगीत के अतिरिक्त स्तम्भों, भवनों आदि में अन्तर्निहित कथाएँ और भावनाएँ वास्तुकला में साहित्य की अवस्थिति को भी अभिव्यक्त करती है। अतः वास्तुकला की गरिमा साहित्य और संगीत से परिपुष्ट हुई हैं।

संगीत, मूर्तिकला से भाव और कल्पना का वैचित्र्य प्राप्त करता है। मूर्ति सौंदर्य से प्रभावित संगीतकार के भाव स्वर–लहरी में थिरक उठते है। हवेली–संगीत का प्रचलन तो देव–मंदिरों की मूर्ति के आकर्षण का ही परिणाम है। संगीत में प्राप्त एकाग्रता, आनंद, मानसिक तृप्ति तथा हृदय– स्पर्शिता मूर्तिकला में भी देखी जा सकती है। नृत्य–भंगिमाओं तथा वाद्य–यंत्रों से समन्वित मूर्तियों में संगीत कला की अमिट छाप अभिव्यक्त होती है। अस्तु, मूर्तिकला संगीत की ऋणी है और संगीत मूर्तिकला से प्रभावित है। मूर्तिकला में काव्य का भाव–प्राधान्य भी दर्शनीय है।[20]

संगीत और चित्रकला में भी घनिष्ठ सम्बन्ध है। राग–रागिनियों के चित्रों में, रागादि के स्वरूप, गायन–समय, प्रकृति आदि को दर्शाने में चित्रकला सहयोगिनी है । यथा–भैरव, भैरवी आदि राग–रागिनियों के चित्रों से प्रातः गायन तथा स्वरूप का ज्ञान होता है।[21]

चित्रकला में भी संगीत के वाद्य–यंत्र और नृत्य मुद्राएँ आकर्षक उत्कर्षक हैं। इसलिये शान्ति निकेतन में संगीत शिक्षक के हाथ में चित्रकला की कूँची और चित्रकार के हाथ में दिलरूबा दिखाई दे जाये, तो किसी को तनिक भी आश्चर्य नहीं होता।[22] चित्रकला, भाव–कल्पना आदि की संयोजना में काव्यकला से सहायता प्राप्त करती है। काव्य में स्थित चित्रात्मकता, चित्रकला के प्रभाव को भी अभिव्यक्त करती है।

संगीत कला सभी ललित कलाओं की सहयोगिनी होने के साथ उनसे सहयोग भी प्राप्त करती है। सम्पूर्ण कलाएँ संगीत के लिये अपेक्षित बातों को पूर्ण करने के लिये व्याकुल रहती है।[23] तथा संगीत कला उन कलाओं को सौंदर्यमय–प्रभावोत्पादक, मर्मस्पर्शी बनाने में सहायक होती है। संगीत अन्य कलाओं में भी रंजकता, प्रभावशालिता, हृदय–स्पर्शिता भावाभिव्यंजकता आदि के उत्पादन में सहयोग प्रदान करता है।

संगीत के अभाव से काव्यकला पंगु–सी प्रतीत होती है, क्योंकि संगीत के स्वर, राग, लय, मात्रा, गति आदि का सहयोग उसमें प्राप्त होता है। इसलिये काव्य में संगीत की तरलता, लयात्मकता और गेयात्मकता स्पष्ट अभिव्यक्त होती है। संगीत भी पूर्ण भावाभिव्यक्ति हृदयस्पर्शिता, रंजकता आदि के लिये काव्य का मुखापेक्षी है।[24] संगीत में कविता का समावेश संगीत की प्रभावोत्पादकता को दुगुना कर देता है। कहीं–कहीं कविता स्वर और ध्वनि के माधुर्य पर इतनी निर्भर हो जाती है कि कविता संगीत की अनुगामिनी बन जाती है।[25] अनुप्रास अर्थात् वर्ण झंकार और छन्द आदि के रूप में काव्य संगीत के गुणों को अपना लेता है।[26] अतः संगीत अर्थबोध के लिये काव्य का सहारा लेता है और काव्य भी प्रभाववृद्धि के लिये संगीत का! दोनों एक–दूसरे के पूरक है।[27]

सभी ललित कलाएँ परस्पर एक–दूसरे की सहयोगिनी होकर भी अपना स्वतन्त्र महत्त्व रखती है। फिर भी विद्वानों ने स्थूलता और सूक्ष्मता के आधार पर इन कलाओं में काव्य और संगीत कला को उत्कृष्ट माना है। कतिपय विद्वानों ने आधार की सूक्ष्मता, प्रभाव, उत्साहवर्द्धकता, आनन्द की विपुलता और सार्वभौमिकता आदि की दृष्टि से संगीतकला को सर्वोत्कृष्ट कहा है।[28] काव्य को उत्कृष्ट मानने वाला वर्ग अमूर्त मानसिक भावों के अभिव्यंजक शब्द समूह और वाक्यों से काव्य का प्रादुर्भाव मानता है किन्तु शब्द समूह तथा वाक्य रचना एक तो मूर्त है, दूसरे शब्दों तथा वाक्यों का आकार संगीत के अमूर्त नादोत्पन्न सप्त स्वरों की अपेक्षा वृहतर है। इसके अतिरिक्त काव्य में अन्य कलाओं का समावेश मानकर काव्य को सर्वोपरि मानना भी न्यायोचित नहीं, क्योंकि संगीत अन्य कलाओं को अपने में समाविष्ट के साथ–साथ काव्य का भी समावेश कर लेता है। कारण यह है कि संगीत का आधार नाद काव्य का ध्वनिमय शब्द होता है तथा काव्य के शब्दों में सांगीतिक ध्वनियाँ विद्यमान रहती हैं। जहाँ तक काव्य में समग्र मनोभावों की अभिव्यक्ति का प्रश्न है, यह अभिव्यक्ति संगीत के स्वर, ग्राम, मूर्च्छना, लय आदि द्वारा भी संभव है। नवीन सृष्टि–संरचना की क्षमता जहाँ काव्य में हैं, वहाँ संगीत भी स्वरलहरी, लय, नृत्य–मुद्राओं के हाव–भाव आदि के द्वारा

विचरण कराने में सक्षम है। अतः संगीत कला की अपेक्षा काव्यकला को उत्कृष्ट मान लेना युक्ति संगत नहीं हैं, क्योंकि काव्य का संगीत से पृथक् होकर अस्तित्व ही संदिग्ध हो जाएगा।[29] इसलिए कहा जा सकता है कि काव्य और संगीत एक–दूसरे के पूरक है, दोनों में से एक को अलग करने से उसका अस्तित्व नाममात्र का रह जायेगा।

संगीत को सर्वोच्च स्थान देने वाला वर्ग संगीत को नाद–प्रधान होने से सूक्ष्मतर आधार वाला मानता है, किन्तु काव्य भी भाव–प्रधान होने से सूक्ष्मतम आधार से समन्वित है। प्रभाव की दृष्टि से संगीत के साथ काव्य भी कम प्रभावोत्पादक नहीं है। काव्य और संगीत दोनों ही समान रूप से श्रोता आदि के हृदय पर अमिट प्रभाव डालने में समर्थ हैं। उत्साहवर्द्धन का गुण जहाँ संगीत में प्राप्त होता है, वहाँ काव्य भी उत्साहवर्द्धन कुशलता से करता है।[30]

आनन्दानुभूति का आधिक्य संगीत में ही नहीं, काव्य में भी है। जहाँ संगीत की मधुर ध्वनिमय तान आनन्दमय कर देती है, वहाँ काव्य की कोमलकान्त पदावली और मधुर भावों की योजना आनंदित कर देती है। यद्यपि संगीत कला मानव, मानवेतर प्राणी, वनस्पति आदि को प्रभावित करती है और काव्य मानवमात्र को ही प्रभावित करता है, तथापि हिन्दुस्तानी संगीत में रूचि रखने वाला पाश्चात्य संगीत का तथा उत्तर भारत के संगीत से परिचित दाक्षिणात्य संगीत का श्रवण कर समझ नहीं सकता। आनन्दानुभूति किंतु भावोबल से कर सकता है। अतः संगीत सार्वभौम माना जा सकता है। भाव–प्रधान होने से काव्य को भी सार्वभौमिकता से समन्वित मान सकते हैं, क्योंकि काव्य किसी भी भाषा का हो, उसके भाव सर्वग्राह्य हो सकते हैं किन्तु भावाभिव्यक्ति एवं प्रभाव आधिक्य के कारण, फलस्वरूप काव्य की अपेक्षा संगीत को ही उत्कृष्ट मानना उचित प्रतीत नहीं होता है।

आनन्दानुभूति में सक्षम, मनोभावाभिव्यंजन, प्रभावोत्पादक, रसोत्पादक आदि होने के कारण काव्य और संगीतकला उत्कृष्ट है। परस्पर उत्कर्षक काव्य और संगीतकलाएँ अमूर्त्त सूक्ष्मतम भाव और नाद प्रधान होकर भी शब्दार्थ तथा स्वर, लय, नृत्य आदि में संपादित होकर, मूर्त्त बनकर 'सत्यं, शिवं सुन्दरं' की सृष्टि करती हैं। अतः काव्य और संगीत कलाएँ सभी कलाओं के महत्त्वपूर्ण, सूक्ष्माधार तथा महान उद्देश्यपूर्ति में सक्षम होने के कारण उच्च स्थान की अधिकारिणी हैं । अस्तु, इन दोनों कलाओं को सभी कलाओं से उत्कृष्ट तथा अन्योन्याश्रित स्वीकार करना ही न्यायसंगत एवं उचित है।

**संदर्भ सूची :**


1. त्रिपाठी, रामप्रसाद, सम्मेलन पत्रिका, कला अंक (1987), हिन्दी साहित्य, सम्मेलन इलाहाबाद, पृ॰ 476–484
2. त्रिगुणायत, डॉ॰ गोविन्द, शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त, प्रथम खण्ड (1950), भारती साहित्य, मंदिर, फैव्वारा, दिल्ली 1, पृ॰ 52
3. दास, डॉ॰ श्यामसुन्दर, साहित्यालोचन, (सं॰ 1988 वि॰), साहित्य–रत्न–माला कार्यालय, काशी, पृ॰ 11
4. कलिंगवुड, आर॰ जी॰, कला के सिद्धान्त, अनुवाद–डॉ॰ ब्रजभूषण पालिवाल, (संस्करण 1974), ऑक्सफॉर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लंदन, पृ॰ 24
5. त्रिगुणायत, डॉ॰ गोबिन्द, शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त, प्रथम खण्ड, (1950), भारती साहित्य मंदिर, फैव्वारा, दिल्ली, पृ॰ 52–53
6. प्रताप, प्रो॰ विश्वनाथ, कला एवं साहित्य : प्रकृति और परम्परा, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, पृ॰ 9
7. त्रिगुणायत, डॉ॰ गोविन्द, शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त, प्रथम खण्ड, (1950), भारती साहित्य मंदिर, फैव्वारा, दिल्ली, पृ. 54
8. अग्रवाल, डॉ॰ सुरेश, भारतीय काव्य शास्त्र के सिद्धांत (2000) नवीन संस्करण, अशोक प्रकाशन, नई सडक दिल्ली, पृ. 37
9. त्रिगुणयात, डॉ॰ गोबिन्द, शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त, प्रथम खण्ड (1950) भारती साहित्य मंदिर, फैव्वारा, दिल्ली, पृ. 54
10. प्रताप, प्रो॰ विश्वनाथ, कला एवं साहित्य : प्रकृति और परम्परा, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, पृ॰ 10
11. दास, डॉ॰ श्याम सुन्दर, साहित्यालोचन, (सं॰ 1988 वि) साहित्य–रत्न–माला कार्यालय, काशी, पृ॰ 12
12. साक्षात्कार – पूर्णचंद शर्मा, पूर्व प्रोफेसर, म.द. वि, रोहतक 28/11/2020
13. वही
14. दास, डॉ॰ श्यामसुन्दर, साहित्यालोचन (सं॰ 1988 वि॰) साहित्य–रत्न–माला कार्यालय, काशी, पृ॰ 15
16. पं॰ शारंगदेव, संगीत रत्नाकर, भाग–1 (1943), प्रथम स्वरगताध्याय, अडियार लाईब्रेरी, मद्रास, पृ॰ 60
17. राय, बाबू गुलाब, सिद्धान्त और अध्ययन, (1960), आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, पृ॰ 60

17. कालीदास, रघुवंश (2012), चौखंबा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 1/1, पृ॰ 15
18. राय, बाबू गुलाब, सिद्धान्त और अध्ययन (1960), आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, पृ॰ 61
19. गर्ग, प्रभुलाल, संगीत, मासिक पत्रिका, जून (1959), संगीत कार्यालय, हाथरस, उ॰ प्र॰, पृ॰ 31
20. साक्षात्कार, पूरणचंद शर्मा, पूर्व प्रोफेसर, म॰ द॰ वि॰, रोहतक, 28/11/2020
21. वही
22. वापट, विजय, पूर्वाग्रह, मासिक पत्रिका, अंक 48, भारत भवन न्यास, श्यामला हिल्स, भोपाल 1, पृ॰ 27
23. वही, पृ॰ 26
24. साक्षात्कार, सत्यवान शर्मा, प्रवक्ता संस्कृत, गुरुगाम, 11/09/2020
25. दास, डॉ॰ श्यामसुन्दर, साहित्यालोचन (सं॰ 1988 वि॰) साहित्य–रत्न–माला कार्यालय, काशी, पृ॰ 18
26. प्रताप, प्रो॰ विश्वनाथ, कला एवं साहित्य, प्रकृति एवं परंपरा, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, पृ॰ 14
27. वही, पृ॰ 16
28. गुप्ता, डॉ॰ उषा, हिन्दी के कृष्णभक्तिकालीन साहित्य में संगीत, (वि॰ सं॰ 2016), लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, पृ॰ 95
29. साक्षात्कार, सत्यवान शर्मा, प्रवक्ता, संस्कृत, गुरुगाम, 11/09/2020
30. वही

# संगीत एवं योग का अन्तर्संबंध

**राकेश पॉल खजूरिया***

**सारांश**

*संगीत दिव्य और पवित्र साधना है। संगीत एक आंनद का स्रोत है और आंनद ईश्वर का स्वरूप है। संगीत अपनी मंत्रमुग्धता, मधुर स्वर आदि के कारण ललित कलाओं में उच्चतम स्थान रखता है। विश्व ने संगीत को एक ललित कला के रूप में पहचाना और स्वीकार किया है, परंतु भारत ने इसको कला से बढ़कर योग के रूप में भी देखा है, क्योंकि योग का शाब्दिक अर्थ है, जोड़ना या मिलाना जिसका भाव, परमात्मा से अपना मन जोड़ना है। संगीत भी मन और आत्मा को परमात्मा से जोड़ने का एक सशक्त साधन है। भारतीय संगीत और योग वैदिक काल से ही आध्यात्मिकता के धारातल पर विराजमान रहे हैं, क्योंकि योग और संगीत दोनों को ब्रह्म–चिंतन का साधन स्वीकार किया गया है। नारद ने वर्षों तक योग साधना की और महादेव ने उनकी भक्ति से प्रसन्न होकर नारद को संगीत विद्या प्रदान की। राग–रागिनियों की रचना के समय भी संगीतकारों ने मस्तिष्क को केन्द्रित करने के लिए आंतरिक भाव को प्रकाशित करने और उन्हें नवीन धुनें प्रदान करने के लिए योग अभ्यास किया तथा संगीतकारों ने अपने मनोभावों और विचारों का अनुकूलन करते हुए नवीन धुनों की रचना की।जिस प्रकार योग एक विज्ञान है, उसी प्रकार संगीत भी विज्ञान है।*

***मुख्य शब्द*** *: संगीत, योग, साधना, चक्र, मोक्ष*

***प्रविधि*** *: द्वितीयक माध्यमों के अन्तर्गत विभिन्न पुस्तकों आदि के अध्ययन के बाद प्रस्तुत लेख तैयार किया गया है ।*

संगीत भावात्मक होते हुए भी पूर्ण रूप से गणित के विधान से जुड़ा हुआ है। 'विज्ञान' पूर्ण परख द्वारा प्राप्त परिणाम के कारण विज्ञान कहा जाता है, योग में यह सब प्रत्यक्ष सुलभ है, आज के समय में संगीत भाव–प्रधान होते हुए भी उस के प्रयोग से मनुष्य को होने वाली व्याधियों से मुक्ति दिलाना एक तरह का वैज्ञानिक परिणाम है। प्रागैतिहासिक भारत के दूरदर्शी तथा सिद्ध योगी ऋषि तथा महर्षियों ने आत्मा के मोक्ष मार्ग, साधन और समाधान, इसकी परमात्मा में लीनता और मानवता के हेतु चिर शान्ति की प्राप्ति के लिए संसार तथा उसके आकर्षणों को त्याग कर अरण्य एकांत में वास किया, और गंभीर चिंतन तथा कठोर तपस्या की, जो केवल साधना का विषय है।''[1] इस प्रकार भारतीय संगीत में राग और रागिनियों की सृष्टि तथा उद्भावना मुख्यतः अत्यन्त ही विकसित चेतन–शक्ति और सुविकसित मस्तिष्क का परिणाम है।''[2] इस प्रकार, संगीत एवं योग दोनों का मन–मस्तिष्क से सीधा संबंध है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखा जाय तो दोनों विषयों को श्वास नामक सेतु ने जोड़ रखा है। योग शास्त्र में नाद को विशेष महत्व दिया गया है। अनुभव का यही स्तर नादयोग है जिसमें अनेक ध्वनियाँ स्वयं अन्दर से प्रकट होती हैं, योग–साधना में नाद की परम महत्ता का संगीत–शास्त्र के साथ प्रगाढ़ सम्बंध है। योग–साधना का मूल उद्देश्य कुंडलिनी को जागृति करना हैं। मनुष्य–शरीर के अन्दर एक शक्ति–केन्द्र है जिसको कुण्डलिनी शक्ति कहते हैं। इसका आकार कुण्डलाकार होता है। इसको जब अभ्यास के द्वारा जागृत किया जाता है तो रीढ़ की हड्डी के नीचे स्थित कुण्डलिनी शक्ति शट्–चक्रों का भेदन करती हुई मस्तिष्क में स्थित सहस्त्रार चक्र तक जा पहुंचती है, जहाँ शिव एवं शक्ति का मिलन होता है, जिसे कुण्डलिनी जागरण कहते है।''[3] हठयोग के दो तत्त्व इड़ा और पिंगला हैं। इसमें 'ह' इड़ा नाड़ी और 'ठ' पिंगला नाड़ी का प्रतीक है। इसे विज्ञान की भाषा में सिम्पैथेटिक नर्वस सिस्टम और पैरासिम्पैथेटिक नर्वस सिस्टम कहते हैं। दोनों का योग ही हठयोग कहलाता है। इन दोनों नाड़ियों के मध्य में ज्योतिर्मय मार्ग है, जिसे सुषुम्ना कहते हैं। इसका मार्ग अतिसूक्ष्म है। योग का मुख्य लक्ष्य है– सुषुम्ना को जागृत करना।''[4] तब मनुष्य के पदार्थतत्व में परिवर्तन होता है। इस प्रकार योग एवं संगीत का आपसी गहरा संबंध है। दोनों में ही नाद की उपासना की जाती है। एक में आहत और दूसरे में अनाहत नाद प्रधान रहता है, और दोनों का केन्द्र–बिन्दु साधना है।

*उधमपुर, जम्मू–कश्मीर

वैदिक काल से भारतीय सभ्यता एवं सांस्कृतिक धरोहरों में से एक महत्वपूर्ण असीमित ज्ञान का भंडार है, भारतीय शास्त्रीय संगीत। आज वेद और विज्ञान के विद्वान यह मानते हैं कि संगीत वह कला और ज्ञान है जिसके श्रवण मात्र से मृत कोशिकाओं में जीवन का संचार होता है। भारत में संगीत एक यौगिक कला की तरह है, जिसका प्रयोग मनुष्य के नश्वर शरीर ही नहीं अपितु अपने स्वरों से आत्मा एवं शरीर को जोड़ने का कार्य करता है जिसको हिंदू शास्त्र एवं धर्म में मोक्ष की संज्ञा दी गई है। संगीत–साधक योग द्वारा अपने हृदय पर नियंत्रण कर अपने शरीर को एक प्रयोगशाला बनाकर जीवन के विभिन्न शक्तियों का प्रकटन करते हैं। संगीत योग की विशेषता है कि इसमें साधन और साध्य दोनों ही सूक्ष्म रूप से दृष्टिगोचर होते हैं। संगीत का आधार सात स्वरों का शरीर के सातों चक्रों को जागृत करने में महत्वपूर्ण योगदान है। सर्वप्रथम चक्र 'मूलाधार' जिसे जागृत करने में 'सा' स्वर का महत्व विशेष रूप से है। इस प्रकार संगीत के आरोही क्रम में शेष छः स्वर र, ग, म, प, ध तथा नि का सीधा संबंध शेष छः चक्रों स्वाधोस्थाना, मणीपुर, अनाहत, विशुधि, आज्ञा तथा सबसे ऊपर सहस्त्रार से है।''[5] आज का विज्ञान जिन आध्यात्मिक तथ्यों को खोजने में लगा है उसको हजारों वर्ष पूर्व ऋषि–मुनियों ने संगीतात्मक योग–साधना द्वारा खोज लिया था, जिनमें आत्म–दर्शन और मोक्ष तथा वैदिक काल की सर्वोत्तम उपलब्धि सामवेद के रूप में सक्षम है। सामवेद एक संगीत है। विज्ञान जगत ने आज स्वीकारा है कि विश्व के समस्त अणु–परमाणु जो आज इधर–उधर भाग रहे हैं, चाहे जड़ हों या चेतन, नाद ब्रह्म या स्पंदन की धरधराहट का परिणाम है, जो पुरुष और प्रकृति के सहयोग से हुआ है। इस स्पंदन को परमात्मा के निकटतम माना गया तथा योगियों ने इसकी सूक्ष्मता का स्पष्ट अनुभव किया है। संगीत–साधना में चक्रों पर अधिकार करना आवश्यक माना गया है। अनाहत चक्र के ऊपर विशुद्धि चक्र है, जिसमें सोलह पत्र : ओंकार, उद्‌गीथ, हुंकार, वषट, स्वधा, स्वाहा, ब्रह्मा, आत्मा, षड्‌ज, ऋषभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत, निषाद तथा विष स्थित है, तथा यहाँ सरस्वती का वास है। कंठ के उर्ध्व भाग विशुद्धि चक्र में शयन करने वाली कुछ योगियों को मोक्ष प्रदान करती हैं। योग–प्राणायाम के समान संगीत–साधना का अर्थ वायु को नियंत्रित करना है। यह कार्य मणिपुर चक्र के द्वारा संभव होता है । मणिपुर के नीचे स्वाधिष्ठान चक्र स्थित है। इसकी उपासना से क्रूरता, गर्व, मूर्च्छा, अवज्ञा एवं अविश्वास के भाव नष्ट हो जाते हैं तथा विनय व नम्रता का भाव उदय होता है। स्वाधिष्ठान चक्र अथवा ब्रह्म तीनों सप्तकों में स्वेच्छापूर्वक विचरण करते हुए नए लोक का सृजन करता है। स्वाधिष्ठान चक्र के नीचे मूलाधार चक्र इस स्थान पर कुंडलिनी रूप में ब्रह्मशक्ति रहती है। संगीत–साधना द्वारा साधक कुंडलिनी को ब्रह्मरंध्र में पहुंचाने से साधक अमर होकर जन्म–मरण से मुक्त हो जाते हैं। ब्रह्मरंध्र में स्थित मूलाधार चक्र सुधाधार चक्र नादोपासना का चरम बिन्दु है। मानव–शरीर में स्थित चक्रों के ऊर्जावान व संतुलन, सामंजस्य बनाए रखने के लिए नादोपासना का महत्व बनाया गया है। इन चक्रों के संतुलन पर मानव–शरीर का रोगी व निरोगी रहना निर्भर रहता है। योग–शास्त्रियों ने मनुष्य के स्थूल शरीर में दस चक्र बताए हैं। चक्र मानव–शरीर में स्थित वह स्थान है जिन पर प्राण–वायु को रोकने से परमब्रह्म के साक्षात्कार करने के विभिन्न सोपानों की प्राप्ति होती है। योग–शास्त्रों के अनुसार मनुष्य शरीर भी एक वीणा के समान है जिस प्रकार काष्ठ वीणा के तार श्रुतियों पर स्थित हो जाने के बाद सामान्य से पृथक् ध्वनि उत्पन्न करते हैं, तथा उसी प्रकार शरीर वीणा में जब साधक के स्वर सिद्ध हो जाते हैं तब उसकी ध्वनियाँ भी सामान्य ध्वनि से श्रुतिगोचर होती हैं। संगीत स्वयं में एक योग है जो षट्‌चक्रों के संचालन में महत्वपूर्ण योगदान देता है। स्वरों के क्रमिक विकास में इन षट्‌चक्रों की व्यवस्था सुसंगत ढंग से प्रभावित होती है। गाने से फेफड़े व हृदय–तंत्र मजबूत होते हैं, तपेदिक इत्यादि बीमारियों का भय नहीं रहता, जबड़े का अच्छा व्यायाम हो जाता है। नृत्य से सिर, गर्दन, कन्धा, छाती, पैर व पेट का व्यायाम हो जाता है। समस्त शरीर में खून का संचार होने से स्फूर्ति पैदा होती है । संगीत भी स्वरों द्वारा की जाने वाली एक प्रकार की साधना व प्राणायाम है जिससे शरीर के भीतरी अवयवों का व्यायाम हो जाता है और ऑक्सीजन की वृद्धि भी होती है। इसलिए गायन को यौगिक स्वास्थ्य–साधन भी कहते हैं। शिवजी एक महान योगी होने के साथ–साथ एक महान संगीतज्ञ भी थे। उनके डमरू से ताल–वादक तथा नृत्य की मुद्रा से नर्तक होने का प्रमाण मिलता है, इसीलिए वे 'योगीराज' एवं 'नटराज' के नाम से विख्यात हैं। श्री कृष्ण एक महान योगी होने के साथ–साथ एक महान संगीतज्ञ भी थे, उनके मुरली–वादन एवं नृत्य से लोग मंत्र–मुग्ध हो जाते थे, इसीलिए उन्हें 'नटवर' एवं 'योगेश्वर' के नाम से जाना जाता है।

योग एवं संगीत दोनों की समान पद्धतियाँ हैं, जैसे– योग में सात चक्रों का वर्णन है, उसी प्रकार संगीत में सात स्वरों का वर्णन किया गया है। महर्षि पतंजलि ने योग में 8 अंगों का वर्णन किया है, भरत मुनि ने 8 रसों का वर्णन किया है। संगीत एक यौगिक विद्या है जो मानव को आत्मोन्नति की चरम सीमा अर्थात् मोक्ष के द्वार तक पहुँचा देता है। संगीत के स्वर मन को एकाग्रचित कर इतना अधिक लीन मग्न और स्थिर कर देते हैं कि हृदय की सारी चंचल वृत्तियाँ शांत होकर अंतर्मुखी हो जाती हैं। संगीत का महान गुण है कि वह चित्तवृत्तियों को शांत तथा एकाग्र कर श्रोताओं को तन्मय कर देता है। इसलिए जप, तप और ध्यान से भी अधिक महत्व भजन और कीर्तन का माना गया है। ईश्वर–प्राप्ति के अनेक साधन हैं, जैसे–ज्ञान योग, भक्ति योग, मंत्र योग, कर्म योग आदि।

**संगीत एवं योग : दोनों के दो भेद हैं :–**

**संगीत के भेद :**

**मार्गी संगीत**– मार्गी संगीत में मोक्ष प्राप्त करने के मार्ग को संगीत कहते हैं। वैदिक काल में इस संगीत को ईश्वरोपासना का माध्यम बताया गया है।

**देशी संगीत** – साधारण लोगों द्वारा प्रयोग किए जाने वाले संगीत को देशी संगीत कहते हैं।

**योग के भेद :**

**महायोग**– आत्मा को एकाग्रभाव तथा योग के माध्यम से ईश्वर का चिंतन किया जाता है उसे महायोग कहते हैं। वैदिक काल में ऋषि–मुनि द्वारा इसका अभ्यास किया जाता था।

**अभावयोग**– जब शून्य तथा गुणों से रहित रूप से चिंतन किया जाता है तब उसे अभाव योग कहते हैं। इसका अभ्यास साधारण जनता द्वारा किया जाता है।

संगीत एवं योग द्वारा मनुष्य जीवन के सही लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। मनुष्य जीवन का उद्देश्य मात्र जन्म और मृत्यु नहीं है बल्कि जीवन का उद्देश्य चारों पुरुषार्थ अर्थ, धर्म, काम तथा मोक्ष को प्राप्त करना है। योग एवं संगीत–साधना से मनुष्य अपने मानसिक संतुलन को यथावत बनाए रखते हुए भौतिक सुखों के साथ जीवन की उदासीनता को दूर करते हुए शांति प्राप्त कर सकता है। वर्तमान समय में संगीत और योग को रोग–निवारक माना गया है। योग द्वारा मनुष्य शरीर, मन और मस्तिष्क को साधता है, वहीं संगीत आत्मा को शुद्ध करता है। संगीत की साधना के लिए अष्टांगयोग का पालन करने से आंतरिक भावात्मक पवित्रता, धैर्य, लग्न, इंद्रियों पर संयम तथा एकाग्रचित होने की क्षमता आती है। प्राणायाम से दीर्घ श्वास धारण करने की क्षमता आती है जो गायन में संगीत की धारा का प्रवाह बनाए रखने के लिए अनिवार्य तत्व है। इस प्रकार योग के सात अंग जिस प्रकार समाधि की अवस्था तक पहुँचाने में पूर्वपीठिका का कार्य करते हैं, उसी प्रकार संगीत–साधना में भी समाधि को छोड़कर शेष सात अंग संगीत को चरमोत्कृष्ट अवस्था तक पहुंचाने में सहायक होते हैं। भारतीय परंपरा में संगीत का प्रयोग दार्शनिकों, योगियों, भक्तों आदि के द्वारा परमानंद की प्राप्ति के लिए किया गया है। संगीत का गायन, वादन, श्रवण इत्यादि योग के समान है, इसे योग की श्रेणी में रखा है। कई बार मस्तिष्क में जो तनाव–थकान उत्पन्न हो जाता है, उसके निराकरण में योग आसनों का अभ्यास अत्यंत उपयोगी होता है। ऐसे में संगीत न केवल मस्तिष्क की थकान को दूर करता है, बल्कि शरीर को ताजगी व ऊर्जा प्रदान करता है। संगीत द्वारा शरीर मन, आत्मा व मस्तिष्क में ऐसा संतुलन स्थापित होता है कि जीवन–निर्वाह अबाध गति से चलता जाता है। चित्तवृत्तियों का निरोध योग है तथा संगीत द्वारा यह कार्य मूलतः होता है। संगीत में षट्चक्रों की महत्ता पर योगियों ने विशेष बल दिया है। योग में नाद को विशेष महत्व दिया गया है। योगियों की भाषा में संगीत नाद–योग है। राग–रागिनी की रचना के समय भी संगीतकारों ने अपने दिमाग को केंद्रित करने के लिए, अपने आंतरिक भावों को प्रकाशित करने और उन्हें नवीन धुनें देने के लिए योग का अभ्यास किया। उसके बाद संगीतकारों ने अपने मनोभावों और विचारों का अनुकूलन करते हुए नवीन धुनों की रचना की।''[6] गायन, मृदु व्यायामों का उत्तम प्रकार माना गया है। इसके अभ्यासियों के फेफेड़ों का बड़ा सुंदर व उपयोगी व्यायाम हो जाता है। दौड़, कुश्ती आदि उग्र व्यायामों में साँस की गति तेज हो जाने से फेफड़ों की कसरत हो जाती है, पर गायन द्वारा जो फेफेड़ों का मृदु व्यायाम होता रहता है, उसके गुण अनुपम व अवर्णनीय होते हैं।''[7] योग एवं संगीत दोनों ही मनुष्य के अर्न्तमन पर व्यापक प्रभाव डालते हैं, विशेषकर कंठ संगीत के प्रशिक्षण से विद्यार्थी का शारीरिक, बौद्धिक एवं नैतिक तीनों प्रकार का विकास होता है। मनुष्य के

मस्तिष्क में उपस्थित विभिन्न मानसिक क्रियाओं से होता हुआ संगीत संपूर्ण शरीर में रस–संचार करता है। मांसपेशियों में ऊर्जा बढ़ाता है, और इसका परिणाम चमत्कारिक हो जाता है। संगीत–साधना के द्वारा रोग–निवारण की क्षमता अधिक हो जाती है। संगीत–साधना में जो स्वर–साधना की जाती है वह त्राटक साधना के समतुल्य है। जब भी भाव सहित स्वर–साधना से संगीत का अनुगमन किया जाता है तो संगीत विभिन्न स्थितियों में अलौकिक शक्तियों को प्रकाशित करता है।

**निष्कर्ष** : निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि योग तथा संगीत स्वतंत्र होने के साथ–साथ अन्योन्याश्रित भी हैं। योग एवं संगीत दोनों ही मोक्ष–प्राप्ति के प्रबल साधन हैं। अगर साधना ठीक ढंग से की जाय तो समाधि की स्थिति को प्राप्त किया जा सकता है, उसी प्रकार गायन की उच्चस्तरीय स्थिति को पाया जा सकता है। संगीत एक प्रकार का योग–साधना है, संगीत से मनुष्य का आध्यात्मिक विकास होता है, संगीत से मनुष्य के संपूर्ण शरीर का व्यायाम हो जाता है। अतः संगीत को महान साधना कहना उचित होगा क्योंकि उससे ब्रह्म को प्राप्त करने की सिद्धि पाई जा सकती है। संगीत में योग–क्रियात्मक रूप में संगीत का आधार नाद होता है। नाद संपूर्ण संगीत का जन्मदाता है। सृष्टि की रचना का कारण भी नाद है। संगीत में लय और भाव का गूढ़तम संबंध है। लय का सांख्य योग, अध्यात्म वेदान्त, भक्ति, साहित्य, संगीत, वाद्य तथा नृत्य इन सभी विषयों में समान चरण है। प्राण शरीर में एक लयात्मक संचरण करता है। लय और ताल श्वास–प्रश्वास के माध्यम से गायन व वादन को लयमय बनाता है। आज संगीत एवं योग दोनों के संयुक्त प्रभाव को जानने के लिए वैज्ञानिकों ने कई सफल परीक्षण एवं निरीक्षण किए हैं। नाद–योग का आधार लेकर अनेक मनोवैज्ञानिक एवं मनोचिकित्सक संगीत एवं योग चिकित्सा केंद्र खोलकर मनोरोगियों की चिकित्सा का परम कार्य कर रहे हैं।

**संदर्भ सूची** :

1. वर्मा, डॉ. राजीव, पारीक, डॉ. नीलम, भारतीय संगीत का आध्यात्मिक स्वरूप, अमर ग्रंथ पब्लिकेशंस, दिल्ली, 2004, पृष्ठ–159.
2. वही, पृष्ठ–153.
3. मिश्रा, डॉ. नीता, संगीत में नाद रूप व ध्वनि पक्ष, निर्मल पब्लिकेशन, दिल्ली, 1996, प्रथम संस्करण, पृष्ठ– 30.
4. डॉ. अखिलेश, संगीत कला विहार, नम्बर 2004, पृष्ठ– 13.
5. श्रीवास्तव, डॉ. संगीता, संगीत चिकित्सा, पब्लिशर्स दयानंद गर्ल्स पी.जी. कालेज़, प्रकाशन संगीत विभाग, 2011, पृष्ठ–272.
6. जोशी, उमेश, भारतीय संगीत का इतिहास, मानसरोवर प्रकाशन, फिरोजाबाद, 1957, पृष्ठ–1.
7. संगीत, मासिक पत्रिका, संगीत कार्यालय, हाथरस, जुलाई 1994, पृष्ठ– 43.

# ध्रुपद गायन शैली एवं ख्याल गायन शैली का सौन्दर्य

**डॉ. आशुतोष बाजपेयी***

**सारांश**

*भारत में प्राचीन ध्रुपद गायन शैली एक विशिष्ट शैली के रूप में प्रचलित है । स्वर लगाने का अंदाज, लयकारी, राग की शुद्धता या पदों में निहित उत्कृष्ट साहित्य की निष्पन्नता आदि के कारण इस गायन शैली को उत्कृष्ट माना जाता है । इस शैली में नाद योग से साक्षात्कार कराने की क्षमता है । ध्रुपद गायन शैली का अस्तित्व प्राचीन समय से ही है, परंतु मध्य युग में मान सिंह तोमर ने इसके संरक्षण एवं सवंर्द्धन की स्पृहणीय भूमिका निभायी तथा इसके प्रचार–प्रसार पर विशेष बल दिया । इस गायन शैली में काकु भेद, मींड, श्रुति, गमक, राग–भाव के अनुरूप बंदिश की प्रस्तुति आवश्यक मानी जाती है । इसको साधने के लिए गुरु का सान्निध्य परमावश्यक है ।*

*दूसरी शास्त्रीय गायन शैली ख्याल है, जो अधिक प्रचलित है । 14वीं शताब्दी में अमीर खुसरो और 15वीं शताब्दी में जौनपुर के नबाब सुल्तान हुसैन शाह शर्की ने ही शास्त्रीय संगीत में ख्याल शैली को प्रचलित किया है । इसके पूर्व कौव्वाल अपने लोक संगीत के ढंग से ख्याल गाते थे । आज ख्याल गायन में हम खुले आलाप करते हैं जो आवश्यक नहीं कि तालबद्ध हो परंतु उनमें भी छुपे हुए अवयवों का अपना स्थान या सौंदर्य है । तालरहित आलाप करते हुए सम से पूर्व मुखड़ा बंदी कर सम दिखाने का अपना एक अलग ही सौन्दर्य है ।*

**बीज शब्द** : *शैली, ध्रुपद, ख्याल, गायन, आलाप*

**शोध–प्रविधि** : *पुस्तकों के अध्ययन के बाद इस शोध–पत्र का संयोजन किया गया है।*

भारत में ध्रुपद गायकी निश्चित रूप से एक विशिष्ट गायन शैली है जो नाद योग से साक्षात्कार कराने में समर्थ है। वास्तव में इस गायन शैली में स्वर लगाने का अंदाज या फिर लयकारी एवं राग की शुद्धता या पदों में निहित उत्कृष्ट साहित्य की निष्पन्नता आदि के कारण आज भी इसे उत्कृष्ट माना जाता है। इस विशिष्ट गायन शैली के प्रति प्रख्यात ध्रुपद गायक पंडित विनोद कुमार द्विवेदी की काव्यात्मक भावना इस प्रकार द्रष्टव्य है[1] :–

ध्रुपद अन्तर्नाद है अचल अटल गति मान ।
योग मार्ग आराधना, सुर लय ताल प्रधान ।।
छंद सकल अथ्य व्यक्ति रस, सुन्दर भाव प्रधान ।
सुंदर सरल अति गूढ़ है गुनि जन करत बखान ।
अति गंभीर पति पूरन, मान सिंह की आन ।
सकल गुनन भरी माधुरी, हरिदास की प्राण ।।
सांगीतिक हर विधा की जननी इसको जान ।
सामवेद पोषित विमल, ध्रुपद गान महान ।।

उपर्युक्त पंक्तियों में ध्रुपद की सौन्दर्यात्मकता का स्पष्ट चित्रण है। ध्रुपद को विशिष्ट स्थान दिलाने में ग्वालियर नरेश मान सिंह तोमर (1486–1516) का नाम आता है। कुछ लोग इन्हें ध्रुपद का अविष्कारक भी मानते हैं, परंतु इससे पूर्व भी ध्रुपद गायन शैली अस्तित्व में थी। मध्य युग में मान सिंह तोमर ने इसके संरक्षण एवं संबर्द्धन में अपनी स्पृहणीय भूमिका निभायी। उन्होंने अपने दरबारी गायकों के माध्यम से इसके प्रचार–प्रसार पर विशेष रूप से बल दिया।

ध्रुपद के वास्तविक रूप को दिखाने के लिए काकु भेद, मींड, श्रुति, गमक, राग–भाव के अनुरूप बंदिश की प्रस्तुति आवश्यक मानी जाती है। इसे आसानी से सुनकर प्राप्त नहीं किया जा सकता है। इसे प्राप्त करने के लिए गुरु का सान्निध्य परमावश्यक है। वास्तव में ध्रुपद गायन में पदों के सौदर्यात्मक गुणों को हृदय से समझना पड़ता है। इसलिए स्वरों की चासनी में पद में निहित साहित्य को भिंगोये बिना गान के सौन्दर्य को प्रदर्शित नहीं किया जा सकता है। मात्र ध्रुपद गायकी के माध्यम से समग्र भावनाएँ, कल्पनाएँ, संवेदनाएँ तथा समग्र रसों का प्रस्फुटन संभव है।

*10+2 प्रोजेक्ट बालिका उच्च विद्यालय, बगहा–1, पश्चिम चम्पारण

यह सत्य है कि इस कालखंड में लोगों के पास समयाभाव है, ऐसी परिस्थिति में घंटों आलापचारी का प्रदर्शन करना, बोलबाँट, तिहइयों का लुकाछिपी आदि पदों में निहित साहित्यिकता को विनिष्ट कर देता है और गायन उद्देश्यहीन सिद्ध होता है। आज ध्रुपद गायकों को ऐसा करने से बचना होगा। यह सत्य है कि ध्रुपद गायन में आलाप का महत्व सर्वोपरि होता है। इसमें मंगलसूचक वर्णों का व्यवहार होता है जिनको 'तेनक' कहा जाता है। त, र, न, आदि वर्ण 'ऊँ अनंत हरिनारायण तरन तारन' महामंत्र से अनुस्भूत है। आलाप के माध्यम से ही राग एक फूल की तरह खिलते हैं तथा इसकी गंध चतुर्दिक फैलती है तथा आनंद का उत्सर्जन करती है। राग निरुपण में आलाप की विशिष्ट भूमिका होती है। आलाप के द्वारा ही राग एवं रस को उत्पन्न किया जा सकता है। परंतु आलाप की विशिष्टता को समझने के लिए श्रोताओं के पास धैर्य का आभाव होता है। इस प्रकार ध्रुपद के मंगलसूचक वर्ण अब श्रोताओं के लिए प्रासंगिक नहीं रहे। अतः गायक को इससे समझौता करते हुए, इसकी सौंदर्यत्मकता के महत्व से समझौता करते हुए, इसे पाँच से दस निमट में सीमित करने की प्रविधि को अपनाना पड़ेगा। ध्रुपद गायक यह अच्छी तरह जानते हैं कि गायन में उन्हें स्थायी, अंतरा, संचारी तथा आभोग को भी दिखाना होता है। आज ध्रुपद गायक संचारी तथा आभोग का गायन प्रायः छोड़ते जाते हैं। पदों का लालित्य एवं सौन्दर्य संपूर्ण पदों के गायन में ही परिलक्षित होता है। परन्तु कुछ कलाकार आज भी चारों चरण का गायन करते हैं। एक बंदिश में पदों की सौंदर्यात्मक विशिष्टता का हम इस प्रकार अवलोकन कर सकते हैं–

**राग–तोड़ी, ताल–चारताल[2]**

स्थायी– आदि ब्रह्म निराकार
तेरो प्रकृति शक्ति सगुण
तू ही त्रिगुण रच्यो संसार
अंतरा– तू ही गगन महि पसार
तू ही पवन–पावक पानि
लिये शिर मंडल
भूमि भार
संचारी– तू ही रकार तू ही मकार
तू ही प्रथम ओंकार
लेत दश अवतार
आभोग– राम–कृष्ण विनत सुनहुँ
अबकी बार मोहि उवार

उपर्युक्त ध्रुपद में इसकी सौंदर्यमयता आभोग में ही प्रकट होती है। भक्त का निवेदन तथा उसकी चाहत को मात्र दो या तीन चरणों में नहीं देखा जा सकता है। आज ध्रुपद को समृद्धशाली बनाने के प्रयास चल रहे हैं, अब इसके श्रोताओं का विशिष्ट वर्ग भी तैयार हो रहा है।

14वीं शताब्दी में अमीर खुसरो और 15वीं शताब्दी में जौनपुर के नबाब सुल्तान हुसैन शाह शर्की ने ही शास्त्रीय संगीत में ख्याल का प्रचार किया। इसके पूर्व कौव्वाल लोक संगीत के ढंग से ख्याल गाते थे।[3] गंभीर ढंग से ख्याल की रचना का प्रथम प्रयास तत्कालीन ध्रुपद शैली में किया गया, फलतः इसकी संरचना में ध्रुपद की अपेक्षा सरलता थी और इसके पश्चात् विविध ढंग के ख्याल का विकास हुआ तथा इसे विभिन्न रूप से अलंकृत किया गया। ख्याल के प्रथम प्रवर्तक अमीर खुसरो को माना जाता है। खुसरो अपने पीर हजरत निजामुद्दीन औलिया के खनकाह में सूफियों का भक्ति गान 'कौल' सुना करते थे, कौल की गान शैली को कव्वाली कही जाती है। कव्वाल गायकों को गाते–गाते बीच–बीच में कल्पनाएँ सूझती है, विभिन्न प्रकार की तानों आदि से कल्पना को साथ कर उसे विशेष रूप से हृदयग्राही बनाते हैं। कौव्वाली की इस प्रकार की गायन शैली से प्रभावित होकर इस गीत शैली के काल्पनिक पक्ष का सौंदर्यमय उपयोग किया गया। अमीर खुसरो की इस प्रकार की रचनाएँ आगे चलकर ख्याल की जननी बनी।[4]

ख्याल गायन के अंतर्गत आलाप की प्रस्तुति ताल–सहित और ताल–रहित दोनों प्रकार से की जा सकती है। आज ख्याल गायन में हम खुला आलाप करते हैं जो आवश्यक नहीं कि तालबद्ध ही हो परंतु उनमें भी ताल के छुपे हुए अवयवों का अपना स्थान और सौंदर्य है। तालरहित आलाप करते हुए सम से पूर्व मुखड़ा बंदी कर सम दिखाने का अपना एक अलग ही सौंदर्य है। इस प्रकार के अतिबद्ध अताल स्वरूप आलाप 'रागालाप' का उदाहरण है। दूसरी ओर बिनद्ध और सताल आलाप 'रूपकलाप्ति' के प्रतिग्रणिका, स्थाय भंजनी तथा रूपक भंजनी का उदाहरण है।[5]

कतिपय विद्वानों की मान्यता है कि ध्रुपद के विस्तृत आलाप के आधार पर ही विलंबित ख्याल का विकास हुआ। जिस तरह ध्रुपद के आलाप में निरर्थक शब्दों के आधार पर स्वर–विन्यास किया जाता है, उसी तरह बिलंबित ख्याल में मुखड़ा एवं पद को आधार मानकर विस्तृत स्वर विस्तार

किया जाता है। ध्रुपद का आलाप लय–बद्ध होते हुए भी तालबद्ध नही होता, परंतु ख्याल का विलंबित रूप तालबद्ध होता है।[6]

सौन्दर्यात्मक दृष्टि से यदि विचार करते हैं तो ख्याल गीतों में मुख्य रूप से शृंगारिक भावों पर बल दिया जाता है। ख्याल के अलंकारों के अंतर्गत भीड़, गमक, खट्का, जमजमा, अलंकार का प्रयोग होता है। पहले यह ध्रुपद गायन में भी प्रयुक्त हुआ करता था इसका परिवर्तित रूप ख्याल में प्रयोग किया जा रहा है। ख्याल में मात्र शैली बदली है, तकनीक बदला है। शब्द और स्वर प्रयोग के आधारभूत सिद्धान्त ध्रुपद गायन से ही प्राप्त हुए हैं।[7] ख्याल के अंतर्गत खुले हुए हैं, शृंगारिक भाव में लचीलापन दिखता है, गायन में स्वच्छंद विचरण को प्राथमिकता दी जाती रही है। परंतु इस गायन शैली का विलंबित कभी–कभी श्रोताओं को बोर करने लगता है। तभी तो प्रसिद्ध ठुमरी गायक कहते हैं कि ध्रुवपद से यदि आलापचारी को सीमित कर दिया जाय तथा ख्याल से विलंबित को सीमित कर दिया जाय तो दोनों ही शैलियों को सुननेवाले ज्यादा पसंद करने लगेंगे।

इस प्रकार ध्रुपद एवं ख्याल दोनों ही शैलियाँ अपनी–अपनी सौंदर्यात्मक विशिष्टता के कारण आद्यपर्यंत अपना अस्तित्व बनाये हुए हैं। आवश्यकता है, संगीत के सच्चे साधकों की जो गुरु के सान्निध्य में रहकर इन विशिष्टताओं पर विशेष रूप से ध्यान दे।

**संदर्भ सूची :**

1. द्विवेदी, विनोद कुमार (पं.), ध्रुपद गायकी की प्रासंगिकता एवं उसके विविध रंग, अनब्द लोक, अंक–1, पृ. 25
2. झा, चण्डेश्वर (डॉ.), ध्रुपद शिरोमणि राम चतुर मल्लिक, पृ. 120–121
3. प्रकाश, डॉ. वेद, भारतीय संगीत : ध्रुवपद और दरभंगा घराना, पृ. 165–166
4. वही, पृ. 1667–168
5. माथुर, सृष्टि (डॉ.), ख्याल गायन में आलाप, अनघद लोक, अंक–1, पृ. 21
6. प्रकाश, डॉ. वेद, भारतीय संगीत : ध्रुवपद और दरभंगा घराना, पृ. 169
7. वही, पृ. 171

# मंदिरों एवं अन्य धार्मिक संस्थाओं में संगीत का प्रयोग

**डॉ. महिमा***

**शोध पत्र–सार**

*कला का मानव–जीवन में घनिष्ठ संबंध है। संगीत को ललित कलाओं में श्रेष्ठ माना जाता है। संगीत की अभिव्यक्ति माध्यम नाद है। नाद के दो प्रकार हैं– आहत व अनाहत। आहत नाद से ही अनाहत नाद की अनुभूति होती है और अनाहत से ब्रह्म की, जब संगीतज्ञ को अनाहत नाद की अनुभूति हो जाती है तब उसके लिए भौतिक आहत नाद का कोई अर्थ नहीं रह जाता है, जैसे जब भक्त आनन्द की चरमावस्था को प्राप्त कर लेता है तो अपने इष्ट के दर्शन उसे अन्तर्मन में ही हो जाता है।*

*मानव–जीवन का परम लक्ष्य परमात्मा का साक्षात्कार माना गया है, और इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु संगीत सबसे अच्छा माध्यम है। हमारे देश में संगीत को केवल मनोरंजन का साधन न मानते हुए उसे भक्ति एवं आध्यात्मिकता के साथ ही जोड़ा गया है। हमारे प्राचीन संगीतज्ञों ने भी शरीर के साथ–साथ आत्मा के विकास हेतु धर्म तथा दर्शन के मौलिक तत्वों को संगीत में सम्मिलित किया और नाद के माध्यम से ब्रह्म–साधना तथा ईश्वरोपासना को ही कला की सच्ची शक्ति माना है। मानव–जीवन के विविध धर्मानुष्ठानों, पूजा–विधानो में संगीत का प्रयोग अनुष्ठानों व क्रियाकांडो को कई गुना शक्तिशाली बना देता है। वर्तमान समय में भी मंदिर एवं अन्य धार्मिक संस्थाओं में भी पूजा–पाठ, कीर्तन, प्रवचन आयोजित होते हैं। गायन, वादन तथा नृत्य तीनों विधाओं में आध्यात्मिकता प्रमुख रूप में पाया जाता है। विभिन्न धार्मिक स्थानों पर होने वाले भजन, पूजन, अर्चना तथा कीर्तन में संगीत का महत्वपूर्ण स्थान है।*

**मुख्य शब्द** : *संगीत, मन्दिर, धार्मिक संस्थान, ईश्वरोपासना, आध्यात्म*

**प्रविधि** : *द्वितीयक स्रोतों से सामग्री संकलित की गई है।*

मनुष्य को अपना जीवन गतिमान बनाए रखने के लिए जिस प्रकार भोजन, वस्त्र, आवास तथा अन्य भौतिक पदार्थों की आवश्यकता होती है उसी प्रकार उसे क्रमबद्ध एवं सुसंस्कृत बनने के लिए कलाओं के सहयोग की भी आवश्यकता होती है। कला का मानव–जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध है। यह व्यक्ति का समाज, धर्म तथा संस्कृति से संबंध स्थापित करती है। संगीत को ललित कलाओं में श्रेष्ठ माना गया है। संगीत की अभिव्यक्ति–माध्यम नाद है। नाद के दो प्रकार हैं– आहत व अनाहत। आहत नाद से ही अनाहत नाद की अनुभूति होती है, और अनाहत से ब्रहम् की। भौतिक माध्यमों के द्वारा जब हमारे संवेग जागृत हो जाते हैं तब हम भौतिकोत्तर जगत में प्रविष्ट हो जाते हैं। संभवतः इसी कारण संगीत के दो उद्देश्य निरूपित किए गए हैं– जनरंजन, भवरंजन। जनरंजन भौतिक जगत से जुड़ा है जबकि भवरंजन मोक्ष प्राप्ति से। प्रायः यह धारणा प्रचलित है कि संसार से विमुख होने पर ही मोक्ष की प्राप्ति संभव है परन्तु मोक्ष अथवा भवरंजन का अर्थ संसार से पलायन नहीं। संसार से भागकर मोक्ष को प्राप्त नहीं किया जा सकता। ईश्वर संसार में ही अपने भक्तों की आस्था में अभिव्यक्त होता है और संगीत द्वारा मानव में रसात्मकता की अनुभूति होती है, जिससे उसकी पलायनवादिता नष्ट होती है।

प्राचीन काल से ही संगीत के माध्यम से भारतीयों ने अध्यात्म का दर्शन किया है। मानव–जीवन व व्यक्तित्व के विकास के लिए तथा जीवन के वास्तविक उद्देश्य, लौकिक से अलौकिक की ओर ले जाने वाले सोपान के रूप में संगीत–कला को ललित कलाओं में श्रेष्ठ माना गया है। मानवीय आत्मचेतना की जागृति के लिए ही संगीत की साधना की जाती है। संगीत का लक्ष्य सौंदर्य के प्रति आकृष्ट करते हुए धीरे–धीरे चरमोत्कर्ष की ओर जाना और फिर दिव्यता का दर्शन कराते हुए मानव का आत्मिक उत्थान करना है। मानव–जीवन का परम लक्ष्य परमात्मा का साक्षात्कार माना गया है और इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु संगीत सबसे अच्छा माध्यम है। हमारे देश में संगीत को

*पूर्व–शोधार्थी, संगीत विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)

केवल मनोरंजन का साधन न मानते हुए उसे भक्ति एवं आध्यात्मिकता के साथ भी जोड़ा गया है। जिस प्रकार संस्कृति में विभिन्न मानव–धर्मों, अध्यात्म तथा दर्शन का मिला–जुला स्वरूप मिलता है उसी प्रकार भारतीय संगीत में भी इन सभी तत्वों का समावेश पाया जाता है। हमारे प्राचीन संगीतज्ञों ने भी शरीर के साथ–साथ आत्मा के विकास हेतु धर्म तथा दर्शन के मौलिक तत्वों को संगीत में सम्मिलित किया और नाद के माध्यम से ब्रह्म–साधना तथा ईश्वरोपासना को ही कला की सच्ची शक्ति माना है। संगीत का आध्यात्मिक प्रयोग वातावरण के लिए अत्यंत पोषक होता है। विश्व की विभिन्न मानव जातियों के विविध धर्मानुष्ठानों, पूजा–विधानों में संगीत का प्रयोग अनुष्ठानों व क्रियाकांडों को कई गुना शक्तिशाली बना देता है।

वर्तमान समय में मानव अपनी मनःशांति हेतु मंदिरों एवं विभिन्न संतों के धार्मिक संस्थाओं में जाता है, जहाँ वह पूजा पाठ, ध्यान, तप आदि विभिन्न धार्मिक रूपों द्वारा शांति प्राप्त करता है। संगीत को ब्रह्मानंद सहोदर की संज्ञा से विभूषित किया है। मंदिरों में नियमपूर्वक होने वाली प्रार्थना या उपासना में निमित्त संगीत द्वारा मानव आनंद की चरमावस्था को प्राप्त करता है, क्योंकि मार्मिक अनुभूति की अभिव्यंजना स्वर व रागों द्वारा आसानी से प्रस्तुत की जा सकती है। संगीत में निहित स्वर व ध्वनि विशेष के कारण भक्ति, पूजा, पाठ, कीर्तन या स्तोत्रादि का उच्चारण चित्त को विशेष आह्लादित करता है। "गैलवे के अनुसार, अपने से परे शक्ति में मनुष्य का विश्वास जिसके द्वारा वह अपनी भावनाओं की संतुष्टि तथा जीवन में स्थिरता प्राप्त करता है और जिसे वह अपनी पूजा अर्चना के माध्यम से प्रकट करता है, वह धर्म है।"

संगीत और धर्म का साहचर्य मानवीय जीवन और संस्कृति में आदि काल से चला आ रहा है। धर्म के अंतर्गत वह श्रेष्ठ मानवीय भावना आती है जो ईश्वर के प्रति विशेष आस्था रखते हुए उसकी पूजा, अर्चना आदि के लिए अलग–अलग विधि तथा ढंग अपनाती है। आम शब्दों में हमारा ईश्वर में आस्था रखना, पूजा करना 'धर्म' ही कहलाता है। आज भी असभ्य जातियों में आदिम कालीन धर्म का प्रतिनिधित्व करते हैं, धर्म के साथ संगीत का सामंजस्य देखा जाता है। उमेश जोशी संगीत और धर्म का प्रयोग उत्तर पाषाण काल से ही बताते हैं। उनके अनुसार "संगीत को धार्मिक रूप देने का गौरव इसी युग के लोगों को प्राप्त है। ये लोग संगीत को ईश्वरीय तोहफा मानते थे, उनका ऐसा विश्वास था कि संगीत द्वारा हम ईश्वर को प्राप्त कर सकते हैं।" "वेदों का उपदेश है कि सम्पूर्ण विश्व को दुःख में निमग्न देखकर त्रिदेव ने दुःख की अत्यधिक निवृत्ति के लिए संगीत का सृजन किया।" वैदिक समय में देवताओं के पूजन हेतु जिन मंत्रों या सामों का पाठ या गायन किया जाता था वे स्वरबद्ध होते थे। इस महत्त्वपूर्ण संगीत का आधार पूर्णतया देवार्चन था। "कंठ वैशिष्ट्य से गाया गया साम देवताओं की प्रीति और विशिष्ट फल का प्रदायक माना गया है।"

"पद्मपुराण के भूमिखंड में कहा गया है कि कुलदेवता गान सुनकर प्रसन्न होते हैं। सुरीला संगीत सुनकर शंकर भगवान धरती पर उतर आते हैं। श्रृंगार आदि रसों का उत्स संगीत है।" गायन–वादन के साथ–साथ नृत्य का भी प्रयोग ईश्वरोपासना में मिलता है। "रावण द्वारा शिवार्चना के पश्चात् नृत्य और गान किये जाने का उल्लेख मिलता है–

समर्चयित्वा स निशाचरो जंगौ।
प्रसार्य हस्तानप्रणनर्त चाग्रतः।।

जातक कथाओं, त्रिपिटक, अवदान और अन्य साहित्य को देखने से पता चलता है कि "मठों में आराधना के लिए नियुक्त गायक और वादकों को शासन की ओर से द्रव्य दिया जाता था।" बौद्ध विहारों में आराधना के लिए देव–दासियों की नियुक्ति होती थी।

मध्यकाल में भी संगीत को भक्ति–भावना से देखा गया। "यद्यपि मध्यकाल मुगलों का काल माना गया है, उस समय भारत में मुसलमानों के आगमन के कारण विलासिता अपने चरमरूप में विद्यमान थी किंतु मंदिर, देवालय आदि स्थानों में कीर्तन, भजन, पूजा–पाठ इत्यादि धार्मिक–कार्य अध्यात्म को ही प्रकट करते थे। देवालयों आदि में धार्मिक नृत्य की परिपाटी प्राचीन काल से आज तक विद्यमान है।" संगीत उपासना की अभिव्यक्ति को सरल, सुरूचिपूर्ण, सुंदर, आकर्षक बनाता है। संगीत के प्रधान अंग 'गीत' का अत्यंत महत्त्व है, इसके बारे में कहा गया है–

तस्य गीतस्य महात्म्यं के प्रशंसितुमीशियते।
धर्मार्थकाममोक्षणामिदमेवैक साधनम्।।

अर्थात् भगवद्–भजन से धर्म, राजाओं व प्रभुओं से मिले

सम्मान के रूप में अर्थ, अर्थ से काम तथा अंततः मोक्ष प्राप्ति का यही एकमात्र साधन है। इस प्रकार प्रागैतिहासिक काल से ही भारत में संगीत की परंपरा समृद्ध रही है। इस प्रकार भक्ति–धारा वैदिक काल के बाद रामायण, महाभारत तथा पुराणों से होती हुई आधुनिक काल तक चली आ रही है। भक्ति संगीत का विकास मठों, मंदिरों एवं अन्य धर्म–स्थलों पर होता रहा है। वर्तमान समय में भी मंदिर एवं अन्य धार्मिक संस्थाओं में भी पूजा–पाठ, कीर्तन, प्रवचन आयोजित होते हैं। प्रत्येक साधारण व्यक्ति अपनी इच्छाओं की पूर्ति हेतु अपने ईष्ट देवता की पूजा करता है। भले ही वह अपनी स्वार्थ–सिद्धि की पूर्ति हेतु पूजा करता हो, पर फिर भी उसकी स्वार्थ सिद्धि से समाज में विश्वास तथा आध्यात्मिकता का वातावरण भी निर्मित होता है। गायन, वादन तथा नृत्य तीनों विधाओं में आध्यात्मिकता का पुट प्रमुख रूप में पाया जाता है। यही कारण है कि शुरू से ही मानव संगीत द्वारा ईश–स्तुति करता आया है। वर्तमान समय में वैदिक मंत्रों का स्थान धार्मिक भजनावली, विभिन्न सांगीतिक वाद्ययंत्रों से युक्त नारीजना अर्थात् आरती, नाम संकीर्तन और भावयुक्त नृत्य ने ले लिया है। संस्कृत मंत्रों, प्रार्थनाओं की स्थानोत्पत्ति देशीय (क्षेत्रीय) भाषाओं की प्रार्थनाओं से हुई।

मंदिरों एवं धार्मिक संस्थाओं में संगीत का प्रयोग होता है जिससे तन्मयता, एकान्तता और एकात्मा की स्थिति पायी जाती है। मानव इतिहास में धार्मिक संस्थाएँ समाज में व्यवस्था बनाए रखने का महत्त्वपूर्ण साधन रही हैं। इसीलिए समाज सुधारकों के द्वारा धर्म को सामाजिक नियंत्रण का प्रमुख आधार मानकर उसका व्यापक रूप में प्रयोग किया गया । धार्मिक संस्थाएँ अपने प्रवचनों के द्वारा मनुष्य को स्वनैतिक विकास की ओर अग्रसर करती है। इन धार्मिक संस्थाओं द्वारा व्यक्ति को आत्म मूल्यांकन करने का अवसर भी प्राप्त होता है। संतों द्वारा स्थापित इन संस्थाओं में मानव को पूजा, ध्यान, योग, जाप, दीक्षा आदि की ओर उन्मुख किया जाता है। समय–समय पर प्रवचन भी आयोजित होते हैं जिसमें संगीतमय कथा, प्रवचनों आदि से मानव को ऐन्द्रिय तृप्ति का रसपान कराया जाता है। यह बताया जाता है कि संगीत एक प्रकार की साधना है जो मनुष्य को उसके सर्वोच्च लक्ष्य ब्रह्मलाभ की ओर ले जाती है। ज्ञान योग, कर्म योग, भक्ति योग, मंत्र योग, नाम योग इत्यादि विभिन्न साधनों द्वारा एक ही साध्य की सिद्धि कराते हैं। इन योगों की पंक्ति में संगीत–योग भी एक योग है और इसके द्वारा भी उसी ईश्वरीय लक्ष्य की प्राप्ति होती है।

धर्म–जैसी संस्थाओं के सामाजिक महत्त्व को नकारा नहीं जा सकता। सर्वधर्म समभाव की भावना जहाँ एक ओर सामाजिक एकता का दृढ़ आधार बनी हुई है वहीं दूसरी ओर बहुधर्मी–बहुजातीय समाज की एकता को खण्डित करने का भी कार्य कर रही हैं। अतः वर्तमान परिवेश में धार्मिक एकता सामाजिक एकता के लिए एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न बन गया है। यहाँ तक कि अपने युग में हुए भक्त कवियों जैसे– कबीर, रहीम आदि को भी इस समस्या से उलझना पड़ा था। धर्म द्वारा व्यक्ति के भावात्मक, व्यक्तित्व व अनेक व्यावहारिक मूल्यों के समुचित विकास की पूर्ति होती है । भारतीय समाज की व्यवस्था में धार्मिक संस्थाओं के द्वारा ही सामाजिक नियंत्रण की स्थापना की जा सकी है। धार्मिक संस्थाएँ सच्चे अर्थों में व्यक्ति को नैतिक प्राणी बनाती हैं।

"संगीत की सारगर्भिता एवं उसमें निहित तदाकारता के गुण एवं चिंतन का अनुभव करके ही संगीत को भक्ति साधना माना गया है। आज भी मथुरा, वृन्दावन, नाथद्वारा आदि धार्मिक स्थलों के अलावा भारत के अन्य अनेक धर्म संप्रदायों के देवालयों में भी भक्तजन कीर्तन–गान द्वारा ही आराध्य की आराधना करते हैं।" अतः हम कह सकते हैं कि सामाजिक व्यवस्था हेतु धार्मिक संस्थाएँ महत्त्वपूर्ण कार्य करती हैं। हिंदुओं के धार्मिक स्थलों को 'मंदिर' कहते हैं। यह आराधना और पूजा–अर्चना के लिए निश्चित की हुई जगह या देवस्थान होता है यानि जिस जगह ईश के प्रति ध्यान, चिंतन या पूजा–अर्चना की जाय, उसे मंदिर कहते हैं। धार्मिक स्थानों पर प्रातः काल की ऊषा आरती, देव उत्थापन, मंगला, श्रृंगार, भोग, संध्या, आरती, शयन आरती आदि प्रत्येक विधि में सस्वर भजन, पूजन, कीर्तन, आरती की प्रतिष्ठा रहती है। संगीतमय भक्ति का अर्थ है– आस्था एवं श्रद्धापूर्वक अपने इष्ट की उपासना करना, उसका संगीतमयी भजन तथा गुणगान करना। जहाँ गुणगान का प्रश्न होता है वहाँ गीत स्वतः ही निहित हो जाता है। भावपूर्ण गीत ही संगीत की सृष्टि करता है। इसीलिए भक्ति–मार्ग संगीत–मार्ग है।

धार्मिक स्थलों पर होने वाली संगीतमय उपासना में आनंद में मग्न होकर मानव मुख से उद्‌गारों का निःसृत होना, हाथ से तालियाँ बजाना तथा अंगोपांगों से अभिनय

करना एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। संगीतमय उपासना चाहे वह जिस भी स्थान पर हो वहाँ के वातावरण में उपस्थित बाधक परिस्थितियों से परे हो जाने व उसे भुला डालने में सहायक होता है। यही कारण है कि उपासना में प्रायः संगीत का साहचर्य देखा जाता है। भजन, कीर्तन या संगीतमय पूजन सामूहिक भक्ति का स्वरूप है जो बंगाल के वैष्णव संप्रदाय में प्रचलित है। आम तौर पर कीर्तन एक गायक द्वारा एक छंद में गाया जाता है जिसे बाद में सम्पूर्ण समूह विभिन्न ताल वाद्यों के साथ समवेत स्वरों में दोहराता है। डॉ॰ राजीव वर्मा के अनुसार, "भक्ति पद में ईस्ट के रूप और गुण का कीर्तन होता है अर्थात् गीत के द्वारा अपने आराध्य के गुणों का गान करना 'कीर्तन' है। इस रूप में कीर्तन और संगीत का अविच्छेद संबंध है।" भक्ति संगीत प्रान्तीय धुनों पर आधारित हो, भगवन्नामोच्चारण के रूप में हो अथवा बंगाल के नाम–कीर्तन के रूप में हो– निःसंदेह संगीत के स्वर, ताल, लय आदि विशिष्ट तत्त्व भक्ति संगीत के विभिन्न रूपों में समाहित होते हैं।

उपासना में विभिन्न तालवाद्यों का भी प्रयोग द्रष्टव्य है। पूजा या आरती के समय साथ में शंख, घंटा, घड़ियाल, थाली, घंटी, मंजीरा, चिमटा, ढोलक आदि वाद्यों का भी प्रयोग होता है। इन्हें विशेष ताल व गति के साथ बजाया जाता है। वर्तमान समय में अनेक वाद्य इलैक्ट्रॉनिक रूप में भी प्रयोग होने लगे हैं जो चालू (On) किए जाने पर स्वतः ही वादित होने लगते हैं। आरती, भजनों व कीर्तनों के साथ वाद्यों की संगत तथा सुस्वर गायन एक अभूतपूर्व वातावरण का निर्माण करने में सहायक होता है। आरती गायन मुख्यतः दादरा, कहरवा, तीनताल या झपताल जैसी सरल तालों में निबद्ध रहता है।

इन लययुक्त तरंगों का प्रभाव व्यक्ति के शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य दोनों पर पड़ता है। ऐसा माना जाता है कि विभिन्न वाद्यों की नादमयी ध्वनि से मंदिर में प्राण–प्रतिष्ठित मूर्ति के देवता चैतन्य हो जाते हैं। इन वाद्यों के वादन से एक आलौकिक वातावरण की सृष्टि होती है। वातावरण में एक कंपन उत्पन्न होता है जो वायुमंडल में दूर–दूर तक प्रसारित होता है। इस कंपन की सीमा में आने वाले जीवाणु–विषाणु आदि सूक्ष्म जीव भी नष्ट होते हैं व शुद्धता आती है। साथ ही, यह कंपन मानव–जीवन पर भी सकारात्मक प्रभाव डालती है व विचारों में शुद्धता लाती है। पूजन करते समय ताली बजाने से भी शरीर पर प्रभाव पड़ता है। इससे मानव में रोग प्रतिरोधक शक्ति बढ़ती है व रोग निवारण होता है।

**निष्कर्ष** : ईश्वर की पूजा चाहे जिस स्थान पर हो या जिस भी– हिंदू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई धर्म में हो सभी में प्रार्थना, स्तुति, भजन आदि आराधनाएँ सदैव सांगीतिक के रूप में सामने आती हैं। अतः यह स्पष्ट है कि भगवान न तो योग में मिलेंगे न जप में और न वैराग्य में अपितु जहाँ संगीत द्वारा उनके गुणों का मनोहारी गान होगा, वह वहीं निवास करेंगे। सभी स्थिति में संगीत अपने किसी–न–किसी रूप में मानव के साथ रहता है जो सुख बढ़ाता है व दुख को घटाता है। इसकी उपयोगिता को जान समझकर ही प्राचीन मनीषियों ने विभिन्न धार्मिक स्थानों पर होने वाले भजन, पूजन, अर्चन तथा कीर्तन कार्यों में संगीत का महत्त्वपूर्ण स्थान माना है।

**संदर्भ सूची** :

1. जैन, विजय लक्ष्मी, संगीत दर्शन, पृ॰ 116
2. जोशी, उमेश, भारतीय संगीत का इतिहास, फिरोजाबाद मानसरोवर प्रकाशन, 1969, पृ॰ 49
3. संगीत, सितंबर, 2000, पृ॰ 4
4. वर्मा, डॉ॰ राजीव, पारीक, डॉ॰ नीलम, भारतीय संगीत का आध्यात्मिक स्वरूप, पृ॰ 12
5. मन्मथराय, प्राचीन भारतीय मनोरंजन, 1963, पृ॰ 205
6. वर्मा, डॉ॰ राजीव, पारीक डॉ॰ नीलम, भारतीय संगीत का आध्यात्मिक स्वरूप, पृ॰ 26
7. वही, पृ॰ 39
8. वही, प्राक्कथन, पृ॰ 4
9. पं॰ शारंगदेव, संगीत रत्नाकर, प्र॰ भाग, प्र॰ अध्याय, पदार्थ संग्रह श्लोक, पृ॰ 16
10. संगीत, जुलाई 2010, पृ॰ 23
11. वर्मा, डॉ॰ राजीव, सूर साहित्य में संगीत प्रवाह, पृ॰ 80

यूजीसी–केयर सूचीबद्ध, पिअर रिव्यूड वार्षिक शोध पत्रिका

**स्तोम 2023**

# तनाव, अनिद्रा और मानसिक विकार को दूर करता है – संगीत

**डॉ. गौरव शुक्ल***

**सारांश**

*संगीत का हमारे जीवन में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। जीवन–ग्रंथ के पृष्ठों में कोई भी अध्याय ऐसा नहीं मिलेगा जिसे संगीत से शून्य कह दिया जाय। संगीत प्राणी–मात्र के जीवन में आनन्द, उल्लास, प्रसन्नता, स्वास्थ्य एवं शांति का संचार करता है, संगीत में अद्‌भुत सामर्थ्य है। यह प्राणी को आनन्द की गहराइयों में ले जाता है। संगीत के माध्यम से अचेतन में दमित इच्छायें, भावनायें बाहर निकल जाती हैं और व्यक्ति का मन आनन्द तथा प्रसन्नता से भर जाता है। संगीत द्वारा व्यक्ति तनावमुक्त होकर स्वयं को प्रफुल्लित एवं उत्साहित अनुभव करता है। संगीत के सात सुरों सा, रे ग म प ध नि का शरीर पर विशेष प्रभाव पड़ता है। योग में शरीर के सात चक्रों का वर्णन किया गया है जो मानव शरीर के विभिन्न भागों का संचालन करते हैं। संगीत के सात सुरों का इन सात चक्रों पर विभिन्न प्रभाव पड़ता है, यथा– सा मूलाधार, रे स्वाधिष्ठान, ग मणिपुर, म अनाहत, प विशुद्ध, ध आज्ञा और नि सहस्त्र चक्र को सुचारू रखने में मदद करते हैं। वेदों में संगीत को योग माना गया है जिससे मानव शरीर स्वस्थ रहता है।*

**मुख्य शब्द** : *संगीत, चिकित्सा, तनाव, अनिद्रा, ध्वनि, स्वास्थ्य*

**शोध–प्रविधि** : *इस शोध–पत्र को तैयार करने के लिए द्वितीयक स्रोतों से सहायता ली गई है ।*

ध्वनि और संगीत का मानव के स्वास्थ्य पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। ध्वनि–चिकित्सा का उपयोग अस्पतालों, विद्यालयों, कॉर्पोरेट कार्यालयों और मनोवैज्ञानिक उपचारों में किया जाता है। इससे मानसिक तनाव कम होता है। रक्तचाप कम होता है, दर्द दूर होता है, सीखने की अयोग्यता दूर होती है, गतिशीलता व संतुलन में वृद्धि होती है और सहनशक्ति तथा क्षमता में वृद्धि होती है।

हमारे शरीर पर ध्वनि का एक निश्चित प्रभाव पड़ता है। तेज आवाज उच्च रक्तचाप, दबाव तथा अनिद्रा जैसे विकार उत्पन्न करती है, परन्तु यदि शास्त्रीय संगीत कर्णप्रिय स्वरों तथा रागों के साथ बजाया या गाया जाये तो वह रोगियों को निश्चित रूप से लाभ पहुँचाता है। संगीत हमारे लिए केवल मनोरंजन का जरिया–भर नहीं है बल्कि संगीत हमारे तन–मन को तनाव से मुक्त कर देता है। यह हमें कई बीमारियों से बचाने में मददगार होता है। अब चिकित्सक भी संगीत–चिकित्सा के महत्व को समझ रहे हैं और अधिक–से–अधिक इसका उपयोग कर रहे हैं। संगीत मन को सुकून तो देता ही है, लेकिन अब यह ईलाज की एक पद्धति भी बन चुका है। कई स्वास्थ्य समस्याओं से राहत दिलाने में अब संगीत चिकित्सा इस्तेमाल किया जा रहा है। तनाव, अनिद्रा और अन्य कई मानसिक समस्याओं के लिए संगीत–चिकित्सा के प्रयोग के बाद प्रभावशाली परिणाम भी सामने आ रहे हैं। संगीत का आनंद किसी भी समय लिया जा सकता है। घर, दफ्तर, सफर हर जगह संगीत हमारी पहुँच में होता है। यह मनोरंजन और सुकून का दोहरा लाभ देता है। यह हमारे जीवन का अहम् हिस्सा बन गया है। कहते हैं कि अकबर के दरबारी गायक तानसेन संगीत की शक्ति से दीपक जला देते थे, तो वहीं मल्हार राग की स्वर लहरियाँ सुनकर वर्षा की बातें भी कही जाती हैं और इन्हीं क्षमताओं के कारण संगीत का ईलाज के लिए भी इस्तेमाल किया जाता है।

संगीत को लेकर हर व्यक्ति की पसंद अलग होती है। कोई रूहानी संगीत का दीवाना होता है, तो किसी को रॉक पर थिरकना अच्छा लगता है। कोई सूफियाना सुनना चाहता है, तो कोई रैप, किसी को कव्वाली और गजल पंसद होती है तो कोई जैज संगीत को पसंद करता है। हर व्यक्ति को अपनी पसंद का संगीत सुनने से राहत मिलती है। जो संगीत हमें पसंद होता है, वह तो हमें राहत देता है, लेकिन कई बार जो संगीत हमें पसंद नहीं होता, वह हमें तनाव और सिरदर्द भी दे सकता है यानी संगीत और हमारे स्वास्थ्य के बीच गहरा संबंध होता है। इसलिए संगीत द्वारा ईलाज करने की पद्धति को 'संगीत थेरेपी' भी कहा जाता है।

*सहायक आचार्य, सितार, संगीत विभाग, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

तनाव हमारे दिल को बुरी तरह प्रभावित करता है। यह दिल की कई बीमारियों की जड़ होता है। हमारी जीवन–शैली ही कुछ इस तरह हो गयी है कि तनाव और परेशानियाँ जीवन का अंग बन गयी हैं। ऐसे में संगीत हमें तनावरहित रखता है। साथ ही, सकारात्मक सोच को भी विस्तार देता है। काम करते समय संगीत सुनने से हमें जोश और ऊर्जा मिलती है। इतना ही नहीं, काम का बोझ जब हमें बुरी तरह तोड़कर रख देता है, किसी अन्य काम के लिए वक्त ही नहीं बचता; संगीत थेरेपी काम के तले दबे लोगों के लिए बेहद कारगर साबित हो रही है। चिकित्सक भी मानते हैं कि कई बार जो काम दवायें नहीं कर पातीं, वह काम संगीत कर देता है। संगीत थेरेपी से शारीरिक और भावनात्मक रूप से स्वस्थ रहा जा सकता है। संगीत सुनने के दौरान नसें आराम की स्थिति में चली जाती हैं और हम राहत महसूस करते हैं। आपकी उम्र चाहे जो हो, संगीत हमें स्वस्थ रहने में मदद करता है। हाँ, अगर संगीत आपकी पसंद का नहीं है, तो इससे आपका तनाव बढ़ सकता है। साथ ही, सगीत सुनने की ध्वनि भी सामान्य से अधिक न करें, क्योंकि इससे भी आपका तनाव बढ़ सकता है।

अगर आप बहुत तनाव–भरा काम करते हैं तो आपके लिए ज्यादा बीट्स वाला संगीत सुनना अच्छा रहेगा। यह आपके तनाव को दूर करने में मदद करता है।

जिन लोगों को नींद आने में परेशानी होती है, तब एक मधुर गीत उनके लिए जादुई काम कर सकता है। शरीर में मौजूद 'ट्राइटोफन' नामक कैमिकल संगीत के माध्यम से अवसाद को दूर करते हैं। इससे आपकी नींद बेहतर हो जाती है। इस संदर्भ में एक कथानक भी है कि इटली के शासक मुसोलिनी को अनिद्रा की शिकायत हो गई थी, बहुत उपचार किया गया परन्तु कोई लाभ नहीं मिला। उन दिनों भारतीय संगीतज्ञ पं. ओमकार नाथ ठाकुर इटली में किसी संगीतिक कार्यक्रम में गए हुए थे, उस कार्यक्रम में मुसोलिनी भी आये, उन्होंने पंडित जी का राग पूरिया का गायन सुना, उसके पश्चात् मुसोलिनी को बहुत अच्छी नींद आयी और मुसोलिनी को अनिद्रा की समस्या से राहत मिली, मुसोलिनी भारतीय संगीत से बहुत प्रभावित हुए।

सकारात्मकता बढ़ाने में भी संगीत को उपयोगी माना जाता है। ,

वर्त्तमान समय में दिन–भर कंप्यूटर के सामने काम करने से पीठ, गर्दन और कंधे की मासपेशियाँ अकड़ जाती हैं। मधुर व कर्णप्रिय संगीत सुनने से मांसपेशियों को राहत मिलती है। कोरोना जैसी वैश्विक महामारी के कारण हम सभी आर्थिक एवं मानसिक रूप से परेशान अपने घरों में बैठे–बैठे निराश एवं अशांत हो रहे थे, उस समय भी संगीत की अहम् भूमिका रही। संगीत की स्वर लहरियों ने एक नई चेतना और उत्साह प्रदान किया। इसलिए जब भी समय हो तो अपने मनपसंद के संगीत को अवश्य सुनना चाहिए जिससे पुनः नवचेतना प्रस्फुटित हो सके।

**निष्कर्ष :**

अनेक उदाहरणों से (देश–विदेश के) यह स्पष्ट और प्रमाणित हो चुका है कि संगीत हमारे जीवन के लिए बहुपयोगी है। स्वस्थ जीवन का यह आवश्यक अंग है।

**संदर्भ ग्रंथ :**

जैन, नेहा, रागों में छुपा है स्वास्थ्य का राज (लेख), भारतीय धरोहर पत्रिका, नई दिल्ली

नाहर, डॉ साहित्य कुमार, भारतीय शास्त्रीय संगीत मनोविज्ञान आयाम, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1999

तिवारी, डॉ किरण, संगीत एवं मनोविज्ञान, कनिष्क प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2008

तारे, डॉ विजय, संगीत चिकित्सा, पेंगुइन बुक्स इंडिया, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2019

# कलाओं में कौशल एवं रोजगार के अवसर (संस्कृत नाटकों के सन्दर्भ में)

**डॉ. गटुलाल पाटीदार***

**सारांश**

*मानव जीवन के उद्‌गम से ही कला आजीविका का प्रथम सोपान रही है तथा इस भूमा की प्रलयावस्था तक रहेगी क्योंकि कलाओं में जीविकोपार्जन के समस्त अवसर निरन्तर आज भी उपलब्ध हैं। प्राचीन समय में कलाओं से प्राप्त कौशल से ही व्यक्ति अपनी आजीवका चलाता था और आज भी कोई भी सर्वकार रोजगार की बात करती है, तो कौशल की बात जरूर करती है। संस्कृत नाटकों के कथा–प्रसंगों में भी कला एवं कौशल से प्राप्त आजीवका के संकेत स्थान–स्थान पर प्राप्त होते है। चाहे वह चित्रकला, मूर्तिकला, स्थापत्य कला, संगीत, नृत्यकला, वास्तुकला, वस्त्र–सुवर्ण–मन्त्रकला या अन्य कला हो रोजगार के अवसर पर्याप्त प्राप्त थे। तत्समय राज्य की आर्थिक उन्नति में भी कलाओं का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। संस्कृत नाट्यसाहित्य के कई ग्रन्थों में कला–पक्षीय चित्रण उपलब्ध होता है। सौन्दर्य की अभिव्यक्ति द्वारा अंतःकरण के आह्लाद के चरम को अत्यधिक सुख प्रदान करने वाली वस्तु ही कला है और हमारी समस्त कलाओं में आज भी रोजगार के अथाह अवसर निरन्तर उपलब्ध हैं।*

**सूचक शब्द** : *नाटक, कला, संस्कृत, रोजगार, आजीविका*

**शोध प्रविधि** : *द्वितीयक स्रोतों का उपयोग किया गया है ।*

**उद्देश्य**– *इस आलेख में संस्कृत के प्रमुख नाटकों की कथा–कहानियों के वर्णन–प्रसंग में कलाओं के वर्णन का प्रगटीकरण शब्दकूँची से कागज पर करने का काठिन्य श्रम किया जा रहा है, तथा तत्समय रोजगार के आधार को देखा जा रहा है, यही आलेख का प्रधान उद्देश्य है।*

वाणी का अरुणोदय संस्कृत वाक् में ही हुआ है,यह वैश्विक पटल पर भारतवर्ष के लिए गौरव का विषय है। संस्कृत गिराम् ही "अहो वसुधैव वंशः"[1] अर्थात् अहो पूरी पृथ्वी ही एक परिवार है, का सन्देश देती है। संस्कृत नाट्यसाहित्य अतिप्राचीन होने के साथ ही कला–पक्षीय साहित्य को भी हमारे भीतर समाहित किये हुए है। इहलोक में शब्द–सृष्टि के पूर्व भी अपने भावों को अभिव्यक्त करने का प्रमुख माध्यम कला ही रही होगी, क्योंकि इसी में अपने अन्तरतम भावों को समझने–समझाने का सर्वश्रेष्ठ सामर्थ्य है। बाबा भर्तृहरि ने तो कलाविहीन व्यक्ति को बिना पूंछ और सींग का साक्षात् पशु कहा है– "साहित्यसंगीतकला विहीनः साक्षात्पशु पुच्छविषाणहीनः।"[2] प्रत्येक व्यक्ति में कला का हूनर होता है क्योंकि नियति को प्रत्येक शरीर से कार्य लेना होता है। इसलिए प्रत्येक कला कौशल को लिए हुए है, तथा उसमें जीवका के पर्याप्त अवसर निरन्तर उपलब्ध हैं। यहाँ विश्व की विराट समस्या बेरोजगारी को संस्कृत नाटकों के उद्धरणों में देखने का प्रयास किया जा रहा है।

## संस्कृत नाटकों में वर्णित कलाओं में कौशल एवं रोजगार के अवसर–

महाकवि भास के नाटक 'स्वप्नवासवदत्तम्' में भी विस्तृत कलाओं का विवेचन मिलता है। राजा उदयन संगीत प्रेमी एवं वीणा वादक थे उन्होंने ही वासवदत्ता को वीणा सिखाई थी तथा राजा उदयन ने "यस्या घोषवती प्रिया"[3] कह कर वासवदत्ता की वीणा–घोषवती से प्रेम को बताया है। नाटक के छठे अंक में धाय कहती है की "अनग्निसाक्षिकं वीणाव्यपदेशेन दत्ता।"[4] अर्थात् अग्नि को साक्षी बनाये बिना ही वीणा सिखाने के बहाने वासवदत्ता तुम्हें दे दी गई थी। इसी अंक में धाय द्वारा उदयन और वासवदत्ता के विवाह का एक चित्र राजा महासेन को भेट करते बताया गया है। धाय कहती है– "अथ चावाभ्यां तव च वासवदत्तायाश्च प्रतिकृतिं चित्रफलकायामालिख्य विवाहो

*वरिष्ठ सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर
एसोसिएट फेलो, भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, राष्ट्रपति निवास, शिमला (हि.प्र.)

निर्वृतः।"[5] अर्थात् उसके पश्चात् हमने तुमारा उदयन और वासवदत्ता का चित्र एक चित्रपट पर बनवाकर विवाह कर दिया था। यह बात राजाओं के कला प्रेम और तत्कालीन चित्रकला के महत्त्व को अंगित करता है। उस समय भी प्रेम का मूर्त रूप चित्रकला ही थी जो अपने मनोभावों को प्रेम रूप में साकार करती–कराती थी। भास से समय भी संगीत एवं चित्रकला में रोजगार प्राप्त था तथा आजीवका के प्रमुख स्त्रोत कलाओं में भी उपलब्ध था। संगीत एवं चित्रकला में रोजगार के संकेत प्राप्त होते है।

शूद्रक के काल में भी कलाओं के क्षेत्र में आजीविका के मन्त्र प्राप्त होते हैं। 'मृच्छकटिकम्' महाकवि शूद्रक विरचित दस अंकों का प्रकरण नाटक है। इस नाटक के चतुर्थ अंक में नायिका वसन्तसेना मदनिका के साथ नायक चारुदत्त का फोटो देखती रंगमंच पर उपस्थित होती है।[6] और कहती है– "सुसदृशी इयं चित्राकृतिः आर्यचारुदत्तस्यः"[7] अर्थात् आर्य ! चारुदत्त की यह चित्रकृति (फोटो) दर्शनीय एवं अनुरूप है। और पुनः कहती है कि "इदं तावत् चित्रफलकं मम शयनीये स्थापित्वा"[8] अर्थात् इस फोटो को मेरे विछावन (बिस्तर) पर रख दो। इस नाटक की नायिका गणिका वसन्तसेना नृत्य, चित्रकला, गीतादि कलाओं में तथा नायक चारुदत्त संगीतकला का प्रेमी था। यहाँ चित्रकला की चतुराई भी दिखाई देती है और वसन्तसेना का चित्रकारियप्रेम भी। शूद्रक के समय भी कलाओं में भरपूर आजीवका के संकेत प्राप्त होते है।

'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' महाकवि कालिदास का विश्व प्रसिद्ध सात अंकों का नाट्यरत्न है। कालिदास सौन्दर्य के महाकवि हैं। उन्होंने शब्दरूपी तूलिका से शकुन्तला के सौन्दर्य को रंगमंच पर रंगा है। कालिदास ने "आद्याःसृष्टिः"[9] कहकर ब्रह्मा की अद्भुत सृष्टि सौंन्दर्यातिशय शालिनी शकुन्तला को चित्रित किया है। नाटक के दूसरे अंक में "स्त्रीरत्नसृष्टिरपरा"[10] कहकर राजा दुष्यंत कहते है कि यह शकुन्तला अद्वितीय स्त्रीरत्न की सृष्टि प्रतीत होती है तथा मुझे ऐसा लगता है कि "चित्रे निवेश्य परिकल्पित"[11] अर्थात् विधाता ने सर्वप्रथम चित्रकारी कर चित्र बनाया होगा और पश्चात् इस अलौकिक सौन्दर्य में प्राण का निर्माण किया होगा। यहाँ भी कालिदास के चित्रकला–चित्रकारी प्रेम के दर्शन–दर्शनीय है। इस नाटक के चतुर्थ अंक में मुग्धा नायिका शकुन्तला के विषय में कहा गया है कि– "शकुन्तलाहेतोर्वनस्पतिभ्यः कुसुमान्याहरतेति।''[12] अर्थात् शकुन्तला के लिए वनस्पतियों से पुष्पों को ले कर शृंगार करते हुए उसकी सखियाँ कहती हैं– "चित्रकर्मपरिचयेनांगेषु त आभरणवियोगं कुर्वः"[13] अर्थात् चित्रों की रचनाओं के ज्ञान से तुम्हारे अंगों में आभूषणों को हम दोनों सखियाँ पहिनाती हैं। यहाँ दोनों सखियाँ अनुसूया–प्रियंवदा चित्रकारी के चित्रों को देख कर शकुन्तला को अलंकृत करती हैं। यहाँ कालिदास ने शृंगारकर्म के लिए चित्रकारी के महत्त्व को शब्दकूँची से चित्रित किया है अर्थात् उस समय चित्रकला भी आजीवका का प्रमुख स्त्रोत रही है क्योंकि चित्रकारी को देख कर शृंगार किया जा रहा है। कालिदास के काल में कलाओं में भी समस्त प्रकार का रोजगार कलाओं में प्राप्त थे।

'उत्तररामचरितम्' महाकवि भवभूति का करुणरस में रचित सात अंकों का सर्वश्रेष्ठ नाटक है। भवभूति ने नाटक के प्रथम अंक का नाम ही चित्रदर्शन[14] रक्खा है। इस अंक में अर्जुन[15] नामक चित्रकार ने राम–सीता के पूर्वार्द्ध जीवन पर चित्र बनाये हैं जिसमें विवाह, वनवास, मिथिला, अयोध्या, पञ्चवटी इत्यादि वृत्तान्तों को चित्रित किया है जिसे राम–सीता और लक्ष्मण पुनः स्मरण करते देख रहे हैं। इस प्रकार चित्र बनवाना और देखना राम और लक्षण के चित्रकला के प्रेम को उद्घाटित करता है। राम कहते हैं– "क्लिष्टो जनः किल जनैरनुरंजनीयः"[16] अर्थात् दुःखी लोगों का उनके संबंधी लोगों को मनोरंजन करना चाहिये। यहाँ भी सीता को चित्र दिखाने की बात कही है। इस प्रकार, चित्रकला आनन्द एवं मनोविनोद का अनुरंजन करने वाली कला है, श्रीराम भी मानते हैं। चित्रकला में उस समय के लोग जीविकोपार्जन करते थे। कलाओं में कौशल उपलब्ध है जो तत्समय भी देखा जाता है तथा आज के समाज में भी कलाओं में रोजगार के अथाह अवसर उपलब्ध हैं। महाकवि भवभूति के नाटकों में स्थान स्थान पर कलाओं के उदहारण मिलते हैं।

महाकवि भवभूति के समय में व्यापार–वाणिज्य के साथ–साथ तत्कालीन समाज में विभिन्न प्रकार के व्यावसायिक कार्य भी किये जाते थे जिसमें कुशलता के प्रमाण प्राप्त होते हैं जिनसे सामान्य नागरिक अपनी व अपने परिवार की जीविका चलाते थे, यथा–चित्रकार, मूर्तिकार, सुवर्णकार, रथकार, मालाकर, धर्मकार आदि। 'उत्तरारामचरितम्' नाटक में गर्भवती सीता के मनोरञ्जनार्थ लक्ष्मण अर्जुन नामक चित्रकार से चित्रवीथी का चित्रांकन

करवाते हैं और सीता को दिखाते हैं।[17] यहाँ कला में कौशल को देखा जा सकता है तथा कला में रोजगार भी उपलब्ध था, उसके संकेत प्राप्त होते हैं।

महाकवि भवभूति के काल में मूर्तिकला का अत्यधिक विकास हुआ। अश्वमेघ यज्ञ के अवसर सीता की स्वर्णमूर्ति[18] का निर्माण करवाना, 'मालती माधवम्' में शिवमन्दिर में शिव प्रतिमा का निर्माण तथा कराला देवी के मन्दिर में कराला देवी की प्रतिमा इसके प्रमाण हैं, उत्तररामचरितम् में वर्णन है। रावण का रथ उत्तम काले लोहे का बना हुआ था।[19] इससे स्पष्ट होता है कि रथ–निर्माण का व्यवसाय होता था तथा लोहे का व्यवसाय भी किया जाता था। अस्त्र–शस्त्रों का निर्माण लोहे से ही किया जाता था। इनके निर्माण में कारीगर अपनी कुशलता का परिचय देते थे। महावीरचरितम् में षष्ठ अंक में लोहे की कील का उल्लेख है।[20] मालतीमाधवम् नाटक में लोहें के फाटक का वर्णन है।[21] इससे स्पष्ट होता है कि तत्कालीन समाज में लोहे का उपयोग प्रचुरता से होता था और उससे विभिन्न उपकरणों का निर्माण किया जाता था। लौह–व्यवसाय उत्कृष्ट अवस्था में उपलब्ध था, उसमें रोजगार के अवसर प्राप्त थे।

मावलीमाधवम् में नाना प्रकार के आभूषणों का निर्माण करने वाले सुवर्णकार का उल्लेख है जिसकी तुलना कामदेव से की गई है।[22] सोने की विविध कलापूर्ण आभूषण का वर्णन भी है– "अयमागृहीत कायनीय कंकणस्वत मूर्तिमान इव महोत्सवः करः"[23] तथा विभिन्न प्रकार के मणियों जवाहरातों का वर्णन इस बात का प्रमाण है कि सोने और जवाहरातों की कारीगरी उन्नत अवस्था में थी। आज के जैसा ही व्यवसाय सोने–चाँदी का उस समय भी उपलब्ध था। उत्तररामचरितम् नाटक में तलवार का उल्लेख भी प्राप्त होता है।[24] इस सब में व्यावसायिक कर्म उपलब्ध था। तथा इन कलाओं में जीविका निहित थी।

भवभूति ने महावीरचरितम् में कुम्भ[25] का उल्लेख किया है जो कुम्हारों के अस्तित्व पर प्रकाश डालता है। उत्तररामचरितम् में वानप्रस्थियों के द्वारा नीवार धान को पकाने का उल्लेख प्राप्त होता है, जैसे– "नीवारयुष्टिपचना गृहिणो गृहाणि"[26] जिससे स्पष्ट ही होता है कि उस समय विभिन्न प्रकार के बर्तन बनाने की कलाओं के संकेत प्राप्त होते हैं तथा रोजगार निहित था।

उत्तररामचरितम् के ही चतुर्थ अंक में तपोवन में स्थित एक तापस बालक दूसरे तापस बालक से कहता है कि देखो, यह तपोवन का मृग गरम–गरम नीवार धान्य से बने भात का मांड पी रहा है और दूसरी ओर घृतयुक्त भात की सुगन्ध से मिश्रित बदरी फल के साग से पकने की सुगंध आश्रम में चारों ओर फैल रही है, जिसका वर्णन प्राप्त होता है, यथा–

> नीवारौदमण्डमुष्णमधुरं सद्यः प्रसूतप्रिया–
> पीतादभ्यधिकं तपोवनमृगः पर्याप्तमाचामति ।
> गन्धेन स्फुरिता मनागनुसृतो भक्तस्य सर्पिष्यमतः,
> कर्मन्धूफलमिश्रशाकपचनामोदः परिस्तीर्यते ।।[27]

भवभूति की रचनाओं में धवलपट्टांशुक[28], रक्तवर्णांशुक[29], तूल[30] आदि का वर्णन प्राप्त होता है जिससे ज्ञात होता है कि रेशमी तथा सूती दोनों प्रकार के वस्त्रों का प्रयोग किया जाता था जो कि वस्त्र व्यावसाय को इंगित करता है। वस्त्रों का निर्माण कुशल बुनकरों द्वारा किया जाता था। इस प्रकार वस्त्र कलाकारी एवं नक्कासी की कलाएँ उस समय वस्त्र व्यवसाय में उपलब्ध थीं।

इसके अतिरिक्त धनुष आदि के निर्माण का व्यवसाय, माला बनाने का व्यवसाय, नाव–निर्माण आदि का व्यवसाय भी किया जाता था। रथ के निर्माण के साथ–साथ उसे चलाने के लिये कुशल सारथि की भी आवश्यकता होती थी। महावीरचरितम् नाटक में राजा कुशहवज तथा उनके सारथि का उल्लेख है।[31] महाकवि भवभूति ने रक्षारूढ़ इन्द्र और उनके सारथि मातलि का उल्लेख किया है।[32] महावीरचरितम् नाटक में प्राप्त उद्धरणों से स्पष्ट होता है कि तत्कालीन समाज में रथ–संचालन का कार्य एक व्यवसाय के रूप में भी किया जाता था तथा कुशल कारीगर इसका निर्माण करते थे तथा उसमें रोजगार उपलब्ध था।

महाकवि भवभूति ने पुल व सड़कों के निर्माण का भी वर्णन किया है। लंका तक पहुंचने के लिये वानरों द्वारा लाये गये पत्थरों के टुकड़े जो पानी में तैरते हैं, उसी से पुल बनाया जाता है। महावीरचरितम् नाटक के षष्ट अंक में इस प्रकार विभिन्न प्रकार के निर्माण–कार्यों से सामान्य जनता अपनी आजीविका का निर्वाह करती थी, ऐसा उल्लेख प्राप्त होता है।[33] इस प्रकार व्यावसायिक कर्म एवं कौशल में आजीविका के अवसर उपलब्ध थे।

श्रीहर्ष के नाटकों में भी कलाओं से आजीवका का संकेत दिखाई देता है। रत्नावली महाकवि हर्षवर्धन की

संस्कृत नाट्य–साहित्य की सर्वश्रेष्ठ चार अंकों की नाटिका है। दूसरे अंक में निपुणिका सुसंगता से कहती है कि "सखि ! दृष्टा मया ते प्रियसखी सागरिका गृहीतचित्रफलकवर्तिकासमुद्गका समुद्विग्नेव कदलीगृहं प्रविशन्ती।"[34] अर्थात् सखि ! मैंने तुम्हारी प्रियसखी सागरिका को चित्रपट, कूँची एवं पेटिका लिए उद्विग्न–सी केलागृह में प्रवेश करते हुए देखा है। निश्चित ही, वह सब सामग्री लेकर चित्र बनाने ही गयी थी। यहाँ कवि ने नाटिका की नायिका सागरिका (रत्नावली) को एक चित्रकार के रूप में बताया है, वह स्वयं चित्रकला में इतनी निपुण थी की वह राजा उदयन का चित्र बनाती है तथा उसकी सखी सुसंगता "किं पुनः शून्यमिवैतच्चित्रं प्रतिभाति"[35] किन्तु यह चित्र सूना लग रहा है– ऐसा कहकर उस चित्र के पास सागरिका (रत्नावली) का चित्र भी बना देती है और राजा उदयन के सम्मुख प्रदर्शित करती है। इस प्रकार सागरिका (रत्नावली) अपने प्रथम प्रेम–भाव को सर्वप्रथम राजा उदयन के सम्मुख चित्र बनाकर प्रदर्शित करती है। राजा उदयन भी चित्र में ही नायिका के सौन्दर्य को देख कर मुग्ध हो जाता है और कहता है "केयं चित्रगता राजहंसीव"[36] चित्र में बनी हुई राजहंसी के समान यह कौन मेरे हृदय में समा रही है। इस प्रकार, चित्रकारी का सुन्दर चित्रण यहाँ चित्रित किया गया है। न केवल नायिका अपितु सखी सुसंगता को भी एक उच्च कोटि चित्रकार के रूप में बताया है। इसप्रकार, श्रीहर्ष के समय कलाओं में रोजगार निहित था जिससे व्यक्ति अपनी आजीविका का निर्वहण करता था।

वेणीसंहार नाटक के आरम्भ में ही सूत्रधार संगीत आरम्भ की बात कहता हुआ सुनाई देता है, यथा– "शरत्समयामाश्रित्य प्रवर्त्यता संगीतकम्"[37] अर्थात् उस समय विभिन्न कलाओं में रोजगार उपलब्ध था। संगीत के साथ विभिन्न वाद्य भी बजाये जाते थे, उसका भी उल्लेख मिलता है। शंखनाद सिंहनाद युद्ध उत्सव के समय होता था, उसमें वाद्यों को भी बजाया जाता था, उसका भी उल्लेख आता है, यथा– दुन्दुभिस्ताडितोऽयम्[38] यह भेरी वाद्य किसने बजा दिया? इस कला में भी रोजगार प्राप्त था। यह वाद्य युद्ध में बजाया जाता है। एक प्रसंग में भानुमती का स्वप्न संगीत की ध्वनि से खुल गया[39] अर्थात् प्रातः बेला में भी संगीत बजाया जाता था, इस प्रकार तत्समय में विभिन्न कलाओं में रोजगार सुलभ था।

नाटक में संगीत का प्रारम्भ करने के लिये सूत्रधार कहता है कि शरद ऋतु में करना चाहिये क्योंकि चांदनी, नक्षत्र, गृह क्रौंच पक्षी, हंस समूह, सप्तपर्ण के फूल, कुमुद, कमल और काश के फूलों के पराग से सफेद दिशाओं वाले तथा मधुर जल और जलाशय से युक्त है, यथा–

सप्तकक्षा मधुर गिरः प्रसाधिताशा मदोद्धतारम्भातः
निपतन्ति धार्तराष्ट्राः कालवशान्मोदिनी पृष्ठेच ।।[40]

सुन्दर पंखों वाले, मधुर वाणी वाले और दिशाओं को अलंकरण करने वाले तथा आनंद के कारण से उद्धत व्यापार वाले हंस पृथ्वी पर उतर रहे हैं। हंस वर्षा–ऋतु में मानसरोवर चले जाते हैं और शरद ऋतु आने पर वे पुनः अपने स्थान पर लौट आते हैं। यहाँ पक्षियों के वैभव के साथ संगीत कला के महत्त्व को एवं उसमें आजीविका का वर्णन किया गया है। इस प्रकार, कलाओं में रोजगार एवं आजीविका के अवसर तत्समय पर्याप्त उपलब्ध थे तथा वर्त्तमान में भी विभिन्न कलाओं में रोजगार उपलब्ध हैं।

**निष्कर्ष–**

अन्ततोगत्वा हम निष्कर्ष रूप में यह कह सकते हैं कि सम्पूर्ण संस्कृत नाट्य साहित्य विभिन्न कलाओं से अलंकृत–अलंधार्य ही है। कलाओं एवं संस्कृत रूपकों को अलग कर दिखा पाना पाषण धर्म–सा है। संस्कृत रूपकों की रचना–सृष्टि अति विस्तृत है, इसलिए यहाँ कुछ प्रमुख रूपकों में कलाओं में रोजगार के अवसर को दृष्टिपटल पर ला देने का प्रयास किया गया है। यद्यपि एक–एक नाटक विविध कलाओं को संजोये–संवारे हुए है। इस शोधात्मक विवेचन से यह सिद्ध होता है कि संस्कृत के रूपकों में यह कार्य सौन्दर्यात्मक रंग–बिरंगे दृश्यों से हुआ है तथा शब्दों को दृश्यों में और दृश्यों को अंकों में ढालकर समस्त कलाओं को परोसा गया है। इस प्रकार, महाकवियों ने शब्दकमलयुक्त कल्पना से दृष्टिपटल पर जो शब्दचित्रकारी की है, वह मन्त्रमुग्ध कर देती है। तत्समय समस्त कलाओं में आजीविका के अथाह अवसर प्राप्त थे, इसीलिए जीवन खुशहाल था। आज भी कलाओं में अवसर देकर ही युवा–बेरोजगारी की समस्या से मुक्ति मिल सकती है। शिक्षा को कलात्मक बनाना होगा, क्योंकि कलाओं में अनंत रोजगार के अवसर उपलब्ध हैं। प्रत्येक शरीर में नियतिप्रदत्त कौशल होता है और उस कौशल में रोजगार निहित है। अगर शिक्षा उभारने का कार्य करें तो आज हम विश्व की महानतम समस्या बेरोजगारी से निदान पा सकते है।

संस्कृत नाटकों के समय मूल्यपरक एवं कौशलपरक शिक्षा दी जाती थी, इसलिए रोजगार का अधिक संकट नहीं था पर आज रोजगार देना सरकारों के लिए बड़ा संकट है। इसलिए मानव कलाओं में अवसर ढूढें तो बेरोजगारी से उबर सकता है।

बेरोजगारी गुनाह करवाती है,
रोजगारी को यह बात समझ नहीं आती है।

**सन्दर्भ सूची :**

1. गुर्जर–भूकम्प–शतकम्–57
2. भर्तृहरि, नीतिशतकम्–12
3. भास, स्वप्नवासवदत्तम्–6/3
4. वही, 6/11 के बाद वृत्ति भाग
5. वही
6. शूद्रक, मृच्छकटिकम्–4/1 से पहले वृत्ति भाग
7. वही,
8. वही, 4/3 के बाद का वृत्ति भाग
9. कालिदास, अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 1/1
10. वही, 2/9
11. वही, 2/9
12. वही, 4/4 के बाद गद्य
13. वही, 4/5 के बाद का गद्य भाग
14. भवभूति, उत्तररामचरितम्– प्रथम अंक का नाम
15. वही, 1/12 की वृत्ति भाग
16. वही, 1/14
17. वही, 1.12 के बाद
18. आत्रेयी–हिरण्मयीसीताप्रतिकृतिः गृहणीकृता। उत्तररामचरितम् – 2/6 केबाद
19. भवभूति, उत्तररामचरितम्– 3/43
20. भवभूति, महावीरचरितम् – 6/16
21. भवभूति, मालतीमाधवम्– तृतीय अंक
22. वही, 5/10
23. भवभूति, उत्तररामचरितम्– 1/18
24. वही, 3/43
25. भवभूति, महावीरचरितम्– 6/45
26. भवभूति, उत्तररामचरितम्– 1/25
27. वही, 1/4
28. भवभूति, मालतीमाधवम्– 6/7 के पश्चात्
29. वही, 6/7 के पश्चात्
30. भवभूति, महावीरचरितम्– 6/5
31. वही, 1/9
32. वही, 6/25
33. वही, 6/12
34. हर्ष, रत्नावली –2/1 के पूर्व का गद्य
35. वही
36. वही, 2/9
37. भट्टनारायण, वेणीसंहार– नाटकम् – 1.5 के पश्चात् का गद्य भाग
38. वही, 1.22
39. वही, 2.12 के पश्चात् का गद्य भाग
40. वही, 1.6

# फर्रूखाबाद घराना के विकास में युवा तबला वादकों का योगदान

**प्रभात बाली***

**सार संक्षेप**

*तबला वादक की परम्परा भारतीय शास्त्रीय संगीत का एक महत्वपूर्ण अवयव है। इस परम्परा को आगे बढ़ाने में घराने की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। वंशावली व शिष्य परम्परा किसी भी विद्या–विशेष की प्रगति का सूचक होती है जो उसका प्रचार–प्रसार करती हुई यथेष्ट सम्मान का अधिकारी बनाती है। प्रस्तुत शोध–पत्र में फर्रूखाबाद घराने के विकास में युवा तबलवादकों के योगदान पर चर्चा की गई है। फर्रूखाबाद घराना के प्रवर्तक उस्ताद विलायत अली खाँ के अतिरिक्त उस्ताद अहमद जान थिरकवा, अस्ताद अमीर खाँ, उस्ताद अहमद, करामत उल्ला खाँ, पं. ज्ञान प्रकाश, पं. निखिल घोष, पं. नयन घोष, पं. आनिंदो चैटर्जी, पं. बिप्लव भट्टाचार्य ने अपना बहुमूल्य योगदान दिया है । फर्रूखाबाद द्वारा स्थापित इस घराने के प्रचार–प्रसार एवं विकास में अनेक युवा तबला वादक अपना पूर्ण सहयोग दे रहे हैं, उदाहरणार्थ : रिम्पा शिवा, अनुब्रत चैटर्जी, रूपक भट्टाचार्य, संदीप घोष, सुनयना घोष, विवके पाण्डेय, सिद्धार्थ चैटर्जी इत्यादि।*

**मूल शब्द** :– *फर्रूखाबाद , घराना , तबला , विकास , वादक*

**शोध–प्रविधि** :– *प्राथमिक एवं द्वितीयक माध्यमों का उपयोग किया गया है।*

**प्रस्तावना** :– संगीत के अन्तर्गत गीत, वाद्य व नृत्य तीनों कलाओ का समावेश सर्वमान्य है व तीनो कलाओं का आधार तत्व ''ताल'' है। लय के जन्म के साथ ही उसको दर्शन के लिए किसी क्रिया की आवश्यकता पड़ी और परिणामस्वरूप ताल का निर्माण हुआ । काल का अर्थ है समय और समय के माप या बन्धन का नाम ताल हैं। 'संगीतार्णव' में ताण्डव नृत्य से ''ता' और लास्य से ''ल' के संयोग से ताल शब्द की व्युत्पत्ति बतायी गई है । 'रागार्णव' के अनुसार 'तल' शब्द के साथ 'अनु' प्रत्यय लगाने से ताल शब्द की व्युत्पत्ति होती है। ''संगीत दर्पण में ''तकार से शंकर या शिव और 'लकार' से पार्वती या शक्ति दोनों के योग को ताल कहा गया है ।

## फर्रूखाबाद घराना

लखनऊ घराने के प्रसिद्ध उस्ताद बख्शू खाँ के शिष्य व दामाद उस्ताद हाजी विलायत अली खाँ साहब फर्रूखाबाद घराने के संस्थापक माने जाते हैं। उन्होंने लखनऊ वादन शैली में मूलभूत परिवर्तन किया और अनेक प्रकार की रचनाएँ कर फर्रूखाबाद घराने को एक अलग पहचान और प्रतिष्ठा प्रदान की। यदि तकनीक की दृष्टि से देखें तो फर्रूखाबाद शैली दिल्ली और लखनऊ शैली का मिला–जुला संयोग है। दिल्ली बाज में जहाँ किनार का प्राधान्य था, वहीं लखनऊ बाज लव प्रधान था। जबकि इस घराने के प्रणेता हाजी विलायत अली ने चाँटी और लव के मिश्रण से फर्रूखाबाद बाज की स्थापना की। फर्रूखाबाद घराने की निम्नलिखित विशेषताएं इसे अन्य घरानों से पृथक करती है:– ''फर्रूखाबाद घराने की यह बहुत बड़ी विशेषता है कि इसमें दिल्ली के किनार और लखनऊ के लव का विधिवत प्रयोग किया गया है। इस बाज में दिल्ली की मिठास और लखनऊ की गम्भीरता दोनों पाई जाती हैं। इसलिए फर्रूखाबाद की वादन–शैली को न तो दिल्ली की तरह बंद बाज कहा गया और न ही लखनऊ का नचकरण बाज फर्रूखाबाद बाज में रेलों का विस्तार रौ के रूप में हुआ है। धिरकिट तिरकिट दिगनग दिनतक, ढोंग, दींगड़ तक त्रक जैसे वर्णो का प्रयोग इस घराने की मौलिक विशेषता और मौलिक आधार है। गतें, गत, परन विविध, प्रकार के चलन आदि वादन प्रकारों के प्रस्तुतिकरण में इस घराने का अधिक प्रभाव दिखाई देता है। स्वतंत्र वादन के लिए यह बाज अत्यन्त सफल और उत्तम बाज है।''[1]

**झपताल कायदा (उस्ताद करामत उल्ला खाँ)**

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| दिगनाड़ा | धिनधग | तिरेकेट | धागेतेटे | क्रेधेतेटे |
| धिननाड़ा | धेनेधेने | धातिधेधे | तकधिंग | नाड़ा गिन |
| तिंगनाड़ा | केनतक | तेरेकेट | धागेतेरे | क्रेधेतेरे |
| धिननाड़ा | धेनेधेने | धातिधेधेतक | धिंग | नाड़ाधिन[2] |

*प्राध्यापक सदस्य, तबला विभाग, संगीत एवं ललित कला संकाय, जम्मू विश्वविद्यालय

फर्रूखाबाद घराने की शिष्य परम्परा ने इस घराने के सांगीतिक कोष को और भी समृद्ध किया है। उस्ताद हाजी विलायत अली खाँ के शिष्यों–प्रशिष्यों की परम्परा में हुजूरूद्दीन खाँ, पण्डित जियालाल जी, उस्ताद मुनीर खाँ, अता हुसैन खाँ, सुप्पन खाँ, मिऊन खाँ, मोदू खाँ, रघुनंदन, पण्डित भीष्म देव वेदी, उस्ताद चूड़िया वाले इमाम बख्श, मुबारक अली खाँ, उस्ताद करम इतल खाँ, बेचाराम चट्टोपाध्याय, पण्डित जहांगीर खाँ, उस्ताद अमीर हुसैन खाँ, उस्ताद नासिर खाँ, उस्ताद हबीबुद्दीन खाँ, उस्ताद शमशद्दीन खाँ, उस्ताद नन्हें खाँ, उस्ताद नज़र अली खाँ, हुन्नु खाँ, मुरारी लाल, श्यामलाल पाण्डेय, गुरुदयल मुनीम, वासुदेव प्रसाद, रहीम बख्श, बाबा साहब मासेलकर, निज़ामुद्दीन खाँ, हाफिज खाँ, निखिल घोष, पंढ़रीनाथ नागेश्वर, शरद खरगोनकर, तारानाथ राव, रामप्रवेश सिंह एवं उस्ताद नन्हें खाँ के पुत्र मसीतउल्ला या मसीत खाँ, पौत्र करामतउल्ला खाँ प्रपौत्र साबिर खाँ आदि हुए है।

### इस घराना के प्रमुख युवा तबला वादक

### रिम्पा शिवा

रिम्पा शिवा को संगीत जगत में Princess of Tabla के नाम से जाना जाता है। इनका नाम 14 फरवरी 1986 ई. को सांगीतिक परिवार में हुआ। इनके तबला–वादन की शिक्षा बचपन से ही प्रारंभ हो गई थी। तबला की शिक्षा पिता व गुरू पं. स्वप्न शिवा जो स्वर्गीय उस्ताद करमतुल्ला खाँ, फर्रूखाबदा घराने के शिष्य थे, से प्राप्त हुई।'' अपने कठिन परिश्रम व निष्ठा के आधार पर इन्होंने फर्रूखाबाद घराना की परम्परा व प्रतिष्ठा को आगे बढ़ाया। ये ऐसे सौभाग्यशाली कलाकारों में से एक हैं, जिन्हें उस्ताद ज़ाफिर हुसैनजी से प्रशंसा और सराहना आशीर्वाद के रूप में प्राप्त हुई।[3] "Zakir Hussain was made to listen to a type of a young table players sedition when asked if you could guess anything about the artist zakir said "The he was actually a young girl Rimpa shiva. The maestro finally saw her person tive and went over and kissed her hands giving her many types play betters."[4]

रिम्पा शिवा के तबला वादन में जहां बोलों की स्पष्टता है वही ज़ोरदार प्रहार व बोलों की कोमलता का वैशिष्ट्य भी विद्यमान है। इनके कला प्रदर्शन में लय तथा ताल की सूक्ष्मता विशेष शास्त्रीय विधि से अभिव्यक्त होती है। इन्होंने 500 से अधिक संगीत सम्मेलनों में अपनी कला का प्रदर्शन किया। चूंकि 14 वर्ष की आयु की में ही इन्होंने बड़े–बड़े कलाकारो जैसे पण्डित हरिप्रसाद चौरसिया, पंडित अजय चक्रवर्ती के साथ मंच सांझा किया। अतः वे जब बजाती हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे उनके पूर्व जन्म की अवस्था है।''[5] इन्होंने अपनी कला का प्रदर्शन भारत के अतिरिक्त अमेरिका, यूरोप, जापान, इंग्लैंड, नार्वे आदि देशों में भी किया।

### सम्मान व उपलब्धियाँ

1. 1996 में मात्र 10 वर्ष की आयु में नार्वे में "Arunland Raj memorial fund" द्वारा अवार्ड व 5000/– रूपए का नकद पुरस्कार प्राप्त हुआ।
2. 1997 में World Child Festival, Netherland में निमन्त्रण प्राप्त हुआ।
3. 1998 में फ्रेंच भाषा ने रिम्पा शिवा पर डाक्यूमेन्द्री फिल्म बनाई गई, जिसका "Rimpa Siva Princess of Tabla" नाम रखा गया। तब इनकी उम्र केवल 12 वर्ष थी।

इसके अतिरिक्त रिम्पा शिवा के वादन की सी.डी व डी.वी भी प्राप्त हैं, जिनमें से प्रमुख निम्नलिखित है–

Play list of Rimpa shiva- इनमें विभिन्न तालों (तीनताल में पेशकार, कायदे, टुकड़े, रूपक ताल में पेशकार, फायदे, लग्गी, लड़ी, रेला) आदि को तबला वादन में प्रस्तुत किया है।

Tabla girl Rimpa Shiva Accompanies Flute legend-P.T Hari Prasad Chaurasa (U.S.A) इस सी. डी में रिम्पा शिवा ने विश्व विख्यात बांसुरी वादक पंडित हरी प्रसाद चौरसिया के साथ तीनताल में संगति की है।

सांगीतिक शिक्षा के साथ–साथ अकादमिक शिक्षा में भी इन्होंने सफलता प्राप्त की है। रवीन्द्र भारती विश्वविद्यालय, कलकत्ता से संगीत में स्नातकोत्तर (एम.ए) की उपाधि इन्हें प्राप्त है।

यद्यपि अकादमिक शिक्षा में इन्होंने उपरोक्त उपाधियाँ प्राप्त की हैं। किन्तु इनके लिए जीवन की पहली प्राथनिकता तबला–वादन ही है, जिसके लिए समर्पण दृढ़ और अनुशासन की अनिवार्यता मान्य है। उनके शब्दों में "I don"t really have to succeed.One has to be

dedicated, determined and disciplined. I have to set priorities for me, the table is top most on any list."[6] निसंदेह संगीतरूपी सागर में रिम्पा शिवा का व्यक्तित्व एक बेशकीमती मोती के समान है।

### अनुब्रत चैटर्जी

फर्रूखाबाद घराना के प्रसिद्ध तबला वादक अनुब्रत चैटर्जी का जन्म 1 जून 1985 को कोलकाता में पण्डित आनिंदो चैटर्जी के घर हुआ जो स्वयं श्रेष्ठ तबला वादकों की श्रेणी में आते है। इन्हें पदम भूषण तबला वादक ज्ञान प्रकाश घोष जी का अन्तिम गंडा बंधन शिष्य बनने का दुर्लभ सुअवसर प्राप्त हुआ। तदुपरांत इन्होंने अपने पिता से तबला वादन का प्रशिक्षण जारी रखा और फर्रूखाबाद घराने के साथ–साथ लखनऊ और अजराड़ा घराने की शैली की भी शिक्षा ली। इन्होंने संगीतकार के रूप में अपनी शुरूआत वरेण्य व वरिष्ठ पडित हरिप्रसाद चौरसिया जी से की और उनके बाद भारतीय शास्त्रीय संगीत के दिग्गज कलाकारों जैसे उस्ताद अमजद अली खाँ, पंडित बिरजू महाराज, पंडित शिवकुमार शर्मा, उस्ताद शाहिद पखेज़, श्री टी. एच विक्कू विना यक्रम और दुनिया भर के सम्माननीय संगीतकारों के साथ संगति की। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर इन्होंने एकल–वादन की शुरूआत सन् 1991 में बी.बी.सी बर्ड रेडियो, यू.के. से की। इन्हें दुनिया भर में आयोजित सर्वाधिक प्रतिष्ठित अन्तर्राष्ट्रीय समरोहों में प्रदर्शन का आमंत्रण भी मिला, जैसे– The Carnegie hall the Kennedy Centre of Performing Arts, Washington DC: The Esplanade Theatres, Singapore, World Percussion Festival Chicago, The Ferash Festival, Jordan, Corfu Festival, Greece Dubrovnic Festival Croatia Namaste India festival, Japan, Reit Burg Museum Zurich आदि।

इन्होंने फ्रांस के "National Symphony Orchestra" जिसे National de Farce कहा जाता है, के साथ 2012 में कला प्रस्तुति दी। 2012 में ही इन्हें तत्कालीन प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह के समक्ष भी प्रस्तुति का अवसर मिला। अनुब्रत चैटर्जी ने स्वयं को संगतिकार और एकल तबला–वादक दोनों रूपों में स्थापित किया और अपने पिता पण्डित आनिंदो चैटर्जी के साथ भी मंच सांझा किया।

अपने पिता के समान ही अनुब्रत चैटर्जी अपने शिष्यों को सिखते समय गुणवत्ता पर अधिक महत्व देते हैं। इनके द्वारा नियमित रूप से न्यूयॉर्क (Music Tabla Academy for Tabla Research by Andindo Chatterjee) और जापान में वर्कशौप का आयोजन किया जाता है। अपनी जड़ों और परम्पराओं के साथ सांमजस्य स्थापित करने पर हमेशा इनका ध्यान केन्द्रित रहा है। इस विचार को ध्यान में रखकर इन्होंने 'ताल इण्डिया' नामक एक परकशन ग्रुप बनाया जहाँ देश के हर क्षेत्र का परकशन वाद्य से प्रतिनिधित्व किया जाता है। वे कई फयूज़न बैंड का हिस्सा भी रहे है और इन्होंने कई नामी कलाकारों जैसे शंकर महादेवन, रणजीत बैरोट, रहीम अल हज के साथ मंच सांझा किया। इन्होंने Layacurry and beats pieces two नाम से अपना बैंड भी तैयार किया जिसे दुनिया भर के संगीत प्रेमियों का स्नेह मिला। इनकी उपलब्धियों में निम्नलिखित अवार्ड भी शामिल हैं–

President's Gold Modal Award by all India Radio, 2001

Pandit Nikihil Ghosh Memorial Award, 2002

Basava Raj Rajguru Award, 2013

Sangeet Natak Akedeni "Ustad Bisnullah Khan Yuva Purashkar, 2016

### रूपक भट्टाचार्जी

रूपक भट्टाचार्जी classical percussion की श्रेणी में एक प्रसिद्ध व स्थापित नाम है। इनका जन्म एक संगीत प्रेमी परिवार में हुआ। मात्र चार वर्ष की आयु में ही रूपक भट्टाचार्जी का तबले के माध्यम से संगीत की दुनिया से साक्षात्कार हुआ, जिसका श्रेय इनके पिता व प्रथम गुरू श्री अरूणा भट्टाचार्जी को जाता है। आगे की शिक्षा इन्होंने मृखाल कान्ति बख्शी जी से फर्रूखाबाद शैली में ग्रहण की। इनके अतिरिक्त इन्हें महान् व श्रेष्ठ कलाकार पण्डित अनिंदो चैटर्जी के सान्निध्य में शिक्षा ग्रहण करने का अवसर भी प्राप्त हुआ। श्री रूपक भट्टाचार्जी ने अपने परिश्रम का प्रतिभा से अपनी कला में कई विस्तार किया, जिनमें सबसे महत्वपूर्ण ऑल इंडिया रेडियो म्यूज़िक प्रतियोगिता में प्रथम आकर 2004 का राष्ट्रपति अवार्ड प्राप्त करना रहा। कम समय में ही इन्होंने स्वयं की न केवल एकल तबला वादक के रूप में विशेष पहचान बनाई बल्कि एक प्रवीण संगतकार के रूप में स्वयं को स्थापित भी किया। कुछ ही वर्षों में इन्होंने देश–विदेश की यात्रा करते हुए एकल तबला वादन के अतिरिक्त भारतीय शास्त्रीय

संगीत की महान् और वरिष्ठ विभूतियों के साथ संगत करने का अवसर प्राप्त किया। इन्होंने जर्मनी, स्विज़रलैंड, पुस्टोनिया, थाईलैंड, अल्जीरिया, फिनलैंड, ऑस्ट्रिया, सीरिया कतर, इंडोरेशिया, इटली, बांग्लादेश, व अन्य यूरोपीय देशों में अपनी कला का लोहा मनवाया। जिन हस्ताक्षरों के साथ इन्होंने संगत की उनमें पंडित अमिया बांदोपाध्याय, पंडित बुद्धदेव दास गुप्ता, विदुषी, शिशिर कनाधर चौधरी, पण्डित तेजिन्दर नारायण मजूमदार, पण्डित सैमित्रो लहरी, पडित देबाशीष भट्टाचार्य, शशांक सुब्रमन्यम, पंडित देवोज्योति बोस, पंडित सोहनलाल शर्मा, विदुषी पूर्णिमा चौधुरी, विदुषी कल्याणी रे, विदुषी नया विस्वास, पडित रणजीत सेन गुप्ता, श्रीमती कौशकी चक्रवर्ती, डॉ. नर्मदा, श्रीमती गीता राम मि. केन ज़करमैन, पार्था सारथी देसीकन, पडिण्त रमेश मित्रा, पण्डित सुब्रता रे चौधुरी, पण्डित कमल मलिक आदि प्रमुख नाम हैं।

**सम्मान व उपलब्धियाँ**

पंडित निखिल घोष मेमोरियल प्रोमिसिंग आटिस्ट आवार्ड, मुंबई, 2005

भारत सरकार प्रदत्त 'राष्ट्रीय छात्रवृत्ति 2003–2005

पण्डित ज्ञान प्रकाश घोष मेमोरियल तबला वादन प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कार।

सरबा वारित्य संगीत संस्कृति परिषद् द्वारा 'विशारद' पुरस्कार

श्री रूपक भट्टचार्जी ने जिन मंचों व समारोहों में तबला–वादन कर दर्शकों को अभिभूत किया उनका संक्षिप्त वर्णन निम्नलिखित है–

ऑल इंडिया रेडियो नेशनल प्रोग्राम 2014, 2016

आकाशवाणी संगीत सम्मेलन 2012

द वर्ल्ड हेरिटेज म्यूजिक फैस्टीवल, थाईलैंड, 2009

इंटरनेशनल वर्ल्ड म्यूजिक फैस्टीवल मिनिस्ट्री ऑफ कल्चर, अल्जी रिया, 2010

ओरिएण्ट फैस्टीवल, पुस्तोनिया, 2015

इंटरनेशनल म्यूजिक फैस्ट डमैस्कस, 2012

राज्य संगीत अकादमी, वैस्ट बंगाल

दिल्ली इंटरनेशनल आटर्स फैस्टीवल, 2010

ITC/SRA फनुयल म्युजिक कॉन्फ्रेंस

INDO OCCIDENTAL SYMBOLS IS

हेरिटेज जन फैस्टीवल, गोआ

कोंगो स्कवायर इंटरनेशनल जज फैस्टीवल, कोलकाता

फाईन आर्ट फैस्ट, बड़ौदा

फाईन आर्ट फैस्ट, मुंबई

पण्डित निखिल बैनर्जी मेमोरियल म्यूज़िक कॉन्फ्रेंस, कोलकाता ।

एन.सी.पी. मुबंई।

डमरू द ड्रम फैस्टीवल ऑफ इंडिया पुणे, 2011

शोंगीत आश्रम, कोलकाता।

सुतानुतिपरिषद्, कोलकाता।

उत्तर पार संगीत चक्र

पडित भीमसेन जोशी नेशनल फैस्टीवल फॉर म्यूज़िक एंड डांस, हैदराबाद, 2015

श्री रूपक भट्टाचार्जी के वादन की विशेषता उनकी लय प्रस्तुतिकरण की उत्कृष्टता, दुर्लभ व कठिन कम्पोजीशन की स्पष्टता उनकी प्रतिभा की दर्शाती है। साथ ही, उन्हें तबला–वादन में एक महत्वपूर्ण अधिकार भी देती है।

**संदीप घोष**

संदीप घोष आज की पीढ़ी के उभरते व युवा कलाकार हैं। इन्होंने अपने करियर की शुरूआत पण्डित गोबिंदो चैटर्जी के शिष्य के रूप में उनसे 9 वर्ष तक प्रशिक्षण लिया। उनके बाद संदीप घोष पण्डित आनिंदो चैटर्जी के सम्पर्क में आए, जिन्होंने इनके ज्ञान और कौशल को और भी विस्तारित रूप दिया। पण्डित आनिंदो चैटर्जी के दिशा–निर्देश में इन्होंने फर्रूखाबाद घराने के अतिरिक्त अन्य घरानों की बारीकियों को भी समझा। संदीप घोष ने रविन्द्र भारती यूनिवर्सिटी, कोलकाता से संगीत में एम. ए. की परीक्षा प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण की। एकल और संगीतकार दोनों रूपों में प्रवीण श्री घोष ऑल इण्डिया रेडियो और दूरदर्शन के योग्य वादकों में से एक हैं। अपने गुरु पण्डित आनिंदो चैटर्जी के साथ कई बार जुगलबंदी कर दर्शकों को मंत्रमुग्ध किया। एक संगीतकार के रूप में इनकी रचनात्मकता व बुद्धि कौशल का कोई जवाब नहीं। इन्होंने कई शीर्ष गायकों, वादकों और नर्तकों के साथ अपनी कला के जौहर दिखाए जिनमें से उस्ताद आशीष खाँ, पडित हरि

प्रसाद चौरसिया, पडित रमेश मिश्रा आदि नाम प्रमुख रूप से लिए जा सकते हैं।

अपनी कला–योग्यता के आधार पर इन्हें कई अवार्ड भी प्राप्त हुए, जैसे– प्रेसिडेंड अवार्ड, एकेडमी पुरस्कार राज्य संगीत एकेडमी और लेन म्यूज़िक कान्फ्रेंस आदि। नेशनल स्कॉलर होने के साथ–साथ ये साऊथ एशियन यूनिवर्सिटीज़ फेस्टीफल में दो बार स्वर्ण पदक विजेता भी हैं।

अतः कहा जा सकता है कि संदीप घोष फर्रूखाबाद घराने की परम्परा और सम्मान को आगे बढ़ाने वाले कलाकारों की सूची में एक स्थापित नाम है।

**सुनयना घोष**

सुनयना घोष महिला तबला वादकों में एक प्रसिद्ध व आदरणीय नाम व पहचान है। संगीत जगत में आने की प्रेरणा इन्हें इनकी माता श्रीमती रीता घोष से मिली जो All India Radio कोलकाता में कलाकार हैं। सुनयना घोष ने 6 साल की उम्र में ही तबले में कौतुक के रुप में स्थान प्राप्त कर ली थी। तबला वादन की इनकी शिक्षा समर मिश्र के योग्य निर्देशन में हुई। तत्पश्चात् इन्होंने फर्रूखाबाद घराने के पण्डित शंकर घोष के संरक्षण में शिष्यत्व प्राप्त किया जो भारतीय तबला वादक उस्ताद बिक्रम घोष के पिता हैं।

सुनयना घोष के तबला–वादन की विशेषताएँ उन्हें उच्च कोटि के कलाकार के रूप में स्थापित करती हैं। उनके अनुसार ''उत्तम महिला तबला वादकों का वादन भी उसी स्तर का होना चाहिए जिस स्तर का पुरुष तबला वादकों का। महिला तबला वादक को भी उसी प्रकार लय, ताल, वादन के अन्य अंगों का सफलतापूर्वक प्रयोग करना चाहिए।''[7] यही कारण है कि कायदों की बढ़त, उसका विस्तार और बोलों को बजाने की विशेषता इनके वादन से झलकती है।

**सम्मान व उपलब्धियाँ**

इनका चयन ICCR द्वारा भारत के दस युवा संगीतज्ञों में हुआ, जिसमें इन्होंने भारत का नेतृत्व किया।

संगीत भूषण, संगीत विषारद, संगीत भास्कर।

यू. के. रेडियो द्वारा इनका तबला वादन तरंग एम.फिल में प्रसारित किया गया।

न्यूयॉर्क शहर की Tom & Tom Magazine के पाँचवे संस्करण में इनकी सांगीतिक गतिविधियों को प्रकाशित किया गया।

Ram Krishan Mission Institutions of Culture द्वारा इन्हें सम्मानित किया गया ।

सुनयना जी ने 1993 से अब तक विविध प्रतियोगिताओं में हिस्सा लिया और प्रथम स्थान प्राप्त करती आई हैं जिन में से कुछ निम्नलिखित हैं–

1. West Legal State Academy of Dance, Drama, Music and Visual Art
2. The over Music Conferences Institute of Culture and All Bengal Tabla Competition

इतना ही नहीं, सुनयना घोष ने पंडित दीपक चौधरी, पंडित महाराज बनर्जी जैसे प्रसिद्ध कलाकारों के साथ तबला संगति कर प्रशंसा प्राप्त की। तबला वादन के अतिरिक्त कत्थक और गायकी के क्षेत्र में भी सुनयना ने अपनी पहचान बनाई और विभिन्न प्रकार की कठिन तिहाइयों को सितार, सरोद, संतूर और गायकी संगति के दौरान प्रदर्शित किया हैं।

सांगीतिक उपलब्धियों के अतिरिक्त अकादमिक उपलब्धियों में भी इन्होंने ख्याति अर्जित की है। इन्होंने रविन्द्र भारती यूनिवर्सिटी, वाद्य विभाग से बी.ए. (आनर्स) में भी गोल्ड मेडल प्राप्त किया। सुनयना घोष की सफलता जहाँ उन्हें संगीत जगत में महत्वपूर्ण स्थान दिलाती है, वहीं दूसरों के लिए प्रेरणा का स्रोत भी है।

**विवेक पाण्डेय**

विवेक पाण्डेय 14 वर्षीय तबला वादक हैं, जो पिछले लगभग 9 वर्षों से सुविख्यात तबला वादक पण्डित आनिंदो चैटर्जी से शिक्षा ले रहे हैं। विवेक पाण्डेय का जन्म न्ययार्क के सांगीतिक परिवार में हुआ। विवेक पाण्डेय को स्वर्गीय पण्डित अरविन्द मुलगोंकर द्वारा उस्तार आमिर हुसैन खाँ जी की 47वीं बरसी 2016 में एकल तबला वादन के लिए निमंत्रण दिया गया। इन्होंने सोलापुर, पुणे, मंबई, ऐरिज़ोना, न्यायार्क के अतिरिक्त बड़ौदा में भी एकल तबला–वादन प्रस्तुत किया। इन्हें MS University, School of Music के द्वारा 2015 और 2017 में योजना अन्तर्गत बाल कलाकार के रूप में Enter Mural Lecture Series on Characterizes में आमंत्रित किया गया। इन्होंने कई संगीतकारों व स्थापित कलाकारों के साथ प्रस्तुति दी है। तबला वादन के अतिरिक्त टेनिस और अकादमी में भी विवेक पाण्डेय का कौशल प्रशंसनीय है।

**सिद्धार्थ चैटर्जी**

सिद्धार्थ चैटर्जी फर्रूखाबाद घराना के तबला वादक है। सांगीतिक परिवेश में जन्मे सिद्धार्थ चैटर्जी को संगीत के प्रति अत्यधिक लगाव है। उनके अनुसार, 'तबला की प्रेरणा मुझे अपने पिता श्री रबिन्द्र नाथ चैटर्जी जी से मिली। मैंने कम आयु से ही तबला की शिक्षा पण्डित कान्हाई लाल भट्टाचार्य जी से लेनी शुरू कर दी थी।''[8] अपने ड्रम से तराशे हुए स्वर प्रवाहित करने का गुण इनकी प्रतिभा को दर्शाता है। इनके इसी कौशल ने इन्हें भारत के प्रसिद्ध तबला वादकों की श्रेणी में ला खड़ा कर दिया। एकल–वादन के अतिरिक्त इन्होंने भारत के सुप्रसिद्ध कलाकारों के साथ संगति भी की। इन्होंने भारत के साथ–साथ विदेशों में भी कला प्रस्तुति दी। इनके कुछ महत्वपूर्ण कॉन्सर्ट इस प्रकार है– Ramkrishna Mission Belurnath Gayatri Music circle, Hernai, Patna Gruu Purnima Mohosav, Anuranan Music Festival Pune, Mardana Music Festival Patiala, Sangeet Natak Academy Chandigarh आदि।

इसके अतिरिक्त पं. जी को अनेक सम्मान भी प्राप्त हुए है, जैसे– संगीत रतन, ताल साधक सम्मान, भातखण्डे संगीत सम्मान, कला चक्र चूड़ामणि सम्मान आदि। श्री सिद्धार्थ ऑल इंडिया रेडियो के ए ग्रेड कलाकार हैं। अनेक वरिष्ठ शख्सियतों के साथ इन्हें संगति करने का अवसर मिला। उनमें से प्रमुख नाम इस प्रकार हैं– पण्डित बिरजू महाराज, उस्ताद शाहिद परवेज़, पं. अजय पोहनकर, पं. प्रतीक चौधरी, पं. जयतीर्थ मैवुण्डी, पण्डित तरूण भट्टाचार्य, पण्डित श्यामल लहरी, पण्डित संजय चक्रवर्ती, श्री सोमन भट्टाचार्य, पं. हरविन्दर शर्मा, पं. मनु सीन आदि।

**निष्कर्ष :**

निष्कर्षस्वरूप कहा जा सकता है कि तबला वादन की परम्परा में क्रमशः छः घरानों दिल्ली घराना, अजराड़ा घराना, लखनऊ घराना, फर्रूखाबाद घराना, बनारस और पंजाब घराना का योगदान तबले की वर्तमान प्रसिद्धि का परिणाम है। प्रत्येक घराने के सांगीतिक कोश पीढ़ी दर पीढ़ी वंश और शिष्य परम्परा में आगे बढ़ता रहा है, जिसने इसे और भी समृद्ध और सुप्रसिद्ध बनाया। इसी संदर्भ में फर्रूखाबाद घराना के वंशजों और शिष्यों ने अपनी प्रतिभा, कौशल, मेहनत, समर्पण और गुरू आशीर्वाद का परिचय देते हुए अपने घराने को सम्पन्न किया। फर्रूखाबाद घराने की वादन–शैली की विलक्षणता ने जहाँ एक विलक्षण पहचान दी वहीं इस घराने के कलाकारों ने इस पहचान को प्रतिष्ठा दिलाई।

हाजी विलायत अली खाँ साहब द्वारा स्थापित इस घराने के नवोदित कलाकार रिम्पा शिवा, सुनयना घोष शुंभकर बैनर्जी, रूपक भट्टाचार्जी, अनुब्रज चैटर्जी, संदीप घोष, विवेक पाण्डेय ऐसे प्रतिभावान तबला वादक हैं जो अपने वरिष्ठ कलाकारों की प्रतिष्ठा को कायम रखते हुए अपने अथक परिश्रम के बल पर तबला–वादन को एक नई ऊँचाई तक पहुचाने हेतु अग्रसर हैं। इनकी उपलब्धियाँ इस बात की परिचायक हैं कि ये कलाकार फर्रूखाबाद घराने की परम्परा को निस्संदेह आगे बढ़ा रहे हैं और देश–विदेश में अपनी पहचान भी बना रहे है।

अन्त टिप्पणी :

1. कुमारी, अनामिका, अवनद्ध वाद्यों में ध्वनि विकास, पृ. 234
2. अरोड़ा, डॉ. प्रियंका, कौर, प्रो (डॉ.) गुरप्रीत, तबला वादन परम्परा में दिल्ली व पंजाब घराना, पृ. 35
3. रिम्पा सिवा से किए गए साक्षात्कार से उद्धृत, दिनांक– 18/4/21, अमृतसर
4. website- pune mirror, By vidya Mahajan. Port of friday, May, 2012
5. उस्ताद लक्ष्मण सिंह सीन के साथ किए गए साक्षात्कार से उद्धृत, जालन्धर (दिनांक 2 जून 2012)
6. The Hindu online edition of India national newspapers, friday, March 04,2005 (young world) Princess of Tabla-Shruti chakrabarty
7. डॉ. सन्तोष से किए गए साक्षात्कार से उद्धृत (29.12.12)
8. पं. श्री सिद्धार्थ चैटर्जी से किए गए साक्षात्कार से उद्भुत, दिनांक 19/04/2021, अमृतसर

संदर्भ ग्रंथ :

1. कौर, (डॉ) गुरप्रीतः भारतीय संगीत के अनमोल मणि डॉ. लालमणि मिश्र, कनिष्का पब्लिकेशन नई दिल्ली, 2004
2. मिश्र, छोटे ताल, ताल प्रसून, बी 26/64 दुर्गाकुण्ड, वाराणसी, 1995

# राग में वादी स्वर का महत्व

**प्रो0 के0 शशि कुमार**** **प्रशान्त मिश्र***

***सार***

*किसी भी राग की प्रस्तुति में सबसे महत्वपूर्ण होता है उस राग में प्रयुक्त होने वाले 'स्वर'। रागों में कई स्वर (शुद्ध एवं विकृत) प्रयोग किये जाते हैं और कुछ स्वर वर्जित भी होते हैं। राग में लगने वाले स्वरों को प्रस्तुतकर्ता विशेष रूप से स्वर को अपने ढंग से लगाता है। इन्हीं स्वरों में कुछ स्वर प्रबल एवं अति महत्वपूर्ण, जिन्हें बहुत्व की संज्ञा दी गई है तथा कुछ स्वर दुर्बल प्रयोग होते हैं। प्रयुक्त होने वाले प्रबल स्वरों का प्रयोग बार–बार किया जाता है तथा उस पर न्यास एवं ठहराव किया जाता है। इन्हीं प्रबल स्वरों में सबसे महत्वपूर्ण स्वर को 'वादी' की संज्ञा दी गई है।*

*प्रायः कई रागों में वादी स्वर से राग की पहचान होती है, यथा–समान स्वर के रागों में भूपाली में गान्धार वादी एवं देशकार में धैवत वादी। कुछ राग ऐसे भी मिलते हैं जिनमें वादी–सम्वादी में विद्वान् एकमत नहीं है। भारतीय शास्त्रीय संगीत में वादी, सम्वादी अनुवादी, विवादी, ग्रह, अंश, न्यास, अल्पत्व–बहुत्व आदि अनेक अवयव हैं। इनमें वादी सर्वोपरि है।*

**सूचक शब्द** : *राग, वादी, संवादी, गायन, स्वर*

**प्रविधि** : *अनेक पुस्तकों के अध्ययन के बाद संकलित सामग्री के आधार पर यह पत्र तैयार किया गया है।*

किसी भी राग का सबसे महत्वपूर्ण स्वर 'वादी स्वर' कहलाता है अर्थात् राग के अन्य स्वरों की अपेक्षा जिस स्वर पर अधिक ठहराव हो तथा जिस स्वर का राग में बार–बार प्रयोग किया जाता है, वह उस राग का वादी स्वर कहलाता है। शास्त्रों के अनुसार वादी स्वर की स्थिति राग–रूपी राज्य में राजा के समान मानी गई है। वादी स्वर पर ही प्रत्येक राग की विशेषता निर्भर रहती है। इसी कारण वादी स्वर को 'जीव' या 'अंश' स्वर भी कहते हैं। इस प्रकार यह कहना पूर्णतः उचित होगा कि राग में वादी स्वर का महत्व सबसे अधिक होता है। वादी स्वर पर राग का सौन्दर्य निर्भर होता है।[1]

भरतमुनि ने कहा है– ''तत्र यो यदंशः स तदा वादी'' अर्थात् यह स्पष्ट रूप से समझ सकते हैं कि जो जिसका अंश स्वर है, वही वहाँ वादी है। अभिनव गुप्त ने भी वादी स्वर के विषय में यही कहा है कि अंश स्वर ही वादी होता है। उनके अनुसार जो स्वर अधिक प्रयोग होता है और स्फुट रूप से भासमान रहता है तथा जो तारमन्द्रादि–व्यवस्था को बतलाता है, वह 'वादी' है। इसके अतिरिक्त वादी स्वर की यह भी विशेषता है कि ग्रह, न्यास, सन्यास, अपन्यास स्वर आदि भी 'वादी' पर ही आश्रित रहते हैं।[2]

वादी स्वर का प्रयोग कुशल गायक भिन्न–भिन्न प्रकारों से करते हैं। राग में वादी स्वर को बार–बार दिखाना, वादी स्वर से ही राग का आरम्भ करना, वादी स्वर पर ही राग समाप्त करना, राग के प्रमुख भागों में वादी स्वर को बार–बार भिन्न–भिन्न स्वरों के साथ प्रयोग करना तथा कभी–कभी वादी स्वर पर देर तक न्यास करना इत्यादि विविध ढंगों से वादी स्वर का प्रदर्शन रागों में किया जाता है। उदाहरण के लिए–राग बिहाग में गांधार स्वर वादी है, तो इसका प्रयोग इस प्रकार करते हैं : नि़सा ग, म ग, प मं ग म ग, रे सा। इसी प्रकार राग मारवा में वादी स्वर कोमल रिषभ का प्रयोग–नि़ रे़ ऽ ऽ सा, नि़ रे़ ग ऽ रे़ ऽ ऽ, नि़ रे़ ग ऽ रे़ ऽ ऽ, ग मं ध, मं ध मं ग रे़, ग ऽ रे़, नि़ रे़ ऽ, सा। प्रयुक्त स्वर समुदाय में स्पष्ट रूप से यह दिख रहा है कि कोमल रिषभ पर न्यास करते हुए उसका वादित्व कितनी सुंदरता से प्रकट हो रहा है।

**वादी स्वर का राग के गायन–समय के साथ सम्बन्ध :**

वादी स्वर के प्रयोग से रागों के गायन–वादन का समय भी जानने में सुविधा मिलती है। जब किसी राग के सप्तक के पूर्वांग में से कोई स्वर वादी होता है, तो उसे पूर्वांग वादी राग कहते हैं। उस राग का गायन–समय दिन

*शोध छात्र, गायन विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

**शोध निर्देशक, संकाय प्रमुख एवं विभागाध्यक्ष, गायन विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

के बारह बजे से रात्रि के बारह बजे तक के बीच होता है, जैसे–भीमपलासी, पीलू, पूर्वी, मारवा, यमन, भूपाली, बागेश्री इत्यादि रागों में पूर्वांगवादी स्वर होने के कारण ये राग पूर्वांग समय में ही गाए–बजाए जाते हैं। इसी प्रकार जब किसी राग में वादी स्वर सप्तक के उत्तरांग में से होता है, तो उस राग का गायन समय रात्रि के बारह बजे से दिन के बारह बजे तक के बीच होता है। जैसे–भैरव, भैरवी, बिलावल, कलिंगड़ा, सोहनी, आसावरी इत्यादि।

वादी स्वर की एक विशेषता यह भी है कि किसी राग में केवल वादी स्वर बदल देने से ही राग भी बदल जाता है, चाहे उन रागों में लगने वाले स्वर लगभग एक जैसी ही हों। उदाहरण–भीमपलासी और धनाश्री, ये दोनों राग काफी थाट से उत्पन्न हुए हैं और दोनों में ही ग–नि स्वर कोमल प्रयुक्त होते हैं, किन्तु इन रागों में केवल वादी स्वर के उलट–फेर से ही राग परिवर्तित हो जाता है। भीमपलासी गाते समय मध्यम स्वर अधिक प्रयोग किया जाता है, क्योंकि भीमपलासी राग का वादी स्वर मध्यम है और धनाश्री गाते समय पंचम स्वर का अधिक प्रयोग किया जाता है, क्योंकि धनाश्री में पंचम वादी है। इससे यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि केवल वादी स्वर को बदल देने से ही राग भीमपलासी से धनाश्री हो सकता है।

राग पूरिया, मारवा एवं सोहनी समप्रकृति राग हैं। यह तीनों रागों में समान स्वरों का प्रयोग होता है एवं यह तीनों रागों की उत्पत्ति मारवा थाट से मानी जाती है परन्तु पूरिया में गांधार–निषाद वादी–संवादी तथा मन्द्र सप्तक के निषाद पर न्यास, सोहनी में धैवत–गांधार वादी संवादी तथा उत्तरांग प्रधान और मारवा में रिषभ–धैवत वादी–संवादी मानते हैं। इस प्रकार ये तीनों राग समप्रकृति होते हुए भी वादी–संवादी के अंतर से एवं राग के चलन के अनुसार यह एक–दूसरे से परस्पर भिन्न दिखाई पड़ते हैं। इसके अतिरिक्त, राग मारवा के विषय में यह भी कहा जाता है कि यह एक पुरुष प्रकृति का राग है, इस कारण पुरुष प्रकृति को प्रखर करने में इस राग का वादी–संवादी सहायक होता है, अतः यह भी वादी स्वर के महत्व के विषय में एक मुख्य उदाहरण है।[4]

कुछ रागों के वादी स्वर के बारे में भिन्न मत पाए जाते हैं, जैसे–राग हंसध्वनि में वादी स्वर षड्ज तथा संवादी स्वर पंचम है परन्तु सभी विद्वान् इस राग में वादी–संवादी के विषय पर एकमत नहीं है। कुछ संगीताचार्य इस राग में रिषभ–पंचम एवं कतिपय विद्वान् गांधार–निषाद को वादी–संवादी मानते हैं। अतः इस विषय में षड्ज–पंचम वादी–संवादी मानने वाले विद्वान् इसे बिलावल थाट के अन्तर्गत मानते हैं, परन्तु अधिकांश विद्वान् गांधार–निषाद को वादी–संवादी मानते हुए इस राग को कल्याण थाट के अन्तर्गत मानते हैं। इस प्रकार किसी भी राग में वादी तथा संवादी स्वरों के अंतर से राग के थाट के विषय में भी मतभेद पाया जाता है।[5]

किसी राग का कोई स्वर–समुदाय देखकर उसमें वादी स्वर पहचानने से उस राग का नाम भी ध्यान में आ जाता है, जैसे–म प गम नि ध, नि ध, सांऽ, नि ध प, ग म ध, प, ग म रे, सा। इसमें धैवत स्वर विशेष रूप से प्रबल होते हुए अपना वादित्व प्रकट कर रहा है। अतः यह हमीर राग है, राग हमीर में वादी धैवत माना जाता है।

वादी स्वर की सहायता से राग का विस्तार तथा राग की बढ़त भी दिखाई जाती है, जैसे–मालकौंस में मध्यम स्वर वादी है तो उसके स्वर विस्तार में 'म' इस प्रकार समाया हुआ है–सा, ध़ नि़ सा, म, ग़, म ध़ नि़ ध़, म ग़, ग़ म ग़, सा।

राग में वादी स्वर का महत्व बताते हुए जो वर्णन किया गया है, उसके अनुसार निम्न बातें महत्वपूर्ण है–

1. वादी स्वर राग का प्रधान स्वर होता है और राग–रूपी राज्य में उसका स्थान राजा के बराबर है।
2. वादी स्वर को ही संगीत शास्त्रों में 'जीव स्वर' भी कहा गया है, अर्थात् इसी स्वर में राग के प्राण होते हैं।
3. वादी स्वर की सहायता से राग का गायन–समय जाना जाता है।
4. केवल वादी स्वर को बदल देने से कोई–कोई राग भी बदल जाता है, चाहे अन्य स्वर दोनों रागों में समान ही हों।
5. किसी स्वर–समुदाय में वादी स्वर को पहचानकर उस विशेष राग को पहचाना जा सकता है।
6. वादी स्वर पर राग का सौन्दर्य निर्भर होता है।

अतः इन्हीं विशेषताओं के कारण राग में वादी स्वर का महत्व सबसे अधिक होता है।

**संवादी** :– यह वादी स्वर का सहायक होता है, तभी इसे मंत्री की पदवी शास्त्रज्ञों ने दी है। यह वादी स्वर से कम तथा अन्य स्वरों से अधिक प्रयुक्त होता है। वादी स्वर के चौथे या पांचवें स्वर पर संवादी स्वर होता है।

**अनुवादी** :– वादी और संवादी के अतिरिक्त जो नियमित स्वर राग में लगते हैं, वे सब अनुवादी स्वर कहलाते हैं। इस प्रकार किसी राग में कम–से–कम तीन या अधिक–से–अधिक पाँच अनुवादी स्वर होते हैं।

**विवादी** :– विवादी का वास्तविक अर्थ तो 'बिगाड़' शब्द से सम्बन्धित है अर्थात् ऐसा स्वर जिससे राग का स्वरूप बिगड़ जाय। इसीलिए शास्त्रों में विवादी स्वर को शत्रु कहा गया है। तब भी राग में विवादी स्वर का प्रयोग ऐसी कुशलता से कर दिया जाता है जिससे राग में एक विचित्रता पैदा हो जाती है एवं राग की सुन्दरता भी नहीं बिगड़ती।

सन्दर्भ सूची :

1. शर्मा, पूजा, कुमार संजीत, झा, आशीष कुमार 'अरिहंत यू. जी.सी. नेट संगीत', (2020), अरिहंत पब्लिकेशन, पृ.सं. 10
2. सिंह, ठाकुर जयदेव 'भारतीय संगीत का इतिहास', (2010), द्वितीय संस्करण, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृ.सं. 319–320
3. वसंत, 'संगीत विशारद', (2010), सत्ताईसवां संस्करण, संगीत कार्यालय प्रकाशन, हाथरस, पृ.सं. 204–205
4. झा, रामाश्रय, 'अभिनव गीतांजलि', भाग–5, (2007), द्वितीय संस्करण, संगीत सदन प्रकाशन, प्रयागराज, पृ.सं. 102
5. झा, रामाश्रय, 'अभिनव गीतांजलि', भाग–1, (2016), नवम संस्करण, संगीत सदन प्रकाशन, प्रयागराज, पृ.सं. 267

# विदुषी बागेश्वरी देवी जी की ठुमरी गायकी

**प्रो. संगीता पंडित****

**अंजली गुप्ता***

**शोध सार**

*ठुमरी उत्तर भारतीय संगीत की एक लोकप्रिय गायन–शैली है। ठुमरी शब्द का प्रयोग उत्तर भारत की प्रायः सभी भाषाओं में अथवा अल्प रूपान्तर के साथ इसी रूप में प्रचलित है। ठुमरी शब्द का अर्थ है 'ठुमकना'। तीन देव–नागरी वर्ण माला का अभिप्राय यह है, कि ठुमरी शब्द 'ठु' 'म' 'री' से बना है। ठुमरी दो प्रकार से गायी जाती है–(1) बोल आलाप या बोल बनाव की ठुमरी (2) बोल बाँट या बन्दिश की ठुमरी।*

*बोल–बनाव की ठुमरियाँ विलम्बित लय तथा बोल–बाँट की ठुमरी मध्य लय की होती है। बोल–बनाव की ठुमरी भाव–प्रधान तथा बोल–बाँट की ठुमरियाँ लय–प्रधान होती हैं। उत्तर भारत के पूर्वी भाग में स्थित बनारस नगर प्राचीन काल से देश का सुविख्यात धार्मिक स्थान होने के साथ–साथ सांस्कृतिक गतिविधियों का भी केन्द्र रहा है।*

*बनारस में ठुमरियाँ प्रारम्भ से ही गायी एवं बजायी जाती रही हैं। बनारसी ठुमरी के प्रचार–प्रसार में बनारस के अनेक गायक, गायिकाओं का योगदान रहा है। उन महान विभूतियों में से एक नाम बागेश्वरी देवी का भी है। वे बनारसी–शैली के ठुमरी–गायन में अत्यन्त निपुण थीं। पूरब–अंग की बनारसी–शैली की सारी विशेषताएँ उनकी गायकी में थी। बागेश्वरी देवी ने अपनी निष्ठा, साधना एवं लगन से बनारसी ठुमरी, दादरा, चैती, कजरी, होरी की भाव–प्रधान गायकी की कुशल गायिका के रुप में अपनी विशिष्ट पहचान बनाकर देश के संगीत प्रेमियों से भूरि–भूरि प्रशंसा प्राप्त की।*

**सूचक शब्द**– *ठुमरी, कजरी, चैती, होरी, गायकी*

**प्रविधि**– *इस लेख के लिए प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों माध्यमों द्वारा सामग्री संकलित कर अध्ययन किया गया है।*

## शोध उद्देश्य–

प्रस्तुत शोध–पत्र के लेखन का मुख्य उद्देश्य श्रीमती बागेश्वरी देवी के व्यक्तित्व, उनकी गायकी की विशेषताएँ, उनके द्वारा ठुमरी में किये गये प्रयोगों को जन–मानस तक प्रसारित करना एवं उनके द्वारा गायी हुई अन्य विधाएँ, जैसे– ख्याल, कजरी, चैती, होरी आदि गीतों को प्रकाश में लाना है।

## शोध–विषय–

बागेश्वरी देवी 20 वीं शताब्दी की एक ऐतिहासिक चरित्र रही हैं। इनका जन्म 3 जुलाई सन् 1940 ई0 में कलकत्ता में हुआ। इनके माता–पिता दोनों ही संगीत प्रेमी थे, जिनकी छत्र–छाया से निकलकर बागेश्वरी देवी काशी आईं और काशी के अनेक गुणियों से संगीत–शिक्षा प्राप्त की । उसी क्रम में काशी के गुणी गायक पं. गणेश प्रसाद मिश्र से आप प्रभावित हुईं और उनका शिष्यत्व ग्रहण कर उनका मार्गदर्शन प्राप्त किया। देश के अनेक दूरदर्शन केन्द्रों, आकाशवाणी, विशेष संगीत–सभाओं, सरकारी तथा गैर सरकारी सांस्कृतिक कार्यक्रमों में भाग लिया तथा अपनी कला–साधना को निखारा और अपनी साधना से ठुमरी–गायकी को एक नूतन आयाम दिया।[1]

श्री महेश्वर त्रिपाठी के कथन के अनुसार, बागेश्वरी देवी के पति का नाम पं0 रामू जी मिश्र था। कैलाश गौतम के अनुसार, बागेश्वरी देवी के पति का वाराणसी में कत्था और सुपारी का व्यापार था। इनको चार संतानें हुईं– तीन पुत्र और एक पुत्री।[2] प्रथम पुत्र का नाम सुरेन्द्र मिश्र (शीलू), द्वितीय का नाम सुनील मिश्र एवं तृतीय का नाम धर्मेन्द्र मिश्र (पम्मी) तथा पुत्री का नाम सलोनी था। सन् 2104 में पुत्री का निधन हो गया।[2]

पितातुल्य मुरली राय ने बनारस के सारंगी वादक पं0 सीता राम मिश्र से 5 वर्ष की अल्प आयु में ही बागेश्वरी देवी को संगीत की शिक्षा प्रारम्भ कर दी। 11 वर्ष तक बागेश्वरी देवी ने उनसे शिक्षा प्राप्त की। उन्होंने उनके

*शोधार्थिनी, गायन विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्विद्यालय, वाराणसी

**आचार्या, गायन विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्विद्यालय, वाराणसी

पास राग यमन और भैरव की बन्दिशों को पूरी लगन से सीखा । तत्पश्चात् जब सीता राम मिश्र की मृत्यु हो गई तो बागेश्वरी देवी की शिक्षा में व्यवधान उत्पन्न हो गया। उन्हीं दिनों चन्दौली के जिला आपूर्ति अधिकारी का ध्यान इनकी ओर गया और वे बागेश्वरी देवी की आवाज और गायकी से प्रभावित हुए। जिला आपूर्ति अधिकारी महेश्वर प्रसाद ने अपने प्रभाव का उपयोग कर बागेश्वरी देवी के लिए संगीत के कार्यक्रम दिलाए, जिससे उनको आय का साधन जुट पाया। इसी दरमियाँ उन्होंने गणेश प्रसाद जी से संगीत की शिक्षा प्राप्त की।

1984 में अपने दोनों छोटे बेटों और बेटी के साथ विन्ध्याचल चली गईं। इनके बड़े बेटे सुरेन्द्र कुमार मिश्र का विवाह होने के कारण वे अपने पत्नी श्रीमती वंदना मिश्र के साथ बनारस में रह गये। बागेश्वरी देवी कुछ दिनों विन्ध्याचल से मिरजापुर जाकर संगीत की सेवा करती थीं। इनके शिष्यों में प्रमुख– श्रीमती सोमा घोष एवं स्व0 सुनील सिंह थे।

**स्वभाव–**

बागेश्वरी देवी के स्वभाव के बारे में यह जान पड़ता है कि वे बहुत ही कोमल और सरल व्यक्तित्व की धनी महिला थीं। पं0 महेश्वर त्रिपाठी एवं पं0 रामू प्रसाद शास्त्री के कथन के अनुसार, वे कभी अपने चेहरे पर उदासी नहीं आने देती थीं और सभी से हँसकर ही बातें करती थीं। अभिताभ भट्टाचार्य के अनुसार, वह बहुत बड़ी कलाकार थीं परन्तु इसका जैसे उन्हें भान ही नहीं था। अभिताभ भट्टाचार्य के कथन के अनुसार, ''कुछ लोग गाने से पहले दुआ सलाम करते हैं।'' बागेश्वरी देवी पहली ऐसी कलाकार हैं, जो बिना दुआ, सलाम किए मंच पर गाने बैठ गईं। यही स्वभाव उनको बाकी कलाकारों से अलग करता है। भट्टाचार्य जी के कथन के अनुसार, ''कभी–कभी वे गाते हुए रोने लगती थीं, हमने कभी किसी को ऐसे गाते हुए रोते नहीं देखा। निवेदित प्राण होकर स्वरों में गुम हो जाने वाली, भाव के उस स्तर तक पहुँच जाती थीं, जहाँ 'यत्गत्वा न निवर्तन्ते' वाली बात होती थी। बागेश्वरी देवी एक ऐसी उत्कृष्ट साधिका थीं जो कभी रटकर नहीं गाती थीं, उनके पास रटने के लिए कुछ था ही नहीं। उनके संगीत में पुनरावृत्ति की कभी गुंजाइश ही नहीं थी। रामू प्रसाद जी के कथन के अनुसार, बागेश्वरी देवी का व्यवहार अत्यन्त मधुर था, किसी के मन को ठेस पहुँचाने वाली बात कभी नहीं की और भगवान में उन्हें अगाध श्रद्धा थीं ।

**श्रीमती बागेश्वरी देवी की गायकी की विशेषता :–**

विदुषी बागेश्वरी देवी को बनारसी ठुमरी के लिए विशेषतया जाना जाता है। बनारसी–शैली की पूरब–अंग की सारी विशेषता उनकी गायकी में विद्यमान थी। प्रत्येक कलाकार अपनी–अपनी क्षमता के अनुसार अपने गायन या वादन में सौन्दर्य हेतु अभिवृद्धि करने का प्रयास करता है। बागेश्वरी देवी बन्दिश के शब्दों में निहित भाव को समझकर और स्वरों को बहुत ही संतुलित ढंग से लगाती थीं। बागेश्वरी देवी स्वभाविक ढंग से स्वर लगाती थीं, फलस्वरूप जिस पंक्ति के शब्दों में जो भाव हैं उसी के अनुसार स्वर लगाती थीं। कहीं कम या ज्यादा नहीं तथा बंदिश में जिस भी परिस्थिति के बारे में वर्णन किया गया है उस परिस्थिति में पहुँच कर बन्दिश की प्रस्तुति करती थीं। अगर बन्दिश में नायक और नायिका का वर्णन है तो बागेश्वरी देवी खुद को नायिका की जगह कल्पना कर फिर बंदिश का गायन करती थीं। बागेश्वरी देवी बंदिशों के शब्द–स्वरूप राग–ध्यान तथा तैयारी सभी अपनी पद्धति के अुनसार रखती थीं।

ठुमरी की प्रकृति कोमल होती है तथा कैशिकी नृत्यात्मक गीतभेद होने के कारण ठुमरी गीतों द्वारा स्त्रियोचित्त व श्रृंगारिक भावनाओं की अभिव्यंजना ठुमरी का प्रमुख उद्देश्य रहा है। ठुमरी नारी–प्रेम का अपने प्रियतम के प्रति वर्णन करती है अर्थात् उल्लासों एवं वेदनाओं एवं भय, पीड़ाओं एवं चिंताओं, स्मृतियों एवं लीलाओं का वर्णन करती हैं जो उस प्रेम से बाधित है।[3] बागेश्वरी देवी की उत्कृष्ट साधना और कौशल के फलस्वरूप ही वह ठुमरी को इतनी भावुकता, शालीनता और गहराई से प्रस्तुत करती थीं।

बागेश्वरी देवी की बन्दिशों में अधिकतर नायिका और नायक का प्रसंग दृष्टिगोचर होता है जिनका विषय रूठना–मनाना, प्रेम आदि रहता है। उनकी कुछ बंदिशें राधा–कृष्ण की लीलाओं पर आधारित हैं। कुछ बंदिशों में आत्मा के परमात्मा से मिलने की व्याख्या है। बागेश्वरी देवी राधा–कृष्ण–प्रसंग में स्वयं नायिका बनकर श्री कृष्ण से बात करती थी। चूंकि बागेश्वरी देवी एक सहज, सरल और भावुक महिला थीं जो स्वरों के माध्यम बनाकर बात–चीत करती थीं तो ऐसी गायिका का चित्ताकर्षक और सुन्दर होना स्वाभाविक है क्योंकि जो सहज है, वही सुन्दर है।

बागेश्वरी देवी ठुमरी–गायन का प्रारम्भ राग आधारित आलाप से करती थीं जिसे पकड़ कहते हैं। फिर

स्वरों का विस्तार करती थीं । यह आवश्यक नहीं कि मुख्यतः वह खमाज राग में ठुमरी प्रस्तुत कर रही हैं तो उसी राग में स्वर विस्तार करें । उनके राग–विस्तार की क्षमता बहुत कुशल थी, एक राग को गाते–गाते दूसरे राग में प्रवेश करने में माहिर थी जिसे अविर्भाव तथा तिरोभाव कहते हैं। निःसन्देह दूसरे रागों की छाया मुख्य राग में लाने का प्रयत्न करती थीं । वे गायन प्रस्तुति में भिन्न–भिन्न अलंकारों और स्वरों के उतार–चढ़ाव व काकु का अति सुन्दर ढंग से प्रयोग करती थीं जिससे शब्द–चित्र पूर्णरूपेण स्पष्ट हो जाय तथा बोल–बनाव बन जाय परन्तु जिस राग में ठुमरी प्रस्तुत करतीं उस राग के स्वरों की प्रधानता का विशेष ध्यान रखतीं। ठुमरी गाने के लिए जिस समझ की आवश्यकता होती है वह कूट–कूटकर बागेश्वरी देवी में थी। ठुमरी, दादरा, चैती, कजरी आदि में आप एक मिसाल थीं, आपके सुरों में दिख जाने वाली बात थी।

पं. कामेश्वर पाठक के कथनानुसार– बनारस अंग की ठुमरी प्रस्तुत करने वाली आप इकलौती गायिका थीं। श्रीमती सोमा घोष ने कहा है कि बन्दिश का विस्तार करते समय लय के साथ खेलती थीं।

### संगतकारों से सामंजस्य–

जितने भी संगतकारों ने उनके साथ संगति की है उनकी प्रशंसा ही करते हैं। संगतकारों के कथन के अनुसार बागेश्वरी देवी अपने संगतकारों को उनके वादन के लिए भर–पूर मौका देतीं। उनकी प्रत्येक प्रस्तुति में मध्यावकाश जरूर होता था जिसमें, वायलिन वादक, सारंगी वादक, तबला वादक, हारमोनियम वादक– सभी अपनी कुशलता का प्रदर्शन बखूबी करते थे। उन्हें संगतकारों के साथ लड़ंत–भिड़ंत में कदापि रूचि नहीं थीं, वे उन्हें स्वतंत्र तरीके से अपनी संगत करने के लिए छोड़ देती थीं।

पं. अभिताभ भट्टाचार्य के अनुसार– बागेश्वरी देवी एकाकार होकर गाती थीं। ठुमरी के पद के साथ ममत्वबोध रहने के कारण उनकी गायकी अन्य गायक से अलग प्रतीत होती थी।

राजेन्द्र सिजुआर के अनुसार– बागेश्वरी देवी की गायकी में चैनदारी और गहराई थी, वो अपने गायन के बीच में विराम देती थीं और संगत कलाकारों, जैसे सारंगी वादक, वायलिन वादक, हारमोनियम वादक, तबला वादक को स्वयं मौन रहकर बजाने का मौका देती थीं और उन्हें 'वाह' कहकर उनका हौसला बढ़ातीं और उत्साहवर्धन भी करती थीं।

पं. रामू प्रसाद शास्त्री के अनुसार– बागेश्वरी देवी संगतकारों को मौका देती थीं और उनकी हिम्मत बढ़ाती थीं।

### लोकगीतों की प्रस्तुति–

बागेश्वरी देवी ठुमरी के अतिरिक्त लोकगीतों को भी ठुमरी–अंग से प्रस्तुत करने में प्रवीण थीं। ठुमरी–अंग से लोकगीतों को प्रस्तुत कर उन्हें उच्च स्थान प्रदान करने का श्रेय बागेश्वरी देवी को जाता है। अपनी इसी खासियत की वजह से वह अपने समय के बाकी कलाकारों से अलग देखी जाती हैं। अपने गायन से शास्त्रीय नियमों का पूर्णतया पालन भी किया और लोकसंगीत को ठुमरी–अंग से गाकर उसका रसास्वादन श्रोताओं को कराया। शास्त्रीय एवं लोक संगीत का समान रूप से मिश्रण इनकी प्रवीणता को प्रामाणित करता है। उन्होंने इन दोनों विधाओं के साथ पूर्ण न्याय किया है जो आपके गायन शैली में स्पष्ट दिखाई देती है। आपकी गायकी सहज और सुन्दर थी जिसने भी आपका गायन प्रत्यक्ष रूप से सुना, देखा और उसका रसस्वादन किया, वह आपके गायन को कदापि भूल नहीं सकता।

श्री रामचन्द्र भागवत के अनुसार– उनकी गायकी सहज थी परन्तु व्यक्ति पर उसका प्रभाव बहुत पड़ता था।

श्रीमती सोमा घोष के अनुसार, बागेश्वरी देवी जो भी उपज करती थीं, वह उन्हें लता जी को नियमित सुनने के कारण सूझती थी। ऐसा उन्होंने स्वयं सोमा घोष से कहा था। सोमा घोष के अनुसार, उनके गायन में मध्यावकाश जरूर रहता था परन्तु निरन्तरता खण्डित नहीं होती थी, आगे उन्होंने कहा कि पंजाब की हरकतें, बनारसी शैली में ढाल कर गाती थीं।

बागेश्वरी देवी की रिकॉर्डिंग सुनने के बाद ऐसा लगता है कि उनका गाना साधारण होते हुए भी उत्कृष्ट है। उन्होंने अपनी गायकी को कभी चित्ताकर्षक या प्रलोभन बनाने की कोशिश नहीं की, उनकी गायकी में ये गुण स्वतः ही दिखाई पड़ते थे।

अभिताभ भट्टाचार्य जी के अनुसार, ''बागेश्वरी देवी के गाने में ऐसी पुकार ऐसी गुहार थी जो एक गायक को पूर्ण बनाता है। इस प्रकार, यह कहा जा सकता है, कि बागेश्वरी देवी उपशास्त्रीय संगीत की एक उत्कृष्ट कलाकार थीं।

**उपलब्धियाँ**– बागेश्वरी देवी ने बनारस के अलावा देश के अनेक प्रतिष्ठित मंचों पर अपनी प्रस्तुति दी। इनके साथ देश के अनेक गुणी तबला वादकों, सारंगी वादकों, एवं वायलिन वादकों ने संगत की जिनमें श्री रामनाथ सिंह, ललित कुमार, देवचंद पाठक, रघुनाथ सिंह, अहमद मिया, रामचन्द्र भागवत, हिमांशु विश्वरूप, रामू प्रसाद शास्त्री, अनवर हुसैन, संतोष कुमार मिश्र, उस्ताद चाँद खाँ आदि प्रमुख हैं।

**बागेश्वरी देवी की महत्वपूर्ण प्रस्तुतियाँ**–

(1) संस्कृति विभाग (उ0प्र0)
(2) बंग संगीत सम्मेलन, कलकत्ता
(3) नेशनल प्रोग्राम, आकाशवाणी एवं दूरदर्शन
(4) उ0प्र0 संगीत नाटक अकादमी
(5) उ0 अलाउद्दीन खाँ संगीत नाटक अकादमी, भोपाल (म0प्र0)
(6) आकाशवाणी एवं दरू दर्शन कन्सर्ट कार्यक्रम
(7) आई0 टी0 सी0, कलकत्ता
(8) रंगमचं सिनेमा विजन, मुम्बई
(9) उत्तर मध्य क्षेत्र सांस्कृतिक केन्द्र, इलाहाबाद
(10) क्षेत्रीय सांस्कृतिक केन्द्र वाराणसी।

बनारस के संगीत की जो मधुरता और सहजता है वह उनकी गायकी में अनुभव होता है। वे ठुमरी–गायकी के साथ चैती, दादरा, कजरी, होरी आदि के गायन से श्रोताओं को अपनी ओर आकर्षित होने पर विवश कर देती थीं।

इस संगीत जगत में कलाकार तो अनेक हैं, किन्तु अपनी कला, कमनीयता के साथ मानवीय गुणों की गरिमा रखते हुए सहृदय जनों के चित्त पर अपनी गायिकी की अमिट छाप छोड़ जाने वाले प्रतिभा के मर्मज्ञ एवं धनी कलाकार कम ही हैं। अतः गीत विधाएँ जिन्हें उपशास्त्रीय संगीत में स्वीकार किया जाता है, उनके गायन में बागेश्वरी देवी निपुण गायिका थीं। निरन्तर कठोर अभ्यास के साथ ही कोमल हृदय रखने वाली सहज वात्सल्य तथा मानवीय भावों की विपुलता की धनी होने के बाद भी बागेश्वरी देवी को पर्याप्त लोकप्रियता प्राप्त नहीं हुई।

**निष्कर्ष**–

प्रस्तुत शोध–पत्र में बागेश्वरी देवी के व्यक्तित्व, उनकी गायिकी की विशेषताएँ और संगीत के प्रति लगाव पर दृष्टि डालने का प्रयास किया गया है। बागेश्वरी देवी आज के युवाओं के लिए प्रेरणास्त्रोत तथा नारी समाज के लिए उनका जीवन एक सीख है कि कोई नारी परिस्थितियाँ अनुकूल न होने पर भी संगीत के क्षेत्र में दिग्गज कलाकारों के बीच स्वयं को सिद्ध कर सकती है। बागेश्वरी देवी के जीवन से ईमानदारी, मेहनत और लगन से अपने कार्य में एकाग्र होने की प्रेरणा मिलती है। आज वे हमारे बीच नहीं हैं, उनके जाने से जो स्थान रिक्त हो गया है, उसकी पूर्ति असम्भव है, परन्तु उनके सम्पूर्ण जीवन, उनकी प्रभावशाली गायकी, ईमानदारी और मेहनत से लक्ष्य प्राप्त करने की प्रबल इच्छा–इन सभी बातों से युवा–वर्ग प्रेरणा ले सकता है।

**संदर्भ सूची** :

1. मिश्र, कामेश्वर नाथ, काशी की संगीत परम्परा एवं संगीत जगत को काशी का योगदान, लुमिनस बुक्स, वाराणसी, 2018, पृ0 158
2. मेहता, सुमिता, ठुमरी गायन–शैली में श्रीमती बागेश्वरी देवी का योगदान (शोध प्रबंध), इंदिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़, 2016, http://hdl.handle.net/10603/291410, पृ0 100
3. वालिया, डॉ. सीमा रानी, स्वर वाद्यों के वादन में ठुमरी और धुन : प्रचलन एवं महत्व, संजय प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2007, पृ0 128

# ख्याल की बंदिशों में वर्ण्य–विषयों की भूमिका

**प्रो. रेवती साकलकर****

**कुमारी शालिनी***

**सार–संक्षेप**

*भारतीय संगीत की विविध गायन व वादन शैलियों में ख्याल एक अत्यंत लोकप्रिय शैली है। ख्याल–शैली के विकास के साथ ही इसमें विपुल संख्या में बंदिशों की रचना की गई है। बंदिश स्वर तथा पद का एक विशिष्ट संयोग है जो राग–रूप की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। ये बंदिशें पूर्ण रूप से राग के स्वरूप पर आधारित होती हैं तथा राग की प्रकृति, चलन व समय का प्रत्यक्ष प्रभाव इन बंदिशों की काव्य–रचना में भी स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है जिसके फलस्वरुप ख्याल की बंदिशों में विविध वर्ण्य–विषयों का प्रयोग देखने को मिलता है। ख्याल की बंदिशों में प्रयुक्त विविध वर्ण्य–विषय राग के विविध व्यक्त–अव्यक्त भावों को दर्शाने में सहायक होते हैं। बंदिशों के सौंदर्य में राग–रूप का स्थान प्रमुख होने के साथ ही उसके काव्य की विषय–वस्तु का स्थान भी अत्यधिक महत्वपूर्ण है। उत्कृष्ट स्वर–रचना से संपन्न बंदिश भी उपयुक्त काव्य–रचना के अभाव में अप्रभावशाली प्रतीत होती है। अतः राग तथा उनकी बंदिशों की सौंदर्यवृद्धि में वर्ण्य–विषयों की विशिष्ट भूमिका होती है।*

**मुख्य शब्द** : *भारतीय संगीत, ख्याल शैली, बंदिश, वर्ण्य–विषय, राग।*

**प्रयुक्त शोध प्रविधि** : *ऐतिहासिक विधि, वर्णनात्मक विधि तथा विश्लेषणात्मक विधि।*

## भूमिका

भारतीय संगीत भारत की सुसम्पन्न संस्कृति एवं परंपराओं के हर पहलू में रचा बसा है। भारतीय संगीत की प्राचीनता का अनुमान हमें वेदों से मिलता है तथा वैदिक काल से शनैः–शनैः प्रत्येक काल के परिवर्तनशील परिवेश में सदैव संगीत के रूप स्वरूप में नवीनता आती रही है। साधक, श्रोता व सामाजिक परिस्थितियों के अनुसार सदैव हमारे संगीत में नवीन शैलियों का उद्‌भव तथा विकास होता रहा है। भारतीय संगीत की अविरल धारा में विकसित विविध गायन तथा वादन शैलियों में ख्याल–शैली का नाम विशेष उल्लेखनीय है। पूर्व काल से वर्तमान समय तक ख्याल की अनेक बंदिशों की रचना की गई है तथा ख्याल शैली में रचित ये सुंदर रचनाएँ राग–गायन की परंपरा को अलंकृत करती आ रही हैं। बंदिशों में राग–रूप व उसके चलन का स्थान अत्यधिक महत्वपूर्ण है परंतु बंदिश की पद–रचना भी बंदिश के सौंदर्य में विशिष्ट स्थान रखती है। भिन्न–भिन्न रागों के अनुसार बंदिश का साहित्य भी राग के चलन व समय आदि पर आधारित होता है। बंदिश के पद राग की रस–सर्जना में मुख्य सहायक होते हैं। अतः रागों के विशिष्ट भावों की सौंदर्यवृद्धि के उद्देश्य से ये बंदिशें विविध विषयों पर रची गई हैं। ख्याल की बंदिशों में प्रमुख रूप से भक्ति, ऋतु वर्णन, संयोग–वियोग, व्यथा आदि वर्ण्य–विषयों के दर्शन होते हैं।

वर्तमान में ख्याल भारतीय शास्त्रीय संगीत की विविध शैलियों में अत्यंत लोकप्रिय एवं सुप्रसिद्ध गायन–शैली है। भाषा की दृष्टि से ख्याल फारसी या अरबी भाषा का शब्द है जिसके अनेक अर्थ जैसे कल्पना, विचार, ध्यान, एकाग्रता आदि हैं। ख्याल एक अत्यंत कलात्मक गायन शैली है जिसमें कलाकार राग के नियमों का पालन करते हुए अपनी कल्पना एवं प्रतिभा का योग कर कलात्मक ढंग से राग रूप का विस्तार करता है। सर्वप्रथम ख्याल नामक गीत प्रकार का उल्लेख 13वीं शताब्दी में नामदेव ने एक अभंग में किया था। वैसे तो अधिकतर विद्वान अमीर खुसरो को इस शैली का आविष्कारक मानते हैं, परंतु अनेक विद्वान इसे हमारे संगीत की पूर्व प्रचलित शैलियों का विकसित रूप मानते हैं। ठाकुर जयदेव सिंह के अनुसार ''ख्याल गायकी की प्रेरणा भूमि रूपकालप्ति है और यही उसकी उपज है।''[1] संगीत ऐसी विधा है जिसके किसी भी पक्ष या शैली का जन्म अचानक किसी चमत्कार रूप में नहीं हो सकता, इसके प्रत्येक पक्ष की पूर्वपिठिका अवश्य होती है

*शोध छात्रा, गायन विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

**शोध निर्देशिका, गायन विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

जो कालांतर परिवर्तन के फलस्वरुप अपने विकसित रूप को प्राप्त करते हैं। ख्याल की बंदिश का जो वर्तमान स्वरूप हमारे समक्ष उपस्थित है वह भी किसी नवीन युग की नूतन परिकल्पना नहीं है बल्कि भिन्न–भिन्न कालों में यह विविध रूपों में विद्यमान थे ''पूर्व समय में प्रबंध के जो अंग बताए गए थे उन्हीं अंगों के सहयोग से ही बंदिश तैयार की जाती है जिस प्रकार स्वर, विरुद, तेनक, पद, पाट, ताल थे उसी प्रकार आज भी यह प्रयोग विद्यमान है।''[2] भिन्न–भिन्न कालखंडों में बंदिश के लिए गीत,रचना, निबद्ध, प्रबंध, रूपक, चीज आदि शब्द प्रयुक्त किए गए हैं।

बंदिशें राग का आईना होती हैं, जिसमें राग का स्पष्ट रूप प्रतिबिंबित होता है। राग के जो भी प्रमुख अंग होते हैं, उनका स्पष्ट दर्शन उसकी बंदिश में होता है। वर्तमान में बंदिश के दो खंड स्थाई तथा अंतरा होते हैं। बंदिश की प्रत्येक पंक्ति में राग के प्रमुख अवयव, राग का चलन आदि स्पष्ट रूप से दिग्दर्शित होते हैं ''बंदिश राग की एक विशिष्ट आकृति है... नई–नई आकृति का सौंदर्य पाने के लिए या एक ही राग की कई शक्लें या रूप दिखाने के लिए यह एक अच्छा तरीका है''[3] अतः एक ही राग में विविध बंदिशों की रचना कर राग के विविध पहलुओं का दर्शन किया जा सकता है । भिन्न–भिन्न प्रकार के स्वर प्रयोगों तथा विभिन्न वर्ण्य विषयों के माध्यम से राग के प्रधान तथा गौण भावों की अभिव्यक्ति होती है। ख्याल की बंदिशों में राग रूप का स्थान अत्यधिक महत्वपूर्ण है, परंतु इन बंदिशों में राग का चलन व स्वरूप विस्तार सर्वोपरि होते हुए भी साहित्य का स्थान अति विशिष्ट है। राग के करुण स्वरों में जब किसी विरहिणी की वियोग–व्यथा का मार्मिक चित्रण होता है तो श्रोता का हृदय भी भावुक हो उठता है तथा राग के वही स्वर सजीव हो उठते हैं।

किसी भी सांगीतिक–रचना में उसके साहित्यिक पक्ष का महत्व एक निर्विवाद सत्य है। संगीत तथा साहित्य का अंतःसंबंध स्वयं इन दोनों कलाओं के मूल में विद्यमान है, दोनों ही कलाओं का माध्यम नाद है। संगीत तथा काव्य दोनों ही आहत नाद से उत्पन्न होते हैं। किसी भी शब्द का उच्चारण बिना स्वर के संभव नहीं है तथा स्वर का उच्चारण भी शब्द के बिना असंभव है। संगीत तथा साहित्य शाश्वत रूप से एक–दूसरे से संबंधित हैं। किसी भी राग की प्रस्तुति में बंदिशों का विशेष महत्व होता है बंदिश की बढ़त के साथ ही सुचारु रुप से राग का विस्तार किया जाता है। साहित्य तथा संगीत दोनों ही कलाएँ भावाभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। जहाँ साहित्य शब्दों के माध्यम से भावों को व्यक्त करता है, वही संगीत का माध्यम स्वर है। दोनों ही कलाओं का उद्देश्य समान है परंतु अभिव्यक्ति के माध्यम अलग हैं तथा इन दोनों कलाओं के सुसंयोग से ही बंदिशें अपना स्वरूप धारण करती हैं। जिस प्रकार राग के स्वर, स्वरूप व समय आदि का विशेष ध्यान रखते हुए बंदिश के सांगीतिक पक्ष के प्रत्येक पहलू की रचना की जाती है, जिस प्रकार राग की प्रकृति आदि के आधार पर उसके ताल का चुनाव करते हैं, ठीक उसी प्रकार बंदिश के साहित्य की रचना भी राग पर ही आधारित होती है। बंदिशों की काव्य–रचना में भिन्न–भिन्न विषयों का वर्णन देखने को मिलता है तथा विभिन्न विषयों से संबंधित बंदिशों की यह काव्य–रचना ही वर्ण्य–विषय कहलाती है। ख्याल की बंदिशों में वर्ण्य–विषयों की विविधता देखने को मिलती है।

**बंदिशों में प्रयुक्त रागों के समय, प्रकृति एवं पद–रचना में अंतःसंबंध :–**

ख्याल तथा अन्य शैलियों के विकास के साथ ही उनमें अनेक अनगिनत बंदिशों की रचना हुई है तथा बंदिश की रचना में उसकी सांगीतिक संरचना के साथ ही साहित्य की आवश्यकता भी अनिवार्य है। साहित्यिक रचना सदैव किसी–न–किसी विषय पर आधारित होती है तथा उस पद रचना के विषय के आधार पर ही उस बंदिश के रस का ज्ञान होता है। संगीत तथा साहित्य दोनों ही रचनाओं में रस का विशेष महत्व है। सांगीतिक संदर्भ में स्वर–प्रयोगों द्वारा उत्पन्न भावों से रस की निष्पत्ति होती है, वहीं साहित्यिक रचनाओं में शब्द प्रयोग व वर्णित विषय के आधार पर रस–सर्जना होती है। यही कारण है कि उत्तम वाग्गेयकार सदैव स्वर–रचना व पद–रचना दोनों ही एक–दूसरे के अनुरूप करते हैं जिसके कारण सदियों पूर्व रचित बंदिशें आज भी उतनी ही लोकप्रिय हैं। विभिन्न रागों में विविध विषयों से संबंधित बंदिशों की रचना की गई है जो ज्यादातर राग की प्रकृति व गायन–वादन समय के अनुसार रचित हैं, उदाहरणस्वरूप पूर्व मध्य काल के कुछ प्रमुख कवियों की रचना व उनमें प्रयुक्त रागों को देखने से यह बात स्पष्ट होती है। सूरदास कृत 'सूरसागर' में रचित यह पद रचना देखें –

चरण कमल बंदौ हरि राई।
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै, अंधे को सब कुछ दरसाई।

उक्त पद–रचना राग बिलावल में बताई गई है तथा बिलावल एक प्रातः कालीन राग है। बिलावल के शुद्ध स्वर ईश्वर की आराधना के लिए सर्वथा अनुकूल हैं। साथ ही, प्रातः काल का समय भी इस प्रार्थना का समय होता है। अतः उपरोक्त कथित पद की रचना व उसके राग–निर्देश से यह स्पष्ट होता है कि पूर्व समय से ही राग के स्वर तथा समय के आधार पर ही पदों की रचना की जाती रही है। ख्याल–शैली की बंदिशों में भी इस सिद्धांत का प्रयोग होता रहा है। रागों के स्वर–चलन, समय, प्रकृति आदि को ध्यान में रखकर ही ख्याल की उत्कृष्ट बंदिशों की रचना की गई। उदाहरणस्वरूप राग भैरव की बंदिशों का अवलोकन करें तो अधिकतर बंदिशों में राग के समयानुसार प्रातःकालीन विषयों का वर्णन ही देखने को मिलता है, जैसे– राग भैरव की प्रचलित बंदिश 'जागो मोहन प्यारे' के पदों को देखें तो प्रातःकाल में भगवान कृष्ण को नींद से जगाने का वर्णन किया गया है। राग यमन की अत्यंत प्रचलित बंदिश 'सखी एरी आली पिया बिन' में नायिका का प्रियतम से बिछोह के कारण नायिका की व्याकुलता तथा वियोग का वर्णन किया गया है। यमन संपूर्ण स्वरों का राग है जो विविध स्वर प्रयोगों द्वारा विविध भावों को दर्शाने में सक्षम है, साथ ही, यह एक रात्रिकालीन राग है अर्थात् रात्रि के प्रभाव से नायिका और भी व्याकुल हो उठती है तथा अंतरा में तारे गिन कर रात्रि व्यतीत करने का मार्मिक वर्णन किया गया है। रागों की बंदिशों के अतिरिक्त भी अनेक ऐसी बंदिशें हैं जिनसे स्पष्ट होता है कि बंदिश के पदों में वर्णित विषय रागों पर आधारित होते हैं। रागों के आधार पर बंदिशों के वर्ण्य–विषय का निर्धारण किया जा सकता है तथा राग के स्वरूप विस्तार तथा स्वर–विन्यास की संभावनाओं के आधार पर उन से उद्भूत विभिन्न भावों के अनुरूप एक ही राग में भिन्न–भिन्न वर्ण्य–विषयों से संबंधित बंदिशों की रचना की जाती है। संगीत में प्रेम–भावना की अभिव्यक्ति में बागेश्वरी, भीमपलासी आदि रागों तथा भक्तिभाव की अभिव्यंजना में बिलावल, यमन आदि रागों की योजना की जाती है।''[4]

**ख्याल की बंदिशों में विविध वर्ण्य–विषय :**

किसी भी शैली में रचित बंदिशों के विषय–वैविध्य से उस शैली की लोकप्रियता का आभास होता है। बंदिशों में प्रयुक्त विभिन्न विषय–वस्तु न केवल वाग्गेयकार की कल्पना का परिणाम होते हैं बल्कि लोकरुचि व सामाजिक परिस्थितियों का प्रभाव भी प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रूप से बंदिशों के वर्ण्य–विषय को भी प्रभावित करता है ''संगीतकार भी राग में निबद्ध बंदिशों द्वारा समाज की मनोवृति आदि का बिंब प्रस्तुत करता है।''[5] लोक रुचि व सामाजिक परिस्थितियों के साथ ही भौगोलिक परिस्थितियों का प्रभाव भी बंदिशों के विषय–वस्तु में स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है जिसके फलस्वरूप ख्याल की बंदिशों में विविध विषयों का वर्णन देखने को मिलता है। ख्याल के प्रमुख वर्ण्य–विषयों का वर्गीकरण इस प्रकार से किया जा सकता है–

1. **भक्तिपरक रचनाएँ** :– इस विषय के अंतर्गत बंदिशों में प्रमुख रूप से ईश्वर की आराधना–संबंधी विषय–वस्तु बहुतायत मिलते हैं। भक्तिपरक रचनाओं के अंतर्गत भक्ति–संबंधी कुछ अन्य विषयों को रखा जा सकता है, जैसे–

(क) देवी–देवताओं से संबंधित रचनाएँ

(ख) पीर–पैगंबरों से संबंधित रचनाएँ

(ग) गुरु–संबंधी रचनाएँ

(घ) नीति–बोधक तथा दर्शन से संबंधित रचनाएँ

(ड़) कृष्ण की लीलाओं से सम्बन्धित रचनाएँ

उपरोक्त कथित प्रत्येक बिंदु से संबंधित बंदिशों की अत्यधिक बहुलता है, जैसे–राग मुल्तानी में '**अरे मन हरि सुमिरन चित कर ले'**, दरबारी में **'तू साइं करीम रहीम हकीम पाक परवरदिगार'**, नीति बोधक रचनाओं में राग भूपाली में **'इतनो जोबन पर मान ना करिए'**, कृष्ण–लीला संबंधी बंदिशें, जैसे वृंदावनी सारंग में **'बन बन ढूंढन जाऊं मैं कितहुँ छुप गए कृष्ण मुरारी'** इत्यादि। कृष्ण–लीला से संबंधित बंदिशों का समावेश देवी–देवताओं से संबंधित रचनाओं के अंतर्गत किया जा सकता है परंतु कृष्ण–लीलाओं से संबंधित बंदिशों की बहुलता तथा श्रृंगारिकता को देखते हुए उसे भक्तिपरक रचनाओं के अंतर्गत एक स्वतंत्र विषय के रूप में रखना भी अनुचित न होगा।

2. **आश्रयदाताओं से संबंधित रचनाएँ** :– इस विषय के अंतर्गत आश्रयदाताओं की प्रशंसा व उनके शौर्य आदि की गाथा का वर्णन देखने को मिलता है। मुख्य रूप से मध्यकाल में शासकों द्वारा राज्याश्रय प्राप्त करने तथा अपने आश्रयदाता को प्रसन्न करने की भावना से ऐसी बंदिशों की रचना की गई। उदाहरणस्वरूप मोहम्मद शाह 'रंगीले' के नाम से अनेक बंदिशें प्राप्त होती हैं। साथ ही, औरंगजेब की प्रशंसा में भी बंदिशों की रचना की गई है, जैसे– राग शंकरा में **किनो रे करतार महाबली आरंगजेब भयो तोपे पूरो परताप**[6] इत्यादि।

3. **उत्सव–संबंधी रचनाएँ** :– प्रस्तुत विषय के अंतर्गत उत्सवों तथा त्योहारों से संबंधित बंदिश रचनाएँ प्राप्त होती हैं। त्योहारों में प्रमुख रूप से होली से संबंधित रचनाएँ, जैसे– राग काफी में **रंग जिन डारो मानो गिरधारी** तीन ताल में, तिलक कामोद में **चलो रे होरी खेलन सजनी दे तारी** इत्यादि तथा विवाह–संबंधी रचनाएँ जैसे– **मियां मल्हार में घुंगज सो आया बनरा ब्याहन बनरी को** इत्यादि बंदिशें प्राप्त होती हैं।

4. **प्रकृति एवं ऋतु–वर्णन से संबंधित रचनाएँ** :– इसके अंतर्गत विविध ऋतु से संबंधित बंदिशों का समावेश है । इन रचनाओं में विभिन्न ऋतुओं में प्रकृति के श्रृंगार का वर्णन व प्रकृति से संबंधित विविध प्रसंगों, जैसे– भोर का श्रृंगार, नील गगन में चंद्रमा का प्रकाश आदि का वर्णन देखने को मिलता है। मुख्य रूप से मल्हार अंग के रागों में रचित वर्षा–ऋतु से संबंधित बंदिशें, जैसे– मियां मल्हार में **बोले रे पपैयरा अब घन गरजे,** गौड़ मल्हार में **रूम झूम बदरवा बरसे** इत्यादि बंदिशें प्राप्त होती हैं, साथ ही वसंत ऋतु से संबंधित रचनाओं, जैसे– राग बहार में **कूक कूक कोयलिया बोलन लागी रे** इत्यादि प्रकृति एवं ऋतुवर्णन विषयक रचनाओं के उदाहरण हैं।

5. **नायक–नायिका संबंधी रचनाएँ** :– प्रस्तुत विषय के अंतर्गत नायक तथा नायिका की प्रेम प्रासंगिक रचनाओं का समावेश है, जिसमें नायक–नायिका के मिलन, संयोग की कामना तथा बिछोह से संबंधित विविध रचनाएँ मिलती हैं। प्रियतम से मिलन का हर्ष तथा वियोग की व्याकुलता आदि के प्रत्येक पक्ष से संबंधित बंदिशें इस विषय के अंतर्गत आती हैं, जैसे– संयोग विषयक बंदिश राग हंसध्वनि में **आए सजन मोर मंदिरवा** तथा वियोग–संबंधी बंदिश, जैसे– शुद्ध सारंग में **अब दिन बीते बीते री उनके दरस बिन** इत्यादि रचनाएँ उक्त बिंदु से संबंधित रचनाओं के उदाहरण हैं।

6. **संगीत से संबंधित रचनाएँ** :– इस विषय के अंतर्गत बंदिश की काव्य–रचना संगीत विषयक होती है। इसमें संगीत के विविध पक्षों का वर्णन देखने को मिलता है। इसके अंतर्गत मुख्य रूप से नाद महिमा, सप्त स्वर, राग–विशेष संबंधी तथा संगीत के विभिन्न पक्षों से संबंधित रचनाएँ जैसे– मारवा में **सघर सुघर बैठे सब गुणिजन, देखो गुण की रीत अनोखी, अंतरा में– सप्त सुरन सों गुण को गावे उनचास कूट तान सुनावे, सदारंग रीझत सब मन को** आदि बंदिशें इस विषय के उदाहरण है।

उपरोक्त कथित वर्ण्य–विषयों के वर्गीकरण के अंतर्गत ख्याल–शैली के लगभग सभी विषयों से संबंधित बंदिशों का समावेश संभव है। किसी–न–किसी रूप में ये बंदिशें इन प्रमुख वर्ण्य–विषयों के अंतर्गत वर्गीकृत की जा सकती हैं।

**निष्कर्ष** :–

ख्याल एक अत्यंत प्रसिद्ध शैली होने के कारण इसमें कल्पना से भी अधिक संख्या में विविध प्रसंगों पर आधारित बंदिशों की रचना हुई है तथा आज भी हो रही है। कोई भी बंदिश भले ही अप्रतिम सांगीतिकता से परिपूर्ण हो परंतु उसका साहित्य यदि अप्रभावशाली है तो बंदिश भी अप्रभावशाली प्रतीत होती है। एक ही राग में भिन्न–भिन्न विषयों से संबंधित बंदिशें राग के प्रत्येक पक्ष तथा विभिन्न भावों को दर्शाने में सक्षम हैं। यह वर्ण्य–विषय राग के विभिन्न पहलुओं के नवीन भावात्मक स्वरूप के अन्वेषण में विशिष्ट भूमिका निभाते हैं तथा ख्याल की रचनाओं की विविधता तथा विपुलता में वर्ण्य–विषयों की भूमिका अति विशिष्ट है। अतः ख्याल–रूपी कल्पना की सौंदर्य–वृद्धि में प्रयुक्त रागों के स्वर–सन्निवेश एवं साहित्य–सौष्ठव प्रस्तुतिकरण में, उनकी अभिव्यक्ति में बंदिशों द्वारा संचारित रस–भाव से जनमानस के हृदय को आबद्ध कर अपने वश में कर सके, यही हमारे भारतीय संगीत का चरम लक्ष्य है।

**सन्दर्भ सूची** :

1. Singh,Thakur Jaidev, Evolution of khayal, commemoration vol in honour of Dr.S.N. Ratanjankar, pg.130
2. Prajnananand, Swami, Historical Development of Indian Music, pg.167
3. मेहता, रमण लाल, आगरा घराना परंपरा, गायकी और चीजें, पृष्ठ–43
4. रामशंकर, डॉ., उत्तर भारतीय संगीत की बंदिशों में भाषा का स्थान, पृष्ठ–192
5. वही
6. गोस्वामी, शैलेंद्र कुमार, हिंदुस्तानी संगीत के महान रचनाकार सदारंग अदरंग, पृष्ठ–70

# लोक संगीत एवं 'टप्पा' गायन शैली

**डॉ. वन्दना तिवारी****

**दीपक वर्मा***

***शोध–आलेख सार***

*लोक संगीत का विकास मानव के विकास के साथ ही हुआ, जिस प्रकार क्रमशः मनुष्य की सामाजिक स्थितियाँ में परिवर्तन एवं सुधार हुआ उसी तरह संगीत का भी रूप परिवर्तित होता रहा है। लोक संगीत से तात्पर्य पृथ्वी के विस्तृत भू–भाग पर निवास करने वाली मानव जाति, उसकी संस्कृति, समाजिक गतिविधि, रीति–रिवाज, रहन–सहन, लोक मान्यता, देवता की पूजा–पद्धति, गीत–संगीत से है। लोकगीतों में मानव–सभ्यता व संस्कृति का रूप अंकित रहता है। 'लोक' शब्द संस्कृत के 'लोकदर्शने' धातु में 'घञ्' प्रत्यय करने पर जागृत हुआ है। इस धातु का अर्थ 'देखना' होता है, जिसका लट् लकार में अन्य पुरुष एकवचन का रूप 'लोकते' है। अतः 'लोक' शब्द का अर्थ हुआ देखने वाला। इस प्रकार वह समस्त जन–समुदाय जो इस कार्य को करता है, ''लोक'' कहलाएगा। 'टप्पा' पंजाब की लोक गायन शैली है जिसे उपशास्त्रीय शैली में भी अपनाया गया है। प्रस्तुत शोध–पत्र में लोकसंगीत एवं टप्पा गायन–शैली के संदर्भ में विस्तारपूर्ण चर्चा की जाएगी।*

**मुख्य शब्द** : *लोकसंगीत, टप्पा गायन, उपशास्त्रीय संगीत, शास्त्रीय संगीत*

**प्रविधि** : *द्वितीयक स्त्रोतों से सामग्री संकलित कर यह पत्र तैयार किया गया है ।*

भारतीय संगीत के प्रसिद्ध तीन प्रकार हैं– शास्त्रीय संगीत, सुगम संगीत एवं लोक संगीत। शास्त्रीय संगीत शास्त्रों के नियमों में बद्ध होता है। शास्त्रीय संगीत की प्रमुख शैलियाँ है–ध्रुपद, ख़्याल, तराना, ठुमरी आदि। सुगम संगीत के अन्तर्गत भजन, गीत, ग़ज़ल आदि सम्मिलित हैं। लोक संगीत वह है जो साधारण मनुष्य भी सरलता से गा सके। 13वीं शताब्दी में पं0 शारंगदेव ने अपने ग्रंथ 'संगीत रत्नाकर' में लोक संगीत को देशी संगीत के रूप में परिभाषित करते हुए कहा कि "जो संगीत भिन्न–भिन्न देशों के लोगों की रूचि के अनुरूप विकसित होता है, कठोर नियमों से मुक्त व जनसाधारण को मनोरंजित करता है, वह 'देशी' संगीत कहलाता है। यह स्पष्ट है कि लोक संगीत का प्रेरणा–स्त्रोत जन–मानस होता है। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने लोक संगीत को संस्कृति का सुखद संदेश देने वाली कला कहा है।

## टप्पा गायन–शैली का उद्‌भव व विकास :

टप्पा गायन–शैली का आविर्भाव वास्तविक रूप से पंजाब व उत्तर भारत द्वारा हुआ है एवं एक अमूल्य निधि के रूप में आज भी सक्रिय रूप से स्वचालित है । टप्पा गायकी का उद्‌भव व विकास अपने आप में विशेष महत्व रखता है। पंजाब क्षेत्र की सांगीतिक विधाओं में टप्पा गायकी को न लिया जाय, यह अनुचित होगा। "टप्पा गायन–शैली का पहली बार विवरण "डपा" संज्ञा के रूप में मिलता है। "अबुल फज़्ल" ने अपने ग्रंथ "आइना–ए–अकबरी" में देशी गीत के प्रसंग में लाहौर अंचल के छंद का परिचय प्रेमगीति के रूप में दिया है। प्रेमगीति की यह बात शाहजहाँ और औरंगजेब के शासन–काल में फकीरूल्लाह के ग्रंथ में भी मिलती है, फकीरूल्लाह ने छंद के परिचय के बाद डपा का उल्लेख किया है। दो प्रकार की ही प्रेमगीति हैं, जो पंजाब में प्रचलित थीं। छंद के कई चरण होते थे, एवं गान के साथ कविता की आवृत्ति भी की जाती थी परंतु डपा दो से चार कलियों में निबद्ध था, जो "सुर" में गाया जाता था। प्रथम दो चरणों में मेल रहते हुए भी अंतिम कलियाँ अन्य प्रकार की होती थीं। काव्य का विषय था प्रेम, आत्मोत्सर्ग तथा उसकी भाषा थी, पंजाबी। फकीरूल्लाह के जीवन–काल में पंजाब के अलावा पंजाब के बाहर भी डपा का कुछ प्रचलन दिखाई देता था। उन्हीं के काल के मिर्जा ख़ान ने भी अपने ग्रंथ "तुहफेतुलहिंद" में डपा का उल्लेख पंजाबी की प्रचलित गीति के रूप में किया है। आश्चर्य की बात यह है कि पंजाब में हमें डपा नहीं मिलता किंतु डपा के सभी लक्षण टप्पा से मिलते–जुलते हैं।"[1] इस प्रकार, टप्पा गायकी पंजाब में सर्वप्रथम उपजी एवं विकसित हुई लेकिन इसका पूर्ण पल्लवन और विस्तार पंजाब के बाहर दिल्ली एवं अन्य हिन्दी भाषी क्षेत्रों में हुआ। अवध के नवाबी

*शोधार्थी, संगीत विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़

**विभागाध्यक्ष, शोध निर्देशिका, संगीत विभाग, पीजीजीसीजी–II, सेक्टर–II, चंडीगढ़

शासनकाल से इस विधा का अटूट संबंध है।[2]

टप्पा के सम्बन्ध में अनेक विद्वानों ने अपने–अपने अलग–अलग मत दिए हैं। इन टप्पों का गायन अधिकतर श्रोता–समूह के सम्मुख किया जाता है और स्त्री–पुरूष गायकों द्वारा प्रायः युगल गान 'दोगाना' के रूप में गायन करने की प्रथा है। सवाल–जवाब के रूप में एक–दूसरे के प्रति कटाक्ष और छींटाकशी की जाती है जो श्रोताओं को अत्यधिक रूचिकर प्रतीत होती है। टप्पा के गायन के साथ मध्यलय में कहरवा ताल का ठेका ढोलक पर लगाया जाता है।[3] परंतु वहीं कैप्टन विलयर्ड ने इस संदर्भ में अपना मत रखते हुए स्वरचित पुस्तक "Music of Hindustan" में कहते हैं:– "Songs of this species are admiration of Hindustan. It has been brought to its present degree of perfection by the famous shore, who in some measure may be considered its founder. Tappas were formerly sung in very rude style by the camel drivers of the Punjab, and it was he who modelled it into the elegance it is now sung with Tappa have two looks and are generally sung in the language spoken in Punjab or a mixed jargon of that and Hindi. They recite the love of Heer and Ranjah equally renowned for their attachments and allude to some cirumstances in the history of their love"[4]

'टप्पा' पूर्वकालिक पंजाब के ऊँट हाँकने वालों द्वारा बहुत ही रूखी शैली में गाया जाता था और शोरी मियाँ द्वारा ही उस समय गाये जाने वाले ललित सुरूचिपूर्ण साँचे में ढाला गया। टप्पा में दो टुकें होती हैं और ये साधारणतया पंजाब में बोली जाने वाली भाषा तथा पंजाबी मिश्रित हिन्दी की बोलियों में गाए जाते हैं। इसमें वे हीर–रांझा के प्रेम का विवरण सुनाते हैं जो दोनों परस्पर प्रणय और भाग्यहीनता के लिए समान रूप में प्रसिद्ध है और ये गीत उनके जीवन की प्रसिद्धि हैं और उनके जीवन की कुछ परिस्थितियों की आरे संकते करते हैं। कुछ विद्वानों के अनुसार "टप्पा" पंजाब का वह क्षेत्र है जो मरूभूमि है। इस क्षेत्र में बलोची और अफगानी ऊँटों पर सवार होकर लम्बी कतारों में व्यापार के निमित्त रात–दिन सफर किया करते थे। विद्वानों का कथन है कि ये ऊँट हाँकने वाले अतीत के पंजाब की प्रेम–गाथाओं, यथा– हीर–रांझा, मिर्जा–साहिबा, सोहनी–माहिवाल आदि का गायन करते हुए यात्रा के श्रम का परिहार गायन की मस्ती के द्वारा करते थे। अति द्रुत गति का गायन होने के कारण और दानेदार बोलतान, इसका अनिवार्य अंग होने के कारण, यह गायकी श्रमसाध्य है और साधारण गायकों के बस की बात नहीं। टप्पा गान कठिन होता है। इसको गाने के लिए विधिवत् अभ्यास से गले को एक विशिष्ट प्रकार से तैयार करना पड़ता है। कसबी कलाकार ही टप्पा गाने में सिद्ध हो पाते हैं जिनके गले में मुर्की, खट्का के साथ सपाट तानें लेने के क्षमता होती है, वे गायक ही टप्पा अच्छा गा सकता है। ध्रुपद अथवा ख्याल की अपेक्षा इसकी बनावट संक्षिप्त होती है। इसमें आलाप का काम नहीं दिखाया जाता, न धीरे–धीरे बढ़त की गुंजाइश होती है। लम्बी–लम्बी तानों का प्रयोग भी नहीं होता। टप्पा चंचल प्रकृति का गीत प्रकार है। टप्पा छोटी–छोटी विशेष अंदाज़ से ली गई दानेदार तानों, बोलतानों, मुर्की, खट्का, ज़मज़मा आदि में सुशोभित होती है।

अधिकतर अवरोह–प्रधान छोटी–छोटी तानों का प्रयोग स्वरों के विशिष्ट प्रकार के समुदायों के साथ होता है।[5] टप्पा की गान–क्रिया को प्रारम्भ करते ही शब्दों को चक्रयुक्त तानों से सजाते हुए इसका विस्तार करते हैं। टप्पा गीत में शब्द बहुत कम होते हैं। कुछ टप्पा तो एक या दो पंक्तियों में ही पूर्ण हो जाते हैं। अधिकांश टप्पों में स्थाई व अंतरा दो ही अवयव होते हैं। प्रमुख रूप से भैरवी, बरवा, गौरी, झिंझोटी, काफी, गारा, खमाज, तिलंग, पीलू, कलिंगड़ा, देस आदि रागों में ही टप्पों की रचनाएँ मिलती हैं। टप्पा अधिकतर पंजाबी, अद्धा, त्रिताल अथवा पश्तों ताल में गाए जाते हैं।"[6]

**टप्पा–गायन व प्रचार–प्रसार :**

मियाँ शोरी व टप्पा–गायकी एक–दूसरे के पर्यायवाची शब्द बन गए हैं। अनेक विद्वानों के अनुसार टप्पा गायकी का आविष्कार मियाँ शोरी द्वारा ही किया गया है। इसी संदर्भ में लेखक प्रभाकर चिंचोरे द्वारा उल्लिखित किताब– 'राजा भैया पूछ वाले की कुल कथा' में अंकित है कि गुलाम रसूल के पुत्र उर्फ गुलाम नबी शोरी मियाँ आसिफ उद्दोल्लाह के समय में लखनऊ में ही रहे व सन् 1810 में कालवंश हुए। इन्होंने ख्याल व ध्रुपद की तालीम अपने पिता से प्राप्त की। यह भी माना जाता है कि एक बार ये भ्रमण करते–करते पंजाब जा पहुँचे और वहाँ इन्होंने स्थानीय लोक से लोक धुनें व कंपित तानें सुनी व बहुत आकर्षित हुए। मियाँ उन हीर–राँझे पर आधारित लोक गीतों का भावार्थ नहीं समझते थे परंतु उन्होंने इन लोक धुनों को टप्पा का रूप देने की ठान ली। इस प्रकार,

उन्होंने पंजाबी–भाषा का अध्ययन भी किया एवं अनेक पंजाबी लोक धुनों को याद भी किया। इसके पश्चात् फिर से लखनऊ लौट कर विभिन्न राग–रागिनियों में टप्पा पर आधारित रचनाएँ लिखना आरंभ कर दी। ऊँट स्वरों के उन पंजाबी गीतों को टप्पा का आकस्मिक रूप देकर भारतीय स्तरीय संगीत को और ज्यादा अलंकृत कर दिया। लम्बे समय तक पंजाब में रहकर गुलाम नबी ने प्रसिद्धु महाराज, मियाँ गम्मू अथवा गम्मू खाँ, ताराचंद एवं मीर अली साहब आदि को टप्पा गायकी में तैयार किया। आगे चलकर, इन्हीं लोगों ने टप्पा की परम्परा को आगे बढाया। सभी शिष्य धीरे–धीरे अलग–अलग जगहों में जाकर बस गए एवं वहाँ अपनी गायकी से लोगों को आकर्षित किया। गम्मू खाँ के पुत्र सादिक खाँ लखनऊ छोड़कर बनारस जाकर बस गए तथा वहाँ टप्पा का प्रचार–प्रसार किया। टप्पा की चंचल प्रकृति के कारण यह लोगों को मोहित करने लगा। बनारस घराना के सुप्रसिद्ध ख्याल गायक "बड़े रामदास जी" ने अपने अनेक शिष्यों को टप्पा की शिक्षा दी। इसके पश्चात् टप्पा का विस्तार ग्वालियर घराना में होना प्रारम्भ हुआ। नत्थन पीर बख्श जो ग्वालियर घराना के आविष्कारक थे, उन्होंने टप्पा की शिक्षा शोरी मियाँ के पिता गुलाम रसूल के शिष्य शक्कर खाँ एवं मक्खन खाँ से लिया। इसी प्रकार, यह ग्वालियर घराना में शोभायमान हुई। इसी प्रकार हस्सू खाँ के शिष्यों में देवजी बुवा तथा रावजी बुवा ने इस परम्परा को आगे बढ़ाया।"[7] बड़े रामदास, सिद्धेश्वरी देवी, गिरिजा देवी, राजाभाऊ कोगजे, गणेश प्रसाद मिश्र, राजन एवं साजन मिश्र, कृष्णराव पंडित, राजाभैया पूँछवाले, बालासाहेब पाँचावाले, शरद अकोकर, जाल बालापुरिया, शरद साठे, नीला भागवत, मालिनी राजुरकर, कुमार गंधर्व, जीतेन्द्र अभिषेकी, विजय कोपरकर, आरती अंकलीकर, आशा खडिलकर, मंजरी असनारे आदि महान संगीतज्ञ टप्पा गायन–शैली की प्रचार–प्रसार प्रक्रिया में अपना–अपना योगदान दे रहे हैं।

## निष्कर्ष

टप्पा गायन–शैली का प्रभाव गायन की अनेक शैलियों पर पड़ा, जैसे–ख्याल, तराना, ठुमरी आदि। इसे ही टप्प ख्याल, टप्प तराना तथा टप्प ठुमरी कहते हैं। इसके अतिरिक्त हिन्दुस्तानी संगीत की इस महत्वपूर्ण शैली के प्रचार एवं सरंक्षण के लिए आवश्यक कदम उठाना अनिवार्य है, अन्यथा कठिन एवं श्रमसाध्य होने के कारण वर्तमान में इस शैली की गायकी का लोप हो चुका है, इस तथ्य से हम अत्यंत व भली–भाँति परिचित हैं। समय परिवर्तनशील है और इसी परिवर्तनशीलता के मध्य हिंदुस्तानी संगीत पर भी अनेक अच्छे व बुरे प्रभाव अवश्य देखने को मिलते हैं। अंधकार युग से लेकर आज आधुनिक युग तक भारतीय संगीत अपनी अनेक लुप्त शैलियों के बावजूद भी विश्व की अन्य सांगीतिक शैलियों में अपनी एक विशिष्ट छवि रखता है। जिस प्रकार ख्याल का पूर्व–रूप ध्रुपद माना जाता है परंतु आज भी अनेक ध्रुपद गायक ध्रुपद का प्रचार–प्रसार कर रहे हैं परंतु टप्पा–जैसी विशिष्ट व भिन्न गायकी आज मुश्किल, से किसी घराना में देखने को मिलती है। इस प्रकार हमारे हिंदुस्तानी संगीत की इस टप्पा–जैसी प्रभावशाली गायन–शैली का विलोप हम संगीत रसिकों के लिए निश्चित ही चिंतनीय है।

**संदर्भ सूची :**

1. पोहनकर अंजली, संगीत, मासिक पत्रिका, उपशास्त्रीय संगीत अंक, जनवरी 2003, पृ. 198
2. सहगल, सुधा, प्रांतीय संगीत : विविध पक्ष, प्रथम सस्करण–2008, कनिष्क पब्लिशर्स, डिस्टीब्यूटर्स, नई दिल्ली–110002, पृ. 112
3. पेंटल, गीता, पंजाब की विधिवत् गायन विधाएँ, प्रथम सस्करण–1988, राधा पब्लिकेशन्स, दरियागंज, नई दिल्ली–2, पृ. 76
4. तैलंग, कृष्ण नारायण, टप्पा संग्रह 'टप्पा गीत', प्रथम संस्करण–1989 संगीत कार्यालय हाथरस, पृ. 88
5. सर्राफ, रमा, भारतीय संगीत सरिता, प्रथम संस्करण–2009, कनिष्क पब्लिशर्स, डिस्टीब्यूटर्स, नई दिल्ली–110002, पृ. 120
6. तैलंग, कृष्ण नारायण, टप्पा संग्रह, प्रथम संस्करण–1989 संगीत कार्यालय हाथरसपृ. 90
7. Raja, Deepak, Hindustani Music : A Tradition in Transition, 1948, p. 119

# आधुनिक रंगमंच और स्टूडियो : रंगमंडपों का बदलता स्वरूप

**डॉ. स्मृति भारद्वाज**** **मनीष जोशी***

**सार**

*समय के अनुसार सब कुछ बदला है और इसी प्रकार रंगमंच में बदलाव होते रहे हैं। मंदिरों से निकलकर कलाएँ मुक्ताकाशी, तम्बू, फिर बड़े सभागार और अब स्टूडियो थियेटर में अपनी पहचान निरन्तर खोजने में लगी है। स्टूडियो थिएटर क्या है? इसकी क्या उपयोगिता है? स्टूडियो थिऐटर के स्वरूप का वर्णन एवं किस प्रकार रंगमंच के साथ–साथ अन्य कलाओं को इस रंगमंडप ने प्रभावित किया है, यह इस लेख में जानने की कोशिश की गयी है। लेख में आधुनिक समय में रंगमंच की परम्परायें एवं रंगमंडप के विविध स्वरूपों पर भी चर्चा की गयी है।*

***संकेत शब्द** : रंगमंच, ब्लेक बॉक्स, स्टूडियो थिऐटर, क्लब विंडरमेयर, एक्सपेरिमैंटल थिऐटर स्पेस, लोक रंगमंच*

***शोध–प्रविधि** : इस लेख से सम्बन्धित जानकारी इंटरनेट व व्यक्तिगत साक्षात्कार द्वारा एकत्र की गई है। साथ ही, ऐतिहासिक अध्ययन भी इसमें शामिल है। नाट्यशास्त्र के अलावा ग्रीक और रोमन व अन्य रंगमंडपों के बारे में भी इसमें जिक्र किया गया है। साथ ही, समाचार पत्र और पत्रिकाओं का भी इसमें जिक्र है तो पुस्तकालय में उपलब्ध सामग्री द्वारा कुछ डाटा लिया गया है। शोधार्थी द्वारा खुद जगह–जगह पर जाकर यह सर्वे किया गया है कि स्टूडियो थिएटर का क्या महत्व है और किस प्रकार यह आज कलाओं को उभारने में सफल साबित हो रहे हैं?*

**भूमिका** :

'रंगमंडप वह स्थान है जहां नृत्य, संगीत एवं नाटकों का मंचन होता है। रंगमंडपों को रंगमंच, प्रयोगस्थल, नाट्यशाला, प्रेक्षाग्रह एवं ऑडिटोरियम भी कहा जाता है।'[1] शोध ग्रंथों के अनुसार चौथी शताब्दी ईसा पूर्व में रंगमंडप होने के प्रमाण मिलते हैं। 'भारत में सीताबेंगरा की गुफा रंगमंडप तथा डायनोसिस का थियेटर एथेंस में इसका एक उदाहरण है।'[2] नाट्यकला का शुरूआती दौर ग्रीक रंगमंच का माना जाता है एवं पहले जो भी रंगमंडप होते थे वे मुक्ताकाशी थे लेकिन विसेंजा की ओलयमडियम अकादमी में एक रंगशाला बनाई जिस पर छत भी थी और मंच के पीछे कुछ कमरे भी बनाए गए थे। धीरे–धीरे रंगमंडपों में पर्दों का इस्तमाल होने लगा जो दृश्यों को और अधिक प्रभावशाली बनाने में मदद करता था। इसके बाद ग्रीस में ग्रीक थिऐटर बने। ग्रीक नाटकों में दर्शकों की संख्या बहुत अधिक होती थी, इसलिए यह बहुत बड़े आकार के होते थे।

'भारतीय रंगमंच में भी रंगमंडपों का बहुत महत्त्व रहा है। चारों वेदों से मिलकर बने पंचम वेद यानि 'नाट्यशास्त्र' में भरत मुनि ने भी रंगमंडपों का जिक्र किया है। भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र के द्वितीय अध्याय में तीन प्रकार के प्रेक्षाग्रह बताए हैं–

1. विकृष्ट (आयताकार)
2. चतुरस्त्र (वर्गाकार)
3. त्रयस्त्र (तिकोना)

इन तीनों प्रकार के रंगमंडपों का नाट्यशास्त्र में विस्तृत रूप से वर्णन किया गया है'।[3] साथ ही, इनको बनाने की विधि भी समझाई गई है। हर एक रंगमंडप की अपनी विशेषता होती है।

भरतमुनि के रंगमंडपों में आधा हिस्सा दर्शकों के लिए और आधा हिस्सा मंच का होता है। नाट्यशास्त्र में भरत ने नाट्यमंडप के आकार प्रकार और सजावट पर भी विशेष ध्यान दिया है। 'सीतावंगा की गुफा के देखने से पुराने नाट्यमंडपों के स्वरूप का कुछ अनुमान हो जाता है। यह गुफा 13.8 मीटर लंबी तथा 7.2 मीटर चौड़ी है। भीतर प्रवेश करने के लिए बाईं ओर से सीढ़ियॉ हैं, जिनमें कदाचित अभिनेता प्रवेश करते हैं। भीतरी भाग में रंगमंच की व्यवस्था है, यह 2.3 मीटर चौड़ी तीन सीढियों (चबूतरों) से बना है, जो एक–दूसरे से 75 सेमी. ऊँची हैं। चबूतरों के सामने दो

*शोध शोधार्थी, लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी फगवाड़ा, पंजाब
**शोध निर्देशिका, प्रदर्शनकारी कला विभाग, लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी फगवाड़ा, पंजाब

छेद हैं, जिनमें शायद बाँस या लकड़ी के खंभे लगाकर पर्दे लगाए जाते थे। दर्शकों के लिए जो स्थान है, वह ग्रीक ऐंफीथिएटर की भाँति सीढ़ीनुमा है। यहाँ 50 व्यक्ति बैठ सकते हैं। यह आदिकालीन रंगमंच का स्वरूप भी ऊपर वर्णित विकसित स्वरूप से मेल खाता है भरत के नाट्यशास्त्र से भी हमें नाट्यमंडप के प्राचीन स्वरूप का संकेत मिलता है। आदिवासियों के मंडप गुफारूपी (शैलगुहाकारी) हुआ करते थे, किंतु आर्य लोग अपनी आश्रम सभ्यता के अनुरूप अस्थायी तंबूनुमा नाट्यमंडपों से ही काम चलाया करते थे।'[4]

'भरतकृत नाट्यशास्त्र दूसरी से चौथी शती ई. पू. में संकलित हुआ समझा जाता है। भरत ने आदिवासिंयों तथा आर्यों दोनों के नाट्यमंडपों के आकार को अपनाया है। इन दोनों के सम्मिश्रण से इन्होंने नाट्यमंडपों के जो रूप निर्धारित किए, वे सर्वथा भारतीय हैं। प्राचीन यूनानी और रोमन स्वरूपों से इनका कोई संबंध नहीं प्रतीत होता। पाश्चात्य नाट्यमंडप खुले मैदानों में बनते थे और उनमें दर्शकों के बैठने हेतु सीढ़ीनुमा अर्धचंद्राकार प्रक्षास्थान बनते थे। इसके विपरीत भारत में नाट्यमंडप की व्यवस्था एक गृह के भीतर होती थी।'[5]

ऊपर दिये हुए रंगमंडपों के प्रकार के अलावा आधुनिक समय में रंगमंडपों में नवीन प्रयोग किए जा रहे हैं जो शोध का विषय है। यूरोप में मास्को आर्ट थिऐटर और अमेरीका में रेडियो म्यूजिक हॉल में तरह तरह के प्रयोग हुए हैं।

भारत में भी रंगमंडपों को लेकर विभिन्न प्रयोग होते आए हैं। यहाँ भी रंगमंडपों का स्वरूप बदलता रहा है। उसी बदलते स्वरूप के अनुसार नाट्य–स्वरूप भी बदलता रहा है। आज भारत में जगह–जगह स्टूडियो थियेटर का निर्माण हो रहा है लेकिन इस पर लिखा नहीं जा रहा है। स्टूडियो थिएटर के आने से रंगमंच में वृद्धि हुई है और दर्शकों की संख्या भी बढ़ी है। ऐसे सटूडियो बनने से कला ने एक नयी सांस ली है। स्टूडियो थिएटर ने कई शहरों में सांस्कृतिक माहौल बदल दिया है एवं सांस्कृतिक चेतना जगाई है। छोटे–छोटे कस्बों और अब कई गाँवों में भी स्टूडियो थिएटर का निर्माण हुआ है जिससे वहाँ के लोगों में कला के प्रति समझ बढ़ी है। वर्त्तमान में स्टूडियो थिएटर के निर्माण के लिए ज्यादा जगह या उपकरणों की आवश्यकता नहीं होती है। सीमित संसाधनों से ही स्टूडियो थिएटर में विभिन्न कलाओं की प्रस्तुति दी जा सकती है।

स्टूडियो थिएटर के लिए विभिन्न आयाम व उपकरण निम्नलिखित हैं –

कॉलेजों या विश्वविद्यालयों के एक स्टूडियो थिएटर के निर्माण के लिए 60X51 फीट यानि 3060 वर्गफुट की जगह उचित होती है। इसके अंतर्गत नियंत्रण क्षेत्र, प्रदर्शन स्थल, दर्शक दीर्घा, छत आदि जगह उपयोगी होती है। स्टूडियो थिएटर में लाईटिंग उपकरण (फ्रेजनल, स्पॉट, प्रोफाइल ओवरहेड लालटेन, कंट्रोल बोर्ड, आउटलेट्स) ध्वनि उपकरण (एम्प्लीफायर, मिक्सर, साउण्ड, माइक्रोफोन, टेप रिकॉर्डर, स्पीकर, दर्शनीय उपकरण (काला पर्दा, सादा पर्दा आदि) भण्डारण कक्ष कार्य क्षेत्र उपकरण होते हैं। स्टूडियो थिएटर के अतिरिक्त एक्सपेरिमेंटल थिएटर की बात करें तो सर्वप्रथम इसकी शुरूआत भारत में रामनगर की रामलीला से हुई जिसमें प्रदर्शन स्थल की बहुत महत्ता है। इसी से प्रभावित होकर रिचर्ड रोचनर ने एक्सपेरिमेंटल थिएटर की अवधारणा व्यक्त की थी।

महानगरों में जहाँ बड़े सभागार बनाना संभव नहीं थे, वहाँ ऐसे रंगमंडप आकर्षक विकल्प के रूप में उभर कर आये हैं। बर्तोल्त ब्रेष्ट दर्शकों और अभिनेताओं के बीच जिस चौथी दीवार को तोड़ने की बात करते हैं, वह इनके निर्माण में सार्थक सिद्ध हुई है।

जगह कम होती है, दर्शक और अभिनेताओं के बीच दूरी नाम मात्र ही होती है, जो दर्शक मात्र न होकर नाटक का हिस्सा बन जाता है। ऐसे नयी जगह आने से दृश्य–विधान में भी बदलाव आया। स्टूडियो थिएटर चूंकि छोटे–छोटे होते हैं तो उनमें बड़े सेट लगाना संभव नहीं होता। इसलिए सीमित संसाधनों से ही काम चलाना पड़ता है। ऐसे स्टूडियो मे प्रकाश–व्यवस्था भी इस प्रकार की जाती है कि सब तरह के नाटक वहाँ हो जाएँ। यहाँ डिजाइन का एक भ्रम पैदा होता है।

झांसी (उ.प्र.) में डॉ. हिमांशु द्विवेदी द्वारा बुन्देलखण्ड नाट्य कला केन्द्र के नाम से एक स्टूडियो थिएटर की स्थापना की गई, जहां कला को बढ़ावा देने के लिए झुग्गी–झोपड़ी में रहनेवाले बच्चों व अन्य कलाकर्मियों को निःशुल्क प्रायोगिक व सैद्धान्तिक रूप से रंगमंच की बारीकियों को समझाया व पढ़ाया जाता है। स्टूडियो की स्थापना का मुख्य उद्देश्य बुन्देली लोक कला को बढ़ावा देना है।

चंडीगढ़ में डिपार्टमैंट ऑफ इंडियन थिएटर, पंजाब

यूनिवर्सिटी में निर्मित स्टूडियो थिएटर बहुत ही आकर्षक और चुनौतीपूर्ण है। इसमें अभिनेता और दर्शक दोनों के बीच एक अद्‌भुत संबंध स्थापित होता हैं। प्रोफेसर महेन्द्र कुमार द्वारा निर्मित यह स्टूडियो थिएटर वास्तव में पहले स्टोर रूम था जिसे उन्होंने स्टूडियो थिएटर का रूप प्रदान किया है। इब्राहिम अल्काजी ने भारत में सबसे पहले टेरेस थियेटर कल्पना को साकार किया। आज वर्तमान में पूरे भारतवर्ष में रंगकर्मियों द्वारा निर्मित स्टूडियो थियेटर, मुबई का वेदा फैक्ट्री, दिल्ली में एट्टिक स्टूडियो, बरेली में क्लब विंडरमेयर, हिसार मे रियाज स्टूडियो, गुवाहाटी में बहरूल, इस्लाम का सीगल थियेटर आदि इसके उदाहरण हैं।

इन्हीं दिनो रायपुर के एक रंगकर्मी सुभाष मिश्रा ने अपने घर की छत पर ही एक सभागार बना दिया है।[5] ऐसे ही प्रयोगों की बात की जाए तो दिल्ली की महिला रंगकर्मी प्रियंका शर्मा ने सिल्ली सौलस के नाम से एक प्रयोगात्मक जगह को ही सभागार के रूप मे तब्दील किया है। शादीपुर के सफदर स्टूडियो जैसे एक छोटा–सा स्टूडियो वहाँ के कलाकारों के लिए एक नयी सौगात लेकर आया है। इस स्टूडियो के खुलने से वहाँ रह रहे रिक्शा वाले इसके प्रचार मे लगे हैं। चूंकि उनके बच्चों के लिए वहाँ समय–समय पर कार्यशालाएँ होती रहती हैं और कला से उनका जुड़ाव रहता है।

मुंबई शहर में जहाँ सब फिल्मों में काम करने के लिए जाते थे, आज यहाँ भी रंगमंच के व्यवसायीकरण के कारण लोग वापस रंगमंच में आने लगे है। रंगमंच मे जहाँ आज व्यवसायिकता आई है वहीं जगह की कमी एक नयी चुनौती बनकर आई है। इसी कमी को दूर करने के लिए वेदा फैक्ट्री, एम्पटी स्पेसेस, रसिका अगासे का स्टूडियो अंतरंग ऐसी चुनौतियों का सामना कर रहा है। मुंबई में पहले छोटी जगह पर थियेटर किया जा सके, इसकी कमी थी। मिशेला जो बर्लिन के बड़े थियटर रंगकर्मी हैं उन्होंने मुंबई आने के बाद करण तलवार से कहा था कि वे हैरान हैं कि मुबई में कला और संस्कृति के लिए बड़े सीमित स्थान हैं।[6]

महानगरों के अलावा छोटे शहरों में स्टूडियो थियेटर ने पूरे शहर का सांस्कृतिक स्वरूप ही बदलकर रख दिया है। आजमगढ़ में शारदा टॉकीज ने अपना सिनेमा हॉल बन्द कर दिया और काफी सालों बाद वहीं के रंगकर्मी अभिषेक पंडित और ममता पंडित के आग्रह पर जर्जर बिल्डिंग में रंगमंच करने के लिए निःशुल्क जगह प्रदान कर दी। इसी जगह को अभिषेक और ममता पंडित की जोड़ी ने अपने अनुसार डिजाइन कर उसे एक बढिया स्टूडियो थियेटर का रूप दे दिया है। अब वहाँ समय–समय पर नाटक, कार्यशालाएँ और आजमगढ अंतर्राष्ट्रीय फिल्म फेस्टिवल भी होने लगा है।

हरियाणा में रंगमंच गिरता–पड़ता हमेशा से कुछ शहरों में सक्रिय रहा है। हिसार मे सबसे पहले डॉ. सतीश कश्यप ने ओपेरा थियेटर नाम के एक स्टूडियो थियेटर का निर्माण अपने घर में ही किया। इसके बाद रियाज स्टूडियो बना और अब गुलशन भुटानी ने जोरबा थियेटर का निर्माण किया।

आज समय बदल रहा है और समय के साथ कलाओं का स्वरूप भी बदला है। इसी बदलते स्वरूप में स्टूडियो थियेटर एक जबर्दस्त बदलाव का उदाहरण है। सरकार ने भी इसकी जरूरत को समझा है और संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार ने भी बिल्डिंग के ग्रांट के नाम का एक अनुदान शुरू किया है। इसके द्वारा छोटे शहरों में स्टूडियो थियेटर के निर्माण हेतु 25 लाख तक के उपकरण खरीदने के लिए भी अनुदान का प्रावधान है।

हमेशा से यह चर्चा होती रही है कि क्या टिकट खरीद कर दर्शक थियेटर देखने आयेंगे? इस सवाल का जबाब भी इसी तरह के रंगमंडपों ने खोजा है। अधिकतर स्टूडियो थियेटर में लोग टिकट लेकर ही नाटक देखने आते हैं। सिर्फ नाटक ही नहीं, इन जगहों पर अब ओपेन माइक यानि खुला मंच नाम का एक आयोजन होने लगा है जिसमें युवा प्रतिभाएँ कविता, कहानी, गाना–बजाना और भी अन्य कलाओं का प्रदर्शन करते हैं। इन ओपन माइक के आयाजनों को यूट्यूब चैनल के माध्यम से एपिसोड्स बनाकर डाला जाता है जिससे कलाकारों के पास एक आय का स्त्रोत बनता है। हालॉकि यह एक लम्बी और जटिल प्रक्रिया है पर उम्मीद कोई नहीं छोड़ना चाहता ।

आजकल हर राज्य में फिल्मों का निर्माण होने लगा है, स्थानीय कलाकारों को लेकर ही अधिकतर काम किया जा रहा है। ऐसे स्टूडियो थियेटर ऑडीशन के लिए उपयुक्त हैं और इनमें कई बार कुछ सीन भी शूट कर लिए जाते हैं। ऐसी गतिविधियों में भी नाट्य दल के पास एक आय आती है और वे अपने स्टूडियो को मेंटेन कर पाते हैं।

जब रिहर्सल की जगह नहीं होती तब नाट्य दल के सामने एक अलग संकट हो जाता था। अपने आस–पास के किसी मैदान या स्कूल में रिहर्सल करना पड़ता था और वहाँ भी वो माहौल नहीं मिल पाता था जो नाटक की रिहर्सल को चाहिए होता है। स्टूडियो थियेटर अब बहुत ही कम पैसों में रिहर्सल के लिए उपलब्ध हो जाता है, और लम्बी कार्यशालाओं के लिए भी इसे किराये पर ले सकते हैं।

मुंबई जैसे शहर में जहाँ सभागारों के किराऐ आसमान छू रहे हैं, वहाँ थियेटर स्टूडियो के आने से नाटकों की संख्या बढी है। जो अभिनेता फिल्म में सिर्फ रोल का इन्तजार कर रहे होते हैं उन्हें भी रंगमंच से जोड़ा है। बड़े अभिनेता अपना अनुभव साझा करने के लिए समय–समय पर ऐसी जगहों पर कार्यशाला आयोजित करते रहते हैं।

बरेली में बना क्लब विंडरमेयर एक कमाल का उदाहरण है। पेशे से डॉ. बृजेश्वर ने यह पहल की है। अपने ही घर की छत पर लगभग 200 लोगों के बैठने के लिए एक प्ले बॉक्स थियेटर का निर्माण उन्होंने किया है। उन्हें थियेटर से प्रेम है और हर वर्ष वे इस जगह पर एक राष्ट्रीय उत्सव भी करते हैं। उनके पूरे स्टाफ को जो उनके हॉस्पिटल में काम करता है, उन्होंने लाइट और साउंड को किस प्रकार ऑपरेट करना है, इसकी ट्रेनिग भी दी है। इस जगह पर उन्होंने सिद्धिविनायक रंगमंडल की भी स्थापना की है जिसमें लगभग 20 अभिनेता कार्यरत हैं। डॉ. बृजेश्वर ने एक पुस्तक भी लिखी है, जिसका नाम है इन एण्ड आउट ऑफ थियेटर। उनका सुबह का समय ऑपरेशन थियेटर में बीतता है और शाम का नाटक वाले थियेटर में।

हिसार में युवाओं के एक जूनूनी दल ने इनफिनिटी क्रियेटर्स नाम से एक स्टूडियो थियेटर की शुरूआत की है। हर हफ्ते यहाँ एक ओपन माइक का आयोजन होता है और साथ ही, चौपाल नाम के एक शो की भी इसमें शुरूआत हुईं। लवली प्रोफेशनल विश्वविद्यालय से स्नातक सुमित सिंह और इनके कुछ दोस्तों द्वारा इसे शुरू कर दिया गया है।

दिल्ली में रंगमंच का केन्द्र मण्डी हाउस माना जाता है। यहाँ सभागार लेना स्वप्न–जैसा प्रतीत हाने लगा है। मंडी हाउस के सबसे छोटे सभागार का किराया 35000 से शुरू होता है। सबसे बड़े सभागार का किराया लगभग 90000 रूपये है। ऐसे में नाटक करना एक जोखिम भरा काम है। आजकल कोई भी नाटक 50000 से कम की कीमत पर नहीं बनता। सभी अभिनेता आजकल मानदेय लेते हैं तो नाटक की कीमत बहुत बढ़ जाती है। ऐसे में दिल्ली में एट्टिक थियेटर, अटलियर थियेटर, ऑड वर्ड थियेटर जैसी जगहों ने अब दिल्ली को मण्डी हाउस से बाहर विस्तृत करने का कार्य किया है। इससे रंगकर्मियों ने एक राहत की सांस ली है।

**निष्कर्ष :**

उपर्युक्त शोधपत्र से यह निष्कर्ष निकल कर सामने आता है कि कलाओं को हमेशा संरक्षण की जरूरत रही है। कलाएँ कभी भी स्वावलंबी नहीं रहीं लेकिन ऐसे नए रंगमंडप जिन्हें स्टूडियो थियेटर कहा गया है उनके आ जाने से कला स्वावलंबी हुई है। महंगे सभागारों से निकलकर कलाएँ आम आदमी तक पहुँच पा रही हैं और अपने प्रभाव से आमजन को प्रभावित कर रही हैं। स्टूडियो थियेटर के आने से शहर में सांस्कृतिक चेतना बढ़ी है और कलाकारों को अपनी कला का अभ्यास करने में आसानी हुई है। आने वाले समय में ऐसे रंगमंडपों की संख्या में इजाफा होगा, इनकी संख्या कम नहीं होगी। रंगमंच और अन्य कलाओं ने गिरते–पड़ते अपने आपको जिन्दा रखा है और इसी कड़ी में यह स्टूडियो एक नया प्रयोग है। वक्त के साथ आज हर चीज में बदलाव आया है। जहाँ वक्त के साथ कुछ चीजें आसान हुई हैं, रंगमंच करना कभी भी आसान नहीं हुआ । रंगमंच ने हमेशा चुनौतियों का सामना ही किया है। स्टूडियो थियेटर के आने से दर्शकों की संख्या तो बढ़ी है लेकिन बड़े सभागारों के मुकाबले इसे दूसरी दृष्टि से भी देखा जा सकता है। बड़े सभागार में जहाँ 300 से 500 दर्शक एक–साथ नाटक देख पाते हैं वहीं स्टूडियो में मात्र 100 दर्शकों से सन्तोष करना पड़ता है। चूंकि रंगकर्मी हाउसफुल के नाम से चकित और उत्साहित होता है तो स्टूडियो थियेटर में उसे रोजाना एक हाउसफुल मिल ही जाता है। ऐसे स्पेस आने से आस–पास के लोगों को भी एक जगह मिली है जहाँ वे कुछ समय गुजार सकते हैं एवं संघर्षरत कलाकारों को जिन्हें मंच नहीं मिलता था उन्हें अब मंच मिलने लगा है।

स्टूडियो थिएटर के आ जाने से कलाओं को बढ़ावा मिला है। नाटक के स्वरूप बदले हैं। नए–नए कला–प्रमियों को अल्प व्यय व अल्प स्थान में प्रदर्शन स्थल उपलब्ध हो जाते हैं जिससे उनका बौद्धिक स्तर,

सोचने–समझने की क्षमता का भी वर्णन होता है तथा कुछ आय का स्त्रोत भी बनता है।

वर्तमान में स्टूडियो थिएटर की ओर लोगों का रूझान बढ़ा है। चाहे वह कलाकार हो, दर्शक वर्ग हो या फिर सामान्य व्यक्ति हो क्योंकि स्टूडियो थिएटर एक सस्ता माध्यम है जो हर वर्ग के व्यक्तियों के लिए उचित आयाम है। प्रदर्शन के लिए स्पोंसर भी आसानी से मिल जाते हैं जो बजट होने से कलाकारों को आगे बढ़ाने के लिए प्रेरित करते हैं।

वर्तमान परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए संस्कृति मंत्रालय द्वारा भी प्रोत्साहन प्राप्त होना चाहिए, स्टूडियो थियेटर हो चाहे कलाकार जिससे मंच और कला दोनों को बढावा मिल सके।

**अंत टिप्पणी :**

1. Madhumati M.A, Perfoemance Space of Indian Classical Music IOSR Journal Of Humanities And Social Science (IOSR-JHSS) Volume 22, Issue 8, Ver.8 (Agust.2017)Page-1
2. शर्मा, एच.वी., रंग स्थापत्य
3. भरतमुनि, नाट्यशास्त्र
4. Madhuvathi M.A, Performance Space of Indian Classical Music IOSR Journal Of Humanities And Social Science (IOSR-JHSS) Volume 22, Issue 8, Ver. 8 (August. 2017)Page -1
5. शर्मा, एच.वी., रंग स्थापत्य
6. https://hi.wikipedia.org/wiki/%E0%A4%AD%E0%A4%BE%E0%A4%B0%E0%A4%A4%E0%A5%80%E0%A4%AF_%E0%A4%B0%E0%A4%82%E0%A4% 97%E0%A4%AE%E0% A4%82%E0%A4%9A

**संदर्भ सूची :**

1. https://www.naidunia.com/madhya-pradesh/indore-naidunia-live-3120180
2. https://mumbaimirror.indiatimes.com/others/sunday-read/the-backyard-theatre-boom/articleshow/59405658.cms
3. Reul Philipp, The Relationship between Performance : Space and Production of Shakespeare's Roman Plays College University of Cologne (English's Seminar) 2006.
4. Dinuolvic Radivoje, Space in the 20th Century Theatre : Theatre and Architecture ,Univesity of Novi Sad. Department of Architecture and Urban Planning 2016 .
5. Aronson Arnod, Time and Space on the stage Performance Research Volume 18, 2003. Issue 3 Published Online : 24 Sept 2013
6. Gjesdahl Kristen, Music and Performance Space Design Authors Issue Date 14 Dec 2013
7. J. Pitches and S. Popat, Performance space and spatial performativity - Research Paper https://www.academia.edu/35383850/Event_Space_Performance_Space_and_Spatial_Performativity 2011

यूजीसी–केयर सूचीबद्ध, पिअर रिव्यूड वार्षिक शोध पत्रिका

**स्तोम 2023**

# भोजपुरी लोक कथाओं में स्त्री : आज भी उपेक्षिता

**डॉ. गौरव रंजन**** **डॉ. सुजीत कुमार**** **प्रमोद कुमार पांडेय***

**शोध सार**

*लोक कथा चाहे जिस समाज की हो, वह समाज की वास्तविकताओं के बहुत करीब होता है, जन की भावनाओं को अभिव्यक्ति देने वाला होता है। भोजपुरी इस संदर्भ में अन्यतम है कि इसने अन्यान्य भाषाओं और बोलियों पर भी व्यापक प्रभाव डाला और यहाँ के लोक साहित्य में हम लोक की सहज भावनाओं का उद्‌गार पाते हैं। भोजपुरी लोककथाओं में हमें स्थानीय के साथ वृहत्तर भारतीय समाज के सांस्कृतिक परिवेश के दर्शन होते हैं। यहाँ की स्त्री की पीड़ा वही है जो अन्य भारतीय समाज में रही है। भोजपुरी लोक साहित्य में स्त्री की छवि पुरुष की सहगामिनी के रूप में तो है ही, परमुखापेक्षी होना भी उसकी एक प्रवृत्ति है जहाँ उसे स्वयं निर्णय का अधिकार नहीं है। प्रस्तुत शोध–आलेख भोजपुरी लोककथाओं के बहाने इस समाज और परिवेश में स्त्री की वास्तविक स्थिति पर चिंतन का प्रयास है जिसमें उसकी उपेक्षिता वाली छवि प्रमुखता से उभरकर सामने आती है।*

**बीज शब्द** : *लोककथा, लोक साहित्य, भोजपुरी लोककथा, स्त्री विमर्श, सामाजिक परिवेश, सांस्कृतिक परिवेश*

**शोध–प्रविधि** : *द्वितीयक स्रोतों के विभिन्न लोक साहित्यिक रचनाओं के अध्ययन के उपरान्त इस पत्र को तैयार कर प्रस्तुत किया गया है ।*

लोक साहित्य वह लोकरंजनी साहित्य है जो जनमानस को मौखिक रूप से भावमयी अभिव्यक्ति देता है। लोक का उद्‌भव संसार के विकास के साथ ही माना जाता है। इसी तरह लोक साहित्य का उद्‌भव भी समाज के निर्माण की प्रक्रिया के साथ ही शुरू हो जाता है। लोक साहित्य अपनी विभिन्न विधाओं के जरिए मानव समाज के क्रमिक विकास की कहानी हमारे सम्मुख इस प्रकार प्रस्तुत करता है कि यह क्रमिक विकास साहित्य के आवरण में ही आकार लेता प्रतीत होता है। दूसरे शब्दों में कहें तो मानव समाज के क्रमिक विकास की कहानिया स्वयं समाज के विकास का क्रमिक सोपान लगती हैं, दिखती हैं। इसी कारण ऐसी किसी कहानी के विभिन्न अवयवों के सांगोपांग अध्ययन से यह पता लगाया जा सकता है कि संबंधित कहानी का परिवेश, इसका वातावरण और इसकी पृष्ठभूमि क्या है? साथ ही, समाज के विकासक्रम में इसकी अपनी भूमिका क्या और कैसी रही है? यह भी कहा जा सकता है कि वर्तमान उन्नत एवं कलात्मक साहित्य का विशाल भवन लोक साहित्य की आधारभूमि पर ही तैयार हुआ है।

उन्नत और कलात्मक साहित्य तथा लोकसाहित्य का जो मूल अंतर है वह इस दृष्टि से साहित्य के मर्म को स्पर्श करने वाला बन जाता है। लोकसाहित्य निर्विवाद रूप में जनता जनार्दन को अपना ईश्वर मानता है जबकि आज का परिष्कृत साहित्य एवं संस्कृति व्यक्ति की महत्ता को और उसकी सर्वप्रमुखता को स्वीकार करता है। परिष्कृत साहित्य व्यक्ति और परिवेश को महत्वपूर्ण मानते हुए साहित्याकाश की रचना करता है। इस कारण परिष्कृत साहित्य का कथानक, संवाद, भाषागत विशिष्टताएँ और अन्यान्य प्रतीक जहाँ साहित्य और संस्कृति को आधुनिक मापदंडों पर तौलते हैं वहीं लोक साहित्य लोक केंद्रित होता है। यह व्यक्ति या व्यक्तित्त्व प्रधान नहीं होता, इसमें किसी का व्यक्तित्व नही झलकता अपितु उसमें सम्पूर्ण समाज की आत्मा मुखरित होती है।

लोक कथा लोक साहित्य का एक महत्वपूर्ण भाग है। विद्वानों ने लोकगीत और लोकगाथा के बाद लोककथा को लोकसाहित्य की तीसरी विधा माना है।[1] तथापि इसकी शुरुआत कब हुई, यह कहना बेहद कठिन है। कह सकते हैं कि जब मनुष्य ने भाषा के माध्यम से अपने विचारों को एक–दूसरे तक पहुंचाना प्रारंभ किया होगा तो कथा अथवा कहानी का जन्म हुआ होगा। अर्थात् यह सामाजिक विकास के अत्यंत शुरुआती चरण में भी अस्तित्व में रही होगी...।

*शोधार्थी, मीडिया व जनसंचार विभाग, दक्षिण बिहार केंद्रीय विवि, गया

**सहायक प्राध्यापक, मीडिया व जनसंचार विभाग, दक्षिण बिहार केंद्रीय विवि, गया

तब भी जब भाषा या बोलियाँ अपने विकास क्रम में थीं। संभवतः इसी कारण लोक–परंपरा की कहानियाँ किसने लिखीं या किसने कहीं यह आज तक जाना नहीं जा सका। विद्वान इन्हें परंपरा से निःसृत ही मानते हैं। यह जरूर है कि कालांतर में लोकनायकों पर केंद्रित लोक कथाओं का उद्‌भव स्पष्ट रूप से काल सापेक्ष नजर आता है। कहा जा सकता कि इनकी रचना कब और किन परिस्थितियों में हुई होगी। इनके जरिए तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था और परिस्थितियों का भी ज्ञान सहजता में हो जाता है।[2]

बिहार की लोकभाषाओं में भोजपुरी अपनी आबादी, क्षेत्र– विस्तार एवं परिमाण में अत्यंत व्यापक है। न केवल बिहार बल्कि उत्तर प्रदेश के पूर्वी हिस्सों के साथ झारखंड के अधिकतर जिलों में इसका पर्याप्त प्रसार और विस्तार है। बिहार में भोजपुरी का स्थान अन्य भाषाओं की अपेक्षा ज्यादा विस्तृत फलक वाला है। बिहार में यद्यपि मैथिली, मगही और अंगिका–बज्जिका का भी पर्याप्त विस्तार और प्रभाव है लेकिन इनमें से मैथिली को अपवाद मान लें तो यह कहना गलत नहीं होगा कि भोजपुरी ने बिहार की अन्य सभी बोलियों–भाषाओं को बहुत गहराई से प्रभावित किया है। दूसरे शब्दों में कहें तो भोजपुरी बिहार की लोक संस्कृ ति की प्रतिनिधि भाषा है।[3]

लोक साहित्य धर्म–प्रधान होता है। भोजपुरी लोक साहित्य तो धर्म–प्राण जनता की अभिव्यक्ति ही है।

लोक साहित्य की एक विशिष्टता अभिव्यक्तियों का समृद्ध संसार होता है। चाहे जिस सामाजिक वातावरण से संबद्ध लोक साहित्य हो, यह अभिव्यक्ति प्रधान होता है क्योंकि यह श्रुति और स्मृति–परंपरा का वाहक होता है। भोजपुरी लोक साहित्य के साथ भी यही स्थिति दिखती है। यह अभिव्यक्ति से भरपूर है। इसमें देसी जीवन और देशज परंपराओं के सभी पहलू पूर्ण विकसित अवस्था में दिखते हैं। भोजपुरी लोक जीवन की विविधताओं का इससे वृहत्तर मंच और कहीं नहीं दिखता। जीवन के हर रंग के दर्शन हम भोजपुरी लोक साहित्य में पूर्ण विकसित अवस्था में पाते हैं। यहाँ उल्लास, आंसू, वेदना और दुःख–दर्द हैं तो सपने, इच्छाएँ, शुभेच्छाएँ तथा जीवन के प्रति सकारात्मकता को भी स्वर मिलता दिख जाता है। लोक साहित्य की एक अन्य विशिष्टता यह भी है कि यह कृत्रिमता और अलंकारों की अपेक्षाओं से परे होती है और भोजपुरी लोक साहित्य इस दृष्टि से भी बहुत समृद्ध है।[4] कृत्रिमता–बनावटीपन या शब्दजाल या शब्दों का आडंबर यहाँ नहीं दिखता। यह बिल्कुल सहज और प्रवाहपूर्ण रूप में आगे बढ़ता जाता है। कह सकते हैं कि भोजपुरी लोक साहित्य की निर्मिति विशुद्ध प्राकृतिक परिवेश में सहजता से हुई है।[5]

लोक संस्कृति प्रकृति प्रेरित और प्रकृति केंद्रित होती है। साथ ही, इसकी सभी विधाओं में स्त्री केंद्रीय भूमिका में होती है। कारण साफ है–किसी भी संस्कृति का निर्माण स्त्री की सहभागिता से हुआ है । स्त्री संस्कृति का केंद्रीय पहलू है और ऐसी स्थिति में वह लोक साहित्य से अलग कैसे हो सकती है? भोजपुरी लोक साहित्य भी इससे अलग नहीं है। चाहे भोजपुरी लोक नाटकों की बात करें या लोक गीतों की बात हो, स्त्री यहां केंद्रीय भूमिका में है।

लोकगीतों का पूरा संसार ही स्त्री–विमर्श पर केंद्रित है, जहाँ स्त्री एक साथ सभी भूमिकाओं में दिखती है। वह विषय भी है, वक्ता भी है, श्रोता भी है और दर्शक भी। लोक कथाओं में स्थिति थोड़ी अलग है किंतु स्त्री यहाँ भी केंद्रीय भूमिका में दिखती है।

भोजपुरी लोक कथाओं का पूरा आकाश स्त्री के त्याग, तपस्या, साहस एवं बलिदान की प्रेरणा रूपी तारों और आकाशगंगाओं से भरी हुई है जहाँ स्त्री अपनी पीड़ा से निवृत्ति का रास्ता भी किसी स्त्री की प्रेरणा से ही खोजती है। भोजपुरी लोक कथानकों की स्त्री समाज के लिए आदर्श की निर्मात्री है और इस आदर्श के प्रति पूर्ण समर्पित दिखती है। वह आधुनिक संदर्भों में प्रगतिशील भले न हो किंतु समाज और संस्कृति के प्रवाहपूर्ण अस्तित्व के प्रति उसका समर्पण निर्विवाद दिखता है। भोजपुरी लोक कथाओं की नायिकाएँ इसी कारण परंपरा से बंधी हुई और अपनी सीमाओं के प्रति पूर्ण समर्पित दिखती हैं। वे समानता की बात नहीं करतीं, उन्हें समाज के सामने आदर्श जो प्रस्तुत करना है...!

भोजपुरी लोक कथाओं की स्त्री कहीं माता सीता के रूप में निर्वासन भोगती दिखती है तो कहीं सती अनूसूइया के रूप में भावी पीढ़ी को पारिवारिक तंत्र को मजबूत करने के गुर देती दिखती है। कहीं अहिल्या के रूप में पत्थर बनकर भी किसी राम के इंतजार की पीड़ा भोगती दिखती है। कहीं सावित्री के रूप में अपने दिवंगत पति को यमराज से छीन लेने जैसी क्षमता के बावजूद वह देवी कहलाना पसंद नहीं करती। वह इतने भर से संतुष्ट

हो जाती है कि समाज ने उसे पत्नी के रूप में आदर्श मान लिया।

ये स्त्री पात्र अन्य संस्कृतियों में भी आदर्श माने गए हैं। यह तथ्य इस बात को सिद्ध करता है कि भोजपुरी लोक कथाओं की दुनिया अलग नहीं है। भोजपुरी समाज ने अपना आदर्श उसी वृहत्तर भारतीय समाज से ग्रहण किया है जो परंपरा से सनातन और वैचारिकी में 'वसुधैव कुटुंबकम्' की भावना को अभिव्यक्ति देने वाला है। इसी लिए भोजपुरी लोक कथा की स्त्री न तो विशिष्ट है, न आधुनिक संदर्भों में प्रगतिशील और न ही प्रतिरोध की प्रतीक। वह सहनशीलता में धरती की प्रतिरूप है जो अपनी पीड़ा असह्य होने पर उसी धरती में समा जाना श्रेयस्कर मानती है बनिस्पत कि प्रतिरोध कर खुद को सही साबित करने के। यह प्रसंग स्त्री को वरेण्य भी बनाता है और यह भी इंगित करता है कि भारतीय परंपरा में लक्ष्मण रेखा पार करने पर स्त्री को क्या क्या और कितना सहना पड़ सकता है? सीता के उदाहरण में हम देखते हैं कि अग्नि परीक्षा देने के बावजूद वह धरती में समा जाने को बाध्य हुई है। भारतीय समाज और भोजपुरी समाज ने जानकी को जगत जननी का विशेषण दिया तथापि सीता को अपनी पीड़ा खुद भोगनी पड़ी। भोजपुरी लोक साहित्य में सीता की इस पीड़ा के प्रति संवेदना तो दिखती है लेकिन हम कोई ऐसी दूसरी सीता का उदाहरण नहीं पाते जिसने ऐसी ही परिस्थितियों में अग्नि–परीक्षा से इनकार किया हो। बात स्पष्ट है कि भोजपुरी लोक कथा की स्त्री विद्रोहिणी नहीं है।

कहीं सती बिहुला के रूप में वह पति के साथ सती हो जाने को बाध्य है तो कहीं ससुराल या मायके में निर्वासन की जिंदगी जीते हुए भी वह अपने सतीत्व के प्रति अत्यंत समर्पित भाव से जीवनयापन को मजबूर है। यह भी ध्यान रखने वाली बात है कि तमाम अंतर्विरोधों के बावजूद यह स्त्री अपने लिए सुविधाभोगी स्थितियों की अपेक्षा नहीं करती....। वह तो त्याग, तपस्या, साहस और कुलाभिमान का प्रतीक है। बेटी को परिवार की पगड़ी का प्रतीक मानने के पीछे समाज का यह अनुशासनबोध काम करता है कि स्त्री शुचिता का प्रतीक है। वह दूषित हुई तो फिर कुछ नहीं बचेगा। यही बात हम सीता के उदाहरण से समझते हैं और प्रकारांतर से अर्जुन को उपदेश देते श्रीकृष्ण ने गीता में इसी का संकेत किया है कि स्त्रियों के दूषित होने से संतति वर्णसंकर हो जाती है।

कदाचित स्त्री की शुचिता की इस सामाजिक अपेक्षा ने ही भारतीय लोक–जीवन को प्रतिबिंबित करने वाले रामायण और महाभारत के कथानक की रचना की। रामायण के पूरे कथानक का मूल हम शूर्पनखा के नाक काटने और सीता–हरण जैसे दृश्यों में देखते हैं। इन प्रसंगों ने रावण और राम दोनों को खिन्न किया होगा, उनमें क्रोधाग्नि भड़काई होगी। यह सही है कि महाभारत के कथानक का श्रीगणेश कई प्रसंगों में पहले होता दिखता है किंतु क्या यह सच नहीं कि महाभारत जैसी स्थिति के लिए द्रौपदी का चीर–हरण ही उत्तरदायी है? भोजपुरी लोक मानस आज भी स्त्री की शुचिता के प्रति संवेदनशील है तो इसके जड़ में रामायण और महाभारत के इन प्रसंगों को भी मानना चाहिए जिनसे भोजपुरी लोक साहित्य की विधा समृद्ध हुई है।

अहिल्या की कथा में निहित स्त्री का सतीत्व उसकी सबसे बड़ी पूंजी है। अग्निपरीक्षा और धरती में समाने की सीता की विवशता का एक सूत्र हम अहिल्या की कथा में भी पाते हैं। हम स्पष्ट देखते हैं कि एक सती एवं पति पारायण स्त्री की विवशता को पुरुष समाज ने स्वीकार नहीं किया। निर्दोष होने पर भी बराबरी का सम्मान नहीं दिया। इसके परिणामस्वरूप अहिल्या एक (इंद्र) के लोभ तथा दूसरे (गौतम ऋषि) के क्रोध का शिकार बनी। वह शापग्रस्त होकर पत्थर के रूप में वर्षों तक अपने उद्धारक की प्रतीक्षा में रही किंतु शापमुक्ति के पश्चात् हम उसमें पतिपारायणा का जो स्वरूप देखते हैं वह बताता है कि अहिल्या स्त्री जीवन की आदर्शतम स्थिति है।

द्रौपदी की कथा थोड़ी अलग होकर भी बड़े संदर्भों में स्त्री के उसी स्वरूप का दिग्दर्शन कराती है। पाँच पतियों की पत्नी का विशेषण द्रौपदी जैसी स्वाभिमानी स्त्री को स्वीकार करना पड़ा और द्रौपदी का इसके प्रति विद्रोह कहीं नहीं दिखता। जो स्त्री चीर–हरण के प्रतिरोध में अपने खुले केशों के बूते महाबली भीम की भीष्म–प्रतिज्ञा का कारण बन जाती है वह पाँच पतियों की पत्नी होने जैसी स्थिति को सहज स्वीकार करने की विवशता के साथ खुद को जुए में दांव पर लगाने जैसी स्थिति को भी झेलती दिखती है। द्रौपदी का विद्रोह हम तब नहीं देखते जब उसे दांव पर लगाया जाता है वरन् तब देखते हैं जब उसे अपमानित करते हुए हस्तिनापुर की राजसभा में लाया जाता है।

शैव्या कथा में यह स्पष्ट होता है कि स्त्री ने पुरुष को अपना सर्वस्व माना है। उसकी खुशी के लिए अत्यंत दुःख सहन किए। अपमान एवं यातना को भी सहर्ष गले लगाया। सावित्री की कथा से ज्ञात होता है कि स्त्री साहस, शक्ति एवं बुद्धिसम्पन्न है। यदि वह अपनी क्षमता को पहचान कर उसका सही उपयोग करे तो मानव क्या ईश्वरीय शक्तियों पर भी विजय प्राप्त कर सकती है, पर सहनशीलता उसकी मूल पूंजी है।

संभवतः इसी कारण भोजपुरी लोककथाओं की नायिकाएँ आज तक विद्रोह से परे स्वयं को आदर्शतम स्थिति में रखती आई हैं। भोजपुरी लोक कथाओं में स्त्री–पात्रों का अनुशीलन करने पर हम यह स्पष्ट देखते हैं कि भोजपुरी लोक कथाओं की स्त्री शक्ति, संकल्प, साहस एवं बुद्धि में पुरुष से कहीं कम नही है। वरन् ममता, दया, करुणा, शील एवं धर्म के क्षेत्र में पुरुष उनकी बराबरी भी नहीं कर सकता। स्त्री हर परीक्षा में खरी उतरी है। उसने स्वयं को मर्यादा का प्रतीक बनाए रखा, इसके बावजूद वह अपमान सहने को विवश है। लोक संस्कृति अंततः समाज का प्रतिबिंब होती है। संभवतः इसी कारण हम आज भी स्त्री को उपेक्षिता के रूप में ही देखते हैं।

**निष्कर्ष** : सामाजिक विद्रूपताओं से संघर्ष के साथ अपनी पीड़ा स्वयं भोगने की विवशता स्त्री के लिए आज भी ऐसी कड़वी सच्चाई है जो किसी भी कथानक से इतर वास्तविक जीवन में घटित होती दिखती है।

**संदर्भ सूची** :

1. सिन्हा, डा. सत्यव्रत (2015), भोजपुरी लोकगाथा, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद (उप्र), भूमिका
2. सिन्हा, डा. सत्यव्रत (2015), भोजपुरी लोकगाथा, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, उप्र
3. रत्नेश्वर, प्रसाद (2001), भोजपुरी और उसका सांस्कृतिक प्रभाव, अनुपमा प्रकाशन, मुजफ्फरपुर, बिहार
4. प्रसाद, डा. राधामोहन (1998), भोजपुरिया माटी की महक, प्रेरणा पब्लिकेशन, बेतिया, बिहार
5. तिवारी, उदय नारायण (1963), भोजपुरी भाषा और साहित्य, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, बिहार

यूजीसी–केयर सूचीबद्ध, पिअर रिव्यूड वार्षिक शोध पत्रिका

**स्तोम 2023**

# संगीत का समाजशास्त्रीय अध्ययन : प्रयोग एवं चिकित्सा के सन्दर्भ में

**प्रो. अरविन्द कुमार जोशी****

**डॉ. पूनम वर्मा***

**सारांश**

*संगीत वस्तुतः ध्वनि है जिसे हम सामान्य ध्वनि की परिमार्जित अवस्था भी कह सकते हैं, सामान्य ध्वनि का प्रभाव बहुत थोड़ा है, इसके विपरीत सांगीतिक ध्वनियों में असीम, अनन्त और अथाह रस और आनंद भरा हुआ है। संगीताचार्यों ने नाद को सप्त स्वरों में विभक्त किया है और इन 7 स्वरों में हीं नवरस भर दिए है। संगीत हर विषय के साथ समायोजन की गहरी क्षमता रखता है और समाज वह क्षेत्र है जहाँ किसी भी कला को प्रकाशित तथा पल्लवित होने का अवसर मिलता है। समाजशास्त्र एक सामाजिक विज्ञान है जो समाज, मानव, सामाजिक व्यवहार, सामाजिक संबंधों के विभिन्न स्वरूपों, सामाजिक संपर्क और रोजमर्रा की जिंदगी से जुड़े संस्कृति के पहलुओं पर केंद्रित है। संगीत के समाजशास्त्रीय अध्ययन में मुख्य रूप से सामाजिक, सांस्कृतिक और मनोवैज्ञानिक पहलू शामिल होते हैं। प्रायः हम देखते हैं कि किसी भी आयोजन के समय विशिष्ट माध्यम (नेटवर्क्स), संस्थानों के संचालन, प्रशिक्षण और संगीतकारों के चयन–सम्बन्धी कार्य इससे जुड़े होते है। समाजशास्त्रियों ने यह महसूस किया कि कला की खोज, संगीतकारों और आयोजकों के बीच सामाजिक अन्तःक्रियाओं का अध्ययन अनौपचारिक समूह व्यवहार के समाजशास्त्रीय सिद्धान्तों को समझने में मदद कर सकता है।*

**मुख्य शब्द** : *संगीत, राग, समाजशास्त्र, अध्ययन, चिकित्सा, सोशियोम्यूजिकोलॉजी*

**शोध–प्रविधि** : *इस शोध–पत्र के लिए द्वितीयक स्रोतों का उपयोग किया गया है ।*

भारतीय संगीत विश्व का श्रेष्ठतम संगीत है। यह संगीत सर्वाधिक प्राचीन तथा अनोखा माना जाता है। संगीत की परिभाषा 'सम्यक् गीतम्' से देते हैं अर्थात् ध्यानपूर्वक या अवधान से गाया गया गीत जिसमें गीत की प्रधानता है, इसलिए हम इसे संगीत की संज्ञा प्रदान करते हैं।

'संगीत रत्नाकर' में पं0 शारंगदेव ने संगीत की परिभाषा में "गीतं, वाद्यं तथा नृत्तं त्रयं संगीत मुच्यते" कहा है अर्थात् गायन, वादन, तथा नृत्य तीनों के समुच्चाय को संगीत कहा गया है, वादन गायन के अनुगामी है तथा गायन में प्रस्फुटित होने वाली भावनाओं को नृत्य प्रत्यक्ष करता है किन्तु आज की दृष्टि में यदि हम देखें तो संगीत शब्द से तात्पर्य गायन और वादन से ही समझा जाता है अर्थात् जब भी आज हम संगीत शब्द सुनते हैं तो हम गायन और वादन ही समझते हैं तथा नृत्य को अलग स्थान प्रदान किया गया है।

संगीत और समाज एक–दूसरे से अभिन्न रूप से जुड़े हुए हैं। दोनों ही विषय न केवल समान राशि के हैं, अपितु इनमें अन्तर्सम्बद्धता भी व्याप्त है। संगीत और समाज का बड़ा ही सीधा संबंध है, क्योंकि कोई भी कला विशेषकर संगीत कला श्रोताओं व दर्शकों के बिना अधूरा हैं। वास्तव में संगीत जिसे हम सर्वव्यापी की संज्ञा दें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

संगीत शास्त्र के क्षेत्र में अनुसंधान के समाज शास्त्रीय दृष्टिकोण के बजाय ऐतिहासिक, विश्लेषणात्मक तथा आलोचनात्मक दृष्टिकोण पर जोर देने की प्रवृत्ति है, इसलिए समाजशास्त्र अभी भी संगीत शास्त्र की मुख्यधारा से कुछ हद तक अछूता रह गया है। फिर भी, हाल के दशकों में नृवंशविज्ञान (एथनोम्यूजिकोलॉजी) की बढ़ती लोकप्रियता के साथ "न्यू म्यूजिकोलॉजी" (अंतःविषय सांस्कृतिक अध्ययन के उद्भव के साथ मेल खाता है), के रूप में समाजशास्त्र पूरी तरह से स्थापित क्षेत्र के रूप में तीव्र गति से प्रत्यक्ष हो रहा है।[1] संगीत से जुड़े मूल्य और अर्थ सामूहिक रूप से संगीत श्रोताओं और कलाकारों दोनों के द्वारा निर्मित होते हैं। किसी सांगीतिक टुकड़े को सुनते

*पोस्ट डॉक्टोरल फेलो, आइ.सी.एस.एस.आर., काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

**समाजशास्त्र विभाग, पूर्व संकायाध्यक्ष, सामाजिक विज्ञान संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

समय, वे अपने स्वयं के मूल्यों पर प्रतिबिंबित करते हैं और संगीत का उपयोग अपने स्वयं के अनुभवों के बीच संबंध बनाने के लिए करते हैं और उस टुकड़े को संचार के रूप में माना जाता है। संगीत का समाजशास्त्र विशेष रूप से इन माध्यमों, व्यक्ति और स्वयं संगीत से जुड़े संगीत के अनुभवों को देखता है। इसके अलावा, संगीत बनाने या रचने का कार्य एक सामाजिक उत्पादन के साथ–साथ सामाजिक गतिविधि भी है। भले ही संगीत कलाकार एकल कलाकार हो, संगीत के निर्माण ने सामाजिक प्रयास का एक स्तर लिया है। संगीत बनाने के लिए बनाए गए उपकरणों से, संगीत को सुनने का एक तरीका बनाने के अंतिम उत्पादन तक, जिसे उत्पाद के रूप में भी जाना जाता है। इसके अलावा, संगीत का वितरण (शिक्षा) भी एक सामाजिक कार्य है।

कुछ शिक्षक अपने छात्रों के साथ उन स्तरों पर जुड़ने के लिए संगीत का उपयोग कर शिक्षण सामग्री के गैर पारंपरिक तरीकों का प्रयोग शिक्षा के प्रचार–प्रसार में कर रहे हैं, साथ ही साथ, समाजशास्त्रीय अवधारणा को भी मजबूती प्रदान करने का एक साकारात्मक प्रयास कर रहे हैं।

'सोशियोम्यूजिकोलॉजी' शब्द का प्रादुर्भाव (लैटिन भाषा से : सोशियस या साथी, पुरानी फ्रांसीसी से संगीत और प्रत्यय–विज्ञान, ''अध्ययन'', पुराने ग्रीक से, लोगस ''प्रवचन''),[2] जिसे संगीत समाजशास्त्र या संगीत का समाजशास्त्र भी कहा जाता है, समाजशास्त्र के एक अकादमिक उपक्षेत्र दोनों को संदर्भित करता है, जो संगीत से संबंधित है। साथ ही, संगीत विज्ञान का एक उपक्षेत्र जो संगीत व्यवहार के सामाजिक पहलुओं और समाज में संगीत की भूमिका पर केंद्रित है।

''सोशियोम्यूजिकोलॉजी'' की प्रविष्टि में, "डेविड हेबर्ट" का तर्क है कि इस शब्द का वर्तमान में उपयोग निम्न परिभाषा को दर्शाता हैः "संगीत का समाजशास्त्र, संगीत पर किसी भी प्रकार का सामाजिक वैज्ञानिक अनुसंधान[3] (जैसे आर्थिक, राजनीतिक, आदि)।" यही कारण है कि ग्रेट ब्रिटेन मे जहाँ "कला के समाजशास्त्र"को अकादमी में अधिक स्वीकृति मिली है।

प्रमुख पाँच ललित कलाओं मूर्तिकला, चित्रकला, वास्तुकला, संगीत और काव्य कला में संगीत एक ऐसी कला है जिसमें कलाकार और दर्शक सीधे बातचीत या संचार में शामिल होते हैं। समाजशास्त्र के क्षेत्र में व्यापक वृद्धि के कारण संगीत के समाजशास्त्रीय अध्ययन में वृद्धि हुई है। समाजशास्त्रियों ने यह महसूस किया कि कला की खोज, संगीतकारों और आयोजकों के बीच सामाजिक अन्तःक्रियाओं का अध्ययन अनौपचारिक समूह–व्यवहार के समाजशास्त्रीय सिद्धान्तों को समझने में मदद कर सकता है। आलोचकों, समीक्षकों, दर्शकों और समाचार–पत्र, रेडियो, टेलिविजन और सामाजिक प्रतिक्रियाओं के नेटवर्क सम्बन्धों के अध्ययन आदि की आवश्यकता है।

संगीत सामाजिक आंदोलनों का एक प्रमुख घटक है। संगीत और सामाजिक आंदोलनों पर अनुसंधान, प्रौद्योगिकी और लोकप्रिय संस्कृति को संबोधित कर बढ़ाया जा सकता है।

"संगीत और संगीत–सौन्दर्यशास्त्र का समाजवाद" ''नामक पुस्तक में "आर0 सी0 मेहता" ने अपने विचार व्यक्त किए हैं, एक समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से कोई भी ध्वनि जो किसी व्यक्ति या समूह का ध्यान आर्कषित करती है और जो उन्हें इस तरह से कार्य करने के लिए प्रेरित करती है, जिस प्रकार से रचनाकार ने उस ध्वनि को बनाया है जैसे– रेलवे क्रासिंग की घंटी, दरवाजे की घंटी, कार की घंटी, टेलिफोन की घंटी जो हमें लाइन पर कॉल का जवाब देने के लिए बुलाती है। प्रत्येक घटना में ध्वनि का एक अर्थ होता है जो किसी–न–किसी रूप में संदेश का संचार करती है। प्राचीन काल में युद्ध के मैदान में सैन्य गतिविधियों को विनियमित करने के लिए भी विशेष प्रकार की ध्वनियों का प्रयोग किया जाता रहा है।

इसी विषय से सम्बन्धित एक बहुत ही महत्वपूर्ण घटना भी है, जिसमें "एक विशाल हाथी जो वृद्धावस्था में एक गहरे दल–दल में फंस जाता है, बहुत कोशिश किए जाने पर भी वह बाहर नहीं निकल पाता परन्तु उसी समय सेना में बजाये जाने वाली रणभेरी वा गायकों का दल वहाँ आता है और वीर रस से पूर्ण गीत को सुनकर वह हाथी स्वयं ही जागृति को प्राप्त कर उस दल–दल से बाहर आ जाता है"। यह संगीत का चिकित्सकीय गुण है।

संगीत के प्राचीन ऋषि–मनीषियों में नारद, भरत, तंबुरु, शिव, गणेश, सरस्वती, श्रीकृष्ण आदि संगीताचार्यो ने षड्ज, ऋषभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद इन

सातों स्वरों को इस विधि से राग–रागिनियों में बांधा है कि मनुष्य जिस समय जिस रस को चाहे प्रत्यक्ष कर सकता है, इतना ही नहीं, जिस ऋतु व जलवायु को प्रत्यक्ष करना चाहे, कर सकता है। सभी चिकित्सा पद्धतियों में से संगीत चिकित्सा में ही यह विशेषता है। एलोपैथी या आयुर्वेद के डॉक्टर रोग पुराना हो जाने पर रोगी को पर्वत पर वा किसी खुश्क स्थान पर चले जाने की सलाह देते हैं। जब कि संगीत चिकित्सक पहाड़ी और झिंझोटी राग को प्रत्यक्ष करता हुआ रोगी को अपने घर पर ही पर्वत का दृश्य वा जलवायु प्रत्यक्ष करा देता है। आँखें बंद कर पहाड़ी रागिनी को सुनने वाला रोगी यह अनुभव करता है कि वह किसी पहाड़ी पर है, बादल गरज रहे हैं, बिजली कौंध रही है, बूँदे बरस रही हैं और नदी का कल–कल प्रत्यक्ष रहा है अर्थात् वह उन सारे ही दृश्यों का अनुभव करने लगता है जो प्रकृति में घटित होती है।

संगीत हृदय की गहरी से गहरी वेदना को ढूंढ़ लेता है। जिस दुःख या व्याधि को वैद्यों और चिकित्सकों की औषधियाँ दूर करना तो दूर, समझ भी नहीं संकती कि रोग क्या है? दुःख और चिंता क्या है? सितार का तार अंतःकरण के और अन्तःस्थल के तारों के साथ बातें करता है तथा हृदय के तार उस ध्वनि से तादात्म्य स्थापित कर लेते हैं। यदि रोगी को खुश्क जलवायु की आवश्यकता है तो चिकित्सक रोगी को राग मुल्तानी और यदि कर्नाटक प्रदेश का मौसम दिखाना हो तो कान्हडा, सौराष्ट्र भेजना हो तो सोरठ गाता या बजाता है, ऐसा चमत्कार केवल संगीत से ही संभव है।

उक्त घटनाओं को हम एक उदाहरण के माध्यम से समझ सकते हैं । यदि आप श्रावण के महीना में कोई फल खाते हैं, जैसे– संतरा; जब उसको मुँह में डालते हैं तो उसके सुगंध से आपका हृदय ऐसा अनुभव करता है जैसे सर्दी का मौसम आ गया हो, ऐसा इसलिए होता है कि संतरे के अंदर उस देश की जलवायु जहाँ उसकी उत्पति हुई है और ऋतु का वातावरण भरा हुआ है जिसे ज़बान पर रखते ही हम अनुभव करते हैं। ठीक यही अवस्था राग–रागिनियों की भी है।

वस्तुतः राग–रागिनियों का स्वरूप और उसके गाने का समय आचार्यों ने गहरी वैज्ञानिक खोज, और अनुभव से सिद्ध किया है।

प्रत्येक स्वर अलग–अलग रंग स्वभाव व प्रभाव रखता है और यही करण है कि भिन्न–भिन्न रागों में भिन्न–भिन्न रस हैं जिनका वर्णन आवश्यक है क्योंकि संगीत–चिकित्सा का यही आधार है। नारद मुनि लिखते हैं–

> षड्जस्यादभुतौ वीरौ रिषभस्य च रौद्रकः
> गान्धारस्य च शान्तं च हास्याख्यं मध्यमस्य च
> पंचमस्य श्रृंगारो वीभत्सो धैवतस्य च
> करूणा च निषादस्य सप्तस्याने रसा नव।।[4]

अर्थात् षड्ज में अद्भुत और वीर रस, ऋषभ से रौद्र रस, गांधार से शांत रस, मध्यम से हास्य रस, पंचम में श्रृंगार रस, धैवत में वीभत्स रस और निषाद में करुण रस विद्यमान है। यही कारण है कि रोगी की प्रकृति के अनुसार दिया हुआ संगीत तुरन्त ही अपना प्रभाव दिखाता है।

हम अपने दैनिक जीवन में भी इसके कुछ प्रमाण देखते हैं– एक छोटा बालक या बच्चा जिसने संगीत का कोई स्वाद नही चखा अभी तक, खाट पर रो रहा है, लेकिन जैसे ही वह कोई गीत लोरी के रूप में सुनता है वह प्रसन्न हो जाता है। वन के पशुओं को शिकारी संगीत सुना कर पाश में बांध लेते हैं, यही नहीं स्वयं त्रिलोकीनाथ श्रीकृष्ण बाँस की वंशी के वश थे, तथा सर्वज्ञ महादेव नादाधीन थे।

किसी विदेशी लेखक ने लिखा है कि "अफ्रीका के जंगलों में एक प्रकार का बाँस होता है जिसमें छेद होता है, कभी–कभी जब हवा का रुख होता था तो उन बाँसों में से बहुत मधुर स्वर निकलते थे और पक्षी उन पर बैठकर उन स्वरों में ऐसे मस्त हो जाते थे कि दिन–भर चरना–चुगना भूल जाते थे"।

भागवत में लिखा है कि सांझ होने पर जब वृंदावन में "श्रीकृष्ण को अपने गऊओं को इकट्ठा करने में बड़ी मुश्किल होती थी उसी समय गोपाल पेड़ पर चढ़ कर वंशी बजाते और तुरन्त ही सभी गऊएँ दौड़ती हुई आ जातीं।'' अमेरिका में "गायों के तबेले में दूध निकालते समय वायलिन बजायी जाती है जिससे दूध बढ़ जाता है।" अतः यह सैद्धान्तिक तथा प्रयोगिक रूप से मानी हुई बात है कि संगीत प्रत्येक प्राणी पर अपना प्रभाव डालता हैं।

संगीत के सप्त स्वरों पर प्रकृति, स्वभाव, रंग और देवता सभी में भिन्नता होने के कारण ही उनके प्रभाव में भी भिन्नता है।

इसका वर्णन हमें नारद मुनि द्वारा रचित "संगीत मकरंद" में प्राप्त होता है–

षड्जः कमल वर्णः स्याहर्षभः पिज्जरस्तथा
गान्धारः स्वर्ण वर्णः स्यान्मध्यमःकुन्द वर्णकः
पंचमः पिज्जवर्णः स्याद्धैवतः पोत वर्णकः
नैषधः कर्वुको वर्णः सप्त वर्णा निरूपितः।[5]

षड्ज का रंग गुलाबी कमल–सा होने के कारण उसका स्वभाव ठंडा और प्रकृति चित्त को प्रसन्न करने वाली है, अतः यह पितप्रधान रोगों को दूर करती है।

रिषभ का रंग हरा और पीला मिला हुआ है, इसका स्वभाव ठंडा व खुश्क है, जो प्रसन्न करने वाली है। ऋषभ पित व कफ–प्रधान रोगों को दूर करता है।

गांधार का रंग स्वर्ण व नारंगी के समान है। इसकी प्रकृति करूण है, स्वभाव ठंडा तथा पित रोगों को दूर करने में उपयोगी है।

मध्यम का रंग पीला और गुलाबी मिला हुआ है। प्रकृति चंचल, स्वभाव गर्म, खुश्क है। यह वात, कफ प्रधान रोगों को दूर करता है।

पंचम का रंग लाल, प्रकृति जोश वाली, स्वभाव खुश्क तथा कफ–प्रधान रोगों को दूर करने में उपयोगी है।

धैवत का रंग पीला, प्रकृति योगवाही अर्थात् चित्त को प्रसन्न करने वाली और उदासीन दोनों ही है, रोगों के अनुसार परिवर्तनशील है। इसी प्रकार, इसका स्वभाव गर्म और ठंडा दोनों ही प्रकार का है।

निषाद का रंग लाल तथा पंचम की लाली से भिन्न, प्रकृति जोशीली और चित्त को प्रसन्न करने वाली है, स्वभाव खुश्क तथा ठंडा है।

जब हम संगीत–चिकित्सा की बात करते हैं या संगीत के द्वारा किसी शारीरिक मानसिक रोगों को दूर करने की बात करते हैं तो सबसे बड़ी बात जानने योग्य है कि बीमारी क्या है? या रोग क्या चीज है?

आयुर्वेदाचार्य लिखते हैं कि "शरीरं रोग मंदिरम्" अर्थात् यह शरीर रोगों का घर है, मनुष्य के अंदर ही वात, पित्त, और कफ विद्यमान है और इन्हीं से शरीर बना है, ये तीनों खान–पान व्यवहार के कारण घटते–बढ़ते रहते हैं, जीवन शक्ति या वाइटल फोर्स इसके साथ सदैव संग्राम करती रहती है, जिसे रोगप्रतिरोधक क्षमता भी कहते हैं। जब तक संग्राम शक्ति कायम है कोई रोग आने नहीं पाता और जब यह जीवन शक्ति कम हो जाती है तब कोई–न–कोई व्याधि जन्म लेती है।

जो भी चिकित्सा–पद्धतियाँ हैं उसमें वात, पित्त, कफ आदि दोषों को दूर करने के पश्चात् जीवन शक्ति को पैदा करने का प्रयत्न किया जाता है, परंतु संगीत–चिकित्सा इससे सर्वथा भिन्न है, रोगों के अनुसार सुनाया गया संगीत मनुष्य की आत्मा को प्रसन्न कर देता है, जिससे सहस्रार चक्र (अमृत कुंड) से जीवन–रस का श्रोत फूट पड़ता है, उस रस का पान कर मन हृदय के पास आता है, और हृदय उसे रक्त द्वारा पूरे शरीर में वितरित करता है जिससे व्याधि परास्त होकर अपने–आप साम्यावस्था में आने के कारण व्याधि शांत हो जाती है।

संगीत चिकित्सक डॉक्टर जे पाल ने लिखा है कि मैंने सैंकड़ों रोगियों पर मौसमी बुखार, टाइफाइड, मलेरिया राजयक्ष्मा के रोगों का परीक्षण किया जिसमें काफी सकारात्मक परिणाम प्राप्त हुए । इसमें कोई संदेह नहीं कि औषधियाँ भी रोगों को ठीक करती हैं परंतु उसमें कुछ त्रुटियाँ ऐसी हैं जो कभी बहुत घातक सिद्ध होती हैं जिससे अन्य रोगों के पैदा होने की संभावना बनी रहती है।

डॉ जे पाल अपनी पुस्तक "संगीत चिकित्सा" में लिखते हैं कि मैंने पागलपन के ऐसे कई रोगियों को ठीक किया है जो बहुत पुराने रोगी थे जिनका हृदय सर्वथा संस्कार शून्य था। पाँच–सात दिन संगीत सुनाने के बाद ही उनका मस्तिष्क ठीक हो गया और स्नायु–चक्र अपना काम करने लगा। संगीत पागल या विक्षिप्त रोगियों को इस प्रकार ठीक करता है कि वे स्वयं केवल इतना ही अनुभव करते हैं कि वे गहरी निंद से जाग उठे हैं। डॉ. पाल के पास एक पागल रोगी लाया गया जो बिल्कुल ही होश में नहीं था । अपने वस्त्र आदि भी फाड़ देता, उस रोगी के सामने दो घंटा तक सितार व सारंगी बजाया गया जिससे उसे अनुभव हुआ कि उसने वस्त्र नहीं पहना है और अपने शरीर को ढकने की कोशिश करने लगा।

संगीत चिकित्सा में सबसे पहले रोगी की निद्रा पर ध्यान दिया जाता है कि उसकी निद्रा की अवधि कितनी है, और किस गुणवत्ता की है क्योंकि प्रत्येक रोग का दुष्प्रभाव निद्रा पर पड़ता है। इसके लिए सबसे पहले किसी

वाद्य द्वारा उस स्वर–लहरी को छेड़ना चाहिए जिससे रोगी को सुनते–सुनते नींद आ जाय। निद्रा सभी प्रकर की चिकित्सा–पद्धतियों का प्रधान अंग है। नींद अपने आप में एक औषधी है, यह सारे स्नायु–चक्र को ठीक कर देता है। अनेक औषधियों की अपेक्षा एक छोटे–सी गहरी नींद अधिक लाभदायक है। दिन–भर काम करते–करते मनुष्य की इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती हैं और शरीर की शक्ति भी कम हो जाती है।

यही कारण है कि संगीत–चिकित्सा अपना प्रभाव दस मिनट के अंदर ही आरम्भ कर देती है और रोगी सो जाता है, इसके अंलावा रोगी को वह स्वर दिए जाते हैं जो उसके हृदय–रस को बदलते हैं अर्थात् यदि चिंता वा शोक से उसका हृदय दबा हो तो ऐसे उत्तेजक और पौष्टिक स्वरों का प्रयोग किया जाता है जिससे उसका हृदय खिल उठे । इसी प्रकार, यदि क्रोध से जला हो तो शांत और अमृतमयी स्वरों से उसको शीतल करना होता है, जिससे रोगी की भावना में परिवर्तन हो। 5 मिनट में यह राग समाप्त होना चाहिए और अंत में उन स्वरों का सम्मिश्रण करना चाहिए जिससे रोग दूर हो सके।[6] रंग, स्वभाव व प्रभाव के अनुकूल ऐसे स्वरों का मिश्रण करें और उन्हें ऐसी मधुर तर्ज में बाँधें कि रोगी का हृदय उस ओर खिंच कर जाय और वह उसमें लीन हो जाए।

**निष्कर्ष** : संगीत का चिकित्सकीय गुण लगभग सभी रोगों को ठीक करने में बहुत ही मददगार है, जिससे न केवल संगीत के विद्यार्थियों बल्कि संपूर्ण समाज और समूचे विश्व को इसका लाभ प्राप्त हो सकता है।

**अन्त टिप्पणी** :

1. कैथरीन एलिसए,एन इन्ट्रोडक्शन टू. म्यूजिक स्टडीज, चैप्टर, "द सोशियोलॉजी ऑफ म्यूजिक", पृ. 55–56
2. वही
3. हेर्बट डीजी, समाजशास्त्र, "सेज इण्टर नेशनल इनसाइक्लोपिडिया ऑफ म्यूजिक एंड कल्चर"
4. मुनि नारद, संगीत मकरन्द, संगीतोध्याय, प्रथम पाद, श्लोक 32
5. तत्रैव
6. पाल, डॉ. जे., संगीत चिकित्सा, श्रीमती सुशीला देवी, विद्या प्रकाश प्रेस अनारकली, लाहौर।

**सन्दर्भ ग्रन्थ** :

1 R. Serge Denisoff, Rand mcnally, The sounds of social change, Sociology Series,1972.

2 Joshi, O.P., Sociology of oriental music, Illustrated book publishers, Jaipur.1992.

3 Davies John Booth , The psychology of music , hustehinson of London, 1978

4 Jahan, Dr. Ishrat, Sociology of culture And music, Kanishka publishers, Distributers New Delhi, 2011.

5 Mehta, R.C Mehta, Essays in musicology, R.C Mehta, Indian musicological Society, Baroda

6 Mc clary, Richard Leppert And Susan, Music And Socity, (the politics of composition, performance And reception Cambridge University Press, 1987.

7 Horden, Peregrine, Music As Medicine (The history of music therapy since Antiquity) Ashgate publishing 2000.

8 Wikipedia, Page creator Musicology-enwiki, Last date of editing 13.28. 28April 2022.

9 पाल, डॉ0 जे0, संगीत चिकित्सा, श्रीमती सुशीला देवी, विद्या प्रकाश प्रेस, अनारकली, लाहौर।

10 नारद, संगीत मकरन्द, संगीताध्याय, प्रथम पाद, श्लोक 32, 32

11 शास्त्री श्री बाबू लाल शुक्ल, श्री भरतमुनी प्रणीत सचित्रम नाट्यशास्त्रम, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, प्रथम संस्करण विक्रम संवत्, 2042, ई0 1985।

12 चौधरी, सुभद्रा शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर, सरस्वती व्याख्या और अनुवाद सहित, द्वितीय खण्ड, राधा पब्लिकेशन्स, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण–2002।

('Dr. POONAM VERMA is the Awardee of ICSSR Post-Doctoral Fellowship. This paper is largely an outcome of the Post- Doctoral Fellowship Sponsored by the Indian Council of Social Science Research (ICSSR). However, the responsibility for the facts stated, opinions expressed, and the conclusions drawn is entirely of the author.')

# Music as one of the modes of earnings in Private Institutes : Gangtok, East Sikkim

**Dr. Krishnendu Dutta**** **Raju Rawat***

**Abstract**

*Sikkim is one of India's smallest states in terms of land area. The combination of natural resources enhances the beauty of the state. Similarly, Sikkim's music culture has seen significant changes in terms of many genres. People experience the taste and aesthetic values of music through many genres, including traditional folk and acquired music. This research aims to make musicians aware of the basic requirements and methodologies required for the establishment of a music institute. Marketing strategy and business knowledge are the factors that lead to the ability to earn as much as one wishes from the music profession.The investigation was conducted in the presence of subject/genre diversity amongst institutes. The data was gathered by distributing questionnaires to various institution heads as well as students. The study technique was based on secondary sources based on past research work, modeling, and case studies, and a closed-ended questionnaire and interviews were also implemented. This research might inspire music students and professionals who want to open music institutes for profitability.*

**Keywords:** *Music, Earnings, Genres, Institute, Profession*

**Research Methodology:** *This study used mixed methods, which used both qualitative and quantitative techniques to analyze and interpret the data and explanation to address the study's research objectives. Furthermore, the greatest method has been quantified, in the area of work and assessment. A complete examination of secondary materials including articles, journals, case studies, prior research dissertations, books, and periodicals was developed to comprehend and identify the gaps in this research. To collect primary data, both online and offline interviews of institutional heads and students were undertaken, as well as overt observation, participant observation for genre identification, close-ended questionnaires, as well as group discussions with students. In this investigation, the snowball sampling technique was employed.*

To an alyze the collected data more precisely, the study used pie charts and bar graphs to make readers easier to understand.

## Study Area

India is the most populous country, with 29 states and eight union territories. In the Indian state of Sikkim, there is a city named Gangtok. The research was carried out at Deorali and Daragoan (Tadong), which are located on NH31A, directly on the route to Gangtok's major metropolis. Gangtok is located in Sikkim's East District.

## Discussion

Sikkim is a state rich in culture, religion, and natural assets, replete with avalanches, hamlets, and villages. The approach to tradition, belief, music, and cuisine are all enormously graphic to experience. Public perceptions toward music with genres such as traditional local folk (Lepcha, Limboo, Tamang, Newar, Magar, Kirat, Sherpa, Dohori, Sangini, maruni, etc), Indian classical, western classical, rock, jazz, blues, Bollywood, Nepali aduniksangeet, ghazal is exaggerated by various communities as part of

*Research Scholar (PhD), Department of Music, Sikkim University, Gangtok
**Associate Professor, Department of Music, Sikkim University, Gangtok

traditional festival celebrations.Nevertheless, the impact of local music is also influenced by western music.The youth of Sikkim are immensely influenced by their taste inthe western genre of music (Vedabala, 2018). Musicians typically adopt the western touch to their music, collaborating with local folk music in the hopes of producing better music with various tastes in sound, both artistically and practically. Sikkim has maintained a solid music learning environment for the last few years. The emergence of private music institutes inside the state has made a positive impression on individuals who are interested in music. The availability of degree programs in music entices Sikkim's millennials to pursue it.The establishment of private music institutes, on the other hand, promotes budding musicians. Students who learn the foundations of music at private institutes will be better prepared to enter university-level music degree programs. The number of private music institutes in the state is counted on one hand. RemantiSangeet Academy, ReeyazSangeetalaya, Gandhar Music Academy, and The Fusion World are among the institutions in Sikkim's East District, particularly in the Gangtok region.

Sikkim, with its smaller population and land area, necessitates the establishment of a private institute. It already has some private music institutes, and some of them provide both qualitative and quantitative music education. From a financial standpoint, the institute owner must come up with improved commercial and marketing tactics without jeopardizing music teaching. By distributing improved music education from the standpoint of developing artists for performance, music creation, or academician, earning fame must adhere to the basic principles throughout the institute's establishment. It is critical to emphasize that the establishment of a music institute in Sikkim is financially feasible.With the basic ideas and better executing techniques, the musicians who are lagging could impark their life in the music profession.

The emergence of private music institutes allows students to take advantage of opportunities to comprehend and explore music in various dimensions. Because of the ups and downs of society from many perspectives, the institutional platform delivers social consciousness through music. People might, however, examine their traditional music and its preservation. Exploring nature's beauty, the musician spreads positive sentiments about natural resources and society, and even benefits in parts of belief and ritual after learning about the impact of music on it. Music learning, via various aesthetics of music, has the potential to heal endless grief. The formation of institutes will also assist society in terms of job security.

From the construction of infrastructure until its completion and beyond, society would earn jobs based on their abilities and credentials. Maintenance personnel, administration authorities, and security personnel may be able to see the job placement. It would immediately benefit society in terms of income and learning. People who are enthusiastic about learning music may prefer the institute.The implementation of music enterprises in a systematic order of economic earning model would help the musician to get benefited from the society itself and one could get the advantage of successful earnings in a form of a music business module (Bruenger, 2016).Somewhere, the electronic civilization is destroying the new generation's new ideas, inventions, and perceptive levels. Furthermore, music has the potential to spread great sentiments among the youth generation, keeping them away from any type of offensive activity. Especially in this technology era, the kids of this generation would be drawn to study music so that the adolescent receives a better path of mental feeding without being entangled.

Disseminating music among the public

would allow the musician to be considered for shows and maybe make their film debut as a playback vocalist, music director, or music arranger. The musician also benefits from seminars organized in collaboration with private music institutes. Artists who are not familiar with academic schooling might gain information from the institute based on their choices. Music study, regardless of communalism, is the ideal subject in which a person may freely choose their interests. Nonetheless, musicians might improve their abilities in their particular fields.Once a musician has finished composing, he or she will choose studios for recording, which will immediately increase the recordist's earnings. The foundation of the institution benefits not only the institute but also the recordists in terms of revenue, fame, and new contracts. The more songs the musicians write, the more money the record label makes. However, when the income graph rises, the artist and recordist will improve their efforts to develop complex technology and musical instruments for future music creation. As a result, they would result in obtaining a piece of high-quality music.

According to the history of music, the performing art/practical portion was more inclined than the theoretical part. As the music revolution has progressed, artists have possessed both theoretical and practical power in the current context. Music is notable because of many brilliant thinkers and musicians.It indicated that business systems and marketing ideas were the factors that influence the profit level, reduction of stress, and enhance the living standard with more income and relaxation (Fort, 2012).The tendency of music fans was accentuated in many genres of music, especially towards the polishing of this art. Academic knowledge had developed a musical sense in terms of music's origin, geography, languages, tradition, and aesthetics of a certain piece. The most important aspect of academic learning is that it will conserve/preserve the history of music and will be communicated to future generations/learners. A thorough understanding of theory and practical performance would instantly transmit quality and enhance the outcome of any musical performance. Furthermore, the establishment of a music institute would be grounded on both practical and theoretical considerations.The academician may gain since after completing music studies at any degree institute, he or she may apply to a private institute for any placement. Private music institutes would indirectly give positions to people who demonstrate a superior understanding of music in theory and practice. Students who graduate from private institutes, on the other hand, can improve their qualifications by enrolling as research scholars at higher degree institutes. Furthermore, for research purposes, the scholar may begin a study on new concepts, which would immediately aid the other academician in greatly improving music.

It is obvious that for the establishment of any music institute owner must have too aware of the basic needs of accessories. The establishment of an institute with all the essential accessories and proper management are the factors that influence the attraction of students of different age categories (Cutler, 2016). Equipment that is systematic and well-organized is required. Better furniture and carpeting in the classroom would entice students to enroll in the institute. A well-organized collection of musical instruments might encourage youngsters to take an interest in it. Even the accessories for the studio setup are required for pupils who want their numbers recorded. The accessories for the refined music output must be advanced so that none of the learners experience a compromise in music quality. Furthermore, accessories must be readily available for the great music outbreak. Whatever the basic needs are, the institute's owner should be accountable for addressing them before the institute's inception. Following a review of many

academics' material and observation of field studies, it was determined that persons who began without any basic procedures and plans had a significant deterioration. The study is required to understand the cause for the failure of the musician who intends to establish the music institute and also they do not provide any positive results in terms of profits.

In this study, I found many dimensions which lead to the limitation of the study. I was confronted with the lack of previous studies material to get literature sufficiently. Even people don't have expectations and security in the music profession and don't perceive they could earn as sufficient as compared to other professions (Banfield, 1997). The participant of this study was humble toward me but was not that possible to get data specifically on earning basis. No one would like to disseminate the earning graph of the institute to anyone. The area of my study was limited.

**Results and Conclusion**

This includes the evidence and results of the study. It comprises quantitative models for the analysis using descriptive statistics and techniques which deal with the structured content analysisand textual analysis for the case study descriptions. The study disseminates data that has been collected and obtained from different private music institutes. To make it logical and coherent the interpretation of data shows as follows:

**Genre preferences of students: Reeyaz Sangeetalaya**

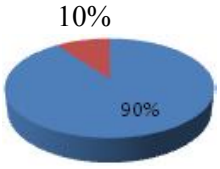


Indian Classical (vocal music) (90%)

Western Classical Instrumental music such as, Guitar, Violin and Piano) (10%)

***The institute's head sparkle the 90% about the Hindustani Classical genre and the institute also includes other music genres like Adhunik or SugamSangeet, Bhajan, Bollywood music, Ghazal, etc. which students could learn in additionally.***

**Earning Graph : Reeyaz Sangeetalaya**

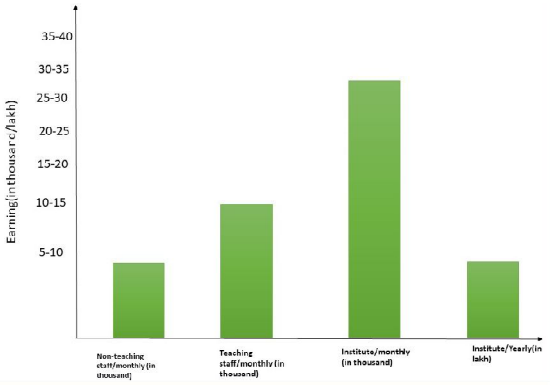


**Genre preferences of students : Remanti Sangeet Academy**

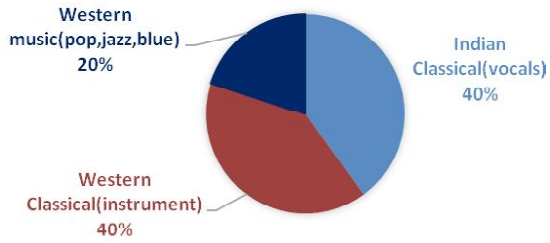


**** The above pie chart indicates the music genre preferences of the students as in both Indian classical and western classical music has 40-40% and 20% for other western music genres like jazz, blues, and pop.***

**Earning Graph: Remanti Sangeet Academy**

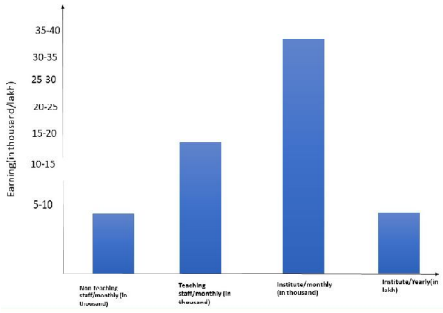


****From the collected data it reveals that the earning graph has slightly different in both the***

***institute. But the yearly earningsarethe same and it is just because the infrastructure's rent and monthly earnings of teachers of Remanti Sangeet Academy are more as compared to Reeyaz Sangeetalaya.***

**Conclusion-**

Initially, when I started this study I thought I would precisely research my topic only but gradually Iwas confronted with different dimensions related to my study. This study was mainly focused on the future scope of establishing a music institute in Gangtokwhich embedded in regards to earnings for music professionals. After the collection of immaculate data, I found the factors which enhanced the maximum possibility of earnings. In the maximum institute of Gangtok, I found a lack of basic needs which should be available in the institute for the welfare of students in their learning. For the temptation, institute owners were not aware of some basic needs for students like an institutional vehicle, institutional recording studios, etc. Due to the lack of instrumental accompanists,the institute stays behind in giving sophisticated performances.

Furthermore, I found that the music genre preferences of various learners were more relevant to the data I obtained. The institute had Indian classical, Western classical, and other western genres, but I observed that it lacked local folk genres, which was the genuine disadvantage of learning extinct folk music from a private music institute from an educational standpoint.

Folk music will always maintain some positive remarks regarding a community's culture and beliefs. If the institutions upgrade by introducing folk music education as private institutional education, the masses may flock to the institute in great numbers. The institution's revenues suffer as a result of the lack of genres available to people's specific preferences. Nonetheless, institutes in Sikkim are working smoothly, but the amount that the owner and musician should make is inadequate. This research led me to some conclusions about the aspects that contribute to a lack of profits.The main reasons behind the downfall of institutions seem as follows-

Absence of well-managed infrastructure

No any vehicles facility for institutional students to travel

Lack of institutional recording studios

Lack of instrumental accompanist in regards to professionalism

Less knowledge of business and marketing strategy

Should have to frame reasonable fees while admission.

This study will help to understand what basic steps should be taken before the establishment of any music institute.

I would rather suggest holding some marketing and business seminars with highly skilled management speakers so that the institutional head may recognize and build up their earning potential.

I would like to advise that the owners take some measures to meet the fundamental needs of students, such as providing vehicles and recording studios for students, so that students are not overcharged in other private studios for recording. The institute's director must review genre preferences and availability. There should be some very competent musicians added to the institute so that students may explore music more precisely.

**References :**

Banfield, S. (1997). Music and money. *The musical times* , 2.

Bruenger, D. (2016). Musical experience as transaction. In D. Bruenger, *making money, making music*. california: university of california press.

Cutler, D. (2016). an interview with the savvy david cutler. (M. Hilley, Interviewer)

Fort, M. (2012). *music academy success.* Dallas.

Vedabala, B. (2018). Music involvement, preferences and appreciation of carrier in music among youthin sikkim. *International Education and Research Journal* , 1-3.

# Music in Major Agricultural Festivals of the Adi Tribe of Arunachal Pradesh

**Ms. Rebika Taying**** **Dr. Santosh Kumar***

**Abstract**

*Arunachal Pradesh, also known as the "land of the rising sun" is located in the northeastern region of India.Geographic isolation has caused more than 26 significant tribes with a variety of dialects to co-exists and thrive with their unique identities and cultures, which are expressed via faith, belief, music, dance, and attire. Adi is one of the main tribe in Arunachal Pradesh having a heritage of its cultural and social lineage, based on the agricultural practices.*

*This research article is an outcome of a pilot study done in the department of Music Sikkim University for the Master dissertation project. The paper deals with the musicl practices done at major festivals of the Adi tribe of Arunachal Pradesh.*

**Keywords:** *Tribal Music, Festival music, Adi Tribe, North East, Arunachal*

**Methodology**: *The research is both descriptive and analytical. Data for this study was gathered from both primary and secondary sources. It is true that there are very few written documents of the Adis' history. Some researchers' efforts to trace their history, origin, and culture through oral tradition have aided this subject, although their contributions have been minor. As a result, this study is mostly based on data gathered from primary and secondary sources.*

## Introduction

Arunachal Pradesh, also known as the "land of the rising sun" is located in the northeastern region of India. In terms of land, Arunachal Pradesh is the largest state in India's northeast, even bigger than Assam, the state with the highest population.

Geographic isolation has caused more than 26 significant tribes with a variety of dialects to co-exists and thrive with their unique identities and cultures, which are expressed via faith, belief, music, dance, and attire.Some major tribes are Monpas, Nishi, Apatani, Adi, Tagins, Tangsa, Nocte, Singpho, Khamti, Wancho and Sherdukpens. The majority of these tribes share a same ancestor "Abo Tani" and mother "PedongNane", making up one ethnic group.

One of the largest tribes in Arunachal Pradesh, the Adi are dispersed over East Siang, Siang, Upper Siang, Si-Yomi, Lower Dibang Valley, and certain areas of Namsai district. They have been able to retain their long-standing cultural history. The area, which was historically known as Abor, is located roughly between 27.42 and 29.20 north latitude and 94.43 and 95.35 east longitude. The administrative history of the region and the accounts of the early explorers refer to the Adis as the Abor from a very long time ago. They now refer to themselves as "people of the highlands" or "Adi".

The Adis participated in socio-religious rites and celebrations related to agricultural and human well-being, just like the other communities in Arunachal Pradesh. Since they have such a rich cultural background, their rituals and social celebrations reflect this. The main goal of social and ritualistic acts is to offer prayers to various Gods and Goddesses, deities, and spirits for the welfare of society as a whole and the economic

*Assistant Professor, Department of Music, Sikkim University
**MPA Student, Department of Music, Sikkim University

prosperity of the family. Thus, social and religious events are a fundamental component of tribal society. Additionally, social rituals and ceremonies promote inter-personal connection between individuals via activities like singing, dancing, playing, eating, and drinking.

The Adis lack a documented past, but they do have a rich oral history that has been passed down from generation to generation in the form of myths, folklore, and folktales centered on the Aabangs. The legend claims that the Adis are descended from Pedong-Nane, a heavenly progenitor who took on a feminine form. All kinds of creatures, including birds, reptiles, and insects, are thought to have been born from her. A human being was her youngest child. His name was Nibo or Donyi. He then assumed the name Tani for the first ever person on the planet. They were referred to as Abo-tani by the Adi, Galo, Nishi, Tagin, and Apatani (Mize, N. 2021).

**Discussion:**

Festivals have an important role in the sphere of social folk traditions. Festivals are a significant part of folk and popular culture. There are many different sorts of festivals across the world. 'Despite the emergence of modernity as the reduction of the latter to the linear development of secular history, the existence of most human communities has generally developed within the holy cycle of a tight sequence of festival observances' (Roy, C. 2005). Festivals may be found in many countries and date back to ancient times, expressing people's demands and desires to participate in a wide range of socio-cultural and sports activities. It has become a fundamental aspect of human existence in practically every country, providing opportunities for human contact that we do not find in everyday life.

A human was 'born with a musical instrument, his voice. He therefore undoubtedly used his voice to express himself through music long before he thought of making music with instruments' (Ksoo, P.2011). Understanding ideas like those linked to festivals, music, is important for the goal of this research in order to comprehend and analyses the Adis agricultural festivals, music.

Festivals are extremely loved by the Adi tribe's inhabitants. The Adi tribe's sub tribes jointly and in brotherly harmony celebrate the festivals. The Adi tribe's Solung celebration is the most well-known and significant one. This celebration used to be held in the months of June and July each year, following the planting of the paddy and the end of the sowing and transplanting process. But the date of this festival's celebration at the government level has been moved to September 1 for everyone's convenience and to maintain consistency in the calendar. Usually, the event lasts between five and nine days. To get the blessings of the Kine-Nane and Doying Bote, the Solung festival is observed. Both the Doying Bote and Kine-Nane are referred to as the gods of knowledge. Selecting the priest is a crucial duty when the date for Solung is determined.

There is a song sung at the time of Solung, in which the story of creation of creatures, stones, animals, humans and creation by Miri is sung in the form of a song. In the song presented, Miri describes the origin of Mithun and other animals and the process of creation of the earth.

"Pedong Donang DAdi Didum Dankem
DAdi Pasi Kori Melang DAdi Karkie Mili Me
Pedong Dobie Bisi Keping E Tabe Bulum Ke
Tumyi Rikbuem Bodum Sula
Dining Komsie Mir Bulu Masi Ling Ketbong Nadeem
Mampong Kangkenem Kano Ramdo
Pedong Dodang E DAdi Karki Mite Lang
DAdi Pasi Kori Tabe Mambi Dongum Kalu Kaneleni
Lisamem Kangor Lento
Keyum Dine Nane Ke Sedi Dunokue
Mambi Dungkue Duyuk Namko
Mampong Poliem Moti Donasim Sedi Diling E Limir Kope
Amin Bidung Em Pulen Bito
DAdi Koje Didum Danke Tabe Tutek Em Berek Bomkeri

Leni GomgingEm Lukan Yedem
Keyum Doying E Boteke Doying Libom Me Uts Libonme
Pobe Telo Doying Kojem Giman Dudem
Sedi Doying E Bote Nerung Deduem
Geyu Tonam Dine Tarpum Me Bodum Tesi
Keyum Dine Sedi Dine Naneko
Mambi Dungkue Duyuk Kone
Mambi Line Ketbong Lendola Mampong Ripong Em Ketbong Dola
Mambi Roliem Gokti Lendung Mampong Mungokem Rereng Tidung
Doying Koje Didum Tesi Mambi Ginguem Lomkang Tula
Ingkue Mibue Pada Yeding Mambikang Kennem Kanggo Biyen
Keyum Me Doyinge Bote Dodung Rekjem
Remo Kane Limir Libom Sopiyekpi Aabang Em
Sedi Melo Ke Mamie Mampong Jem
Doying Bote DAdi Bote Bulu
Limir Sobo Ke Ettum Lok Epum Ejuk Lenkai
Epum Lok Eso Ek Si Lenkai
Eso Sim DAdi Somi E Yebo Do Delo
Tani Engo Takar E Eso Kenmang Kai
Tani Ke Eso Bomga Si Karpung Karduk Ke
Giti Giki Amrik Lo Sira Simon Dogalo
Nui Gamro Me Riklap Bonam E
Nui Sira Aapne Kamro Me
Banji Banmang Medeng Suseng
Noye DAdi Bote Ke Eso Em Aapmem Mola
Ebing Gamro Me DAdi Somi E Abirpe Dubokai
Delok Kelung Kebang Donyi Donggor E Ila
DAdi Bote Kelok Tani Si Eso Sim Latoku Emla
Limir Libom Aabang Em Lulendo
Keyum Doying Em Bote Tumyi Gomging Em
Lukin Mane Pedong Dodang E DAdi Bote No
Mambi Kangkenem Kano Yane Mampong Bidung Sim
Amin Bidung Em Pulen Yanede
DAdi Takmingam Aji Takmin Em
Kepin Yane Sedi Limir E Sobome
Limir Kilung Em Kika Langkam Diying Kopsip Leni"

Unying or Aaranis the second major festival of Adi tribes. Aaran festival is celebrated as the new year of Adi tribes. This festival is celebrated during the spring season in the month of March. On the occasion of Aaran also Mithun or Pig is sacrificed like Solung festival. Hunting is an important part of this festival. During the hunt, all the men of the village stay in the forest for six days or go hunting from home. During these six days everyone is busy in hunting and fishing. It is called 'AaranGeta' in the local language. Aditribes celebrate this festival with great pomp after the harvesting of paddy crop. On this day all the boys and girls of the village go from house to house and dance and sing. It is called 'Yakjong-Sonam' in the language here. This festival is celebrated for the happiness and prosperity of the Adi Tribes.

The meaning of this song is that winter is done. New blooms and greenery are in bloom. The agriculture labor is also finished. Everyone has gone hunting in the forest in preparation for the festival of Aaran. Aaran's event has likewise ended. For the Aaran festival, hunters have also taken down animals. Come join us as we all dance the Yakjong. For the Aaran festival, I have also produced new clothing and gallops. For the whole Aaran festivals, we are storing fresh, new presents and meat. Come join us as we joyfully celebrate the Aaran festivals together.

Following are some lines of a folk song expressing gratitude to deity 'KineNane' on the occasion of Aaran festival.

"Ge… sedinanediling e limang e mangkare
Karpungmamiaabulukkekardukbibing e bulukke
Aiye…dibong e… dibong e
Ge… gone sayang e roka me aiye… dibong e…
Ge… kinenanekelolung e ai, Karpung mete me lolung e…
Rudubinamsimekardukbabing me tubinamsime
Ai… dibong e
Ge… gone… sayang
Ge… sikinanekiran e ratnekoike
Ai e… dibong e…
Ge… sikinanekirangai… te tele
RatneyumesimeAaranyumesime
Ge… te tele
Goi kobo, donorori e kobo
Goi kobo yayikerimo e omekerimo e kobo."

Bari is another popular chorus song of Adi male folk played at pime (autumn) and unyingaaran (New Year festivals and New house ceremony). A prominent performer leads the song, followed by a group of individuals. Bari has distinct lore's that range in intensity from low to high. Adis believes that the bug formed in the fall season and hence appears in the autumn season. It travels the world singing in a lovely voice, generating natural changes. SediRelongLotinTabe, a priest, discovered that it was the same piece of flesh that had been tossed into the cave and had turned into a live monster.

Winter is known as Nyanyi the Old Aunt in mythology and philosophy. This old aunt is said to have introduced the Aaran celebration from the country of koojum-kooja. People are thought to have vanished from the world. After a long war against the spirit of water, when communities were eroded by water only the spirit remained, who arrived to human civilization with all festivals celebrated.

In Adi religion, Bari is not only in contact with nature, but also with spiritual qualities. The house or home is considered as the dwelling of family members' souls and is referred to as household god (guminsoyin). The old house is addressed as an old soul clad in old clothing, and the new house as a well-dressed recently born baby. Ceremonies are viewed as a birth day feast, with ceremonial music serving as a blessing and lullaby for the new home.

The knowledge of numerous Bari topics, such as mythology, the philosophical foundation of the creation of plants, animals, festivals, etc., is tested occasionally during the peak season of Bari among experts. RitokBari,NenemBari, and RIellokbari are the three basic varieties of Bari that can be identified. Each form of Bari has a distinctive tune with a unique accent. Thus, the Adis also have their own traditional art of using Bari songs to express all of their views about life and nature, enhancing their cultural life. Bari is so highly appreciated and accorded a high rank in the Adis cultural domain. (Pasighatwordpress, 2011).

Etor is also a major festival of Adi tribes. This festival is also an exclusively agricultural festival. All the people of the village after cleaning their respective fields burn the chaff. The place where the paddy is to be sown is thoroughly cleaned. All the people of the village together make a circle there. It is a male dominated festival. This song is sung in the Adi tribes during the celebration of the Etor festival. The meaning of this song is that before the arrival of SediMelo, the universe was round like an egg, that invisible imperceptible force created this creation. He is the creator of this world. The stars are also shining in the sky.

"Keyummenyingsedi-melolenmadodem
Talengkitkusirokpiapikisaituai
Kapa manamrutumtesi
Mite dodungmirunglenkane
Keyumpediemkeropediemmipilen to
Delokeyumyumkang e kamangmoneko
Kamangtakar e dubarlenkai
Kamangmangoreorbobomongmoneko
Kamangmangoreorbobomoneko
bomongpabar e bopabar e tasarlenkai
Keyumjemyang e yokmoko
Kerojemi e rempiko
Mite pedung e mirung lento."

**Conclusion:**

Arunachal Pradesh's Adi tribes have important agricultural celebrations that are the focus of this study, which is mostly focused on the music present. Arunachal Pradesh's Adi tribes celebrate Solung, Unying-Aaran, and Etor as three of their primary agricultural festivals. The study primarily examines the role and relevance of music in these celebrations. Arunachal Pradesh's Adi tribes play Bari music, which this study attempts to characterize. It draws attention to the changes that have occurred in their performances, dress, involvement, festival duration, schedule of

activities, and musical style.

It should be clearly understood that the Adis always regarded and held that they were surrounded by a variety of spirits, deities, and other unseen entities that continuously expressed themselves, influencing the path of human events. The Adis truly think that maintaining ties with them is vital due to the powers given to these spirits. As a result, during the seasonal rituals and festivals that mark a crucial point in their annual agricultural cycle, the nature of their deeply ingrained close bond between the people and their spirits is concretely portrayed. Examples of such significant holiday celebrations by the Adis are the Unying-Aaran, Solung, and Etor. They are all conducted with seriousness and fervor.

The Aditribes of Arunachal Pradesh's important agricultural festivals' music has been studied, and it shows that the Adis have a strong affection for their music and culture. It is this love that keeps them going; they take pleasure in the fact that despite numerous social and contemporary changes, they have managed to retain their culture and keep it free of outside influences. The Adis still take great interest in their music, rituals and in their customs. The Adi people still uphold ancient ceremonial rites and celebration processes for festivals like Unying-Aaran, Etor, and Solung.

REFERENCES :

Osik, N. 1996. A Brief History Of Arunachal Pradesh. New Delhi: Omsons Publication T-7, Rajouri Garden, New Delhi-110027.

Angu, P. 2017. Doying A Collection Of Myths And Folktales Of The Adis. Chennai: Notion Press Old No. 38, New NO. 6 M Nichols Road, Chetpet Chennai-600031.

Rio Frio, J. (2021).The Right To Feasts And Festivals. Vanderbilt Journal of Entertainment And Technology Law, 23, 506-623.

Patnaik, S. (2016)."NyibuAgom": The Sacred Lore Of The Adi Of Arunachal Pradesh. Indian Anthropological Association, 36, 45-62.

Mibang, T. and Chaudhuri, S. 2004. Understanding Tribal Religion. New Delhi: Mittal Publications.

Pathak, G. and Gogoi, R. 2008. Cultural FeistaIn The "Island Of Peace" Arunachal Pradesh. New Delhi: Mittal Publications.

Wolf, R. (2000). Music In Seasonal And Life-cycle Rituals. Taylor & Francis Group, 16,

Sommers Smith, S. K. (2001).Irish TrAditional Music: in a Modern World. New Hibernia Review, 5(2), 111-125.

Wolcott, S. J. (2016). The role of music in the transition towards a culture of sustainability. Empowering Sustainability International Journal, 3(1).

Mishra, B. P., &Kumawat, M. M. (2018).Significance of aran festival for rodent management by Adi tribes of Arunachal Pradesh. Interaction, 36(1), 69-74.

Tamta, P. (2014).Understanding Patterns: Festivals of Arunachal Pradesh. Quest: The Journal of the Vivekananda Kendra Institute of Culture (VKIC)

(May 17th, 2011). Solung Festival OfAdi Tribe. Pasighat-The Land Of Rising Sun Looking Through My NomAdic Eyes OverPasighat And Arunachal Pradesh. Retrieved May 17th, 2011, from https://pasighat.wordpress.com /2011/05/17/solung-festival-of-Adi -tribe/.

Marak, Q., and Kalita, J. (2013). Indigenous Knowledge System Associated With Hunting Among The Padams Of Arunachal Pradesh, India.Antrocom Online Journal Of Anthropology, 309-317.

ICAR-Agricultural Technology Application Research Institute, Zone-III. (2016). Agricultural Folk Songs Of Arunachal Pradesh.Umiam: ICAR-ATARI, Zone-III Indian Council Of Agricultural Research Umiam, Meghalaya-793103.

Roy, C. 2005. TrAditional Festivals a multicultural encyclopedia. California: ABC CLIO.

Pearce, M., & Rohrmeier, M. (2012). Music cognition and the cognitive sciences.Topics in cognitive science, 4(4), 468-484.

Dhar, V., & Chang, E. A. (2009). Does chatter matter? The impact of user-generated content on music sales. Journal of Interactive marketing, 23(4), 300-307.

Koelsch, S., & Siebel, W. A. (2005).Towards a neural basis of music perception. Trends in cognitive sciences, 9(12), 578-584.

Ksoo, P. (2011). Role of indigenous tunes in church music in the Khasi and Jaintia hills (Doctoral dissertation).

Yadav, V. (2020). Arunachal Pradesh Ki Adi Janjati Ke Lokgeeton Ka Khari Boli Ke Lokgeeton Ke Sath Tulnatmak Adhyan (Published). Rajiv Gandhi University, Rono Hills Doimukh (Itanagar).

Mize, N. (2021). A Historical Study On Socio-religious Ceremonies Of The Adis Of Arunachal Pradesh (Published).Rajiv Gandhi University, Rono Hills, Doimukh (Itanagar).

Somingam, M. (2015).Tr Aditional Tangkhul Naga Festivals A Study Of The Use Of Music And Musical Instruments (Published).North-eastern Hill University, Shillong.

# Analysis of the lyrics of Dr. Bhupen Hazarika in context of Nationalism

**Dr. Surendra Kumar**** **Parishmita Phukan***

**Abstract**

*Dr. Bhupen Hazarika, widely known as 'Sudhakantha' is one of the eminent figures in the Assamese as well as Indian music. Hazarika's stylistic and unique style had an enduring impact in Assamese as well as Bollywood music. Most of his writings were reflective of the extraordinary social scientist that he was. It is as much his lyrics that touched our hearts as it is the easy hummability of his tunes that endeared Hazarika to us. The motive of this paper is to study the significance of Hazarika compositions and lyrics contributing to create the feel of nationalism among the population of state as well as the country.*

***Keywords :*** *Bhupen Hazarika, Assamese, compositions, lyrics, nationalism.*

***Methodology :*** *The method used in this paper is descriptive-evaluative method. The study is mainly review based. It is supported by secondary source of data, i.e. books, journals, and articles.*

## Introduction :

Bhupen Hazarika (1926-2011) was an Indian lyricist, musician, folklorist, dramatist, singer, poet, filmmaker, columnist and journalist from the State of Assam. His songs, written and sung mainly in the Assamese language by himself have been translated and sung in other Indian languages, particularly in Bengali and Hindi. Dr. Hazarika is also acknowledged to have introduced the culture and folk music of Assam and North East India to Hindi cinema at the national level. He received the National Film Award for Best Music Direction in 1975. Recipient of Sangeet Natak Akademi Award (1987), Bharat Ratna in 2019 (Posthumously) Padmashri (1997), Padma Vibhushan in 2012 (Posthumously), Padmabhushan (2001) Dada Saheb Falke Award (1992). (Mahanta, 2015)

Bhupen Hazarika worked tirelessly throughout his life to create a bond of fraternity and dignity amongst the people of different communities of Assam and the North-East-India. He was the heart throb of all these people. If this bond of love and fraternity does notexist among the various communities living in Assam like Bodo-Kacharies, Lalungs, Misings, Tai-Ahoms, Rabhas, Hajongs, Deories, Chutiyas, Morans, Koch-Rajbonshis, Tea-Tribes and other people belonging to different religions, castes the state cannot remain ahealthy one. Bhupen Hazarika had a strong belief that steps have to be taken to develop the language and cultural of each and everycommunity for building a greater Assamese society and that music was a very strong device. Bhupen Hazarika simultaneously worked for the progress of the neighboring states of Arunachal Pradesh, Nagaland, Meghalaya, Manipur and Mizoram. He made serious efforts through songs and visits to make people of the region aware of these issues. (Das., 2020).

The magnificent personality Axom Ratna (Jewel of Assam) Dr Bhupen Hazarika (1926-2011), is indeed a cosmopolitan in outlook. He has brought Assamese culture to the international podium. People across the world come to know about Assam and its culture through the songs created by the legendary singer Dr Bhupen Hazarika. He is a complete man- lyricist, poet, composer, singer, director, actor, litterateur, journalist, editor, social worker and what not. Dr

*Research scholar (PhD), Department of Music, Sikkim University, Gangtok
**Asst. Professor, Department of Music, Sikkim University, Gangtok

Bhupen Hazarika, the greatest cultural icon of Assam has realized that humans are social by nature and find meaning in relationships. (Bora, 2016)

Dr. Bhupen Hazarika, is indeed an incomparable music maestro, an artist of the masses has been acknowledged as the creator of 'undying melodies'. It is seen that Dr. Hazarika's songs always carry a voice of the silent people who cannot articulate their feelings of sorrow, agony and misery due to oppression and subjugation. These marginalized people are forced to maintain silence. The poetic and revolutionary mind of this artist was shaped and moulded during his childhood. Almost all the events happened during his childhood exerted some positive influence in moulding his spirit. It is seen that Dr. Hazarika's songs always carry a voice of the silent people who cannot articulate their feelings of sorrow, agony and misery due to oppression and subjugation. These marginalized people are forced to maintain silence. (Saikia, 2014)

Some of the famous compositions of Dr. Bhupen Hazarika:-

Aami Axomiya Nohou Dukhia / Axomamarrupahi / Akaxi Ganga / Autorikshachalao / Bistirno Parore / Bojalijepepati / Dil Hoom Hoom Kare (from Rudaali) / Foot Godhulite/ Gajagamini (title song) /Ganga mormaa /Manuhemanuhar babe jodiheokononabhabe /Moietijajabar / O bidesibandhudurbhagia / Parashi Puwate / Sagarsangamat /Saisabate Dhemalite / Samay O Dhire Chalo (from Rudaali) /Sharodi Raani Tomar Heno Naam /Shitore Semeka Raati / Chirajugamiyadhoutuli / Mahabahu Brahmaputra / Moi Ei Matire Lora / Moi Aru Mor Cha/Natun Nagini/Natun Purish / Pratiddhani Suno Moi / Prachanda Dhumuhai Proshno Korile / Tomar Dekho Naam Potra Lekha / Kohua Bon Mor/ Kajiranga Kajiranga / Gouripuria Gabhoro Dekhilo / Kolir Krishna Buli/ Atukura Alaxua Megh Bhahi Jai / Koto Jowanor Mritu Hol / Meghe Gir Gir Kore / Juye Pora Tirashir / Ami Ekekhon Naore Jatri / We are in thesame boat brother / Rimjhim Rimjhim Boroxunenepurbojaikot. (Lakhendra, 2013)

**Review of Literature**

Dr. Hazarika is counted as one of the five main architects of Assamese culture and literature, the souls of the Assamese identity. (Dutta A. R., 2013)

As a singer, Bhupen Hazarika is known for his wonderfully crisp voice and flawless diction; as a lyricist. He is also known for poetic compositions and parables that touch on a wide range of themes-ranging from the erotic to social and political commentary; and as a composer for his use of folk music with a touch of the contemporary. (Lakhendra, 2013).

As a singer-songwriter consistently engaging with contemporary political questions, his songs have come to be regarded as a distilled expression of what it means to be Assamese in postcolonial India. (Rajkhowa, 2022). Hazarika had used some of his songs as instrument of expressing and spreading the spirit of nationalism among his audience. Even in some lyrics Hazarika's regional nationalism has also been reflected. (Malakar, 2019)

Hazarika's music which he has recreated by using the tunes of the folk music of Assam for singing new lyrics and poems become voices of the speechless persons. The soul of the tunes/music remains the same but the content of the song changes in a focused manner. This is the type of change human being always experimenting with the civilizational change in the society by adding new experiences of life into the traditional tunes or music. It is why it looks so natural. Several highly appreciated and popularly accepted songs of Bhupen Hazarika. (Dr. Mrityunjay Kumar Prabhakar and Dr. Rikimi Madhukaillya, 2020)

Popular singer-song writer-composer Bhupen Hazarika has exertede normous influence in shaping the aesthetics of contemporary Assamese popular music. As an artist and public intellectual who often engaged with contemporary political questions, his songs havecome to be regarded as a distilled expression of Assamese linguistic national identity in postcolonial India. (Rajkhowa, 2022)

Dr. Hazarika was a modern artist in the true sense of the word. His musicstrived to challenge feudal structures and behaviour; casteist traditions, coercionsof capitalism and all other shackles of un-freedom at other domains of social and community life. His romantic songs are also songs of emancipation. He dedicated himself to the mission of 'forcing prison doors'; to give shape to the century (the twentieth century) with light in contrast to the darkness; to bring colour to everyone and to break the banks of darkness to bring tidal waves of vibrant life. Such a complete sense of modernity flows through most of his creations. (Dutta A. R., 2013)

Bhupen Hazarika is acclaimed internationally for his evergreen songs. His songs are based on the theme of communal unity, universal justice and empathy. He has written innumerable songs and has used his songs for social change as well as the reformation of a classless society. Bhupen Hazarika's songs are divided into different categories on the basis of the needs of the society. These are- songs of patriotism, songs of human interest, songs of revolutionary change, songs of nature, songs of love etc. (Kakoty)

Hazarika was successful in giving the voice of the new age to the society through his songs. Issues like labour's dignity, the rights of people, communism, universal brotherhood, the question of right and wrong were shown by him to the people as novel steps. "Thedignity of labour witnessed in the song. Auto rickshaw chalauaamiduyo bhai, Guwahati karugulzaar, BA fail moisarubhai MA pass, the universal awareness seen in Mahashunyatupagrah haji eye gan-sanjogkoruwar jug the timely questioned raised in Sathorbhoranikhamurhon hobo baidhokiaboidhokiprashna hobo, or the progressive thoughts reflected in Noholeaamarraijornaibulibiswaiborkehaanhibo or Aamibiswarusaratponguangahola, Biswoijaanubhalpaabo, reflect the internal thoughts of a society, globally aware poet" Some of his songs are a critique of the prevalent customs and rules of a society, some of his songs speak about the society's weakness, some paint a vivid picture of life etc. The increasing desire or greed for money or property instead of love for a human being or to bury all morality in the name of getting happiness or pleasure, Bhupen Hazarika has expressed through his songs beautifully Consciously or unconsciously his songs have painted many pictures of a social life or living. Jiyatithakiekhonisamajgohibormurmonaasa, Jot sonotkayoumanuhordaamolophalewbesiaasa, Meetha-telotbeehdhaaliboloiguruyashikhanidila, Samajesabotibomahaanmanabota, Bigyaaneaanibojowar etc. are some songs in which the social angle is seen to large extent. He contributed in this manner to the society through songs. (Das., 2020)

List of the songs by Dr. Bhupen Hazarika which influenced Nationalism

1. Agnijugorfiringotimoi
   Notun Axomgohim
   Horbohararhorboswo
   Punorfiraianim
   Notun Bharat Gorhim.

The above lyrics mentions that :- In the sparks of the fiery age , I will built a new Assam. I will restore the property of the proletariat and I will built a new Bharat (India). This song was from the sixth Assamese movie "Siraj" release on 1948. (Mahanta, 2015)

2. Koto Jowanormrityuhol
Karjeewanjoubangol
He mrityuoporajiyo
Tenemritoknoholumoikiyo
Koto Jowanormrityuhol

In the above composition Hazarika describes :- So many soldiers met their ends, lost their lives and youth their deaths are invincible, among them had I been one!.(Dutta A. R., 2013)

3. Axom (Asom) amarrupahi
Gunorunaixexh..
Bharatorepurbadixorxuryauthaadexh..
Axomi (Asomi) aairupahi Gunorunaaixexh

This song describes the natural beauty of Assam. Dr. Hazarika praises about the unique qualities of Assamese motherland. Hazarika further describes that with assimilation of the different language of Assam someone can think of a prosperous and peaceful Assam. This song was written in the year 1960. (Lakhendra, 2013)

4. Tumiye-Moye Dekh Khongorhote
Jodihe Kesagham Xore
Duyure Ghamore Milone Dekhiba
Buranjirosona Kore
Ganga, Padma, Krishna, Godavari
Brahmaputra, Kaveri
Sobemili Bharat Mohasagoroloi Jay.
Rongote Bagori Bagori

In the above composition Hazarika states that if you and I have to sweat in building the nation, see our sweated drops get unite and creates the history. Ganga, Padma, Krishna, Godavari, Brahmaputra, Kaveri all the rivers goes into 'Hindu Ocean' with joy. (Dutta B., 2019)

5. Buku ham hamkaremor Aai
Konenidraa hare morAai
Putra h?imaikimatetaru..
Aai, tore h?imaimaro!

The meaning of this composition is :-My heart is hammering, o mother! Who takes away my sleep, o mother? How can I, your son, tide you over? I feel like dying for you. The moon of our land is lost in the menacing dark; ghastly flames spread over my body's every pore. The rampart hard as thunder runs allaround, o mother! In no time I'll break apart; O mother! All around the rampart. With a liberated morn I'll console you, o mother! With the sacrifice of blood I'll build an altar. (Mahanta, 2015)

6. Dhaakdhaakdhaakdhaak
Dhaaktumaathubaajananahay
Dhaaktahatarastra
Shosakhataknaangathkar
Kaarhihihatarbastra

In the above composition Dhaakdhaakdhaakdhaak Hazarika has called the exploited working class to raise their voice against the privileged classes and revolt. He adds that "Thump is not merely an instrument, thump is your weapon strip naked your exploiters by snatching their clothes. To build a new society is your pledge ; awake awake awake. (Mahanta, 2015)

7. Swahid Pranamu Tumak
Swahid Pranamutumak
Luitorparoretumidekalora
Tumiyetubukupati Dila
Bharatirnumoliji k Bosabole
Tumiyetumrityuborila
Swahid Pranamu Tumak

In the above lyrics Hazarika has mentioned that Assamese nation will never forget the martyrs who did not hesitate to give their lives in the struggle for the survival of Assam. The nation will always remember the martyrs who awakened the nation . In this lyrics Dr. Hazarika describes about the young men on the bank of the luit who gave their lives for the daughters of the nation.

"You are the youth from the shore of the Brahmaputra, You are the one who stepped forward to take the bullets;to save a young daughter of the Nation, you embraced death; O martyr, we bow to you…"

8. AxomiaaireLalitapalitamoituloniyaji
Axomirhonmanhodayerakhime
Aru nu koumoiki…?

In the above composition Hazarika has highlighted the feelings of a girl who was born and brought up in Assam but her mother tongue is not Assamese. Hazarika wants to show the feel of this girl in this composition. Like this girl there are many people who are born and brought up in Assam but their language and culture is not from Assam but still they love Assam and always respect Assamese people and culture.

**Conclusion**

From the lyrical structure and musical component composed by Dr. Bhupen Hazarika we can conclude that the songs and lyrics has played a major role in expressing , and spreading the aesthetical value of nationalism among his audiences. The linguistics and language Hazarika has used has a very deep meaning and his compositions justifies the feel of nationalism.

**References :**

Bora, D. S. (2016). Humanism And Songs Of Dr Bhupen Hazarika: An Appraisal. International Journal of Innovative Research and Advanced Studies (IJIRAS), 4.

Das., B. (2020). Bhupen Hazarika's Contribution towards social harmony in North East India. International Journal of Creative Research Thoughts, 3.

Dr. Mrityunjay Kumar Prabhakar and Dr. Rikimi Madhukaillya. (2020). Cultural Landscapes of Assamese Songs of Bhupen Hazarika and it's Trans-creation in Bangla. Sangeet Galaxy, 6.

Dutta, A. R. (2013). Forcing Prison Doors: Socio-cultural Mission of Dr Bhupen Hazarika. Social Change, 19.

Dutta, B. (2019). Anti- communual songs of Bhupen Hazarika : An analytical study. Journal of Emerging Technologies and Innovative Research (JETIR), 7.

Kakoty, R. (n.d.). Contribution of Bhupen Hanarika's songs to the Assamese society. MSSV JOURNAL OF HUMANITIES AND SOCIAL SCIENCES, 9.

Lakhendra, B. (2013). A study on Bhupen Hazarika's songs and its impact on Assamese society. International Journal of Humanities (IJHSS), 13.

Mahanta, S. (2015). Lyrics of Bhupen Hazarika: A Thematic Study. Language in India, 13.

Malakar, D. (2019). Riverscapes, Seasons and Love : A Study of Romanticism in Bhupen Hazarika's Lyrics. Guwahati: Indian Institute of Technology, Guwahati .

Prabhakar, D. M. (2020). Cultural Landscapes of Assamese Songs of Bhupen Hazarika and it's Trans-creation in Bangla. Sangeet Galaxy, 6.

Rajkhowa, G. (2022). Dissonant voices: Bhupen Hazarika, cassette culture, and Assamese nationalism in 1990s. South Asian Popular Culture, 16.

Saikia, G. (2014). Revolutionary Artist Dr. Bhupen Hazarika: Voicing the Silence of the Subaltern. Asian Journal of Humanities and Social Sciences (AJHSS), 11.

# The Impact of Music Therapy on Patients Suffering from Insomnia : A study

**Prof. Arvind Sharma**** **Purnendu Bains***

**Abstract**

*A variety of pathophysiological, physical, mental, and environmental factors can all impact the quality of one's sleep, which is a complex and essential physiological need. Preparing a soothing atmosphere for individuals for whom nurses are responsible for providing care and meeting sleep requirements is one of the essential functions nurses are expected to perform. The findings of this study revealed that students benefited from an improved quality of sleep after participating in music therapy. Music therapy is one of the nonpharmacological treatment approaches intended to solve sleep problems. It is a treatment method that is painless, safe, and affordable, and it does not have any side effects. It could be used in every area of health. According to these findings, it is recommended that the tune Hejaz be used more frequently by individuals afflicted with issues related to their ability to get to sleep and that studies be planned to investigate the effects of the tune Hejaz on sleep among different age groups.Adults with depression often have insomnia, which profoundly affects their day-to-day functioning and quality of life. Experimental evidence suggests that music can help healthy populations (including students and the elderly) get better sleep. Additional evidence comes from pilot studies involving diagnostic populations of traumatic event refugees, grown-ups with chronic insomnia, and grown-ups with depression insomnia. There is limited data on the effectiveness of music therapy for treating insomnia caused by depression.*

**Keywords :** *Insomnia, Music Therapy, Indian music*

**Methodology :***A quasi-experimental pre-test/post-test design was used to determine the effects of music on including sleep among ten subjects. The conditions set were children needing special care and the sampling method was non-probability. This study used the observation method to assess the subjects' sleep onset latency. The researcher informed himself as a volunteer to avoid selection bias. A checklist was used to record the time the participants fell asleep. The standardized sleep latency test developed by Arand et al. determinew whether music has an effect or is ineffective (2005). Data was collected and analysed using descriptive and inferential statistics.*

## Introduction:

One of the most common health concerns among the general public and in clinical settings is insomnia, a clinical syndrome characterized by nighttime and daytime clinical features. Characterized by fatigue, low energy, mood disturbances, and diminished cognitive functions like inhibited attention, concentration, and memory, the primary clinical feature is a lack of success in falling asleep or staying asleep; frequent awakenings; difficulty falling back to sleep after awakenings; or waking too early and being unable to return to sleep. Studies have demonstrated that insomnia is becoming increasingly common among adolescents, with rates ranging from 12% to 20% among the general population to 35% to 50% among those with insomnia symptoms. The negative impact that insomnia has on individuals and society at large can be seen in the way it affects their quality of

*Research Scholar, Panjab University, Chandigarh
**Retd.Prof., Deptt of Music, Punjab University, Chandigarh

life, their ability to perform at work, and their physical and mental health.

Sleeplessness has different biological, ecologic, behavioural, and physiological causes that all lead to hyperarousal. Women experience higher rates of insomnia than men, and those with psychiatric or anyone with forming medical conditions is more likely to receive a diagnosis of the condition. Both medication and cognitive-behavioural therapy have proven effective in treating insomnia. Patients with insomnia who don't also suffer from another medical condition should first receive sleep hygiene and improved education. Sedative and hypnotic drugs are also effective, but their long-term effects are more problematic. Wide-ranging research suggests that patients suffering from insomnia disorder benefit from music therapy in terms of their overall quality of sleep. One of the most promising new treatments is called music-supported therapy, or MST. Patients with insomnia may have a heightened sensitivity to music, and hearing music has been thought to be a therapeutic approach for treating insomnia patients. Music evokes motion that enhances the interplay between the perceived notion and action systems.

Insomnia, one of the most common types of sleep disorders, is one of the most frequent types, resulting in poor sleep quality. Sleep disorders are illnesses wherein the diagnoses or pathophysiology are linked to sleep irrespective of depression, physical or mental disorders. The use of pharmaceuticals is still the primary method for treating sleep disorders; however, due to the development of tolerance and dependence with prolonged use and the possibility of a rise in mortality and morbidity, these treatments are only advised for use in the short term. Therefore, it has become a concern on a global scale to investigate nonpharmacological interventions that are both reliable and safe in improving the quality of sleep in older adults. Many different nonpharmacological interventions, such as acupressure, light therapy, yoga, and music interventions, can improve the quality of sleep experienced by older adults.

Sleep disorders that frequently manifest themselves include restless sleep, excessive daytime sleepiness, obstructive sleep apnea, insomnia, and fatigue. Fatigue and sleep problem are a stressor for cancer in adolescents, and chemotherapy impacts the quality of life.Poor sleep hurts the quality of life.To improve children's quality of life throughout their lives, they must keep to a consistent sleep pattern even when confronted with challenging circumstances, such as ongoing medical conditions.

**The Effect of Music on the formation of sleep**

Even though it may appear that the body is resting during sleep, neurologically speaking, the mind is still quite active. The mind processes thoughts previously ignored or set aside as afterthoughts, which occurred throughout the awakened and active experience of the day.There is a wealth of evidence, dating back to antiquity and continuing up to the present day, supporting music's efficacy as a therapeutic tool, whether employed as a stimulant or sedative, to achieve peak states of activity or sleepiness, respectively. To infuse oneself with energy, it is common practice to use accessing rhythms and powerful beats in one's environment. On the other hand, this must not be confused with the neurobiological impact that can be provided by the repetition and consistency of rhythm, particularly when paired with harmonies and melodies. When played repeatedly, slow and repetitive rhythms can give listeners a sense of security and comfort, which can help the brain get ready for sleep and even induce sleep. The ability of music to either stimulate or calm listeners has been observed and documented throughout humankind's use of music. For instance, in ground battles, it was common to have a band play to signal the start of hostilities. Today, marching bands are used to

mark the beginning of occurrences that actively seek to mark an ability of strength, such as the pregame warmup for football games. The driving rhythm and pronounced emphasis on, or, and signal preparation, which in turn activates neurologic cues for wakefulness and focus.

However, music has also been used therapeutically to calm and relax people. In the Old Testament of the Bible, there are multiple accounts of spirits tormenting Saul, leading to David playing the lyre and strumming a relaxing tune. These events took place as a result of David's efforts. Consequently, Saul was delivered from his terrifying experience because the music persuaded the evil spirits to leave his afflicted body. As a result, Saul could sleep off his torment in peace.

Using music effectively in the treatment and medical applications may present a workable and inexpensive alternative. This option is particularly inspiring in our society of biological addiction because it does not come with any adverse effects. However, neither music therapy nor discussion with a professional musician is typically included in the vast majority of studies that claim to implement "music therapy" in various clinical trials. In addition, there is a surprising lack of research that has analyzed the music that has been utilized in sleep studies, as well as the logic that has been utilized in the utilization of the music that has been chosen for the study. This is even though the music may be helpful as an aid to sleep. No identified assessments, for example, have investigated judgment relating to the features of components used within music (melody, harmony, rhythm, meter, timbre, and structure), which would lead researchers to theorize how these factors might influence the neural mechanisms that are involved in sleep.

It is possible that each of these essential elements of music–melody, harmony, rhythm, meter, and timbre—would serve their integrated prowess–music–more effectively if they were first analyzed individually before being merged into a piece of music. Consequently, musicians and programmers who want to induce sleepiness through music are likely to incorporate choices regarding the music's content and genre into the aforementioned combined elements. They might also consider the time spent listening to preparations before going to bed. This would affect transitioning considerations, such as using melodic responsiveness to ease from physiological arousal into sleep cycles based on the population, age, culture, and context. In the research related to sleep disturbances, a quantified inquiry monitoring is included in the observations regarding the sleep-wake cycle as well as the patients' histories of sleep. The Pittsburgh Sleep Quality Index (PSQI) is a well-known instrument that evaluates various aspects of sleep, including its quality, latency, duration, and efficiency, as well as its efficiency, disturbance, and daytime function.

Music therapists are worried not only about the music played to fall asleep but also about the choices that are made in developing the most expression programs for sleep. A comprehensive evaluation of music therapy led to these findings. In this manner, the diagnostic factors can lead to a critical content evaluation, including components related to successive evaluations. Understanding the complexities involved in incorporating multiple musical tracks into a single production is crucial. So, it's not appropriate to use the word "music" to describe an intervention picked randomly by the researcher or the patient and then imposed without regard to the protocol. Because falling asleep is one of the most important activities for the brain and the body, the physiological responses to stress and traumatic experiences will invariably affect this process. It is, therefore, in your best interest to have a knowledge and perform therapist design easeful

wake-sleep transformation by incorporating assessed mechanisms of existing psychological states along with evaluation of neurologic impostures.

*Factors Influencing The Quality Of Sleep:*

* A review of one's sleep history
* Concerns about one's ability to relax that may be perpetuated by their level of anxiety
* Depending on the results of these analyses, we will make decisions regarding the length of the music intervention.

Music therapists want to evaluate the music chosen for sleep protocols to offer a medical experience that will shape the music programming. The pace, meter, and intensity of music programs chosen by the patient can be changed to fit the person's needs and preferences. By paying more attention to the structure of melodic pieces, you can change the most important parts of music to cause gradual deactivation. This way, people with sleep disorders can use musical bedtime routines as part of a more complete, evidence-based care plan.

Nearly 20 years ago, the American Academy of Pediatrics issued the following statement regarding the risks of pharmacological sedation for infants and young children: "Although transient hypoxemia is unlikely to contribute to lengthy consequences, unrecognized or improperly treated hypoxemia, particularly when connected to bronchoconstriction, may advance to more severe complications.

Many doctors and sleep experts have scoured the globe searching for a permanent solution to insomnia because of its devastating effects on daily life and professional performance. Medication and Cognitive-behavioral therapy (also known as CBT) have proven to be the most effective treatments. The most commonly prescribed medications for treating insomnia are benzodiazepines and antidepressants. Fifteen to twenty-one per cent of older adults use these medications, and they cause negative effects like drowsiness during the day, inability to sleep when it's light out, reliance on the pills, shifts in sleep schedules, and insomnia. This finding has prompted a slew of research into the treatments' effectiveness for the elderly. However, other non-pharmaceutical options are currently being considered.

**Does music help you sleep?**

Researchers have discovered that stage two sleep can be shortened by listening to "self-selected" music, also known as music that is chosen by the listener themselves. Because of this, it takes less time for people to enter the stage of sleep known as rapid eye movement (REM), which is considered to be the most restorative. A study was conducted in India Students who participated in the study and listened to music for forty-five minutes before going to bed for a period of three weeks showed a cumulatively beneficial impact on several measures of sleep efficiency. Similar effects have been reported in older citizens of Singapore. As a result of all this evidence, the National Health Service (NHS) now suggests "listening to soft music" prior to going to bed as a way to prevent insomnia.

In the last few decades, cognitive-behavioural therapy has emerged as one of the most effective non-pharmaceutical treatments for senior insomnia. The use of music therapy, on the other hand, is an alternative to medication to treat insomnia. Music therapy is an upbeat, low-cost, simple, and comfortable treatment that shows results rapidly. A person's heart rate, respiratory rate, and blood pressure, all of which are affected by anxiety, can be lowered by listening to music that induces relaxation and sedative responses. The hormone noradrenaline, which plays a key role in laying you low for the night, is also influenced by music to a great extent. Therefore, music therapy with sedative properties

appears to aid in developing ideal sleeping patterns. Combining music therapy and cognitive-behavioural therapy may produce positive outcomes regarding improved sleep quality. In recent decades, experts have drawn attention to the efficacy of cognitive-behavioural therapy (CBT) for treating insomnia, presence and effect are also noticeable. Although combining the two strategies could be difficult, it would also have advantages. It appears that the main consideration of cognitive-behavioural therapy—the interaction between thought, feeling, and behaviour—is affected by music therapy because it targets the patient's emotions and feelings. Live music meetings in group therapies may also positively treat insomnia. Using sedative music before actual nap time and energizing and live music for daylight can bring a calm night and vitality to day life.

The parasympathetic nervous system is the network responsible for the body's'rest and digest responses. Some findings lend credence to the idea that listening to classical music can benefit sleep due to its influence on this system. The phenomenon that listening to music can lull one into a dreamlike state is, of course, not something that has just recently come to light. Composers of classical music have spent centuries perfecting their ability to evoke a range of feelings and sentiments in their audience

**How Does Music Affect Us?**

Music triggers automatic emotional responses in our brains. Because the brain communicates with the entire body, Music has the potential to alter our moods and emotions in many different ways. Physically speaking, breathing and heart rate will match the Music's tempo.The Music we listen to can also affect our hormone levels and chemistry. In this regard, it's been found that listening to Music that makes us happy (serotonin) is an effective strategy. The problem is that everyone reacts slightly differently to the same song because "pleasant" is a relative term. Both sides of the brain are used when listening to Music. Problem-solving skills are enhanced when the left and right hemispheres of the brain are put to use simultaneously. Additionally, the hippocampus (the region of the brain responsible for long-term memory) is activated by musical stimulation. This is why many of us experience a sense of nostalgia when listening to Music from our youth, adolescence, or other formative years. A lot of happy memories are brought back by this song.Except in one key area, Music tends to improve our mood. Over 95 decibels of noise can impair human cognition. So, lower the volume if you're in the middle of making a crucial choice.

**Conclusion:**

Low-quality sleep is a common problem among the elderly and is linked to diminish cognitive function and deteriorating physical health. This research aimed to systematically review and Meta-analyse the findings on music's impact on slumber quality among the elderly.A variety of pathophysiological, physical, mental, and environmental factors can all impact the quality of one's sleep, which is a complex and essential physiological need. Preparing a soothing atmosphere for individuals for whom nurses are responsible for providing care and meeting sleep requirements is one of the essential functions nurses are expected to perform. Music therapy is one of the nonpharmacological treatment approaches intended to solve sleep problems. It is a treatment method that is painless, safe, and affordable, and it does not have any side effects.

**References:**

1. *American Academy of Sleep Medicine. The international classiûcation of sleep disorders: diagnostic and coding manual. American Academy of Sleep Medicine; 2005.*
2. *Carney CE, Edinger JD. Anxiety and insomnia: An overview. Springer Science& Business*

*Media; 2010. doi: 10.1007/978-1-4419-1434-7_1.*

3. *American Psychiatric Association. Diagnostic and statistical manual of mental disorders (DSM). 5 ed. Washington, DC: American Psychiatric Publishing; 2013. 970*
4. *Riedel BW, Lichstein KL. Insomnia and daytime functioning. Sleep Med Rev. 2000;4(3):277–98. doi: 10.1053/smrv.1999.0074. [PubMed: 12531170].*
5. *Jespersen KV, Koenig J, Jennum P, Vuust P. Music for insomnia in adults. Cochrane Database Syst Rev. 2015;(8). CD010459. doi: 10.1002/14651858.CD010459.pub2. [PubMed: 26270746].*
6. *Khazaie H, Jalali A, Jozani Y, Moradi S, Heydarpour F, Khaledi-Paveh B. Comparative study on sleep quality and disorders in opiate and methamphetamine users. Heroin Addict RelatClinProbl. 2016;18(6):21–*
7. *Roth T, Roehrs T. Pharmacotherapy for insomnia. Sleep Med Clin. 2010;5(4):529–39. doi: 10.1016/j.jsmc.2010.09.002.*
8. *Krystal AD. The changing perspective on chronic insomnia management. J Clin Psychiatry. 2004;65Suppl 8:20–5. [PubMed: 15153064].*
9. *McCaûrey R. Music listening: Its eûects in creating a healing environment. J Psychosoc Nurs Ment Health Serv. 2008;46(10):39–44. doi: 10.3928/02793695-20081001-08. [Pub Med: 18935935].*
10. *Lee D, Henderson A, Shum D. The eûect of music on preprocedureanxiety in Hong Kong Chinese day patients. J Clin Nurs. 2004;13(3):297–303. doi: 10.1046/j.1365-2702.2003.00888.x.*
11. *Johnson JE. The use of music to promote sleep in older women. J Community Health Nurs. 2003;20(1):27–35. doi: 10.1207/S15327655JCHN2001_03. [PubMed: 12581941].*
12. *Castillo-Pérez S, Gómez-Pérez V, Velasco MC, Pérez-Campos E, Mayoral MA. Eûects of music therapy on depression compared with psychotherapy. Arts Psychother. 2010;37(5):387–90. doi: 10.1016/j.aip.2010.07.001*
13. *Gutiérrez EOF, Camarena VAT. Music therapy in generalized anxiety disorder. Arts Psychother. 2015;44:19–24. doi: 10.1016/j.aip.2015.02.003.*
14. *Angelucci F, Ricci E, Padua L, Sabino A, Tonali PA. Music exposure diûerentially alters the levels of brain-derived neurotrophic factor and nerve growth factor in the mouse hypothalamus. Neurosci Lett. 2007;429(2-3):152–5. doi: 10.1016/j.neulet.2007.10.005. [PubMed: 17980967].*
15. *Blood AJ, Zatorre RJ. Intensely pleasurable responses to music correlate with activity in brain regions implicated in reward and emotion. Proc Natl AcadSci U S A. 2001;98(20):11818–23. doi: 10.1073/pnas.191355898. [PubMed: 11573015]. [PubMed Central: PMC58814].*
16. *Linnemann A, Ditzen B, Strahler J, Doerr JM, Nater UM. Music listening as a means of stress reduction in daily life. Psychoneuroendocrinology. 2015;60:82–90. doi: 10.1016/j.psyneuen.2015.06.008. [PubMed: 26142566].*
17. *Jiang J, Zhou L, Rickson D, Jiang C. The eûects of sedative and stimulative music on stress reduction depend on music preference. The Arts in Psychotherapy. 2013;40(2):201–5. doi: 10.1016/j.aip.2013.02.002.J Kermanshah Univ Med Sci. In Press(In Press):e86914.*

# तैयब मेहता का महिषासुरमर्दिनि : एक विवरणात्मक अध्ययन

**नेहा वर्मा***

**सार**

*2007 में 'पद्मभूषण' पुरस्कार से सम्मानित तैयब मेहता अपने अमूर्त विरूपण चित्रों के लिए राष्ट्रीय अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्राख्यात रहे हैं। 1993 में मेहता के आस–पास की तनावपूर्ण दुनिया के प्रतिबिंब को दर्शाती हुई यह महिषासुरमर्दिनी चित्र आशा का प्रतीक है। इस प्रकार इन्होंने सुप्रसिद्ध दुर्गा महिषासुरमर्दिनी का चित्र ऐक्रेलिक रंग में कैनवास पर चित्रित कर प्रतीकात्मक चित्रमयी भाषा का सृजन किया है। सन् 1984–85 के दौरान वे शान्तिनिकेतन में रहे जिसके बाद उनकी चित्रकारी में महत्वपूर्ण परिवर्तन देखने को मिला। इन्होंने महिषासुर रूप का श्रृंखला–चित्रण शांतिनिकेतन की यात्रा के बाद प्रारम्भ किया। इन्होंने प्राचीन आख्यानों को अपने काल्पनिक रूप, रंग व रेखा द्वारा सादगीपूर्ण तरीका से प्रत्यक्ष घटना के परिणामस्वरूप शक्तिशाली चित्रांकन किया है। वे कला के प्रति इस तरह समर्पित थे कि जब तक स्वयं अपने चित्र के पूर्ण रूप से संतुष्ट नहीं हो जाते तब तक अपनी कृतियों को सार्वजनिक नहीं करते थे।*

**शब्दावली** : *काली, दुर्गा, महिषासुरमर्दिनी, चित्र, महिषासुर*

**शोध–माध्यम** : *विभिन्न पुस्तकों, इण्टरनेट आदि द्वारा सामग्री संकलित कर यह शोध–पत्र तैयार किया गया है ।*

अंधकार, अनैतिकता व अज्ञानता–रुपी अनिष्ट शक्तियों से रक्षा करने वाली देवी निर्गुण या निराकार होकर विभिन्न रूप धारण कर अवतरित होती है, यह सत्व, रज तथा तम– इन तीनों गुणों का आश्रय लेती है और संपूर्ण जगत का सृजन, पालन तथा संहार करती है। देवी दुर्गा को महिषासुर के संहार की पौराणिक कथाओं से प्रेरित होकर ऐसी असंख्य रचनाओं का अंकन हुआ जिसमें आधुनिक तथा प्राचीन दोनों ही प्रकार की व्याख्याओं के साथ अत्यंत स्वाभाविक चित्रण हुआ है। प्रत्येक नवीन रचनात्मकता के साथ चित्रांकन व रेखांकन अमूर्त होती गई तथा व्याख्या भी परिवर्तित होती गई। मनुष्य ने पौराणिकता के साथ जो संबंध स्थापित किया है उसमें कला ने कई प्रकार के प्रयोगों से अपना योगदान दिया है। ऐसा कहा जाता है कि "creativity can occur anytime anywhere", अर्थात् रचनात्मकता कभी भी, कहीं भी सम्भव हो सकती है। इस वाक्यांश की सत्यता तैयब मेहता की कलाकृति "महिषासुरमर्दनी" (चित्र) में देखी जा सकती है। विख्यात कलाकार तैयब मेहता द्वारा महिषासुरमर्दनी की रचना सभी भारतीय समकालीन कलाओं में अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रसंशनीय हैं। मेहता गुजरात में 26 जुलाई 1925 को जन्मे जाने–माने कलाकार थे और प्रसिद्ध मुंबई प्रोग्रेसिव आर्टिस्ट ग्रुप के सदस्य भी थे जिस ग्रुप में एफ.एन. सौजा, एस.एच. रजा तथा एम.एफ. हुसैन भी थे। वे एक ऐसे चित्रकार थे, जिन्होंने राष्ट्रवादी 'बंगाल स्कूल ऑफ आर्ट' के पारंपरिकता से हटकर आधुनिक विधा का कार्य कर ख्याति प्राप्त की।

तैयब प्रभाववादी शैली का प्रयोग कर चित्रों का निर्माण करते थे जिसकी व्याख्या पूर्णतः पारंपरिक होती थी। देवी दुर्गा और महिषासुर के युद्ध की कहानी विभिन्न पुराणों में, विभिन्न परिस्थितियों के साथ विभिन्न तरीकों व विधाओं में वर्णित किया गया है। देवी दुर्गा की उत्पत्ति का प्रसंग मर्केण्डेय पुराण में मिलता है, वराह पुराण में महिषासुर की उत्पत्ति का वर्णन एक प्रसंग में बहुत ही उत्तम तरीके से व्यक्त किया गया है। वराह तथा पद्म पुराण में देवी को वैष्णवी संबोधित किया गया है। इसके अतिरिक्त वामन पुराण तथा अन्य पुराणों में भी देवी दुर्गा और महिषासुर के युद्ध एवं देवी दुर्गा द्वारा महि वर्णन मिलता है। मर्केण्डेय पुराण में यह बताया गया है कि महिषासुरमर्दिनि शिव, विष्णु, ब्रह्मा और विभिन्न देवों के

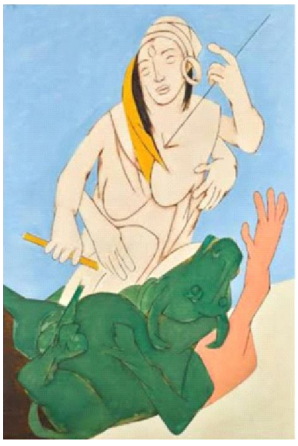

*शोध छात्रा, दृश्य कला संकाय, बी.एच.यू., वाराणसी

तेज से उत्पन्न हुई थी। श्री दुर्गासप्तशती के दूसरे तथा तीसरे अध्याय में वर्णित महिषासुर की सेना का वध नामक स्वर्ण मन्वंतर वर्णित है। देवी को विभिन्न हाथों की संख्या, मुद्राएँ, वस्त्र, आभूषण तथा विशेषताओं का वर्णन पुराणों तथा ग्रंथों में विभिन्न प्रकार से मिलता है। वस्तुतः देवी की प्रतिमा, विशेषताएँ, उनके विभिन्न रूपों के साथ विभिन्न ग्रंथों में वर्णित है।

दंत कथाओं के अनुसार महिषासुर रंभासुर का पुत्र था जो अत्यंत ही शक्तिशाली था। इसकी उत्पत्ति पुरुष और महिषी (भैंस) के संयोग से हुआ था, इसलिए इसका नाम महिषासुर पड़ा। अमर होने की इच्छा से ब्रह्मा को प्रसन्न करने के लिए कड़ी तपस्या की और प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने उसे वरदान दे दिया, वरदान के अनुसार महिषासुर को न कोई दानव, न कोई देव, और ना कोई मानव मृत्यु दे सकता था। इसी कारण महिषासुर ने पाताल लोक और मृत्यु लोक पर अपना आधिपत्य जमा लिया, तत्पश्चात् उसने देवताओं के इंद्रलोक पर भी आक्रमण कर देवताओं को परास्त कर दिया। इस हार का प्रतिशोध लेने के लिए देवताओं ने अपनी शक्तियों को एकजुट कर एक तेज उत्पन्न किया। उस तेज से देवी दुर्गा उत्पन्न हुईं, जिनका एकमात्र उद्देश्य उस असुरी शक्ति का विनाश करना था– "तया महासिना देण्या शिरश्छित्त्वता निपातितः ।। ४२ ।। अर्थात् तब देवी ने बहुत बड़ी तलवार से उसके मस्तक का छेदन कर दिया।"[1] अतः देवी दुर्गा ने अपने महिषासुरमर्दिनी अवतार में महिषासुर का वध किया। तैयब मेहता का महिषासुर मर्दिनी का चित्र इस यथार्थ क्षण को अधिकृत करता है। महिषासुरमर्दिनी की आकृति भावनाओं का एक प्रतीक बन गई है जिसे उस काल में जीवन में लाया गया था। तैयब मेहता ने द न्यूयॉक टाइम्स के साक्षात्कार में अपने चित्रों में महिष की आकृति का महत्व बताया। उन्होंने कहा– "विभाजन का वह हिंसात्मक दौर जिसका मैं स्वयं साक्षी हूँ। उस समय मैं एक ऐसी छवि या आकृति की तलाश कर रहा था जो वर्णित न हो किंतु वह आकृति मेरे अंदर की गहराई को सांकेतिक या प्रस्तावित कर सके।... क्या आपने किसी महिष को भागते हुए देखा है? बिना किसी कारण के इस कुशाग्र उर्जा का हनन या संघार किया जा रहा है।" महिष के इस पौराणिक आख्यान को तैयब ने अपने चित्र में हिंसा का विषय बना लिया। महिषासुर चित्र में ऊर्जा तथा आवेग का प्रतीकात्मक स्वरूप प्रतिबिंब है। महिष को रक्त सदृश लाल रंग की आकृति से बाहर निकलते हुए दर्शाया है।

पश्चिमी और भारतीय कला के लिए बुराई पर अच्छाई तथा अज्ञानता पर ज्ञान के प्रभुत्व के विषय पर चित्रण सामान्य है। "महिषासुर मर्दिनी की यह शक्तिशाली आकृति दर्शकों को रॉफेल के सेंट माइकल वैनिशिंग सतान जैसे शास्त्रीय चित्रण की याद दिलाता है जो बुराई पर अच्छाई की लड़ाई पर आधारित चित्रांकन है। बीसवीं शताब्दी में तैयब मेहता ने इस विषय को पुनः चित्रण में रूपांतरित किया है। भारत में सामाजिक ताना–बाना को छिन्न–भिन्न करने वाले घृणित समाज के धर्मनिरपेक्षता और सौहार्द की भावना के साथ क्रूरता को, देवी दुर्गा तथा राक्षस महिषासुर के रूप में विनियोजित व पुनर्गठित किया गया है।"[2] इस चित्र का शास्त्रीय पौराणिक कथाओं के साथ संबंध स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है तथा तैयब मेहता की कला इतिहास के दिग्गजों के साथ स्वयं को श्रेणीबद्ध करने का स्पष्ट प्रयास एक ऐतिहासिक संदर्भ में और भी रोचक हो जाता है। "उन्होंने हिंदू पौराणिक तत्वों के वैशिष्ट्य का पुनर्निर्माण किया जो एक ही समय में भयावह तथा मनोरम भी था। इस प्रकार, तैयब मेहता की चित्राकृति मात्र एक कला का टुकड़ा नहीं बल्कि यह एक वक्तव्य विवरण है जो रंगों से परे प्रसारित होता है।"[3]

1993 में दुर्गा महिषासुर मर्दिनी में तैयब मेहता ने अपने आस–पास की दुनिया के एक प्रतिबिंब को दर्शाया है। मुंबई में बढ़ते तनाव से घिरे माहौल के बावजूद मेहता की यह कृति आशा का प्रतीक बनी हुई थी। इस अवधि के दौरान मेहता ने प्रतिमा–विधान और सचित्र शब्दावली का निर्माण किया जिसने इनकी अद्वितीय शैली में अहम् भूमिका निभाई। यह कलाकृति 1993 में चित्रित किया गया जब मुंबई में बढ़ते सांप्रदायिक तनाव का दौर चल रहा था। 1992 के उत्तरार्द्ध में, मुंबई में दक्षिणपंथी समूहों ने लगातार शहर में क्रूर दंगे शुरू कराए जिससे तैयब मेहता बहुत प्रभावित हुए। इसी मनोदशा में कलाकार ने अपने कुछ प्रमुख चित्रों का निर्माण किया। पूर्व के विकर्ण (डायगोनल) कार्यों के विपरीत जो सीधे तौर पर दुख और पीड़ा में उलझे थे वहीं वर्तमान कार्यों में आशा और आशावाद की भावना के साथ जुड़े हैं। उनके विचार परिष्कृत बहुस्तरीय टिप्पणियों में परिवर्तित हो गए। महिषासुरमर्दिनी एक मार्मिक चित्रण है जो उस समयावधि को प्रतिध्वनित करती है। इस चित्र में दो आकृतियाँ हैं देवी दुर्गा और महिषासुर की जो

अमूर्त तथा मूर्त के कंपन के बीच युद्ध में अवरोधित है। यह चित्र फ्रांसिस बेकन के चित्रों की याद दिलाती है जिसमें विकृति तथा मर्मस्पर्श होते थे। उन कलाकारों ने जिन्होंने पहले विश्व युद्ध के दौरान न केवल हिंसा और शर्मिंदगी देखी बल्कि 1947 में विभाजन की भयावहता तथा 1992 के मुंबई के दंगे देखे, उन कलाकारों ने अपने कैनवास पर अधिक प्रबुद्ध शब्दों में मृत्यु व विनाश को अपने सृजन कौशल द्वारा प्रसारित किया। जिस प्रकार द्वितीय विश्वयुद्ध का प्रतिबिम्ब पिकासो के चित्रों में अंकित हुआ है, उसी प्रकार विभाजन के दौर की हिंसा का प्रतिबिम्ब भी अनेक कलाकारों, विशेषतः तैयब मेहता के चित्रों में दिखायी देता है। 'हिंसा' के शाश्वत रूप में ही पाब्लो पिकासो और तैयब मेहता की कला–निर्मिति हुई है। नव–विभाजित हिंदू भारत में रहने वाले एक मुस्लिम के रूप में मेहता ने कुछ भयावह घटनाओं का अनुभव किया जो भारत के इतिहास की देन है। "तैयब मेहता ने बताया– विभाजन के समय, मैं मोहम्मद अली रोड पर रहता था जो एक मुस्लिम यहूदी बस्ती था, मुझे याद है कि मैंने खिड़की के नीचे एक युवक का कत्ल होते देखा, भीड़ ने उसे पीट–पीटकर मार डाला, उसके सिर को पत्थर से मार दिया।"[4] इस भयावह दृश्य से वे अत्यंत भयभीत हो गए थे।

उस युग में स्पष्ट रूप से दुर्गा महिषासुरमर्दिनी कला के इतिहास में अपना एक प्रमुख स्थान बना ली थी और तैयब मेहता द्वारा यह शास्त्रीय भारतीय पौराणिक कथाओं को एक महत्तम सम्मान है। यह उत्कृष्ट कृति एक निजी कमीशन कार्य था और यह कलाकार द्वारा मानव–स्थिति के सबसे उत्तेजक चित्रण के रूप में माना जाता है, जिसे नागरिक संघर्ष के बाद प्रतिपादित किया गया। मेहता अपने मनोभावों के आख्यानों को संरक्षित करते थे तथा एक ही समय पर विशिष्ट कला के माध्यम से उसके सार्वभौमिक महत्व को उन्नत करते थे। ऐसा करने के लिए वे भारतीय शास्त्रीय पौराणिक कथाओं के कुछ श्रेष्ठ मार्मिक प्रसंगों का संदर्भ देते थे और उसे लगभग आर्मेचर के रूप में प्रयोग करते थे जिसको वे अपनी मनोभावों का आधार बनाते थे। तैयब मेहता की दुर्गा महिषासुरमर्दिनी उनकी पहली प्रतिष्ठित अभिव्यक्ति है, जो देवी दुर्गा के पौराणिक विषयवस्तु पर आधारित है और जिसमें देवी दुर्गा द्वारा महिषासुर– जैसे दानव को अपने त्रिशूल से वध करते हुए दर्शाया है। यह क्रोध के साथ नहीं बल्कि चिंता तथा कुंठा की भावनायुक्त प्रतिध्वनि है, जो उस काल के लिए पूर्ण रूप से अनुकूल था। अपने ब्रश स्ट्रोक के माध्यम से तैयब मेहता ने दोनों आकृतियों मां दुर्गा तथा महिषासुर को मांसलता, भावनात्मकता तथा ग्त्यात्मकता से युक्त बारीकियों को पकड़ने का प्रयास किया और वे उसमें सक्षम भी थे। दंड देने वाली दुर्गा की आकृति में उन्होंने क्रोध के बजाय विषाद और करुणा का भाव इंगित किया। यह कलाकृति भारतीय तिरंगे के रंग में रंगा हुआ है जिसमें शायद भारतीय मानस की हुई क्षति को दर्शाने का प्रयास किया गया है। वे बड़ी सतर्कता से अपने प्रतिबिंबो तथा उसके रंगों को चुनते थे जो उनके विचारों व भावनाओं पर अवलम्बित होते थे। उनके चित्रों का धरातल तथा आकृति हल्के एवं गहरे रंगों के चयन से चित्र उजागर होते थे। वे नाटकीय रूप से रंगों का प्रयोग करते थे, शांत नीले रंग की पृष्ठभूमि पर सफेद, हरे, काले तथा क्रीम रंगों के साथ नवीन तीव्रता के साथ सक्रिय होते थे। "इन्होंने विरूपण का प्रयोग स्वतंत्र रूप से किया जिसमें एक दूसरे को काटने वाली अमूर्त आकृतियों का प्रयोग है। इनके चित्र दर्शक के कल्पनाशीलता को उपजाते हैं।"[5] तैयब मेहता अपने रंगो, संयोजनों तथा मौलिक चित्र पद्धति के लिए प्रतिभाशाली कलाकारों में से एक थे। वे स्वयं को अभिव्यंजनावादी कलाकार मानते हैं ।

चित्र के केंद्रीय विषय के रूप में देवी दुर्गा तथा पथभ्रष्ट महिषासुर का स्वाभाविक परिणाम देखने को मिलता है। उनका अर्थ विषय के द्वारा विस्तार से व्यक्त किया गया है। निश्चित रूप से वास्तविक केंद्र में मां दुर्गा है, जिन्हें उठी हुई भुजाओं के साथ वीरतापूर्वक आकृति में अंकन किया गया है। अपने शस्त्र त्रिशूल द्वारा महिषासुर की गिरी हुई आकृति के ऊपर खड़े होकर असुर के हृदय पर प्रहार किया है। इस चित्र की शक्ति विषमस्तरीय में है। देवी अपने चरणों में गिरे हुए असुर को पराजित कर विजयी हुई हैं।

हालांकि 1980 में जब मेहता शांतिनिकेतन में थे उन्होंने बंगाल के संथाल जनजातियों के चरक वसंत उत्सव का दौरा किया। उस उत्सव के दौरान उनका एक आदिवासी महिला की शक्तिशाली उपस्थिति की ओर ध्यान केंद्रित हो गया। वह महिला माँ काली के आदर्श स्वरूप में रूपित थीं। उसकी उपस्थिति बहुत ही प्रभावशाली व शक्तिशाली थी, उसकी वह प्रभावशाली उपस्थिति मेहता के दिलो दिमाग में घर कर गई। वह पहले कभी भी किसी मनुष्य से इतना प्रभावित नहीं हुए थे। वह उपस्थिति उनके लिए यह

व्याख्या करती है कि माँ काली का मलू स्वरूप क्या है, जिसका अनुसरण कर मेहता ने 'काली' विषयक अपनी प्रमुख 6 कृतियों का निर्माण किया। मेहता ने 'महिष' विषय के रूपांकनों का पुनरीक्षण किया। 1994 में इन्होंने 'महिषासुर श्रृंखला' चित्रित किया। इन चित्रों में देवी का स्वरूप शक्तिशाली व प्रभावशाली है, दुर्गा महिषासुरमर्दिनी के रूप में अवलोकित होती हैं। दानव तथा देवी की रंग योजना अत्यंत मनोरम है। लाल और हरे रंग के उपयोग से वे स्पष्ट रूप से एक–दूसरे के विपरीत प्रतीत हो रहे हैं। इस विपरीतता के बावजूद यह स्पष्ट नही हो पाता है कि एक आकृति कहाँ खत्म होती है और दूसरी कहाँ शुरू। यह एक विचित्र किन्तु सामंजस्यपूर्ण लयात्मक संयोजन है। इनके चित्रों में प्रत्येक आकृति दूसरी आकृति की उपस्थिति से अपना मूल प्राप्त करती है। 1988 में उन्होंने बुल ट्रप्टिक का चित्रांकन किया। वस्तुतः दुर्गा महिषासुरमर्दिनी विषय को चित्रांकन करने के लिए अधिकांश प्रतिमाएँ तैयब के जहन में पहले से ही थी। "1993 में एक बार किसी ने उनसे देवी दुर्गा का चित्रण करने का आग्रह किया किंतु तैयब मेहता ने कहा मैं दुर्गा का चित्र नहीं कर सकता किंतु मैं महिषासुरमर्दिनी का चित्रण कर सकता हूँ, क्योंकि मैं महिष की आकृतियों का चित्रण करता हूँ। महाराष्ट्र तथा गुजरात में ऐसी जनजातियाँ हैं जो महिषासुर को एक देवता के रूप में पूजते हैं। अंततः तथ्य यह है कि जब देवी दुर्गा की पूजा करते हैं तो महिष की आकृति की भी पूजा साथ में करते हैं क्योंकि महिष भी देवी की प्रतिमा का एक अंग है। यह कहानी का एक अजीब मोड़ है जिसमें अच्छाई तथा बुराई दोनों का ही अस्तित्व साथ में दर्शाया हुआ है। चित्र 'दुर्गा महिषासुर मर्दिनी' मुंबई में सॉदबी की पहली नीलामी 'बाउंडलैस इंडिया' में 29 लाख डॉलर (करीब 20. 49 करोड़ रुपये) में बिकी। मेहता की पेंटिंग 1993 में उनसे लिये जाने के बाद से इसी निजी कलाकृति संग्रह में रही है।"[6] वे एकमात्र चित्रकार थे जिनकी कृतियाँ इतनी महंगी कीमतों में बिकीं। हृदय गति रूक जाने के कारण 2 जुलाई 2009 को उनका देहान्त हो गया।

**उपसंहार**– तैयब मेहता के कलात्मक कौशल द्वारा 'महिषासुरमर्दिनी' नामक कलाकृति दर्शकों के सामने प्रस्तुत हुआ और विश्व भर में विख्यात हुआ। इनकी कला वर्तमान की घटना का सन्दर्भ पुराणों में खोजती है और पुराणकथा को आज का सन्दर्भ देती है, इसीलिए वह लौकिक–अलौकिक रूप में रहती है। भारत में अनेक कलाकारों ने पौराणिक आख्यानों की चित्र रचना की है किन्तु तैयब मेहता की बात सबसे पृथक है क्योंकि इन्होंने आख्यानों का चित्रण ज्यों–का–त्यों नहीं किया। वे प्राचीन कथा को वर्तमान परिदृश्य से जोड़कर एक समृद्ध चित्र–भाषा को उत्पन्न करते थे। वे कम रंगो में, कठोर परन्तु लयपूर्ण रेखाओं से अपने भाव को प्रदर्शित करते थे। इनके अधिकांश चित्र संग्रहणीय हैं जो राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय संग्रहालयों में प्रदर्शित भी होती हैं।

**सन्दर्भ सूची :**

1. शास्त्री, आचार्य पण्डित श्रीशिवदत्त मिश्र, श्री दुर्गासप्तशती, तृतीय अध्याय, 2008
2. https://www.sothebys.com/en/auctions/ecatalogue.2018/boundless-india-in1801/lot.23.html
3. https://www.swadesi.com/news/mahishasura-the-shifting-of-demons/
4. Interview with N.T.Seth, Tyeb Mehta: Ideas Images Exchanges, Vadhera Art Gallery, New Delhi, 2005
5. Mango, Prannath, Contemporary Art in India-A Perspective, National Book Trust, New Delhi, 2017
6. https://www.sothebys.com/en/auctions/ecatalogue/2018/boundless-india-in1801/lot.23.html

# चिढ़गाँव क्षेत्र की देव तालों का सांगीतिक अध्ययन

**डॉ. लता**** **यशवंत***

**सारांश**

*हिन्दू संस्कृति में आदिकाल से ही देवी–देवताओं के प्रति अटूट श्रद्धा रही है। देव–पूजा हिन्दू संस्कृति का एक अंग है। भारत के खूबसूरत राज्य हिमाचल प्रदेश में अनेक देवी–देवता निवास करते हैं। देवी–देवताओं की इस पावन धरती को देव–भूमि के नाम से संम्पूर्ण विश्व में जाना जाता है। जिला शिमला का चिढ़गाँव क्षेत्र देवी–देवताओं की आस्था से जुड़ा है। पुराने समय से ही चिढ़गाँव क्षेत्र देवी–देवताओं की आराधना का स्थल रहा है। चिढ़गाँव क्षेत्र में विभिन्न उत्सवों व त्योंहारों पर देवी–देवताओं की पूजा की जाती है। देव–पूजा में लोक–वाद्यों पर देव तालों का वादन किया जाता है। देवताओं की शोभा यात्रा के आगे लोक वाद्य का वादन, नृत्य व देव गीतों का गायन किया जाता है। इस शोध–पत्र में चिढ़गाँव क्षेत्र की देवतालों का सांगीतिक अध्ययन किया गया है।*

**मुख्य शब्द** : *देव संस्कृति, चलन ताल, देव ताल, लोक वाद्य, आरती ताल*

**शोध–प्रविधि** : *विषय से संबंधित समस्त कार्य वर्णनात्मक, गुणात्मक एवं मात्रात्मक विधि से किया गया है । दत्त सम्पूर्ण सामग्री को साक्षात्कार के माध्यम से एकत्र किया गया है, साथ ही, सैद्धांतिक ज्ञान गौण स्रोतों, पुस्तकों, साहित्य–पत्रों, इन्टरनेट इत्यादि के द्वारा एकत्र किया गया है।*

हिमाचल प्रदेश को जहाँ प्राकृतिक सौन्दर्य का वरदान प्राप्त है, वहीं इसे देव–पूजा का गौरव भी प्राप्त है। देवों की इस पावन भूमि को 'देव भूमि' भी कहते हैं। हिमाचल प्रदेश का चिढ़गाँव क्षेत्र भी देवी–देवताओं की आस्था से जुडा हुआ है, यहां हर गांव में अपना देवता है। चिढ़गाँव क्षेत्र में देवी–देवताओं के अनेक मंदिर है। देवी–देवताओं से जुडे असंख्य त्योंहार यहां मनाए जाते है। उत्सवों में देवी–देवताओं की पालकियों को कंधे पर उठाकर लाया जाता है। संम्पूर्ण हिमाचल में स्थानीय देवता की अपनी प्रजा होती है, जो अपने ईष्ट देवी–देवता की पूजा करती है। देव उत्सवों में देव–गीतों, देव–स्तुति, देव–वादन व नृत्य का प्रयोग किया जाता है। देव–संगीत मे देव–गायन की भांति देव–वादन भी विशेष महत्त्व रखता है। देव–वादन के बिना देव–संगीत अधूरा है। देवी–देवताओं के हर कार्य में देव–तालों का वादन लोक वाद्यों पर किया जाता है। देव–चलन, देव–मिलन, देव–पूजा आदि से सम्बधित अलग–अलग देव तालें हैं, इन तालों का वादन देव संस्कृति से जुड़े तुरी जाति के लोगों द्वारा किया जाता है। देव संगीत में लोक वाद्य ढोल, नगाडा, करनाल, रणसिंगा, शहनाई, बाम, थाल इत्यादि का प्रयोग किया जाता है।

## साहित्य की समीक्षा

हिमाचल प्रदेश की देव संस्कृति से जुडे देव गीतों पर शोध कार्य किया गया है। "चिढ़गाव क्षेत्र की देवतालों का सांगीतिक अध्ययन" शोध का नया विषय है, जिस पर अभी तक कोई कार्य नहीं हुआ है। कीर्ति गर्ग द्वारा शिमला सोलन क्षेत्र के देव गीतों का सांगीतिक विश्लेषण, में शिमला तथा सोलन में प्रचलित देव संगीत का साहित्यक विवेचन, देव त्योहार व उत्सव, देव गीत, देव नृत्य, देव गीतों में प्रयुक्त लोक–वाद्य व देव–तालों का अध्ययन किया गया है।

## शोध–पत्र

हिमाचल प्रदेश ऊँचे–नीचे पर्वत, समतल भूमि, बहती नदियाँ, पेड़–पौधों की प्राकृतिक सुन्दरता से घिरा है। हिमाचल प्रदेश राष्ट्रीय स्तर पर अपनी संस्कृति, रीति–रिवाजों के लिए अपनी एक अलग पहचान रखता है। यह राज्य विभिन्न कलाओं, संस्कृतियों से परिपूर्ण है। भारतवर्ष के इस छोटे से राज्य का अपना इतिहास है। हिमाचल की देव संस्कृति विश्वभर में प्रसिद्ध है। राज्य के प्रत्येक क्षेत्र में देवी–देवता निवास करते है। हिमाचल के

*पीएच.डी. शोधार्थी, संगीत विभाग, लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी, जालंधर
**असिस्टेंट प्रोफेसर, संगीत विभाग, लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी, जालंधर

लोगों का देवी–देवता में अटूट विश्वास है। देवी–देवता परमात्मा के ही उत्तम अंग माने जाते हैं। देवी–देवताओं में अलौकिक शक्ति रहती है। हिमाचल के विभिन्न स्थानों पर इनके मंदिर पाए जाते है जहाँ देव संगीत आकर्षक रूप में प्रदर्शित किया जाता है। प्राचीन समय से ही हिमाचल देवी–देवताओं की पूजा, आराधना का स्थल रहा है। यहाँ मंदिरों में प्रतिदिन पूजा की जाती है। देवी–देवताओं के मंदिरों में विशेष अवसर पर त्योहार मनाए जाते हैं। देव संस्कृति से जुडे सभी त्यौहारों पर देव संगीत का विशेष महत्त्व होता है। देवी–देवताओं से संबंधित उत्सवों मे प्रयोग किए जाने वाले संगीत को ही 'देव संगीत' कहते है। इसमें परम्परागत देव गीतों, लोक वाद्यों, लोक नृत्यों का आयोजन होता है। शिमला हिमाचल प्रदेश की राजधानी है। राजधानी शिमला का चिढ़गाव क्षेत्र पहाड़ियों में बसा हुआ है। इस क्षेत्र में देव आस्था से जुडे लोग निवास करते है। क्षेत्र के विभिन्न उत्सवों पर देवी–देवताओं की पूजा की जाती है। लोग अपनी कामनाओं की पूर्ति के लिए तथा अपना जीवन सुखमय बनाने के लिए देवी–देवताओं की पूजा करते हैं। देवी–देवताओं की पूजा पुजारी द्वारा की जाती है। देव संगीत में देवगीत, देव वादन, देव नृत्य का समावेश होता है। चिढ़गाव में देवी–देवताओं से संबंधित अनेक उत्सव मनाए जाते हैं। स्थानीय देवी–देवता लोक वाद्यों के वादन के साथ उत्सवों व मेलों में आते हैं। देव तालों वादन के बिना कोई भी कार्य पूर्ण नहीं होता। देव तालों का लोकवाद्यों पर वादन देव परम्परा में विशेष महत्व रखता है। देव तालें देव परम्परा में पारम्परिक रूप में ही विद्यमान है। ये ताल नौमत, प्रभात, जातर, आरती आदि हैं। चिढ़गाव क्षेत्र में कई प्रकार के लोक वाद्य पाये जाते हैं। इन वाद्यों में अनेक वाद्य ऐसे हैं जिन्हें देव–वाद्य के नाम से पुकारा जाता है। देव–वाद्य पर बजाई जाने वाली तालों को देव ताल कहते हैं। देव उपासना के लिए विभिन्न देव स्तुति गीत, भजन गाए जाते हैं। देव पूजा के लिए उत्सवों में देव ताल का वादन कलाकारों द्वारा किया जाता है। चिढ़गाव क्षेत्र में देव तालों का वादन सामूहिक रूप से किया जाता है।

### 1. आरती ताल

जैसा कि नाम से ही प्रतीत होता है, यह ताल देव–पूजा से सम्बधित है। प्रातःकाल तथा सायंकाल को आरती, पूजा के लिए इस ताल का वादन देव–वाद्यों पर किया जाता है। आरती ताल बारह मात्रा की देव ताल है, जो शास्त्रीय ताल एकताल व चारताल से मेल खाती है। आरती ताल के बोल शास्त्रीय ताल से भिन्न हैं। इस ताल का वादन ढोल, नगाडा, शहनाई की धुन पर किया जाता है–

| मात्रा | 1 | 2 | 3 | 4 | 5 | 6 | 7 | 8 | 9 | 10 | 11 | 12 |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| बोल | धा | ता | धींऽन | धा | ता | कड़कड़ | तां | तड़ा | धींऽन | धा | ता | कड़कड़ |
| चिन्ह | x | | | 2 | | | 3 | | | 4 | | |

### 2. जातर ताल

चिढ़गाव में समय–समय पर देव–त्योहारों का आयोजन होता रहता है। देव–पूजा तथा देव–नृत्यों में विभिन्न ताल बजाए जाते हैं। इस संपूर्ण क्षेत्र में देव नृत्य–तालों में जातर ताल प्रमुख है। यहाँ मेलों को 'जातर' नाम से पुकारा जाता है। इसलिए ही जातर में देव नृत्य में बजने वाली ताल को जातर ताल कहते हैं। यह ताल चार मात्रा का ताल है, जिसका वादन रणसिंगा, करनाल, शहनाई, ढोल, नगाड़े की धुन पर किया जाता है।

जातर ताल

| मात्रा | 1 | 2 | 3 | 4 |
|---|---|---|---|---|
| बोल | धाकिता | धिनाकी | धिनाकी | धाकड़कड |
| चिन्ह | x | 2 | 3 | 4 |

### 3. देव नृत्य ताल

देव संस्कृति में देव–नृत्य–ताल का विशेष महत्व है। इस ताल का वादन देव–उत्सवों में देवताओं के मिलन के

बाद देव पालकी–नृत्य के लिए किया जाता है। देव नृत्य ताल छः मात्राओं का ताल है। इसका वादन देव–वाद्यों पर किया जाता है। देवी–देवताओं से सम्बधित सभी उत्सवों व त्योंहारों में नृत्य ताल का वादन स्थानीय कलाकारों द्वारा किया जाता है।

देव नृत्य ताल

| मात्रा | 1 | 2 | 3 | 4 | 5 | 6 |
|---|---|---|---|---|---|---|
| बोल | धा | कता | धिनाकी | धिनाकी | धा | तिरकिट |
| चिन्ह | x | | 2 | | | 3 |

**4. आरती ताल रात्रि**

यह ताल देव–पूजन की ताल है, जिसका वादन रात्रि आरती में किया जाता है। प्रतिदिन मंदिरों में आरती ताल का वादन कलाकारों द्वारा देव–वाद्यों पर किया जाता है। आरती ताल का वादन केवल देव आरती के समय ही किया जाता है। यह आठ मात्राओं की देवताल है। आरती ताल में दो–दो मात्राओं के चार विभाग बनते है।

आरती ताल रात्रि

| मात्रा | 1 | 2 | 3 | 4 | 5 | 6 | 7 | 8 |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| बोल | धा | ऽकड़ | धा | कड़िग | ता | ऽकड़ | ता | कड़िग |
| चिन्ह | x | | 2 | | 0 | | 3 | |

**5. चलन ताल**

देव–तालों में इस ताल का विशेष महत्त्व है। जब देवी–देवता मंदिर से किसी देव उत्सव व त्योंहारों के लिए अपनी प्रजा के साथ प्रस्थान करते या वापस लौटते हैं, तब देव–वाद्यों पर इस ताल का वादन किया जाता है। चलन का अर्थ 'चलना' है। चलन ताल आठ मात्राओं की ताल है। इसकी ताल–लिपि इस प्रकार है :–

चलन ताल

| मात्रा | 1 | 2 | 3 | 4 | 5 | 6 | 7 | 8 |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| बोल | धा | किड़ | धी | ना | ता | किड़ | धी | ना |
| चिन्ह | x | | 2 | | 0 | | 3 | |

**6. देव मिलन ताल**

समस्त देव तालों में देव मिलन ताल का भी अपना अलग महत्व है। इस ताल का वादन सिर्फ देव मिलन पर ही किया जाता है। देव उत्सव तथा त्योंहारों में जब एक देवी–देवता किसी दूसरे देवी–देवता से मिलते हैं तो उनके मिलन पर स्थानीय वादकों द्वारा वाद्य–यन्त्रों पर देव–मिलन–ताल का वादन किया जाता है। यह चौदह मात्राओं की ताल है जिसमें चार–चार मात्राओं के दो व तीन–तीन मात्राओं के भी दो विभाग बनते हैं–

| मात्रा | 1 | 2 | 3 | 4 | 5 | 6 | 7 | 8 | 9 | 10 | 11 | 12 | 13 | 14 |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| बोल | धा | धा | धी | न | धा | तिरकिट | धा | त | त | धी | न | धा | तिरकिट | ध |
| चिन्ह | x | | | | 2 | | | 0 | | | | 3 | | |

### 7. नोमत ताल

नोमत ताल देव पूजन की प्रमुख तालों में से एक है। यह पन्द्रह मात्राओं की पूजन ताल है। इसका वादन शाम की देव पूजा में कलाकारों द्वारा पारम्परिक देव–वाद्यों पर किया जाता है। नोमत ताल का वादन दो तरह से किया जाता है। प्रतिदिन नोमत ताल का वादन किया जाता है। देवी–देवता अपने मंदिर में हों या किसी देव–उत्सव में तालों का वादन निश्चित समय पर ही किया जाता है।

नोमत ताल

| मात्रा | 1 | 2 | 3 | 4 | 5 | 6 | 7 | 8 | 9 | 10 |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| बोल | धा | कड़धा | तीना | घीना | धा | कड़धा | तीना | घीना | धा | कड़धा |
| चिन्ह | x | | | | 2 | | | | 3 | |

| 11 | 12 | 13 | 14 | 15 |
|---|---|---|---|---|
| तीना | घीना | ता | कड़ | धाधा |
| | | 0 | | |

**निष्कर्ष** : हिमाचल प्रदेश की देव–संस्कृति विश्वभर में प्रसिद्ध है। देव–संस्कृति देव–समाज में प्राचीन रूप में विद्यमान है। शिमला जिला के चिढ़गांव क्षेत्र में अनेक देवी–देवता निवास करते हैं। देवी–देवताओं से जुड़े कई मेले और त्यौहार स्थानीय लोगों द्वारा मनाए जाते हैं, लोगों का देवी–देवताओं पर अटूट विश्वास है। शोध–पत्र के लिए अध्ययन करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकलता है कि चिढ़गाँव क्षेत्र में अनेक देव तालें प्रचलित हैं, जिनका देवी–देवताओं के कार्यों से घनिष्ट सम्बध है। देव तालों में यहाँ आरती, नोमत, चलन, मिलन, देव नृत्य आदि तालें प्रमुख है। चिढ़गांव क्षेत्र की देव संस्कृति में देव–गीत, देव–नृत्य और देव–वादन की तीनों कलाओं का प्रचलन है। देव संस्कृति में देव तालों का विशेष महत्त्व है। देवी–देवताओं का कोई भी कार्य और उत्सव बिना देव तालों के पूर्ण नही होता।

**आभार** : शोधार्थी द्वारा विषय से संबंधित सामग्री को प्रत्यक्ष रूप से देव ताल वादन करने वाले कलाकारों से एकत्र किया गया है। उन्हें बहुत आभार।

**संदर्भ सूची** :

1. गर्ग, कीर्ति, सोलन क्षेत्र के देव गीतों का सांगीतिक विश्लेषण, शोध–प्रबंध, शिमला विश्वविद्यालय, 1999
2. श्री जगदीश जी, तबला वादक, राजकीय महाविद्यालय सरस्वतीनगर सावडा, से साक्षात्कार, तिथि : 31–05–2022
3. डॉ. रोहित मोक्टा, संगीत अध्यापक, से साक्षात्कार, तिथि : 07–06–2022
4. श्री रोशन लाल, तुरि समुदाय से संबंधित, से साक्षात्कार, तिथि : 19–07–2022
5. श्री मस्त राम, तुरि समुदाय से संबंधित, से साक्षात्कार, तिथि : 11–08–2022

# तिहाइयों के प्रकार : तबला–वादन के विशेष सन्दर्भ में

**डॉ. ज्ञानेश चन्द्र पाण्डेय**** **आनंद कुमार मिश्रा***

***शोध सार***

*उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत में तबला वाद्य का स्वतंत्र वादन के साथ–साथ संगति में भी विशेष महत्त्व है । इसके दोनों ही पक्षों, चाहे वह स्वतंत्र वादन हो अथवा संगति, तिहाई का महत्वपूर्ण स्थान है । पेशकार, कायदा, उठान, रेला, लग्गी–लड़ी, बाँट, टुकडा आदि सभी का समापन प्रायः तिहाइयों से ही किया जाता है । इसके उपरान्त संगत में तो अधिकाधिक वादन का समापन और कभी–कभी सिर्फ तिहाई बजा कर ही सम पर आने की परम्परा है । इसके अतिरिक्त तिहाइयों के कई प्रकार भी हैं । तिहाइयों के निर्माण हेतु कुछ नियम और सिद्धांत हैं जिसका पालन करना एक साधक और प्रस्तुतकर्ता दोनों के लिए अनिवार्य होता है ।*

**सूचक शब्दः**– *तिहाई, दमदार, बेदम, फरमाईशी, चक्रदार, कमाली*

**शोध उद्देश्यः**– *प्रस्तुत शोध–पत्र के लेखन का मुख्य उद्देश्य तबला–वादन में प्रयुक्त तिहाइयों के प्रकारों का अध्ययन करना है।*

**शोध प्रविधिः**– *प्रस्तुत शोध–पत्र के लेखन के लिए पत्र–पत्रिकाओं तथा पुस्तकों एवं साक्षात्कार से तथ्यात्मक सामग्री एकत्रित की गयी है।*

## तिहाई की परिभाषा और बोल प्रयोग

जब कुछ मात्राओं के बोल समूह को "धा" वर्ण के साथ जोड़ दिया जाय और तीन बार बजा कर सम पर "धा" के साथ आते हैं तो उसे "तिया" अथवा "तिहाई" कहते हैं। तिहाई के संदर्भ में 'संगीत विशारद' में वसंत कहते हैं– "किसी भी टुकड़े को तीन बार इस प्रकार बजाया जाय कि उसका अंतिम धा सम पर आवे उसे तिहाई अथवा तिया कहते हैं ।"[1] "धा" वर्ण तिहाई के साथ जोड़ने से तिहाई प्रभावपूर्ण हो जाती है। क्योंकि सभी वर्णों में "धा" सबसे अधिक बलशाली तथा असरदार है। यद्यपि हम तालों की बात करें तो कुछ तालों की शुरुआत "ती", "क" और "धी" जैसे बोलों से होती है। मेरा मानना है कि यदि "ती", "क" बोलों का प्रयोग ही सम पर किया जाय तो और भी आकर्षक होगा। "धी" तथा "धा" में लव और चांटी का सामान्य अंतर होता है तो वहां 'धा' वर्ण ही सुयोग्य होगा।

**तिहाई के प्रकार :–**

तिहाई मुख्यतः दो प्रकार की होती है–

दमदार तिहाई

बेदम तिहाई

**दमदार तिहाई :–**

दम का अर्थ है ठहराव, कुछ मात्रा या काल का रुकना या विराम देना । जब कोई भी तिहाई गायी, बजाई या दर्शाई जाती है तो उसमें बराबर के मात्रा में तीन पल्ले अर्थात् भाग होते हैं जो यह दर्शाते हैं कि यह तिहाई है या तिहाई का स्वरूप है स उन तीनों पल्लों अथवा भागों के बीच–बीच में कुछ पल, क्षण, मात्रा का विराम दिया जाता है, इसे 'दम' कहा जाता है। जिसमें तीन "धा" में से तीसरा "धा" सम पर होता है और उसके बाद दम नहीं लगता है। दमदार तिहाई के सन्दर्भ में श्री मनोहर भालचन्द्रराव मराठे का मत इस प्रकार है– "ऐसी तिहाई जिसके वादन में तिहाई का पहला एवं दूसरा धा कम–से–कम एक पूर्ण मात्रिक काल का हो, उसे दमदार तिहाई कहते हैं।"[2]

**उदाहरण के लिए विभिन्न तालों में दमदार तिहाई :–**

**झपताल (10 मात्रा) :–**

| क | त | धा | ऽ | क | त | धा | ऽ | क | त | धा |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| X | | 2 | | | 0 | | 3 | | | X |

**तीनताल (16 मात्रा) :–**

| ते | टे | क | त | धा | ऽ | ते | टे | क | त | धा | ऽ | ते | टे | क | त | धा |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| X | | | | 2 | | | | 0 | | | | 3 | | | | X |

कुछ तालें जिनमें सम "धा" न हो कर "ती" और "क" होते हैं उनकी तिहाइयों का स्वरूप कुछ लग होता

*शोधार्थी, गायन विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

**सहायक आचार्य, गायन विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

है । जैसे रूपक ताल का सम "ती" है और धमार ताल का "क" है तो तिहाई भी वैसे बनेगी जो बजाने में सहज और सुनने में कर्णप्रिय हो।

रूपक ताल में दमदार ("ती" सम) :–

| धातिघिना | ति | ऽ | धातिघिना | ति | ऽ | धातिघिना | ति |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| X | | | 2 | | 3 | | X |

धमार ताल में दमदार ("क" सम):–

| क्रधा | तूना | क | ऽ | ऽ | ऽ | क्रधा | तूना | क | ऽ | ऽ | ऽ |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| X | | | | | 2 | | 0 | | | | 3 |

| क्रधा | तूना | क |
|---|---|---|
| | | X |

**बेदम तिहाई :–**

"बेदम" जैसा कि नाम से दर्शाया जा रहा है "बिना दम के" अर्थात् जिस तरह तिहाई में धा वर्ण जोड़ने के उपरान्त दम या विश्रांति नहीं होती। पंडित छोटे लाल मिश्र के कथनानुसार चौगुन के बोलों में इसकी तिहाई में धा वर्ण के उपरांत एक चौथाई मात्रांश का दम होता है तो उसे दमदार की श्रेणी में नहीं रखना चाहिए।[3] वैसे ठाह और दुगुन में ही बेदम ज्यादा उपयोगी होता है। कुछ उदाहरण हैं जिससे बेदम की तिहाई स्पष्ट होती है।

**धमार ताल में बेदम :– (ठाह का उदाहरण)**

| क्र | धा | तू | ना | कत | क्र | धा | तू | ना | क | क्र | धा | तू | ना | क |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| x | | | | | 2 | | 0 | | | 3 | | | | x |

**झपताल में बेदम :– (दुगुन का उदाहरण)**

| धागे | तिर | किट | धाधा | गेति | रकि | टधा | धागे | तिर | किट | धि |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| x | | 2 | | | 0 | | 3 | | | x |

**तीनताल में बेदम :– (चौगुन का उदाहरण)**

| कतेटेता | गेनतागे | तेटेकत | गदिगन | गदिगन | धाऽकते | टेतागेन | तागेतेटे |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| x | | | | 2 | | | |

| कतगदि | गनगदि | गनधाऽ | कतेटेता | गेनतागे | तेटेकत | गदिगन | गदिगन | धा |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| 0 | | | | 3 | | | | x |

**तिहाइयों में चक्रदार का स्वरूप :–**

तिहाइयों में एक विशेष प्रकार "चक्रदार" होता है। जिस बंदिश, तिहाई या किसी भी रचना में "चक्र" लगा हो उसे चक्रदार की श्रेणी में रखते हैं। "चक्र" का अर्थ है घूमना अर्थात् जिस बोल समूह में तिहाई चक्र के रूप में ताल के न्यूनतम दो आवृति में "धा" वर्ण के साथ सम पर आते हैं, उसे 'चक्रदार' कहा जाता है। साधारणतः चक्रदार ताल के दो, तीन और चार आवृतियों में ही आते हैं और उनकी तिहाइयाँ कुल नौ बार पुनरावृति होने पर सम पर आती हैं। उदाहरण के तौर पर हम तीनताल (16 मात्रा) को लेते हैं तो उसके तिहाई का गणितीय स्वरूप 16+1(सम)/3 = 17/3 होता है

तो इसमें 3 से भाग देने पर 3 **X** 5 = 15 और शेष 2 मात्रा दम हो जाता है, जो तिहाई के तीनों पल्लों के बीच एक–एक मात्रा के लिए प्रयुक्त होता है । इसी तरह चक्रदार का गणितीय स्वरूप देखें तो–

$$\frac{16 \text{ (ताल की मात्रा)} \times 2 \text{ (आवृत्ति)} + 1\text{(सम)}}{3} = \frac{33}{3} = 11 \text{ मात्रा}$$

11 मात्राओं का एक पल्ला होता है, जिसमें बोल और तिहाई दोनों का समावेश होता है। अब इसमें 2 मात्राओं का बोल और 9 मात्राओं की तिहाई का निर्माण किया जा सकता है, जिससे चक्रदार का एक पल्ला तैयार हो जाता है। इस एक पल्ले को 3 बार पुरावृत्ति कर के सम पर आते हैं। उपर्युक्त मात्राओं को तीनताल में यदि बोलबद्ध किया जाय तो–

| | | | | | | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| क | त | धा | ति | धा | धा | ति | धा | धा | ति | धा | क | त | धा | ति | धा |
| X | | | 2 | | | | 0 | | | | | 3 | | | |

| | | | | | | | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| धा | ति | धा | धा | ति | धा | क | त | धा | ति | धा | धा | ति | धा | धा | ति | धा |
| X | | | | 2 | | | | 0 | | | | 3 | | | | X |

परन्तु वादन के समय कलाकार प्रायः दुगुन, चौगुन, अठगुन और कभी–कभी 16 गुन तक के बोलों का प्रयोग करता है। चक्रदार के कई रूप होते हैं, जैसे– चक्रदार तिहाई, चक्रदार टुकड़ा, चक्रदार परन इत्यादि। परन्तु इनका गणितीय विवेचना ही है जो उपर्युक्त बताया गया है।

**तीनताल में साधारण चक्रदार :– (चौगुन का उदाहरण)**

| | | | | | | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| तिरकिट | तकताऽ | तिरकिट | धाऽतिऽ | धाऽऽऽ | तिरकिट | धाऽतिऽ | धाऽऽऽ | तिरकिट | धाऽतिऽ | धाऽऽऽ | तकताऽ | तिरकिट | धाऽतिऽ | धाऽऽऽ | |
| X | | | | 2 | | | | 0 | | | 3 | | | | |

| | | | | | | | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| तिरकिट | धाऽतिऽ | धाऽऽऽ | तिरकिट | धाऽतिऽ | धाऽऽऽ | तिरकिट | तकताऽ | तिरकिट | धाऽतिऽ | धाऽऽऽ | तिरकिट | धाऽतिऽ | धाऽऽऽ | तिरकिट | धा |
| X | | | | 2 | | | | 0 | | | 3 | | | | X |

**चक्रदार के विभिन्न प्रकार और तबले पर प्रयोग :–**

चक्रदार रचनाएँ तबला–वादन में सोलो और संगत दोनों में ही बहुतायत प्रयोग किये जाते हैं। तबले में चक्रदार तिहाइयाँ, चक्रदार टुकड़े, चक्रदार परनें, विभिन्न घरानों की विभिन्न चक्रदार बंदिशें और यदा–कदा चक्रदार गतें भी प्रायः सोलो–वादन में बजाई जाती हैं । चक्रदार तिहाइयाँ स्वतंत्र रूप से और किसी विस्तारशील रचना के समापन में भी बजाई जाती हैं। चक्रदार के मूलतः तीन प्रकार हैं–

**फरमाईशी चक्रदार :–**

चक्रदार का यह प्रकार साधारण चक्रदार की अपेक्षा बड़ा होता है। इसे किसी विशेष अवसर पर, खास कर एकल वादन में, बोल कर और फिर बजा कर दिखाने की प्रथा है। फरमाईशी बंदिशें पहले श्रोताओं की फरमाईश पर बजाई जाती

थीं। इसकी पहचान यह है कि इसके पहले पल्ले की पहली तिहाई का पहला "धा" सम पर आता है, दूसरे पल्ले की दूसरी तिहाई का "धा" सम पर और तीसरे पल्ले की तीसरी तिहाई का अंतिम "धा" सम पर आता है। इसका गणितीय स्वरूप है–

$$\frac{10 \text{ (ताल की मात्रा)} \times 5 \text{ (आवृत्ति)} + 1\text{(सम)}}{3} = \frac{51}{3}$$

= 17 मात्रे का एक पल्ला होगा (बोल और तिहाई सहित)

**बनारस घराने का एक फरमाइशी चक्रदार टुकड़ा झपताल (10 मात्रा) में :–**

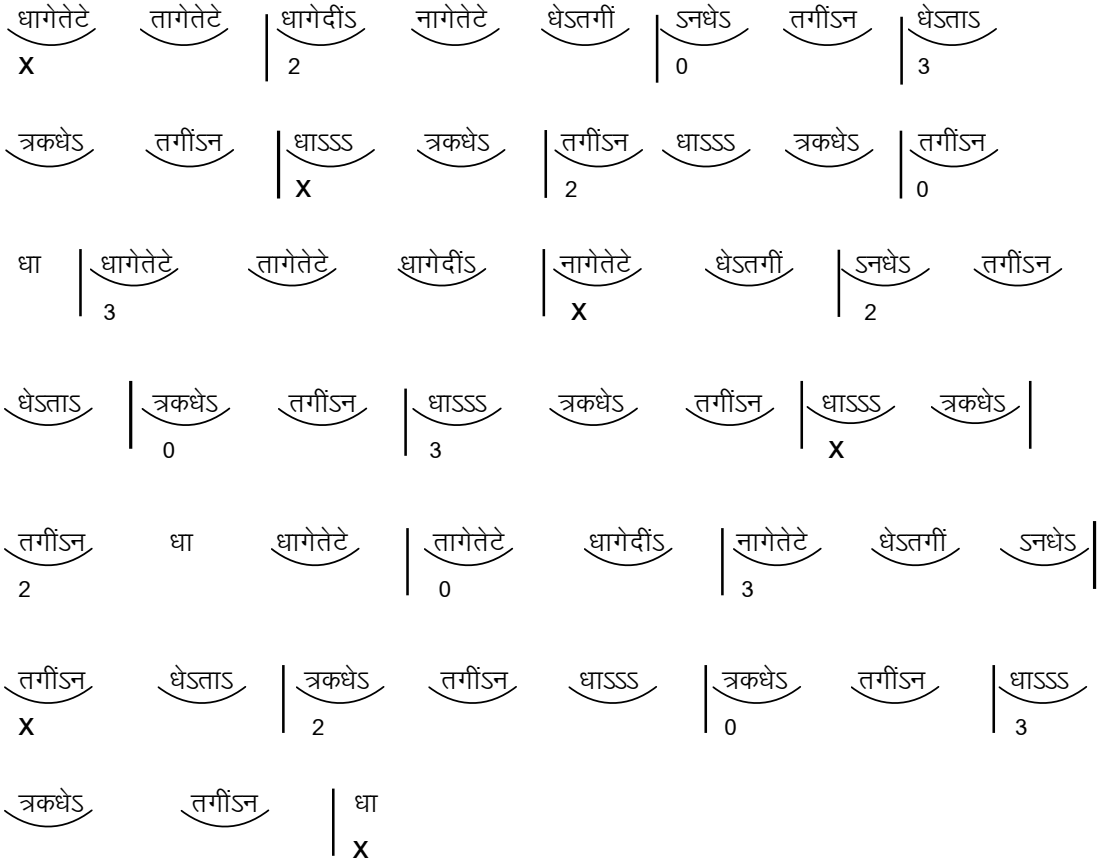


**कमाली चक्रदार :–**

यह भी एक चक्रदार का उदाहरण है। फरमाईशी की तरह इसका स्वरूप बड़ा होता है। पहले के संगीत बैठकों में विशेष कलाकरों से कुछ विशेष बंदिशें बजाने या गाने को कहा जाता था। उसी श्रेणी में ये रचनाएँ आती हैं। फरमाईशी की तरह कमाली भी पांच आवर्त्तन की होती है और कभी–कभी सात आवर्त्तनों की भी होती है। कमाली के नियमानुसार उस रचना के एक पल्ले में नौ "धा" होना अनिवार्य है। इस तरह कमाली में कुल 27 "धा" होते हैं जिसके पहले पल्ले के पहले चक्र का पहला "धा" सम पर, दूसरे पल्ले के दूसरे चक्र का 5 वां "धा" सम पर तथा तीसरे पल्ले के तीसरे चक्र का आखिरी "धा" सम पर आता है।

**बनारस घराने का एक कमाली चक्रदार टुकड़ा तीव्रताल (7 मात्रा) में–**

**नौहक्का :–**

यह भी चक्रदार का ही स्वरूप है, परन्तु यह फरमाईशी और कमाली चक्रदार की अपेक्षा छोटा होता है। यह कह सकते हैं कि नौहक्का कमाली चक्रदार का एक भाग होता है। कमाली के एक पल्ले के पहले चक्र में 9 "धा" होते हैं, उन्हें नौहक्का की श्रेणी में रखा जा सकता है। परन्तु नौहक्का एक स्वतंत्र रचना भी है जिसमें तिहाई को "धा" वर्ण से जोड़ कर 9 बार बजा कर सम पर आया जाता है। नौहक्का के सन्दर्भ में आचार्य गिरीश चन्द्र श्रीवास्तव का कथन है– "किसी तिहाई को अंतिम 'धा' सहित पूरा पूरा एक ढंग से तीन बार बजा कर सम पर आने को नौहक्का कहते हैं।[4]

**रुद्रताल में नौहक्का (बेदम) का उदाहरण निम्न है–**

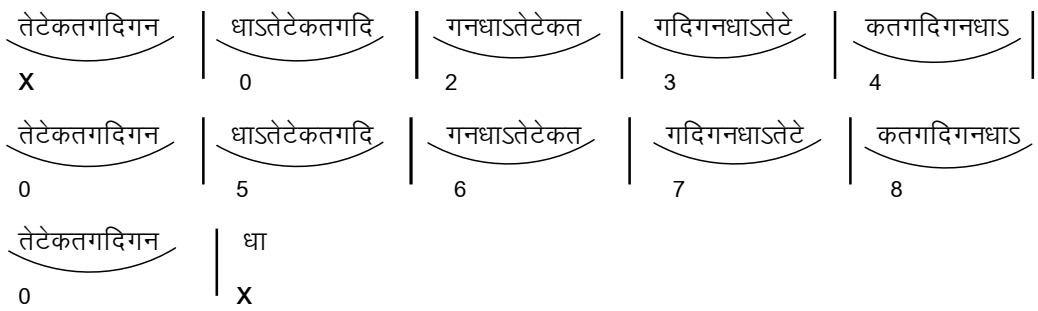


परन्तु ताल परिचय के लेखक डॉ. गिरीशचंद्र श्रीवास्तव द्वारा नौहक्का को दमदार और बेदमदार बताया गया है। उपर्युक्त उदाहरण बेदम नौहक्का का था। एक दमदार नौहक्का का उदहारण निम्न है–

**तीनताल में नौहक्का (दमदार) का उदाहरण निम्नवत् है–**

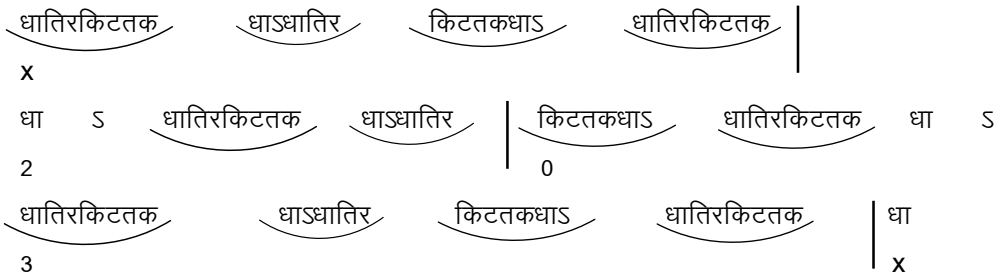


**तिहाई के कुछ अन्य प्रकार–**

**गिनती की तिहाई–**

तिहाई का यह स्वरूप वर्तमान काल में अत्यंत प्रचलित है जिसका पूरा श्रेय कथक सम्राट 'पद्मविभूषण' पंडित बिरजू महराज को जाता है जिन्होंने तिहाई को एक नया रूप दिया है। इस तिहाई में साधारण उच्चारण में गिनती का ही प्रयोग किया जाता है। बोलों के स्थान पर कई लयकारियों और छंदों सहित गिनती (1,2,3,...,9) का प्रयोग कर तिहाई का निर्माण करते हैं। तबले पर गिनती के उच्चारण को ध्यान में रखते हुए तबलावादक अपने कौशल और विवेक का प्रयोग कर उसमें तबले के बोलों (धा, तेटे, तिरकिट, किटतक, तू ना इत्यादि) का समावेश कर वादन करता है। यह प्रायः कथकनृत्य के साथ देखने को मिलता है। कभी–कभी कुछ तबला वादक अपने एकल–वादन में भी इसका प्रयोग करते हैं। पंडित बिरजू महराज द्वारा रचित गिनती की एक तिहाई जो शोधार्थी को पंडित रविशंकर मिश्र द्वारा साक्षात्कार के माध्यम से प्राप्त हुई, का उदाहरण इस प्रकार है[5]–

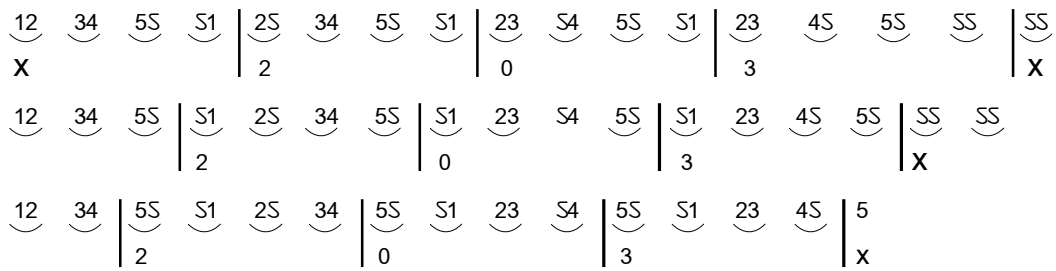


उक्त तिहाई का तबले पर निकास–

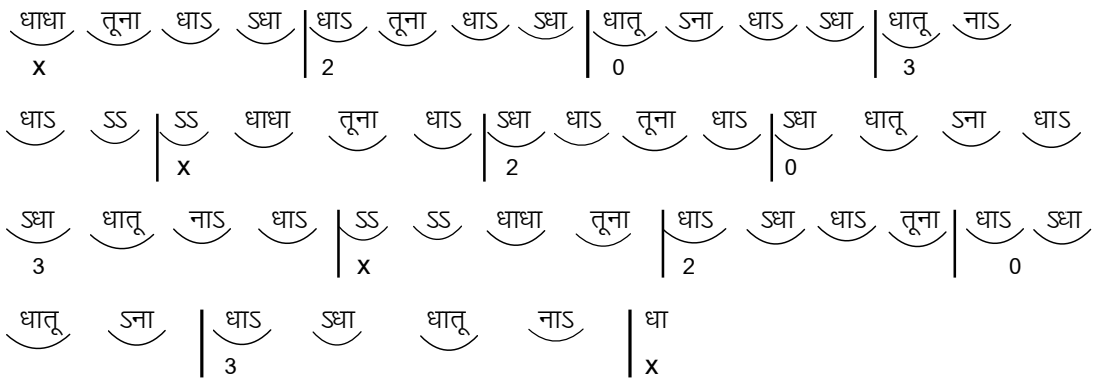


उक्त सभी के अलावा तिहाई के और भी अनेक प्रकार हैं। ताल के दस प्राणों में "ग्रह" से उत्पन्न दो प्रकार सम ग्रह और विषम ग्रह हैं। जो सम से प्रारम्भ किये जाते हैं वे सम ग्रह के अंतर्गत आते हैं और जो सम के अतिरिक्त प्रारम्भ

और समाप्त किये जाते हैं, रचनाओं के ऐसे प्रकार विषम ग्रह के अंतर्गत आते हैं। जब कलाकार अपनी कला में दक्ष हो जाता है तब यदा–कदा सम के बाद और सम के पहले सम दिखलाने का प्रयास करता है। यह उसके कला–कौशल और अद्‌भुत विवेक का परिचायक होता है। विषम ग्रह के भी दो प्रकार हैं–

**अतीत–**

लय, ताल की अथक साधना के बाद जब कलाकार बंदिश के रूप में और उपज अंग से भी सम के बाद सम दिखलाने की चेष्टा करता है तो उस रचना को अतीत के अंतर्गत रखते हैं। यह बहुत ही आकर्षक और श्रोताओं को मंत्र–मुग्ध करने वाला होता है। इसमें सम के एक मात्रा बाद, आधी मात्रा बाद और कभी–कभी चौथाई मात्रा बाद सम दिखलाने का चलन है ।

**लखनऊ घराना की एक प्रसिद्ध तिहाई का उदहारण –**

किटतकथुंथुं नातेटेता ऽधाधिंता क्रधाधिंता | कतेटेधा धिंताकऽ तेटेधाधिं
X 2

ताऽक्रधे | ऽधाधिंता कतेटेधा ऽथुंऽत धाऽऽऽ | ऽऽऽऽ थुंऽतधा ऽऽऽऽ ऽऽऽथुं | ऽतधाऽ
0 3 X

धिं धिं धा | धा धिं धिं धा | धा तिं तिं ता | ता धिं धिं धा | धा
2 0 3 X

**अनागत–**

विषम ग्रह के अंतर्गत अनागत को रखा गया है। जब कोई कुशल कलाकार जो लय–ताल में दक्ष हो व सम के पहले सम दिखलाने का सफल प्रयास करता है तो उस प्रकार की रचना को अनागत के अंतर्गत रखते हैं। आधुनिक समय में इसका प्रयोग अनेक मंच–प्रदर्शनों में देखने को मिलता है। विशेष कर जब कोई तबला वादक, कत्थक नृत्य के साथ संगत करता है तो कभी–कभी बनी हुई बंदिश और उपज अंग से अनागत तिहाई के रूप में दिखलाता है। यह ज्यादातर संगीतज्ञों और विद्वानों की बैठक में देखने को मिलता है।

**उदाहरण**

किटतकथुंथुं नातेटेता ऽधाधिंता क्रधाधिंता | कतेटेधा धिंताकऽ तेटेधाधिं
X 2

ताऽक्रधे | ऽधाधिंता कतेटेधा ऽथुंऽत धाऽऽऽ | ऽऽथुंऽ तधाऽऽ ऽऽऽथुं ऽतधाऽ | धा
0 3 X

**निष्कर्ष :–**

प्रस्तुत शोध–पत्र में वर्णित विषय के अध्ययन और विविध तथ्यों के लेखन के उपरान्त निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि तबला–वादन में तिहाई का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। तिहाई का प्रयोग तबला के स्वतंत्र–वादन के साथ संगत में भी विशिष्ट रूप से किया जाता है। स्वतंत्र–वादन में प्रत्येक विस्तारशील रचनाओं का समापन तिहाई से किया जाता है।

**संदर्भ सूची :–**

1. वसंत, संगीत विशारद, संगीत कार्यालय, हाथरस, उत्तर प्रदेश, 1954, पृष्ठ– 183
2. मराठे, श्री मनोहर भालचन्द्रराव, प्रकाशक– शर्मा पुस्तक सदन, ग्वालियर मध्य प्रदेश, 1991, पृष्ठ– 279
3. मिश्रा, पंडित छोटे लाल, ताल–प्रबंध, प्रकाशक– कनिष्क पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, 2006, पृष्ठ–31
4. श्रीवास्तव, आचार्य गिरीश चन्द्र, ताल परिचय भाग 3, प्रकाशक रूबी प्रकाशन, 2018, पृष्ठ 67
5. पंडित रविशंकर मिश्र जी से साक्षात्कार द्वारा प्राप्त, स्थान– वाराणसी, दिनांक –13/07/2022 समय– 7:30 pm

# कथक नृत्य में प्रयुक्त हस्ताभिनय : 'नाट्यशास्त्र' के सन्दर्भ में

**डॉ॰ विधि नागर****

**अपराजिता पटेल***

**सार**

*भरत मुनिकृत 'नाट्यशास्त्र' संस्कृत भाषा का प्राचीन ग्रंथ है। इसमें ऋग्वेद से कथानक, यजुर्वेद से अभिनय, सामवेद से गीत तथा अथर्ववेद से रस ग्रहण कर पंचम वेद अर्थात् नाट्यशास्त्र की रचना की गयी। आचार्य भरत ने अपने सौ पुत्रों के साथ इस नाट्यवेद में वर्णित ज्ञान को भगवान शिव के आशीर्वाद से और अधिक समृद्ध व सम्वर्धित कर सम्पूर्ण जगत में प्रचारित व प्रसारित किया। वर्तमान समय में भी इस नाट्यवेद अर्थात् नाट्यशास्त्र को नाट्य कला तथा शास्त्रीय नृत्य शैलियों का महत्वपूर्ण आधार ग्रंथ माना जाता है। लोक व्यवहार को ध्यान में रखते हुए आचार्य भरत ने अभिनय के चारों भेदों आंगिक, वाचिक, आहार्य व सात्विक के स्थूल तथा सूक्ष्म तत्वों पर गहनता से प्रकाश डाला है जो प्रायः लोक एवं शास्त्रीय नृत्य शैलियों के बीच अन्तर स्थापित करने के मूलभूत तथ्य भी हैं। उन्होंने आंगिक अभिनय में प्रयुक्त शरीर के प्रत्येक भाग का देश, काल व परिस्थिति के अनुसार प्रयोग एवं विनियोग का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। प्रस्तुत शोध–पत्र का प्रमुख उद्देश्य कथक नृत्यशैली में प्रयुक्त हस्तों का आचार्य भरतकृत नाट्यशास्त्र में वर्णित हस्ताभिनय के विभिन्न तत्वों के साथ सम्बन्ध स्थापित करना है।*

**मुख्य बिन्दु** : *कथक नृत्य, नाट्यशास्त्र, हस्ताभिनय, नृत्त–हस्त, हस्त–प्रचार, हस्त–कर्म।*

**अनुसंधान पद्धति** : *विवरणात्मक ।*

**अध्ययन क्षेत्र** : *पुस्तकों के माध्यम से एवं प्रायोगिक अध्ययन के द्वारा यह पत्र तैयार किया गया है।*

**प्रस्तावना :**

उत्तर भारतीय शास्त्रीय नृत्य शैली कथक अपने चमत्कारिक पद–संचालन, भ्रमरी, सहज एवं सात्विक अभिनय के लिए विश्व–विख्यात है। नर्तक अपने विभिन्न अंग–प्रत्यंग एवं उपांगों के लयात्मक संचालन द्वारा वन्दना, थाट, आमद, तोड़ा–टुकड़ा, परन, परमेलु, गत एवं ठुमरी–भजन आदि की प्रस्तुति करता है और इसी प्रस्तुति के मध्य में बन्दिशों का पढ़न्त एवं अद्भुत पद–संचालनों का भी प्रयोग करता है, जिससे नर्तक का नृत्य और अधिक प्रभावशाली हो जाता है। नर्तक द्वारा प्रस्तुत प्रत्येक बंदिश में बोलों की बनावट, पद संचालन या नृत्य हस्तों के आधार पर सूक्ष्म भिन्नता दृष्टिगोचर होती है, जैसे– समतल नृत्य हस्त से सलामी तथा लवशिखा हस्त से आमद को प्रायः प्रारम्भ करते हैं। कथक में कोमल, प्रवाहमय तथा ऊर्जायुक्त नृत्य हस्तों का प्रयोग होता है जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्राकृतिक तत्वों की प्रतिकृति करते हैं। इस नृत्य में प्रयुक्त कुछ हस्तकों के नाम इस प्रकार हैं [1]–

| | | | |
|---|---|---|---|
| नमन | उत्पत्ति | ऊर्ध्व हस्त चक्र | मध्य हस्त चक्र |
| तल हस्त चक्र | ऊर्ध्व कोण सुचिता | मध्य कोण सुचिता | तल कोण सुचिता |
| मृदंग | उड़ान | आलिंगन | अर्धालिंगन |
| स्रोत | व्याप्ति | मींड | जलभ्रमरी |
| पलट | बद्ध फेरी | अर्पण | चपल कलास |
| फेरी | अर्धांग | प्रवाह | पवन फेरी |
| अर्ध फेरी | मुक्त फेरी | लवशिखा हस्त | पल्टा |
| समतल | | | |

*शोध छात्रा, नृत्य विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

**शोध निर्देशिका, नृत्य विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

इन हस्तकों का नामकरण 23 से 25 मार्च, सन् 1992 ई0 में आयोजित एक सेमिनार में किया गया था, जिसमें लगभग सभी श्रेष्ठ विद्वतजन उपस्थित थे और जिसकी अध्यक्षता स्वयं 'पद्मविभूषण' पं0 बिरजू महाराज जी ने की थी।[2] इन हस्तकों का नामकरण प्रायः इनके प्रयोग के आधार पर ही किया गया है, जैसे–

नमन हस्त – इसमें दोनों हथेलियाँ आपस में बंधी रहती हैं जैसा की तत्कार के समय।

उत्पत्ति हस्त – उत्पत्ति अर्थात् जिससे सभी हस्तकों की उत्पत्ति होती है।

ऊर्ध्व हस्त चक्र – ऊर्ध्व अर्थात् ऊपर की ओर, उत्पत्ति हस्त में हथेली को सिर से ऊपर चक्र की तरह घुमाकर वापस लाना।

मध्य हस्त चक्र – उत्पत्ति हस्त में हाथ को मध्य भाग में खोलकर पार्श्व तक घुमाकर वापस लाना

ऊर्ध्व कोण सूचिता – उत्पत्ति हस्त में हाथ को लगभग 45 डिग्री कोण पर सामने ऊपर की ओर खोलना।

मृदंग – दोनों हाथों से मृदंग को प्रतीकात्मक रूप में दर्शाना।

फेरी – दोनों हाथों को खोलकर चक्कर लेना।

बद्ध फेरी – दोनों हाथों को नमन हस्त की तरह बांध कर चक्कर लेना आदि।

कथक नर्तक अपने नृत्य के माध्यम से इस चराचर जगत की समस्त क्रियाओं का अभिनय करता है। अभिनय को आचार्य भरत ने चार भागों में विभक्त किया है[3] – आंगिक, वाचिक, आहार्य एवं सात्विक। कथक नृत्य–शैली में इन चारों अभिनयों का प्रयोग होता है। जैसे– नृत्य (तोड़ें, टुकड़ें व तिहाई आदि के प्रदर्शन) के रूप में आंगिक अभिनय, नटन के तीनों भेदों (नृत्य, नाट्य एवं नृ) में अर्थात् बंदिशों की पढ़न्त के समय तथा ठुमरी, भजन, पद आदि के भाव प्रदर्शन के समय गायन के रूप में वाचिक अभिनय, वेश–भूषा एवं अलंकार आदि में आहार्य अभिनय तथा भाव प्रदर्शन में सात्विक अभिनय होता है।

**हस्ताभिनय** – आचार्य भरत आंगिक अभिनय को पुनः तीन भागों में विभक्त करतें हैं– शरीरज, मुखज एव चेष्टाकृत।[4] जहाँ शरीरज का प्रारम्भ हस्ताभिनय से होता है। आंगिक अभिनय में हस्ताभिनय का सर्वाधिक महत्व है। यह नृत्य को सार्थक रूप प्रदान कर सौन्दर्ययुक्त बनाता है तथा नृत्य की ऊर्जा को दर्शकों तक संप्रषित करता है अर्थात् जब कोई नर्तक तोड़ा–टुकड़ा आदि का प्रदर्शन करता है तो उस समय उसके शरीर में गतिज ऊर्जा होती है और जैसे ही 'धा' बोलकर एक विशेष मुद्रा में रूकता है, जिसे 'सम' कहते हैं, तब नर्तक की ऊर्जा 'दृष्टि' एवं हस्तमुद्राओं द्वारा दर्शकों तक संप्रषित हो जाती है और वे आनन्द की अनुभुति करते हैं। नर्तक अपने अंग–प्रत्यंग–उपांग द्वारा जो भी प्रस्तुति करता है उसके भाव हस्ताभिनय द्वारा प्रकाशमय एवं रसमय हो जाते हैं। शायद यही कारण है कि आचार्य भरत ने अन्य अंगों की अपेक्षा हस्त मुद्राओं का अधिक विस्तार से विवेचन किया है। उन्होंने हस्ताभिनय के तीन विभाग स्वीकार किये हैं– असंयुक्त, संयुक्त एवं नृत्त हस्त। इनमें एक हाथ से बनने वाली मुद्रा को 'असंयुक्त हस्त', दोनों हाथों को जोड़कर बनने वाली मुद्रा को 'संयुक्त हस्त' तथा बाहु एवं हथेलियों के सहयोग से बनने वाली मुद्रा को 'नृत्त हस्त' कहते हैं। नृत्य प्रदर्शन में इन हस्त मुद्राओं के प्रयोग की दिशा, स्थान एवं विधि आदि, कलाई के साथ अंगुलियों के घुमाव का नियम, बाहुओं को फैलाने का नियम, पात्रों के श्रेणी के अनुसार हस्तों के स्थान आदि का उल्लेख आचार्य भरत ने हस्त–स्थान, हस्त–प्रचार, हस्त–करण तथा बाहु–कर्म आदि के अन्तर्गत किया है।

**असंयुक्त हस्त**– आचार्य भरत ने इसके 24 भेद बताए हैं, जो इस प्रकार है[5] –

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| पताक | त्रिपताक | कर्तरीमुख | अर्धचन्द्र | शुकतुण्ड |
| अराल | मुष्टि | शिखर | कपित्थ | कटकामुख |
| सूच्यास्य | पद्मकोश | मृगशीर्ष | सर्पशीर्ष | कांगुल |
| अलपद्म | चतुर | भ्रमर | हंसास्य | हंसपक्ष |
| संदंश | मुकुल | ऊर्णनाभ | ताम्रचूड़ | |

कथक नृत्य में वृक्ष, लता, फूल, पक्षी, भौरा, पर्वत, हिरन, झांझ, मंजिरा, डफ, मृदंग, पखावज, बाँसुरी आदि के निर्देशन में, घुँघट, मुकुट, बिंदियाँ, तलवार, रूख्सार, मटकी, श्रृंगार आदि की गतों में, भाव प्रदर्शन के समय विभिन्न चरित्रों (राम, कृष्ण, रावण, गणेश, काली, विष्णु, शिव, दुर्गा आदि) के निर्देशन में असंयुक्त हस्तकों का प्रयोग होता है।

**संयुक्त हस्त** – नाट्यशास्त्र में संयुक्त हस्त के 13 भेद मिलते हैं[6]–

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| अंजलि | कपोत | कर्कट | स्वस्तिक | कटकावर्द्धमान |
| उत्संग | दोल | पुष्पपुट | मकर | गजदन्त |
| अवहित्थ | वर्द्धमान | निषध | | |

कथक नृत्य में 'अंजलि हस्त' का प्रयोग– रंगमंच का टुकड़ा(सलामी), वन्दना, स्तुति आदि करने में देवता, गुरूजन व मित्रों के अभिवादन में क्रमशः शिर, मुख व वक्षःस्थल के बराबर रखकर नमस्कार करने में।

'कपोत हस्त' – गुरू के अभिवादन में, प्रणाम करने में, स्त्री द्वारा शीत या भय दिखाने में

कर्कट हस्त – अभिनय के समय अंग मरोड़ना, जमुहाई का भाव, अंगड़ाई लेने का भाव, विचार करना, बलपूर्वक भार उठाना आदि।

स्वस्तिक हस्त – ऋतुएँ, आकाश आदि।

उत्संग हस्त – शीत(ठंड), क्रोध, गले लगाना, लज्जा आदि।

दोल हस्त – मूर्च्छा, नशे के झटके, घायल शरीर आदि।

पुष्पपुट हस्त – धान्य, फल व फूल आदि का अर्पण व ग्रहण करने के भाव में, आमद, टुकड़ा आदि में।

मकर हस्त – मगर, मत्स्य आदि।

गजदन्त हस्त – शैल/पर्वत उठाने या उखाड़ने में, भारी वस्तु को उठाने आदि में।

अवहित्थ हस्त – श्रृंगार या सौन्दर्य प्रदर्शन में कुछ जानने के भाव में (उत्कण्ठा) आदि।

वर्धमान हस्त – झरोखा व खिड़की को खोलने में, मांग संवारना, छाती फाड़ना आदि।

**नृत्त हस्त** – इसकी उत्पत्ति असंयुक्त व संयुक्त हस्ताभिनयों के विविध स्वरूपों के मिश्रण से होती है, जो हस्त, पाद व शरीर के आपसी सामंजस्य से नृत्य में सौन्दर्यवन का कार्य करते हैं। अतः नृत्य हस्तों को नृत्य का अलंकार भी कहते हैं, क्योकिं ये नृत्य में सौन्दर्य वर्धन का कार्य करते हैं अतः इनका कोई प्रतिकात्मक अर्थ नहीं होता है जैसा कि असंयुक्त या संयुक्त हस्तों का होता है। नृत्य में इनका प्रयोग आलंकारिक प्रभाव तथा विशेष प्रयोग 'करणों' की संरचना के लिए किया जाता है। आचार्य भरत ने तीस नृत्तहस्तों का विवेचन किया है,[7] जो इस प्रकार है–

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| चतुरस्र | उद्धृत | तलमुख | स्वस्तिक | विप्रकिर्ण |
| अराल | कटकामुख | आविद्धवक्र | सूच्यास्य रेचित | दण्डपक्ष |
| अर्धरेचित | उत्तानवंचित | पल्लव | नितम्ब | केशबन्ध |
| लता | पक्षप्रध्योतक | गरूड़पक्ष | वलित | ऊर्ध्वमण्डलिन् |
| पार्श्वमण्डलिन् | उरोमण्डली | उरःपार्श्वमण्डली | मुष्टिस्वस्तिक | नलिनीपद्मकोश |
| अलपल्लव | उल्बण | ललित | | |

**हस्त–स्थान** – नाट्य एवं नृत्त में अभिनय के समय हम जिस भी पात्र का अभिनय करते हैं उसके गुण–विशेष के आधार पर हाथों को ऊपर, नीचे एवं मध्य में करने की स्थिति को 'हस्त–स्थान' कहते हैं। आचार्य भरत के अनुसार हस्त–स्थान के तीन भेद हैं– उत्तम, मध्यम, अधम। उत्तम पात्रों के अभिनय में हस्तों को ललाट प्रदेश अर्थात् मुख के सम्मुख तथा उसके ऊपर, मध्यम पात्रों के अभिनय में हस्तों को वक्षस्थल के समीप तथा अधम पात्रों के अभिनय में हस्तों को शरीर के निचले भाग में रखना चाहिए।[8] कथक नृत्य में हस्त स्थान का प्रयोग प्रायः वन्दना, भजन, कवित्त, ठुमरी में गुरू, देवता या राजा के अभिनय में किया जाता है।

**हस्त–प्रचार(हस्ताभिनय में हाथों की गति)**– नाट्य एवं नृत्त की प्रस्तुति के समय हाथों को ऊपर, नीचे, गोलाकार तथा तिरछा आदि दिशाओं में फैलाना या गति प्रदान करना 'हस्त–प्रचार' कहलाता है। आचार्य भरत के अनुसार नाट्य तथा नृत्त में तीन प्रकार से अंगों का प्रचार (फैलाव) करना चाहिए– उत्तान(ऊपर की ओर), पार्श्वग (बगल में) तथा अधोमुख (नीचे की ओर)।[9] साथ ही अन्य गुरूओं के मतानुसार आचार्य भरत ने नाट्य व नृत्त में हस्त–प्रचार की पांच विधियों का वर्णन किया है– उत्तान, वर्तुल, त्र्यस्र, स्थित तथा अधोमुख।[10] जहाँ पर उत्तान का अर्थ ऊपर की ओर, वर्तुल का अर्थ गोलाकार, त्र्यस्र का अर्थ तिरछा, स्थित का अर्थ किसी विशेष स्थान या स्थिति में ठहरा या टिका हुआ तथा अधोमुख का अर्थ नीचे की ओर होता है। कथक नृत्य में प्रयुक्त प्रायः सभी नृत्य हस्त नाट्यशास्त्र में वर्णित हस्त–प्रचार का ही अनुसरण करते हैं। जैसे –ऊर्ध्व हस्त चक्र में हाथ ऊपर की ओर ले जाया जाता है, जिसमें 'उत्तान हस्त प्रचार', आलिंगन या जल भ्रमरी में हाथ को गोलाकार घुमाते हैं, जिसमें 'वर्तुल हस्त प्रचार', ऊर्ध्व कोण सुचिता, व्याप्ति में हाथ को तिरछा करते हैं, जिसमें 'त्र्यस्र हस्त प्रचार', नमन, उत्पत्ति आदि में 'स्थिर

हस्त प्रचार', तल कोण सूचिता, तल हस्त चक्र आदि में हाथ को भूमि की ओर ले जातें हैं, जिसमें 'अधोमुख हस्त प्रचार' का प्रयोग होता है तथा इन हस्त–प्रचारों के अनुरूप ही नेत्र, भ्रू व मुखराग आदि का भी संचालन करना चाहिए।[11] कथक नर्तक इस कथन का शब्दशः पालन करता है। बन्दिश के बोलों के अनुरूप पद का संचालन, तद्नुरूप हस्त और हस्त के ही अनुरूप नेत्र, भ्रू, मुखराग तथा सम्पूर्ण शरीर का संचालन करता है, जिससे नृत्य की सुन्दरता बढ़ जाती है तथा नृत्य देखने में और अधिक आकर्षक लगने लगता है।

नाट्यशास्त्र में हस्त–प्रचार के साथ ही पात्रों के अनुरूप हाथों की गति पर विशेष ध्यान दिया गया है अर्थात् उत्तम श्रेणी के पात्रों के अभिनय में हाथों की गति धीमी, मध्यम श्रेणी में मध्यम तथा अधम श्रेणी के पात्रों अभिनय में हाथों की गति तेज होनी चाहिए।[12] तद्नुरूप कथक नृत्य में वन्दना, स्तुति, भजन गत, ठुमरी, गज़ल आदि के अभिनय में हाथों की गति पर विशेष ध्यान दिया जाता है।

**हस्त–कर्म या हाथों की क्रियाएँ** – नाट्य तथा नृत्य में अभिनय के समय हाथों के द्वारा किए जाने वाले विभिन्न क्रियाओं को 'हस्त–कर्म' कहते हैं। आचार्य भरत ने अभिनय में भाव एवं रस के प्रयोगानुसार हाथों के निम्नलिखित कार्यों का उल्लेख किया है[13]–

उत्कर्षण (ऊपर की ओर खींचना या उछालना)
विकर्षण (खींचना)
अपकर्षण (खींचकर दूर करना या हटाना)
परिग्रह (ग्रहण करना)
निग्रह (विनाश करना)
आह्वान (बुलाना)
नोदन (पीटना या पीड़ा पहुँचाना)
संश्लेष (आलिंगन या मिलना)
वियोग (अलग–अलग करना)
रक्षण (रक्षा करना)
मोक्षण (फेंकना)
विक्षेप (अवज्ञा पूर्वक त्याग करना या फेंकना)
धूनन (हिलाना या कम्पित करना)
विसर्ग (सादर त्याग या अर्पण)
तर्जन (डांटना)
छेदन (काटना या फाड़ना)
भेदन (तोड़ना)
स्फोटन (विकसित करना)
मोटन (संकोच करना)
ताड़न (पीटना)

यहाँ पर भाव एवं रस के कहने का तात्पर्य यह है कि हम जिस भी चरित्र का अभिनय करते है उसके भाव के अनुसार हस्त मुद्राओं का प्रयोग करना चाहिए अर्थात् एक ही कार्य को अलग–अलग भाव से दिखाने पर अलग–अलग हस्त मुद्राओं का प्रयोग करना चाहिए। जैसे– प्रेम भाव से युक्त नायक, नायिका के बालों को खींचने के लिए अराल हस्त का प्रयोग करेगा, यदि वह कलह (क्रोध) भाव में होगा तो मुष्ठि हस्त का प्रयोग करेगा तथा छेड़–छाड़ के भाव में होगा तो कटकामुख हस्त का प्रयोग करेगा। हाथों की इन क्रियाओं को कथक नृत्य में नेत्र, भ्रू तथा मुखराग के साथ प्रतीकात्मक रूप में प्रायः शिव परन, दुर्गा परन, काली परन, गत तथा कवित्त आदि एवं ठुमरी, भजन, पद आदि के भाव प्रदर्शन में किया जाता है।

**बाहु–भेद या बाहु–प्रचार :–**

बाहु भुजाओं को फैलाने, घुमाने या गति करने की क्रिया को बाहु–प्रचार कहते हैं। नृत्त में बाहु–प्रचार के अंतर्गत भरत मुनि ने बाहु की 10 गतियों का विधान बताया है।[14] जो किसी निश्चित दिशा–निर्देश में होते हैं। इनका प्रयोग नर्तक प्रायः करण प्रदर्शन या नृत्य में करते हैं जो इस प्रकार हैं–

तिर्यक – पार्श्व (बगल) की ओर गति
ऊर्ध्वसंस्थ (ऊर्ध्वमुख) – सिर के ऊपर की ओर गति
अधोमुख – भूमि की ओर गति
अंचित – वक्ष से मस्तक तक और पुनः वक्ष की ओर गति
अपविद्ध – बाहु (भुजाओं) को वक्ष के सम्मुख मंडलाकार घुमाना
मण्डलगति – बाहु को वक्ष के सम्मुख मंडलाकार घुमाना
पृष्ठानुसारी – जब बाहुओं को पीठ की ओर ले जाएँ

उद्वेष्टित – बाहु को कलाई से फैलाकर पुनः पीछे की ओर मुड़कर कलाई पर आकर स्थित हो

प्रसारित – हाथों को आगे (सामने) की ओर फैलाना

इन बाहु–भेदों या बाहु–प्रचार का प्रयोग प्रायः सभी नर्तक करते हैं। कथक नृत्य में मींड लेते वक्त 'अपविद्ध' एवं 'मण्डलगति', ऊर्ध्व हस्त चक्र तथा ऊर्ध्व कोण सुचिता में 'उर्ध्वसंस्थ', तल कोण सुचिता एवं तल हस्त चक्र में 'अधोमुख', व्याप्ति, समतल, प्रवाह आदि में 'तिर्यक' (पार्श्व में या तिरछा) आदि बाहु–प्रचारों का प्रयोग होता है।

**हस्त–करण** :– साधारण भाषा में हाथों का सुन्दर लयबद्ध संचालन हस्त करण कहलाता है। अभिनय में किसी अर्थ को प्रदर्शित करने के लिए हाथों को ऊपर, नीचे तथा पार्श्व (बगल) में ले जाया जाता है। इस प्रक्रिया में जब एक हस्त क्रिया (मुद्रा) से दूसरे हस्त क्रिया में रूपान्तरण होता है तो उनके बीच कुछ अन्तर रहता है, जिसे भरने के लिए एक विशेष प्रकार की क्रिया होती है, जिसे 'वर्तना' कहते हैं तथा इस सम्पूर्ण प्रक्रिया को 'हस्त–करण' कहते हैं।[15] नाट्य के ज्ञाता वर्तना शब्द का अर्थ 'अंगत्रोटन' भी मानते हैं।[16] भरत मुनि ने नाट्यशास्त्र में चार प्रकार के हस्त–करण का विधान बताया है[17], जो इस प्रकार हैं–

आवेष्टित करण – तर्जनी अंगुली से प्रारम्भ कर क्रमशः सभी अंगुलियाँ अंदर की ओर आएँ और हाथ गोल घुमाव ले रहा हो।

उद्वेष्टित – तर्जनी अंगुली से प्रारम्भ कर क्रमशः सभी अंगुलियाँ बाहर की ओर जाएँ और हाथ गोल घुमाव ले रहा हो।

व्यावर्तित – कनिष्ठिका अंगुली से प्रारम्भ कर क्रमशः सभी अंगुलियाँ अंदर की ओर आएँ और हाथ गोल घुमाव ले रहा हो।

परिवर्तित – कनिष्ठिका अंगुली से प्रारम्भ कर क्रमशः सभी अंगुलियाँ बाहर की ओर जाएँ और हाथ गोल घुमाव ले रहा हो।

जब हम कथक नृत्य में किसी एक बन्दिश को देखते हैं तो उसमें एक से अधिक हस्त मुद्राओं का समावेश होता है, साथ ही एक हस्त मुद्रा से दूसरे हस्त मुद्रा में रूपान्तरण के समय हथेली, कलाई एवं भुजाओं का सुन्दर लयात्मक संचालन परिलक्षित होता है और ये उक्त वर्णित हस्त–करणों से साम्यता भी रखते हैं। जैसे– कथक में प्रचलित 'ऊर्ध्व हस्त चक्र', नृत्य हस्त के संचालन में 'आवेष्टित' हस्त–करण, 'व्याप्ति' नृत्य हस्त के संचालन में 'उद्वेष्टित' हस्त–करण, 'अर्द्धालिंगन' नृत्य हस्त के संचालन में 'व्यावर्तित' हस्त–करण तथा 'चपल कलास' के संचालन में 'परिवर्तित' हस्त–करण का प्रयोग होता है। हाथ के अन्य भाग, जैसे– कन्धा, कलाई एवं हाथ की अंगुलियों को भरत मुनिकृत नाट्यशास्त्र में प्रायः उपांग तथा प्रत्यांग के अन्तर्गत बताया गया है तथा आंगिक रचनाओं में इनके महत्व को भी स्पष्ट किया है परन्तु नाट्यशास्त्र में इनके भेदों का वर्णन दृष्टिगोचर नहीं होता है। आचार्य शारंगदेव कृत 'संगीतरत्नाकर' में स्कन्ध (कन्धा), (कुर्पर कलाई या मणिबन्ध) तथा करांगलि (हाथ की उँगलियाँ) के भेदों का विस्तारपूर्वक वर्णन मिलता है। कथक नृत्य में कन्धा, कलाई एवं हाथ की अंगुलियों के संचालन पर विशेष ध्यान दिया जाता है, विशेषतः कलाई पर। कथक में लय–ताल के साथ कलाई के सुन्दर संचालन को 'कसक' या 'कलास' कहते हैं[18] जिसका प्रयोग प्रायः ठाट बरतने में किया जाता है। कथक में कन्धे का प्रयोग प्रायः सभी बन्दिशों में होता है परन्तु 'गत की चाल' में इसका विशेष महत्व है।

**कथक नृत्य में प्रयुक्त कुछ नृत्य हस्तकों के चित्र :–**

नमन

उत्पत्ति

स्थिर

समतल

ऊर्ध्व हस्त चक्र

मध्य हस्त चक्र

तल हस्त चक्र

ऊर्ध्व कोण सुचिता

मध्य कोण सुचिता

तल कोण सुचिता

बद्ध फेरी

मुक्त फेरी

**कथक नृत्य के अन्तर्गत संयुक्त एवं असंयुक्त हस्तकों का प्रायोगिक चित्रण :–**

**निष्कर्ष** – भारतीय शास्त्रीय नृत्य शैलियों में हस्त मुद्राओं का विशेष महत्व है, जो प्रतिकात्मक भाषा के रूप में कथावस्तु के भाव को दर्शकों तक संचारित करते हैं। कथक नृत्य शैली में शास्त्रों में वर्णित हस्ताभिनयों का शब्दशः अनुकरण नहीं होता है अपितु कुछ भिन्नता दृष्टिगोचर होती है परन्तु उनका आधार शास्त्र ही है। स्वयं भरत मुनि कहते हैं कि देश, काल, परिस्थिति एवं प्रयोग के आधार पर इन हस्ताभिनयों को सूक्ष्म भिन्नता के साथ प्रयोग कर सकते हैं या कुछ नए हस्तकों

को जोड़ भी सकते हैं। वर्तमान समय में कथक के विद्यार्थी इसके प्रायोगिक पक्ष की ओर अधिक आकृष्ट हो रहे हैं परन्तु इसके सैद्धान्तिक पक्ष का भी अध्ययन अति आवश्यक है जिससे इसमें निहित शास्त्रीय तत्वों को गहनता से समझा जा सके। साथ ही, विद्यार्थियों का नृत्य सम्बधी ज्ञान पूर्णता को प्राप्त होगा।

चित्रः– धन्यवाद अदिति थपलियाल, शोध छात्रा, नृत्य विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

**संदर्भ सूची :**

1. खरे, शिखा, कथक सौन्दर्यात्मक शास्त्रीय नृत्य 'गहन अध्ययन एवं चिन्तन', कनिष्क पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, 2005, पृ. 75
2. वही, पृ. 74
3. द्विवेदी, डॉ॰ पारसनाथ, नाट्यशास्त्रम् (भाग–2), सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, 2015, पृ. 327
4. वही, पृ. 328
5. वही, पृ. 383
6. वही, पृ. 384
7. वही, पृ. 388
8. वही, पृ. 489
9. वही, पृ. 496
10. वही, पृ. 497
11. वही, पृ. 486
12. वही, पृ. 490
13. वही, पृ. 485
14. वही, पृ. 525
15. चौधरी, सुभद्रा, संगीतरत्नाकर, चतुर्थ भाग (सातवाँ अध्याय), राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2009, पृ. 163
16. द्विवेदी, डॉ॰ पारसनाथ, नाट्यशास्त्रम् (भाग–2), सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, 2015, पृ. 521
17. वही, पृ. 522
18. नागर, डॉ॰ विधि, कथक नर्तन (भाग–1), बी॰ आर॰ रिदम्स, दिल्ली, 2013, पृ. 65

# नारदकृत 'संगीत मकरन्द' में वर्णित ताल एवं नृत्य विमर्श

**डॉ. राहुल स्वर्णकार**** **सागर आकाश जैन***

**सारांश**

*नारद कृत 'संगीत मकरंद'– यह प्राचीन ग्रंथ भारतीय संगीत शास्त्र के इतिहास का एक ऐतिहासिक ग्रन्थ है। यह ग्रंथ इस तथ्य का प्रमाण है कि उक्त युग में संगीत सैद्धांतिक एवं क्रियात्मक दोनों ही रूपों में चर्मोत्कर्ष पर था। इसी बात को ध्यान रखते हुए नारद ने अपने ग्रन्थ 'संगीत मकरंद' को प्रमुख रूप से दो अध्यायों में बांटा है जिसका प्रथम अध्याय 'संगीताध्याय' है जिसमें संगीत शास्त्र का विस्तार से वर्णन प्रस्तुत किया है किन्तु अपने दूसरे अध्याय, में उन्होंने संगीत के दूसरे पहलू को मुख्य रूप से नृत्य पर आधारित किया है जिसमें उन्होंने ताल के दस प्राणों का भी सर्वप्रथम उल्लेख किया है।*

*यह ग्रंथ 'संगीतरत्नाकर', 'संगीत समयसार' आदि संगीत शिरोमणि शास्त्रों से भी प्राचीन है। 'संगीत मकरंद' के अनेक श्लोक 'संगीत रत्नाकर' जैसे महत्वपूर्ण लक्षण–ग्रंथ में उद्धित किए गये हैं। 'संगीत रत्नाकर' में 'संगीत मकरंद' के श्लोकों का उद्धृत होना इस ग्रंथ के महत्त्व को प्रतिपादित करता है। यह ग्रंथ 'वृहददेशी' के पश्चात का ग्रंथ है, अतः इस ग्रंथ का काल सातवीं एवं नवीं शताब्दी के मध्य का माना जा सकता है। इस ग्रंथ में दो अध्याय प्रथम संगीताध्याय एवं द्वितीय नृत्याध्याय है। ये दोनों ही अध्याय पुनः चार–चार पादों में विभक्त हैं। इस प्रकार कुल अष्ट पाद इस ग्रंथ में हैं, इन अष्ट पादों में संगीत शास्त्र के लगभग सभी सिद्धांतों का विस्तृत विवेचन नारद के द्वारा किया गया है।*

**मुख्य शब्द** : *संगीत, ताल, नृत्य, शास्त्र, नृत्याध्याय, ग्रन्थ*

**शोध–माध्यम** : *द्वितीयक स्रोतों के अधीन संगीत शास्त्रीय ग्रन्थों के अतिरिक्त अन्य पुस्तकों के अध्ययन के पश्चात् सामग्री संकलित की गई है ।*

भारतीय संगीत की संगीत परंपरा में ताल–सम्बन्धी उल्लेख सर्वप्रथम भरत मुनिकृत 'नाट्यशास्त्र' में मिलता है जिसमें उन्होंने ताल, तालांग, क्रिया, जाति और पाटाक्षर, मार्जना इत्यादि का विस्तार से वर्णन किया है तथा तालों की कुल संख्या मात्र पाँच मानी है। आगामी ग्रंथों में आचार्य मतंगकृत 'वृहद्देशी' में ताल और ताल–सम्बन्धी व्याख्या के साथ देशी तालों के स्वरुप को स्पष्ट किया गया है किन्तु दुर्भाग्यवश इसका तालाध्याय अद्यतन अप्राप्त है। इसके पश्चात् आठवीं सदी में नारदकृत 'संगीत मकरंद' ताल की दृष्टि से द्वितीय प्रामाणिक ग्रंथ है। इसमें 'ताल' शब्द की शाब्दिक निरुक्ति वर्णित की गई है। ताल के दस प्राणों का सर्वप्रथम उल्लेख भी इसी ग्रन्थ में प्राप्त होता है। 'संगीत मकरंद' में सर्वप्रथम देशी तालों की संख्या सुनिश्चित की गई है जिसमें 96 देशी तथा 5 मार्गी ताल, कुल मिलकर 101 तालों के लक्षणों को नारद ने 'संगीत मकरंद' में प्रतिपादित किया है। 'संगीताध्याय' के उपरांत नारद ने दूसरे और अंतिम अध्याय 'नृत्याध्याय' का प्रारंभ इस मंगलाचरण से किया है–

''अनाहतमयीरूपं योगिध्येयं मनोहरम्।
तद्रूपं च नमस्कृत्य, नृत्याध्यायं करोम्यहम्।।[1]

इस रमणीय मंगलाचरण से नारद 'नृत्याध्याय' का प्रारंभ करते हैं। नृत्याध्याय के प्रथम पाद में नारद ने क्रमशः नाट्यशाला, सभा, विद्ध, कवि, भट्ट गायक, परिहासक, इतिहासज्ञ, ज्योतिष, वैद्य, पुराणिक, सभापति, नट विशेष पात्र इन सभी के लक्षणों का निरूपण किया है। इसके पश्चात् ने भरतोक्त पंच मार्ग तालों की उत्पत्ति का निरूपण किया है। ये तालें शिव द्वारा उत्पन्न हैं, ऐसा नारद का मत है–

''सदाशिव मुखोद्भूतास्तालाः पंचविधाः स्मृताः।[2]

श्लोक संख्या 41–48 तक नारद ने इन तालों के देवता वर्ण, जाति आदि का भी उल्लेख किया है। इस प्रकार, इस अध्याय का प्रथम पाद समाप्त होता है, इस पाद

*शोधार्थी, संगीत विभाग, डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय सागर (म.प्र.)
**शोध निर्देशक, असिस्टेन्ट प्रोफेसर, संगीत विभाग, डॉ. ह.सिं. गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)

में कुल 54 श्लोक हैं।

नृत्याध्याय के द्वितीय पाद में नारद ने अपने पूर्वाचार्यों सदाशिव, हरि, ब्रम्हा, भरत, कश्यप, मतंग, दुर्गाशक्ति, शार्दूल, कोहल, हनुमान, तुम्बक, अंगद, नारद का स्मरण किया है।

इस पाद में एकोत्तरशत अर्थात् 101 तालों का उल्लेख नारद ने श्लोक संख्या 3 से 16 तक किया है। 101 तालों के उल्लेख के पश्चात् ग्रंथकार के द्वारा इन तालों के लक्षणों का निरूपण किया गया है। श्लोक संख्या 17–74 तक एकोत्तरशत ताल के लक्षण नारद ने निरूपित किए हैं। तालों के लक्षणों के निरूपण के पश्चात् नारद ने दस प्रकार के ताल–प्रबन्धों का विस्तारपूर्ण विवरण प्रस्तुत किया है। लघुसूलादि एवं अंग तालों का भी नारद के द्वारा उल्लेख किया गया है। नृत्याध्याय के इस पाद में नारद ने 'ताल' शब्द की निष्पत्ति एवं ताल के दस प्राणों का उल्लेख किया है।

गौरतलब है कि ताल के दस प्राणों का उल्लेख करने वाले नारद प्रथम संगीताचार्य हैं। नारद के अनुसार प्रतिष्ठार्थक तल् धातु से ताल शब्द की निष्पत्ति हुई है। ताल गीत, वाद्य एवं नृत्य को प्रतिष्ठित करता है–

''तालशब्दस्य निष्पत्तिः प्रतिष्ठार्थेन धातुना।
गीतं वाद्यं च नृत्यं च भाति ताले प्रतिष्ठम्''।।[3]

'ताल' शब्द की इस निरूक्ति को नारद के पश्चात्वर्ती सभी आचार्यो ने स्वीकार किया है। काल, मार्ग, क्रिया, अंग, ग्रह, जाति, कला, लय, यति एवं प्रस्तार यह ताल के दशप्राण है–

''कालमार्गक्रियाङ्गानि ग्रहजातिकलालयाः ।
यतिप्रस्तारकं चैव तालप्राणा दश स्मृताः।।[4]

तालों के दस प्राणों के नामों के उल्लेख के पश्चात् नारद ने सभी प्राणों के पृथक्–पृथक् लक्षण प्रतिपादित किए हैं। हम काल के लक्षण को ही देखें तो नीचे–ऊपर रखे हुए सौ कमल पत्रों में एक बार सूई छेदने का काल प्रत्येक दल में एक ''क्षण'' है। आठ क्षणों से एक 'लव' बनता है अष्ट लवों से एक 'काष्ठा' निर्मित होती है, अष्ट काष्ठाओं का एक 'निमेष' होता है, अष्ट निमेषों का एक 'काल' होता है, इस प्रकार द्रुत, अनुद्रुत, बिन्दु, लघु, दो लघु से एक गुरू, एवं तीन लघुओं से 'प्लुत की निर्मिति होती है–

''उपर्युपरि विनस्यस्य पद्मपत्रशतं सकृत्।
स कालः सूचिसंभेदात्तत्क्षणस्य कलं प्रति।।
लवः क्षणैरष्टभिः स्यात्काष्ठा चाष्टलवात्मिका।
अष्टकाष्ठा निमेषः स्यान्निमेषैरष्टभिः कला।।
ताभ्यां चैव चतुर्भागचतुर्भानामनुद्रुतः।।
अनुद्रुताभ्यां बिन्दुश्च बिन्दुभ्यां तु लघुर्भवेत्।।
लघुद्वन्द्वं गुरूश्चैव त्रिलघु प्लुतमुच्यते।
इतिमानगतिः प्रोक्ता तालज्ञैः पूर्वसूरिभिः।।[5]

इस प्रकार हम देखते हैं कि सौ कमल पत्रों में सूई छेदने वाली अवधारणा सर्वप्रथम 'संगीत मकरंद' में ही दृष्टिगोचर होती है। काल के संबंध में ऐसा ही उल्लेख आचार्य पार्श्वदेव कृत 'संगीतसमयसार' में भी दृष्टिगोचर होता है।[6] ताल के परिपेक्ष्य में मार्ग का उल्लेख नारद ने किया है– दक्षिण, वार्तिक, चित्र विचित्र, चित्रतर। मात्रा के लक्षण के अंतर्गत मार्ग तालों में प्रयुक्त होने वाली निशब्द (आवाप, निष्क्रम, विक्षेप प्रवेश) सशब्द (शम्या, ताल, सन्निपात) का उल्लेख एवं उनकी विधि (अंगुलि नियम) का वर्णन भी नारद ने किया है।

मार्ग ताल की क्रियाओं के पश्चात् देशी क्रिया के अंतर्गत ध्रुवका, सर्पिणी, कृष्णा, पद्मिनी एवं विसर्पिका का उल्लेख नारद के द्वारा किया गया है।

अंगों के अंतर्गत नारद ने अनुद्रुत, द्रुत, लघु, गुरू एवं प्लुत इन पांच अंगों का उल्लेख किया है एवं इन अंगों का शिवादि देवताओं से संबंध स्थापित किया है। तीन प्रकार के ग्रह सम, अतीत, अनागत नारद द्वारा कहे गये हैं। त्र्यस्त्र एवं चतुरस्त्र दो प्रकार की जाति नारद ने कही है। लय को परिभाषित किया है परन्तु मूल ग्रंथ में इस परिभाषा के अंतिम कुछ अंश विलुप्त हैं–

''कालान्तरालवृत्तिर्याम्लिकविल्व.....वत्।[7]

इस पाद के अंत में नारद ने प्रस्तार को विस्तार से समझाया है। इसके साथ ही यह पाद समाप्त होता है, इस पाद में कुल 100 श्लोक हैं। नृत्याध्याय के चतुर्थ एवं अंतिम पाद में नारद ने मृदंग की उत्पत्ति एवं लक्षण का वर्णन श्लोक संख्या 1–43 तक बहुत ही विस्तार से किया है।

इस प्रकार, संगीत शास्त्र का यह महत्वपूर्ण ग्रंथ समाप्त होता है। नृत्याध्याय में कुल 54+74+100+43=271 श्लोक हैं। ग्रंथ के कुल श्लोकों की संख्या 289+271=560 है।

'संगीत मकरंद' का यह द्वितीय प्रकरण नृत्य और ताल पर आधारित है परन्तु संगीत अध्याय के चतुर्थ प्रकरण में नारद ने मृदंग एवं अन्य अवनद्ध वाद्यों का भी वर्णन किया है। चूँकि अवनद्ध वाद्यों का सीधा सम्बन्ध नृत्य और ताल से है, इसीलिए वाद्यों का यह सन्दर्भ यहाँ लिया जा रहा है।

संगीताध्याय के चतुर्थ पाद में सर्वप्रथम नारद ने मृदंग का लक्षण दिया है। नारद के अनुसार मृदंग के दक्षिण अंग भाग में शिव एवं वाम भाग में पार्वती प्रतिष्ठित हैं। शिव एवं शक्ति के कारण ही मृदंग से नाद उत्पन्न होता है–

''दक्षिणांगे स्थितो रूद्र उमा वामे प्रतिष्ठिता।
शिवशक्तिमयो नादो मर्दले परिकीर्तितः।।[8]

मृदंग के उल्लेख के पश्चात् नारद ने कुछ वीणाओं का नामोल्लेख किया है। कच्छपी, कुव्जिका, चित्रा, बहन्ती, परिवादिनी, जया, घोषवती, ज्येष्ट, नकुली, महती, वैष्णवी, ब्राह्मी, रौद्री, कूर्मी, रावणी, सारस्वती, किन्नरी, सैरन्ध्री, घोषका।

वीणाओं के नामोल्लेख के पश्चात् कुछ वाद्यों का उल्लेख है। इन वाद्यों में मृदंग, दुर्दर, पणव, झल्लरी, पटह –ये अवनद्ध वाद्य नारद द्वारा कहे गये हैं। शंख, काहला ये सुषिर वाद्य नारद ने बतलाए हैं। इसके अतिरिक्त हरीतकी, उर्ध्वक, आलिंग्य, ढ़क्का, डमरूगा, डिण्डिमा आदि वाद्यों का भी उल्लेख नारद ने किया है।

उपरोक्त ग्रन्थ के अनुसार जिन पारिभाषिक शब्दों, श्लोकों का उल्लेख किया गया हैं वे सभी केवल भारतीय ज्ञान–परंपरा तक ही सीमित नहीं हैं, वैश्विक स्तर पर भी इन नियमों और सिद्धांतों का प्रतिपादन किया गया है जिन्हें कुछ परिवर्तन के साथ विभिन्न देशों की संगीत–पद्धतियों में प्रयुक्त किया गया है, जैसे– ईरानी संगीत में सात स्वरों को 'मुकाम' कहने का चलन है। मध्यकालीन सूफी संत अमीर खुसरो भारतीय संगीत के बारे में कहते हैं, ''भारतीय संगीत अन्य सभी देशों के संगीत से कहीं उच्च कोटि का है संगीत पर यहाँ केवल मनुष्य ही नहीं झूमते, उसे सुनकर यहाँ के हिरणों को भी स्तम्भ हो आता है।''[9]

**निष्कर्ष** : ताल के सन्दर्भ में भारतीय संगीत और शास्त्र परंपरा काफी उत्कृष्ट है क्योंकि ताल और उसके अवयवों का सूक्ष्मतम और वैज्ञानिक वर्णन जितना भारतीय ग्रंथों में किया गया है उतना विश्व की किसी संगीत–पद्धति में नहीं किया गया है। भारतीय संगीत शास्त्र विश्व का सबसे विशाल एवं वृहद् शास्त्र है जिसमें ज्ञान, विज्ञान, गणित, योग सहित अनेक विषयों का समावेश है। भारतीय संगीत प्रदर्शन में त्वरित विस्तार और नवीन विचारों का गुण, उपज–क्षमता इसे विश्व के किसी भी संगीत से उच्च स्थान प्रदान करता है।

**संदर्भ सूची** :

1. नारद, संगीत मकरंद 2/1/1
2. वही, 2/1/40
3. वही, 2/3/48
4. वही, 2/3/51
5. वही, 2/3/52,53,54,55
6. पार्श्वदेव, संगीतसमयसार, 8/4,5,6
7. नारद, संगीत मकरन्द, 1/4/1
8. वही, 2/3/74
9'. दिनकर, रामधारी सिंह, संस्कृति के चार अध्याय, लोकभारती प्रकाशन, पृष्ठ क्रमांक 311

# भारतीय संगीत में क्रमिक विकासात्मक गतिशीलता

**प्रो० (डॉ०) निशा झा****

**शिवेश कुमार***

**सारांश**

*भारतीय संगीत अति प्राचीन काल से ही मानव सभ्यताओं के बीच में फलीभूत रहा है। यहाँ की सभ्यता और संस्कृति जितनी विशाल है उतना ही गौरवासन भारतीय संगीत का इतिहास। संगीत का उद्‌भव भौतिक, आधिभौतिक, मानसिक द्वारा विभिन्न विद्वानों ने मान्य किया, जिसमें ध्वनि की अविकल व निरंतरता भौतिकीय दृष्टि से मान्य है। स्वयं की अनुभूति गीत है तथा अपने–आप को जानने की शक्ति है और मनोहरता ध्वनि की उद्‌भावना है जिसकी पराकाष्ठा बेहिसाब कल्पना करने का अवसर प्रदान करता है। अनुशासन की पराकाष्ठा में बँधकर मनुष्य संगीत को प्रकट करता है लेकिन प्रत्येक व्यक्ति के विचार, संवेदना आदि में भिन्नता होने के कारण इसकी प्रस्तुतियों में भी विविधता अवश्य होती है। फलतः देश एवं काल क्रमानुसार संगीत के मूल तत्व, समाज में प्रयोग और प्रस्तुतिकरण के कारण प्रदर्शन में भी भिन्नता अनिवार्य रूप से दिखाई देती है। इस ब्रह्म विद्या के निरंतर वृहत् स्वरूप में सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक अवस्थाओं के अनुसार समयानुक्रम बदलाव होता आ रहा है, परंतु बदलाव होने पर भी त्रिपुटी संगीत का गायन–पक्ष नवनिर्मित होकर सदैव ही श्रोताओं को अपनी हर शैलियों द्वारा मंत्र–मुग्ध करता आ रहा है जिसका संक्षिप्त विश्लेषण अग्रलिखित है ।*

**शब्द–कुंजी** : *संगीत, गायन, परिवर्त्तन, नैसर्गिक, अविकल, पराकाष्ठा, बेहिसाब*

**शोध माध्यम** : *विभिन्न पुस्तकों के अध्ययन के बाद आवश्यकतानुसार संकलन एवं संवर्द्धन द्वारा शोध–पत्र तैयार किया गया है ।*

''अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दत्वायदक्षरम।
विवर्तते अर्थभावेन प्रक्रिया जगतोयतः।।''[1]

भारतीय अध्यात्म परंपराओं द्वारा सदैव ही प्रतिपादित रहा है कि ब्रह्म से परे सृष्टि की कल्पना अनस्तित्व है, परंतु वैज्ञानिकों द्वारा भी मान्य नाद–रहित सृष्टि कल्पना से परे है। ठीक उसी प्रकार, प्रकृति और चराचर जगत में व्याप्त प्रत्येक तत्व इत्यादि के भीतर संगीत की अति सूक्ष्मावस्था, अक्षुण्ण व अखंड धारा, सदियों से वर्तमान तक प्रतिपल प्रवाहित बनी रही है तथा संपूर्ण जगत ही अदृश्य रूप में संगीतमय मान्य है। यह प्रत्यक्षकृत भी रहा है कि संपूर्ण जगत अनंत रूपात्मक ही नहीं, अपितु ध्वन्यात्मक भी है। संसार अनादि काल से ही गतिशील बना हुआ है और समय–समय पर परिवर्तनीय होकर भी विविधताओं को बिखेरे हुए है। यह सर्वविदित है कि परिवर्तन संसार का नियम है और इसी नियमाधीन संगीत के काल–खण्ड इत्यादि में भी समय–समय पर अनेक परिवर्तन होते रहे हैं और यह परिवर्तनीय होकर भी अनादि काल से आधुनिक काल तक उन्नत अवस्थाओं में संसार में विद्यमान है। ब्रह्म द्वारा प्रस्फुटित ध्वनि कालांतर से ही धीरे–धीरे नवनिर्मित होकर धरा पर पहुँचता रहा है और समय–समय पर विभिन्न विद्वजनों द्वारा संरक्षित व संग्रहित भी होता आ रहा है।

संगीत–व्युत्पत्ति की वस्तुतः स्थिति धार्मिक मान्यताओं की भिन्नता के अनुसार जो भी रही हो, लेकिन यह सर्वप्रमाणित है कि संगीत तैंतीस कोटि देवी–देवताओं को अतिप्रिय है। तभी तो देवी पार्वती के शयन–मुद्रा से भगवान शंकर ने रूद्र–वीणा का निर्माण किया, समस्त विद्याओं की देवी माँ सरस्वती वीणा वादिका कहलायी, देवर्षि नारद ने नारायण जप को आत्मसात् किया, मंगलमूर्ति गणेश मृदंग वादक बने, देवताओं के राजा इन्द्र की सभा में सभी संगीत विशारद माने गये तथा सभी ऋषि–मुनियों आदि ने इसे मोक्ष मार्ग प्राप्ति का सहज साधन माना–

''वीणा वादनत्तत्वज्ञः श्रुतिजातिविशारदः।
तालज्ञश्चप्रयासेन मोक्ष मार्ग निगच्छति।।''[2]

सर्वप्रथम पं0 शारंगदेव ने अपने ग्रंथ में संगीत को परिभाषित किया जिसमें गायन, वादन और नृत्य के संगम को उन्होंने संगीत कहा। ये तीनों विद्या अपने आप में वृहत्

*शोधार्थी, विश्वविद्यालय संगीत विभाग, ति०मॉ० भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

**शोध–निर्देशक, विश्वविद्यालय संगीत विभाग, ति०मॉ० भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

हैं तथा गायन हमेशा ही अग्रणी विद्या है। गायन शब्द का उल्लेख विभिन्न रूपों में सर्वप्रथम वेदों में सुशोभित है। प्राचीनतम ऋग्वेद में गीर्, गाथा, गातु, गायन, गीतु इत्यादि, यजुर्वेद में गाथा, नाराशंसी, अथर्ववेद में गाथा, नाराशंसी, रैंभ तथा सामवेद में तो गायन के विभिन्न प्रकारों, तत्वों आदि का वर्णन किया गया है। उदाहरणार्थ– ग्रामगेय गान, अरण्यक गान, ऊहगान तथा उह्यगान और स्वर सामगान का प्राणन माना जाता था। ''ऊँ'' स्वर सामगायन का प्रारंभ और अंत था तथा उदात्त, अनुदात्त और स्वरित जैसे तीन स्थूल स्वरों पर सप्त स्वर विकसित थे।

''उदात्ते निषादगान्धारौ अनुदात्तेऋषभधैवतौ ।
स्वरितः प्रभावाह्येते षड्जमध्यमपंचमाः।।''[3]

वैदिक काल में ही थोड़ा अग्रणी होने पर गायन के दो स्वरूप स्वतः देखने को मिलते हैं। प्रथमतः वैदिक गाथा–गान और द्वितीय लौकिक गाथा–गान। वैदिक गाथा–गान द्वारा देवताओं की प्रार्थना, उपासना आदि प्राप्त करना था और लौकिक गाथा–गान का उद्देश्य किसी व्यक्ति–विशेष के जीवन स्तुति, उनकी प्रशंसा, कृपा इत्यादि प्राप्त करना था। उपरोक्त इन दोनों गायनों में एक ओर शास्त्र अनुपालन के कठोर नियम थे तो दूसरे में भाव अभिव्यक्ति द्वारा जन समुदायों का रंजन करना आवश्यक था।

अब उन दोनों गायनों में भी गायन से तात्पर्य, जो शास्त्रसमर्थित एवं अनुमोदनीय हो और जिसमें शास्त्र–विहित नियमों का कठोरता से पालन किया जाय। इसमें शास्त्र नियम व विशिष्ट अभ्यास अत्यंत आवश्यक होता है। यद्यपि शास्त्रीय गायन वैयक्तिक साधना का द्योतक है एवं इसका शास्त्रीय पक्ष व्यक्तिनिष्ठ होते हुए भी इसके माध्यम से सौन्दर्य, रंजन एवं रसानुभुति की प्राप्ति होती है। शास्त्रीय गायन के अंतर्गत स्वर, लय, ताल का सूक्ष्म अध्ययन, साधना, प्रदर्शन अत्यंत ही निष्ठापूर्वक होकर गुरू के सानिध्य में रहकर ही सीखना पड़ता है।

गायन के लिए उपर्युक्त जिन स्वरों को आज हम जानते हैं, वे वैदिक युग में भिन्न–भिन्न थे। अनेक ऋषि–मुनि, विद्वज्जन तथा संगीत–साधकों ने स्वरों के विकास में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई एवं समय–समय पर मूल स्वरों को संरक्षित कर स्वरों के विकास के लिए अनेक नीवन प्रयोग भी किये। श्रुति एवं स्वर से संयुक्त ध्वनियों में, मंत्रों के उच्चारण के लिए ऋषि मुनियों ने, जैसे– आ..... .ई.....ओ..... आदि में उतार–चढ़ाव होना आवश्यक समझा और आवश्यकता अनुकूल स्वर–निर्माण भी किया। इस स्वर को तान संज्ञा देकर उन सभी ने सुशोभित किया। इन स्वरों को भी दो वर्गों में विभक्त कर ''तान'' और ''प्रवचन'' कहकर शास्त्रों में वर्णित भी किया–

''तानो अन्वेषां ब्राह्मण स्वर।
तान एवाग्ड़ो पाग्ड़ा नाम।।''[4]

एक श्रुतियुक्त तान का अर्थ आलाप अर्थात् ध्वनि को बढ़ाना या फैलाना था जिसे साधक श्वाँस क्रिया द्वारा प्रणायाम कर अंदर–बाहर फेंकते थे तथा अ..... ई..... ..... म..... का उच्चारण करते थे। यही क्रिया ओंकार या तान स्वर कहलाती थी। इसके विपरीत प्रवचन स्वरों में शब्द उच्चारण नियमित ढंग से होता था और यह तीन श्रुतियुक्त होती थी।

''प्रवचन शब्देन आषंपाठ उच्यते।
तत्र भवः स्वरः प्रावचन।
स च त्त्रै लक्षण एव भवति।।''[5]

अब एक स्वर का गायन या उच्चारण लंबे समय तक किया जाता था। इसलिए गुणीजनों ने विविध प्रयोग के परिणामस्वरूप श्रेष्ठ प्रस्तुति के लिए दो स्वर आरंभ कर दिये तथा इन्हीं स्वरों को 'उदात्त' और 'अनुदात्त' की संज्ञा दी। पहला स्वर ऊँची ध्वनियुक्त तथा दूसरा नीची ध्वनियुक्त स्वर था। इसलिए गायन अनुकूल ऊँचे और नीचे स्वर के बीच एक और स्वर को जोड़ दिया जिसे 'स्वरित' नाम दिया गया। अब ऊँची ध्वनियुक्त स्वर ''उदात्त'' कहलायी, नीची ध्वनियुक्त स्वर ''अनुदात्त'' बना तथा मध्यम ध्वनियुक्त स्वर ''स्वरित'' कहलाया। समयानुसार धीरे–धीरे इसे पहचानने के लिए कुछ चिन्हों इत्यादि का प्रयोग भी शास्त्रों में वर्णित हुआ और उपरोक्त स्वर आधार पर ही वैदिक गायन को स्थापित किया गया। धीरे–धीरे सुविधा अनुरूप प्रबुद्धजनों ने वैदिक काल में ही सप्त स्वरों की स्थापना की तथा उपरोक्त इन्हीं सप्त स्वरों पर अब शास्त्र अनुरूप गायन या शास्त्रीय गायन संभव हो पाया।

ऋग्वेद के मंत्रों के ऋचाओं का गायन सामगान के अंतर्गत उदात्त, अनुदात्त और स्वरित पर किया जाने लगा जिसमें उदात्त अर्थात् नि, ग; अनुदात्त अंतर्गत रे, ध और स्वरित अनुरूप सा, म, प स्वर वैदिक गायनों में शास्त्र अनुरूप होने लगे।

ऐतिह्य शास्त्रीय गायनों में महाव्रत धार्मिक समारोहों या गवामंथन के अवसरों पर यज्ञ आयोजकों की धर्म–पत्नियों के द्वारा वीणा के साथ शास्त्रीय गायन की प्रस्तुतियों का उल्लेख ब्राह्मण, अरण्यक तथा उपनिषदों आदि में उल्लेखित मिलता है। सामवेद की जैमिनीय शाखा अंतर्गत साम सप्तस्वरों के अंतर्गत गान निर्दिष्ट होता था तथा आरण्यक गान सामगान के समान था या इसका एक भाग होता था जिसके अंतर्गत सामपदों के स्थान पर भिन्न पद, गद्य तथा साहित्य होता था एवं सा, म, प के आधार पर ही गाया जाता था। ऋक् तथा साम के श्रेयकर सामंजस्य द्वारा 'पंच भक्ति' और 'सप्त भक्ति' का गायन उपनिषदों में वर्णित है तथा शिक्षा–ग्रंथों के अलावा पुराणों में भी यज्ञ के साथ मंत्र–गायन शास्त्र अनुरूप ही आचरित थे। महाकाव्य काल, रामायण, आदि में गायन के लिए 'गीत' संज्ञा प्रयुक्त होता था एवं गायन व गायकों के लिए 'गंधर्व' संज्ञा थी। महाभारतकालीन महिर्षि पाणिनी द्वारा रचित ग्रंथ ''अष्टाध्यायी'' में जो गायन वर्णित है उसे 'अपवीण' गायन (वह भी बिना वीणा के) कहते थे और इस ग्रंथ में स्वरलिपि पद्धति का विवरण है जिसे मनीषियों ने शास्त्रों में वर्णित भी किया है। आगे, जैन युग में बहुत से नवीन गायन–शैलियों का उद्‌भव हुआ तथा उस समय संगीत साधकों को एक राजा के समान सम्मान प्राप्त होता था। बौद्धकालीन समाज में वैदिक और लौकिक दोनों गायन प्रचलन में थे एवं गुप्तकाल से ही सर्वप्रथम संगीत की शास्त्रीय शब्दावली प्रस्तुत हुई।

भारतीय संगीत का शाश्वत स्वरूप वैदिक युग से आधुनिक काल तक विभिन्न परिवर्तनों के साथ विकसित हुआ है। यहाँ की सभ्यता और संस्कृति के साथ ही संगीत में बदलाव भी आरंभ से रहा है जो संगीत इतिहासज्ञों के द्वारा विभिन्न ग्रथों में दृष्टिगोचर होता है। इन प्रबुद्धजनों द्वारा वर्णित तथ्यों पर आधारित संगीत विशेषतः शास्त्रीय गायन का प्रचलन हवन, यज्ञादि के साथ स्वरों द्वारा मंत्रोच्चारण करना, मंदिरों या देवालयों में भजन–कीर्तन, पूजा–पाठ, आरती आदि धार्मिक भावनाओं से संबंधित रहा था। साधु–संतों का मूल उद्देश्य शब्द व ध्वनियुक्त साधना द्वारा साकार भावनाओं को जाग्रत करना होता था।

वैदिककालीन ऋक् 'पाणिका' नामक गीत–शैली के बाद भारत में पूर्व काल से ही गायन–शैलियाँ मुद्रक अपरांतक, उल्लोण्वक, प्रकरी, आवेणक, रोविंदक उत्तर वर्द्धमान स्वरूप का बदलाव आरंभ से ही दृष्टिगोचर होता है। भरतकाल से पूर्व समाज में सामगान, गांधर्वगान आदि बहुप्रचलित अवस्था में थे जिनका अधिकांश लिखित प्रमाण अप्राप्य है, परंतु चौथी शताब्दी में आचार्य भरतमुनि कृत 'नाट्यशास्त्र' के छः अध्यायों में संगीत का सर्वप्रथम लिखित प्रमाण हमें शास्त्र अनुरूप प्राप्त होता है जिनमें शास्त्रीय गायनों पर विविध रूप से चर्चा किया गया है। आगे, मतंग द्वारा रचित ग्रंथ 'वृहदेशी' में देशी रागों को समझाया गया तथा इन शास्त्रकारों के समय से ही जाति गायन, प्रबंध गायन, राग गायन आदि प्रचलन में थे जिनसे आगे चलकर विभिन्न शास्त्रीय गायनों का विकास संभव हो पाया।

लगभग चौथी शताब्दी से दसवीं शताब्दी तक संगीत का शास्त्र पक्ष शुद्ध व शाश्वत माना जाता है परंतु पाश्चात्य संस्कृतियों के भारत आगमन से उनके साथ अरबी एवं फारसी संगीत भी भारत आया। हिन्दू एवं मुस्लिम संस्कृति के पारस्परिक संबंध द्वारा नवीन गायन–शैलियाँ, नव–नव मिश्रण, नवीन गायकी इत्यादि से भारतीय संगीत और भी समृद्ध हुआ। प्राचीन कालीन शास्त्रीय गायन के अंतर्गत प्रबंध गायन जिसमें अत्यंत कठोर शास्त्र नियम होते थे, दोनों संस्कृतियों के विद्वजनों ने चिंतन–मनन कर, थोड़ा ढ़ीलापन देकर ध्रुपद–शैली को अविष्कृत किया जो प्राचीन समय में ध्रुवागीत या ध्रुवापाद से संबंधित था। तुर्की सभ्यता के भारत आगमन पश्चात् यह गायन विलुप्त–सा हो गया लेकिन तोमर वंशीय राजाओं के आश्रय में संगीतविदों ने पुनः नवीन गायन–शैलियों के अंतर्गत ''ध्रुपद'' का आविष्कार कर नव– निरूपित एवं प्रतिष्ठित करते हुए भारतीय शास्त्रीय गायन में एक व्यापक बदलाव का आरंभ किया जो भारतीय जन–मानस में चार सौ वर्षों तक प्रचारित रहा। एक ओर ध्रुपद–गायन विभिन्न राजदरबारों में फलने–फूलने लगा तो दूसरी ओर ध्रुपद समान विष्णुपद का गायन भक्ति–भावना के अनुकूल मंदिरों में निखरता गया।

पुनः सामाजिक परिस्थिति के अनुरूप कई छोटे–बड़े राजाओं के आश्रय में संगीत विद्वानों के चिंतन–मनन अनुरूप और भी नयी गायन–शैलियों का प्राकट्य हुआ। जौनपुर के सुल्तान ''हुसैन शर्की'' ने राग व ताल के संयुक्त माध्यम से भावाभिव्यक्ति के अनुरूप अधिक स्वतंत्रता के साथ ख्याल–गायन का आरंभ कर शास्त्रीय गायनों में नवीनता लाई। अब ध्रुपद–गायन की विशेषता को ग्रहण करते हुए ख्याल के अंतर्गत स्वरों के सूक्ष्म व कलात्मक प्रयोग होने लगे जो ध्रुपद–शैलियों में नहीं थे। ध्रुपदगायन में राग

शुद्धता, माधुर्य, ताल व लय के चमत्कारिक प्रयोग आदि ओजपूर्ण स्वर प्रधान थे तो वहीं ख्याल गायन में मींड़, कण, खट्का, मुर्की, भावयुक्त आलाप व तान आदि के विविध प्रयोग होने से शास्त्रीय गायन में नित नये–नये बदलाव आने लगे और जन–मानस को भी अधिक आनंदित करने लगे।

इस प्रकार, संगीत के अंतर्गत शास्त्र की परिधि पर मानव मन की सृजनात्मकता, सौन्दर्यबोधी तथा संप्रेक्षात्मक प्रवाह के फलस्वरूप एक भाव तथा चिंतनमय विश्व का सृजन निरंतर होता आया है, जिसका विश्लेषण, अवलोकन, निरूपण तथा सिद्धांतिकरण ही शास्त्र है। इन शास्त्रों में ही भारतीय संगीत का विकास विभिन्न काल के विद्वानों द्वारा उल्लिखित किया जाता रहा है। प्राचीन समय से लेकर वर्त्तमान तक संगीत में विविध परिवर्तन होते ही रहे हैं। अति प्राचीन काल में शास्त्रीय गायन के अंतर्गत जो प्रबंध गायन प्रचलित था, अब वह ध्रुपद–गायन के रूप में जाना जाता है। ध्रुपद गायन–शैली से ही ख्याल–गायन का विकास हुआ तथा प्राचीन जाति–गायन से रागों का विकास हुआ। वैदिक काल में स्वरों के बारे में बताया गया, प्राचीन समय में श्रुतियों पर स्वरों की स्थापना की गई एवं स्वर श्रुतियों से ही बनते हैं, ऐसा सर्वमान्य हुआ। आधुनिक समय में शास्त्रीय गायन के अंतर्गत राग–गायन में ध्रुपद–धमार, ख्याल, तराना, त्रिवट, चतुरंग आदि मान्य है जिनकी प्रस्तुतियाँ गायकों द्वारा दी जाती हैं तथा शास्त्रीय गायन के साथ–साथ अब उपशास्त्रीय गायन का भी बोल–बाला हो गया है, जिनमें ठुमरी–दादरा को विशेष स्थान प्राप्त है।

**निष्कर्ष**

प्राचीन काल से लेकर वर्तमान समय तक संगीत का हर क्षेत्र अनवरत गतिशील रहा है। प्रारंभ से ही इसकी उत्पत्ति व संरचना परिवर्तनशील बना रहा है। भारतीय संगीत में शास्त्रीय गायन हमेशा ही शास्त्र समर्थित है। वैदिक गायन में सामगायन, गांधर्वगायन आदि प्रमुख रूप से प्रचलित थे। भरतमुनि कृत 'नाट्यशास्त्र' काल से संगीत के शास्त्र पक्ष का लिखित प्रमाण हमें प्राप्त हो पाता है। पं. शारंगदेव ने संगीत को परिभाषित कर शास्त्रीय गायन के विभिन्न तत्वों से हमें परिचित कराया तथा उत्तरी एवं दक्षिणी दोनों पद्धतियों में इनके द्वारा वर्णित तथ्यों का अनुकरण किया जाता है। वर्तमान समय में लोगों की भावनाओं के अनुसार शास्त्रीय गायन में भी परिवर्तन सुनने को मिलता है। इससे यह पता चलता है कि आदि काल से ही संगीत में समयानुरूप परिवर्तन होता आ रहा है और आगे भी, बदलाव होता रहेगा लेकिन भारतीय संगीत में शास्त्रीय गायन का महत्व सदैव ही बना रहेगा।

**संदर्भ सूची :**

1. गर्ग, लक्ष्मीनारायण, निबन्ध संगीत, संगीत कार्यालय, हाथरस, संस्करण 2012, श्लोक–1, पृष्ठ संख्या– 123
2. शर्मा, डॉ० स्वतंत्र, भारतीय संगीत एक ऐतिहासिक विश्लेषण, अनुभव पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण 2014, श्लोक–2, पृष्ठ संख्या– 04
3. सिंह, डॉ० ठाकुर जयदेव, भारतीय संगीत का इतिहास, संगीत रिसर्च एकेडमी, कलकत्ता, प्रथम संस्करण 1994, श्लोक–3, पृष्ठ संख्या– 109
4. वीर, राम अवतार, भारतीय संगीत का इतिहास, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, भाग प्रथम, संस्करण 1996, श्लोक–4, पृष्ठ संख्या– 57
5. वही, श्लोक–5, पृष्ठ संख्या– 58

यूजीसी–केयर सूचीबद्ध, पिअर रिव्यूड वार्षिक शोध पत्रिका

**स्तोम 2023**

# आधुनिक संगीत में ध्वनि–विज्ञान तथा ध्वनिग्राही तकनीक का प्रयोग

**डॉ. ज्ञानेश चन्द्र पाण्डेय**** **पंकज कुमार पटेल***

**सारांश**

*हमारा संगीत वैज्ञानिक तकनीक पर आधारित हो गया है। बिना इसके हम आज संगीत की कल्पना नहीं कर सकते। इसने संगीत में एक नयी ऊँचाई को गति प्रदान किया है। यह ध्वनि–विज्ञान की देन ही है कि आज का संगीत जन–मानस तक आसानी से और स्पष्ट रूप से पहुँच रहा है और लोग आवाज सुनकर पहचान लेते हैं कि अमुक संगीत अमुक व्यक्ति का है। यह तकनीकी युग की बहुत बड़ी उपलब्धि है। संगीत का मूलभूत उपकरण ध्वनि है। हमारे शास्त्रकारों ने 'आहत नाद' कहा है। जिन मुलभूत सिद्धान्तों पर हमारा संगीत टिका हुआ, वे सिद्धान्त निश्चय ही ध्वनि–विज्ञान की दृढ़ नींव पर आधारित हैं।*

**सूचक शब्द** : *संगीत, ध्वनि, यंत्र, विज्ञान, तकनीक*

**शोध–माध्यम** : *इस लेख के लिए द्वितीयक स्रोतों से सामग्री एकत्र की गई है ।*

ध्वनि–विज्ञान और संगीत का सम्बंध जोड़ने का श्रेय पाश्चात्य वैज्ञानिक ''हेल्म हाल्स'' को है। 'हेल्म हाल्स' ने ''सेन्सेशन ऑफ टोन'' नामक बड़े ग्रन्थ में ध्वनि–विज्ञान और संगीत का गहरा सम्बंध दिखाया है, और यह सिद्ध किया है कि ध्वनि–विज्ञान और संगीत एक ही सत्य के दो पहलुओं को समझने और अभिव्यक्त करने का उपाय है। संगीत की रंजकता का आधार जैसे ध्वनि–विज्ञान में मिलता है, वैसे ही ध्वनि का सबसे बड़ा और प्रबल उपयोग संगीत ही प्रस्तुत करता है (कपूर, पृ. 122)। प्राचीन समाज और उसकी उपलब्धियाँ आधुनिक विद्वानों, इतिहासकारों, पुराविदों (archeologist) और शोधकर्ताओं के लिए आश्चर्य का विषय रहा है। प्राचीन मनीषियों ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अनुसंधान किया तथा प्रकृति की शास्त्र चेतना को खोजने का प्रयास किया। अध्यात्म, दर्शन, विज्ञान, चिकित्सा आदि क्षेत्रों के अतिरिक्त साहित्य, संगीत, कला में भी महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ रही हैं। संगीत कला विज्ञान की एक विधा है, यह कला प्राचीन काल से ही अपने चरमोत्कर्ष पर थी, बड़े–बड़े मंदिरों, गिरजाघरों तथा राज–प्रासादों का निर्माण सुनियोजित रूप से होता रहा है। इन भवनों के आंगोपांग में रंग–स्थल अथवा मंच का विशेष स्थान रहा था (वसंत, पृ. 115)। मनोरंजन, ज्ञान एवं धर्म के प्रचार–प्रसार के लिये यह विशिष्ट वास्तु–सिद्धान्तों के आधार पर बनाया जाता था। इसका पृष्ठ–प्रभाव पुरातात्विक सर्वेक्षण एवं ऐतिहासिक ग्रंथों के आधार पर प्राप्त होता हैं।

**ध्वनि**– विज्ञान और तकनीक से सम्बन्धित कुछ मुख्य बिन्दुओं पर ध्यान आकर्षित करना आवश्यक है।

**तकनीक**– जिस माध्यम द्वारा हम काम को आसानी से कर पाते हैं, उसे ही 'तकनीक' कहते हैं और संगीत में तो ध्वनि–विज्ञान ने अपने तकनीकी के माध्यम से एक अलग मुकाम हासिल किया है, जैसे– तारता, तीव्रता, गुण इत्यादि।

**ऑडियो**– जो चीज सुनी जा सके, उसे ऑडियो कहते हैं। जब अनेक गायक या वादक अपने संगीत का प्रदर्शन कर रहे हों तो उनकी ध्वनियों को संतुलित करने का काम ऑडियोग्राफी (श्रव्यता–लेखन) के विशेषज्ञ द्वारा सम्पन्न होता है। वह ध्वनि के गुणों से परिचित होता है और यह भी जानता है कि मनुष्य के कान किस ध्वनि को किस रूप में सुनना चाहते हैं।

मध्यकाल में पण्डित शारंगदेव ने 96 प्रकार का स्थाय बतलाया है (शारंगदेव, श्लोक 111)। ये स्थाय भी ध्वनि–विज्ञान की कसौटी पर खड़ा उतरता है जिनमें कुछ निम्नांकित है–

1. स्वर क्रम पर आधारित स्थाय
2. स्वरों की तीव्रता पर आधारित स्थाय
3. कम्प पर आधारित स्थाय
4. ध्वनि के विशिष्ट गुण पर आधारित स्थाय इत्यादि।

*शोध छात्र, भोजपुरी अध्ययन केन्द्र, कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

**सहायक आचार्य, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

वहीं आज आधुनिक संगीत में ध्वनि–विज्ञान तकनीक के तहत निम्न कार्य किए जाते हैं–

1. **तारता (Pitch)**– जिस आवाज को हम महीन कहते हैं संगीत की भाषा में वह 'ऊँचा स्वर' है और मोटे स्वर को 'नीचा स्वर' कहते हैं। नाद की यह ऊँची–नीची स्थिति ही 'तारता' कहलाती है (प्रो. सिंह, पृ. 47)। आज हम गायक की तारता (Pitch) का स्थान परिवर्तन (Shift) कर सकते हैं और उसमें सुधार भी कर सकते हैं जो ध्वनि–विज्ञान की बहुत बड़ी तकनीकी देन है।

2. **तीव्रता (Loudness)**– जो आवाज धीरे–धीरे सुनायी पड़े, उसे 'छोटा नाद' कहेंगे और जो आवाज जोर से सुनायी पड़े, उसे 'बड़ा नाद' कहेंगे अर्थात् जब ध्वनि तरंग की चौड़ाई कम होती है तो नाद छोटा होता है, किन्तु जब ध्वनि तरंग की चौड़ाई अधिक होती है तो वह नाद बड़ा हो जाता है, तीव्रता उसके कम्प–विस्तार पर निर्भर करता है (वसंत, पृ. 75)।

3. **गुण (Timber)**– यह नाद की विशेष जाति है जिससे पता चलता है कि कौन– सी ध्वनि कौन–से वाद्य की है। यह अंतर ध्वनि में मौजूद उप–स्वरों की तीव्रता के तारतम्य से नाद में जाति या गुण–भेद की उत्पत्ति है (प्रो. सिंह, पृ. 53)।

4. **ध्वनि अनुरणन (Reverberation)**– जब ध्वनि के वास्तविक उच्चारण के तत्काल बन्द होने के बाद भी वह सुनायी पड़ती रह जाती है तो उसे 'ध्वनि का अनुरणन' कहते हैं, इससे बेसुरा होने से बचा जा सकता है (वसंत, पृ. 76)। आज के वैज्ञानिक युग में हम जितना चाहें उतना अनुरणन रख सकते हैं। हम चाहे तो अनुरणन को घटा भी सकते हैं और बढ़ा भी सकते हैं। यह ध्वनि विज्ञान की ही देन है।

5. **प्रतिध्वनि (Echo)**– जब बोलने वाले के शब्द एक–से–अधिक बार सुनायी पड़ते हैं तो इस क्रिया को 'प्रतिध्वनि' कहते हैं। आज के दौर में गायन के क्षेत्र में इसका बहुत बड़ा योगदान है। इसको इस प्रकार सेट कर सकते हैं कि लगातार प्रतिध्वनि उत्पन्न न हो और स्वर या शब्द बिना किसी गूंज के स्पष्ट रूप से सुनायी दे (वसंत, पृ. 80)।

6. **ध्वनि संचार (Propagation)**– ध्वनि का एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाना ध्वनि संचरण कहलाता है (वसंत, पृ. 82) जैसे– टेलीफोन, रेडियो इत्यादि। इन क्रियाओं में ध्वनिग्राही (Microphone) तथा ध्वनि–विस्तारक (Speaker) का महत्वपूर्ण स्थान है। ध्वनिग्राही ऐसा यंत्र है जो ध्वनि–तरंगों को परिवर्ती विद्युत–धारा में बदल देता है। इसके विपरीत ध्वनि विस्तारक परिवर्ती विद्युत–धारा को तीव्र ध्वनि तरंगों में बदल देता है। इसी आधार पर आज अभिलेखन कक्ष में गीत, भाषण का मुद्रण हो रहा है जो आधुनिक संगीत की सफलता को दर्शाता है जिसमें ध्वनिग्राही महत्वपूर्ण भूमिका में होता है। ध्वनिग्राही तकनीक का विकास फिल्म इंडस्ट्री और म्यूजिक इंडस्ट्री के लिए वरदान साबित हुआ जिससे अच्छी ध्वनियुक्त फिल्में तथा गीत–मुद्रण (रिकॉर्ड) होने लगे। ध्वनि के गुणवत्ता को यह ध्वनिग्राही तकनीक घटा भी सकती है और बढ़ा भी सकती है। आज पूरी दुनिया इस तकनीक का लाभ उठा रही है, चाहे वह कोई भी क्षेत्र हो– भाषण, गायन, फिल्म इत्यादि।

7. **ध्वनिग्राही** (Microphone)– के सम्बन्ध में कहा है– Your Mic Technique has powerful effect on the sound of your recording (Bruce Bartlee, pp 95). ध्वनिग्राही को 'माइक' भी कहते हैं। यह एक ऐसा यंत्र है, जो ध्वनि को विद्युतीय संकेत में रूपांतरित करता है या यूँ कहें कि ध्वनिग्राही एक ध्वनि से वैद्युत ट्रांस्ड्यूसर का सम्वेदक होता है। रिकॉर्डिंग पद्धति (ध्वनि मुद्रण) में प्रथम निवेश युक्ति यंत्र (इनपुट डिवाइस) के रूप में सबसे पहले माइक्रोफोन (ध्वनिग्राही) का ही प्रयोग होता है। जब हम अच्छे गुणवत्ता वाली ध्वनि की चाहत करते हैं तो उसमें माइक्रोफोन (ध्वनिग्राही यंत्र) का ही प्रयोग होता है और ध्वनि की गुणवत्ता के लिए ध्वनिग्राही यंत्र की अहम् भूमिका होती है। कहते हैं– The good sound rule (David, pp 111)

Good musician + Good instrument + Good performance + Good acoustic + Good mic + Good placement = Good sound

आज के वैज्ञानिक युग में माइक्रोफोन (ध्वनिग्राही) की उपयोगिता बढ़ गई है। खास कर म्यूजिक इन्डस्ट्रीज के उदय होने से । 1876 में ऐमिली बलिर्नर ने पहले ध्वनिग्राही का आविष्कार किया जिसका प्रयोग टेलीफोन स्वर ट्रांसमीटर के रूप में किया गया (Google, wikipedia)। आज ध्वनिग्राही में निम्न स्तर से उच्च स्तर तक का विकास हो चुका है। तद्नुसार विद्युत–संचालन–शक्ति आवाज बढ़ा कर देती है जो रिकॉडिंग (ध्वनि मुद्रण) पद्धति के लिये बहुत महत्वपूर्ण है। ध्वनिग्राही ऐसा यंत्र है जो ध्वनि तरंगों को विद्युत तरंगों में

परिवर्तित कर देता है जिसे कम्प्यूटर या दूसरे डिजिटल यंत्र समझ सकते हैं– A Microphone is usually the first device in a recording chain. Estentialy amic is a transducer that changes one for of energy into another crosspoinding form of energy (Bruce, pp 95). ध्वनि उत्पादन में तीन प्रकार के ध्वनिग्राही यंत्र (Microphone) का प्रयोग होता है (Bruce, pp 112)।

(1) Dynamic Microphone (डायनामिक ध्वनिग्राही)

(2) Ribbon Microphone (रिबन ध्वनिग्राही)

(3) Condenser Microphone (कण्डेंसर ध्वनिग्राही)

(1) Dynamic microphone- माइक्रोफोन (ध्वनिग्राही), निवेश युक्ति (इनपुट) के रूप में कार्य करता है। सभी प्रकार के माइक (ध्वनिग्राही) के अन्दर एक झिल्ली होती है। यह डायफ्राम प्लास्टिक या Polyester film से बनी होती है जो ध्वनि के प्रति संवेदनशील होता है। इसका डायफ्राम डायनामिक माइक metal coil के साथ जुड़ा होता है। जब कोई ध्वनि तरंग डायनामिक माइक्रोफोन के डायफ्राम से टकराती है तो डायफ्राम में कम्पन पैदा होती है। इस कम्पन से metal coil भी ऊपर–नीचे होता है। ए. सी. करंट विद्युत चुम्बकत्व (electromagnetism) के द्वारा ध्वनि को विद्युत संकेत में परिवर्तित करता है। डायनामिक ध्वनिग्राही (dynamic microphone) ध्वनि के प्रति ज्यादा संवेदनशील होता है। इसका प्रयोग भाषण, लाइव कार्यक्रमए जहाँ एक से ज्यादा माइक्रोफोन का प्रयोग हो, खुली जगह पर, इसका प्रयोग आसानी से होता हैं। इस माइक के सामने या नजदीक बोलने पर ध्वनि अच्छी आती है तथा यह अपने अगल–बगल की ध्वनि को अपनी ओर बहुत कम आकर्षित करता है।

(2) Ribbon microphone– यह ऐसा माइक्रोफोन (ध्वनिग्राही) है जो दोनों तरफ से ध्वनि आकर्षित करता है। यह माइक्रोफोन एक प्रकार के एल्युमिनियम जिसे डुरएल्युमिनियम कहते हैं, से बनाया जाता है। वोल्टेज उत्पन्न करने के लिए इन्हें चुम्बक के पोल के बीच में रखा जाता है। रिवन बहुत पतला होता है, इसी कारण यह ध्वनि को बहुत जल्दी प्रतिक्रिया देता है।

(3) Condenser microphone- कंडेंसर माइक्रोफोन एक स्थिर वैद्युतिकी (electrostatic) के सिद्धांत पर काम करता है, इसमें धातु की दो प्लेट लगी होती है। इसमें पहली प्लेट डायफार्म है जो मुवेबल होती है। दूसरा फिक्स बैक प्लेट होता है, जब ध्वनि तरंग इसमें आती है तो movable diaphragm ऊपर नीचे होने लगता है जिसमें दोनों प्लेट के बीच दूरी बन जाती है और ध्वनि का गुण और विकसित हो जाता है। कंडेंसर माइक्रोफोन के लिए [phantom power (=48v)] की जरूरत पड़ती है।

**ध्वनिग्राही के गुण**– माइक्रोफोन में परिस्थितिजन्य विभिन्न प्रकार के गुण पाये जाते हैं । स्टूडियो के लिए, प्रोजेक्ट के लिए, ऑन लोकेशन के लिए, आदि।

माइक्रोफोन का डायफार्म किस दिशा से ध्वनि को ग्रहण करेगा इसके लिए दो पोलर पैटर्न निर्धारित किए गए हैं (Bruce, pp 119)–

(1) आम्नी डायरेक्शनल पोलर पैटर्न (Omni directional polar pattern)

(2) डायरेक्शनल पोलर पैटर्न (Directional polar pattern)

(1) **Omni Directional Polar Pattern :** इसमें सभी दिशा से एक समान ध्वनि ग्रहण होता है । इस प्रकार के माइक का डायफार्म 0 डिग्री से 360 डिग्री तक चारों दिशाओं से एक समान ध्वनि को एकत्रित करता है। इसका उपयोग नाटक–मंचन में होता है।

(2) **Directional Polar Pattern :** इमसें माइक को दिशा दिया जाता है कि किधर से ध्वनि को एकत्रित करना है । इसके चार पोलर पैटर्न हैं जो निम्नलिखित हैं–

(a) कार्डियोएड्स (Cardioids)

(b) सुपर कार्डियोएड्स (Super cardioids)

(c) हाइपर कार्डियोएड्स (Hyper cardioids)

(d) बायडाइरेक्शनल (Bidirectional)

**Cardioids Polar Pattern :** इस प्रकार के पोलर पैटर्न माइक में सबसे अच्छी ध्वनि सामने से ग्रहण होती है। ये पीछे से ध्वनि को लगभग छोड़ देता है, इसका उपयोग भाषण लाइव, जहाँ ज्यादा माइक का उपयोग हो, ऐसे जगहों पर होता है।

**Super Cardioids :** इस प्रकार के पोलर पैटर्न वाले माइक के सामने से सबसे अच्छी आवाज तो आती है, साथ

ही अपने पीछे से भी ध्वनि को ग्रहण करता है। इस प्रकार के माइक का उपयोग मुख्य ध्वनि के साथ–साथ हल्की–हल्की बैकग्राउंड ध्वनि के लिए होता है।

Hyper cardioids : इस प्रकार का पोलर पैटर्न वाला माइक सामने के साथ–साथ पीछे से भी अच्छे तरीके से ध्वनि को ग्रहण करता है। इसका उपयोग मुख्य ध्वनि के साथ–साथ सहायक ध्वनि के ग्रहण के लिए किया जाता है।

Bidirectional- इस प्रकार के पोलर पैटर्न माइक में जितनी ध्वनि सामने ग्रहण होती है उतनी ही ध्वनि पीछे से यानि आगे और पीछे दोनों की ध्वनि बराबर मात्रा में ग्रहण करती है। इसका उपयोग वार्तालाप, साक्षात्कार आदि में किया जाता है तथा आमने–सामने सम्वाद में किया जाता है।

**आवृत्ति अनुक्रिया (Frequence Responce)**– माइक की अपनी एक frequency response (आवृत्ति अनुक्रिया) होती है जो 20 hz से 20 khz तक होती है। यह माइक के प्रकार तथा उसके डायफार्म एवं पोलर पैटर्न पर निर्भर करता है।

**ध्वनिग्राही के योजना पर विचार (Pickup Characteristics as a function of working distance)**– इस सम्बन्ध में इस प्रकार का कथ्य प्राप्त होता है–

In Studio and sound stage recording for fundamental style of microphone placement and directly related to the working distance of microphone from its sound source (Bruce, pp 132, 133)–

(1) Distant-Miking (दूरी के आधार)

(2) Close-Miking (नजदीकी के आधार पर)

(3) Accent-Miking (टोन के आधार पर)

(4) Ambient- Miking (अगल–बगल की ध्वनि के आधार पर)

**निष्कर्ष** : ध्वनि–विज्ञान और तकनीक के अनेकानेक सूक्ष्म पहलू हैं जिनका उपयोग संगीत–जगत् में होता है। अतः हम कह सकते हैं कि आधुनिक संगीत में ध्वनि–विज्ञान तथा ध्वनिग्राही तकनीक का प्रयोग बहुत महत्वपूर्ण है और यह आज की मांग के अनुरूप है। इसके साथ ही यह भी है कि इस क्षेत्र में नित नयी संभावनाएँ अनंत हैं, जो समयानुकूल और अत्यन्त सराहनीय भी हैं।

**संदर्भ ग्रंथ सूची** :

1. कपूर, प्रो0 मंगला, संगीत मांगल्य, ल्यूमिनस बुक्स, वाराणसी
2. बसंत, संगीत विशारद, संगीत कार्यालय, हाथरस, 28वॉ संस्करण।
3. पं0 शारंगदेव, संगीत रत्नाकर, तृतीय अध्याय, अड्यार संस्करण, 1943
4. सिंह, प्रो0 ललित किशोर, ध्वनि और संगीत, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली
5. Bruce Bartlett, practical recording techniques, published, focal press 225 wyman street, Waltham, ma 02451
6. David miles Huber and Rober e. runstein, published, focal press is an imprint of Elsevier 30 corporate drive, suite 400, Burligton, ma 01803, usa

# Aesthetic Aspects of Music and its realization in Modern Era : A Novel View

**Dr. Kiran Singh**** **Mitali Mukherjee***

**Abstract**

*In this modern world, the traditions that are being followed in the domain of Music, has put up a big question that – whether Music is a subject of study or it's altogether the creation and realization of a complete Life? Today we are proud to see that practice and singing of Music has reached in almost every individual house, and this has become possible only due to the great creations and contributions to the world of music by Bhatkhande, and his unique style of music compositions. However, when we look into the singing style practiced in the ancient times, and compare it with that being practiced today, we find today's form or pattern of singing different, and has undergone a great change. In this paper, mere differences between swara and sur is not talked of but the discussion is far more concerned to the overall existence and survival of music's originality. If modern singing style is deeply observed and studied, it will be found to have preserved only a small part of the original style of the ancient music. Although, this topic is very big and requires highly extensive discussion, yet here an attempt has been made to discuss whether Music is a mere subject to study, or it is a complete realization of Life ?*

**Key words:** *Music, Aesthetics, Yoga, Aahat, Meditation, Medication.*

**Methodology:** *'Music' is a holistic term that globally encompasses the entire universe within. No corner of this universe exist, that is untouched by Music (or Naad). It is perceived as a vast and diverse basis of life's moral, education, culture and tradition; with its unique identity in this universe. Before diving deep into its discussion, we shall try to provide a glimpse of the "Origin of Music" and what does it actually refers to?*

*The well-known proverb -"Necessity is the Mother of Invention" is applicable to every field and the field of Music is no exception. From the proverb it can be concluded that creation of the Universe must have been a result of necessity. The study of World History clarifies that, be it the creation of anything (here, Music or Universe), none of the opinions provided can be neglected. Be it, Philosophical, Spiritual, or a Scientific one. Naturally, many spiritual, developmental, scientific, etc. opinions are prevalent and believed regarding the "Creation of Music", and are as following.*

## Introduction:

In the Vedic period, people followed a different form of life-style. Yoga was the key to a disciplined life and the Yoga comprises of Yam and Niyam. Music is also a part of Yoga, since it can be mastered only by Sadhana i.e. meditation (Yoga). Very often two words are popularly used along with Yoga, and they are Meditation and Medication. The expanse of yoga is too large. It is believed that, it not only guides through one's lifetime but also beyond that. However, to practice Yoga in a way to achieve the above state is not that easy and definitely not everyone's job. That's why it's minimal and more simplified part of Naad (comprising of Aahat and Anahat) i.e. Aahat can be practiced by all and Music(swar-sur) is also a part of Aahat. The very way actual meditation in Yoga is difficult to undergo, in the same manner Sageet-Sadhana (Meditation required in music) cannot be performed by everybody because Yoga

*Research Scholar, P.G. department of Music, TMBU, Bhagalpur
**Professor, P. G. Department Of Music, TMBU, Bhagalpur

and Sangeet–Sadhana are supplementary to each other. This is the reason, why in the ancient period, people had a strict and disciplined life. During that period, music was not limited to swar and sur. The then scholars of Music had to raise life into these swar and sur in order to awaken them and use them as a means for reaching closer to the supreme-power (God).

They had to follow a strict and disciplined life with respect to their clothing, eating habits, thinking, intention and work-culture. And that's why, during that period, with the help of music-medication, high level of spiritual education, conversation with the nature and a selfdisciplined life was possible. But the kind of life-style that is being followed today, the above type of Yoga or Sangeet-Sadhana is not possible, so people keep themselves satisfied by practicing the minimal and the simplified form (Ahat part) of Yoga or Music. However, there existed and even today there do exist people who are still practicing the age old original form. There remains no doubt, that the percentage of practitioners of the original form of Yoga were more in the ancient period and the percentage of practitioners of the minimal and simplified form of Yoga is more today.

**Spiritual/ Philosophical Opinion :**

According to the believers/followers of this opinion, the universe was created by a Super-natural Power called "God" and hence, other things like Music were also created by God. Therefore, we Indians consider Lord Brahma, Goddess Saraswati, Lord Shiva, etc. as its creators. We need to keep in mind that not only Sanatana Dharma followers worship God, but every Dharma (religion) has their own God/ Goddess to worship. Therefore, the creator of music based on God (Super-natural power) varies from religion to religion. The master's course of Music, students are taught- "Music of other Countries" that says, music in this universe has mostly emerged from Religions and Religious places. Muslims consider Hazrat Musa as the musiccreator whereas, Church is considered by Christian countries. Temples are considered in Sanatana Dharma, where music is associated with God- worship and a way to learn the art of living life.

In other words, Dhwani/ Naad is believed to be the "Kaarak" of the whole universe. This in turn is believed to be "Brahma" i.e. God 'Om'. "Omkar" is the origin of all words. Om is the 1st Naad. Hence, music has originated from Naad (Om).

Vithiyus's Opinion: Music connects the body with mind, and soul with God[1].

Greek Philosopher Pythagoras's Opinion (582 – 500 B.C.): Music is the common connective thread of the universe[1].

Aristotle (384 – 322 B.C.): Music is religion-specific. It supports spiritual development in the human society[1].

Rabindranath Tagore's Opinion: Art (Music) is the medium through which living beings express their emotions.

Developmental Principle: It states that music developed with the development in civilisation. Some scholars believe that music resulted as an inspiration from bird and animal sounds.

Carl Theodor Welcker (1790-1869): He believed that music (song) was created to encourage team work (team spirit)[2].

Herbert Spencer (British Philosopher): Music originated in two ways. First, from the pattern developed and followed during conversations; and secondly, from the deep desire to express emotions [2].

Dr. H. Varner: With the help of Phonograph, he found matches/ similarities between the stammering language of children and 'Aadim music'[9].

Fried (1856-1939): According to him, music originated from the attempt to express one's feelings effortlessly; similar to that of the crying or laughing of a child [2].

Hence, we can conclude that some of the above principles are logical, while some others are unclear.

According to Pt. Damodar, the 7 swaras of music have originated from the calls of different birds and animals. For example :

Peacock – Shadaj, Skylark – Rishabh, Goat – Gandhar, Crow – Madhyam, Cuckoo –

Pancham, Frog – Dhaiwat, Elephant – Nishad.

Now the question arises that, do the calls of birds and animals exactly match with the swaras of music? The answer is no. After analysing the quality of their calls it has been found that when we sing the notes, the template matching will be similar. Here, we need to remember that Note (music) and Melody are two different concepts.

According to another opinion/ principle, human culture and music have been developing simultaneously. Acceptance of this opinion seems to be more logical. To understand this in a better way, it is required to focus our attention on the time period when this universe was created. From the history we find that after the Earth was created, it took approximately 12,000 years for life to settle here. It was only after this long span that living beings struggled to adapt and learn surviving (Charles Darwin's theory – Survival of the fittest). Since the living beings struggled for their own survival, thus feelings of empathy, love, kindness, sympathy, etc. had not developed in them till then. They always had a single bothering – how to keep one-self safe from other's attack.With ascent of time, the sense of thinking and understanding developed in human beings, they began expressing their emotions through various sounds and actions. They produced different sounds to express different emotions; one sound for expressing joy, another for alarming others from danger, etc. When they learnt to speak, they stretched the words while talking in order to express their emotions. Thereafter with the development of culture and tradition, human beings slowly began expressing themselves through words, which were further woven into musical notes to form Music. Therefore, Dhwani/ Naad is the Central point/ part of Music.

The next question that arises, "Is music merely a subject and is it only related to human beings?" In simpler words, "What is Music?"

**Discussion:**

The word "Sangeet" (music) literally means 'Sam' (along with) + 'Geet' (song). Here, Dance and Instruments are combined with song to give Music its complete form. Similar to a lifeless body, music is incomplete with any of these three missing in it. Neither they are complete being themselves only. When rhythm is added to dance, it creates life; and when these are accompanied by song (lyrics and tune), it becomes meaningful. It is believed that Rhythm has the highest position in music. It is a vital component that helps to bind words in tune, and only then the melodic words attain the niche of beauty ("Satyam Shivam Sundaram"). Similarly, Rhythm helps Dance (expressing emotions through body movements) achieve ultimate success. Now when we try to express the actual meaning of music, we find that it is impossible to keep it bound within certain areas due to its vast concept. It is quite noticeable that "Song + Dance + Rhythm" (Music) is related to every aspect of life. We also find that when an appropriate "Music" is linked to a specific type of work, several additional rules too add up, which further makes our work, life and culture more beautiful, meaningful, satisfactory and complete.

During the Vedic period music was not only a subject, but a part of complete lifetime. In order to achieve high quality life maintenance, one

needed to follow a strict (i.e. time-bound and disciplined) lifestyle. A disciplined lifestyle included proper music practice on time along with proper diet and yoga or exercise. We came to know from the books viz. History of Music, that among the four caste systems (Brahmins, Kshatriyas, Vaishyas and Shudras), only Brahmins had access to Music.

This was due to the fact that along with being a part of worship, the Richas pronounced in it were so powerful that it produced visible effects. This power could be awakened only by leading the strict, disciplined lifestyle and following certain rules; which only Brahmins were thought being capable of doing. Politics and ruling activities were the responsibilities of the Kshatriyas, Vaishyas were meant to look after business activities and the Shudras were given the responsibility to look after cleanliness.

In ancient times, casteism was not done on the basis of birth, instead it was based on the intelligence, expertise and deeds of an individual. In the Modern era also, science believes in the power of those Richas and their impacts. That is why Music and Yoga (music is a part of yoga) were a part of treatment and medication during the Vedic and Ancient period. Again in the Modern era, the benefits of Music are providing a lot to Medication and Treatment, even with some major diseases. Today, Music Therapy has enabled the complete treatment of diseases such as Cancer and Tumour along with other diseases such as Anxiety, Depression, Insomnia, etc. Yet, we need to understand that merely singing the Swaras in tune and with melody cannot help in the treatment; but the singer and the patient, both need equally high affirmation to make the therapy successful. This helps to invoke the energy/ power of the Swaras (Notes) and is therefore considered to be the easiest path to connect with God or the Supreme Power. When a singer practices the musical notes with full dedication, he gradually gets rid of the negativity from within. If we try to know and practice music merely as a subject, we may become a good singer but we would never be able to realise its positivity and power, as a Singer.

Many notable Music Practitioners can be seen in the contemporary world. But there are several others who study music merely as a subject. Somehow or the other, the prevailing lifestyle, tradition and society is responsible for this. The Indian society has even faced a period where the main objective of people was only to compete and succeed with profit maximisation, which endangered "Humanity". But in such times, few great music practitioners and scientists strived hard to maintain the balance between selfish-success and humanity. Because of such great personalities only, we are able to know and understand our history, tradition and culture which would have otherwise, faded gradually.

Mere discussions of the philosophical opinions regarding Music is not enough. So we proceed further to know the scientific reasons behind these. This will help to prove that when an individual leads a strict and disciplined lifestyle and accepts music as Sadhana, the Chakras and good Elements of that individual gets activated which starts working positively. This is accomplished by the secretion of good hormones. This enables the individual to overcome negative emotions, which further helps to overcome difficulties of life with affirmation. This keeps the humanity awake within and helps to achieve the ultimate connection with the Supreme power or God.

Due to the existence of the above scientific reasons only, may be Narad Muni in his Grantha- 'Naradiya-Siksha' has explained in detail that how swaras are produced by touching or clashing against which organs of the human body to produce a specific swara ( Granth- Naradiya Siksha, Narad Muni ).

During the ancient times, the scientists and scholars were very intelligent. They knew that

people won't readily accept neither any rule of disciplined life nor will exhibit any interest in following the rituals that otherwise ought to be performed with full dedication. So they used to link everything finally to the Supreme power (God) so that they could understand the meaning of aesthetics, emotions etc. and relate it to the life. This is true still now. However, the most interesting part is that, even if people start following a disciplined life after having received lessons from the scholars, the freckling and unstable mind within people, won't let it continue lifelong.

**Conclusion:**

The significance of music in life is clear from the above discussion. The melodious tunes of Music which is a part of sound (Naad), has the ability to make our life organised, determined, successful, complete and meaningful. By practicing the melodious musical notes, one can achieve truth and satisfaction. "Words" are the micro parts of music that are used in daily life. If the words that were used in ancient times and are used even now for conversations and used with patience, sweetness and sanctity; nothing can prevent the "Golden 'Age/ Era" from forming. Therefore, Shabda/ Naad and the music originating from it are forms of "Brahma". Music is an indifferent part of the universe and the basic premise source of Human life.

**References:**

1. बन्धोपाध्याय, नीलरतन, संगीत सिद्धांत, प्रथम संस्करण, हसन्तिका प्रकाशिका, 1980, पृ.सं. – 2
2. तथैव, पृ. सं. – 3
3. दिक्षित, डॉ. प्रदीप कुमार, सा ''रस'' संगीत, द्वितीय संस्करण, किशोर विद्या निकेतन, भदाइनी, वाराणसी, 2005
4. सिंह, डॉ. चित्रलेखा, तथा लाला, आर., कला शिक्षण, अग्रवाल पब्लिकेशन
5. पं. वी. एन. भातखन्डे, क्रमिक पुस्तक मालिका, हाथरस पब्लिकेशन, तेरहवीं संस्करण, 2012
6. बन्धोपाध्याय, नोनीगोपाल, संगीत दर्शिका, नाथ ब्रदर्स, जादवपुर, कोलकाता
7. घोष, शंभुनाथ, सोंगितेर इतिबृत्तो, प्रथम भाग, कलकत्ता 100042
8. वसंत, संगीत विशारद, हाथरस पब्लिकेशन, 2002
9. https://physicstoday.scitation.org/ doi, Good Vibrations: The Physics of Music.

# वैदिक वांङ्मय में संगीत चिकित्सा के सूत्र

**डा. ममता रानी ठाकुर**** **रीना दत्त***

**शोध सारांश**

*जब हम वैदिक वांङ्मय में संगीत चिकित्सा के सूत्र तलाशते हैं तो पाते हैं कि वेद चतुष्टयी में ध्वनि, ऋचाओं, सूक्तों, मंत्रों के द्वारा चिकित्सा के पर्याप्त उद्धरण हैं जिनका पाठ विशिष्ट पद्धति से स्वरयुक्त उपासना द्वारा किया जाता था और आरोग्य प्राप्ति के साथ–साथ रोगी न होने की शुभकामना की जाती थी। मंत्रों के द्वारा सभी कामनाओं की पूर्ति हेतु एवं सभी सुखों की प्राप्ति हेतु देवताओं को हविष्य प्रदान कर व्यक्तिगत, परिवारगत, समाजगत, राष्ट्रगत तथा विश्वगत स्वास्थ्य की शुभकामनाओं के अनगिनत स्रोत वेदों में दृष्टव्य हैं जिसे वैदिक साहित्य के साथ–साथ आधुनिक विज्ञान भी सिद्ध करता है। ये स्वरयुक्त मंत्र दिव्य औषधि ही होते थे जो आरोग्य, दीर्घायु, ऐश्वर्य, अंतःकरण की शुद्धि, मेधा प्राप्ति, भय निवारण, रक्षा एवं अन्यान्य दैहिक, दैविक एवं भौतिक सुखों हेतु गाये जाते थे।*

**कुंजी शब्द** : *वैदिक चिकित्सा, आरोग्य, यज्ञ, मंत्र, त्रिविध शांति।*

**शोध–माध्यम** : *प्रस्तुत शोध आलेख प्राथमिक और द्वितीयक स्रोतों से सामग्री एकत्र कर तैयार की गई है।*

**प्रस्तावना**

वेद अपौरूषेय है जिसे सारी विद्याओं का जनक माना जाता है। इन्हें अंतर्दृष्ट वाणी कहा जाता है। इसे ही हम श्रुति कहते हैं। श्रुति भी अपने आप में तीन भागों में विभक्त हैः कर्मकांड, ज्ञानकांड एवं उपासना कांड। कर्मकांड के अंतर्गत संहिता एवं ब्राह्मण ग्रंथ हैं। ज्ञानकांड के अंतर्गत उपनिषद्। तीनों वेदों में ऋग्वेद को ज्ञानकांड, यजुर्वेद को कर्मकांड और सामवेद को उपासना कांड कहा गया है। ऋक् का विस्तार यजुर्वेद में देवस्तुति एवं अथर्ववेद में स्वास्थ्य एवं मांगल्यदायक शास्त्र के रूप में हुआ है। सामवेद पूर्ववर्ती वेदों का आधार लेकर उन्हीं श्लोकों को साम के रूप में विकसित करता है। छंदबद्धता हेतु कुछ अक्षर या शब्द जोड़े जाते हैं। ऋचाओं के द्रष्टा कवि कहलाते थे। ये आध्यात्मिक अंतर्दर्शन एवं अंतःश्रुत शब्दों के गायक थे। इनकी वाणी ही प्रथम गेय पद्धति है। मानव सभ्यता के आदिकाल में जब लिपि का भी आविष्कार नहीं हुआ था तब ज्ञान एवं भाव के संक्रमण का आधार स्वर वैशिष्ट्य ही था। वैदिक वांङ्मय में स्वर को ब्रह्म माना गया है। यह संपूर्ण ब्रह्मांड स्वरमय, शब्दमय, अक्षरमय है। आधुनिक विज्ञान में संपूर्ण सृष्टि की उत्पत्ति का कारण एक विराट स्फोट को माना जाता है जो शब्दमय है, स्वरमय है। प्राचीन आधुनिक मनीषियों ने संपूर्ण सृष्टि की उत्पत्ति नाद से माना है जो ब्रह्मांड के जड़ से लेकर चेतन तक सभी में व्याप्त है। नाद से सृष्टि की उत्पत्ति को हम ऐसे समझ सकते हैंः– नाद से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी की निर्मिति हुई। इन्हीं पंचतत्त्वों से जगत का निर्माण हुआ। यदि सिर्फ तत्व की ही बात की जाय तो फिर सब कुछ निर्जीव ही होता ! किंतु इन्हीं पंचतत्वों को आधार बना कर ही सृष्टि में प्राणतत्त्व का आविर्भाव हुआ और सर्वप्रथम जीवन का प्रादुर्भाव हुआ। जीवन को भलीभाँति चलाने हेतु मन और बुद्धि का विकास हुआ। इन्हीं विकास के क्रम में वेदों की अंतःश्रुत वाणियों को ऋषि, मनीषियों ने ध्यानावस्था में सुना। ये ही वेद की ऋचाएँ हैं जो अद्भुत रूप से ज्ञानपूर्ण हैं तथा त्रिताप के स्थूल एवं सूक्ष्म व्याधियों से हमारी रक्षा करते हैं। द्रष्टव्य है विभिन्न वेदों और उपनिषदों की सूक्तियाँ, ऋचाएँ एवं मंत्र।

ऊँ पश्येम शरदः शतम्, जीवेम शरदः शतम्, बुध्येम शरदः शतम्, रोहेम शरदः शतम्, पूषेम शरदः शतम्, भवेम शरदः शतम्, भूयेम शरदः शतम्, भूयसी शरदः शतात्।।[1]

हे प्रभो ! हम सैकड़ों वर्षों तक जियें, सौ वर्षों तक ज्ञान प्राप्त करते रहें, बढ़ते रहें, सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करते हुए सुशोभित रहें, सौ वर्षों से भी अधिक समय तक जीते रहें।

ऊँ श्रुणुयाम शरदः शतम्, प्रब्रवाम शरदः शतम्, अदीनाः स्याम शरदः शतम्, भूयश्च शरदः शतात्।।[2]

*शोधार्थी, वि.वि. संगीत एवं नाट्य विभाग, एल.एन.एम.यू., कामेश्वरनगर, दरभंगा
**शोध निर्देशिका, संगीत विभाग, एम.एल.एस.एम. महाविद्यालय, दरभंगा

हे प्रभो! हम सौ वर्षों तक सुनते रहें, प्रवचन करते रहें, कभी दीन न हों, सदा शुभ भावनाओं को धारण करें।

ऊँ अयुतोऽहमयुतो म आत्मायुतं मे चक्षुरयुतं में श्रोतं युतो मे प्राणोऽयुतो मेऽपानोऽयुतो मे व्यानोऽयुतोऽहं सर्वः।[3]

हे प्रभो ! आप मुझे ऐसा बनाइए कि मैं दस सहस्र गुणा शारीरिक शक्ति से संपन्न होऊँ। मेरा आत्मबल दस सहस्र गुणा बढ़ जाए। मेरे नेत्र, श्रोत, प्राण, अपान, व्यान, सब पूर्ण स्वस्थ रहकर दस सहस्रगुणी शक्ति प्राप्त करें।

ऊँ नाभि रहं रयीणां नाभिः समानानां भूयासम्।1।
स्वास्दसि सूषा अमृतो मर्त्येष्वा।2।
मा मां प्राणो हासीन्मो अपाऽवहाय परा गात् ।3।[4]

हे भगवन्! ऐसी कृपा कीजिए– मुझे ऐसा पुरूषार्थ दीजिए कि मैं अपने पुरूषार्थ से संपत्ति का केंद्र बनूँ। मैं समान उन्नति वाले जनों के बीच आदरपूर्वक रहूँ। मैं मनुष्यों में अखंड कीर्तिवाला बनूँ। अपने गृह में कुटुम्ब में सुख से रहते हुए मेरा उषाकाल, मध्याह्न काल और सायंकाल सुखदायी एवं स्फूर्तिदायक हो । मैं उत्तम सभा में आत्मसम्मान की वृद्धि पाऊँ। मेरे समीप बैठने वाले सभ्य हों। मैं दीर्घजीवी होकर सत्कर्म करनेवाला बनूँ।

ऊँ भद्रं कर्णेभिः श्रुणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरंग्डै.स्तुष्टुवाँसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः।।[5]

हे देवगण! हम अपने कानों से शुभ कल्याणकारी वचन सुनें । नेत्रों से हम सदा कल्याणकारी का ही दर्शन करें। हमारे शरीर सुदृढ़ और सुपुष्ट हों जिससे हम भगवान का स्तवन करते रहें। हमें ऐसी आयु मिले जो देवताओं के हित में हो।

**महामृत्युंजय मंत्र**– यह मंत्र ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा शिवपुराण सहित विभिन्न ग्रंथों में उल्लिखित है। इसके सस्वर गायन से सांसारिक सभी प्रकार के कष्टों से मुक्ति मिलती है, विशेषकर मृत्युभय से। यह मंत्र जीवनी शक्ति को बढ़ाकर सकारात्मक उर्जा से मन और प्राण को चेतना प्रदान करता है। मंत्र इस प्रकार है–

त्र्यंबकं यजामहे सुगन्धिंपुष्टिवर्धनम्।
उर्वारूकमिव बन्धनान मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्।[6]

हम त्र्यंबक शिव का यजन करते हैं जो सुगंधित हैं और हमारा पोषण करते हैं। जिस प्रकार खरबूजा शाखा रूपी बंधन से मुक्त हो जाता है उसी प्रकार हमें भी मृत्यु रूपी बंधन से मुक्त कीजिए, अमृत से नहीं।

**स्वस्तिवाचन मंत्र**– किन्हीं भी शुभ और कल्याणकारी कर्मों को करने से पूर्व पाठ आवश्यक माना जाता है वैदिक परंपरा में। मानव का वैयक्तिक स्वास्थ्य सह सामाजिक एवं वैश्विक स्वास्थ्य की अभिवृद्धि हो, अस्वास्थ्यकर परिस्थितियों का नाश हो, विश्वबंधुत्व की भावना का विकास हो तथा मानवीय मूल्यों का ह्रास न हो, ऐसी शुभ भावनाओं से इन मंत्रों का गायन किया जाता है।

आ नो भद्रा क्रतवो यन्तु विश्वतोदब्धासो अपरीतास उद्भिदः।
देवा नोयया सदमिद् वृधे असन्नप्रायुवो रक्षितारौ दिवेदिवे।

हमारे पास ऐसे भद्र और कल्याणकारी विचार आते रहें, हमारे चारों ओर से जो किसी से दबे न हों, वे अज्ञात को प्रकट करने वाले हों। रक्षा में तत्पर देवता सदैव हमारी रक्षा करें।

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवानां रतिरभि नो निवर्तताम् ।
देवानां सख्यमुप सेदिमा वयं देवा न आयुःप्रतिरन्तु जीवसे ।।

देवताओं की कल्याणकारिणी सुमति अर्थात् श्रेष्ठ बुद्धि सदा हमारे सम्मुख रहे। उनका दान तथा मित्रता हमें सदा प्राप्त हो। जीने के लिए देवता सदा हमारी आयु का वर्धन करें।

**न्यास का मंत्र**– न्यास का अर्थ है– रक्षा, स्थापना। वैदिक वाङ्मय में बाह्य एवं अंतःकरण के अंगों की पवित्रता हेतु मंत्रों को भावनापूर्वक स्थापित किया जाता है। शरीर के अवयवों में जो क्रियाशक्ति निष्क्रिय पड़ी हुई है उसे जगाने हेतु न्यास का मंत्र अमोघ है। स्वामी अखंडानंद सरस्वती जी के अनुसार "इस स्थूल शरीर में अपवित्रता का ही साम्राज्य है। जब तक उसकी अपवित्रता बनी रहती है तब तक इसके स्पर्श और स्मरण से ग्लानि का उदय चित्त में होता रहता है।" ग्लानियुक्त व्यक्ति भावोद्रेक से शून्य होता है। विक्षेप और अवसाद से आक्रान्त होने के कारण बार–बार प्रमाद, तंद्रा से अभिभूत हुआ करता है। यही कारण है कि न तो वह एकतार स्मरण ही कर सकता है, न विधि–विधान के साथ किसी कर्म का सांगोपांग अनुष्ठान ही । इस दोष का मिटाने के लिए न्यास सर्वश्रेष्ठ उपाय है।"[7] अंगन्यास का मंत्र दृष्टव्य हैं–

हृदयाय नमः शिरसे स्वाहा, शिखायै वषट् कवचाय हुम।
नेत्रत्रयाय वौषट् तथा अस्त्राय फट्।

**गायत्री मंत्र**– यह मंत्र वैदिक काल से ही सुप्रतिष्ठित है। जो दैहिक, दैविक एवं भौतिक तीनों तापों का शमन करती है। यह यजुर्वेद के मंत्र 'ऊँ भूर्भुवः स्वः' और ऋग्वेद के छंद 3। 62। 10 के मेल से निर्मित है। वेद, पुराण, उपनिषद्, संहिता एवं बाह्मण सभी ग्रंथों में इसकी महिमा का गुणगान किया गया है । यह मंत्र अनंत काल से परंपरागत ज्ञान एवं जीवन का प्रेरणा स्रोत है। स्थूल सूर्य से ऊर्जा उसकी किरणों के माध्यम से आती है किंतु सूक्ष्म सूर्य से ऊर्जा गायत्री अथवा सावित्री मंत्रों के द्वारा आती है। इन दोनों सूर्य की ऊर्जा से हमारे प्राणों को पोषण मिलता है। मंत्रों के साथ जब उचित भाव समाहित हो वह तभी फलदायी होता है।[8] शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है 'जो प्राणों की रक्षा करे वह गायत्री है।'

'गयान प्राणान त्रायते स गायत्री'। इसके जप, उपासना एवं गायन से शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक बल की वृद्धि होती है। यह मंत्र ऋक्, यजुः, साम, काण्व, कपिष्ठल, मैत्रायणी, तैत्तरीय, काठक आदि सभी वैदिक संहिताओं में प्राप्त होता है। मंत्र इस प्रकार हैः–

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।[9]

प्राणस्वरूप, प्रकाशमान परमात्मा के वरेण तेज का हम ध्यान करते हैं, वे हमारी बुद्धि को सत् की ओर प्रेरित करें।

**प्रणव मंत्र– ऊँ**

सामान्य रूप से प्रणव का पर्याय ही **ऊँ** अर्थात् तीन अक्षरों का मेल समझ लिया जाता है। परंतु डा. संपूर्णानंद जी, राज्यपाल, राजस्थान के लेख वैदिक भगवन्नाम और जप के अनुसार यह मंत्र ध्वन्यात्मक है, वर्णात्मक नहीं तथा अनुच्चार्य है। उस नाद का अनुभव हो सकता है, वर्णन नहीं। वह शब्दों के द्वारा किसी तक पहुँचाया नहीं जा सकता है।[10]

'योगश्चित्तवृत्ति निरोध'[11]योग दर्शन के अनुसार चित्त की वृत्तियों का निरोध ही योग है। अतः चित्त की पाँचों प्रकार की वृत्तियों– प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति रूपी सभी वृत्तियों के निरोध का अभ्यास प्रणव अर्थात् 'ऊँ' मंत्र के उच्चारण द्वारा सहज ही साधित हो जाता है। यह ध्वनि अंतःप्रेरणा एवं अंतर्भास का द्वार खोलती है जिससे सत्वगुण का उदय होता है जो भावजन्य एवं बुद्धिजन्य विकारों यथा संदेह, भ्रांति, अनिर्णय, अवसाद, बेचैनी, आत्मग्लानि आदि का शमन करता है और संतोष, मुदिता, प्रसन्नता, शांति आदि का उदय करता है ।

**मोक्ष निमित्तक प्रार्थना मंत्र**

असतो मा सद्गमय। तमसो मा सद्गमय ।
मृतयोर्मा अमृत गमय ।[12]

हे प्रभो! हमें असत् से सत् की ओर, अंधकार से ज्ञानालोक की ओर तथा मृत्यु चक्र से निवृत्त कर दिव्य अमृत की ओर ले चलो।

**विश्व–जनीन प्रार्थना मंत्र**

अपने अभीष्ट की याचना ही प्रार्थना कहलाता है । धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चार पुरूषार्थ हैं जिनकी प्राप्ति हेतु मनुष्य सदा देवताओं से प्रार्थना करता रहता है । कामनाओं की पूर्ति हेतु वह इस प्रकार प्रार्थना करता है –

त्वं विष्णो सुमतिं विश्वानन्या म प्रयुतामेवयावो मतिं दाः।[13]
विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यदभद्रं तन्न आ सुव ।[14]

हे संपूर्ण विश्व के प्रकाशक देव! हमारे संपूर्ण पापों को, पापमयी वासनाओं को हमसे दूर कीजिए और जो कुछ भी संसार में भद्र है, कल्याणकारी है, उसे हमें प्राप्त कराइये ।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुखभाग्भवेत्।

सभी सुखी होवें, सभी रोगमुक्त रहें, सभी भद्रता को ही देखें, कभी भी कोई दुख का भागी न हो– तैत्तरीय उपनिषद् या वृहदारण्यक उपनिषद्

**यज्ञोपवीत मंत्र**

ऊँ यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत–सहजं पुरस्तात्।
आयुष्य अग्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेज ।।[15]

यह यज्ञोपवीत मंत्र परम पवित्र है जो आदिकाल से प्रजापति के साथ उत्पन्न हुआ है और जो आगे ले जाने वाला, बंधनों से छुड़ानेवाला, शुचिता, शक्ति और तेज देनेवाल हो ।

**आत्मानुभूति का मंत्र**– अहं ब्रह्मास्मि।[16]

मैं ही ब्रह्म हूँ ।

यह मंत्र पिंड और ब्रह्मांड की चेतना के एकाकार

होने का सूत्र है । व्यष्टि के भीतर भी वही बल, चेतना और संवेदना कार्यरत है जो समष्टि में है, यह दिव्य मंत्र इस वक्तव्य को प्रमाणित करता है । इस मंत्र की साधना से अनुप्राणित होकर, उपासना, गायन एवं जप द्वारा मानव एक विशाल चेतना के संग जुड़कर वैश्विक महाप्राण, महामन एवं प्रज्ञा के गुप्त एवं रहस्यमय क्रिया–कलापों को अनुभूत कर स्वयं भी सभी प्रकार की असमर्थता से पार पा जाता है और किसी भी प्रकार का विकार उसका स्पर्श भी नहीं कर सकता है ।

**उपसंहार**

उपर्युक्त अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि वैदिक वांड.मय में संगीत चिकित्सा के सूत्र बहुतायत में दृष्टव्य हैं जो यह प्रमाणित करते हैं कि प्राचीन काल से ही वेद की ऋचाओं का सस्वर गायन कर वैदिक मनीषी गण द्वारा रोगी को आरोग्य प्रदान किया जाता रहा है और स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य के बरकरार रहने की कामना की जाती रही है। ये मंत्र और सूक्त हमें बताते हैं कि भारतीय संस्कृति के धरोहर ये वेद देवताओं के यजन–पूजन के साथ–साथ मानव के वैयक्तिक स्वास्थ्य के साथ–साथ वैश्विक स्वास्थ्य की भी मंगलकामना करते थे और जिसे प्राप्त करने में वे सफल भी होते थे। आज भी यदि वैदिक अनुशासन को पूर्णतः अपनाया जाय तो मानव त्रिविध तापों से मुक्त हो सकता है।

संदर्भ सूची :

1. अथर्ववेद 19। 67। 18
2. शुक्ल यजुर्वेद, 36। 24; तैत्तरीय आरण्यक 4। 42। 5
3. अथर्ववेद 15। 5। 1
4. अथर्ववेद 16। 4 1,2,3
5. ऋगवेद 1। 89। 8; सामवेद उत0 अध्याय 21 मंत्र 26, शुक्ल यजुर्वेद 25। 21, तैत्तरीय आरण्यक 1 । 1 । 1
6. शुक्लयजुर्वेदीय रूद्राष्टाध्यायी–अध्याय 6। 5
7. कल्याण, देवतांक, वर्ष–64, संख्या–1, पृष्ठ–30
8 कपिल योगर्षि, शांत ब्रह्म–माँझी और झील, प्र0–श्रीकपिल कानन, पृष्ठ 100
9. वाजसनेयी संहिता 3। 35, ऋक संहिता 3। 62।10, साम 1462 इत्यादि
10. कल्याण, भगवन्नाम महिमा और प्रार्थना अंक, जनवरी 1965, पृष्ठ–31, गीताप्रेस ।
11. पातंजल योग दर्शन 1। 2, समाधिपाद
12. वृहदारण्यक उपनिषद्–1। 3। 28
13. ऋगवेद 7। 100। 2
14. ऋगवेद 5। 82।5
15. वाजसनेयी यज्ञोपवीत मंत्र पारस्कर, गृह्यसूत्र, ऋग्वेद–2। 2। 11
16. शुक्ल यजुर्वेद, वृहदारण्यक उपनिषद् 1।4।10

# भक्ति का स्वरूप : यौगिक दृष्टिकोण से

**नम्रता चौहान**** **चंचल सूर्यवंशी***

**संक्षेपिका**

*वैदिक सनातन धर्म में भगवद–प्राप्ति के अनेक साधनों में भक्ति एक विशेष साधन है, जिसके माध्यम से कोई भी सामान्य भक्त सुगमता से भगवान को प्राप्त कर सकता है। कलियुग में भगवान को प्राप्ति के लिए भक्ति के समान और कोई सुगम उपाय नहीं है क्योंकि ज्ञान, तप, कर्म, ध्यान इस प्रकार के योग में सिद्ध होने में बहुत ही कठिनाई का अनुभव होता है तथा इनके लिए उपयुक्त साधन सामग्री का मिलना भी मुश्किल होता है इसीलिए मनुष्य को निष्ठा–पूर्वक भक्तिमार्ग का अनुसरण करना चाहिए। ईश्वर सबका शासन करने वाले, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, सर्वअंतर्यामी, साक्षी, बुद्धि–ज्ञान प्रदान करने वाले त्रिगुणातीत हैं, जो व्यक्त–अव्यक्त रूप में जीवों पर दया करते हैं तथा भक्तों को आश्रय देते हैं। कई रूपों में प्रत्यक्ष प्रकट होकर भक्तजनों को उनकी इच्छानुसार दर्शन भी देते हैं तथा उन्हें आह्लादित करते हैं। भगवान राम के प्रति शबरी, भरत, हनुमान, जटायु आदि की भक्ति, कृष्ण के प्रति कुब्जा, सुदामा, मीरा की भक्ति, माँ काली के प्रति परमहंस की भक्ति सबसे सर्वश्रेष्ठ भक्तियोग का उदाहरण है। इस शोध में भक्ति के स्वरूप, प्रकार, विशेषताएँ, भक्ति के फल तथा भक्त के गुणों पर चिंतन प्रस्तुत है।*

**मुख्य शब्द** : *भक्ति, नवधा, परा–अपरा भक्ति, ईश्वर।*

**प्रविधि** : *इस पत्र को तैयार करने के लिए द्वितीयक स्रोतों से सामग्री संकलित की गई है ।*

**प्रस्तावना–**

भक्ति–योग प्रेम के माध्यम से मनुष्य तथा ईश्वर को जोड़ने वाला विज्ञान है। भक्ति वह साधन है जो मानव–मन को ईश्वर की ओर उन्मुख कराता है। पुरातन वैदिक काल से लेकर अब तक असंख्य ऋषि–मुनियों ने भक्ति संबंधित अनेक उपदेश दिए हैं तथा इन भक्ति उपदेशों के सहस्त्र ग्रंथों की रचना भी की है। भक्ति–काल के प्रमुख ग्रंथों में नारदीय भक्ति सूत्र, शांडिल्य भक्ति, भागवतपुराण प्रमुख हैं। ब्रह्मलीन स्वामी वेदांत आनंद ने भी 'भक्ति प्रसंग' नामक एक ग्रंथ लिखा है। देवर्षि नारद ने भगवान के नाम का कीर्तन करते हुए ही अपना संपूर्ण जीवन व्यतीत किया और नारद भक्ति सूत्र के प्रथम सूत्र में कहा है कि भक्ति तत्व का ज्ञान जिज्ञासु भक्त को ही देना चाहिए।[1] भक्ति के अधिकारी के विषय में वर्णन करते हुए कहते हैं कि ज्ञान, योग आदि साधना पदों के अधिकारी को शारीरिक, मानसिक आदि गुणों से संपन्न होना आवश्यक होता है किंतु भक्ति–मार्ग के लिए केवल आंतरिक व्याकुलता, एकांतिक आग्रह ही आवश्यक है। श्री रामकृष्ण देव अपने भक्तों से कहते हैं कि ''यहां अन्य कोई नहीं है, इसी से तुम लोगों से कहता हूँ आंतरिक भाव से ईश्वर को जो जानना चाहेगा उसे ही वह प्राप्त होगा, निश्चय ही होगा। जो व्याकुल हो ईश्वर के अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहता उसे ही प्राप्त होगा।'' महर्षि शांडिल्य ने कहा भी है आनंद भक्ति में जाति, विद्या, वय, सौन्दर्य लिंग, धन के पक्षपात पर बिना विचार के सब का अधिकार होता है।

श्रीरूपगोस्वामी ने सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'भक्तिरसामृतसिंधु' में भक्ति के विषय में कहा है कि अध्यात्म ज्ञान की प्राप्ति की कामना के बिना, कर्म और वैराग्य का भी मोह न रखते हुए अपने भी किसी स्वार्थ की भावना को स्थान न देना ही श्रेष्ठ भक्ति है। भक्ति किसी भी प्रकार के ज्ञान अथवा साधन आदि की अपेक्षा नहीं रखती। भक्ति की महत्ता को स्पष्ट करते हुए श्रीकविराज कृष्णदास ने कर्म और ज्ञान की तुलना घास से की है और कहा है कि स्व हृदय से इन दोनों को निर्मूल कर दें जिससे भक्ति मार्ग प्रशस्त हो सके।[2] क्योंकि भक्ति स्वयं ही मोक्षस्वरूपा अर्थात् मोक्ष को प्रदान करने वाली है।

**भक्ति का स्वरूप–**

भक्ति का अर्थ है– सत्य को बुद्धि से नहीं, हृदय

*शोधार्थी, इंटेग्रेटिव मेडिसिन विभाग, श्री देवराज यूआरएस अकादमी ऑफ हायर एजुकेशन एंड रिसर्च, कोलार
**सहायक प्राध्यापक, योग एवं नेचुरोपैथी विभाग, सरला बिरला विश्वविद्यालय, राँची

से मानना; विचारों से नहीं, भाव संवेदनाओं से उसे प्राप्त करना; चिंतन से नहीं, अपितु प्रेम से प्राप्त करना। भक्ति के उदाहरणों में वनवासिनी शबरी, पाषाणरूप अहिल्या, राक्षस कुल के विभीषण, केवट निषाद राज, ब्रज की गोपियाँ, बाल–ग्वाल, इन सभी का नाम आता हैं।[3]

'भक्ति' शब्द की उत्पत्ति संस्कृत की 'भज् सेवायाम' धातु में 'क्तिन्' प्रत्यय लगाकर बना है जिसका अर्थ सेवा, पूजा, उपासना तथा संगतिकरण से है।[4] सेवा के द्वारा भक्त का भगवान से संबंध स्थापित करना ही भक्ति है तथा भक्त वह है जिसके हृदय में इष्ट के प्रति अनंत प्रेम धारा बह रही हो।

नारद भक्ति सूत्र में भक्ति को परिभाषित करते हुए कहा है कि अन्य किसी वस्तु के ऊपर नहीं बल्कि एक मात्र परमेश्वर के ऊपर ही एकांतिक प्रेम को भक्ति कहा जाता है[5] अर्थात् परमेश्वर के प्रति एकांतिक तथा घनिष्ठ प्रेम ही भक्ति है। नारद जी के अनुसार अपने समस्त कर्मों को भगवान में अर्पित कर देना तथा क्षण मात्र भी ईश्वर का विस्मरण होने पर भक्त का व्याकुल हो जाना ही भक्ति है।[6] महर्षि वेदव्यास के अनुसार पूजा एवं उपासनामूलक विविध कर्मों में अनुराग होने को भक्ति कहा जाता है।[7] महर्षि शांडिल्य भक्ति को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि आत्म रति और अविरोधी विषयों के प्रति अनुराग ही भक्ति है।[8]

भक्ति में प्रेम मनुष्य के सभी प्रेम–संबंधों से ऊपर होता है तथा सबसे गहन और सबसे गंभीर होता है। इसीलिए नारद ने भगवान के प्रति प्रेम को परम प्रेम कहा है। यहाँ प्रेम से तात्पर्य ईश्वर से ऐसा प्रेम है जो संसार विस्मृत हो जाने अर्थात् संसार की सारी स्मृतियाँ भूल जाय, अपना देह जो इतना प्रिय है उसका भी विस्मरण हो जाय, इस अवस्था में भी भगवान का स्मरण रखे।

**भक्ति की विषेशताएँ–**

भगवान को प्राप्त करने के तीन मार्ग शास्त्रों में वर्णित हैं– कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्ति योग। यद्यपि तीनों मार्ग स्वतः ही विशिष्ट है परंतु भक्ति मार्ग को अधिक प्रशंसा प्राप्त है क्योंकि अन्य दो इसमें गौण रूप में समाहित है। नारद भक्ति–सूत्र में भक्ति की विशेषता का वर्णन करते हुए कहा गया है कि भक्ति केवल परम प्रेम रूप ही नहीं, बल्कि अमृत स्वरूप भी है।[9] ऐसा माना जाता है कि जब तक देह का आश्रय लेकर सांसारिक पदार्थों में मैं और मेरा का ज्ञान या अहंकार बना होता है तब तक मुक्ति नहीं हो सकती परंतु भक्ति के प्राप्त होने के पश्चात् मैं और मेरा का भाव मिट जाता है तथा परम आनंद की प्राप्ति होती है। इसीलिए भक्ति को 'अमृत स्वरूपा' कहा गया है। भगवत प्राप्ति का यह आनंद नष्ट होने वाला नहीं है, यह अविनाशी है, अक्षय है। भक्ति स्वयं ही फल रूपा है, इसीलिए सभी साधनों से श्रेष्ठ है।[10]

नारद भक्ति सूत्र में नारद ने भक्ति की एक और विशेषता का वर्णन करते हुए कहा है कि भक्ति स्वयं फलरूपा भी है, भक्ति को प्राप्त करने के लिए ज्ञान का आश्रय लेने की आवश्यकता नहीं होती है, यह स्वयं ही फल प्रदान करने वाली है। भक्ति किसी साधना के फलस्वरूप उत्पन्न नहीं होती, वह स्वयं उत्पन्न है। विषय त्याग तथा आसक्ति का त्याग होने पर प्रेम तथा भक्ति की प्राप्ति स्वयं ही हो जाती है।[11]

भक्ति की एक अन्य विशेषता का वर्णन करते हुए कहा गया है कि भक्ति को किसी अन्य प्रमाण की आवश्यकता नहीं है क्योंकि भक्ति स्वयं ही प्रमाण स्वरूपा है।[12] भक्ति अनुभव की वस्तु है और अनुभव सर्वश्रेष्ठ प्रमाण होता है भक्त भक्ति के आविर्भाव को अपने हृदय में ही अनुभव करते हैं। भक्ति शांति स्वरूप तथा परमानंद स्वरूप होने से इस प्रकार की साधना अत्यंत सुलभ है।[13] भगवान का चिंतन, मनन, उपासना, साधना, जप, उच्चारण, स्मरण, वंदन तथा कीर्तन आदि सब हृदय के विकारों को हरने वाला तथा मुक्ति मार्ग की ओर अग्रसर करने वाला है। सभी धर्मों, संसार के सारे विश्वास तथा उपायों को त्यागकर निश्चल हृदय से भगवान की शरणागति में जाने मात्र से ही पापों से मुक्ति मिल जाती है[14] क्योंकि भक्त–वत्सल भगवान कभी शरणागतों का त्याग नहीं करते।

**भक्ति का फल**– भक्ति से मनुष्य पूर्णता को प्राप्त करता है, देव स्वरुप को प्राप्त करता है तथा परम अमृतस्वरूप की प्राप्ति करता है, वह मृत्यु से मुक्त हो जाता है तथा अनेक सिद्धियों को प्राप्त करता है। भक्ति का फल मुक्ति को बताया गया है।[15] भक्ति द्वारा ईश्वर के स्वरूप की अनुभूति तथा साक्षात्कार करना संभव है। तर्क द्वारा ईश्वर को पाना संभव नहीं, यह केवल भक्ति से ही संभव है।

भक्ति–रस सर्वोत्तम रस है, ईश्वर–भक्ति प्राप्त कर लेने के बाद साधक के लिए और कुछ प्राप्त करना शेष

नहीं रह जाता। शुभ गुणों को धारण करने वाला, दैवीय गुणों से संयुक्त, वैदिक आचरण से युक्त भक्त जब भक्ति की परिपक्वास्था को प्राप्त कर लेता है तब उसका हृदय अनायाश ही शुद्धता तथा सात्विक गुणों से संपन्न हो जाता है।

**भक्ति के लक्षण**–

भिन्न–भिन्न मतों में भक्ति के भिन्न–भिन्न लक्षण कहे गए हैं। महर्षि गर्ग ने भक्तों के लक्षण का वर्णन करते हुए कहा है कि भगवान के नाम में श्रवण तथा कीर्तन ही भक्तों के लक्षण है।[16] सरल स्वभाव, मन में कुटिलता न रखना, संतोषी भाव, न किसी से बैर, न ही किसी से आसक्ति, न हि किसी से आशा और न हि किसी से भय, अहंकार की विलुप्ति ही सच्चे भक्त का गुण है। महर्षि नारद ने कहा है कि तन–मन–वचन के द्वारा जो अनुचित होता है उसे सर्वदा ईश्वर के चरणों में समर्पित करना और प्रत्येक क्षण ईश्वर को याद करना तथा एक क्षण भी ईश्वर की विस्मृति होने पर व्याकुल हो उठना ही भक्ति के लक्षण है।

**भक्ति का महत्व**– नारद भक्ति सूत्र में परा भक्ति के महत्व को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि यह परा भक्ति ज्ञान, कर्म तथा योग से भी श्रेष्ठ है। श्रेष्ठता का कारण स्पष्ट करते हुए कहा है कि ज्ञानयोग तथा कर्मयोग के द्वारा भी ईश्वर के समीप जाया जा सकता है परंतु भक्ति–पथ के द्वारा उनके निकट सहज ही जाया जा सकता है।[17] भगवान श्री कृष्ण गीता में कहते हैं कि हे अर्जुन मात्र अनन्य भक्ति के द्वारा ही मुझे जानने, मेरे स्वरूप का प्रत्यक्ष रूप से दर्शन करने एवं मुझ में अवस्थित ही मुक्ति का लाभ करने में भक्तगण समर्थ होते हैं।[18] भगवान श्री कृष्ण गीता में कहते हैं कि विचार और साधना के फलस्वरूप जब चित्त की शुद्धि हो जाती है इंद्रियों की वृत्तियाँ शांत हो जाती हैं तब जीव को भक्ति की प्राप्ति होती है अर्थात् जिसकी बुद्धि पूर्ण रूप से शुद्ध हो गई है, जिसने धैर्य तथा तप के माध्यम से अपने संपूर्ण शरीर तथा इंद्रियों को संयमित कर लिया है, जिसने राग और द्वेष का पूर्ण तरीके से त्याग कर दिया हो, जो वैराग्यवान हो, अहंकार, क्रोध को जिसने त्याग दिया हो, जो किसी भी व्यक्ति वस्तु के लिए शोक नहीं करते, कोई भी कामना नहीं करते, इस प्रकार के साधक ही भक्त कहलाते हैं।[19]

नारद भक्ति सूत्र में कहा गया है कि अन्य सभी साधनों की अपेक्षा भक्ति का मार्ग अत्यंत सहज है।[20] भक्ति मार्ग में सभी का समान मात्रा में अधिकार है। इसमें जाति, कुल, विद्या, उम्र, देश और काल आदि की अपेक्षाएँ नहीं होती।

श्रीमदभगवत गीता में भक्तों को चार प्रकार की श्रेणियों में विभाजित किया गया है तथा इन भक्तों के लक्षण को बताते हुए कहा गया है कि सभी प्राणियों में जो अपना और भगवान का दर्शन करता है और सभी प्राणियों को ईश्वर के भीतर तथा अपने भीतर देखता है, उत्तम भक्त है। ईश्वर के प्रति जिनको प्रेम और भक्तों के साथ जिनका मैत्री–भाव है, अज्ञानी के ऊपर जिनकी कृपा रहती है तथा जो विद्रोहियों की उपेक्षा करता है वह मध्यम भक्त है। जो श्रद्धापूर्वक प्रतिमा आदि में ईश्वर की उपासना करते हैं किंतु भक्तों एवं अन्य प्राणियों की सेवा नहीं करते, वे साधारण भक्त हैं। श्रीमद्भगवतगीता में भगवान श्रीकृष्ण ने भक्तों के अन्य चार प्रकार भी बताए हैं– आर्त, अर्थार्थी, जिज्ञासु तथा ज्ञानी।[21]

**भक्ति के दो प्रकार**– परा तथा अपरा भक्ति हैं।[22] परा भक्ति में किसी वासना की पूर्ति की संभावनाएँ नहीं होती क्योंकि भक्ति के उदय होने पर स्वतः ही सारी वासनाएँ समाप्त हो जाती हैं, भक्ति–मार्ग में इन्द्रियों का निग्रह स्वतः ही हो जाता है। प्रेम के प्रमुख दो लक्षण संसार से विरत हो जाना अर्थात् ईश्वर के प्रति इतना अधिक प्रेम होना कि वह ज्ञान–शून्य हो जाता है तथा दूसरे लक्षण में अपनी देह जो इतनी प्रिय वस्तु है उसके लिए भी किसी प्रकार का अनुराग नहीं रहता अर्थात् देह–बोध मिट जाता है।[23] भक्ति में प्राण और मन दोनों ही ईश्वर में समर्पित अर्थात् लीन हो जाते हैं, प्रेम–भक्ति को रागात्मिका भक्ति के नाम से भी जाना जाता है। एक अन्य प्रकार की भक्ति है उसे वैधी भक्ति के नाम से जाना जाता है। जब उपवास, तीर्थ स्थानों पर जाना, अनेक उपचारों के साथ पूजन संपन्न करना आदि वैधी भक्ति कहलाती हैं। प्रत्येक मनुष्य में सत, रज तथा तम तीन प्रकार के गुण पाए जाते हैं। इन्हीं त्रिविध गुणों के भेद के कारण आर्त, अर्थार्थी तथा जिज्ञासु प्रकार के भक्त होते हैं तथा इन तीन प्रकार के भक्तों के कारण गौणी भक्ति तीन प्रकार की होती है।[24]

'भक्ति रसायन' नामक प्रमुख ग्रंथ में भक्ति को मुख्य रूप से दो भागों में विभाजित किया गया है– परा

भक्ति तथा अपरा भक्ति।[25] अपरा भक्ति को भी दो भागों में विभाजित किया किया गया है– वैधी भक्ति व रागात्मिका। भक्ति मूर्ति, आरती, नमाज, भजन, पूजन, जप, कीर्तन आदि साधनों के द्वारा अपना प्रेम ईश्वर के निमित्त प्रेरित किया जाना अपरा भक्ति है। वैधी भक्ति को नवधा भक्ति भी कहा जाता है। नवधा भक्ति का तात्पर्य है नौ प्रकार से भक्ति जिसके अंतर्गत श्रवण, कीर्तन, भजन, स्मरण, पाद सेवन, अर्चन, वंदन, दास्य, सखा भक्ति, आत्म निवेदन आते हैं।[26] श्रीमद्भागवत में भक्त प्रहलाद ने भी भक्ति के श्रवण, कीर्तन, भजन, विष्णु स्मरणम, पादसेवन, अर्चना, वंदन, दास्य, सख्य तथा आत्म निवेदन के रूप में बताया है।[27]

**नवधा भक्ति–**

**श्रवण**– भगवान के दिव्य गुणों को सुनना, उनकी लीला, कथा, ध्यान के विषय में शांत चित्त होकर सुनना ही श्रवण कहलाता है। भगवान के नाम, रूप, गुण, प्रभाव, लीला–तत्व और रहस्य की अमृतमयी कथाओं का श्रद्धापूर्वक तथा प्रेमपूर्वक श्रवण करना तथा उन पर मुग्ध हो जाना श्रवण भक्ति कहलाती है।

**कीर्तन**– कीर्त्तन से तात्पर्य कीर्ति का गुणगान करना है, जैसे– गायन, वादन, नृत्य आदि कीर्तन भक्ति कहलाती है। भगवान के नाम, रूप, गुण, प्रभाव, चरित्र, तत्त्व और रहस्य का श्रद्धा और प्रेमपूर्वक उच्चारण करते शरीर में रोमांच, अश्रुपात, हृदय प्रफुल्लित मुद्रा आदि होना कीर्तन भक्ति है। कीर्तन भाव से भक्ति करने वाले भक्तों में नारद, सरस्वती आदि हैं।

**स्मरण**– भगवान को हर पल, हर क्षण याद करना प्रभु की सेवा में बिताना स्मरण भक्ति है।[28] स्मरण करने वाले भक्तों में ध्रुव, प्रहलाद, विदुर आदि आते हैं।[28]

**पादसेवन**– प्रभु के दिव्य पादयुगल का हृदय से सतत ध्यान करना, पाद सेवन कहलाता है। पादसेवन भक्ति के भक्तों में अंगद, अहिल्या, जटायु, बाली तथा हनुमान प्रसिद्ध हैं।

**अर्चन**– भगवान का विधि पूर्वक विशेष तथा सामान्य रूप से पूजन करने का नाम अर्चन कहलाता है।

**वंदन**– भगवान के शास्त्रवर्णित स्वरूप, भगवान के नाम, भगवान की धातु आदि की मूर्ति, चित्र अथवा मानसिक मूर्ति को शरीर अथवा मन से श्रद्धासहित नमस्कार करना तथा भगवत प्रेमयुक्त होना वंदन भक्ति कहलाती है।[29]

**दास भाव**– भगवान के प्रति अपने आप को समर्पित करना तथा उसका उपासक रहना दास भक्ति कहलाता है।[30] दास भक्ति में हनुमान, विदुर और भरत की कीर्ति विख्यात है।

**सखा**– भगवान के प्रति मित्रभाव रखकर उसकी भक्ति करना सखा भक्ति कहलाती है। साख्य भाव में अर्जुन, उद्धव, सुग्रीव, तथा गुह्य को जाना जाता है।

**आत्म निवेदन**– अहंकार रहित होकर अपने तन, मन, धन सहित अपने आप को, संपूर्ण कर्मों को श्रद्धा और प्रेमपूर्वक परमात्मा को समर्पण कर देना आत्म निवेदन है। आत्मनिवेदन के उदाहरण में गोपियाँ और ग्वालों की गणना की गई है।

नवधा भक्ति में से किसी एक का भी उचित प्रकार से अनुष्ठान करने पर मनुष्य अथवा साधक को परम पद प्राप्त हो जाता है।

**रागात्मिका भक्ति**– नवधा भक्ति जब चरम अवस्था पर पहुँच जाय तो वह रागात्मिका भक्ति होती है, इसे अनुभव भक्ति भी कहते हैं। अपरा भक्ति की चरम अवस्था परा भक्ति काल है।

**परिचर्चा**– भक्ति संपूर्ण रूप से वैज्ञानिक है, पं श्रीराम शर्मा आचार्य के मतानुसार भक्ति का तात्पर्य व्यक्ति के जीवन का प्यार से सराबोर होना है। भक्ति का अर्थ है मोहब्बत तथा मोहब्बत का अर्थ है देना।[31] भक्ति में आवेशों का कोई महत्व नहीं। सच्ची भक्ति हृदय की गहराईयों से होती है। भावावेश की विलुप्ति ही भक्ति के मार्ग की प्रथम सीढ़ी है।

वर्तमान में सुख तो सब चाहते हैं, परंतु प्रयत्नों की कमी इसे पूरा नहीं होने देती। इसका एक कारण श्रद्धा की कमी भी है जो भगवद्साक्षात्कार में इतना विलंब कराती है। भगवान श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं कि बहुत अधिक दुराचारी तथा पापी व्यक्ति भी यदि मुझे अनन्य भाव से भजता है तो वह जल्द ही कल्याण को प्राप्त होता है और सन्मार्ग पथ पर गमन करता है। प्रेमपूर्वक भगवान का भजन करने वाले का भगवान बुद्धि प्रदान कर कल्याण करते हैं।[32]

**उपसंहार–**

भगवान को प्राप्त करने के लिए विभिन्न प्रकार के मार्ग, जैसे– कर्म, ज्ञान, योग, ध्यान आदि हैं। भक्ति की शास्त्रों में बड़ी प्रशंसा की गई है। श्रवण, भजन, कीर्त्तन, वंदन आदि सांगीतिक तत्त्व भक्ति के प्रशस्त मार्ग हैं।

गीता में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं– जो निरंतर एकीभाव से ध्यान करते हुए परमेश्वर को ही अनन्य भाव से भजते है, उन भक्तों को मैं शीघ्र ही मृत्युरूप संसार–सागर से उद्धार कर देता हूँ।[33] जिसकी मृत्यु निकट है यदि वह भी मरते वक्त केवल भक्तिभाव से ईश्वर का स्मरण करता हुआ शरीर का त्याग करता है तो उसको मुक्ति मिलती है। द्वेषभाव से रहित, उद्वेगरहित, स्वार्थ अहंकार से रहित, आकांक्षारहित, आसक्ति, पक्षपात, हर्ष, अमर्ष, भय आदि से रहित, बाहर–भीतर से पवित्र, अपराधी को भी क्षमादान देने वाला, दयालु, ममतावान, दृढनिश्चयी, शत्रु–मित्र, शीत–ऊष्ण, सुख–दुःख, निंदा–स्तुति में समान भाव वाला, भक्त उन्हें सबसे अधिक प्रिय है।[34] भगवान रूपयों–पैसों की नहीं, अपितु भक्त से भाव की अपेक्षा रखते हैं। द्रोपदी के साग के एक पत्र भावपूर्वक दिए जाने, भीलनी शबरी के जूठे बेर श्रद्धापूर्वक खिलाने, गजेन्द्र के केवल एक पुष्प मात्र अर्पित करने से ही भगवान प्रसन्न हो गए थे।

**अन्त टिप्पणी :**

1. अथातो भक्तिं व्याख्यास्यामः।। ना.भ.सू. 1।।
2. भक्तिभक्तिस्पृहा यावत् पिशाची हृदि वर्तते।
   तावत् भक्तिसुखस्यान्न कथमभ्युदयो भवेत्।।
   भक्तिरसामृतसिंधु, पूर्वलहरी 2/11।।
3. रावत अनुजा, योग और योगी, सत्यम पब्लिशिंग हाउस, 2017, पृ. सं. 124
4. वही
5. सा तस्मिन् परम प्रेमरूपा।। ना.भ.सू 2।।
6. नारदस्तुत दर्पिताखलाचारता तद्विस्मरणे परमव्याकुल तेति।
7. पूजादिश्वनुराग इति पाराशर्यः।। ना.भ.सू. 16 ।।
8. आत्मरत्यावरोधेनेति भाण्डिल्य।। नारद भक्ति सूत्र 18।।
9. अमृतस्वरूपा च।। ना.भ.सू. 3।।
10. फलरूपत्वात्।। ना.भ.सू. 26।।
11. वही, सूत्र 35
12. वही, सूत्र 59
13. शान्तिरूपात् परमानंदरूपाच्च।। नारद भक्ति सूत्र 60।।
14. सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
    अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम।।
    वाल्मीकी रामायण 6/18/13।।
15. वही, सूत्र 33
16. कयादिविश्वति गर्गः।। वही, सूत्र 17।।
17. वही, सूत्र 25
18. श्रीमदभगवत गीता11/53–54
19. श्रीमदभगवत गीता 18/ 51–55
20. अन्यस्मात् सौलभ्यं भक्तौ।। नारद भक्ति सूत्र 58।।
21. चतुर्विद्या भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
    आर्तो जिज्ञासुरथार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ।।
    भगवत गीता 7/16
22. रावत अनुजा, योग और योगी, सत्यम पब्लिशिंग हाउस, 2017, पृ. सं. 127
23. अन्याश्रयाणां त्यागः अनन्यता।। ना.भ.सू. 10।।
24. गौणी त्रिधा गुणभेदादिर्तादि भदाद्वा ।। ना.भ.सू. 56।।
25. रावत अनुजा, योग और योगी, सत्यम पब्लिशिंग हाउस, 2017, पृ. सं. 127
26. भक्तिमस्तु द्विविद्या प्रेक्ता परापरोति संज्ञिता।
    एकछात्र पराप्रोक्ता त्वपरा नवधास्मशता।।
    भक्ति रसायण।।
27. श्रवणं कीर्तनं विश्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
    अर्चनं वंदनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्।।
    श्रीमद्भागवत् 7/5/ 23।।
28. गोयन्दका जयदयाल, नवधा भक्ति, गीताप्रेस गाोरखपुर, संवत 2074, पृ. सं. 20
29. गोयन्दका जयदयाल, नवधा भक्ति, गीताप्रेस गाोरखपुर, संवत 2074, पृ. सं. 37
30. वही, पृ.सं 41
31. भक्ति – एक दर्शन एक विज्ञान, प्रवचन, श्रीराम भार्मा आचार्य, विचारक्रांति पुस्तकालय सुरत, पृ.सं 13
32. अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्। साधुरेव स मन्वव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः।
    क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शाश्वच्छान्तिं निगच्छति।
    कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति।।
    गीता 9/ 30–31

33. तेशामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्।
    भवामि नचिरात्पार्थ मय्यावकशितचेतसाम्।। 12/7।।
34. श्रीमद्भगवद्गीता यथारूप 12/11–20, श्री श्रीमद् ए. सी. भक्तिवेदांत स्वामी प्रभुपाद, गीताप्रेस गोरखपुर

**संदर्भ ग्रन्थ सूची :**

1. गोयन्दका, जयदयाल, नवधा भक्ति, गीताप्रेस गाोरखपुर, संवत 2074
2. नरहरि गोविंद, श्रीभक्ति रसायणम्, सत्साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट, न्यासेन, मुबंई, संवत 2025
3. रावत, अनुजा, योग और योगी, सत्यम पब्लिशिंग हाउस, 2017
4. भगवत गीता, गीताप्रेस गोरखपुर, 2017
5. श्रीमद्भागवत् पुराण, गीताप्रेस गोरखपुर, 2015
6. साधनांक, पन्द्रहवें वर्ष का विशेषांक, कल्याण, गीताप्रेस गोरखपुर, संवत 2073
7. वेदांतानंद स्वामि, लाभ केदारनाथ, नारद भक्ति सूत्र, रामकृष्ण मठ, रामकृष्ण आश्रम मार्ग, धन्तोली, नागपुर 440012
8. स्वामी विवेकानंद, भक्ति योग, दिव्यम प्रकाशन 1093, डॉ. मुखर्जी नगर, दिल्ली
9. शर्मा, श्रीराम आचार्य, भक्ति–एक दर्शन एक विज्ञान, प्रवचन, विचारक्रांति पुस्तकालय सुरत
10. श्री श्रीमद् ए. सी. भक्तिवेदांत स्वामी प्रभुपाद, श्रीमद्भगवद्गीता यथारूप, गीताप्रेस गोरखपुर
11. जयदयाल, अनन्य भक्ति कैसे प्राप्त हो, प्रवचन दिनांक 21/3/1950
12. भक्तिरसामृतसिंधु, पूर्वलहरी
13. साधनांक, पन्द्रहवें वर्ष का विशेषांक, कल्याण, गीताप्रेस गोरखपुर, संवत 2073

# संगीत का अन्य ललित कलाओं के साथ अन्तःसम्बन्ध

**डॉ0 ज्ञानेश चन्द्र पाण्डेय**** **प्रीति सिंह***

**शोध सार**

*मानव सभ्यता के साथ–साथ ही विभिन्न कलाओं के विकसित होने के प्रमाण भी मिलते हैं। 64 कलाओं में से संगीत, काव्य, चित्र, मूर्ति और स्थापत्य कला को श्रेष्ठ मानकर ललित कला का नाम दिया गया है। इनमें भी संगीत कला को श्रेष्ठ माना जाता है। ललित कला के लिए आवश्यक है कि उसमें प्रवाह, ओज, सौन्दर्य, माधुर्य, सहजता तथा सरलता आदि गुण विद्यमान हों। संगीत, काव्य और चित्रकला में ये सभी गुण पाये जाते हैं।*

**बीज शब्द**– *ललित कला, काव्यकला, चित्रकला, मूर्तिकला, स्थापत्य कला।*

**प्रविधि**– *द्वितीयक स्रोतों का उपयोग किया गया है।*

मनुष्य के मन में सोये हुए भावों को जगाने में संगीत जितना सूक्ष्म है, अन्य कोई भी कला उतनी कारगर सिद्ध नहीं होती। जो कुछ चित्र में नहीं कहा जा सकता, वह काव्य या भाषा से कह दिया जाता है। जिन भावों को व्यक्त करने में भाषा असमर्थ हो जाती है, उनको संगीत के माध्यम से व्यक्त किया जा सकता है। कुछ विद्वान इन तीनों कलाओं को समान मानते हैं, परन्तु अधिकतर विद्वानों के मत से संगीत कला सर्वश्रेष्ठ है। कलाओं का लक्ष्य रसानुभूति है। सभी कलाएँ मन को शान्ति, आनन्द और प्रेरणा प्रदान करती हैं। संगीत कला मनुष्य के साथ–साथ पशु–पक्षियों पर भी प्रभाव डालती हैं। 'शॉपेन हावेर' के अनुसार–केवल संगीत ही ऐसी कला है, जिसका मानव के साथ सीधा सम्बन्ध है। इसे किसी माध्यम की आवश्यकता नहीं है।[1] 'वाल्टर पीटर' के अनुसार–जितनी भी कलाएँ हैं, सभी संगीत की ओर उन्मुख हैं।[2]

**संगीत एवं काव्यकला :–**

कविता शब्दों के रूप में संगीत और संगीत स्वर के रूप में कविता है। नाद–सौन्दर्य कविता की जान बढ़ाता है। अतः नाद–सौन्दर्य का योग कविता को साकार रूप प्रदान करता है। भारत में काव्य, अभिनय, नृत्य और संगीत का सह–अस्तित्व देखा जा सकता है। ललित कलाओं में काव्य और संगीत का सम्बन्ध बहुत घनिष्ठ है। अभिव्यक्ति के माध्यम के लिए इन कलाओं में किसी स्थूल पदार्थ का आश्रय नहीं लिया जाता। संगीत का आधार मुख्यरूप से नाद है, जो कर्णेन्द्रियों का विषय है। कविता में कवि भाषा के माध्यम से अपने विचार सहृदय रसिकों तक पहुँचाता है। वास्तव में संगीत और काव्य, ये दोनों अलग कलाएँ होते हुए भी एक–दूसरे पर अवलम्बित हैं तथा एक–दूसरे के सहायक और पोषक हैं। कविता संगीतमय विचार है तथा संगीत के संयोग से कविता का प्रभाव कई गुना बढ़ जाता है। वैदिक संस्कृति के आधार पर चारों वेदों में सामवेद संगीतमय है। उपनिषदों में छान्दोग्य उपनिषद् का भी सीधा सम्बन्ध संगीत से है। 'रामचरितमानस' तुलसीदास का सर्वप्रसिद्ध काव्य है। इसके व्यापक प्रचार का मुख्य कारण है, इसकी गेयता । यदि तुलसीदास इस महाकाव्य को काव्यात्मक गेय–शैली में न लिखकर मात्र कथा–रूप में लिखते, तो सम्भव है कि यह उतना प्रभावकारी सिद्ध नहीं हो पाता, जितना कि हुआ है।[3]

संगीत को साकार रूप प्रदान करने का श्रेय काव्य को ही है। गायन, वादन तथा नृत्य संगीत–कला के ये तीन भेद हैं। यदि गायन से काव्य को निकाल दिया जाए, तो आलाप और सरगम के सिवा कुछ भी शेष नहीं रहता। वादन–क्षेत्र में सितार, तबला व मृदंग आदि के बोल भी काव्य के आधार पर ही निर्मित होते हैं। इन बोलों पर जब नृत्यकार भाव प्रदर्शित करते हुए नृत्य करता है, तो साधारण दर्शक भी उसके भावों को आसानी से समझ पाते हैं। देवी–देवताओं की स्तुतियाँ, कथाएँ, चरित्र–चित्रण आदि सरलता से भाव–नृत्य द्वारा प्रस्तुत किए जा सकते हैं। यही नहीं, प्रकृति का चित्रण एवं रसों के भाव भी इसके द्वारा सहजता से व्यक्त किए जा सकते हैं। अतः काव्य एवं संगीत का सम्बन्ध अन्योन्याश्रित एवं अटूट है।[4]

*शोध छात्रा, गायन विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी–221005

**सहायक आचार्य, गायन विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी–221005

**संगीत और चित्रकला :–**

जिस प्रकार संगीत का आधार नाद अथवा स्वर है, उसी प्रकार चित्रकला में कागज, रंग व तूलिका आदि से चित्र अंकित कर कलाकार अपनी कल्पना–शक्ति के माध्यम से भावों की अभिव्यक्ति करता है। संगीत की भांति माध्यम की सूक्ष्मता व सहजता के कारण चित्रकला का प्रभाव भी मानव मन पर शीघ्र ही पड़ता है। संगीत व चित्रकला में पारस्परिक आदान–प्रदान है। भारतीय संगीतकार सदियों से सप्त स्वरों का सम्बल लेकर एक–से–एक मोहक रागों की रचना करते आ रहे हैं, जिसमें जीवन के प्रत्येक क्षण के भिन्न–भिन्न चित्र हमारी आंखों के सामने अंकित होते हैं। संगीत के इन्हीं स्वरों की उपज से भारतीय चित्रकला में एक–से–एक अद्भुत और अनूठे राग–चित्र रचे गए। वास्तव में राग–सम्बन्धी ये चित्र उन रागों से उत्पन्न भाव–दृश्यों को ही चित्रित करते हैं। कोई भी कलाकार अपने कला–प्रदर्शन में अपने मनोभावों को संगीतमय रूप से दर्शाता है। चित्रकार अपने चित्र में विभिन्न वाद्यों एवं नृत्य–मुद्राओं को अंकित कर रचना में आकर्षण पैदा करता है। संगीत भी इस कला के माध्यम से साकार रूप को प्राप्त होता है।[5] सूरसागर के वात्सल्य रस के आधार पर ही अनेक चित्रकारों ने माखन–चोरी, पूतना–वध व रास–लीला आदि के चित्रों का निर्माण किया है। भगवान की मुरली भी इन चित्रकारों का विषय रही है। एक चित्र में तानसेन, स्वामी हरिदास के सामने बैठे हैं और सम्राट अकबर तानसेन के निकट खड़े हैं। यह चित्र लगभग दो सौ पचास वर्ष पुराना है और दिल्ली संग्रहालय में सुरक्षित रखा गया है। अजन्ता, एलोरा एवं सित्तनवासल गुफा की चित्रित नर्तकियाँ बाघ के गुफा–चित्रों का हल्लीसक नृत्य, राजपूत–काल के रास–मण्डल के चित्र, मुगल एवं राजपूत चित्रकला के दरबारों में नृत्य करती हुई गणिकाएँ, पहाड़ी–शैली में अंकित कृष्ण के समक्ष राधा का नृत्य, राधा के समक्ष कृष्ण का नृत्य, शिव के समक्ष पार्वती और पार्वती के समक्ष शिव का नृत्य–ऐसे समस्त चित्र नृत्य एवं संगीत के माध्यम से मानव मात्र की सूक्ष्म भावनाओं की सहज अभिव्यक्ति ही जान पड़ते हैं। जहाँ संगीत चित्रों में साकार हो उठता है, वहाँ चित्रों की शोभा का बखान संगीतज्ञ अनूठे स्वर–समूहों में करके उनके वैभव एवं महत्त्व में वृद्धि करता है।[6]

**संगीत एवं मूर्ति कला :–**

मूर्तिकला व संगीतकला स्थूल रूप से एक–दूसरे से भिन्न प्रतीत होते हैं, परन्तु इन दोनों का सम्बन्ध अत्यन्त घनिष्ठ है। संगीत कला का प्राचीन व आधुनिक रूप मूर्तिकला में सजीव है। मूर्तिकार पत्थर, मिट्टी व धातु आदि को काट–छाँटकर विशिष्ट आकार में परिणत करता है। मूर्तिकारों ने संगीतजनक मूर्तियों का निर्माण कर उनको मन्दिर में स्थापित किया। इनके विभिन्न अंगों पर प्रहार करने पर विभिन्न स्वर उत्पन्न होते हैं। '**शंबगरमनल्लूर**' के विष्णु मन्दिर में इसी प्रकार रति और कामदेव की मूर्तियाँ हैं। 'तंजावुर' के 'भद्रीश्वर स्वामी' के मन्दिर में एक गणेश की मूर्ति रखी है। इसके भी विभिन्न अवयवों को बजाने पर विविध स्वर निकलते हैं। मूर्तिकारों ने कई प्रकार के पत्थर के वाद्यों को भी तराशा है। 'कुम्भकोणाम' के कोम्बेश्वर स्वामी के मन्दिर में पत्थर का बना हुआ एक बड़ा नादस्वरम् रखा है। नटराज शिव की चिदम्बरम' प्रतिमा, औरंगाबाद की नर्तकी की 'मूर्ति' आदि संगीत और मूर्तिकला के संदर्भ में सुन्दरतम रचनाएं हैं।[7]

**संगीत और स्थापत्य कला :–**

संगीत की अनेक मुद्राओं को दक्षिण के मन्दिरों में स्पष्टतः देखा जाता है। इससे इन दोनों कलाओं का तात्त्विक अन्तःसम्बन्ध भी दिखाई देता है। ललित कलाओं के वर्गीकरण में वास्तुकला गतिहीन, दृश्य माध्यम की कलाओं के अन्तर्गत आती है। संगीत और वास्तु दोनों को कलाओं के रूप में देखते हुए ऐसा प्रतीत होता मानो दोनों का आपसी सम्बन्ध सम्भव ही नहीं है, परन्तु संगीत का प्राचीनतम रूप वास्तुकला में जीवित है। ऐतिहासिक इमारतों पर अंकित विभिन्न प्रकार के वाद्य व नृत्य मुद्राएँ आदि इसके प्रमाण हैं। ताजमहल जैसी विलक्षण इमारत उस समय की गौरवपूर्ण वास्तुकला का प्रमाण प्रस्तुत करती है। संगीतजनक स्तम्भ मन्दिरों के आंगनों या मण्डी में साधारणतः ही देखे जा सकते हैं। संगीतजनक स्तम्भों को मुख्य चार भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है– आरती स्तम्भ, गान स्तम्भ, लय स्तम्भ व प्रदर्शन स्तम्भ। ऐतिहासिक इमारतों व किलों आदि में दरबारी संगीतज्ञों के संगीत प्रदर्शन के लिए विशेष मंच बनाए जाते थे तथा राजा–महाराजाओं व उनकी बेगमों के लिए संगीत सुनने के लिए विशेष कक्ष बनाए जाते, इनमें चित्रित संगीत–सम्बन्धी चित्र वास्तुकला में संगीत की सजीवता को प्रमाणित करते हैं।[8]

**ललित कलाओं में संगीत का स्थान :–**

ललित कलाओं के आपसी सम्बन्ध तथा इनमें विशिष्ट गुणों की एकता के कारण इनको एक ही वर्ग में

रखा गया है। इनमें संगीत सर्वश्रेष्ठ ललित कला मानी गई है, परन्तु वह अन्य कलाओं से भी सम्बन्धित है। इन कलाओं के माध्यम चाहे भिन्न हैं, परन्तु इन सबका उद्देश्य एक ही सौन्दर्य अथवा रसानुभूति है। शब्द और दृश्य की अपेक्षा संगीत का प्रभाव अधिक सूक्ष्म होता है। ईश्वर प्राप्ति के लिए ज्ञान मार्ग तथा भक्ति मार्ग आदि जो मार्ग बताए गए हैं, उनमें संगीत–साधना भी एक मार्ग है। मूर्तिकार व चित्रकार किसी एक ही मुद्रा को अंकित कर उसके अनुरूप भाव प्रकट कर सकते हैं, जबकि नृत्यकार विभिन्न मुद्राओं से अपने अनेक भाव कुछ ही समय में व्यक्त कर देता है। गायक व वादक भी अनूठे स्वर–समूहों द्वारा भाव–विभोर करने की क्षमता रखते हैं। संगीत का सम्बन्ध दृश्य एवं श्रव्य दोनों ही मुख्य ज्ञानेन्द्रियों से है। नेत्रहीनों के लिए संगीत कला भावनाओं, उच्च विचारों तथा मनोरंजन का एक साधन रहने के साथ ही उनकी आजीविका का एक सुयोग्य एवं महत्त्वपूर्ण साधन सिद्ध होता है।[9]

**निष्कर्ष** :–

संगीत को सुनकर मनुष्य और पशु–पक्षी आदि तो मुग्ध होते ही हैं, पेड़–पौधे भी प्रभावित होते हैं। गाय का अधिक दूध देना, मुर्गी का अधिक अण्डे देना, पेड़–पौधों का अधिक विकसित होना, सांप और शेर जैसे भयानक जानवरों का वश में होना आदि संगीत की उत्कृष्टता को सिद्ध करते हैं। वर्तमान युग में अनेक रोगों के उपचार में संगीत की विशेषता सिद्ध हो चुकी है। संगीत कला की श्रेष्ठता प्रकट करते हुए 'वाल्टर पीटर' ने कहा है कि सभी कलाएँ संगीत के नियमों का अनुगमन करती हैं। वास्तु, मूर्ति, चित्र व काव्य आदि सभी कलाएँ प्रकृति के सौन्दर्य से प्रेरित व प्रभावित होती हैं, परन्तु संगीत एक ऐसी ललित कला है, जो प्रकृति को भी प्रभावित करती है अर्थात् संगीत का प्रभाव मानव–जगत के अतिरिक्त पशु–पक्षियों तथा वनस्पति आदि पर भी पड़ता है। संगीत द्वारा मनुष्य जितनी शीघ्रता और सुगमता से अपने इष्टदेव में तन्मय हो जाता है, वैसा साधन दूसरा नहीं है। सभी सामाजिक व सांस्कृतिक कार्य संगीत द्वारा ही सम्पन्न होते हैं। समाज एवं राष्ट्र के उत्सव, त्यौहार, मेले व पर्व आदि सांस्कृतिक गतिविधियों का आयोजन संगीत के माध्यम से ही होना सम्भव होता है। अतः संगीत कला का सर्वप्रमुख होना निःसन्देह ही प्रमाणित है।

**सन्दर्भ सूची** :–


1. यमन, अशोक कुमार, 'संगीत रत्नावली', 2015, प्रथम संस्करण', अभिषेक पब्लिकेशन, चण्डीगढ़, नई दिल्ली, पृ0–677
2. वही
3. गर्ग, लक्ष्मीनारायण, निबन्ध संगीत, संगीत कार्यालय, हाथरस, द्वितीय संस्करण, 1989, पृ0–98
4. शुक्ल, डॉ0 रामलखन, भारतीय सौन्दर्य शास्त्र का तात्विक विवेचन एवं ललित कलाएँ, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, पृ0–198
5. महाजन, डॉ0 अनुपम, भारतीय शास्त्रीय संगीत एवं सौन्दर्यशास्त्र' परनामी प्रिंटिंग प्रेस, महेशपुर, पंचकुला, 1993, पृ0–212
6. देवांगन, तुलसीराम, भारतीय संगीत शास्त्र, मध्य प्रदेश, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, पृष्ठ–84
7. श्रीवास्तव, डॉ0 धर्मावती, प्राचीन भारत में संगीत, भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी, 1967, पृष्ठ–87
8. शर्मा, डॉ. हरद्वारीलाल, कला दर्शन, साहित्य संगम प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ0–101
9. जुनेजा, डॉ0 वेदप्रकाश, भारतीय एवं पाश्चात्य सौन्दर्यशास्त्र, सिद्धान्त पब्लिकेशन्स, करनाल, प्रथम संस्करण, पृ0–140

# भारतीय संगीत में शिक्षा व शिक्षक : आधुनिक परिप्रेक्ष्य में

**प्रो. (डॉ.) नीलम पॉल****

**गुरप्रीत कौर***

**सारांश**

*संगीत गुरूमुख से सीखी जाने वाली कला है। संगीत में गुरू व शिक्षक का स्थान सर्वोच्च माना जाता है। गुरू–शिष्य–परम्परा प्राचीन काल से ही चली आ रही है परन्तु आधुनिक समय की संगीत–शिक्षा व प्राचीन काल की शिक्षा में बहुत अंतर है। आज के दौर में जहां देश के विकास में परिवर्तन आए हैं वहीं संगीत के प्रचार, विकास में भी नए माध्यमों के कारण परिवर्तन संभव है परंतु इस विकास के पहले का संगीत और आज के समय के संगीत के व्यावसायिक रास्तों में बहुत अन्तर है, जैसे– पहले गुरू–शिष्य–परम्परा में शिष्य गुरूकुल में रह कर ही सांगीतिक शिक्षा ग्रहण करता था परन्तु आज गुरू–शिष्य–परम्परा न होकर शिष्य कुछ समय के लिए गुरू के पास जाता है। इससे गुरू–शिष्य का परस्पर सम्बन्ध खुला तथा पारदर्शी हो गया है जिसका सबसे मुख्य कारण सामाजिक परिस्थितियों में बदलाव है। उस समय की आवश्कता तथा जीवन–शैली के अनुसार वह शिक्षण प्रणाली अच्छी थी। आज के समय में व्यक्ति की आवश्यकताएँ और जीवन–शैली के बदलाव के अनुसार आज की शिक्षा–पद्धति में बहुत परिवर्तन हो रहे हैं।*

**मुख्य शब्द** : *संगीत, शिक्षा, शिक्षक, विद्यालय, महाविद्यालय, विश्वविद्यालय।*

**शोध–माध्यम** : *पुस्तकों एवं पत्र–पत्रिकाओं के अध्ययन के बाद इस पत्र को तैयार किया गया है ।*

''शिक्षा शब्द संस्कृत की 'शाम' धातु से बना है जिसका अर्थ है शिक्षा देना, निर्देश करना, आज्ञा देना। वैदिक काल में ऋचायों का उच्चारण करने के लिए स्वर और वर्ण की व्यवस्थित शिक्षा का उल्लेख प्राप्त होता है। उसके उच्चारण शास्त्र को 'शिक्षा' का नाम दिया गया था। शिक्षा का प्रर्यायवाची शब्द आंग्रेजी में education है। उर्दू में इसे 'तालीम' कहते हैं। शिक्षा के अन्य अर्थ अध्ययन, ज्ञान ग्रहण करना, किसी कार्य को करने के योग्य होने की इच्छा, अध्यापन इत्यादि भी माने जाते हैं। शिक्षा किसी भी प्रकार के ज्ञान के प्रचार व प्रसार का माध्यम होती है। शिक्षा समाज की उन्नति का ऐसा आधार है जिससे व्यक्ति का बौद्धिक तथा मानसिक विकास होता है। समाज को देखकर ही शिक्षण–प्रणाली का अनुमान लगाया जा सकता है। बच्चा के जन्म से ही शिक्षा उसके आंतरिक गुणों को प्रबल कर उसके व्यक्तित्व का निर्माण करती है। यह व्यक्तित्व ही आगे चलकर व्यक्ति के लिए, समाज के लिए, संस्कृति के लिए, राष्ट्र के लिए, संसार के लिए उपयोगी सिद्ध होता है। शिक्षा का अर्थ केवल पुस्तकों का ज्ञान प्राप्त करना ही नहीं होता, शिक्षा से मानव का जीवन के अन्य पहलुओं का भी ज्ञान प्राप्त होता है। शिक्षा से व्यक्ति चिन्तन, तर्क और समस्याओं को हल करने की कुशलता, भाव, अन्य जीवन–मूल्यों का ज्ञान प्राप्त करता है।

सामान्य शिक्षा मानव के मानसिक विकास और ललित कलाओं की शिक्षा मानव के मानसिक विकास के साथ–साथ आत्मिक विकास के लिए महत्त्वपूर्ण है। इन दोनों प्रकार की शिक्षा का ज्ञान लेकर व्यक्ति चिन्तन, तर्क, समस्याओं का हल कुशलतापूर्वक जीवन के अन्य मूल्यों को अच्छे से समझ लेता है जो समाज के लिए उपयोगी सिद्ध होता है। ललित कलाओं में संगीत कला को सर्वश्रेष्ठ माना गया है। संगीत का लालित्य संगीत के बाह्य व आंतरिक सौन्दर्य के साथ–साथ नाद, ब्रह्मवाद, आध्यामिक स्तर पर संगीत के तत्वों को दर्शाता है। सांगीतिक शिक्षा का अर्थ केवल स्वर, ताल से निबद्ध धुन या राग ही नहीं है अपितु संगीत एक साधना के रूप में विद्यार्थी में आस्था और श्रद्धा उत्पन्न करता है। संगीत शिक्षा द्वारा समाज में एक अच्छे चरित्र का निर्माण होता है। आज के वैज्ञानिक युग में

*शोधार्थी, संगीत विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़

**शोध निर्देशक, संगीत विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़

व्यक्ति वैज्ञानिक यंत्रों का सहारा लेते हुए भी संगीत का मनोवैज्ञानिक प्रयोग कर रहा है। संगीत शिक्षा द्वारा मानव समाज में अनुशासन, संयम तथा मेहनत करने में सक्ष्म होता है।

संगीत शिक्षा के उद्देश्य से पं. विष्णु दिगम्बर पलुस्कार और पं. विष्णु नारायण भातखण्डे ने अथाह प्रयत्न किए जिनके कारण संगीत द्वारा शिक्षण–संस्थाओं में सम्मान का स्थान प्राप्त हुआ। अर्थात् जो व्यक्ति प्रसिद्ध कलाकारों के पास नहीं सीख पाता उसे यह सुलझ हो गया या उसे संगीत कला के साथ–साथ संगीत शास्त्र का ज्ञान भी विद्यालय द्वारा मिलने लगा। कुछ महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों को संचार के माध्यमों द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय मंच से जुड़ने के अवसर प्राप्त हुए। आजकल संगीत विद्यालय, महाविद्यालय व विश्वविद्यालय में सीखाया जा रहा है। परन्तु संगीत–शिक्षा का स्तर गिरता हुआ प्रतीत होता है। ''संस्थाएँ कला की दुकानदारी न कर उसे सुंगधित एवं मनोहारी उपवन बनाने का प्रयास करें तो संगीत को उन्नति के शिखर पर पहुंचाया जा सकता है।''

### विद्यालय स्तर की संगीत–शिक्षा व शिक्षक

विद्यालयों द्वारा दी जाने वाली सांगीतिक शिक्षा एक चिंता का विषय बन गई है। इसलिए इस महत्वपूर्ण विषय पर ध्यान देना अति आवश्यक है। संगीत–विद्यालयों यां महाविद्यालयों पर यह आरोप लगाया जाता है कि यहाँ से कलाकार क्यों नहीं बन पाते परंतु यहाँ यह बात जानना आवश्यक है कि कुछ विद्वान संगीत–संस्थाओं से केवल कलाकार पैदा करना ही महत्वपूर्ण मानते हैं। हांलॉकि संगीत संस्थाओं का कार्य केवल कलाकार बनाना ही नहीं होता, बल्कि संगीत संस्थाओं या विद्यालयों का कार्य संगीत–शिक्षण का प्रचार व प्रसार एवं अनुसंधान का कार्य करवाना भी होता है। उसके साथ ही, कलाकार बनने के लिए जिन बातों की आवश्यकता होती है, उन बातों का इन संस्थायों में अभाव दिखाई देता है।

प्राचीन समय से लेकर 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक संगीत की शिक्षा गुरूओं के द्वारा गुरूमुख से ही दी जाती थी। मध्य काल में भी गायन, वादन एवं नृत्य तीनों कलाओं का ही विकास हुआ परंतु शिक्षा–प्रणाली में इस काल में कोई परिवर्तन नहीं आया। प्राचीन काल से ही गुरू अपने द्वारा चुने गए शिष्यों को घर में ही संगीत की शिक्षा देते थे । कम–से–कम 12 वर्ष तक संगीत की शिक्षा दी जाती थी। उस समय संगीत के अन्य क्षेत्र न होकर केवल एक ही क्षेत्र होता था–संगीत कला प्रदर्शन। उनका विशेष उद्देश्य शिष्य को कार्यक्रम में महफिल जीतने योग्य बनाना ही होता था। गुरू अपने शिष्य को अपने घर में ही संगीतमय माहौल में रखते थे और पूरी लगन के साथ परिश्रम करवाते थे। इसलिए वह अपने शिष्यों को कलाकार बनाने में सफल होते थे। आधुनिक समय में हम संगीतज्ञों को तीन वर्गों में विभाजित कर सकते है : कला प्रदर्शक, संगीत शिक्षक और संगीत शास्त्रकार।

सबसे प्रथम वर्ग में कला प्रदर्शक आते हैं, जो किसी गुरू से पूर्ण रूप से विद्या प्राप्त करता है। उनकी संख्या बहुत कम है। इस वर्ग में आने वाले कलाकारों को व्यवस्था का आश्रय नहीं लेना पड़ता है। इस वर्ग के कलाकार जन्म से ही कलाकार होते हैं। कला प्रदर्शक बनना हर किसी के बस की बात नहीं होती है। ''संगीत शिक्षक के वर्ग में व्यक्ति का अमूल्य भाग चिन्तन, लेखन आदि पर व्यतीत होता है। इसलिए इन्हें संगीत शिक्षण का ही व्यवसाय ग्रहण करना होता है। कला–प्रदर्शक बनने की इनकी इच्छा अधूरी रह जाती है परंतु ये संगीत पुजारी कई कला–प्रदर्शक बनने में सफल होते हैं। कला को बचाने और कला के विकास के लिए समाज को इनकी आवश्यकता है। संगीतज्ञों के तीसरे वर्ग में संगीत शास्त्रकार आते हैं जिसमें संगीतज्ञ कई वर्षा तक संगीत के क्रियात्मक पक्ष के साथ ही अपनी रूचि को ध्यान में रखते हुए शास्त्रीय पक्ष का भी अध्ययन करते हैं और संगीत के शास्त्र–पक्ष के विकास के लिए अध्ययन करते हैं और संगीत के शास्त्र–पक्ष के विकास में भी योगदान देते है।

### महाविद्यालय स्तर की संगीत–शिक्षा व शिक्षक

महाविद्यालय स्तर की शिक्षा में संगीत के चार पक्ष गायन, वादन, नृत्य तथा तबला के अध्ययन को पाठयक्रम में शामिल किया गया है परंतु ज्यादातर महाविद्यलयों में गायन तथा वादन की ही शिक्षा दी जाती है। महाविद्यालयों में संगीत वादन में अधिकांशतः केवल सितार वाद्य का ही शिक्षण दिया जाता है। महाविद्यालयों में किसी अन्य वाद्य के विशेषज्ञ शिक्षक का चयन नहीं किया जाता जिस कारण जिन विद्यार्थियों को अन्य वाद्य सीखने का मन है, वे भी सितार वाद्य का चयन कर लेते हैं। संगीत के शिक्षा के लिए महाविद्यालय, विश्वविद्यालय के अतिरिक्त कई प्राइवेट

संस्थाएँ भी हैं यहाँ विद्यार्थी अन्य वाद्य को सीखने की इच्छा पूर्ण कर सकते हैं। महाविद्यालयों में नियुक्त शिक्षकों में ऐसे शिक्षकों की संख्या कम है जिन्होंने संगीत की शिक्षा गुरू–शिष्य परम्परा द्वारा ग्रहण की है। कुछ शिक्षकों ने संस्थागत शिक्षा प्रणाली व गुरू–शिष्य परम्परा दोनों प्रकार की शिक्षा प्राप्त की होती है। महाविद्यालय व विश्वविद्यालय में संगीत शिक्षण की शुरूआत हुई है, तब से शिक्षक की नियुक्ति के लिए उपाधियों का होना भी अति आवश्यक हो गया है। दरअसल महाविद्यालय और विश्वविद्यालय में शिक्षक की नियुकि के लिए शैक्षणिक योग्यता का होना अति अनिवार्य है।

**विश्वविद्यालय स्तर की संगीत–शिक्षा व शिक्षक**

जिस प्रकार किसी देश के विकास के साथ–साथ उसकी संस्कृति, रहन–सहन, खान–पीन में परिवर्तन आते हैं, उसी प्रकार वहाँ की कला के विकास में भी परिवर्तन आना स्वाभाविक है। विश्वविद्यालय स्तर की शिक्षा को शिक्षा का अंतिम चरण कहा जा सकता है। यह समय जीवन का अमूल्य चरण होता है। विश्वविद्यालय की शिक्षाप्राप्त व्यक्ति को अपने विषय में प्रवीण माना जाता है परंतु संगीत विषय में अधिकांश विद्यार्थी उत्तीर्ण करने के पश्चात् भी न तो अच्छे कलाकार ही बन पाते हैं और न हि एक अच्छा शिक्षक बन पाते हैं।

संगीत–शिक्षण के क्षेत्र में आज भी गुरू–शिष्य–परंपरा को विशेष महत्व प्रदान किया जाता है। इसके लिए संस्थाओं में कलाकार पैदा होने की बात बार–बार दोहराई जाती है। वास्तविकता तो यह है कि हज़ारों में से कोई एक ही प्रतिभाशाली छात्र जिसने योग्य गुरू के मार्ग–दर्शन से लंबे समय तक संगीत साधना की हो, वही कुशल कलाकार बनता है। संगीत सीखने वाला प्रत्येक विद्यार्थी कलाकार बन जाय, यह संभव नहीं है। कुछ विश्वविद्यालयों में संगीत शिक्षकों की भी दो श्रेणियों होती है, जैसे– एक तो वह शिक्षक है जिन्होंने मान्यता प्राप्तं संस्थाओं से उच्च डिग्रियाँ प्राप्त की है। दूसरी ओर, केवल वह कलाकार शिक्षक, जिनके पास कोई डिग्री तो नहीं है परंतु अपनी कला में निपुण होते हैं। कभी–कभी कुछ विद्यार्थी बी.ए. प्रवेश लेने पर संगीत को एक विषय के रूप में लेते हैं, ऐसी स्थिति में जो विद्यार्थी पहले से सीखकर आते हैं उनका बहुत नुकसान होता है। कुछ विद्यार्थी भी पूर्ण रूप से संस्कारविहीन होते हैं। शिक्षक के लिए इन सभी बातों का सामजस्य कर कक्षा के स्तर को बनाये रखना कठिन कार्य होता है।

यदि ध्यानपूर्वक सोचा जाय तो प्राथमिक स्तर से ही संगीत–शिक्षण में कुछ मूलभूत कमियाँ हैं, जिनके कारण उनकी नींव जितनी पक्की होनी चाहिए, उतनी नहीं हो पाती। प्रायः स्तानक कक्षा में संगीत एक विषय के रूप में होता है और जितना समय उसे मिलना चाहिए, नहीं मिलता। संगीत सीखने वाले विद्यार्थियों का शिक्षक से सम्पर्क भी बहुत कम हो पाता है। आज विशेष रूप से विश्वविद्यालय स्तर पर लम्बे अवकाश, अनिश्चितकालीन हड़ताल इत्यादि के कारण सीखने और सीखाने में और भी अनियमितता आ जाती है।

विश्वविद्यालय स्तर पर आधुनिक काल में उपलब्ध वैज्ञानिक साधनों का पूरा–पूरा लाभ उठाया जा सकता है। टेपरिकार्डर की सहायता से अच्छे–अच्छे कलाकारों का गायन–वादन सुनवाने की व्यवस्था सप्ताह में कम–से–कम दो बार की जा सकती है। विद्यार्थी अपने गायन–वादन की कमियों को भी टेप के द्वारा सुनकर दूर करने का प्रयत्न कर सकते हैं। इसी प्रकार, अन्य वैज्ञानिक उपकरण, जैसे– रेडियो, टेलिविज़न, ग्रामोफोन, टेप–रिकार्डर इत्यादि का उपयोग भी इसमें लाभदायक होता है। एम.ए. स्तर पर एक साथ एक कक्षा में चार से अधिक विद्यार्थी नहीं होने चाहिए क्योंकि संगीत की समुचित शिक्षा के लिए गुरू का व्यक्तिगत सम्पर्क आवश्यक होता है। इसलिए संगीत गुरू–मुखी विद्या मानी जाती है। संगीत के विद्यार्थी जो छात्रावासों में रहते हैं, उनके सम्मुख एक और बहुत बड़ी समस्या आती है कि वे अपनी इच्छानुसार अभ्यास नहीं कर पाते । अन्य विद्यार्थियों को उनके किसी भी समय अभ्यास करने से असुविधा होती है। इसलिए संगीत विद्यार्थियों का एक पृथक छात्रावास होना चाहिए जहाँ उन्हें संगीत का अभ्यास करने में कोई कठिनाई न आए।

अधिकांश विद्यार्थियों में संगीत के शास्त्रीय ज्ञान के प्रति आश्चर्यजनक अनास्था एवं उपेक्षा पाई जाती है। विद्यार्थियों को यह नहीं भूलना चाहिए कि किसी भी विषय के क्रिया–पक्ष का ज्ञान शास्त्र–पक्ष के ज्ञान के बिना अधूरा होता है। विकास के लिए दोनों पक्षों का होना आवश्यक है। शास्त्र पक्ष के ज्ञान के आधार पर अनुसंधान के कार्य को भी नई दिशा दी जा सकती है। केवल प्रयोग–पक्ष के द्वारा संगीत विद्या में निपुण नहीं माने जा सकते, उसके

साथ शास्त्र–पक्ष का ज्ञान होना भी अनिवार्य है।

**निष्कर्ष**

वर्तमान शिक्षण–प्रणाली में संगीत को एक महत्वपूर्ण एवं प्रतिष्ठित स्थान दिया गया है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग भी हर प्रकार से सहायता प्रदान कर रही है किन्तु विश्वविद्यालय स्तर पर तब तक सुधार नहीं हो सकता जब तक प्रारंभिक विद्यालय एवं महाविद्यालय स्तर पर संगीत–शिक्षण–प्रणाली में सुधार नहीं हो जाता। इसके अतिरिक्त विद्यार्थी की योग्यता, उसकी बुद्धि का स्तर आदि बातों का विचार कर, राग सिखाते समय, आसान कर कैसे सीखाया जाय, इन पर ध्यान देना चाहिए। शिक्षक को चाहिए कि वह शिष्य में संगीत की ओर दिलचस्पी पैदा करें और आत्मविश्वास को कम न होने दें। संगीत शिक्षक का महत्वपूर्ण कार्य नई पीढ़ी के युवा वर्ग व बच्चों को संगीत के प्रति उत्साहित करना भी है।

सन्दर्भ ग्रन्थ :

1. छायानट, पत्रिका त्रैमासिक, अंक 36, जनवरी–मार्च 1986
2. सक्सेना, डॉ. मधुबाला, भारतीय संगीत शिक्षण प्रणाली एवं उसका वर्तमान स्तर, हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़, प्रथम संस्करण, 1990
3. पलनीटकर, डॉ. अलकनंदा, शास्त्रीय संगीत शिक्षा : समस्याएं एवं समाधन, आदित्य पब्लिशर्स संस्करण 2000
4. संगीत कला विहार, मासिक पत्रिका, अगस्त 1992, गान्धर्व महाविद्यालय मंडल प्रकाशन।
5. वही, जुलाई, 1987
6. वही, जून, 2007

यूजीसी–केयर सूचीबद्ध, पिअर रिव्यूड वार्षिक शोध पत्रिका

**स्तोम 2023**

# स्थानीयता के नवीन बोधों को संदर्भित करती सुबोध गुप्ता की कला

**सोनू कुमार***

**सार**

*नई सहस्राब्दी की आधुनिक कला प्रवृत्तियों की नई रूपांकन पद्धति ने विभिन्न पारम्परिक कलाओं को उनकी अवधारणाओं एवं विलक्षणताओं सहित स्वयं में समाहित कर लिया है। आज चित्र, मूर्ति, वीडियो, अभिनय, प्रदर्शन, संकलन आदि विभिन्न कलारूपों को संस्थापन में एक साथ देखा जा सकता है जो समकालीनता के नए अर्थों एवं बोधों को प्रासंगिक कर रहा है। संस्थापन कला की जो विलक्षणताएँ हैं उसे विवान सुन्दरम्, गोगी सरोज पाल, नलिनी मलानी, वेदनायर और सुबोध गुप्ता सरीखे कलाकार आज समकालीन कला में दिखा रहे हैं। यह सम्भवतः राजा रवि वर्मा और अवनिन्द्र नाथ, अमृता शेरगिल, रामकिंकर की कलाओं से थोड़ा भिन्न है किन्तु देखने और अनुभव करने की दृष्टि को विकासक्रम में ज्यादा विस्तार मिल गया है।*

*वर्त्तमान में ''वैचारिकता'' एवं ''विरूपण'' समकालीन कला की दो प्रमुख धारणाएँ हैं और यह दोनों ही परस्पर पूरक तत्त्व हैं। वैचारिकता जीवन के आनुषांगिक कला प्रवृत्तियों को विकसित करती है और यही कारण हैं कि प्रत्येक काल की कला में नवीनतम रूपों का सृजन होता है जो अपनी पूर्ववर्ती कलाओं से भिन्न होती है जबकि विरूपण का अभिप्राय रूपान्तर के अवधारणा को प्रतिपादित करने से है।*

*बिहार के खगौल में जन्मे सुबोध गुप्ता (1964) एक संवेदनशील कलाकार हैं। 1990 के दशक के शुरूआत में पटना आर्ट कॉलेज से प्रशिक्षित होकर अपनी कलात्मक चेतना को और अधिक विस्तार देने के उद्देश्य से दिल्ली चले गये। सुबोध गुप्ता ने अपने कलात्मक जीवन की शुरूआत एक चित्रकार के रूप में किया, किन्तु कालान्तर में नवीनता की कौंध ने उन्हें कला की नई प्रवृत्तियों के प्रति आकर्षित किया। आज वह राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर एक प्रसिद्ध संस्थापन कलाकार के रूप में लोकप्रिय हो चुके हैं।*

*सुबोध गुप्ता ने अपने संस्थापनों में भारतीय लोकाभिमुखों के जीवन के प्रतिबिम्बों की बौद्धिक व्याख्या किया है। दरअसल वह मध्यवर्गीय रसोई के साधारण से इस्पात के बर्तनों जैसे– थाली, प्लेट, चम्मच, करछी, बाल्टी, गिलास, कटोरी आदि विभिन्न वस्तुओं को संयोजित कर उसको एक नया स्वरूप प्रदान कर सहज अभिव्यक्ति करते हैं।*

**मूल शब्द** : *संस्थापन, समकालीन, आधुनिक, कला, बोध*

**प्रविधि** : *द्वितीयक माध्यमों से सहायता ली गई है ।*

कला एक रचनात्मक प्रक्रिया है, जो परिवर्तनशील होती है। यह निरन्तर अपने भिन्न–भिन्न कलात्मक रूपों में परिवर्तित होकर अविरल क्रियान्वित रहती है। संस्थापन कला भी उस कलात्मक प्रक्रिया से विकसित एक आधुनिक कलारूप है, जिसमें रेडीमेड्स या पुराने लब्ध वस्तुओं को समावेशित एवं संयोजित कर एक कलाकृति के रूप में द्वि–आयामी या त्रि–आयामी स्वरूप प्रदान किया जाता है। वस्तुतः कला के इस नए ढंग के प्रस्तुतिकरण में मूलरूप से विचार सबसे महत्वपूर्ण तत्त्व होता है। वर्तमान परिदृश्य में इस कला प्रवृत्ति की ओर दर्शकों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने के लिए विभिन्न तत्वों जैसे– साउण्ड, वीडियो, प्रदर्शन, अभिनय, लाइट आदि को भी इसका हिस्सा बनाकर प्रस्तुत किया जा रहा है।

इंस्टालेशन आर्ट वास्तव में संकलन कला, वैचारिक कला कोलाज आदि कलाओं के बेहद निकट होने के बाद भी यह अपनी अनूठी रचनाशीलता के कारण, इन कलारूपों से बहुत भिन्न है। 21वीं सदी की कलात्मक चेतना आधुनिकतावादी तथा प्रयोगवादी विचारधाराओं से अधिक प्रेरित है। जहाँ कला में माध्यम व विषयवस्तु की कोई सीमा नहीं है। परिणामस्वरूप कला ने आज एक विस्तृत स्वरूप ग्रहण कर लिया है। समकालीन कला परिवेश में कलाकार अपनी रचनात्मकताओं में वैज्ञानिक दृष्टिकोणों के साथ ही नवीन संसाधनों को एक माध्यम के रूप में प्रयोग कर रहा है। इस आधुनिकतावादी कला के वैचारिक सिद्धान्तों के

*शोध छात्र, चित्रकला विभाग, दृश्य कला संकाय, का.हि. विश्वविद्यालय, वाराणसी

व्यापक परिदृश्य में मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण व दर्शन को अभिकल्पित कर अपनी अभिव्यक्ति को उद्घाटित करना समकालीन कलाकारों का प्रमुख उद्देश्य बन गया है।

दरअसल विगत पच्चीस–तीस वर्षों के अन्दर भारतीय कला में हो रहे अन्धाधुंध प्रयोगों ने आज भारतीय समकालीन कला का स्वरूप एकदम बदल कर रख दिया है, जो भारतीय पारम्परिक कलाओं से बिल्कुल भिन्न है। अतः इन्हीं समकालीनता एवं आधुनिकता के नए औचित्य को गठने की उत्सुकता ने कहीं–न–कहीं (तथाकथित रूप से) भारतीय कला को वैश्विक कला की मुख्यधारा से जोड़ दिया है। सम्भवतः आज इन्हीं नवीन कला प्रवृत्तियों के कारण समसामयिक कला भारत में एक प्रयोगात्मक कला के रूप में विस्तार पा रही है जो भारतीय समकालीन कला को एक नया रूप भी प्रदान कर रही है।

भारतीय कला के वैश्वीकरण में अनेक मूर्धन्य कलाकार अपना अतुलनीय योगदान दे रहे हैं, अतः सुबोध गुप्ता भी उन्हीं कलाकारों में से एक हैं। ''अन्तर्राष्ट्रीय कला जगत में बर्तनवाला के नाम से ख्यात सुबोध गुप्ता जमीन से जुड़े परस्परसंवादी, इंस्टालेशन मूर्तिशिल्प, वीडियो, परफॉर्मेंस और चित्रों के लिए जाने जाते हैं। भूमण्डलीकरण के इस दौर में ताकत और लचीलेपन के प्रतीक स्टेनलेस स्टील जिसके लिए टाटा मित्तल, जिंदल और उसके बाद अब सुबोध गुप्ता जाने जाते हैं।''[1] गुप्ता ने अपनी सृजनात्मकता के द्वारा कला की एक विशिष्ट तकनीक को प्रतिपादित किया। अतः इन्होंने भारतीय कला जगत में एक विचारशील एवं प्रयोगवादी ढंग से कला सृजन कर अभिव्यक्ति (रचनाशीलता) की एक नई चेतना को प्राण–प्रतिष्ठा प्रदान की, जिसमें सामाजिक, राजनैतिक एवं दैनिक संस्कारों के साथ स्थानीय स्मृतियों को संश्लिष्ट कर, उसमें भारतीय जन–जीवन के करुण संवेदना को जोड़कर एक कलाकृति के रूप में समाज व दर्शकों के समक्ष प्रस्तुत किया है।

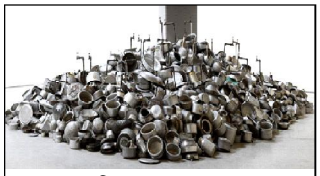
चित्र संख्या–1

सुबोध गुप्ता एक संवेदनशील कलाकार हैं जिन्होंने लोक–जीवन के सामान्य प्रतीकों को अपनी सांगीतिक कृतियों का आधार बनाते हुए उसकी बौद्धिक व्याख्या भी की है। सुबोध अपनी कला रचना सामाग्री के रूप में मध्यवर्गीय लोगों के रोजमर्रा के जीवन में प्रयोग की जाने वाली वस्तुओं का रूपान्तरण कर, जन–सामान्य प्रतीकों को पुनः काष्ट करते हैं और प्रेक्षक को आश्चर्यचकित कर देते हैं, जैसे–

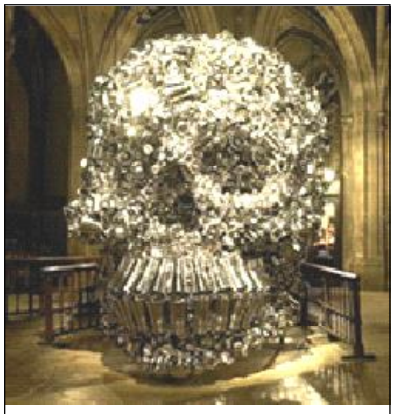
चित्र संख्या–2

टिफिन बॉक्स, कट्टा, गाय, दूध वाला बाल्टा, गोबर के उपले, स्कूटर, साईकल, अम्बेस्डर आदि। वे अपनी कला में मध्यवर्गीय लोकाभिमुखों की तीखी एवं जटिल जीवनशैली व उनकी संवेदनाओं का यथार्थ दर्शन कराते हैं। गुप्ता पुराने पिचके एल्युमिनियम, स्टील के जंक हो चुके बर्तनों को एक नया रंग–रूपाकार देकर जादुई ढंग से एक अद्भुत संस्थापन कृति का निर्माण करते हैं। उदाहरण के रूप में "These are not fountain" (चित्र सं0–1) शीर्षक के संस्थापन को देख जा सकता है। यह संस्थापन कृति 2014 में राष्ट्रीय कला वीथिका, नई दिल्ली में प्रदर्शित की गई थी। इस कृति में बहुत सारे एल्युमिनियम के पुराने बर्तनों को इकट्ठा कर उनका एक सुनियोजित संयोजन तैयार किया गया है और इन्हीं बर्तनों को ढेर बनाकर, ढेर के मध्य में कहीं–कहीं नलकूप लगा दिया गया है जिससे पानी बह रहा है। वास्तव में गुप्ता ने इस कृति के माध्यम से उन स्मृतियों का साकार रूप प्रस्तुत किया है जब वह किसी गली–मुहल्ला के नुक्कड़ पर लगे नलकूप पर बच्चे–बच्चियों व महिलाओं को बर्तन साफ करते देखते थे। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य उदाहरणों में "HUT" व "We are the same boat" है जो इनकी उत्कृष्ट कृतियाँ है जिनमें उन्होंने मध्यवर्गीय लोक जीवन का मार्मिक दृश्य प्रस्तुत किया है।

चित्र संख्या–3

गुप्ता अपने संस्थापनों एवं मूर्तिशिल्पों के लिए चमचमाते इस्पात (Steel) के छोटे–बड़े बर्तनों, गिलास, चम्मच, थाली, प्लेट, कटोरी, करछी, पलटा, जैसे विभिन्न वस्तुओं से "Hungry God" (चित्र सं0–2) शीर्षक से एक बड़े आकार का मूर्तिशिल्प बनाकर पश्चिमी प्रेक्षकों को भी आश्चर्यचकित कर दिया। पेरिस के सेंट बर्नार्ड गिरजाघर में इस कृति को प्रदर्शित करते हुए सैकड़ों लोगों को अपना बनाया, सूप पिलाया। इस कृति में साज पैपियर के उन सैकड़ों अप्रवासी लोगों के तकलीफों को याद किया गया।

''एंडी बारहोल की पॉप कला में ऐसी रचना सामग्री थी जो रोजमर्रा की जिन्दगी में हम देखते हैं। लेकिन यह कहना गलत नहीं होगा कि सुबोध के पास वारहोल से बेहतर रचना दृष्टि है।''[2] दरअसल सुबोध गुप्ता अपने बचपन की स्मृतियों व साधारण भारतीय अनुभवों को ही अपनी कला का मुख्य आधार बनाते हैं। पुराने एल्युमिनियम व स्टेनलेस इस्पात के वस्तुओं द्वारा निर्मित बहुरूपी आकृतियों की असीमित विविधताओं से उत्पन्न अनेक मध्यवर्गीय वास्तव में अद्वितीय हैं। ''कुकिंग द वर्ल्ड'' (Cooking the world) 2017 (चित्र संख्या–3), संस्थापन जीवन्त आकार की झोपड़ी है, एक विशालकाय हान्डा जिसका शीर्षक ''चन्दा मामा दूर के'' या स्टेनलेश इस्पात से बना दैत्याकार मानव खोपड़ियाँ, ये सभी कृतियाँ सामान्य जीवन व लोगों के सरोकारों को प्रस्फुटित करती हैं।

सुबोध गुप्ता का संस्थापन कृति ''मैं और मेरी माँ'' (My mother and me) 1997, (चित्र संख्या–4) जिसे ''खोज'' द्वारा आयोजित कार्यशाला के दौरान निर्मित किया था। यह संस्थापन गोबर के कंड़ों से बनी एक बेलनकार संरचना है, जिसका एक दरवाजा है जिससे दर्शक उसके अन्दर प्रवेश कर गोबर मिट्टी की सुगंध से गाँव की पुरानी स्मृतियों को अनुभव कर सकता है। दरअसल भारतीय संस्कृति व परम्परा में गाय के गोबर का बहुत महत्व होता है। विशेषकर हिन्दू धर्म में, किसी पूजा या शुभ कार्यों में गौरी–गणेश के प्रतीकात्मक स्वरूप को पूजने हेतु गोबर से ही बनाये जाते हैं।

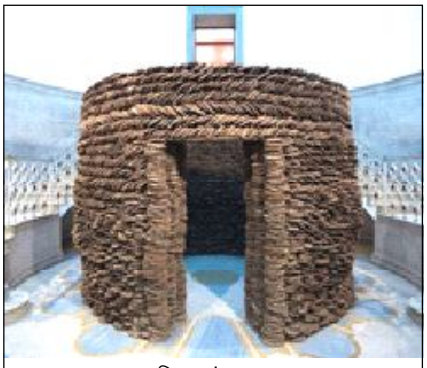

चित्र संख्या–4

''सुबोध गुप्ता मूलतः जमीनी सच्चाईयों के कलाकार हैं जिनसे वे सदैव जुड़े रहना चाहते हैं।''[3] वस्तुतः गुप्ता अपनी कलाओं में गाय, गोबर के उपले, पाटले (पीढ़ा), बिहार का कट्टा, साइकिल, स्कूटर एवं मोटर साइकिल पर लादे गए दूध के बाल्टे, अम्बेस्डर कार आदि का प्रयोग करते हैं। ये सभी भारत के मध्यवर्गीय जन–जीवन के सरोकारों का अनोखा प्रतीक है। सुबोध इन सभी वस्तुओं का कायान्तरण कर चमत्कृत एवं नवीन रूप प्रदान करते हैं तथा इससे वे एक अद्भुत रचनात्मकता को कल्पित करते हैं अर्थात् सरल भाषा में कहा जाय तो ''सुबोध गुप्ता अपनी कला और उसकी बुनियादी चिंताओं में जितना स्थानीय होते चले गये उतना ही वे ''सार्विक'' भी हो गये।''[4]

समकालीन कला परिदृश्य में राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय कला दीर्घाएँ, आर्ट कलेक्टर्स (संग्रहकर्ता) एवं कला बाजार में सुबोध गुप्ता काफी लोकप्रिय कलाकार हो चुके हैं तथा आज भारतीय व पश्चिमी देशों की प्रतिष्ठित कला दीर्घाएँ, संग्रहकर्ता एवं संग्रहालय भी सुबोध गुप्ता की कला को काफी पसंद कर रहे हैं और ऊँचे मूल्यों के साथ उनकी कृतियों को खरीद रहे हैं। अगर आज सुबोध अन्तर्राष्ट्रीय कला प्रेमियों तक पहुँच सके हैं तो वो अपनी निष्ठा एवं कलात्मक चिन्ताओं को एक अर्थपूर्ण औचित्य देकर। अतः यह स्पष्ट है की सुबोध अपनी कल्पनाशीलता में जिन संदर्भों को प्रतिबिंबित करते हैं वे समस्त वर्गों के कला प्रेमियों को प्रभावित करती हैं।

**उपसंहार :**

दरअसल वर्तमान में नवागंतुक या वरिष्ठ कलाकार परिस्थिति एवं विषय–वस्तु के प्रासंगिकताओं के अनुरूप ही अपनी कला में रचना–सामाग्री का चुनाव करते हैं। हालांकि यह सत्य एवं स्पष्ट है कि प्रत्येक वस्तु अपने अन्तर्निहित भावों एवं अर्थों को स्वतः उद्घाटित करने का सामर्थ्य नहीं रखती, क्योंकि तब वह एक साधारण–सी वस्तु होती है, किन्तु जैसे ही वह किसी कलाकार की कलात्मक चिन्ता के अनुरूप नया स्वरूप ग्रहण करती है, ठीक उसी समय वह जीवन्त होकर अर्थवान हो जाती है। वस्तुतः सुबोध गुप्ता

ऐसे ही मध्यवर्गीय प्रतीकों का कायान्तरण कर भारतीय जीवन के प्रासंगिकताओं को अपने चित्रों, मूर्तिशिल्पों, वीडियो एवं संस्थापनों में गढ़ रहे हैं। सुबोध गुप्ता विगत दो–तीन दशकों से कला जगत में खूब सक्रिय हैं। वे जमीन से जुड़े कलाकार हैं तथा उनकी कृतियों में भारतीय लोकाभिमुखों की करुण संवेदना को सरल रूपों में देखा जा सकता है।

वास्तव में सुबोध गुप्ता की रचना–दृष्टि कमाल की है, तभी वे साधारण मध्यवर्गीय प्रतीकों की अपार विविधाताओं के साथ उसके सरोकारों की बौद्धिक व्याख्या करते हैं। गुप्ता की गढ़ी रचनाओं में उनके बचपन, गाँव व स्थानीय स्मृतियों के सौन्दर्य को सदैव अनुभव किया जा सकता है। सुबोध गुप्ता का भारतीय संस्कृति से जुड़ाव ही उन्हें एक परिपक्व कलाकार बनाता है।

**सन्दर्भ सूची :**

1. कुमार, विनय (अप्रैल–2014), कला दीर्घा, लखनऊ ''मध्यवर्ग का नया सौन्दर्यशास्त्र'', वर्ष 14, अंक 28, पृ0 38
2. भारद्वाज, विनोद (2011) ''कला का रास्ता युवा कला की चुनौतियाँ'', नई दिल्ली, पृ0 10
3. कुमार, विनय (अप्रैल–2014), कला दीर्घा, लखनऊ, ''मध्यवर्ग का नया सौन्दर्यशास्त्र'', वर्ष 14, अंक 28, पृ0 40
4. भारद्वाज, विनोद (2011) ''कला का रास्ता'', नई दिल्ली, पृ0 14

# अध्यापक शिक्षा में नाट्य और कला : राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 के संदर्भ में

**डॉ. अखिलेश कुमार मिश्र****

**वन्दना कुमारी***

**सारांश**

*राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 21वीं शताब्दी की पहली शिक्षा नीति है जिसका लक्ष्य हमारे देश के विकास के लिए अनिवार्य आवश्यकताओं को पूरा करना है। भारत की परंपरा और सांस्कृतिक मूल्यों को ध्यान में रखते हुए शिक्षा के लिए आकांक्षात्मक लक्ष्यों के सभी पक्षों में सुधार कर सकें। प्राचीन और सनातन भारतीय ज्ञान और विचार की संवृद्ध विविधता और संस्कृति के प्रति सम्मान रखते हुए देश की स्थानीय और वैश्विक संदर्भ की आवश्यकताओं की ओर ध्यान रखते हुए विकास करना है।*

*शिक्षा व्यवस्था में किये जा रहे बुनियादी बदलावों के केन्द्र में शिक्षक होने चाहिए तो यह आवश्यक है कि उनका संवृत्ति विकास समयानुकुल हो ताकि बदलते शिक्षण–प्रविधियों, शिक्षण–अधिगम प्रविधियों से उन्हें परिचित कराया जा सके। राष्ट्रीय शिक्षा–नीति अपने मूल–भूत सिद्धान्तों में पहचान और उनके विकास हेतु प्रयास, अवधारणात्मक समझ, रचनात्मक और तार्किक सोच जैसी मौलिक बातों पर जोर देती है।*

*प्रारम्भिक बाल्यावस्था से लेकर उच्चतर स्तर तक सीखने और सीखाने की प्रक्रिया को लचीला, बहुआयामी, बहुस्तरीय, खेल आधारित, गतिविधि आधारित और खोज आधारित रूप में शामिल किया गया है। इसके अन्तर्गत बच्चों के शारीरिक भौतिक विकास, संज्ञानात्मक विकास, सामाजिक–संवेगात्मक, नैतिक विकास, सांस्कृतिक विकास हेतु कला, शिल्प, नाटक, संगीत एक सहज एवं सरल माध्यम के रूप में अपनाया जा सकता है।*

**शब्द सूचक** : *सांस्कृतिक मूल्य, शिक्षण प्रविधि, शिक्षण–अधिगम, अवधारणात्मक समझ, तार्किक सोच, संज्ञानात्मक विकास*

**प्रविधि** : *इस लेख को विभिन्न द्वितीयक माध्यमों से प्राप्त सामग्री के अध्ययन के बाद तैयार किया गया है।*

**भूमिका** :–

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, 21 वीं शताब्दी की पहली शिक्षा नीति है जिसका लक्ष्य हमारे देश के विकास के लिए अनिवार्य आवश्यकताओं को पूरा करना है। यह नीति भारत की परंपरा और सांस्कृतिक मूल्यों के आधार को बरकरार रखते हुए, 21वीं सदी की शिक्षा के लिए आकांक्षात्मक लक्ष्यों के सभी पक्षों में सुधार और पुनर्गठन का प्रस्ताव रखती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति प्रत्येक व्यक्ति में निहित रचनात्मक क्षमताओं के विकास पर विशेष जोर देती है।

इसका विजन भारतीय मूल्यों से विकसित शिक्षा प्रणाली को स्थापित करना है जो सभी को उच्चतर गुणवतापूर्ण शिक्षा उपलब्ध करायें। भारत को वैश्विक ज्ञान महाशक्ति बनाकर जीवंत और न्यायसंगत ज्ञान समाज में बदलने के लिए प्रत्यक्ष रूप से योगदान कर सके। नीति में परिकल्पित है कि हमारे संस्थानों की पाठ्यचर्या और शिक्षा विधि या छात्रों में अपने मौलिक दायित्वों और सांवैधानिक मूल्यों, देश के साथ लगाव और बदलते विश्व में नागरिकों की भूमिका और उत्तरदायित्वों के प्रति जागरूकता उत्पन्न करे। अगली पीढ़ी को आकार देनेवाले शिक्षकों की एक टीम के निर्माण में अध्यापक महत्वपूर्ण है। शिक्षकों को तैयार करना एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके लिए बहु–विषयक दृष्टिकोण और ज्ञान की आवश्यकता के साथ ही साथ बेहतरीन मेंटरों के निर्देशन में मान्यताओं और मूल्यों के निर्माण के साथ–साथ उनके अभ्यास की आवश्यकता होती है। यह सुनिश्चित करना कि अध्यापक शिक्षा और शिक्षण प्रक्रियाओं से संबंधित अद्यतन प्रगति के साथ–साथ जनजातीय परंपराओं सहित भारतीय मूल्यों, भाषाज्ञान, लोकाचार और परंपराओं के प्रति जागरूक रहे।

अध्यापक शिक्षा के लिए बहु–विषयकता के साथ–साथ उच्चतर गुणवत्ता युक्त विषयवस्तु और शैक्षणिक प्रक्रियाओं की आवश्यकता होती है। अतः इसे ध्यान में

*शोध छात्रा, शिक्षा, डी.डी.ई., ल.ना.मि. विश्वविद्यालय, दरभंगा

**सहायक निदेशक, डी.डी.ई., ल.ना.मि. विश्वविद्यालय, दरभंगा

रखते हुए सभी अध्यापक–शिक्षा–कार्यक्रमों को समग्र बहुविषयी संस्थानों में ही आयोजित किये जाने का प्रस्ताव रखा गया है शिक्षण संस्थानों में अत्याधुनिक अनुसंधानों के साथ–साथ मनोविज्ञान, दर्शनशास्त्र, समाजशास्त्र, तंत्रिका विज्ञान भारतीय भाषाओं, कला, संगीत, इतिहास और साहित्य के साथ–साथ विज्ञान और गणित जैसे अन्य विशिष्ट विषयों से संबंधित विभागों के सहयोग से भविष्य के शिक्षकों को शिक्षित करने का प्रस्ताव किया गया है।

प्रारम्भिक बाल्यावस्था–देख–भाल और शिक्षा जो सीखने की नींव है पर विशेष जोर दिया गया है। बच्चों के मस्तिष्क का 85 प्रतिशत विकास 6 वर्ष की अवस्था से पूर्व हो जाता है, इसलिए इस अवस्था में मुख्य रूप से लचीली, बहुआयामी, बहुस्तरीय, खेल–आधारित, गतिविधि–आधारित और खोज–आधारित शिक्षा को शामिल किया गया है। अक्षर, भाषा, गिनती, रंग, आकार, इंडोर, आउटडोर खेल, पहेलियों और तार्किक सोच, समस्या सुलझाने की कला, चित्रकला, दृश्यकला, शिल्प, नाटक, कठपुतली संगीत तथा अन्य गतिविविधों को शामिल करते हुए इसके साथ अन्य कार्य, जैसे– सामाजिक कार्य, मानवीय संवेदना, व्यवहार–शिष्टाचार, नैतिकता, व्यक्तिगत और सार्वजनिक स्वच्छता, समूह में कार्य करना और आपसी सहयोग को विकसित करने पर भी ध्यान केन्द्रित किया गया है।

### शिक्षा में नाट्य और कला का अनुप्रयोग

राष्ट्रीय शिक्षा नीति में प्रारम्भिक अवस्था से लेकर उच्चतर अवस्था के पाठ्यक्रमों में नाट्य का महत्त्व दर्शाया गया है। कला एवं नाट्य पाठयक्रम के संचालन के दौरान रचनात्मक एवं कल्पनाशीलता को अभिव्यक्त करने का अवसर देती है। किसी भी कक्षा में विद्यार्थियों के अपने परिवेश, संस्कृति, सामाजिक आर्थिक एवं मनोवैज्ञानिक अनुभव भिन्न होते हैं, विद्यार्थी नाट्य, दृश्यकला, रंगमंच, लोककला, संगीत, नृत्य आदि के विभिन्न रूपों में इन अनुभवों को प्रदर्शित करते हैं। इसलिए कला को रोजमर्रा के अनुभवों से अलग नहीं किया जा सकता और फलस्वरूप इन अनुभवों के माध्यम से ही कला विद्यार्थियों में चारों ओर कलात्मक संवदेनशीलता विकसित करने में सहायक हो सकती है।

### विद्यालयी शिक्षा में नाट्य कला की आवश्यकता :

शब्दकोश 'कला' को मानवीय सर्जनात्मक कौशल एवं कल्पना के अनुप्रयोग अथवा अभिव्यक्ति के रूप में परिभाषित करता है। कला–शिक्षा बच्चों को शिक्षण अधिगम के आनंद को पूर्णतः अनुभव करने, ब्रह्मांड की सुन्दरता को अनुभव करने एवं उसकी सराहना करने के योग्य बनाती है और बच्चों के मानसिक विकास में सहायता करती है। यह बच्चों में एक–दूसरे के काम के लिए आदर पल्लवन एवं अपनी सांस्कृतिक धरोहर को नजदीक लाती है–राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (NCF) 2005 विद्यालयी पाठ्यचर्या के विभिन्न स्तरों पर कला के विभिन्न रूपों, जैसे–दृश्यात्मक कलाएँ (ड्राइंग, चित्रकारी) निष्पादन कलाएँ (नृत्य, नाटक और संगीत), पारंपरिक कला एवं हस्तकला, कठपुतली निर्माण आदि का समन्वय है। डार्वड गार्डनर के बहुआयामी वृद्धि सिद्धान्त पूरी तरह से शिक्षा में नाट्य एवं कला का समेकन करता है। कलाएँ विद्यार्थियों के लिए शैक्षिक मार्ग उपलब्ध करा सकती हैं क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति का मस्तिष्क अलग है, शिक्षा को तदनुकूल व्यक्ति को तैयार करना चाहिए– "जिन बच्चों के पास भाषा और तर्क योग्यताएँ हैं वे विद्यालयों में अच्छा कर रहे है" (गार्डनर, 1999)।

आईसनर (1998) बहुआयामी बुद्धि का सिद्धान्त पाठ्यचर्या में कलाओं की एक बड़ी भूमिका का समर्थन करता है। विभिन्न प्रकार की प्रतिभाएँ प्रत्यक्षतः 'जानने के तरीकों' की विभिन्न किस्तों की ओर संकेत करती हैं। इसके अतिरिक्त उपलब्ध शोधों की पर्याप्तता ने अध्यापकों को यह विश्वास दिलाया है कि कला, नाट्य और बहुआयामी प्रतिभा एक शुभ त्रयी है।

### नाट्य समस्या–समाधान प्रक्रिया के रूप में–

नाट्य कौशल को विकसित करने का एक अच्छा माध्यम है। जब हम कुछ नया सीखते हैं, हम उसे पूर्व सूचना, जिसे हम पहले से ही जानते हैं, से जोड़ते हैं। बॉगेल कहते हैं कि "शोध के अनुसार मानवीय मस्तिष्क सीखते समय सम्बन्ध बनाने की कोशिश करता है।" मस्तिष्क के लिए यह कार्य नाट्य कर सकता है क्योंकि इसमें कल्पनात्मक रूपांतरण तथा अनुभवों पर विमर्श सम्मिलित है। विद्यार्थियों के मस्तिष्क में आए विचारों पर कार्य करने की योग्यता का विस्तार करने में सहायता करता है। यह कौशल प्रतिदिन के जीवन में समस्या–समाधान स्थितियों और विचारों के संगठन के लिए आवश्यक है।

### सामाजिक संदर्भ में

नाट्य के साथ समस्या–समाधान के प्रयोग संभव है, क्योंकि शिक्षा में नाट्य के अन्तर्गत समूहकार्य–सम्मिलित

होते हैं। इसलिए विद्यार्थियों को उनके जीवन–भर काम में आनेवाले कौशल को अर्जित करने का अवसर मिलता है। कक्षा, विद्यार्थी की क्षमता और पढ़ाए जाने वाले विषयों के अनुसार अध्यापक रेखीय नाट्य विधियों या प्रक्रिया आधारित नाट्य विधियों को अपनाता है। रेखीय नाट्य उपागम में मुख्य रूप से साईडकोचिंग (side- coaching), स्पॉटलाइटिंग और साझा करना, कहानी कहना, आशु–रचना जैसी अधिगम विधियाँ सम्मिलित हैं। वही प्रक्रिया आधारित नाट्य के अन्तर्गत–मैंटल ऑफ द एक्सपर्ट (Mantle of the Expert), संवर्धना (Facilitation), भूमिका निर्वहन (Role play), अनुरूपण (Simulation) जैसी तकनीकों का प्रयोग करना है।

कलाएँ (सर्जनात्मक लेखन, नृत्य, संगीत, सिनेमा और दृश्यात्मक कलाएँ) ऐसे माध्यम उपलब्ध कराती हैं जिनके द्वारा हम संसार के प्रति अपने अनुभवों का साझा, रिकार्ड एवं उन पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं। नाट्य एवं कला के माध्यम से सामाजिक एवं पर्यावरणीय मुद्दों को समझना सरल होता है। एक शिक्षक को कक्षा में सामाजिक एवं पर्यावरणीय मुद्दों पर चर्चा करने में कई चुनौतियों का सामना करना पड़ सकता है परन्तु इन मुद्दों को नाट्य एवं कला के माध्यम से आसानी से समझाया जा सकता है।

डीवी (1985) का कहना है कि 'साहित्यिक प्रस्तुति में कलाकार को मुक्त करना', सार्वजनिक मामलों पर वांछनीय राय के ऐच्छिक निर्माण की पूर्व शर्त है, जैसे सामाजिक जाँच का मुक्त होना। नाट्य एवं कला अभिव्यक्ति के लिए निर्गम द्वार प्रदान कर सामाजिक मुद्दों को संभालने के लिए शिक्षार्थियों की क्षमता बढ़ाने, किसी मुद्दे पर विशेष दृष्टिकोण का विकास करने एवं इन वास्तविक मुद्दों पर चिंतन के लिए पाठ्यक्रम में अद्वितीय अवसर प्रदान करते हैं। सामाजिक मुद्दों को दर्शाने के लिए दृश्य–कलाओं का आसानी से प्रयोग किया जा सकता है।

नाट्य एवं कला को स्थानीय और साथ ही, वैश्विक सांस्कृति की समझ को विकसित करने के लिए प्रयोग किया जा सकता है। विभिन्न प्रकार की कलाएँ किसी विशेष संस्कृति के बारे में बहुत कुछ बताती हैं। इन कलाओं का अभिव्यक्ति के लिए, निर्गत मार्ग–परिवर्तन के लिए, आवाज और सर्जनशील नए विचारों को जीवन देने के लिए उपयोग किया जाता है। अलग–अलग कलाकृतियों के बारे में सीखना अगली पीढ़ी तक मौजूदा संस्कृति को सौप देने के लिए संस्कृति ग्रहण की प्रक्रिया में सहायता करता है।

**परिणाम और निष्कर्ष**

शिक्षा नीति 2020 सभी भारतीय भाषाओं और उनसे संबंधित स्थानीय कला एवं संस्कृति का वेब आधारित प्लेटफार्म / पोर्टल–1 विकीपिडिया के माध्यम से दस्तावेजीकरण करने का प्रस्ताव करती है। यह शिक्षा नीति भारतीय संस्कृति को बढ़ावा देने के साथ विभिन्न कलाओं को भी प्रोत्साहित कर शिक्षा का माध्यम बनाने पर जोर देती है। शिक्षा नीति अगली पीढ़ी को आकार देने वाले शिक्षकों के संवृतिक विकास पर जोर देती है। नाट्य और कला को शिक्षण–अधिगम का एक हिस्सा बनाकर बच्चे में सृजनशीलता, सौंदर्य बोधात्मक अभिरूचि प्रकृति से सीखने एवं सत्य अनुभव कर नई परिकल्पना के आधार पर सीखने की कला का विकास करती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 में इस नई पहल की शुरूआत बच्चों के चौमुखी विकास की ओर प्रेरित करने की शुरूआत है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति में सरकार ने भारतीय मूल्यों एवं दर्शन को देखते हुए, दार्शनिक मूल्यों, परंपराओं, राष्ट्रीयता की भावना विकसित करने हेतु बच्चों में प्रारम्भ से ही समाहित विकास की परिकल्पना की है परन्तु यह भी आवश्यक है कि शिक्षकों के संवृति विकास में इन चीजों को सम्मिलित कर उन्हें प्रशिक्षित किया जाय, तभी यह परिकल्पना कारगर हो सकती है। साथ ही, विद्यालयी संसाधनों को शिक्षण–अधिगम वातावरणयुक्त बनाने की आवश्यकता होगी। प्रभावी ढंग से सीखने के लिए व्यापक दृष्टिकोण चाहिए जिसमें उपयुक्त पाठ्यक्रम, आकर्षक शिक्षण, निरंतर रचनात्मक मूल्यांकन एवं छात्रों के पर्याप्त सहयोग का होना महत्वपूर्ण होता है।

**संदर्भ :**

डी.वी.जे. (1980) आर्ट,ऐज एक्सपिरिएंस न्यूयॉर्क, एन.वार्ड : पैरिजी बुक्स।

गार्डनर, एच (1993), मल्टीपल इंटेलिजेंसः दि थ्योरी इन प्रैक्टिस, बेसिक बुक्स, आई.एस.वी.एन. 046501822

एन.सी.ई.आर.टी (2005), नेशनल केरिकुलम फ्रेम वर्क, 2005

वॉयल, ए (1979) थिएटर ऑफ दि आप्रेस्ड, न्यूयॉर्क : थिएटर, कम्यूनिकेशन ग्रुप

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार।

# मानव जीवन पर संगीत का चिकित्सकीय प्रभाव

**डा शिवेन्द्र प्रताप त्रिपाठी**** **कल्याणी गुप्ता***

**सार**

*भारत देश में उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत का महत्वपूर्ण स्थान प्राचीन काल से ही रहा है। संगीत मानवीय भावनाओं की अभिव्यक्ति का एक प्रभावशाली माध्यम है, संगीत लोगों में स्फूर्ति व ऊर्जा का संचार करता है, इसके साथ ही अनेक जीव–जन्तुओं व वनस्पतियों पर भी अपना सार्थक प्रभाव छोड़ता है, तो संगीत का एक पहलू चिकित्सा की ओर भी उन्मुख होता दिखाई देता है। चिकित्सा से तात्पर्य किसी रोगी व्यक्ति से या किसी रोग के उपचार से लगाया जाता है। जब कोई व्यक्ति किसी रोग से ग्रस्त होता है, उसे स्वस्थ करने हेतु अनेकानेक दवाओं का सहारा लिया जाता है। ये दवाएँ कुछ समय तक तो रोगी व्यक्ति को स्वस्थ बनाये रखती हैं, परन्तु कुछ समयान्तराल पश्चात् ये भी अपना प्रभाव न के बराबर कर देती हैं। तब उस परिस्थिति में रोगी व्यक्ति की स्थिति असह्य होती जाती है। इस प्रकार की परिस्थिति उत्पन्न ही न हो, इस परिस्थिति में संगीत द्वारा चिकित्सा एक सार्थक प्रयास है, जिसके सकारात्मक पक्ष को इस आलेख के माध्यम से दृष्टिगोचर किया गया है अर्थात् रोगी व्यक्ति को उसके रोग की प्रारम्भिक अवस्था से ही उसके रोग–निवारण हेतु संगीत सुनाकर उसका निवारण किया जा सके।*

**मुख्य शब्द** : *संगीत, चिकित्सा, मानव जीवन, राग, ताल, लय*

**प्रविधि** : *पुस्तकों, पत्र–पत्रिकाओं, इन्टरनेट आदि से सामग्री संकलित कर शोध–पत्र लिखा गया है ।*

**प्रस्तावना**– कला मनुष्य के भावों व विचारों को प्रकट करने का एक सशक्त माध्यम है। सच्ची कलाएँ मानव मन से, मानव की आत्मा से ही प्रस्फुटित होती हैं। प्रत्येक कलाकार चाहे वह किसी भी विधा से संबंधित हो, वह अपनी विधा का स्वयं विधाता होता है। भारतीय शास्त्रों में कलाएँ 64 मानी गयी हैं। सभी 64 कलाओं में ललित कला अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है– संगीतकला, चित्रकला, वास्तुकला, काव्यकला, मूर्तिकला इत्यादि ललित कला के अंतर्गत आती हैं। सभी ललित कलाओ में संगीत कला का महत्वपूर्ण स्थान है।

हिन्दुस्तानी भारतीय शास्त्रीय संगीत की उत्पत्ति प्राचीन काल में हुई है। 'संगीत' शब्द का व्युत्पति गत अर्थ सम्गीत से है। संगीत के अंतर्गत गायन, वादन व नृत्य तीनों ही कला विधायें आती हैं। संगीत मानव मन की अभिव्यक्ति का, मानव मन की भावनाओं की अभिव्यक्ति का एक प्रबल व शक्तिशाली माध्यम है। प्राचीन काल में जब मनुष्य को भाषा का ज्ञान नहीं था, तब सर्वप्रथम मनुष्य ने भाषा का सहारा लिया। वह आपस में हँसकर, रोकर, थपथपाकर ही अपने भावों की अभिव्यक्ति करता था। उस समय संगीत मात्र ध्वनि के रूप में हमारे चारों ओर व्याप्त था, यही ध्वनि बाद में सांगीतिक ध्वनि के रूप में विकसित हुई। वायु की गति में, पत्तियों की ध्वनि में, झरनों के गिरते पानी की ध्वनि में, प्रकृति की हर हलचल में अर्थात् प्रकृति के कण–कण में कोई ध्वनि या लय है अर्थात् किसी–न–किसी रुप में संगीत विद्यमान है। यहाँ तक कि मनुष्य की हर एक श्वाँस में भी एक समानुपात लय विद्यमान है। इसी संदर्भ में यह भी कहा जाता है कि संगीत का क्षेत्र बहुत व्यापक है। संगीत का क्षेत्र अपने आप में ही विस्तृत व अनन्त है।

संगीत कला न केवल मानव मात्र को, अपितु पशु–पक्षियों व पेड़–पौधों में भी ऊर्जा का संचार कर अमृत रस भर देती है। न केवल मानव अपितु पशु–पक्षी भी संगीत से प्रभावित होकर झूम उठते हैं, इसके साथ ही पेड़–पौधे में भी स्पन्दन हो उठता है तथा साथ ही, मानव का उपचार भी संगीत में निहित है। इसी संदर्भ में विभिन्न

*शोध छात्रा, संगीत विभाग, दयालबाग एजूकेशनल इन्स्टीट्यूट, दयालबाग, आगरा

**शोध निर्देशक, दयालबाग एजूकेशनल इन्स्टीट्यूट, दयालबाग, आगरा

विद्वानों के मतानुसार यह भी कहा जाता है कि–

''संगीत है शक्ति ईश्वर की, हर सुर में बसे हैं राम।
रागी जो सुनाए रागिनी, रोगी को मिले आराम।।''

भारत देश में तथा उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत में चिकित्सा–पद्वति का प्रचार तथा संगीत के माध्यम से रोगोपचार की विधि का प्रयोग वर्तमान युग की ही देन नहीं है, अपितु इसका विकास मानव के जन्म के साथ ही हुआ होगा। सर्वप्रथम मानव ने कई प्रकार की चिकित्सा पद्धतियों के प्रयोग को अपनाया होगा, चिकित्सा–पद्धति का निर्माण कई प्रकार से हुआ होगा, पशु–पक्षियों, वन्य जीव–जन्तुओं पर इसका प्रभाव हुआ, क्योंकि पशु–पक्षी बीमार होने पर अपना उपचार स्वयं ही कर लेते हैं। इसका एक उदाहरण यह भी है, जैसे– कजली छेड़ने के पश्चात् साँप (रेंगने वाला जीव) को कुछ दिखाई नहीं देता, उस समय वह सौफ की पत्तियों का प्रयोग वह अपनी आँखों के उपचार हेतु करता है। इस उदाहरण को देखकर ही मनुष्य ने जाना होगा कि सोफ की पत्तियों का प्रयोग आँखो के उपचार हेतु किया जाता है।

तत्पश्चात् कुछ औषधियों की पहचान उसे आकस्मात् भी हुई होगी। विभिन्न वाद्यों का निर्माण भी मानव ने किया था, बाँसुरी, भूमि दुंदुभि, ढ़ोल इत्यादि वाद्यों का प्रयोग अपनी खुशी व उत्साह व्यक्त करने हेतु व थकान मिटाने हेतु किया गया, जो धीरे–धीरे प्रयोग में भी आने लगा। प्राचीन काल में गड्ढ़ा खोदकर उस पर किसी जानवर की खाल मढ़कर अवनद्ध वाद्य की प्राप्ति हुई, तत्पश्चात् किसी पेड़ की टहनी मिलने पर उसमें कुछ छेद कर फूँकने से सुषिर वाद्य की उत्पत्ति हुई। इसी प्रकार, कुछ–न–कुछ गाकर सर्वप्रथम अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति करने का प्रयास किया होगा, जैसे शाम में जब मनुष्य अपने दिन भर के कार्य के पश्चात् थक कर लौटता है, तो उस समय उसकी थकान मिटाने हेतु संगीत का प्रयोग किया जाता रहा होगा, जिसके पश्चात् मानसिक थकान को दूर किया जा सके।

संगीत के द्वारा विभिन्न रोगों का उपचार न केवल वर्तमान युग की देन है, अपितु इसके अनेक उदाहरण हमें प्राचीन काल की संगीत पद्धति से ही प्राप्त होते हैं। अनुमानतः संगीत द्वारा रोगोपचार करना ही एकमात्र साधन मानव के पास था। किसी भी प्रकार की कोई भी परेशानी होने पर प्राथमिकता संगीत को ही दी जाती थी, क्योंकि सर्वविदित है कि भाषा का ज्ञान न होने के पर तथा आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु पर्याप्त साधन उपलब्ध न होने पर संगीत का ही सहारा लिया गया, तो विभिन्न रोगोपचार हेतु भी संगीत का ही सहारा किया गया। इसी के रूप में थोड़ा परिवर्तन कर संगीत द्वारा रोगोपचार विधि का प्रयोग मानव–शरीर के उपचार के लिए भी किया जाने लगा और जिसका प्रयोग सार्थक भी सिद्ध हुआ।

भारत वर्ष में संगीत के माध्यम से चिकित्सा–पद्धति का विकास सहस्त्रों वर्षों पूर्व ही हो चुका था। सर्वप्रथम द्रविड़ जाति द्वारा इसका प्रयोग किया गया था। मध्यकाल में अकबर के काल में भी संगीत द्वारा चिकित्सा–पद्धति का प्रचार था, उसका एक उदाहरण प्राप्त होता है कि अकबर की रानियों में से जब एक बीमार हुई तब तानसेन के गुरु स्वामी हरिदास द्वारा वीणा पर एक राग विशेष बजाये जाने से उसकी बीमारी दूर हो गयी (संगीत पत्रिका– जुलाई 1972 पेज नंबर 18)।

अकबर दरबार में भी संगीत सम्राट तानसेन ने अपने स्वरों को इतना अधिक साध रखा था, कि अपने गायन से ही मृगों को बुला लिया करते थे, दरबार में रखे दीपक प्रज्वलित कर दिया करते थे, यहाँ तक कि उनकी पुत्री सरस्वती ने मेघ राग गाकर वर्षा भी कराई थी। इसे स्वरों की सिद्धि या स्वरों का सार्थक प्रभाव ही कहा जा सकता है। गायन के साथ–साथ उसमें ताल देने हेतु ताल वाद्यों का भी महत्वपूर्ण स्थान रहा है। ताल का महत्व इसीलिये भी है कि मानव–शरीर में हृदय का धड़कना, श्वास का चलना इत्यादि सभी क्रियायें एक निश्चित क्रम से चलती रहती हैं, इसके अनियमित होते ही मानव–शरीर शरीर खतरे में पड़ जाता है। इसके अतिरिक्त मानव–जीवन में ताल का और भी महत्व है, जैसे– बालक के जन्म के साथ ही उसे थपकी देकर सुलाना जो तालबद्ध क्रिया है, इन्हीं थपकियों के सहारे घोड़े की थकान को भी मिटाया जा सकता है।

संगीत केवल मनोरंजन मात्र का ही नहीं अपितु संगीत ध्वनि–विज्ञान का सबसे अधिक परिष्कृत रुप है। ध्वनि का संगीत में महत्वपूर्ण स्थान है। संगीत व संगीत से उत्पन्न विभिन्न प्रकार की ध्वनि को नाद के अंतर्गत रखा गया है और नाद–ब्रह्म का मानव–जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है। अलग–अलग ध्वनियों के माध्यम से अलग–अलग सांगीतिक–नादों को उत्पन्न किया जाता है।

भारतीय संगीत प्रकृति की हर एक हलचल में अपनी रसात्मकता का प्रभाव बनाये हुए है। संगीत का मुख्य उद्देश्य आनन्द प्राप्ति भी है। इसके साथ ही विद्वजनों ने इसका सार्थक प्रयोग चिकित्सा के क्षेत्र में भी किया है। किसी दुखी व्यक्ति को श्रृंगारिक राग सुनाकर उसकी मानसिक स्थिति को अत्यधिक सरलता से कुछ ही क्षणों में प्रसन्न किया जा सकता है।

अर्थात् किसी व्यक्ति की मानसिक स्थिति में परिवर्तन करने हेतु राग–रागिनियों को सुनाकर उसकी वर्तमान स्थिति को आसानी से परिवर्तित किया जाना संभव है। संगीत न केवल मनुष्य के भावों को ही प्रभावित करता है, अपितु प्रकृति पर व जानवरों भी इसका सार्थक प्रयोग देखा जा सकता है, निरन्तर संगीत सुनने मात्र से ही खेतों की फसलों, वृक्षों के फल देने की क्षमता तथा इसके अतिरिक्त पशुओं के दूध देने की क्षमता में भी वृद्धि होती है।

भारत के अनुपात में विदेशों में भी संगीत द्वारा चिकित्सा–पद्धति का प्रयोग अधिक किया जाता है। अमेरिकी हॉस्पिटल में शल्य–चिकित्सा के समय संगीत बजाया जाता है, ताकि संगीत को सुनते–सुनते रोगी अपना दर्द भूल सके, विभिन्न रोगों का सम्बन्ध व्यक्तियों के रक्त समूहों से भी जोड़ा जाता है। जब कोई भी व्यक्ति किसी रोग से ग्रस्त होता है, तो सीधा प्रभाव मानव–शरीर पर ब्राह्य व आंतरिक दोनों ही रुपों में पड़ता है।

रोग ग्रस्त व्यक्ति अपने आप को थका–हारा या असहाय महसूस करता है, जब मानव शरीर पर इस अवस्था का प्रभाव पड़ता है तो वह कुछ–न–कुछ गलत करने से भी पीछे नहीं हटता है, इस स्थिति में भी संगीत औषधि की भाँति सकारात्मक रुप से कार्य करता है। संगीत किसी भी रोगी को रोग–मुक्त करने में सार्थक कार्य करता है, न केवल रोगी व्यक्ति, अपितु कोई सामान्य व्यक्ति भी जब किसी कार्य को लेकर चिंतित हो उठता है तब उस समय वह अपनी चिन्ता–मुक्ति हेतु अनेक प्रकार के संगीत को सुनना पसंद करता है, उसकी चिन्ता को उसके तनाव को बहुत हद तक कम करने में संगीत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

वर्तमान समय में संगीत का प्रयोग न केवल मानसिक, अपितु शारीरिक विकृतियों के समाधान हेतु भी संगीत–चिकित्सा का प्रयोग सार्थक सिद्ध हो रहा है। सर्वप्रथम ताम्र युग में संगीत–चिकित्सा के प्रयोग का पता हमें उमेश जोशी जी की पुस्तक 'भारतीय संगीत का इतिहास' पुस्तक में मिलता है। प्रस्तुत पुस्तक में संगीत द्वारा चिकित्सा–पद्धति के प्रयोग के संदर्भ में लिखा है, ''जब कोई बीमार पड़ता था तो लोग उसे कोई दवा नहीं दिया करते थे, अपितु संगीत द्वारा ही उसका उपचार किया करते थे, इस सांगीतिक उपचार के सकारात्मक प्रभाव से व्यक्ति जल्दी ही स्वस्थ हो जाते था।'' वर्तमान समय में विभिन्न विद्वानों ने शोध के दौरान यह निष्कर्ष निकाला है कि किन–किन रोगों के गायन, वादन द्वारा रोगी को ठीक किया जा सकता है। इस संदर्भ में राग अड़ाना, राग दरबारी, राग कान्हड़ा, राग कलिंगड़ा, राग हिंडोल, राग मारवा, राग तिलंग, राग विलावल, राग मुल्तानी, राग खमाज, राग रामकली इत्यादि रागों के गायन, वादन से विभिन्न प्रकार के रोगों को ठीक किया जा सकता है। राग भैरवी के प्रयोग से अच्छी निद्रा, श्वास व कफ–सम्बन्धी बीमारी से रोगी व्यक्ति को शांति प्रदान होती है। इसके अतिरिक्त स्मरण–शक्ति बढ़ाने में राग शिवरंजनी तथा चिन्ता व तनाव को कम करने में राग तोड़ी सहायता प्रदान करता है। क्रोध की स्थिति व मानसिक पक्षाघात हेतु राग मल्हार तथा राग जयजयवंती का प्रयोग किया जाता है। पाचन–क्रिया ठीक रखने हेतु राग श्री का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार विभिन्न प्रकार के रागों के सकारात्मक प्रयोग से भी विभिन्न रोगों से निजात दिलाई जाती है।

इसके अतिरिक्त तबला के विभिन्न तालों का प्रयोग भी विभिन्न प्रकार के रोगों को दूर करने हेतु किया जाता है, जैसे– दादरा ताल का प्रयोग हृदय रोग के लिए, झपताल का प्रयोग मानव की पाचन–शक्ति को सुचारु रखने हेतु, इसके अतिरिक्त अलग–अलग भावनाओं की अभिव्यक्ति करने हेतु अलग–अलग तालों का निर्माण भी किया गया है। तबले की समान व असमान मात्राओं की गति व उसकी प्रस्तुति से इसका स्पष्टीकरण किया जाता है। इसी प्रकार, एक ही ताल को भिन्न–भिन्न लय में बजाने पर भिन्न–भिन्न रस की निष्पति, जैसे– चारताल का प्रयोग अतिद्रुत लय में करने पर रौद्र रस, द्रुत लय में करने पर वीर रस तथा मध्य लय में करने पर भयानक रस की उत्पत्ति होती है।

अनेक चिकित्सकों के अनुसार, किसी भी रोग का प्रारम्भ मस्तिष्क से ही होता है। तत्पश्चात् उसके लक्षण

शरीर पर दृष्टिगत होने लगते हैं। अतः सर्वप्रथम रोगी व्यक्ति की मानसिक स्थिति की चिकित्सा की जाती है। संगीत के माध्यम से चिकित्सा–पद्धति में विभिन्न रागों का अपना महत्व व अपना प्रभाव होता है। इन सभी रागों को अधिक प्रभावी बनाने में ताल व लय का महत्वपूर्ण योगदान है। विभिन्न रागो के साथ प्रयुक्त होने वाली तालों को भिन्न–भिन्न लय में बजाने पर वह अपना भिन्न–भिन्न प्रभाव उत्पन करती है।

अतः संगीत के अंतर्गत मानव के मन को, उसकी मानसिक स्थिति को प्रभावित करने की शक्ति अन्तर्निहित है, जो न केवल रोगी को ठीक होने में सहायता प्रदान करती है, अपितु इसे प्रसन्नचित्त बनाये रखने में भी सहायता प्रदान करती है। जैसा कि सर्वविदित है कि वर्तमान समय में न जाने कितने रोगों के नाम हमें सुनने को मिलते हैं, जिनका कोई उपचार अभी तक प्राप्त नहीं हो पाया है, उनका भी उपचार संगीत के प्रभाव से किसी हद तक किया जा सकता है।

**निष्कर्ष**– संगीत द्वारा चिकित्सा–पद्धति का प्रभाव बहुत ही गहरा एवं व्यापक है। संगीत के सच्चे सुर मानव–मन को सीधा स्पर्श कर एक सकारात्मक प्रभाव उत्पन्न करते हैं जिससे मानसिक अशान्ति तो दूर होती ही है, साथ ही आनन्द की प्राप्ति भी होती है तथा संगीत द्वारा चिकित्सा–पद्धति का प्रयोग इस दिशा में एक सार्थक प्रयास है। अतः प्रस्तुत विषय के माध्यम से शोधार्थी का यह सार्थक प्रयास है कि उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत जो सीधा हमारे मन को प्रभावित करता है, उसके सकारात्मक प्रभाव को समझकर उससे होने वाले लाभकारी प्रभावों को अत्यधिक प्रयोग में लाया जाय तथा भविष्य में संगीत की चिकित्सा–पद्धति के प्रति लोगों को अधिकता से जागरूक व सजग किया जाय। ताकि इससे अनभिज्ञ व्यक्ति इसके सकारात्मक प्रभाव को जानकर इससे लाभान्वित हो सके।

**संदर्भ ग्रंथ–**

1. जोशी, उमेश, भारतीय संगीत का इतिहास, प्रथम संस्करण, 1957, मानसरोवर प्रकाशन, फिरोजाबाद, उ.प्र.
2. बक्शी, डा. कान्ति कुमार, संगीत तथा ज्योतिष का आपसी सम्बन्ध, प्रथम संस्करण, 2013, कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीबूटर्स, नई दिल्ली।
3. संगीत, मासिक पत्रिका, जुलाई, 1972, पेज नं–18
4. https://m&hindi&webdunia.com/health&care/music-and-health&115060100064_1html?amp=1
5. सिंह, रितु, मानव जीवन में संगीत–चिकित्सा के व्यापक आयाम : एक परीशीलन http://www.granthaalyah.com. International Journal of research

# योग और संगीत का आत्मीय और वैज्ञानिक सम्बन्ध

**डॉ० सौरव कुमार नाहर**** **कु० शालिनी***

**सारांश**

*योग और संगीत एक–दूसरे के पूरक हैं । ये दोनों न सिर्फ मानसिक शांति और संबल प्रदान करते हैं, बल्कि रोग प्रतिरोधक क्षमता और संपूर्ण स्वास्थ्य को बेहतर बनाते हैं। संगीत जगत से जुड़े विद्वानों का मानना है कि योग और संगीत साधना है। विभिन्न अध्ययनों द्वारा ये सिद्ध किया जा चुका है कि संगीत सुनने या गुनगुनाने से मानसिक स्थिति बेहतर होती है, जबकि योग शारीरिक और मानसिक दोनों स्वास्थ्य के लिए लाभकारी है। एक तरफ जहाँ योग से मनुष्य का शरीर, मन और मस्तिष्क मजबूत बनता है, वहीं संगीत हमारे अन्तःकरण को शुद्ध करता है।*

*संगीत एवं योग दोनों साधनाएँ भारत में वैदिक काल से ही निरन्तर प्रचलित रही हैं। सामान्यतः संसार ने संगीत को कला के रूप में ही पहचाना तथा स्वीकार किया, किन्तु भारत इसे कला के अतिरिक्त 'योग' के रूप में भी देखता है। भारतीय संस्कृति में संगीत एवं योग का स्थान सर्वोच्च है। संगीत एवं योग के आत्मीय सम्बन्ध को आध्यात्मिक व वैज्ञानिक रूप से भारत में ही नहीं, अपितु विश्व स्तर पर भी स्वीकार किया गया है। योग विषय जितना व्यापक है उतना ही सूक्ष्म भी है। योग का सीधा सम्बन्ध मनुष्य की मानसिक तथा शारीरिक स्थिति से है, उसकी उन्नति से है। योग से तात्पर्य है– जीवात्मा का परमात्मा से मिलन जिससे मानव शरीर में एक अलग ही स्फूर्ति का एहसास होता है।*

**कुंजी शब्द** : *संगीत, योग, अध्यात्म, विज्ञान, स्वास्थ्य।*

**शोध–माध्यम** : *इस लेख के लिए द्वितीयक माध्यमों द्वारा सामग्री संकलित की गई है।*

संगीत और योग दोनों ही स्वस्थ मस्तिष्क और तनाव मुक्त जीवन के लिए बहुत जरूरी साधन है। योग, संगीत जगत से जुड़े हुए व्यक्ति की जिंदगी का अहम् हिस्सा है। दवाओं से तो शारीरिक रोग दूर होते हैं, लेकिन मानसिक रोग तो योग से ही दूर होंगे। सुख की घड़ी हो या दुख की, संगीत हमारे जीवन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है ।

योग और संगीत दोनों के लिए माहौल भी कमोबेश एक समान होता है। इस संबंध में यह कहना ठीक होगा कि संगीत हो या योग दोनों ही साधना है, दोनों को ही एकाग्रचित्त होकर करना होता है, ये ऊर्जा का संचार करते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि योग और संगीत के सामंजस्य से ही साधना होती है ।

योग में आसन व मुद्राओं पर ध्यान केंद्रित रहता है जबकि संगीत में स्वर पर । इस दृष्टि से दोनों एक–दूसरे के पूरक हैं। संगीत में एक ही स्थान पर साधना करने के लिए शरीर, मन व मस्तिष्क पूर्ण स्वस्थ होना चाहिए, उसमें योग अहम् भूमिका निभा सकता है।

योग और संगीत दोनों ही कला से जुड़े हैं । योग में मस्तिष्क एक जगह पर केंद्रित करना होता है, ठीक उसी तरह जैसे संगीत में अपना शत–प्रतिशत ध्यान लगाना होता है। योग और संगीत एक साथ चलते हैं। ये दोनों ही एक संतुलित जीवन और मस्तिष्क के लिए बहुत काम आते हैं।

मानव के जीवन में संगीत एवं योग के महत्व एवं उसकी उपयोगिता की बात करते समय एक नई धारणा दृष्टिगोचर होती है जिस पर भारत एवं विदेशों में पर्याप्त शोध हो रहे हैं। यह धारणा है कि संगीत एवं योग का विज्ञान, मनोविज्ञान तथा आर्युविज्ञान से सम्बन्ध उसके उपयोग पर आधारित है। चिकित्सा के क्षेत्र में संगीत का प्रवेश एवं प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। बहुत पूर्व से मनोवैज्ञानिक तथा मनोचिकित्सक संगीत तथा इसकी रोग–हरण शक्तियों के विषय में प्रयोग कर रहे हैं, जिसके महत्वपूर्ण परिणाम प्राप्त हो रहे हैं तथा परिणामस्वरूप संगीत–चिकित्सा विज्ञान नामक नवीन धारा विकसित हुई है। इसी प्रकार, योग को आधुनिक युग में सरल, सहज

*शोध–छात्रा (संगीत), वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान
**असि. प्रोफेसर, संगीत, वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान

चिकित्सा–पद्धति के रूप में अपनाया जाने लगा है। आधुनिक विलासितापूर्ण जीवन–शैली के कारण असाध्य बीमारियों से ग्रसित मानव इसे एक संजीवनी के रूप में देख रहा है।

संगीत एवं योग क्रियात्मक कलाएँ हैं जिसे क्रियात्मक प्रदर्शन के द्वारा सीखा जा सकता है। इसी कारण भारतीय संगीत को संगीत की घराना–परंपरा ने आधार व संरक्षण प्रदान किया। इसी परंपरा के आधार पर हमारा संगीत अति प्राचीन होने पर भी आज मानव के मन व मस्तिष्क पर असरदार, प्रभावी व अमिट छाप बनाता है। इसी प्रकार, भारतीय योग में महर्षि पतंजलि को अष्टांग योग का प्रचार–प्रसार करने व गुरु–शिष्य–परंपरा का विकास करने का श्रेय प्राप्त है।

संगीत एवं योग की साधना केवल गुरु के उचित मार्गदर्शन के फलस्वरूप ही फलीभूत होती है। यद्यपि आधुनिक युग में अनेक लेखन–विधियों द्वारा, जैसे– स्वरलिपि (नोटेशन) पद्धति, टेप–रिकार्ड्स, साहित्य एवं चित्र, ऑडियो–विडियो, इन्टरनेट आदि द्वारा भी संगीत व योग सीखा जा सकता है, तथापि सभी विद्वान्, कलाकार, अध्यापक आदि इस बात से पूर्णतः सहमत हैं कि संगीत तथा योग में दक्षता व निपुणता प्राप्त करने के लिए गुरु का होना अति आवश्यक है अर्थात् गुरु–शिष्य–परम्परा ही सर्वश्रेष्ठ विधि है। इस विधि के बिना संगीत एवं योग विधा की शिक्षा सर्वथा अधूरी ही होगी । अतः संगीत एवं योग साधना में गुरु–तत्त्व ही एक सर्वाधिक आवश्यक एवं अभिन्न अंग है।

**संगीत एवं योग का सैद्धांतिक एवं वैज्ञानिक सम्बन्ध**

वेस्ट वर्जीनिया यूनिवर्सिटी के स्कूल ऑफ पब्लिक हेल्थ की प्रोफेसर "किम इंसने" ने अपने शोध–अध्ययन में वैज्ञानिक तरीका से बताया है कि जब बात संपूर्ण स्वास्थ्य को बेहतर बनाने की हो तो मेडिटेशन और संगीत दोनों समान रूप से कारगर सिद्ध होते हैं। संगीत स्ट्रेस हारमोन कार्टिसोल के स्तर को कम करता है, वहीं योगासन के अंतर्गत ध्यान और प्राणायाम के जरिए तनाव, ब्लड प्रेशर पर नियंत्रण, दिल की बीमारियों का खतरा कम होने के साथ ही मांसपेशियों को मजबूती मिलती है जिसकी वजह से मन प्रसन्न और शरीर निरोगी रहता है।

वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि संगीत–साधना व योग–साधना दोनों से मनुष्य की जीवन–शक्ति का विकास होता है। संगीत एक ऐसी विधा है, जो प्रत्येक मानव के साथ प्रत्यक्ष रूप से जुड़ी हुई है। 'नाद ब्रह्म' संगीत का उद्गम है। मनुष्य की वाणी नाद का ही स्वरूप है। प्रत्येक श्वास–प्रश्वास में जो गति होती है, वह 'ताल' को ही अभिव्यक्त करती है। संगीत का उद्देश्य केवल मनोरंजन करना नहीं है अपितु वह हमें शारीरिक एवं मानसिक बल प्रदान करता है। स्वरों की उपासना, रियाज, शास्त्रोक पद्धति के द्वारा नाद–ब्रह्म की आराधना कर अंतर्मन में गहराई तक उतारना संगीत का मुख्य लक्ष्य है । इसलिए संगीत–शास्त्र व अध्यात्म एक–दूसरे से जुड़े हुए हैं। दोनों का उद्देश्य है आत्म साक्षात्कार।

मानव–जीवन की आवश्यकताओं में 'पहला सुख निरोगी काया' माना गया है। जिस प्रकार संगीत उपासना का हेतु है, उसी प्रकार योग–शास्त्र जीवन का मित्र है। संगीत में रियाज हेतु एकाग्रता की आवश्यकता होती है। योग शास्त्र जहाँ हमारे शरीर को स्वस्थ रखने में सहायक है, वहीं मन की, मस्तिष्क की एकाग्रता पाने में भी यह अत्यधिक लाभप्रद है। संगीत में स्वरों की शुद्धता पर जोर दिया जाता है, जबकि योग–शास्त्र में आसन व मुद्राओं पर जोर दिया जाता है। दोनों में स्वर और मुद्रा की उत्कृष्टता से ही आनंद एवं स्वास्थ्य का लक्ष्य पाया जा सकता है। इस दृष्टि से देखा जाए, तो दोनों एक–दूसरे के पूरक हैं।

अनादिकाल से संगीत–विद्या और योग–विद्या सारे विश्व के लिए आकर्षण–बिन्दु बने हुए हैं। इन दोनों विषयों में ज्ञान और विज्ञान दोनों ही समाहित है। संगीत एवं योग ये दोनों विषय मुख्यतया क्रियात्मक हैं। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से इन दोनों विषयों को 'श्वास' नामक सेतु ने जोड़ रखा है। श्वसन– क्रिया को विशिष्ट दिशा में दीक्षित करना, यही संगीत एवं योग का प्रथम कर्तव्य है। संगीत का सम्बन्ध नाद से है और नाद का प्राणवहन से। जिस प्रकार प्राणायाम यानि 'प्राणों के आयाम' से चित्त को शांति की प्राप्ति होती है, उसी प्रकार संगीत यानि सांगीतिक नाद से भी चित्त शान्त होता है। श्वसन क्रिया जो मनुष्य के शरीर एवं मन को जोड़ने वाली एक कड़ी है, इसी से संगीत के स्वर मन्द्र, मध्य एवं तार इन तीनों सप्तकों से स्वर लिये जाते हैं। इन स्वरों के उच्चारण में क्रमशः पेट, वक्षस्थल, कण्ठ एवं मस्तक स्थानों का प्रयोग होता है जो इसके वैज्ञानिक अध्ययन का विषय है। योगियों ने भी शक्तियों को ऊर्ध्वगामी बनाने में संगीत को सहायक माना है। योगियों की भाषा में संगीत नाद–योग है। संगीत और योग दोनों

ही नादात्मक विधा है। एक ओर संगीत में नाद का प्रभाव लोकरंजन है तो दूसरी ओर योग में नाद का प्रभाव भवभंजन है । भारतीय संगीत व योग वैदिक काल से ही आध्यात्मिक धरातल पर आसीन रहा है क्योंकि योग व संगीत दोनों को ब्रह्म–चिन्तन का साधन स्वीकार किया गया है। संगीत और योग दोनों विधाओं में ईश्वर से साक्षात्कार कराने की असीम शक्ति निहित है, जिसका अनुभव हमारे प्राचीन ऋषि–मुनियों और योगियों ने किया। संगीत नैसर्गिक रूप से हृदय के संवेगों एवं भावनाओं को प्रकट करने की कला है। संगीत ने अपनी मन्त्रमुग्धता, मधुमय स्वर एवं सार्वदेशिक प्रभाव के कारण ललित कलाओं में शीर्ष स्थान प्राप्त कर लिया है। संगीत हमारे शास्त्रों में वर्णित सभी चौदह विधाओं और चौंसठ कलाओं में सर्वोत्कृष्ट कला है। कलाओं–विधाओं आदि का साधन यह मनुष्य शरीर ही है, जिसे पिण्ड के रूप में जाना जाता है तथा जिसमें आत्मा का वास है– आत्मा परमात्मा का एक अंश है। भारतीय मान्यता के अनुसार, संगीत साक्षात् ईश्वर–स्वरूप है। जब ईश्वर ने परब्रह्म के रूप में जड़–चेतनादि समस्त सृष्टि को रचना चाहा, तो उसने सर्वप्रथम उसके आधार की रचना की और यह आधार था "नाद", यही नाद समस्त संसार का चैतन्य रूप है, अद्वितीय एवं आनन्दमय है। ब्रह्माण्ड की समस्त चराचर वस्तुओं में नाद– शक्ति निहित है। नाद ही ब्रह्म है। लौकिक तथा परालौकिक दोनों ही सुख को प्रदान करने वाला यह नादतत्त्व ब्रह्म का प्रकट और अप्रकट रूप है जिसे सूक्ष्म और स्थूल रूप में भी जाना जा सकता है। संगीत की सत्ता तथा क्षमता स्वतः सिद्ध है। यह एक रसमयी, अनन्त भावनात्मक उपासना है जिस उपासना से मानव शरीर को एक अंतर्रूपी शक्ति मिलती है। प्राकृतिक जगत तथा मानव–जीवन में समान रूप से स्पन्दन द्वारा नाद की उत्पत्ति होती है, जो संगीत का मूलाधार है। संगीत का उद्देश्य मानव वृत्तियों को शान्त, तृप्त तथा उन्नत करना और विश्व–कल्याण की भावना उत्पन्न करना है–

महर्षि पतंजलि ने योग के विषय में कहा है– **"योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः"।**

संगीत एवं योग दोनों ही विधाएँ भारतीय संस्कृति की अनमोल निधि हैं जिसे हजारों वर्षों से भारतीय विद्वानों, ऋषि–मुनियों, ने कठिन साधना एवं अनुसंधान द्वारा विकसित किया है। संगीत एवं योग दोनों ही मूलतः आध्यात्मिक विषय हैं। दोनों ही विषय आत्म–ज्ञान करा देने का सामर्थ्य रखते हैं जिससे भारतीय दर्शन के अन्तिम लक्ष्य मोक्ष को भी प्राप्त किया जा सकता है लेकिन जीवन में भौतिकवाद के अति होने के कारण हम प्रकृति की स्वाभाविक शरण से दूर हटते जा रहे हैं जिससे निश्चय ही इसका हमारे मानसिक व शारीरिक स्वास्थ्य पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ रहा है। स्वास्थ्य प्राणयुक्त शरीर की उस दिव्य अवस्था का नाम है जिसमें प्राणी अपने मूल स्वरूप में रहता है। स्वास्थ्य का अभिप्राय केवल यह नहीं है कि मानव किसी शारीरिक एवं मानसिक रोग कष्ट से पीड़ित न रहे, स्वास्थ्य शरीर, मन एवं आत्मा की पूर्ण क्रियाशीलता, संतुलन तथा सामंजस्य की स्थिति है। जब शरीर, मन और आत्मा तीनों सन्तुलन की अवस्था में होते हैं, एक ही सुर, ताल व लय में होते हैं तो जीवन एक तरह से मानसिक व शारीरिक रूप से पूर्ण संतुलित होता है अर्थात् जीवन में स्वास्थ्य–रुपी संगीत बजने लगता है और जीवन जीने के एक अलग ही रंग का आनन्द प्राप्त होने लगता है और शरीर की रोग प्रतिरोधात्मक क्षमता बढ़ जाती है, इस कारण जब इस तरह की स्थिति में हमारा शरीर व मन होता है तो कोई भी आंतरिक व बाह्य रोग कोई भी बुरा प्रभाव नहीं डालता है।

संगीत कला, चाहे वह गायन हो या वादन, उसमें कलाकार को अक्सर घंटों एक ही मुद्रा में बैठना पड़ता है। इससे शरीर को कष्ट हो सकता है, व्याधि भी हो सकती है। इससे बचने के लिए शरीर, मन और मस्तिष्क पूर्ण स्वस्थ्य होना चाहिए। यहाँ भी योग बेहद कारगर सिद्ध होता है। योग–शास्त्र में संगीत साधकों के लिए निम्नलिखित आसन व क्रियाएँ बताई गई हैं, जिन्हें अपने चिकित्सक तथा योग विशेषज्ञ की सलाह से करना चाहिएः

शरीर संचालन
ध्यान प्रार्थना आसन
योग मुद्रा
भुजंग आसन
सर्पासन
मक्रासन
कमर, पेट व पीठ हेतु सरल क्रियाएँ
पवन मुक्तासन
ताड़ासन

पश्चिमोत्तासन

शशांक आसन

सिंह आसन

प्राणायाम

ध्यान

शवासन

योग निद्रा

**निष्कर्ष** : विभिन्न वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि संगीत व योग साधना दोनों से ही मनुष्य की जीवन–शक्ति का विकास होता है तथा वह एक निरोगी काया लेकर अपने जीवन को जीता है । अतः कह सकते हैं कि आत्म–साक्षात्कार हेतु प्रयासरत साधकों के लिए योग व संगीत वरदान स्वरूप है।

**सन्दर्भ सूची :**

1. शास्त्री, ईना, संगीत एवं योग का वैज्ञानिक स्वरुप, नवजीवन पब्लिकेशन्स, 2017
2. खन्ना, जतिंद्र सिंह, नाद और संगीत, अभिषेक पब्लिकेशन्स, चंडीगढ़, 1996
3. शर्मा, प्रमिला, योगः रोग से आरोग्य तक, पिंक सिटी पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2003
4. डॉ० पन्नालाल, संगीत शास्त्र विज्ञान, अभिषेक पब्लिकेशन्स, चंडीगढ़, 1991
5. पिचर्स, ईवलिन, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, 1983
6. चक्रवर्ती श्री, चिकित्सा के अद्भुत आयाम, शिप्रा पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2003
7. चक्रवर्ती, डॉ० कविता, भारतीय संगीत की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि, साईटिफ पब्लिशर्स, जोधपुर, 1994

# बनारस घराना की पाँचवी पीढ़ी के महान तबला शिल्पी पं0 छोटेलाल मिश्र

**प्रो0 संगीता सिंह**** **जयप्रकाश शर्मा***

**सारांश**

*काशी का पौराणिक और धार्मिक महत्व होने के साथ–साथ यहां का संगीत भी विश्वविख्यात है। यूं तो गायन, वादन तथा नृत्य की त्रिवेणी काशी में प्रवाहित है परंतु तबला का विशेष महत्व है और तबला का बनारस घराना आज सर्वत्र प्रतिष्ठा पा रहा है। उपयुक्त संदर्भ में बनारस घराना के संस्थापक पं. राम सहाय जी (1780–1826) तबला के इतिहास पुरूष से जिन्होंने सर्वप्रथम अपने पांच शिष्यों को पांच स्तम्भ के रूप में स्थापित किया। कालान्तर में शिष्य–प्रशिष्यों की विभिन्न शाखाएँ विकसित हुईं। जिन्होंने बनारस घराना को विशेष आयाम दिया। पं. राम सहाय जी के एक प्रमुख शिष्य भगत जी थे जिन्हें तबला–जगत का कोषाध्यक्ष कहा जाता है। प्रस्तुत शोध–पत्र बनारस घराना के उद्गम तथा पं. भगत जी की परम्परा पर केन्द्रित है जिसमें उपयुक्त परम्परा से सम्बन्धित बनारस घराना की पांचवी पीढ़ी के महान तबला विद्वान कालाकार पं. छोटेलाल मिश्र के वादन, व्यक्तित्व और कृतित्व पर विशेष रूप से प्रकाश डाला गया है।*

**सूचक शब्द**– *काशी, बनारस घराना, तबला, परम्परा, सहजता, सफाई*

**शोध प्रविधि**– *शोध पत्र में प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों स्रोतों से सामग्री संकलित की गई है।*

यह सर्वविदित है कि काशी विश्व की प्राचीनतम नगरी है। भारत को जीवनदायिनी, मोक्षदायिनी माँ गंगा के बाऐं किनारे अर्द्ध चन्द्रकार रूप में अवस्थित काशी भारत की सांस्कृतिक एवं धार्मिक नगरी के रूप में विश्वविख्यात है जो आदिकाल से ही भारतीय दर्शन, सभ्यता संस्कृति, संगीत कला आदि का विश्व का प्रतिनिधित्व करती है। इसकी प्राचीनता की तुलना विश्व के अन्य प्राचीनतम नगर जेरूसलम, एथेंस और पीकिंग से की जा सकती है।

काशी एक आध्यात्मिक नगरी के रूप में सुविख्यात है। अतएव इस मतानुसार काशी शिव के त्रिशूल पर टीका हुआ है। यदि त्रिशूल के तीनों धारियों को सत, रज, तम के आधार पर धार्मिक विचार से विभक्त करें तो सांगीतिक दृष्टि से हम गायन, वादन और नृत्य को शिव के त्रिशूल से सम्बन्धित करते हुए शिव को संगीतोत्पत्ति का कारक मान सकते है। यूँ तो काशी में सभी विद्या, कला और साधना का प्रसार रहा है परन्तु संगीत यहाँ विशेष रूप से पुष्पित व पल्लवित होता हुआ जान पड़ता है। लोक में काशी का प्रचलित नाम बनारस है जिस शब्द मात्र से इसके शाब्दिक अर्थ की अभिव्यक्ति होती है। 'पदम्विभूषण' से सम्मानित प्रसिद्ध गायक छन्नूलाल मिश्र के अनुसार यहाँ बना हुआ रस है जो कभी खत्म नहीं होता इसलिए इसे बनारस कहते हैं। बनारस में संगीत की अनेक विधाएँ जैसे– ध्रुपद, धमार, ख्याल, ठुमरी, दादरा के साथ ही लोक शैली से जुड़े हुए गीत प्रकार होली, चैती, कजरी आदि भी विशेष श्रृंगारिकता के साथ प्रस्तुत किये जाते हैं। गायन के क्षेत्र में बनारस में बड़े पं. रामदास जी, पं. छोटे रामदास जी, पं. हरिशंकर मिश्र, पं. राजन–साजन मिश्र तथा नृत्य के क्षेत्र में पं. गोपी किशन, चौबे महाराज, पाँडे महाराज एवं विदुषी सितारा देवी का नाम विशेष आदर व सम्मानपूर्वक लिया जाता है, बनारस का तबला तो सर्वविदित ही है, पं. कंठे महाराज, बीरू जी, पं. अनोखेलाल मिश्र, गुदई महाराज, किशन महाराज आदि विश्वविख्यात हैं।

चूँकि बनारस में ध्रुपद, धमार आदि गम्भीर प्रकृति के गायन के साथ ही ठुमरी, दादरा आदि चंचल श्रृंगारिक गीत प्रकारों का भी प्रचलन पूर्व से ही रहा है। इसलिए बनारस घराना की स्थापना से पूर्व यहाँ अवनद्ध वाद्य के रूप में पखावज के साथ–साथ तबला का भी प्रचलन अवश्य रहा होगा क्योंकि ठुमरी, दादरा आदि शैलियों की

*शोध छात्र, वाद्य विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

**शोध निर्देशिका, वाद्य विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

संगति पखावज जैसे गम्भीर वाद्य से संभव नहीं है। बनारस में तबला का इतिहास पं. राम सहाय मिश्र जी (सन् 1830–सन् 1886 ई.) के काल से माना जाता है क्योंकि उसी समय से तबला का बनारस घराना अस्तित्व में आया। पं. राम सहाय जी के परिवार में नृत्य की परंपरा थी, अतएव बाल्यकाल से ही वह नृत्य सीखते थे परन्तु प्रारम्भ से ही वे लखनऊ के उस्ताद मोंदू खाँ के तबला वादन से विशेष रूप से प्रभावित थे। नृत्य की प्रारंभिक शिक्षा के पश्चात् आगे की शिक्षा प्राप्त करने के लिए पं. राम सहाय जी अपने चाचा के साथ लखनऊ आ गये और यहाँ उनकी भेंट लखनऊ के नवाब आसुफुद्दौला के दरबारी संगीतज्ञ तबला वादक उस्ताद मोंदू खाँ (पौत्र– सिद्धार खाँ दाढ़ी) से हुई। मोंदू खाँ ख्यातिलब्ध कलाकार थे और राम सहाय जी उनके तबला–वादन से पहले से ही प्रभावित थे। अतएव यह एक सुखद संयोग था कि जिसने बनारस घराने के इतिहास को जन्म दिया। चूँकि मोंदू खाँ एकमात्र युवा और प्रतिभाशाली पुत्र जाहिर खाँ को कुछ समय पूर्व खो चुके थे, अतएव रामसहाय जी को एक गुरुभक्त, परिश्रमी, एकाग्र एवं कुशाग्र बुद्धि के शिष्य के रूप में पाकर अत्यंत प्रसन्न हुए और पुत्र–संताप धीरे–धीरे समाप्त होता गया। शिक्षा का यह क्रम अनवरत बारह वर्षों तक चला, कालान्तर में पं. राम सहाय जी द्वारा बनारस घराने की नींव पड़ी। बनारस घराने का सृजन करते हुए पण्डित रामसहाय जी ने यह घोषणा की थी कि ''इस बाज को बजाने वाला ध्रुपद, धमार, ख्याल, टप्पा, ठुमरी, नृत्य, सितार आदि सबके साथ उत्तमता से संगति करने के अतिरिक्त स्वतंत्र वादन करके भी यश का भागी बनेगा।''[1]

घराने की स्थापना की नींव हेतु पण्डित रामसहाय जी ने सर्वप्रथम पाँच शिष्यों को सिखाया जो इस घराने के पाँच प्रमुख स्तम्भ के रूप में स्थापित हुए। तदुपरान्त बनारस घराने के विशाल वटवृक्ष की विभिन्न शाखाओं का प्रादुर्भाव हुआ। ये पाँच शिष्य बैजनाथ जी, रामशरण जी, यदुनन्दन जी, भगत जी और प्रतप्पु जी। ''उनके चौथे शिष्य भगत जी तबले के प्रकाण्ड पंडित थे। उनको तबले का कोषाध्यक्ष कहा जाता था क्योंकि उनके पास तबला के बोल–बन्दिशों का अक्षय भण्डार था। कहते है कि राम सहाय जी की शिष्य–परम्परा में उनको जितनी चीजें याद थीं उतनी दूसरे किसी को नहीं थी।''[2] भगत जी के शिष्य पं. भैरव प्रसाद मिश्र जी हुए जिनका बाज शुद्ध बनारसी व मर्दाना था। चौड़े मुखवाले उस समय के तबले व बाँऐ पर जब आप शहजोर हाथों से थाप 'ता' या 'धा' लगाते थे तो सुनने वाले के हृदय में एक दहल पैदा हो जाती थी। इसके विपरीत आपकी तिरकिट, धिरधिर से ऐसा प्रतीत होता था जैसे मोती बिखेरे जा रहे हों। तबला के अतिरिक्त आप ध्रुपद, धमार, ख्याल, होली आदि गायन शैलियों के गायक भी थे। बनारस घराने की सैकड़ों बन्दिशें आपको कंठस्थ थीं। इसके साथ ही आप गत, फर्द के विशेषज्ञ कहे जाते थे। ''बनारस घराने में पंजे से धिरधिर के वादन के प्रचलन का श्रेय आपको ही जाता है।''[3] पं. भैरव प्रसाद मिश्र जी की शिष्य–परम्परा में एक ज्वलन्त नाम बहुत तेजी से उभरा जिन्होंने अत्यल्प आयु में ही अपने धिरधिर तथा ना धिं धिं धा के बोलों से सबको चमत्कृत कर दिया। पं. अनोखेलाल मिश्र जी तबले के छोटे, बड़े, सरल, कठिन आदि सभी प्रकार के बंदिशों पर समान रूप से अधिकार रखते थे। इसी कड़ी में पं. अनोखेलाल मिश्र जी के प्रमुख शिष्य पं. छोटेलाल मिश्र जी का नाम बहुत आदरपूर्वक लिया जाता है। प्रस्तुत लेख पं. छोटेलाल मिश्र पर केन्द्रित है।

पं. छोटेलाल मिश्र जी संगीत जगत के ऐसे दिव्य ज्योति थे जिनके समक्ष कलाकारों और श्रोताओं का मस्तक श्रद्धाभाव से झुक जाता था। उत्कृष्ट और संवेदनशील तबला–वादन के साथ–साथ आपका व्यक्तित्व भी अत्यंत सौम्य तथा सशक्त था। बनारस घराने के अप्रतिम तबला विद्वान, कलाकार, चिन्तक एवं गुरु पं. छोटेलाल मिश्र जी का जन्म 12 अप्रैल 1940 को कोलकाता के एक बंगाली चटर्जी परिवार में हुआ। आपके जीवन का प्रारंभिक छः साल अत्यंत कठिनाईयों से भरा रहा। आजादी सन् 1947 से कुछ वर्ष पूर्व का काल देश के लिए अत्यंत अशान्ति और दुर्भाग्यपूर्ण था। इसी समय आप अपने माता–पिता दोनों से वंचित हो गए। जब आपने आंशिक होश सम्भाला तब काशी के प्रसिद्ध सारंगी वादक पं. मुरली प्रसाद मिश्र (जो आपके पिता जी के मित्र थे) आपका लालन–पालन कर रहे थे। आपके बाल्यावस्था से ही मुरली जी से सारंगी और पं. अनोखेलाल मिश्र जी से तबला की शिक्षा प्रारंभ हो गई थी। परन्तु 6 वर्ष की उम्र में मुरली जी के असामयिक देहान्त के पश्चात् आपको पं. अनोखेलाल मिश्र जी ने पुत्रवत् स्नेह और संरक्षण दिया तबसे आप पं. अनोखेलाल मिश्र जी के घर में रहने लगे और गुरु के आदेशानुसार आपने केवल तबला वाद्य को अपने साधना के रूप में स्वीकार किया। भगवत्तस्वरूप गुरु का सानिध्य पाकर छोटेलाल मिश्र की

संस्कारित साधना निरन्तर बढ़ती गई जो मात्र 18 वर्ष तक पहुँचते–पहुँचते सरसता और परिपक्वता से परिपूर्ण हो गई। 10 मार्च 1958 को पं. अनोखेलाल मिश्र जी का निधन हो गया परन्तु उतनी ही अल्प वर्षावधि में आपने अपने शिष्य के अन्दर ज्ञान और विद्या का ऐसा बीजारोपण कर दिया जो आगे चलकर वटवृक्ष का रूप धारण कर पं. छोटेलाल मिश्र के व्यक्तित्व में समाहित हो गया। आपके गुरु जी के निधन के पश्चात् 1958 में ही सर्वप्रथम आपने कोलकाता में उस्ताद बड़े गुलाम अली खाँ के गायन के साथ यादगार तबला संगत किया, फिर कार्यक्रमों का अनवरत सिलसिला प्रारंभ हो गया। कालान्तर में आपने राष्ट्रीय–अन्तर्राष्ट्रीय अनेक संगीत समारोहों में अपने तबला वादन की छाप छोड़ी। अपने समय के आप व्यस्तम कलाकार थे जिनका अधिकांश समय संगीत कार्यक्रम अथवा यात्रा में ही बीतता था। आप बहुमुखी प्रतिभा के धनी व्यक्ति थे। पं. छोटेलाल मिश्र के तबला वादन की सबसे बड़ी विशेषता थी बोलों की सफाई और माधुर्य। द्रुत लय में भी बोलों का निकास, वजन, दायें–बायें का संतुलन तथा बोलों का लहजा (Tonal Quality) सफाई की दृष्टि से ठाह लय की भाँति ही अनुभव होता था अर्थात् पं. जी का तबला–वादन सुनकर तथा देखकर कोई यह अनुमान नहीं कर पाता था कि बोल कितना कठिन है या कितनी तेज गति में बजाया जा रहा है। कठिन से कठिन बोल और लयकारी को बड़े ही सहज ढंग से मुस्कुराते हुए बिना किसी मुद्रा–दोष के पं. जी ऐसी कुशलतापूर्वक बजाते थे कि श्रोता और कलाकार दोनों चमत्कृत हो जाते थे। 1980 में संकटमोचन संगीत समारोह में पं. बुद्धादित्य मुखर्जी के साथ अति द्रुत गति से झाला बज रहा था और पं. छोटेलाल मिश्र जी का ना धिं धिं धा इतनी सफाई से शुद्धतापूर्वक मुद्रा दोष रहित भाव से बज रहा था कि श्रोताओं को यकीन ही नहीं हो रहा था। उन्हें लग रहा था जैसे कोई चमत्कार हो रहा हो। इसके अतिरिक्त जब आप गायन के साथ विलम्बित ठेका बजाते थे तो मालूम पड़ता था कि आप उसी के विशेषज्ञ है परन्तु मध्य लय, द्रुत लय अथवा अतिद्रुत लय में गायन, वादन हो तब भी आप उसी सुगमता और सहजता के साथ बजाते थे। अतएव आपके साथ जो कलाकार एक बार गाता बजाता था, वह बार–बार आप की ही अपेक्षा करता था। गायन के साथ आपका संगत बहुत ही संयमित और संतुलित होता था। तबला वादन में आप अनुशासन और अपनी परम्परा का विशेष रूप से ध्यान देते थे। आपके अनुसार गायन के साथ रेला आदि बजाना सर्वथा अनुचित है और यही बनारस घराने की प्राचीन परम्परा थी। तन्त्र वाद्य के साथ आप थोड़ा खुलकर बजाते थे परन्तु यह हमेशा ध्यान रखते थे कि मुख्य कलाकार वादक कभी गौण न हो।

तबला स्वतंत्र–वादन में आप अपनी गुरु परंपरा का विशेष रूप से ध्यान रखते थे। यद्यपि आप थोड़े आधुनिक विचार भी रखते थे। चूँकि आपको पेशकारा, विशेष रूप से पसन्द था अतएव आपका तबला स्वतंत्र वादन प्रायः पेशकारे से ही प्रारंभ होता था। परन्तु उठान से प्रारंभ से की जाने वाली भी कुछ रिकॉर्डिंग उपलब्ध है अर्थात् आप उठान के साथ–साथ पेशकारा पर भी समान रूप से अधिकार रखते थे। पेशकारा बजाने का आपका अपना ढंग था जो दिल्ली घराना से प्रभावित दिखता है परन्तु बोलों का वृहद् विस्तार ठहराव आपकी व्यक्तिगत कल्पना और सूझ–बूझ को दर्शाता है। इसके पश्चात् कायदा, बाँट, रेला, गत, फर्द, चक्करदार आदि रचनाओं का आप क्रमानुसार बहुत ही व्यवस्थित ढंग से वादन करते थे। प्रस्तारशील रचनाओं की बढ़त आप बहुत क्रमिक ढंग से करते थे जिससे तबला स्वतंत्र वादन में समय ठहर–सा जाता था। बनारस घराने के अतिरिक्त आप अन्य घरानों को समादर की दृष्टि से देखते थे। आपकी दृष्टि में कोई बोल या घराना छोटा नहीं होता। अतएव आप अपने स्वतंत्र–वादन में बनारस के अतिरिक्त दिल्ली, अजराड़ा, लखनऊ और फर्रूखाबाद की भी रचनाओं को सम्मानपूर्वक उसी अन्दाज और पकड़ के साथ बजाते थे। यह घराने की रूढ़ता के सापेक्ष आपकी व्यापक सोच का घोतक है। पं0 छोटेलाल मिश्र जी ने देश के अनेक शीर्षस्थ कलाकारों के साथ तबला संगति की जिनमें कुछ प्रमुख नाम इस प्रकार हैं–

**गायन के क्षेत्र में –**

उस्ताद बड़े गुलाम अली खाँ, उस्तार निसार हुसैन खाँ, मल्लिकार्जुन मंसूर, उस्ताद सलामत अली खाँ, पंडित बासवराज गुरु, विदुषी किशोरी अमोनकर, विदुषी गिरिजा देवी, लक्ष्मी शंकर निर्मला देवी, पंडित जसराज, पंडित सी आर. व्यास, उस्ताद नासिर अहमद खाँ, प्रो. एम. आर गौतम, पंडित रामचतुर मलिक, पंडित सियाराम तिवारी, पंडित बलवन्तराय भट्ट, पंडित राजन–साजन मिश्र इत्यादि।

**तन्त्र–वादन के क्षेत्र में–**

प्रो. राधिका मोहन मोइत्रा, पंडित रविशंकर, उस्ताद हलीम जाफर खाँ, प्रो. वी. जी. जोग, डॉ. लालमणि मिश्र, पण्डित एम. एस गोपालकृष्णन, डॉ. एन राजम, पण्डित बुद्धदेव दास गुप्ता, उस्ताद शाहिद परवेज, पण्डित बुद्धदित्य मुखर्जी, पण्डित विश्वमोहन भट्ट इत्यादि।

**सुषिर वादन के क्षेत्र में–**

उस्ताद बिस्मिल्ला खाँ, पण्डित हरिप्रसाद चौरसिया इत्यादि।

आप हिन्दुस्तानी संगीत के साथ–साथ कर्नाटक संगीत की अच्छी समझ रखते थे। आपने प्रो. टी. वी. गोपालकृष्णन, पण्डित उपायलपुरम, वी. के. शिवरमन, पं. गुरुवर देरिई आदि मूर्धन्य मृदंगम विद्वान के साथ–साथ प्रभावशाली युगलबन्दी भी किया था।

संगीत की क्रियात्मकता के अतिरिक्त शास्त्र विषय पर भी पण्डित जी का अपना चिन्तन था। तबला की जितनी भी रचनाएँ हैं उन सबके विषय में पण्डित जी ने सोचा, मनन किया, मंथन किया। अपने प्रतिभाशाली शिष्यों को बताया और अनेक ग्रंथों के रूप में लिपिबद्ध किया। आपकी लिखी हुई पुस्तकें तबला ग्रन्थ, ताल प्रबन्ध, ताल प्रसून तथा The Playing Technique of Banaras Gharana आपकी वैचारिक समग्रता को स्पष्ट करता है। भारत के अतिरिक्त विदेशों में भी शिक्षा और कला के क्षेत्र में आपके योगदान से संगीत प्रेमी लाभान्वित होते रहे हैं। सन् 1978 में अमेरिका के पेंसिलवानिया विश्वविद्यालय के विजिटिंग प्रोफेसर रहे। उसी वर्ष आपने रविशंकर म्यूजिक सर्किल, उस्ताद अली अकबर खाँ संगीत महाविद्यालय कैलिफोर्निया, प्रिसंटन विश्वविद्यालय डेनमार्क स्वीडन तथा नार्वे में अपना कार्यक्रम प्रस्तुत किया। तत्पश्चात् आपने कई बार विदेश की सांगीतिक यात्रा की जिसमें अमेरिका में एशिया हाउस (न्यूयार्क), बेसिलियम विश्वविद्यालय (यू.एस.ए.), शिकागों सेन फ्रांसिस्कों सोनोमा स्टेट विश्वविद्यालय (कैलिफोर्निया), बॉस्टन, फिलाडेलिफिया, लन्दन, पेरिस, नीदरलैण्ड, जर्मनी, जापान, स्विट्जरलैण्ड, डेनमार्क, हॉलैण्ड, कनाडा, स्वीडन, नार्वे और जापान आदि प्रमुख है। वर्ष 1987 में संगीत के क्षेत्र में विशिष्ट योगदान के लिए एशिया इण्टरनेशनल के WHO and WHO में इनका नाम प्रकाशित हुआ।

आपको अनेकानेक मान–सम्मान, सुरभित सुमन एवं विभिन्न उपाधियों से सम्मानित किया जा चुका है। जैसे– संगीत श्री, तबला महर्षि, नाद सम्राट, प्रख्यात तबला वादक, अखिल भारतीय कला रत्न, WHO and WHO (संगीत नाटक अकादमी, नई दिल्ली), नवरस संगीत वाचस्पति, अवार्ड डि. लिट्, सीनियर नेशनल फेलो अवार्ड (संस्कृति विभाग भारत सरकार), पंडित विक्कू महाराज संगीत सम्मान (Life time Achievement Award), लिजेंण्ड्री तबला मैस्ट्रो, पंडित छोटेलाल मिश्र अभिनन्दन समारोह (अखिल भारतीय संगीत समारोह) इत्यादि। पंडित मिश्र जी की जीवनी विभिन्न पुस्तकों एवं पाठ्यक्रमों में विद्यमान है। इनकी तबला संगति व स्वतंत्र वादन की LP, EP, कैसेट, CD एवं VCD भी देश–विदेश में उपलब्ध हैं।

आपने वाद्य विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी में सन् 1972 में संगतकर्ता के पद पर नियुक्त होकर अपनी सेवा दी। तत्पश्चात् 1989 में इसी संकाय में तबला के प्राध्यापक नियुक्त हुए तथा 1997 में आप रीडर (एसोसिएट प्रोफेसर) के पद पर प्रोन्नत हुए। आपके सद्प्रयासों से आपने छात्रहित में तबला पाठ्यक्रम का विस्तार कर संगीत एवं मंच कला संकाय में तबला विषय में परास्नातक तथा पीएच.डी. तक की शिक्षा उपलब्ध करवाई। आपके प्रथम शोधार्थी प्रेमनारायण सिंह ने 'ना धिं धिं धा के जादूगर पं. अनोखेलाल मिश्र' विषय पर शोधकार्य सम्पन्न किया। सहृदय आकर्षक एवं प्रभावशाली व्यक्तित्व के धनी, सौम्य, सबका भला करने वाले शांत स्वभाव के पं. छोटेलाल मिश्र जी बनारस घराने के तबले के इतिहास के प्रथम तबला शिल्पी हैं जिनके वादन, चिंतन, लेखन एवं शिक्षण में विनम्रता कूट–कूट कर भरी हुई है। एकान्त साधक तथा काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि से दूर वैरागी महापुरुष पं. छोटेलाल मिश्र 15 अक्टूबर 2013 को इस नश्वर शरीर को सदा के लिए त्याग कर बह्मलीन हो गए। देश–विदेश में आपके शिष्यों की विशाल श्रृंखला है जो अपनी–अपनी क्षमता और योग्यता से संगीत जगत की सेवा कर रहे हैं। काशी में आपके प्रिय शिष्य डॉ. रजनीश तिवारी संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में कार्यरत रहते हुए आपकी बतलायी गई शिक्षा का अनुसरण करते हुए संकाय की सेवा करने के साथ–साथ अनेक शिष्यों में भी आपके द्वारा प्रदत्त ज्ञान और विद्या का प्रसार कर रहे हैं। आप में अपने गुरु की शिक्षा का सम्पूर्ण प्रभाव दिखता है।

**सन्दर्भ सूची :**

1. गर्ग, लक्ष्मीनारायण, हमारे संगीत रत्न, (प्रथम भाग), (उ.प्र. शासन द्वारा पुरस्कृत), संगीत कार्यालय, हाथरस (उ.प्र.), द्वितीय संस्करण जनवरी 1969, पृ.सं. 623
2. मिस्त्री, डॉ. आबान ई., जिजिना, पं. केकी. एस., पखावज और तबला के घराने एवं परम्परायें (पखावज और तबला के घरानों एवं परम्पराओं के उद्भव विकास तथा वादन शैलियों का शोधपूर्ण विवेचन), स्वर साधना समिति मुम्बई 2000, पूर्णतः संशोधित द्वितीय संस्करण, पृ.सं. 164
3. वही, पृ. 165
4. कुमार, डॉ. अजय, बनारस घराने के प्रवर्तक पं. रामसहाय जी की तबला वादन परम्परा, कनिष्क पब्लिशर्स डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली–110002, प्रथम संस्करण 2011
5. साक्षात्कार–डॉ. रजनीश तिवारी (तबला संगतकार), वाद्य विभाग, संगीत एवं मंच कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

# उस्ताद अकील अहमद खाँ : व्यक्तित्व तथा कृतित्व

**प्रो. सुधा सहगल****

**राहुल निवेरिया***

**सार**

*हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत में आगरा घराना जितना अपनी गायन की बृहद् शैली के लिये जाना जाता है, उतना ही कलाकारों द्वारा प्रयुक्त गायन–तकनीक के लिये भी जाना जाता है। आगरा घराना ने अनेक महान विद्वान कलाकारों को जन्म दिया है, जिसमें आगरा घराना के उस्ताद अकील अहमद खाँ का नाम उत्कृष्ट स्थान रखता है। यह शोध–पत्र उस्ताद अकील अहमद खाँ के व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डालता है। इस शोध–पत्र में व्यक्तित्व के रूप में उनके बाह्य एवं आन्तरिक व्यक्तित्व को उजागर किया गया है तथा कृतित्व में उनका सांगीतिक योगदान, उनकी सांगीतिक रचनाएँ, उनकी उपलब्धियाँ, सम्मान एवं शिष्य वर्ग को उजागर किया गया है। यद्यपि वर्तमान में उ0 अकील अहमद खाँ हमारे बीच नहीं हैं किन्तु उनके द्वारा किये गये सांगीतिक एवं साहित्यिक रचनात्मक कार्य अनेक संगीत मर्मज्ञों, रसिकों, विद्यार्थियों व शोधार्थियों को आज भी लाभान्वित कर रहा है।*

**शब्द सूचक** : *संगीत, गायन, घराना, रचना, व्यक्तित्व, कृतित्व*

**क्रियाविधि** :– *प्रस्तुत शोध–पत्र हेतु शोधार्थी द्वारा व्याख्यात्मक शोध–प्रविधि का प्रयोग किया गया है, जिसमें विभिन्न श्रोतों तथा साक्षात्कारों से सांगीतिक सामग्री प्राप्त की गयी है।*

**भूमिका** :– हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत में घरानों की परम्परा बहुत ही पुराने समय से चली आ रही है। फिर चाहे वह शास्त्रीय गायन हो, वादन हो या नृत्य हो, किसी भी प्रकार की सांगीतिक विधा हो, उस विधा के साथ उसके घराना का नाम अवश्य उसके साथ जुड़ता है। हर घराने की अपनी खासियत है जिसके प्रभाव से उस घराने को विशिष्ट घराने का ओहदा प्राप्त होता है। ऐसे ही एक घराने से सम्बन्ध रखने वाले महान कलाकार हैं उस्ताद अकील अहमद खाँ। उ0 अकील अहमद खाँ का सम्बन्ध भारतीय शास्त्रीय संगीत में उत्कृष्ट स्थान रखने वाले आगरा घराना से है। खाँ साहब का न सिर्फ आगरा घराने से सम्बन्ध रहा है, बल्कि आगरा घराना तो खाँ साहब के रग–रग में समाहित है। क्यूँकि आगरा घराने की नींव ही आपके पूर्वजों द्वारा रखी गयी थी, अतः सांगीतिक परिवेश ने स्वतः ही आपको अपनी गोद में स्थान दिया। इस शोध–पत्र में उस्ताद अकील अहमद खाँ साहब के जीवन के सांगीतिक पहलुओं पर प्रकाश डाला जा रहा है, जिसमें जन्म, उनका व्यक्तित्व, परिवारिक पृष्ठभूमि, रचनाएँ, उपलब्धियाँ तथा आगरा घराने में खाँ साहब के योगदान आदि का उल्लेख किया जा रहा है।

सरल व्यक्तित्व के धनी उस्ताद अकील अहमद खाँ का जन्म 20 नवम्बर 1933 को आगरा की नई बस्ती गली आशूर बेग में हुआ। जिस स्थान पर आपका जन्म हुआ वहीं आपके पूर्वज उस्ताद फैय्याज़ खाँ साहब जैसे महान कलाकार रियाज़ किया करते थे। खाँ साहब ने जहाँ संगीत की साधना की, खाँ साहब के अनुसार वह कोठी लगभग 200 साल पुरानी थी। उस्ताद अकील अहमद खाँ साहब ने अपना सम्पूर्ण जीवन आगरा घराने को और समृद्ध बनाने में अर्पित कर दिया।

**पारिवारिक परिचय** :– उस्ताद अकील अहमद खाँ साहब के पिता का नाम वसीर अहमद तथा माता का नाम अब्दुल हबीव उर्फ बेनी बेगम था। वसीर अहमद खाँ साहब के पाँच पुत्र तथा दो पुत्रियाँ थीं। आपके एक भाई शकील अहमद खाँ की मृत्यु असमय ही हो गयी थी। आपके एक भाई तथा एक बहन ने जीवनपर्यन्त शादी नहीं की ताकि वह अपने माता–पिता की सेवा में संलग्न रह सके। आपके भाईयों में शब्बीर अहमद खाँ साहब एवं उस्ताद नसीम अहमद खाँ साहब ने भी संगीत के क्षेत्र में खूब नाम कमाया। खाँ साहब के सबसे छोटे भाई वसीम अहमद खाँ थे। आप चारों

*शोधार्थी, संगीत विभाग (गायन), दयालबाग एजूकेशनल इंस्टीट्यूट, दयालबाग, आगरा।

**शोध निदेशक, संगीत विभाग (गायन), दयालबाग एजूकेशनल इंस्टीट्यूट, दयालबाग, आगरा।

भाईयों में सिर्फ वसीम खाँ ही ऐसे थे, जो 'मौसिक़ी' से दूर रहे। बाकी के तीनों भाईयों ने संगीत में आगरा घराने को आगे बढ़ाने का काम बखूबी किया। शब्बीर अहमद खाँ साहब अकील अहमद खाँ साहब को ही अपना गुरू मानते थे। शब्बीर अहमद खाँ साहब अकील अहमद खाँ साहब से उम्र में भी दस वर्ष छोटे थे। अकील अहमद खाँ साहब के दादा मुहम्मद खाँ साहब भी आगरा घराने के एक उच्चकोटि के कलाकार थे। ऐसे सांगीतिक पृष्ठ पटल पर आपका पालन पोषण हुआ।

''खाँ साहब बताते थे कि आपके वालिद साहब उस्ताद वसीर अहमद खाँ साहब को उस्ताद फैय्याज खाँ साहब ने गोद ले लिया था। वैसे तो फैय्याज खाँ साहब आपके वालिद साहब के रिश्ते में मामा लगते थे। खाँ साहब के अनुसार उ0 फैय्याज खाँ साहब तथा उनके बड़े भाई तस्सदुक खाँ साहब को कोई सन्तान न थी, अतः उन्होने अपनी बहन के बेटे गुलाम रसूल को गोद ले लिया किन्तु गायन के लिये उनका कंठ उतना सुरीला न होने की वजह से आपको हारमोनियम पर संगत की शिक्षा उ0 फैय्याज खाँ साहब ने प्रदान की। गुलाम रसूल उस्ताद फैय्याज खाँ साहब के साथ हारमोनियम पर संगत करते थे। इसके बाद फैय्याज खाँ साहब ने अकील अहमद खाँ साहब के वालिद को गोद लेकर उन्हें गायन की शिक्षा प्रदान की।''[1]

वालिद साहब की मृत्यु के पश्चात् खाँ साहब ने ही अपने परिवार की सारी ज़िम्मेदारियों का निर्वहन किया। आपने ही भाइयों तथा बहनों का पालन–पोषण, उनकी शिक्षा, विवाह आदि किया। उ0 अकील अहमद खाँ साहब का विवाह अतरौली के वसीर अहमद खाँ की पुत्री सुरमा बेगम के साथ सन् 1953 में सम्पन्न हुआ। खाँ साहब की ग्यारह सन्तानें हुयीं, जिनमें से कुछ का असमय ही देहान्त हो गया। वर्तमान में आपकी पाँच पुत्रियाँ तथा एक पुत्र हैं। पुत्र का नाम सुहेल खान तथा पुत्रियों में रुखसार, साविया, अजरा, फरज़ाना, पाकीज़ा हैं। वहीं आपके परिवार में एक पुत्रवधू तथा एक पौत्र मो. अयाज़ खान भी हैं। विचार करने योग्य बात यह है कि जिनका परिवेश संगीत वातावरण से परिपूर्ण था, फिर भी खाँ साहब की किसी भी सन्तान ने संगीत की शिक्षा ग्रहण नहीं की। खाँ साहब ने यूँ तो कई शिष्यों को तैयार किया किन्तु उनके खुद के ही परिवार ने संगीत को नहीं अपनाया। जिसका परिणाम यह हो सकता है कि आगरा जो एक वक्त संगीत का गढ़ था वर्तमान में कुछ ही लोग व संस्थाऐं हैं जो संगीत की शिक्षा का प्रसार करने का प्रयत्न कर रहे हैं। उ0 अकील अहमद खाँ साहब के भाई नसीम अहमद खाँ के सुपुत्र वसीम अहमद खाँ साहब आई.टी.सी. कोलकाता में वर्तमान में संगीत शिक्षक तथा कलाकार के रूप में आगरा घराने का नाम रौशन कर रहे हैं।

**सांगीतिक शिक्षा** :– संगीत की प्रारम्भिक शिक्षा तो आपके वालिद साहब उस्ताद वसीर अहमद खाँ साहब द्वारा ही आपको प्राप्त हुयी, उसके पश्चात् आप अपने बड़े दादा उ0 तस्सदुक खाँ साहब और उनके छोटे भाई उ0 फैय्याज़ खाँ साहब के पास बड़ौदा चले गये। जहाँ आपने दोनों से संगीत की गहराईयाँ व बारीकियाँ सीखी। वहीं रहकर कई बड़े कलाकारों को सुनने तथा उनसे संगीत की बारीकियाँ सीखने का भी अवसर खाँ साहब को प्राप्त हुआ। सोलह वर्षों तक फैय्याज़ खाँ साहब के पास रहकर सीखने के बाद आप वापस आ गये।

**कृतित्त्व** :– उस्ताद अकील अहमद खाँ साहब का कृतित्व आगरा घराने का पर्याय है। उन्होने संगीत के क्षेत्र में अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य किया। अनेक रागों में विभिन्न रचनाएँ तथा अप्रचलित रागों का प्रयोग कर उन्होने संगीत जगत में अपना बृहद योगदान दिया है। उनके कृतित्व निम्नवत हैं–

**सांगीतिक रचनाएँ** :– 'मोहन पिया' के नाम से उ0 अकील अहमद खाँ साहब ने अनेक रचनाएँ की हैं। खाँ साहब ने करीब दो सौ रचनाएँ की हैं जिनमें से लगभग 101 रचनाएँ कलकत्ता में रिकॉर्ड हैं। खाँ साहब की एक बहुत बड़ी खासियत यह थी कि वह कोई भी राग सिखा रहे हों तो उसी राग में उसी क्षण वो एक नई बन्दिश बना कर बच्चों को सिखा दिया करते थे। खाँ साहब ने अनेक रागों, जैसे – भैरव, गौरी, मारवा, पूरिया, तोड़ी, मालकौंस, आभोगी कान्हड़ा, नायकी कान्हड़ा, आसावरी, जौनपुरी, बिहाग, मुल्तानी, भैरवी, जोग, जोगकौंस, मधुकौंस, पूर्वी, बसन्त, केदार, तिलककामोद आदि में अनेक रचनाएँ की हैं। खाँ साहब की एक और खास बात यह थी कि वह एक अच्छे परफॉमर तो थे ही किन्तु जब वे कहीं अपना गायन प्रस्तुत करते थे, तब अधिकतर अप्रचलित रागों का ही गायन करते थे। खाँ साहब ने अनेक अप्रचलित रागों में भी बन्दिशों का निर्माण किया, जैसे– आनन्द भैरव, बागेश्री

बहार, बहादुरी तोड़ी, बरवा, चैता गौरी, आगरे का चन्द्रकौंस, गारा कान्हड़ा, हेमनट, हमीर बिलावल, हुसैनी तोड़ी, जैत, नट केदार, ललिता गौरी, मालती बसन्त, मीरा मल्हार, नट बिलावल, पंचम सोहिनी, पट बिहाग आदि कई अप्रचलित रागों में रचनाएँ की।

**मंच प्रदर्शन** :– खाँ साहब ने अपने जीवन–काल में कई बड़े–बड़े कार्यक्रमों में शिरकत की तथा अपनी कला का प्रदर्शन कर श्रोताओं की खूब वाह–वाही प्राप्त की। आप 9 वर्ष की आयु से ही मंच–प्रदर्शन करने लगे थे। सन् 1942 में सर्वप्रथम आगरा कॉलेज में हुई प्रतियोगिता में आपने गायन की प्रस्तुति दी जहाँ आपको गोल्ड मेडल प्राप्त हुआ। सन् 1990 ई0 में 'नटराज महोत्सव', सन् 1993 में आगरा 'रोटरी क्लब', सन् 1994 ई0 में 'भारतीय संगीतालय' आदि बड़े मंचों पर अपना प्रदर्शन प्रस्तुत कर श्रोताओं को मंत्रमुग्ध किया।

**कॉन्फ्रेंस** :– सर्वप्रथम 'तानसेन कान्फ्रेंस' जो लालगाँव में होती थी, यहाँ आपको तीन प्रोग्राम मिले और इसके बाद फिर चार बार आपको आमंत्रित किया गया। ''सन् 1943 ई. में 'महाराजा बड़ौदा जीवाजी राव गायकवाड़ म्यूजिक कॉन्फ्रेंस' में जब आप आए तो इसी वर्ष आपने हैदराबाद स्टेट में अपना कार्यक्रम प्रस्तुत किया। सन् 1945 ई. में 'बॉम्बे म्यूजिक कान्फ्रेंस' में भाग लिया।''[2] सन् 1947 ई. में आपने 'ऑल बंगाल म्यूजिक कान्फ्रेंस' में शिरकत की। सन् 1952 ई0 में 'म्यूजिक कॉन्फ्रेंस अलीगढ़' में शामिल हुए। सन् 1952 ई. में ही 'मेरठ नौचंदी कॉन्फ्रेंस' में भी कार्यक्रम दिया। 'कलकत्ता कॉन्फ्रेंस' उस वक्त की सबसे बड़ी कॉन्फ्रेंस हुआ करती थी, जहाँ 'पं0 विष्णु दिगम्बर पलुस्कर जी' ने भी अपना गायन प्रस्तुत किया, उसी मंच पर आपको भी गाने का अवसर प्राप्त हुआ।

**रेडियो, दूरदर्शन पर योगदान** :– सन् 1943 से 1947 तक 'बॉम्बे रेडियो' पर आपने अपनी गायकी का जादू बिखेरा तथा उसके पश्चात् सन् 1948 ई0 में 'नई दिल्ली रेडियो' में आपने काम किया। आप दूरदर्शन तथा ऑल इण्डिया रेडियो के कलाकार थे। आपने लखनऊ, बॉम्बे, हैदराबाद, कलकत्ता, दिल्ली, आगरा तथा रामपुर आदि रेडियो अथवा दूरदर्शन पर अपने कई कार्यक्रम दिये, जहाँ आज भी आपकी कई रिकॉर्डिंग सहेज कर रखी गई हैं।

**फिल्म जगत में योगदान** :– उ0 अकील अहमद खाँ साहब सन् 1944–1947 तक बम्बई में रहे। जहाँ आपने कई फिल्मों में अपनी आवाज़ का जादू बिखेरा। आपकी चार फिल्मों का संगीत बहुत हिट रहा, जिसमें आपने बड़े–बड़े गायक व संगीतकारों के साथ काम किया, जिसमें मुहम्मद रफ़ी, चितलकर, खान मस्ताना तथा अहमद हुसैन जैसे गायक कलाकारों का नाम उल्लेखनीय है। 'समाधि' फिल्म का गाना 'ओ गोरे–गोरे, ओ बाँके छोरे' तथा शहीद फिल्म का गाना 'वतन की राह में', लैला मंजनू फिल्म का गीत 'जा रहा है एक कारवाँ' खूब मशहूर हुये। सन् 1947 में भारत–पाकिस्तान बँटवारे के समय आपको आपके पिता आगरा वापस ले आये।

**सांगीतिक सम्मान** :– उस्ताद अकील अहमद खाँ साहब ने संगीत के क्षेत्र में आगरा घराने को खूब सम्मान दिलाया और कई उपलब्धियाँ हासिल की। आपने संगीत के क्षेत्र में नौ गोल्ड मेडल प्राप्त किए। सन् 1969 ई. में आपको देहरादून में 'भारतीय संगीत एकेडमी एवार्ड' से सम्मानित किया गया। सन् 1975 ई. में 'कानपुर अखिल भारतीय संगीत सम्मेलन' में आपने भाग लिया। सन् 1988 में खाँ साहब को हरिदास संगीत विद्यालय द्वारा 'गुरूजन सत्कार' सम्मान से नवाज़ा गया। सन् 1989 में 'अरदास गुरू' का सम्मान आपको प्राप्त हुआ, यह सम्मान संगीत कला केन्द्र द्वारा आपको प्रदान किया गया। सन् 1996 में स्मृति संगीत समारोह में 'संगीत कल्प' तथा 'अभिनव पत्र', सन् 1999 में यादगार–ए–आगरा समिति ने 'आगरा शिरोमणि', सन् 2001 में उत्तर प्रदेश नाटक अकादमी सम्मान तथा नई दिल्ली में हुए मेमोरियल सोसाइटी द्वारा आयोजित सेमिनार एवं भारतीय इण्टरनेशनल केन्द्र द्वारा 'उस्ताद युनूस हुसैन खाँ' पुरस्कार से सम्मानित किया गया। सन् 2006 में आपको आगरा 'ताजमहोत्सव' तथा सन् 2007 में संगीत कार्यों के लिये 'श्रीमती अन्जुला माहौर' पुरूस्कार से भी सम्मानित किया गया।

**शिक्षण कार्य तथा शिष्य वर्ग** :– उस्ताद अकील अहमद खाँ जितने सरल और सहज हृदय के व्यक्ति थे, उतने ही योग्य शिक्षक भी थे। आपने अपने जीवन में कई शिक्षण संस्थानों अथवा कॉलेजों में शिक्षण–कार्य किया। आपने आगरा के 'किंग जॉय डिफेंस कॉलेज तथा इन्द्रभान गर्ल्स इण्टर कॉलेज में शिक्षण का कार्य किया। सन् 2005 और 2006 में आगरा के ललित कला संस्थान में प्रोफेसर पद को भी आप सुशोभित कर चुके हैं। आपने आगरा में रहकर कई

शिष्य तैयार किए, जो आज आपके दिए ज्ञान का प्रचार–प्रसार कर रहे हैं। आपकी शिष्यावली वैसे तो बहुत विस्तृत है किन्तु यहाँ प्रमुख शिष्यों के ही नाम उल्लेखित हैं, जैसे– प्रो. सुधा सहगल, प्रो. प्रेम कुमारी दास, प्रो. नीलम, डॉ. शशि तिवारी, डॉ. अमिता त्रिपाठी, वर्णाली घोष, रूबी मलिक, सुधीर नरायण, सोकत हुसैन, डॉ. एच.पी. सिंह, हीरा सिंह, गोपी चंद केशवानी आदि।

आपने कुछ पुस्तकें भी लिखी हैं किन्तु वह किसी कारणवश प्रकाशित नहीं हो सकी। भविष्य में आपके कृत–कृत्यों पर भी विशेष शोध कार्य हो सकता है जिससे आगरा घराने के इतिहास में तथा संगीत से सम्बन्धित शोधार्थी अथवा छात्रों के ज्ञान में वृद्धि हो सकेगी।

बड़े अफसोस की बात है कि जिस उस्ताद ने अपना सारा जीवन संगीत के लिये समर्पित कर दिया, ऐसे कलाकार को ऐसा कुछ न मिल सका, जिसके वे हक़दार थे। क्या यह एक कारण नहीं है कि आज उनके पुत्र या पुत्रियों में से किसी ने भी संगीत को अपनाना ज़रूरी नहीं समझा। इतनी मेहनत और तपस्या के बाद भी किसी कलाकार को सम्मान के तौर पर गुमनामी और ग़रीबी से भरी जिन्दगी मिले, तो यह अवश्य ही विचार योग्य है।

अकील अहमद खाँ को आगरा घराने का आखिरी उस्ताद भी कहा जाता है जिनका साक्षात्कार करने पहुँचे एक पत्रकार गिरीन्द्र नाथ झा ने अपने लेख में लिखा है कि खाँ साहब को जीवन के अन्तिम वक्त में अपने मेडल तक बेचने पड़ गये। उनके पड़ोसी तक उनका पता पत्रकार को नहीं बता पाये। उस्ताद अकील अहमद खाँ साहब के शब्दों में– 'यह ताजमहल का शहर है। यहाँ मुर्दों के मकबरे देखने पूरी दुनिया से लोग आते हैं और कलाकारों को कोई पूछता तक नहीं।'

**मृत्यु** :– संगीत से अन्तिम समय तक जुड़े रहने वाले खाँ साहब का मृत्यु से कुछ साल पहले दुर्घटना में कूल्हे की हड्डी टूट गयी। हड्डी जुड़ने पर भी ठीक से चलने में वे असमर्थ ही थे। ''फिर दिनों–दिन तबीयत खराब ही होती चली गयी और एक लम्बी बीमारी के पश्चात् 81 साल की उम्र में 14 जुलाई 2014 को आगरा घराने के अन्तिम उस्ताद, उस्ताद अकील अहमद खाँ साहब ने अन्तिम साँस ली। खाँ साहब का देहान्त कश्मीरी बाजार स्थित उनके आवास पर ही हुआ, जिन्हें 'बाद नमाज़ असर दरगाह अमीर अबुल कब्रिस्तान' में सुपुर्द–ए–खाक किया गया।''[3]

**कतिपय भावसुमन** :–

* वालिद साहब से अन्तिम बातचीत सोमवार को हुई थी। वे कुछ कहना चाहते थे। सभी को खुदा हाफिज कहा और अन्तिम साँस ली। – पुत्र सुहेल खान जी

* मैं उनके घर के पास ही रहता था। मुझे खाँ साहब की शागिर्दी मिली। उनके साथ कई रिकॉर्डिंग में उनके साथ गया। उनकी मृत्यु से आहत हुआ।

– श्री गोपी चंद शागिर्द जी

* मैं बहुत कम समय के लिये ही सही किन्तु खाँ साहब से सीखने का अवसर मिला। मैं उनके भाई नसीम अहमद खाँ का शागिर्द रहा। उनके जाने से जो क्षति संगीत की दुनिया को हुई, वह अपूर्णनीय है।

– श्री सुधीर नारायण जी

* गुरू जी से बहुत कुछ सीखने को मिला। वो मुझे भी अपनी पुत्री ही मानते थे। निशानी के तौर पर उनका एक दुशाला मेरे पास है। भविष्य में उनके कार्यों को सबके सामने प्रकाश में लाने का प्रयास अवश्य करूँगी। यही सच्ची श्रद्धांजली होगी।

–प्रो. सुधा सहगल

**निष्कर्ष** :– उस्ताद अकील अहमद खाँ साहब का व्यक्तित्व और कृतित्व दोनों बहुत महान थे। सरल स्वभाव और हमेशा संगीत में ही लीन रहने वाले महान कलाकार उस्ताद अकील अहमद खाँ साहब के कार्य सदैव ही आने वाली पीढ़ी व कलाकारों का मार्गदर्शन अवश्य करेंगे।

**पाद टिप्पणी** :

1. www.samypatrika.com 3, पृष्ठ सं0–5
2. www.news18.com
3. www.amarujala.com 2, पृष्ठ सं0–3

**सन्दर्भ सूची** :

**पुस्तकें**

1. महाले, पं0 यशवन्त बुवा, आग्रा घराना–परम्परा एवं बन्दिशें, प्रकाशन – संस्कार, 2000
2. मेहता, रमण लाल, आगरा घराना परम्परा गायकी और बन्दिशें, प्रकाशन – भारतीय संगीत नृत्य – नाट्य, बड़ौदा, 1969

3. हल्दनकर, पं0 श्रीकृष्ण बबनराव, मिलनोत्सुक दो तानपूरा, प्रकाशन – विद्यानिधि दिल्ली, 2001
4. नाग, दिपाली, उस्ताद फैयाज़ खान, प्रकाशन – आई0टी0सी0 संगीत रिसर्च अकादमी, कलकत्ता, 1985
5. शर्मा, प्रो0 स्वतन्त्र, अप्रचलित राग व ताल, प्रकाशन – हिन्दी बुक सेन्टर, 2011

**लघु शोध प्रबन्ध**

* बोस, वर्णाली, गायन के आगरा घराने का विश्लेषणात्मक अध्ययन, सन् 1993
* सत्संगी, अर्शा, आगरा घराने की ख्याल गायकी का अध्ययन– विशेषकर एकताल निबद्ध ख्याल के सन्दर्भ में, 2016

**शोध प्रबन्ध**

* कौशिक, सोनल, आगरा घराने की तराना गायन–शैली का विश्लेषणात्मक अध्ययन, दयालबाग़ एजुकेशनल इन्स्टीट्यूट, आगरा, 2013, पृष्ठ सं0–2

**साक्षात्कार**

* प्रो0 सुधा सहगल दिनांक – 18.12.2022
* पुत्र सुहेल खान, दिनांक – 09.12.2022
* श्री गोपी चंद शागिर्द, दिनांक – 09.12.2022
* गजल़ गायक श्री सुधीर नारायण, दिनांक – 14.12.2022

# स्वातंत्र्योत्तर मैथिली नाटकों का अधुनातन स्वरूप

**प्रो0 लावण्य कीर्ति सिंह 'काव्या'**** **अक्षय कुमार***

**सारांश**

*मैथिली नाट्य साहित्य का उत्थान–युग एक चौराहे पर खड़ा था। समस्या यह थी कि आखिर कौन–से मार्ग का अनुसरण किया जाय। एक ओर उन्मेष युग की अविरल धारा प्रवाहित थी तथा दूसरी ओर कतिपय साहित्य में नूतन वातावरण, नव परिवेश का प्रवेश हो रहा था। एक ओर संस्कृत–नाट्य परंपरा थी तो दूसरी ओर कीर्त्तनिआ नाट्य परंपरा। इसी उधेरबुन में मैथिली साहित्य जो दम तोड़ रही थी, जीवन झा ने उसका परिष्कार अत्यन्त ही सगुमतापूर्वक किया है।*

*वहीं स्वातंत्र्योत्तर आधुनिक मैथिली नाटकों के अधुनातन स्वरूप को संदर्भ को देखने के लिए इसे पाँच भागों में बाटाँ गया है–*

*(क) सामाजिक समस्यामूलक नाटक (ख) पौराणिक नाटक*

*(ग) ऐतिहासिक नाटक (घ) प्रतीक नाटक*

*(ङ) राजनीतिक नाटक*

*इन्ही पाँच नाटक की चर्चा शोध–पत्र में की गई है। इन पाँच प्रकार के नाटकों के गहन अवलोकन के पश्चात् यह पता चलता है कि स्वातंत्र्योत्तर मिथिलांचल का नाट्य साहित्य किसी भी विधा से पीछे नहीं है।*

**बीज शब्द** : *स्वातंत्र्योत्तर, नाट्य–परंपरा, कीर्त्तनिआ, बेरोजगारी, आधुनिकता।*

**शोध–प्रविधि** : *पुस्तकों के अध्ययन के बाद इस पत्र को तैयार कर प्रस्तुत किया गया है ।*

प्रत्येक युग का साहित्य अपने युग में आधुनिक होता है इसलिए उसकी आधुनिकता उस रचना में लिए श्रेष्ठता के रूप में परिगणित होती है। नाटक के प्रसंग में इस प्रकार की आधुनिकता कुछ ज्यादा सार्थक लगती है क्योंकि नाटक के स्वरूप में भिन्नता सुलभ एवं स्पष्ट होने लगती है। यहाँ यह कहना अतिशयोक्ति नहीं मानी जायेगी कि नाटक को जीवन से जोड़ने का प्रयत्न ही इसके नूतन स्वरूप को गढ़ने में मदद की है और यही आधुनिक नाटक के रूप में जाना जाता है। पंडित जीवन झा ने नाटक में संस्कृत प्रकृत भी अनिवार्यता को समाप्त करने के प्रसंग में कहा है :–

''देख पुरातन कवि जन लेख,
बूझिय कविता उक्ति विशेष।
मिथिला भाषा सरस विचाड़ि,
पर भाषा सम्मेलन छडि।
विरल यज्वा जीवन शर्म,
से जानथ सभी कविता मर्म
बुध सदस्य गुणग्राही भूप,
दृश्य सामवत कथानुरूप।''[1]

मैथिली नाट्य साहित्य के उत्थान युग में जीवन झा एक चौराहा पर खड़े थे और इन्हें समस्या थी कि आखिर कौन सा मार्ग का अनुसरण किया जाय। एक और उनमेष युग की अविरल धारा प्रवाहित थी तथा दूसरी ओर कतिपय साहित्य में नूतन वातावरण, नवपरिवेश का प्रवेश हो रहा था। एक ओर संस्कृत–नाट्यपंरपरा थी तो दूसरी कीर्त्तनियाँ नाट्यपरंपरा। इनकी नोवन्मेषशालिनी प्रतिभा के फलस्वरूप मैथिली साहित्य जो दम तोड़ रही थी उसका परिष्कार इन्होंने अत्यन्त हो सुगमतापूर्वक किया है। हिन्दी साहित्य के भारतेन्दु भी नाट्यपरंपरा में समयानुकूल परिवर्तन के आकांक्षी थे। उनका कहना था, ''अब नाटक में कहीं आशी– प्रकृति नाट्यालंकार, कहीं प्रकरी, कहीं विलोचन, कहीं पाँच संन्धि ऐसे अन्य विषयों की आवश्यकता नहीं रहीं।''[2]

आधुनिक मैथिली नाटकों के अधुनातन संदर्भ में

*शोध छात्र, विश्वविद्यालय संगीत एवं नाट्य विभाग, ल.ना.मि. विश्वविद्यालय, दरभंगा–846004
**शोध निर्देशिका, विश्वविद्यालय संगीत एवं नाट्य विभाग, ल.ना.मि. विश्वविद्यालय, दरभंगा–846004

देखने के लिए इसे पाँच भाषों में बाँटा जा सकता है :–

(क) सामाजिक समस्यामूलक नाटक, (ख) पौराणिक नाटक, (ग) ऐतिहासिक नाटक (घ) प्रतीक नाटक (ङ) राजनीतिक नाटक।

**(क) सामाजिक समस्या मूलक नाटक :–**

आधुनिक मैथिली रंगमंच को समृद्ध करने में सामाजिक समस्यामूलक नाटकों की उत्कृष्ट भूमिका रही है। नारी समस्या तथा उससे संबंधित बाल–विवाह तथा अनमेल विवाह आधुनिक नाटक का मुख्य विषय रहा है। पंडित गोविन्द झा रचित 'बसात' में पति द्वारा अपमानित पुष्पा आत्महत्या करने के लिए उद्यत होती है पंरतु बमबाबा के बचा लेने के पश्चात् उसमें आत्मश्विास जागृत होता है तब वह समाज को सचेष्ट करने का प्रयास रकते है। कथावस्तु की विशेषता है कि एकल भोक्ता का यथार्थ सार्वजनिक हो जाता है।

गुण्डागर्दी की समस्या पर आधारित नाटक तृप्ति नारायण द्वारा लिखा गया 'सम्पत' है।अरविद 'अक्कू' के आतंक में भी यही समस्या है। 'सम्पत' का विषय– संयोजन, भाषा–व्यवहार जितना ही कमजोर है, 'आंतक' का कथानक उतना ही सशक्त। आजादी के कई दशक बाद भी आर्थिक रूप से हम कितना स्वतंत्र, रक्षक किस प्रकार भक्षक बनकर शोषण करते हैं :–

यही वस्तु 'आतंक' में प्रतिपादित है। दहेज–प्रथा से रोगग्रस्त मिथिलांचल को देखकर लिखे गये नाटको में सीताराम चौधरी का 'सुखाएक डरिः','नव पल्लव', बाबू साहेब चौधरी का 'कुहेस', गुणनाथ झा का 'कनियाँ पुतरा', चौधरी यदुनाथ ठाकुर 'यादव' का 'दहेज', उत्तम लाल मंडल का 'इजोत' नाटक, सुधांशु चौधरी का 'लेटाइत आँचर' आदि। इन नाटकों में 'लेटाइत आँचर' का शिल्प उच्च कोटि का है। इस नाटक के आत्मकथ्य में चौधरी जी ने स्वयं लिखा है, ''स्वभावता : तो लेताइत आँचर के मूल प्रवाह दहेज विरोधी कथा– संरचना से युक्त है और अंतः प्रवाह में विघटित होते हुए परिवार का चित्र–चरित्र आया है।''3 रूपकान्त ठाकुर लिखित 'लगाम' नाटक में महत्वाकांक्षी, परंतु अकर्मण्य युवा वर्ग पर आक्षेप है। भाग्यनारायण झा विरचित 'मनोरथ' में एक निर्धन परिवार के कठिन संघर्ष द्वारा मनोरथपूर्ति की कथा कही गयी है। गुणनाथ विरचित 'पाथेय' में मिल मालिक की शोषक प्रवृति की कथा वस्तु है। 'क्षमादान' नाटक में रचनाकार नाटक के उद्देश्य को रेखांकित करते हुए कहा है,''इस नाटक में समाज के एक विशिष्ट वर्ग जिसे पिछड़ा दलित या अनान्य नाम से संबोधित करते है– इस नाटक के माध्यम से उनके उद्धार एवं उचित प्रतिनिधित्व का वर्णन किया गया है।'' रूढ़ि में जकड़ा हुआ समाज को जागृत करने की चेष्ठा महेन्द्र मलंगिया द्वारा विरचित नाटक 'लक्ष्मण रेखा खंडित' के माध्यम से की गयी है। सुधांशु शेखर चौधरी द्वारा विरचित नाटक 'पहिल साँझ' में जेनरेशन गैप की व्याख्या मिलती है। विज्ञान के विकास के साथ मानव–हृदय का विकास अवरूद्ध हो गया हो गया है, सामाजिक मान्यता बदल गयी है, जीवन–दर्शन बदल गया है, वसुधैव कुटुम्बकम् का नारा बुलंद करने वाला आर्यवत के परिवार में चार अंगुल अथवा एक पग जमीन के लिए भाई–भाई का सर फोड़ने पर उतारू है, इस प्रकार भी ही कथा की बुनावट श्री सीताराम चौधरी के 'बेमातर' में है। बेरोजगारी की समस्या पर आधारित महेनद्र मलंगिया का नाटक 'ओकरा आँगनक बारह मासा' है। गंगेशगुंजन विरचित नाटक 'बुधिबधिया' नाटक में एक नयी दृष्टि दी गयी है। अरविन्द कुमार 'अककू' का नाटक 'रक्त', 'आगि धधकि रहल अछि', 'एना कतेक दिन', 'अन्हार जंगल', 'बाहरे हम बाहरे हमर नाटक', 'पढुआ कक्का अएला गाम', 'गुलाब छड़ी', आदि नाटक में समाज के विभिन्न समस्याओं को उद्घाटित किया है। इस प्रकार वस्तु की प्रचुरता के कारण मैथिली में सर्वाधिक समाजिक नाटकों की रचना हुई है।

**(ख) पौराणिक नाटक :–**

पौराणिक नाटकों की परंपरा मिथिला में आदि काल से ही रही है। त्रिलोक नाथ मिश्र द्वारा विरचित 'जीभूत वाहन चरित्र' नाटक में महत् चरित्र उद्घाटित होता है। दामोदर झा द्वारा विरचित नाटक 'गन्धर्व विवाह' में अर्जुन एवं सुभद्रा का गान्धर्व विवाह का वर्णन है। जीवन नाथ झा विरचित 'दुर्गा विजय' में दुर्गा सप्तशती में पाँचवें अध्याय से लेकर ग्यारहवें अध्याय तक की कथा है जिसे उत्तम चरित्र कहा गया है। हरीश द्वारा विरचित नाटक 'अवतार' में कृष्णावतार की कथा वर्णित है।

ऐसा माना जाता है कि तार्किक शक्ति के उद्धापोह के कारण पौराणिक नाटकों को दर्शकों द्वारा कम पसंद किये जाने लगे।

**(ग) ऐतिहासिक नाटक :–**

एतिहासिक नाटकों का उद्देश्य होता है, भारतीय इतिहास के उद्धारणों के माध्यम से दर्शकों में वीरता तथा शौर्य की भावना जगाना। मैथिली के कुछ प्रतिनिधि ऐतिहासिक नाटक इस प्रकार है। जीवनाथ झा द्वारा विरचित 'वीरनरेन्द्र' विद्यानाथ राय द्वारा विरचित 'विद्यापति', ईशनाथ झा का 'उगना', घननाथ झा का 'भगवती भक्त', काशी नाथ मिश्र का 'अयाची', मणिपद्म का 'कण्ठहार', ललितेश्वर झा का 'संत परीक्षा', राजेश्वर झा का 'कदीर्वी घाट', किरणजी का 'विजेता विद्यापति', मोहन चौधरी का 'चन्द्रगुप्त', कान्तजी का 'वरदान',।

**(घ) प्रतीक नाटक :–**

जिस नाटक में अमूर्त पात्र को मानव का मूर्त प्रतीक बनाया जाता है, वह प्रतीक नाटक कहलाता है। इस कोटि के नाटक में रघुनंदन दास का 'मिथिला नाटक' परिगणित है। यह नाटक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के 'भारत दुर्दशा' से प्रभावित है। मिथिला की दुर्दशा से क्षुब्द होकर नाटककार ने इसकी रचना की प्रस्तवना समाप्त होते हो क्रोधान्त कलियुग रंगमंच पर प्रवेश करते ही मिथिला पर अपना प्रभाव दिखलाने की चेष्ठा करता है और यह संवाद बोलने लगता है – ''आई हम मिथिला कें समुद्र मग्ना करब, हमरा चिन्हैछ नहि, हमहीं महराजा परीक्षित गौरव हरण के संग–संग सर्वनाश कएल, बेश हमर प्रभुत्व देखौ, हम तँ हिमालयावृत बालुकाच्छन्न वृक्ष–वाटिका पूर्ण एहि देश कँ जंगल मानैत छलहुँ, नहि त एतेक देरी। बेस अब स्वस्थान जैतहि एकर उद्योग करब उचित।''[5]

**(ङ) राजनीतिक नाटक :–**

दर्शकों में राष्ट्रीय भावना को जागृत करना इस प्रकार के नाटकों का उद्देश्य हुआ करता है। इस दिशा में शारदानंद झा का लिखा नाटक 'फेरार', सुरेन्द्र प्रसाद सिन्हा का लिखा नाटक 'वीरचक्र', कपिल प्रकाश का लिखा नाटक 'खट्टर कका चीन में' परिगणित है। खटर कका चीन में नाटक के प्रसंग में प्रो0 रमानाथ झा की उक्ति द्रष्टव्य है– ''लोहा सिंहक प्रभाव सेहो एहि नाटक में परिलक्षित होता है। 'परंच ओहू' में चमत्कार मुख्यतः भाषा मूलक छैक जकर अवकाश एहिनाटक में नहिभए सकैत छल।''[6]

इस प्रकार समग्र मैथिली नाट्य साहित्य के गहन अवलोकन करने के पश्चात् इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि मिथिलांचल का नाट्य साहित्य किसी भी विद्या से पीछे नहीं है। प्राचीनता, गुरूता तथा देशकाल निरूपण में इसका अपना मूल्य है।

**संदर्भ सूची :**

1. 'अमर', चन्द्रनाथ मिश्र ओ झा, डॉ0रामदेव (संपादक), कविवर जीवन झा रचनावली
2. भारतेन्दु ग्रंथावली, भाग–1 पृ0–722
3. झा, देवकांत, झा, दिनेश कुमार, (संपादक) मैथिली नाटकक विकास, साहित्य आकादमी, नयी दिल्ली, पुनर्मुद्रण –2015 पृ0 163,
4. वहीं, पृ0– 163
5. दास, मुंशी रघुनंदन, मिथिला नाटक, पृ0–5
6. प्रभाकर, कपिल, खटर कका चीन में, रमानाथ झा का वक्तव्य

# Yoga for Self-Regulation : A Systematic Review

**Pardeep Kumar***

**Abstract**

*Presently yoga is mesmerizing everyone with its beneficial effects. It is clearly mentioned in yoga philosophy that yoga also affects the self-regulation of the individual. So, the purpose of this study is to systematically review the effectiveness of yoga for self-regulation. A systematically literature analysis was operated to recognise articles assessing the impact of yogic interventions on self-regulation. Studies were grouped according to yogic intervention, and consequence measures. Google Scholar, UGC-Care listed Journals, Scopus, PsycINFO, and Medline/PubMed were searched. Studies were selected through key searching term 'Yoga for self-regulation' on the basis of articles of last 13 years from January 2009 to November 2022. The selection procedure followed the PRISMA flow-diagram. For this randomized controlled trials with other research designs of yoga for self-regulation were included. Main outcomes were self-regulation level, secondary outcomes were stress, anxiety, quality of life, and wellbeing. Review took 12 articles based on the effects of yoga interventions on self-regulation of adults. In this study, the long-term effect of lack of RCTs due to heterogeneity could not be analysed. Nevertheless this review study found that yoga is an essential factor for self-regulation in the individual and its positive effects are seen in healthy adult population.*

**Key words:** *Yoga, Self-Regulation, Systematic Review.*

**Methodology :** *The study is supported by secondary sources.*

## Introduction

Nowadays yoga has become prevalent in all age groups be it adults or old people. People are giving it prime importance in daily lifestyle for better health as well as self-regulation. Asanas, pranayama and meditation are more prevalent today in different styles of yoga and it is evident from scientific research that these techniques have positive effects on holistic health. Research evidence from series of scientific studies shows that yogic practices promote health and wellness by benefiting both non-clinical and clinical populations (Rasania, 2021). Currently Therapists use yoga as a therapeutic intervention in the treatment of many diseases and yoga also proves to be an effective remedy for high blood pressure, stress and anxiety (Phansikar, & Mullen, 2022; Erdogan Yuce, & Muz, 2020). Along with yogasanas, breathing exercises also have a lot of beneficial effects on the human body. The combined dose of yogasanas and breathing provides physical wellness, psychological balance and lightness of body and mind. Meditation is also considered by researchers for enhance quality of life, greater focus, calm mind, reduce anger, stress, confusion, overall well-being, happiness and vitality etc. as training technique (Reddy & Roy, 2018; Hepburn, & McMahon, 2017; Raja, et al., 2018; Zaccaro, 2018; Schone, et al., 2018; Cotier, Zhang, & Lee, 2017; Sato, et al., 2017; Srivastava, et al., 2017; Kuppusamy, et al., 2018). Furthermore, yoga is primarily a practice capable of motivating one towards a well-organized lifestyle by developing self-regulation (Roche, 2022). The effects of short term and long-term yoga intervention on self-regulation have been

*Ph.D. Research Scholar, University of Patanjali, Haridwar, Uttarakhand

examined in different age groups. The psycho-physiological mechanisms of yoga and self-regulation are underlined both qualitatively and quantitatively. Positive affect, self-awareness, cognitive control over emotions and changes them according to situational demands, from this current systematic review were all shown to mediate the relationship between yoga and self-regulation. Due to the lack of scientific evidence existing in diverse yoga practices and self-regulation in healthy adult populations, current research better reflects the benefits of yoga on self-regulation. This systematic review evaluates the current scientific evidence for yoga practice on self-regulation. We hypothesize that yogic practices will have favourable effects on self-regulation. We investigated this question in adult population.

**Methods:**

The researcher conducted a thorough systematic review to examine the hypothesis of this study. For review, studies were selected using PICO (*Population, Intervention/exposure*, *Comparison*, *Outcome*) Standard 15 as an auxiliary guideline, and the hypothesis of this current study was examined through this systematic review. Prior to evaluation by PICO, all manuscripts initially considered relevant by title and summary were suitable for inclusion. Description in PICO standard is as follows-

*P (population)*: healthy adult participants of 18 years of age and older (including shift workers, participants without any clinical diseases, women who are not pregnant).

*I (intervention)*: Organizing interventions based on yoga.

*C (comparison)*: Includes studies comparing healthy adults who practice yoga versus healthy adults who do not practice yoga.

*O (outcome)*: The impact of yoga on self-regulation.

***Inclusion and Exclusion Criteria:***

All adults have a different level of self-regulation for self-management. Adults of 18 years of age and older and even if they're shift workers were selected in this study. Selected exclusions and inclusions are shown in Table 1.

**Table 1:** *Inclusion and Exclusion Criteria (using PICO method)*

| | ***Inclusion criteria*** | ***Exclusion criteria*** |
|---|---|---|
| Population (P) | Adults 18 years of age and older even if they're shift workers | Participants hospitalized or with clinical diseases (mental or physical disorder, or under the supervision of clinic) |
| Intervention / exposure(I) | Yoga based study on Self-regulation Empirical or theoretical original studies | Review (systematic review; meta-analysis) longitudinal study (follow-up study or retrospective study) |
| Comparison (C) | Contain controlled groups and intervention | Case-control studies |
| Outcome (O) | The result elaborated on the effect of yoga on Self-regulation | – |
| Other | time limit from January 2009 to September 2022 | Study languages other than English study |

## Results

### *Selection of studies:*

Under the present study, using the above research methodology (PICO), led a total of 431 previous research studies related to research presented by major national and international database searches. The selection procedure followed the PRISMA flow diagram. Of these studies, the PubMed and Scopus Database Indexed Papers accounted for a total of 6. Simultaneously, an additional online web search engine 'Google Scholar' was searched to find related prior research work. Subsequently, all previous studies compiled for review were filtered in a phased manner. For filtering, the characteristics of the samples, the research methods used were first ascertained based on the title and summary of the study. In this way, after checking the title and summary of all previously selected research studies, each article was thoroughly studied and reviewed. Thereafter, each article was screened based on the above exclusion and inclusion criteria. Ultimately, based on the above investigations, a total of 12 studies were included for review in the present study. The steps of the study selection process described above are clearly and systematically described through Figure-1.

**Figure 1:** *Study Selection Process (PRISMA flow diagram)*

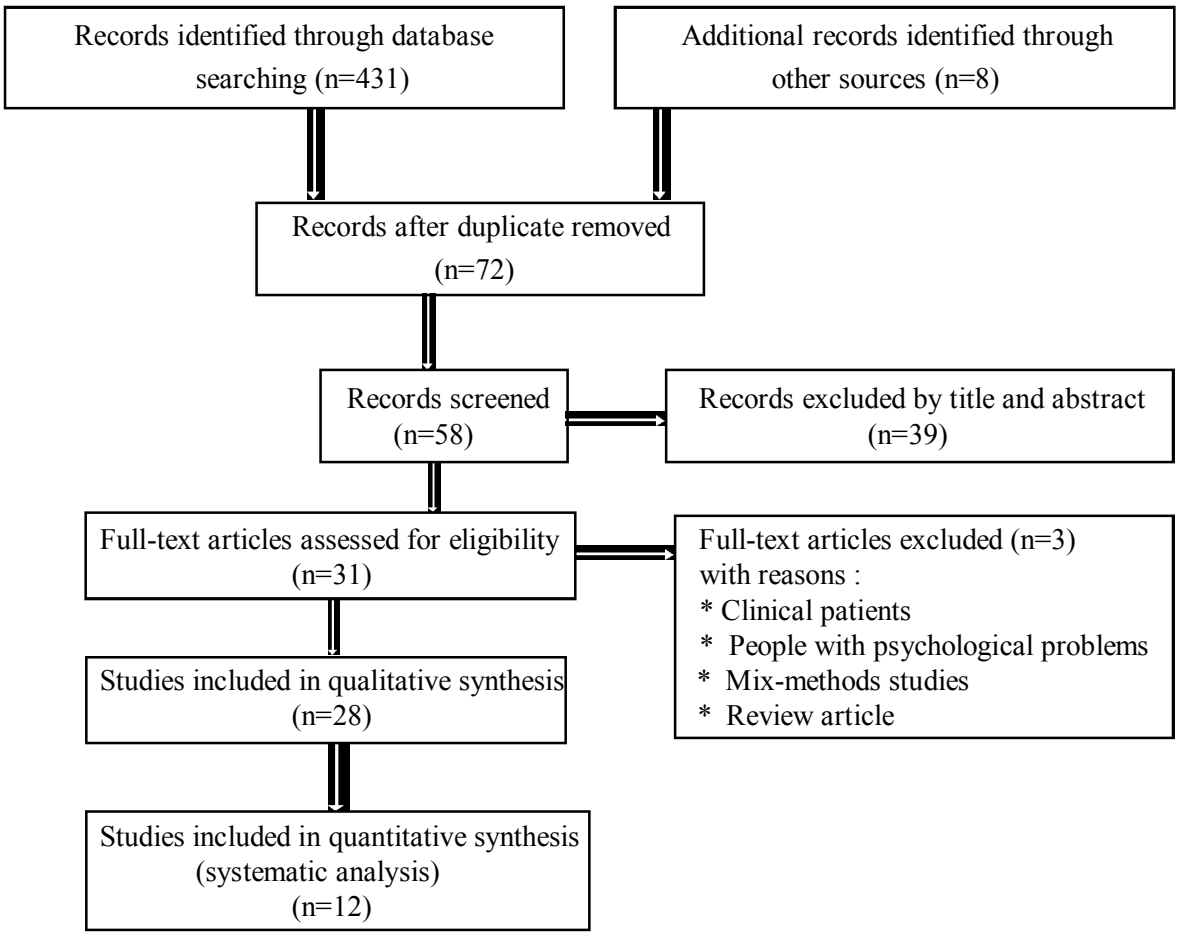

***Characteristics of Included Studies:***

In this current study, 1452 participants were included in these 12 quantitative and qualitative studies selected for review. The details of all 12 research studies included are systematically presented in Table 3. Experimental and control group studies, comparative studies, randomized control trial studies, single group longitudinal studies, mixed method studies, instrumental development, theoretical model development studies were included based on eligible criteria. In these studies, various yogic interventions have been performed on adults of different age groups. Yoga practices included in these yogic interventions include subtle exercises, yams, niyama techniques, various asanas, pranayama techniques, mindfulness meditation techniques, prayer, Patanjali's Raja Yoga, relaxation techniques and yoga therapy. These different types of yoga practice were performed once a day for 9 days to 12 weeks. Here the studies published in the years 2009 to 2021 were selected for review. Most of these studies measured the effects of interventions on participants after they were randomly or non-randomly distributed in the experimental and control groups. And 4 studies being purely qualitative in nature, they qualitatively measured the effects of yoga on self-regulation. Of all these studies, self-regulation in quantitative studies was measured by perceived self-regulation scales which include the different scales and presented theoretical models of self-regulation by practicing yoga through qualitative studies.

**Table 3:** The details of selected studies

| Study | Participants | Intervention method | Duration | Study design | Outcome | Measurements of assessing Self-regulation |
|---|---|---|---|---|---|---|
| Ranta, R.S. (2009) | 20 (police personnel) | Yoga and meditational techniques. | 3 sessions of one hour/day | A three factor mixed design 4x2x2 (AxBxC) with repeated measure on the third factor trails (C) and pretest and posttest design | P.E. | Police Stress Questionnaire, Coping Questionnaire |
| Büssing, et al., (2013) | 281 German soldiers | mindfulness | – | Instrument development study | P.E. | Freiburg Mindfulness Inventory (FMI), Perceived Stress Scale (PSS), stressful military experiences (PCL-M), life satisfaction satisfaction 3(BMLSS), Positive Life Construction (ePLC), and self-perceived health affections (VAS) |

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| Amaranath, Nagendra, & Deshpande, (2016) | 148 (home guards of either gender) | Integrated yoga module (IYM) | 1 h daily, 6 days a week for 8 weeks | A randomized controlled trial | P.E. | Self-administered Vedic Personality Inventory. |
| Telles, et al., (2018) | 722 (male border security force personnel with ages 20–56 years) | yoga intervention consisting of asana, pranayama, and prayer | 9 days | A single group longitudinal study | P.E. | digit vigilance test (DVT), Spielberger's state trait anxiety inventory (STAI-S), Sleep Rating Questionnaire (SRQ) |
| Korotaeva, (2021) | 56 (!adets of the Russian Federation) | specially developed program, | – | Comparative study | P.E. | Assessment of the Social and Psychological Climate in the Team, The Style of Self-Regulation of Behaviour |
| Srilakshmidevi, & Suseela, (2019) | 50 (B.Ed. College Students between 20 to 25 years, Both female and male) | A yogic module consisting of asana and pranayama, meditation | 12 weeks | Single experimental group design with Pre-post intervention | P.E. | self-report questionnaire the Motivated Strategies for Learning Questionnaire MSLQ-1990) |
| Suseela, (2019) | secondary school students | Raja Yoga | – | Descriptive study | P.E. | – |
| Rashedi, et al., (2021) | 166 students 9 teachers | Yoga-based interventions included postures, songs, breath regulation, and relaxation exercises | 8 week | a mixed methods study | P.E. | The Preschool Self-Regulation Assessment (PSRA), Head Toes Knees Shoulders Task (HTKS), Strengths and Difficulties Questionnaire (SDQ) |

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| Sullivan, et al., (2018) | – | YogaTherapy | – | Theoretical model based study | P.E. – |
| Velayudhan, & Benedict, (2013) | – | Mindfulness | – | qualitative analysis | P.E. – |
| Gard, T. et al., (2014) | – | Patanjali's Raja Yoga | – | Theoretical model development | P.E. – |
| Roche, (2022) | | Yogasutras of Patanjali | | qualitative analysis | P.E. – |

Note: P.E.= Positive Effect

***Effects of Yoga on Self-regulation**:*

Yoga can be helpful in improving the ability to self-regulation through self-awareness (Srilakshmidevi, & Suseela, 2019; Roche, 2022). As a result of the review conducted under the present study, it was observed that through the various yogic practices involved in yogic interventions, the practitioner controls his mind, monitors his thoughts, feelings and actions and changes them according to situational demands, which reflects self-regulation (Cook-Cottone, 2015; Cook-Cottone, 2016; Tanksale, et al., 2021).

Primarily, a person does so when he wants to achieve his goal or has to act impulsively to adjust to a situation. Practicing yoga motivates a person by learning self-regulation methods and can further increase motivation and self-satisfaction (Srilakshmidevi, & Suseela, 2019). For this investigation by researcher Srilakshmidevi, & Suseela (2019) a total of 50 college students were selected as a single experimental group by simple random sampling method to investigate the effects of yoga practice (asanas, pranayama and meditation) on self-regulation learning ability. As a result of testing this selected group after 6 weeks of yoga practice, it was found that the students who practiced yoga had higher levels of self-regulation learning. Similarly, the results of studies of the effects of yoga on students' self-regulation were promising and it was observed that yoga plays an important role in the development of self-regulation (Rashedi, et al., 2021). Researcher Sushila, V. (2019) in her study specifically mentions that yoga is a means of self-information that is fully capable of improving physical and mental balance as well as establishing psycho-physical equality. In yoga practices, asanas and pranayama help in the advancement of self-regulation and timely dealing with any kind of issues.

Especially, it has been observed in various groups of armed forces that middle class officers are more prone to insecurities and stress, due to which they may suffer from mental illness when they are surrounded by mental conflicts. In particular, post-traumatic stress disorder was noticed by psychologists and the need for intervention was felt for its immediate treatment. According to a qualitative analysis conducted by researchers Velayudhan, & Benedict, (2013) to improve mental health, mindfulness techniques were suggested to overcome the mental disturbances of these armed forces. During the study it was observed that mindfulness practice

can improve mood, complex thinking, functional intelligence, problem solving, cognitive control over words and emotions, which can relieve stress associated with functional impairment. Also mindfulness promotes self-regulation with cognitive control, self-awareness and emotional regulation. Similarly, researchers Korotaeva (2021) in his research examined the social and psychological adaptation of cadets of the Russian Federation by self-training through specially developed programs based on yoga.

Based on the data obtained after this yoga-based training, it was concluded by the researcher that the process of self-regulation, structured personality and ability to work in groups were found to be developed. Security personnel are the main contributor to any society in the world, but some factors such as stress reduce their effectiveness. Stressed security personnel create hindrance to society and security, criminals, colleagues etc and sometimes it can be dangerous too. Mental health researchers and psychologists consider this a matter of immediate concern, for this reason, the use of psychological techniques (which was based on the Western model) through research is trying to evaluate and modify the stress caused to security personnel. The study of Ranta, R. S. (2009) is unique in itself. In this study, psychological interventions based on the Indian psychological model have been chosen for stress management and stress treatment through yoga and meditation techniques. For this study like constable, head constable, assistant sub-inspector and inspector ranks of police personnel were selected by control group technique. Stress scores were taken for all participants prior to the scientific intervention. In the next step the interventions were provided to the experimental group and then their stress score was measured and through the analysis of the experimental and control groups it was found that psychological interventions have been of great help in dealing with the stresses of the police personnel. Therefore, the present study verifies the main role of Indian psychology theory in stress management. Similarly, the study by researcher Telles, et al., (2018) is based on changes in self-rated sleep alertness, and state anxiety in military personnel in India after yoga intervention. For this study, 722 male BSF personnel aged 30.9 ± 7.4 years were selected and given a 9-day residential yoga intervention to assess their self-rated sleep alertness, and state anxiety. Evaluating their self-rated sleep alertness, and state anxiety again after 9 days, concluded that yoga had improved their sleep and decreased state anxiety, so BSF personnel benefited greatly from yoga. Researchers Amarnath, Nagendra, and Deshpande, (2016) based their study results found that, Field work home guards who face many emotional distractions in their daily lives that can be controlled and managed through yoga practice and at the same time, these yoga practices are also important to enhance the personality. The research was completed by randomly dividing a total of 148 home guards (male and female) into 2 groups. The group practicing yoga was given yoga for 1 hour 6 days a week along with their daily activities for a total of 8 weeks. As a result of subsequent trials, it was found that the selected yoga practice helped the samples come out of stressful situations by teaching them stress management tricks (Bussing, et al., 2013).

In the context of major yogic texts, very important qualitative studies based on self-regulation by yoga practice have also been done, which present a theoretical model of self-regulation through yoga. Concerned researchers Gard, et al. (2014) produced a theoretical framework of yoga as a systems-based network model, focusing on the integration of top-down and bottom-up forms of self-regulation by yoga. Evidence related to the role of yoga in self-regulation is presented through this qualitative study. To support this proposed model, evidence based on scientific evidence was also presented

about how yoga affects pathways of self-regulation. The neuropsychological and neurocognitive mechanisms of yoga-based practices were also presented theoretically based on the bottom-up and top-down mechanisms, based on the exploratory model presented by Researcher (Sullivan, et al., 2018). This explains neuropsychological patterns of self-regulation, social behaviour and emotional expression through yoga.

**Discussion**

Based on this systematic review study, evidence of a significant effect of yoga practices on self-regulation becomes apparent. The different types of yoga practices (subtle exercises, yams, niyama techniques, various asanas, pranayama techniques, mindfulness meditation techniques, prayer, Patanjali's Raja Yoga, relaxation techniques and yoga therapy) included under yogic interventions exhibit significant benefits for self-regulation. The role of yoga in self-regulation has been extensively studied and a combination of different yoga practices for emotional balance and self-regulation is suggested. Scientifically conducted major research studies published in leading highly indexed journals have also proved that the combined dose of yogasanas and breathing provides physical wellness, psychological balance and lightness of body and mind (Welford, et al., 2022; Kramer-Kostecka, et al., 2022). Meditation is also considered by researchers for enhance quality of life, greater focus, calm mind, reduce anger, stress, confusion, overall well-being, happiness and vitality etc. (Zhang, et al., 2021). Evidence is also presented in major yogic texts that yoga is a psycho-physical discipline that focuses on the balance between mind, body and breath (White, 2014). This balance is possible through a combination of various yoga practices like asanas, mudras, pranayama, relaxation techniques, and meditation. All these measures develop self-control. These self-discipline or self-control help in self-regulation and self-direction and help a person to achieve his long term goals.

Thus yoga helps in instructing the individual to perform desired behaviour and such instructions are effective for self-regulation (Roche, 2022). Therefore yoga has been found to be very effective in terms of self-control and self-regulation. This may be a strong explanation for the effects of yoga on self-regulation as the review presented supports the conclusion that yoga is positively effective for self-regulation in the adult population. Also, under these important studies it is suggested to conduct future studies to examine the long-term effect of yoga practices on self-regulation. Under the presented studies, it was found by the researcher that the duration of the intervention as determined in the quantitative study is an important factor in the effectiveness of yoga practice. More reliable and meaningful results were in studies in which the duration of the intervention was longer. Even when the duration of the yoga intervention in one study was very short, the intervention showed beneficial results for self-regulation. The results of the review in relation to age suggest that the practice of yoga is helpful in the development of self-regulation in adults by controlling emotions and thoughts, calming the mind. Thus, the practice of yoga can be suggested to develop self-regulation in adults.

**Conclusion**

As a result of the review study presented, it was observed that yoga interventions play an important role in promoting health and wellness along with self-regulation, significant benefits of yoga were presented. Yogic interventions are promising for self-regulation. It is suggested to unearth the deeper functions of yoga practices at the psycho-physical level. The effects of self-regulation by yoga have been presented both quantitatively and qualitatively in reviewed studies. In addition, qualitative research studies

have also described theoretical models for self-regulation through yoga, just needing to prove them practical. Nevertheless, more studies are needed to delineate the psycho-physiological mechanisms explaining the development of self-regulation by yoga in a healthy adult population.

**References:**

1. Amaranath, B., Nagendra, H. R., & Deshpande, S. (2016). Effect of integrated yoga module on personality of home guards in Bengaluru: A randomized control trial. *Journal of Ayurveda and Integrative Medicine*, *7*(1), 44-47.
2. Bussing, A., Walach, H., Kohls, N., Zimmermann, F., & Trousselard, M. (2013). Conscious Presence and Self Control as a measure of situational awareness in soldiers–A validation study. *International Journal of Mental Health Systems*, *7*(1), 1-9.
3. Cook-Cottone, C. (2016). Embodied self-regulation and mindful self-care in the prevention of eating disorders. *Eating disorders*, *24*(1), 98-105.
4. Cook-Cottone, C. P. (2015). *Mindfulness and yoga for self-regulation: A primer for mental health professionals*. Springer Publishing Company.
5. Erdogan Yuce, G., & Muz, G. (2020). Effect of yoga based physical activity on perceived stress, anxiety, and quality of life in young adults. *Perspectives in psychiatric care*, *56*(3), 697-704.
6. Gard, T., Noggle, J. J., Park, C. L., Vago, D. R., & Wilson, A. (2014). Potential self-regulatory mechanisms of yoga for psychological health. *Frontiers in human neuroscience*, *8*, 770.
7. Korotaeva, M. S. (2021). The development of personal self-regulation of the cadets. *Journal of Advanced Pharmacy Education & Research| Jan-Mar*, *11*(1).
8. Kramer-Kostecka, E. N., Fulkerson, J. A., Sherwood, N. E., Barr-Anderson, D. J., Larson, N., & Neumark-Sztainer, D. (2022). What Brings Young Adults to the Yoga Mat? Cross-Sectional Associations Between Motivational Profiles and Physical and Psychological Health Among Participants in the Project EAT-IV Survey. *Journal of Integrative and Complementary Medicine*.
9. Phansikar, M., & Mullen, S. P. (2022). Cognitive and psychosocial effects of an acute sun salutation intervention among adults with stress. *Mental Health and Physical Activity*, *22*, 100431.
10. Ranta, R. S. (2009). Management of stress and coping behaviour of police personnel through Indian psychological techniques. *Journal of the Indian Academy of Applied Psychology*, *35*(1), 47-53.
11. Rasania, S. K. (2021). A cross—sectional study of mental wellbeing with practice of yoga and meditation during COVID-19 pandemic. *Journal of Family Medicine and Primary Care*, *10*(4), 1576.
12. Rashedi, R. N., Rowe, S. E., Thompson, R. A., Solari, E. J., & Schonert-Reichl, K. A. (2021). A yoga intervention for young children: Self-regulation and emotion regulation. *Journal of Child and Family Studies*, *30*(8), 2028-2041.
13. Roche, L. T. (2022). Yoga: A self-regulation process. *Yoga Mimamsa*, *50*(1), 16.
14. Schröter, M., & Cramer, H. (2021). Prevalence and predictors of yogic breathing and meditation use–A nationally representative survey of US adult yoga practitioners. *Complementary Therapies in Medicine*, *56*, 102617.
15. Shahabi, L., Naliboff, B. D., & Shapiro, D. (2016). Self-regulation evaluation of therapeutic yoga and walking for patients with irritable bowel syndrome: a pilot study. *Psychology, Health & Medicine*, *21*(2), 176-188.
16. Srilakshmidevi, B., & Suseela, V. (2019). Effect Of Yoga Practices On Self-Regulated Learning Among College Students. *Think India Journal*, *22*(4), 6098-6105.
17. Sullivan, M. B., Erb, M., Schmalzl, L., Moonaz, S., Noggle Taylor, J., & Porges, S. W. (2018). Yoga therapy and polyvagal theory: The convergence of traditional wisdom and contemporary neuroscience for self-regulation and resilience. *Frontiers in human neuroscience*, 67.

18. Suseela, V. (2019). Influence Of Yoga Sadhana On Self-Regulation Learning. *Think India Journal*, *22*(4), 6877-6882.

19. Tanksale, R., Sofronoff, K., Sheffield, J., & Gilmour, J. (2021). Evaluating the effects of a yoga-based program integrated with third-wave cognitive behavioral therapy components on self-regulation in children on the autism spectrum: a pilot randomized controlled trial. *Autism*, *25*(4), 995-1008.

20. Telles, S., Gupta, R. K., Verma, S., Kala, N., & Balkrishna, A. (2018). Changes in vigilance, self rated sleep and state anxiety in military personnel in India following yoga. *BMC research notes*, *11*(1), 1-5.

21. Velayudhan, A., & Benedict, N. J. (2013). Mindfulness training for Indian armed forces. *Indian Journal of Positive Psychology*, *4*(1), 163.

22. Welford, P., Osth, J., Hoy, S., Diwan, V., & Hallgren, M. (2022). Effects of yoga and aerobic exercise on wellbeing in physically inactive older adults: Randomized controlled trial (FitForAge). *Complementary Therapies in Medicine*, *66*, 102815.

23. White, D. G. (2014). The Yoga Sutra of Patanjali. In *The Yoga Sutra of Patanjali*. Princeton University Press.

24. Zhang, Y., Lauche, R., Cramer, H., Munk, N., & Dennis, J. A. (2021). Increasing trend of yoga practice among US Adults from 2002 to 2017. *The Journal of Alternative and Complementary Medicine*, *27*(9), 778-785.

# भारतीय शास्त्रीय संगीत में बंदिश और उसका महत्त्व

**प्रो. (डॉ.) नीलम पॉल****

**अर्शदीप सिंह***

**सारांश**

*'बंदिश' शब्द 'फारसी' लफ़्ज है जिसका अर्थ है ''बाँधने की क्रिया''। शास्त्रीय संगीत के अंतर्गत निबद्ध और अनिबिद्ध दो तरह की रचनाओं का अस्तित्व दृष्टिगोचर है, यहाँ केवल निबद्ध रचनओं को बंदिश के रूप में मान्यता प्राप्त है। इसलिए निबद्ध के अंतर्गत रखते हुए बंदिशों का वर्णन किया गया है।*

*शास्त्रीय संगीत में निबद्ध रचना को ही बंदिश कहने की प्रथा है। पं. भातखंडे ने बंदिश के लिए 'चीज' शब्द का प्रयोग किया है जिसका शाब्दिक अर्थ महत्त्वपूर्ण वस्तु, अलंकार या गहना है । वह रचना या गीत जो स्वर ताल, लय इत्यादि तत्वों में बँधा हो, उसे निबद्ध संगीत कहते हैं। शास्त्रीय संगीत की विविध शैलियों में उत्पत्ति से ही संगीत का अर्थ गायन, वादन, तथा नृत्य के समुचित रूप से लिया जाता है जिसमें गीत को सर्वप्रथम महत्त्व दिया जाता है एवं अन्य सभी को गीत पर आधारित माना गया है। वास्तव में बंदिश के द्वारा ही राग अथवा ताल के अस्तित्व को समझा जा सकता है। इन बंदिशों के द्वारा ही संगीत की परंपरा को गुरूओं द्वारा पीढ़ी–दर–पीढ़ी कायम रखा गया है।*

**कुंजी शब्द** : *बंदिश, राग, ताल, लय, निबद्ध, रचना*

**प्रविधि** : *द्वितीयक स्रोतों से सहायता ली गई है ।*

## भूमिका

हिंदुस्तानी गायन या वादन में बंदिश का तात्पर्य एक निश्चित रचना से है। बंदिश किसी विशेष राग में निर्मित होती है। इसे गाने या बजाने के साथ तबला या पखावज द्वारा ताल मिलाया जाता है। 'बंदिश' मानक संरचित गायन हेतु संगीत की साहित्यिका प्रदान करती है। पूर्व में कई घरानों ने अपनी बंदिशों को अपने घराने से बाहर जाने से रोकने के उपाय किए। गायन में 'बंदिश' को चीज कहते हैं।

'बंदिश' शब्द गायन में एक नियमित सांगीतिक सहचरता जो ताल और लय के साथ बंधी होती है, को परिभाषित करता है। जो गायन शास्त्रीय संगीत में 'ख्याल 'या ध्रुपद के साहित्यिक पक्ष का आधार होता है, उसी को चीज कहा जाता है और ये ख्याल के आलाप से बिल्कुल अलग है, क्योंकि आलाप को ताल और लय की निबद्धता से स्वतंत्र रखा जाता है, जिससे ख्याल की बढ़त होती है।

ख्याल में विलंबित या द्रुत रचना की बढ़त 'बंदिश' के आस–पास ही होती है । ख्याल की बंदिश के अनुरूप ज्यादातर चीज के शब्द परंपरागत होते हैं और कुछ बहुत लोकप्रिय होते हैं, जो पीढ़ी–दर–पीढ़ी चलते हैं, जैसे– तानसेन के काल के शब्द लोकप्रिय रहे और आगे की 16 वीं शताब्दी से 17 वीं और आगे भी चलते आए और अपनाए गए। वादन में बंदिश के स्थान पर गत का प्रयोग होता है।

विविधि अवयवों को एक रूपाकृति प्रदान करने हेतु समष्टि रूप में एक आकार प्रदान किया जाता है तो उसे विविध कलाओं में 'कलाकृति' कहते हैं । इसी लिए जब कोई संगीतकार संगीत के विविध अवयवों को बाँधकर एक रूपाकृ ति प्रदान करता है तो वो 'बंदिश' कहलाती है। बंदिश के विविध अवयव संगीत से ही उपजे हैं, जैसेः– लय, ताल, स्वर, और पद आदि । बंदिश में साहित्य पद का रूप ले लेता है परंतु वाद्य की बंदिशों में वाद्य के विविध बोलों के माध्यम से जो निरर्थक प्रतीत होते हैं, एक सशक्त रूप प्रदान करते हैं, उन्हें बंदिश कहा जाता है। हिन्दुस्तानी संगती के किसी भी संगीतिक रचना को बंदिश के नाम से जाना जाता है। भारतीय संगीत में बंदिश का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है।

इसकी अपनी विशेषता और अपना महत्त्व है। ध्रुपद, धमार, ख्याल टप्पा, ठुमरी, दादरा आदि सभी गीत के प्रकारों की रचना को बंदिश की संज्ञा दी जाती है। 'बंदिश' शब्द प्राचीन प्रबंध का ही पर्याय है। बंदिश अर्थात् राग, स्वर, ताल, लय एवं शब्दों का बंधन है। दूसरे शब्दों में, जो गीत स्वर, लय और ताल में निबद्ध होकर मनोमुग्धकारी हो, उसे बंदिश कहा जाता है। बंदिश अर्थात् बाँधने की क्रिया

*पीएच.डी. शोधार्थी, संगीत विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ

**चेयर पर्सन, संगीत विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़

का भाव है। गीत, कविता आदि की शब्द–योजना गायन–वादन की किसी भी विधा में बंदिश के दो मूलभूत आधार होते हैं। स्वर–ताल–बद्ध पद–रचना या गत–रचना को बंदिश की संज्ञा दी जाती है और बंदिश के आधार पर प्रस्तुत की जाने वाली प्रत्यक्ष गायन क्रिया अर्थात् विशिष्ट ढंग तरीका या विधान ही गायन–वादन–विधा की शैली कहलाती है।

संगीत के 'स्वर–राग' और 'लय–ताल' दोनों पक्ष का समन्वय स्थल है। बंदिश की व्याख्या पं. शारंगदेव ने गीत में इस प्रकार की है :

''रंज्जकः स्वरसन्दर्भो गीतमित्यभिधीयते''

डॉ. एस. के. सक्सेना के अनुसार, एक ही राग में अनगिनत बंदिशों की रचना हो सकती है, जो सचमुच हमारे संगीत की एक विलक्षण बात है।

राग अरूप हैं, बंदिश ही उसे मूर्तमान करती है । बंदिश ही राग को एक स्वरूप प्रदान करती है। राग का एक स्वतंत्र रूप प्रकट करना बंदिश पर निर्भर करता है, जिसमें बंदिश के अवयवों को अलंकृत कर गाने से हमारी नजर इन अवयवों की तरफ पड़े राग–स्वर की तरफ जाती है। रागों में कुछ नयापन दिखाने के लिए दूसरा कोई रास्ता नहीं होता, सिर्फ बंदिशें ही इसका सशक्त माध्यम होती हैं अर्थात् बंदिशें वह सामग्री हैं जिसके कारण उसकी युग युगांतर तक चलने वाली धरोहर पीढ़ी–दर–पीढ़ी अविरल रूप से हस्तांरित होती जाती है। बंदिश भारतीय शास्त्रीय संगीत का एक आवश्यक अंग है और केवल बंदिश के ही माध्यम से हिंदुस्तानी संगीत की समृद्धशाली परंपरा को आगे आने वाली पीढ़ी के लिए सुरक्षित रखा जा सकता है।

1. टोनल स्वर, जो किसी राग के हों ।

2. बंदिश किसी ताल के ठेके में बंधी हो ।

3. पद जिसमें शब्दों की सार्थकता हो, और संवाद–भाव का ध्यान रखा गया हो।

प्रत्येक घराना में भिन्न रचनाकार हुए हैं जो अपनी व्यक्तिगत, कल्पनात्मक सृजनशीलता से स्वर–पद–ताल का समन्वय कर बंदिशों का निर्माण करते हैं और इन रचनाकारों द्वारा बनाई गई बंदिशों के भिन्न–भिन्न रूप दिखाई पड़ते हैं।

**विषय चर्चा** : देखा जाय तो प्राचीन काल से ही संगीत को प्रगट करने के लिए कोई–न–कोई सार्थक या निरर्थक शब्द अवश्य रहे होंगे। दरअसल संगीत का माध्यम अगर भाव और रस है, तो इसको प्रकट करने के लिए भी शब्द या गीत के बोल आवश्यक हैं। इसीलिए प्राचीन काल से अब तक के दौर में शब्दों का होना स्वाभाविक है। मसलन ये बात और है कि बंदिश शब्द कब आया, मगर फिर भी हम सकते हैं कि गीत के बोल या शब्द ही बंदिश कहलाते हैं, जिसको संगीत में बाँधा जाता है।

**बंदिश का शब्दार्थ :**

विभिन्न शब्द–कोषों में बंदिश के अलग–अलग अर्थ प्राप्त होते हैं। मानक हिंदी कोष में बंदिश का अर्थ बाँधने की क्रिया से लिया गया है। जैसे :

बंदिश :– बाँधने की क्रिया या भाव, कविता के चरणों वाक्यों आदि में होने वाली शब्द योजना, रचना। महत्त्वपूर्ण काम करने से पहले किया जाने वाला आयोजन या आरंभिक व्यवस्था। 'हिंदी साहित्य कोष' में बंदिश का अर्थ व्यवस्था इत्यादि से लिया गया है। जैसे बंदिश व्यवस्था, आयोजन, संबंद्ध वाक्य, रचना, पृकृष्ट बंधन।

'हिंदी व्युत्पत्ति कोष' में बंदिश का अर्थ है– बाँधने की क्रिया या भाव, पहले से किया हुआ प्रबंध, रोक, रूकावट। संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ में बंदिश शब्द में सन्निहित बद्ध, बन्ध, बन्धु इत्यादि संज्ञाएँ बंदिश के लिए प्राप्त होती है। जैसे– बद्ध अर्थात् बंधा हुआ, जकड़ा, जुड़ा हुआ, बंद किया हुआ। बंध :– बन्धना, बंधन, जंजीर, संबंध, विशेष प्रकार की पद रचना।

प्रबंध और बंदिश का शब्दार्थ विभिन्न जगहों पर प्रायः एक–सा मिलता है। भाषा की दृष्टि से यदि बंदिश और प्रबंध के अर्थ को देखें तो पता चलता है कि विभिन्न शब्द कोषों में इनके शब्दार्थ प्रायः समान्य पाये जाते है। 'संस्कृत हिंदी कोष' में प्रबंध के बारे में लिखा हैः प्रबंध–बंधन, कल्पना। और 'बंदिश' शब्द असल में फारसी का लफ्ज है और उर्दू में भी इस शब्द को लिया जाता है। उर्दू लुगत (Dictionary) को तरकीब, इसका मतलब हैः– अल्फाज को तरकीब, इबारत। बंदिश– घात, जोड़, ख्याल बंधन, तरतीब बनावट, पेश–बंदी, नहमत, इबारत तदबीर''। बंदिश को अग्रेंजी में 'composition' के नाम से जाना जाता है।

'वामनराव एच देश पाण्डे' के अनुसार : जैसे संगीतकार अपनी चीज (बंदिश) के बोलों को लेकर उसको आलाप, बोल– आलाप में सजाता है। राग की बढ़त सहायक

स्वर–समूहों, बोल तानों, तानों, फिरत आदि से करता है। इस सारी क्रिया में वह लचक और संकल्प के सिद्धान्त (Principle of tension and Resolution), को ही सभी ओर अपनाता है। हर एक ताल चक्कर या उनके समूह में एक सौन्दर्यात्मक लय मनोहरता की विधि से जैसा कि ऊपर बताया गया है, ही स्वीकृत रूप से परिमाणित है। ये सारी संरचना शुरू से लेकर आखिर तक संगीतकार के लिए बंदिश, चीज, शब्द या साहित्यिक रचना जिसे गाया जाता है, को दर्शाती है। पर अगर देखा जाय तो बंदिश सिर्फ साहित्यिक रचना ही नहीं, बल्कि टोनल रचना भी है और इसके गायन का तरीका ही है जो इसके शब्द को परिभाषित करता है। थोड़े विस्तार में अगर देखा जाय तो यहाँ रचनात्मक पहलु और अंग्रेजी के शब्द 'form' और हर एक आवर्तन या उनके समूह से ही बंदिश को अंदर से बाँधा गया है।

**बंदिश का महत्त्व** :– बंदिश को ट्यून, धुन, चाल, तर्ज इत्यादि से भी संबोधित किया जाता है परंतु यह सभी शब्द गीत, गजल, भजन, लोकगीत, फिल्मी गीत आदि जैसे शब्दाश्रित विधाओं के अनुरूप है न कि शास्त्रीय संगीत के। बंदिश' शब्द का प्रयोग मुख्यतः रागाश्रित शास्त्रीय अथवा उपशास्त्रीय संगीत की रचनाओं के लिए संगीतज्ञों द्वारा होता है।

सबसे आम किस्म है 'ख्याल' जो ध्रुपद के बाद आया। माना जाता है कि मुहम्मद शर्की जौनपुर ने इसको नाम दिया । ये एक गीत (चीज) या एक गत का रूप है जिसमें अलग–अलग समूह में गीत की संरचना होती है। 'चीज' शब्द फारसी भाषा का शब्द है, उनका कहना है कि मेरा संगीतकारों के साथ अपना तजुर्बा है कि मैंने ये शब्द संगीत की चीज के लिए सुना है। जी. एच. रानाडे के अनुसार : काव्य रचना जो पूरी बनी हो मगर जरूरत के अनुसार उसको छोटा या बड़ा किया जा सकता है, जैसा समय निर्धारित हो। Vani Bai Ram के अनुसार, हिंदुस्तानी संगीत में हम हमेशा 'रचना' को ही संगीत के रूप में लेते हैं और एक 'गीत' जो हमेशा 'तीन' या 'चार' भागों में बाँटा जाता है। जैसे : 1. स्थाई 2. अंतरा 3. संचारी 4. और आभोग।

तीनों सप्तकों में विभिन्न संगीतिक अवयवों के द्वारा राग विस्तार को प्रबलता देने, विशिष्ट भाव–प्रदर्शन व सौंदर्य आदि गुणों को शब्द, स्वर, ताल तथा लय के माध्यम से गीत या गत के रूप में बाँधने को राग की 'बंदिश' कहते हैं। अतः राग का संपूर्ण अस्तित्व बंदिश में बँधा रहता है। पं. सुंदर्शनाचार्य ने उस्ताद रहीम सेन तथा उस्ताद अमृत सेन की गत बंदिशों के विषय में विशेष रूप से इस प्रकार उल्लेख किया है। मियाँ रहीम सेन व अमृतसेन की बनाई गतों से राग का ऐसा साक्षात्कार हो जाता है कि उस राग में चलना–फिरना सहज हो जाता है। संगीत का दायरा विशाल है और देखा जाय तो हर युग में रचनाएँ मिलती हैं और इन रचनाओं से ज्ञात होता है कि किस दौर में किस प्रकार की रचनाओं का आगाज रहा। यह संगीत जगत की बड़ी देन है।

पं. कुमार गंधर्व का बंदिश के विषय में विचार है कि मूलतः अरूप रहने वाला राग बंदिश के कारण साकार हो जाता है। राग आत्मा है तो बंदिश शरीर। शरीर का आकार तो सर्वत्र एक ही नहीं हो सकता। इसी तरह बंदिशें भी एक ही प्रकार की नहीं हो सकतीं । वे विभिन्न प्रकार की होती हैं। इसीलिए विभिन्न बंदिशों के आधार पर विभिन्न स्वरूपों में राग प्रस्तुत किए जाते हैं।

विमल मुखर्जी का कथन है, राग संगीत को शुरू करने के लिए सबसे पहले असल में बंदिश के रूप में ही जिसमें आसान तरीके से स्वर समूह लिए गए हों और जिसमें विस्तार हो सके, के रूप में ही विकसित हुआ। ये बहुत बाद का मानना है कि राग के आलाप और विस्तार में सक्षिप्त रूप और प्रचलन विस्तार रूप में होने लगा। इसलिए राग–संगीत के विन्यास में बंदिश का केन्द्रीय स्थान है।

यह हमारे शास्त्रीय संगीत की एक विलक्षण बात है। इससे हमारे संगीत का दायरा और भी बढ़ जाता है और नई बंदिशें भी बनती हैं। संगीत सहज आनंद प्रदान करने वाली सरल कला है और इस कला को प्रदर्शित करने का एकमात्र जरिया संगीत की रचना है।

भारतीय संगीत विद्वानों को किसी राग के विशुद्ध स्वरूप का निर्णय रचना के माध्यम से हो जाता है क्योंकि राग की रचना में ही राग का पूर्णशास्त्र निहित होता है। वास्तव में भाव की अभिव्यक्ति ही संगीत का प्राण है। भाषा, छंद, गान इत्यादि सभी भाव–बोधन के साधन मात्र हैं। पं. भातखंडे के अनुसार, गायक को किसी राग में एक छोटी–सी सुंदर स्वर–रचना सूझती है। उसको सुरक्षित रखने के लिए अपनी रूचि के अनुसार गायक शब्द–रचना करता है ।

उस्तादों को प्रायः कहते सुना जाता है कि अगर तुम्हें किसी राग में विस्तारपूर्ण बंदिश आती है तो तुम उस

राग के संपूर्ण स्वरूप को नजदीक से देख सकते हो । जब कोई कलाकार गायन या वादन करता है तो वह बंदिश के मूल अथवा मुख्य स्वर–समूह के आस–पास बार–बार घूमता सुना जाता है। विशेषकर जब वह मुश्किल अथवा कम गाए–बजाए जाने वाले रागों को प्रस्तुत करता है, जिससे राग का स्वरूप न बिगड़ने पाए। इससे ज्ञात होता है कि राग के स्वरूप को बनाए रखने के लिए बंदिश का कितना महत्त्व है। इस प्रकार बंदिश के विषय में यह कहा जा सकता है कि यह शास्त्रीय संगीत प्रस्तुतिकरण का मुख्य आधार है। बंदिश राग के रस–भाव को निर्धारित करती है, यदि कोई बंदिश द्रुत लय में है तो एक पृथक अनुभूति होगी और उसी राग में विलंबित लय से दूसरे प्रकार की अनुभूति होती है। कहने का तात्पर्य यह है कि बंदिश की गति राग के रस को निर्धारित करती है। धीर, गंभीर रचनाएँ विलंबित लय में ही शोभा देती हैं जबकि चंचल, चपल रचनाएँ द्रुत लय में ही सौंदर्यनुभूति के स्तर तक पहुँचाती हैं। इस प्रकार संगीत में रचनावृत्ति अथवा बंदिश वह मूल मंत्र है जो आनन्द का प्रथम तथा अंतिम सोपान है।

स्वरों का एक ऐसा चलन जो बंदिश में बाँधा जाता है और जो राग का स्वरूप स्पष्ट करता है जिसमें बंदिश के आधार पर ही स्वरों में आलाप और तानें ली जाती हैं। बंदिश के अपने ही साहित्यिक बोल होते हैं। जो मुख्य शुरूआती बोल होते हैं, मुखड़ा कहलाता है, यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण होता है। स्थाई में बंदिश के मुखड़े का जो स्वरूप होगा उसी के अनुरूप राग–विस्तार की योजना होगी। अंतरा में मुखड़े का चलन तार षड्ज पर होता है और यहीं से राग के अंतरा का स्वर–विस्तार होता है।

हमारे संगीत में बंदिश का उतना ही महत्त्व है जितना संगीत में राग की भूमिका है। बंदिश राग को तो दर्शाती है और उसके छंद कभी कभार भाव को भी पेश करते हैं, जैसे रसों का चयन। बंदिश को बाँधने के लिए जिन अंगों की जरूरत होती है, वे इस प्रकार हैं:

1. ताल–बंदिशों के लिए ताल अनिवार्य अंग है। जैसे अलग–अलग बंदिशों के लिए अलग–अलग तालों का प्रचलन।

2. स्वरावली– 'संगीत रत्नाकर' में गीत की परिभाषा करते हुए कहा गया है–

''रंजक स्वर सन्दर्भो गीतमित्यभिधीयते''

अर्थात् कोई भी रंजक स्वर–संदर्भ गीत है। यह तथ्य किसी बंदिश में स्वरावलियों के महत्त्व को दर्शाता है।

3. रागानुकूलता– बंदिश राग के अनुकूल बनाई जाती है। और भी महत्त्वपूर्ण अंग हैं जैसे :

4. बंदिश का साहित्य

5. बंदिश का मुखड़ा

6. बंदिश में सौंदर्यवर्द्धक तत्त्व

7. सरसता एवं भावपूर्णता

**निष्कर्ष** : बंदिश में स्वरावलियों का अनुचित प्रयोग उसे भावरहित बनाता है। सही स्वरों का चयन भावपूर्ण बंदिश के लिए अनिवार्य है। भाव के बिना बंदिश निर्जीव प्रतीत होती है। बंदिश कलात्मक एवं भावपूर्ण हो, बंदिश की रचना प्रक्रिया में इस बात का विशेष ध्यान रखना आवश्यक है।

**संदर्भ सूची:**


1. वसंत, संगीत विशारद, संगीत कार्यालय 2004
2. chib., Satyendra k. sen, companion to north Indian classical music, munshiram Manoharlal, publishers pvt. Ltd., 2013.
3. वृहस्पति, आचार्य, संगीत चिन्तामणि (प्रथम खण्ड), बृहस्पति पब्लिकेशन, प्रथम संस्करण, 1976
4. गर्ग, लक्ष्मीनारायण, संगीत निबन्धावली, संगीत कार्यालय, हाथरस (उ.प्र.), 1987
5. शर्मा, डॉ. जीतराम, आधुनिक व्यावसायिक हिन्दुस्तानी शास्त्रीय गायन परम्परा व लक्षण, सोमनाथ ढल, संजय प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथमए संस्करण, 2004
6. वीर, राम अवतार, भारतीय संगीत का इतिहास, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2006
7. सराफ, डॉ. रमा, भारतीय संगीत सरिता विद्यानिधि प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2003
8. पाठक, डॉ. सुनन्दा, ''हिन्दुस्तानी संगीत में राग की उत्पत्ति एवं विकास'',राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1989
9. गर्ग, लक्ष्मीनारायण, निबन्ध संगीत संगीत कार्यालय, हाथरस (उ.प्र.), प्रथम संस्करण, 2003
10. शर्मा, डॉ. उमाशंकर, संगीत का योगदान मानव जीवन के विकास में, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, जवाहर नगर, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2001
11. रातंजनकर, 'सुजान', आचार्य श्रीकृष्ण नारायण, संगीत परिभाषा विवेचन, आचार्य एस. एन. रातंजनकर फाउण्डेशंन, मुम्बई

यूजीसी–केयर सूचीबद्ध, पिअर रिव्यूड वार्षिक शोध पत्रिका

**स्तोम 2023**

# 21वीं सदी में योग के परिप्रेक्ष्य में मानसिक स्वास्थ्य की अवधारणा

**सचिन भारद्वाज***

***सारांश***

*आधुनिक समय में जीवन की गुणवत्ता का स्तर कम होता जा रहा है आज के दैनिक जीवनमें विकसित विज्ञान ने हमें तकनीकी रूप से एक साथ जोड़ने का कार्य किया है, परन्तु सामाजिक व मानसिक स्वास्थ्य के लाभ से हम दूर होते जा रहे है, आधुनिक समय में हमें आवश्यकता है, कि हम शरीरिक स्वास्थ्यके साथ –2 मानसिक स्वास्थ्य पर भी ध्यान दें, जीवन को सकारात्मक दृष्टिकोण के साथ जीये। हमें लक्ष्य प्राप्ति के मार्ग में मिलने वाली असफलता की स्थिति में भी अपने व्यवहार को सकारात्मक रखना चाहिए, तथा अपने चित्त को स्थिर रखकर जीवन यात्रा पर आगे बढ़ना चाहिए। इसी के परिप्रेक्ष्य में प्राचीन भारतीय शास्त्र भी हमें प्रेरणा देते हैं, योगसूत्र में वर्णित चित्त प्रसादन की विधिको हम आधुनिक गतिशील जीवन में किस प्रकार अपनाये ताकि मन के अदंर उपस्थित नकारात्मक उर्जा को बाहर निकालकर अपनी आंतरिक चेतना को विस्तृत रूप प्रदान कर सकें। जिससे हम एक अनुशासनात्मक, स्वास्थ्य व प्रसन्न जीवन व्यतीत करे। आज मानसिक रोगों की बढ़ती संख्या हमें शारीरिक रोगों की तरफ ले जा रही है।*

**मुख्य शब्द** : *मानसिक स्वास्थ्य, आधुनिक जीवनशैली, योग, सकारात्मक दृष्टिकोण*

**माध्यम** : *द्वितीयक माध्यमों से सहायता ली गई है ।*

**भूमिका**– 21वीं सदी की जीवनशैली को विज्ञान और प्रौद्योगिकी के बढ़ते विकास ने गहन रूप से प्रभावित किया है, इसने स्वास्थ्य के महत्वपूर्ण आयामों (निद्रा, आहार, व शारीरिक गतिविधियों) को अव्यवस्थित कर दिया है, विश्व स्वास्थ्य संगठन भी स्वास्थ्य की परिभाषा को अब अधिक विस्तृत रूप में देखने लगा है, प्राचीन भारतीय शास्त्र हजारों वर्ष पूर्व से ही समग्र स्वास्थ्य की अवधारणा को स्पष्ट कर रहे हैं।

आचार्य सुश्रुत 'सुश्रुत संहिता' में कहते है–

समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते ।। (सु. सं.15/10)

अर्थ– जिससे सभी दोष सम मात्रा में हों, अग्नि सम हो, धातु, मल और उनकी क्रियाएँ भी सम (उचित रूप में) हों तथा जिसकी आत्मा, इंद्रिय और मन प्रसन्न (शुद्ध) हों उसे स्वस्थ समझना चाहिए। इस श्लोक में शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक स्वास्थ्य के महत्व को स्पष्ट रूप से बताया गया है, आधुनिक समय में हम दैनिक जीवन की बहुत–सी गतिविधियों में सामंजस्य करने का प्रयास कर रहे हैं। हम सुबह उठने से लेकर रात को सोने तक किसी भी कार्य को गुणवत्तापूर्ण पर्याप्त समय नहीं दे पाते है, शारीरिक क्रियाकलाप भी धीरे–धीरे कम होते जा रहे हैं। सिर्फ एक स्थान पर स्थिर होकर हम सभी प्रकार की सुविधाओं का भोग कर रहे है जिससे हमारे शरीर की आंतरिक और बाह्य संरचना में भिन्न–भिन्न प्रकार की विकृतियाँ आ रही हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन की एक रिपोर्ट के अनुसार 1975 से 2016 के आंकड़ो को देखें तो पता चलता है, कि पिछले 41 वर्षों में मोटापे से ग्रसित लोगों की संख्या 3 गुना बढ़ चुका है।[1] शारीरिक संरचना को सुधारने के लिये हम तरह–तरह की व्यायाम प्रणाली को अपना रहे हैं। योग भी इसी बीच एक प्रभावकारी विधि के साथ लोगों के जीवन का अंग बनता जा रहा है। परन्तु क्या केवल कुछ आसन और प्राणायाम का अभ्यास हमें ऐच्छिक स्वास्थ्य को प्राप्त करने में सहायक है। निश्चित रूप से ये अभ्यास हमारे स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं परन्तु शारीरिक रूप से स्वस्थ्य दिखाई देने वाला व्यक्ति वास्तव में मानसिक रूप से स्वस्थ्य है, मात्र 1–2 घण्टे यौगिक अभ्यास करने से हमारे शरीर की आन्तरिक क्रिया विज्ञान में कुछ परिवर्तन हो सकता है, परन्तु शेष बचे समय में हम अपनी मानसिकता अपने चारों ओर उपस्थित व्यक्तियों के विषय में तथा स्वयं के विषय में किस प्रकार की रखते हैं, वही हमें समग्र स्वास्थ्य की तरफ अग्रसर करती है। यहाँ हम अपने स्वास्थ्य

*शोधार्थी (योग शिक्षा विभाग) डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)

के एक महत्वपूर्ण आयाम मानसिक स्वास्थ्य को स्थिर बनाये रखने में योग दर्शन में वर्णित विधियों का अध्ययन करेगें। मानसिक स्वास्थ्य व शरीरिक स्वास्थ्य हमारे शरीर के समग्र स्वास्थ्य को स्थिर रखने व इसे सही प्रकार से कार्यन्वित करने में प्रमुख भूमिका निभाते है, सामन्यतः व्यायामशालाओं में जाकर हम अपने शरीरिक सौष्ठव को प्राप्त कर प्रसन्नचित्त अनुभव करने लगते है। पर क्या हम किसी भी व्यक्ति के द्वारा किये गये असाधारण व्यवहार के साथ स्वयं को सही प्रकार समायोजित कर पाते हैं। अधिकांशतःहम तनावग्रस्त होकर अनापेक्षित प्रतिक्रिया कर देते हैं, तथा बाद में उन्हीं प्रतिक्रियाओं की एक विचार श्रंखला हमें आंतरिक रूप से अव्यवस्थित कर देती है,[2] दैनिक जीवन में किस प्रकार योग के माध्यम से शारीरिक स्वास्थ्य के साथ–साथ मानसिक स्वास्थ्य को भी प्राप्त करें, योगाभ्यास इसकी प्राप्ति का एक सहज और सरल उपाय है।

**विषय वस्तु**– योगसूत्र एक मनोवैज्ञानिक ग्रन्थ है। अध्ययन के समय हमें अनेक यौगिक क्रियाओं का वर्णन इसमें प्राप्त होता हैं, अष्टांग योग भी एक प्रमुख व प्रचलित प्रणाली है, परन्तु जब हम अन्य विधियों पर गहनता से विचार करते है, तो हमें जीवन की अनेक समस्याओं का समाधान इसमें प्राप्त होता है। महर्षि पंतजलि योगसूत्र के प्रथम पाद के 33वें सूत्र में चित्त प्रसादन के विषय में चर्चा करते हैं, इस सूत्र मे चित्त को निर्मल, एकाग्र व प्रसन्न रखने के लिये एक महत्वपूर्ण व प्रायोगिक विधि का वर्णन करते है, यहाँ चित्त की प्रसन्नता का आशय सामान्य प्रसन्नता से नहीं है, अपितु चित्त के उस समता भाव में स्थिर होने से है, जो भाव सभी आसक्तियों से रहित है उसी अवस्था को हम इस विधि के द्वारा प्राप्त करते हैं, चित्त (मन, बुद्धि व अहंकार) के अद्भुत सांमजस्य को कहा गया है, प्रत्येक उद्भवित विचार में ये तीनों तत्व मुख्य भूमिका निभाते हैं। ''स्वस्थ्य दिखना व स्वास्थ्य का अनुभव करना दोनों में बड़ा अन्तर दिखाई पड़ता है।''[3] शरीरिक स्वास्थ्य तक ही सीमित रहकर हम स्वयं को अच्छा दिखा सकते है, परन्तु हमारे मानसिक स्वास्थ्य की अच्छी स्थिति ही उसे साकार रूप प्रदान कर पाती है, यह मानसिक स्वास्थ्य हमारी अन्त चेतना के विकास के साथ गहनता से जुड़ा रहता है। हमारे विचार ही हमारी उर्जा को निम्न व उर्ध्वगामी बनाते हैं। अन्तः करण की शुद्धि हमारे मानसिक स्वास्थ्य के साथ गहनता से जुड़ी होती है। प्रकृति व उसके द्वारा निर्मित वातावरण के साथ एकात्मता हमारे व्यक्तित्व को तथा विचारों को प्राण ऊर्जा से भरकर अधिक सकारात्मक व जीवंत बनाती है। सामाजिक व व्यक्तिगत अनुशासन के लिये आवश्यक मूल्यों को प्रदान करने में योग–दर्शन की यह विधि समर्थ प्रतीत होती है क्योंकि उनका सम्बन्ध हमारी आन्तरिक चिंतन प्रणाली व हमारे ज्ञान के द्वारा विकसित हुए दृष्टिकोण से होता है।[4] योग के द्वारा हम अपने दृष्टिकोण को सही दिशा प्रदान करते हैं। बस हमें इसको सम्पूर्ण रूप से अंगीकार करने की आवश्यकता है। जीवन की गुणवत्ता को केवल भौतिक समृद्धि के साथ ही न माप कर हमें अपने वैचारिक स्तर पर इसका मूल्यांकन करना चाहिए। प्रारम्भ में मन को आलम्बन रहित कर पाना असाध्य प्रतीत होता है, इसको हम दैनिक जीवन में किसी भी विचार–विमर्श से तटस्थ नही रख पाते, हमारे द्वारा दी गयी प्रतिक्रिया स्वयं के अन्तःकरण में तदनुसार संस्कारों को परिपक्व करती है। भिन्न–भिन्न प्रकार के व्यक्तित्व हमें दैनिक जीवन में प्रभावित करते रहते हैं। महर्षि पंतजलि द्वारा वर्णित विधि हमें किसी परिस्थिति से भागने का निर्देश नहीं देती, अपितु किस प्रकार के व्यक्तित्व के साथ हम किस प्रकार का व्यवहार करें, जिससे हमारा चित्त उससे प्रभावित न हो और विचारों की श्रृंखला आगे न बढ़े, तथा हमारा व्यावहारिक पक्ष भी परिस्थितियों के अनुकूल रहे । वर्णित विधि का सार तत्व यही है । इस विधि के अनुसार सुखी व्यक्ति वह है, जो अपने कार्य में संलग्न है, तथा शास्त्रानुसार कर्म कर सुखपूर्वक व संतोषपूर्वक जीवनयापन करता है। हमें चाहिये कि हम यदा–कदा ऐसे व्यक्तित्व से मिलें तो उससे मित्रता का भाव रखें, मानव मन दूसरे व्यक्ति के सुखी जीवन से ईर्ष्या भी करने लगता है व तरह–तरह की धारणाओं को विकसित करने लगता है परन्तु हमें अपने चित्त में किसी प्रकार की नकारात्मक विचारधारा नहीं लानी चाहिये तथा उसके साथ मैत्रीवत व्यवहार करना चाहिये, इस प्रकार का व्यवहार हमारे चित्त में नकारात्मक संस्कारों को जन्म नही देता तथा उसे निर्मलता के लिये प्रेरित करता है। व्यवहार का यह प्रशिक्षण हमें तटस्थ भाव की तरफ अग्रसर करता है। जो चित्त की स्थिरता, शुद्धता व निर्मलता में सहायक होता है। करूणा का भाव हमें उन प्राणियों के प्रति रखना चाहिये जो किसी भी दुख से पीड़ित है। सामान्यतः दुखी व्यक्ति को देखकर हम उस को भला–बुरा कहने लगते हैं, उसके द्वारा किये गये कर्मों को दोष देने लगते हैं जो हमारी विचारधारा को

उसके भूतकाल में ले जाता है, वर्तमान स्थिति को समझकर उसके अनुरूप व्यवहार करना, व उसके अनुकूल आचरण रखना मानसिक स्वास्थ्य के विकास का एक महत्वपूर्ण अंग है ''दुख से पीड़ित व्यक्ति को देखकर हमारे अंदर भी वैसे ही स्थिति को अनुभव करना, हमारे जीवंत होने का संदेश देता है।'' पुण्य आत्माएँ हमें जीवन में संमार्ग का अनुसरण करने के लिये प्रेरित करती हैं। महापुरूषों का जीवन सदैव परोपकार व दूसरों को सद्बुद्धि प्रदान करने के लिये ही होता है। ऐसे व्यक्तित्व के प्रति हमें प्रसन्नता का भाव रखना चाहिये, इस प्रकार का व्यवहार हमारे चित्त में प्रदत्त प्रतिक्रिया के अनुसार संस्कार निर्मित करता है तथा वैसा कार्य करने के लिये बाद में मन उन्हीं का अनुकरण करता है। प्रदत्त विधि द्वारा उत्पन्न संस्कारों का निर्माण प्रारम्भ में कुमार्ग से हटाकर सुमार्ग की ओर अग्रसर करता है तथा अन्त में सुमार्ग को भी त्याग कर सर्वोच्च लक्ष्य के प्रति एकात्मता प्रदान करता है। अपुण्य कार्य करने वाले भी इस जगत में विचरण करते हैं, संसार में भाँति–भाँति के लोग होते हैं, जो कोई अपुण्य कार्य करने में भी नहीं हिचकिचाते हैं। स्वयं के दृष्टिकोण से वे इन सभी कार्यों को यथार्थ समझते हैं तथा कदाचित अगर उन्हों समझने का प्रयास करें तो कुछ परिवर्तित हो जाते हैं और कुछ समान स्थिति में रहते हैं। ऐसे व्यक्तियों के प्रति हमें उपेक्षा का भाव रखना चाहिये। उपेक्षा का भाव हमारे अन्त करण को उस स्थिति से तटस्थ बनाने में सहायक होता है।[5] ऊपर वर्णित भाव हमारे अन्तःकरण को प्रभावित करते हैं, ये ऐसी अन्य परिस्थितियों में चित्त को स्थिर रखनें का मार्ग प्रशस्त करती हैं, यही मुख्य संदेश यहाँ दिया गया है। बुद्धि को प्रशिक्षित करने का कार्य भी इस विधि द्वारा किया जाता है। विचारों का द्वन्द्व हमें सही निर्णय लेने में असमर्थ बना देता है। हम सभी स्थितियों को समझते है तथा यह ज्ञान भी रखते हैं, कि किस प्रकार हमें प्रतिक्रिया करनी चाहिये परन्तु व्यक्तिगत उच्च स्वार्थ हमें वह कार्य करने नही देता। इस प्रकार हम चित्त को एक ऐसे स्वार्थपूर्ण विचारों का समूह बनाने में संलग्न हो जाते हैं, जो केवल स्वयं के लाभ व हानि के बारे में विचार करता है। हमें चाहिये कि हम उपस्थित स्थिति को ध्यान में रखकर व अपने अहंकार को निम्नता के स्तर पर लाकर सकारात्मक चिंतन के साथ प्रतिक्रिया करें जिससे हम अपने अन्तःकरण की शुद्धता को अक्षुण्ण बनाये रख सकें।

**मुख्य अंश**– चित्त की स्वच्छता व निर्मलता हमारे समग्र स्वास्थ्य को प्रभावित करती है। स्वामी कुवल्यानन्द द्वारा वर्णित सम्पूर्ण स्वास्थ्य के प्रमुख तीन बिन्दुओं में चित्तप्रसादन को मुख्य अंग माना गया है। स्वामी जी षट् कर्म व आसनों के माध्यम से शरीरिक शुद्धता व स्थिरता प्राप्ति के साथ वैचारिक स्थिरता को भी महत्व देते हैं। मानव जीवन में किसी भी लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये 21वीं शताब्दी के सफल व्यक्ति उद्यमी, आध्यात्मिक गुरू, वैज्ञानिक व विचारक मन की एकाग्रता को प्रमुख आधार मानते हैं। चित्त के द्वारा जो प्रतिक्रिया राग, द्वेष आदि नकारात्मक विचारों के कारण दी जाती है, वह हमारी चेतना को संकुचित कर देती है, पुनः पुनः किया हुआ व्यवहार संस्कारों की प्रबलता को बढ़ाता है। मन की क्रियाशीलता तदनुरूप विषय के साथ स्वाभाविक–सी हो जाती है। बुद्धि का नियंत्रण कम हो वह प्रभावहीनसा हो जाता है।[6] चित्त प्रसादन मूलभूत परिवर्तन पर बल देता है, वह संस्कारों के नकारात्मक समुच्च्य को प्रभावहीन बनाने के लिये हमारे चित्त को इस प्रकार प्रशिक्षित करता है ताकि हम अच्छी प्रकार चित्त को सकारात्मक दिशा में ले जा सकें। सर्वप्रथम नकारात्मक संस्कारों को सकारात्मक संस्कारों के द्वारा हटाया जाता है मित्रता, करूणा, प्रसन्नता व उपेक्षा इस प्रकार के भाव हमारी चेतना को सकारात्मक ऊर्जा के साथ जोड़कर हमारे मन को स्थिर करते हैं। चित्त प्रसादन के अभ्यास से उत्पन्न भाव हमें आसक्ति राग, द्वेष, ईर्ष्या आदि से दूर रखते हैं व इसका अभ्यास हमें नैतिक आचरण तथा उच्च आदर्शो को ग्रहण करने के लिये तैयार करता है।

प्रस्तुत विधि केवल चित्त प्रसादन का दैनिक जीवन में अभ्यास करने वाले व्यक्ति विशेष को ही प्रभावित नहीं करती अपितु उसके व्यवहार को ग्रहण करने वाले व्यक्ति विशेष के चित्त की व्याकुलता को नियंत्रित करती है। चित्त प्रसादन को अंगीकार करने वाली चित्त की प्रतिक्रियाएँ हमारी बुद्धि के साथ भी सांमजस्य को बढ़ाती हैं तथा हमारे अहंकार को नियंत्रित कर उठने वाले पुराने संस्कारों का नियमन भी करती हैं। हमारे स्वयं के हृदय में स्थित शान्ति ही किसी गहन विचार व सृजनत्मकता को जन्म देती है। चित्त की इस स्थिरता के लिये आवश्यक है कि हम अपनी बुद्धि को दुर्लभ परिस्थियों में भी एकाग्र व इन्द्रियों के साथ सामंजस्यपूर्वक रख लक्ष्य की ओर केन्द्रित करें। सामान्य जीवन में उत्पन्न होने वाली परिस्थितियों हमे अस्थिर कर देती है, किसी का व्यवहार हमें व्यथित कर देता है। आधुनिक समय में व्यक्ति में धैर्य की क्षमता का

स्तर घट रहा है। क्षण–भर की स्थिति उसे क्रोधित व प्रसन्न कर देती है।[7] व्यक्तिगत समझ तनाव के प्रति बदल रही है। उसे हमें सकारात्मक रूप प्रदान करना होगा जो व्यवहार कुशलता के माध्यम से संभव हो सकता है। आधुनिक विज्ञान बाहरी खोज में संलग्न है। वह निरंतर प्रगति कर रहा है तथा हमारे जीवन को सहज कर रहा है परन्तु इसके अनेक लाभों के साथ हमारे जीने की गुणवत्ता का स्तर व अपेक्षित आयु घटती जा रही है। मानसिक तनाव की समस्या संसार में विशाल रूप लेती जा रही है। विज्ञान व प्रौद्यौगिक के सदुपयोग के साथ–साथ हमे इसके हानिकारक प्रभाव से बचने के प्रयास भी करने चाहिये। अधिकांश रोगों का मूल कारण मानिसक तनाव व अस्थिरता है। ''एक रिपोर्ट के अनुसार 1993 से 2017 तक मानसिक रोगों में 20 प्रतिशत वृद्धि हुई है।[8] मानसिक तनाव की परिभाषा के अनुसार सामने स्थित परिस्थिति के साथ सामंजस्य का अभाव ही तनाव को जन्म देता है । जीवन की विभिन्न परिस्थितियों में किस प्रकार हम अपने मन की स्थिरता को और अधिक बढ़ायें तथा आज की जीवन–शैली में अपने लक्ष्य को किस प्रकार निर्धारित करें, जीवन से सम्बन्धित ऐसी अनेक समस्याओं का समाधान भी योग–दर्शन के द्वारा संभव है। मनोविज्ञान के द्वारा प्रदत्त की गयी विधियाँ आज जगत के अनेक लोगों की समस्याओं का समाधान कर रही है।[9] परन्तु मनोविज्ञान द्वारा प्रदत्त तात्कालिक समाधान की सीमा अधिक विस्तृत नहीं है। परन्तु योग एक मनोविज्ञानिक चिंतन विकसित कर हमें दीर्घ काल तक उससे निपटने का उपाय बताता है। आवश्यकता है कि हम उसे ठीक प्रकार से समझें और अपने जीवन मे प्रयोग कर सकें। मनुष्य साधारणता भविष्य या भूतकाल में जीता है। परन्तु योग हमें वर्तमान मे जीना सीखाता है। यह आंतरिक खोज को प्राथमिकता देता है। मानसिक रोगों के लक्षण बढ़ जाने पर वे हमारे शरीर में अन्य गंभीर रोगों, जैसे कैंसर, उच्च रक्तचाप, व अन्य मनोवैज्ञानिक विकारों आदि का रूप ले लेते हैं। इन रोगों के मूल में हमारे मन के द्वारा संकलित नकारात्मक विचारधारा तथा उससे उत्पन्न चिंता आदि ही इन समस्याओं को जन्म देती है।[10] शुद्ध अहार का ग्रहण व व्यायाम का अभ्यास मात्र ही उसके पूर्ण उपचार में सहायक नहीं है, अपितु वैचारिक समाधान भी आवश्यक है। हम बस संग्रहित संस्कारों से उत्पन्न विचारों की श्रृंखला में खोये रहते हैं जिनके द्वारा हमारी उर्जा का अधिकांश हिस्सा उपयोग कर लिया जाता है, परन्तु स्वास्थ्य की उत्कृष्ट स्थिति प्राप्त करने के लिये हमें उसके सदुपयोग की आवश्यकता है। अतः समग्र स्वास्थ्य के लिये अधुनिक समय में हमें मानसिक स्वास्थ्य पर ध्यान देने की मुख्य जरूरत है। हमें लक्ष्य प्राप्ति के मार्ग में मिलने वाली असफलता की स्थिति में भी अपने व्यवहार को सकारात्मक रखना चाहिए, तथा अपने चित्त को स्थिर रखकर जीवन–यात्रा पर आगे बढ़ना चाहिए। इसी के परिप्रेक्ष्य में प्राचीन भारतीय शास्त्र भी हमें प्रेरणा देते हैं, योगसूत्र में वर्णित चित्त परिशुद्धता की विधियाँ हमें आधुनिक गतिशील जीवन में मन के अदंर उपस्थित नकारात्मक उर्जा को बाहर निकालने व आत्मविश्वास बढ़ाने में सहायता प्रदान करती हैं।[11]

**परिणाम**– आधुनिक जीवन–शैली में तनाव की व्यक्तिगत समझ हमारे मानसिक स्वास्थ्य के विकास में बहुत सहायक है, योगसूत्र में वर्णित चित्त को शुद्ध, प्रसन्न व एकाग्र करने की यह विधि हमारे अपने चारों ओर उपस्थित वातावरण के प्रति एक समझ या बोध उत्पन्न करती है, यह संसार में उपस्थित सभी प्रकार के प्राणियों के प्रति सांमजस्यता का ज्ञान प्रदान करती है, चित्त के द्वारा दी गयी प्रतिक्रिया उस वस्तु के विषय में पूर्व बोध का संकेत कर संस्कारों का समूह निर्मित करती है, पारिवारिक सम्बन्ध, व्यवसायिक सम्बन्ध, सामाजिक सम्बन्ध व आत्मिक सम्बन्ध हमारे आज के जीवन का एक अभिन्न अंग है, संसारिक यात्रा करते हुए कमल की भाँति अपने चित्त को निर्मल कर परिस्थिति अनुसार अपने भावों को संशोधित कर हम अनेक मनोकायिक रोगों से बच सकते हैं,[12] मनोविज्ञान मन की स्वास्थ्यमूलक धारणा को परिस्थितियों के अनुसार विभिन्न प्रकार से परिभाषित करता है, और उसमें सफल भी होता है। परंतु सम्पूर्ण स्वास्थ्य की प्राप्ति में अपनी महत्ता रखने वाले हमारे व्यक्तिव के अभिन्न अंग चित्त (मन, बुद्धि, व अहंकार) की सन्तुलित अवस्था के लिये योग–दर्शन दीर्घगामी व प्रभावी विधियों को प्रस्तुत करता है। यौगिक ग्रन्थों में उपस्थित यह ज्ञान मात्र संसारिक विरक्तता व समाधि प्राप्ति तक ही सीमित नही है अपितु 21वीं सदी की जीवन–शैली में उद्भावित अनेकों मनोवैज्ञानिक रोगों व मानसिक स्वास्थ्य की प्राप्ति में भी अभूतपूर्व योगदान देता है।[13] यह हमारे सामाजिक व मानसिक दृष्टिकोणों को भी संशोधित करने में सहायक है, योग मानव जीवन के सभी पहलुओं को विकसित करता है। यह सामाजिक अनुशासन से शुरू होकर हमारी बौद्धिक अनुशासन तक की यात्रा है।

समग्र स्वास्थ्य की प्राप्ति में शारीरिक स्वास्थ्य के साथ–साथ मानसिक स्वास्थ्य को विकसित करने में योगदर्शन का अमूल्य योगदान है।

**संदर्भ ग्रन्थ :**

1. https://www.who.int/news-room/fact-sheets/detail/obesity-and-overweight Access March 2022
2. Taneja, DK. "Yoga and health". Indian J community med. 2014: 39:68-72
3. हरिहरानन्द आरण्य, स्वामी. (1980). पातंजल योग दर्शन. अनुवादक डा0 रामशंकर भट्टाचार्य, तृतीय संस्करण, दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास.
4. Abera, teshomo. "Significance of yoga in modern life" https:/wwwresearchgate.net/publication/320086473. Access March 2022
5. Giri, Prof. Ganesh Shankar."yoga psychotherapy around the world". https:/www.researchgate.net/profile/ganesh-giri,Access April 2022.
6. करमवेलकर, डा0 पी. वी. (2005). पातंजल योगसूत्र (महाराष्ट्र) : कैवल्यधाम योग संस्थान, लोनावला.
7. सरस्वती, स्वामी सत्यानन्द. (2013). मुक्ति के चार सोपान. (बिहार) : योगा पब्लिकेशन ट्रस्ट. मुंगेर.
8. https://www.mind.org.uk Access March 2022
9. Sunil."the importance of yoga in daily life" https:/wwwresearchgate.net/publication/278673574. Access March 2022
10. Bhavanani, Ananda Balyogi. "Yoga the ideal way of life" https:/wwwresearchgate.net/publication/237077448. Access March 2022
11. Nagendra, HR. "seeing the truth: yoga for health and harmony". International yoga journal philosophy psychology & parapsychology 2019; 7:1-2
12. Khalsa, Sat Bir Singh. "Yoga for Psychiatry and mental health:An ancient practice with modern relevance". Indian J Psychiatry 2013 Jul, 55 (Supp.l 3) S334-S336.
13. Verma, Monika . Singh, Charan. Rajesh." Importance of yoga in twenty first centuary". International journal of physical education, sports and health. 2015:2(1) : 01-04

**स्तोम 2023** यूजीसी-केयर सूचीबद्ध, पिअर रिव्यूड वार्षिक शोध पत्रिका

# शास्त्रीय एवं उपशास्त्रीय संगीत की विभिन्न गायन–शैलियाँ : एक अध्ययन

**डॉ० किरण सिंह**** **रेखा कुमारी***

*सारांश*

*गायन शैली का अर्थ है गाने का तरीका। हम किसी गायक का गायन सुनते हैं तो उसकी शैली को पहचानने की कोशिश करते हैं। हम उसके द्वारा गाये जा रहे गीत को पहचानते हैं और यह समझ पाते हैं कि वह कौन–सी शैली गा रहे हैं। प्रत्येक गायन–शैली एक–दूसरे से बिल्कुल अलग एवं स्पष्ट होता है। शास्त्रीय, और उपशास्त्रीय विधाओं के अन्तर्गत गायन–शैली के अनेक प्रकार हैं, यथा– ध्रुवपद, धमार, ख्याल, ठुमरी, टप्पा, दादरा, सादरा, त्रिवट, लक्षण गीत, तराना, चतुरंग, सरगम, रागमाला, होरी, कजरी, आदि । इन गायन–शैलियों का वर्णन इस लेख में किया गया है।*

**सूचक शब्द** : *संगीत, गायन–शैली, ध्रुपद, ख्याल, ठुमरी, भजन*

**शोध–माध्यम** : *विभिन्न पुस्तकों के अध्ययन के बाद इस लेख को तैयार किया गया है।*

**ध्रुवपद**– 15वीं शताब्दी में राजा मानसिंह तोमर द्वारा अविष्कृत ध्रुवपद गायन शैली एक गंभीर प्रकृति का गीत है। ध्रुवपद गायन शास्त्रीय संगीत की प्राचीन गायन शैली है। इसकी उत्पत्ति प्रबंध गायन से मानी गयी है। ये स्वर, ताल, शब्द एवं लय युक्त गायकी है। भरतकृत 'नाट्यशास्त्र' में 'ध्रुवपद' शब्द का उल्लेख मिलता है। भरत ने इसमें 18 अंगों का वर्णन किया है। ध्रुवपद एक प्रकार का स्वर तथा छंद में बद्ध रचना थी। वर्तमान समय में ध्रुवपद एक गंभीर तथा जोरदार गायकी माना जाता है। ध्रुवपद के गीत प्रायः हिन्दी, उर्दू, अवधी एवं ब्रज भाषा में मिलते हैं। यह मर्दानी आवाज की गायकी है। यह वीर रस, श्रृंगार और शांत रस प्रधान गायकी है।

तानसेन के काल से ध्रुवपद गायन की चार शैलियाँ या बानियाँ– गोबरहार बानी, डागुर बानी, खंडहार बानी और नौहारबानी का विकास हुआ, इसी काल क्रम में इन्हीं बानियों से गायकों के घराने बने।

ध्रुवपद चारताल, ब्रह्मताल, सूलताल, तीव्रा, झपताल, शिखरताल और पखावज के तालों में गाया जाता है। ध्रुवपद की संगति पखावज के साथ होती है। ध्रुवपद में सर्वप्रथम नोम्–तोम् का सविस्तार आलाप करते हैं। इस आलाप की गति उसके तीसरे अंग से धीरे–धीरे बढ़ाई जाती है, और इसी स्थान से गमक प्रयोग प्रारंभ होता है। ध्रुवपद में खट्का अथवा तान के समान चपल स्वर समूह नहीं दिखाई देते हैं बल्कि मींड और गमक का अधिक प्रयोग होता है। आलाप के पाश्चात् सर्वप्रथम पूरे ध्रुवपद को उसके चारों भागों सहित गाते हैं, और फिर गीत की बंदिश द्वारा विभिन्न बोल बनाते हुए लयकारी का विस्तार करते हैं। ध्रुवपद गाने वाले को प्राचीन काल में 'कलावन्त' कहा जाता था।

**धमार**– 15वीं शताब्दी के अंत और 16वीं शताब्दी के प्रारंभ में तत्कालीन संगीत के परिदृश्य को देखते हुए राजा मानसिंह तोमर और नायक बैजू ने धमार गायकी की नींव डाली। धमार गीत की उत्पति ब्रज भूमि के लोकसंगीत से हुई। इसका प्रचलन ब्रज के क्षेत्र के लोकगीत के रूप में बहुत समय से चलता आ रहा है।

धमार में अधिकतर राधा– कृष्ण और गोपियाँ की होली का वर्णन मिलता है, अतः कुछ लोग इसे होली भी कहते हैं। ध्रुवपद की तरह धमार में भी नोम्–तोम् का आलाप तथा लयकारी दिखाते हैं। इसमें दुगुन, तिगुन, चौगुन, आड़ आदि लयकारियाँ अधिकतर गीत के शब्दों द्वारा दिखाते हैं, और मींड व गमक का खूब प्रयोग करते हैं। इसमें खट्के अथवा तान के समान स्वर–समूह वर्ज्य है। कुछ संगीतज्ञ इसमें सरगम भी करते हैं किन्तु यह ख्याल के सरगमों से भिन्न रहता है। ध्रुवपद अथवा धमार के प्रत्येक भाग में गंभीरता होती है। कुछ विद्वान इसे 'होरी' भी कहते हैं, किन्तु यह उचित नहीं है, क्योंकि गीत का एक दूसरा प्रकार भी है जिसे होली कहा जाता है। धमार को

*शोधार्थी, स्नातकोत्तर संगीत विभाग, तिलकामाँझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

**प्रोफेसर, स्नातकोत्तर संगीत विभाग, तिलकामाँझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

धमार ताल में गाया जाता है। धमार के साथ पखावज बजाने की परम्परा है।

**ख्याल** – ख्याल गायन–शैली हिन्दुस्तानी कंठ संगीत की सबसे प्रिय शैली है। यह फारसी भाषा का शब्द है। ख्याल का अर्थ होता है– विचार या कल्पना । जब कोई श्रेष्ठ गायक अपनी कल्पना को स्वर, लय, ताल के माध्यम से सांगीतिक आकार देता है तो उसे ख्याल कहा जाता है। ख्याल गायन में विलंबित, मध्य एवं द्रुतलय की रचनाएँ गायी जाती हैं।

18वीं शताब्दी में मुगल सम्राट मोहम्मद शाह रंगीले ने ख्याल गायकी का विकास किया। इनके दरबारी संगीतज्ञ सदारंग तथा अदारंग जो तानसेन के वंशज थे, ने ख्याल की अनेक रचनाएँ की तथा इसे अपने शिष्यों को सिखाया। जबकि वे स्वयं ध्रुवपद गाते थे, बावजूद इसके ख्याल के प्रचार–प्रसार में इनकी अहम् भूमिका रही ।

**ठुमरी** – ठुमरी भारतीय संगीत की एक अनुपम गायन–शैली है, इसमें रस, रंग और भाव की प्रधानता होती है। इसमें राग की शुद्धता की तुलना में भाव–सौंदर्य को अधिक महत्व दिया जाता है। ये विविध भावों को प्रकट करने वाली शैली है जिसमें श्रृंगार रस की प्रधानता होती है तथा रागों के मिश्रण भी हो सकते हैं। इसमें रंजकता तथा भावाभिव्यक्ति को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है, इसलिए इसे उप–शास्त्रीय संगीत कहा जाता है।

इसकी प्रकृति ख्याल की तुलना में चपल होती है। ठुमरी खमाज, देश, तिलककामोद, तिलंग, पीलू, काफी, भैरवी, झिंझोटी, जोगिया आदि चपल रागों में गायी जाती है। इसके साथ दीपचंदी अथवा जत ताल बजाया जाता है। ठुमरी में शब्द कम होते हैं। शब्दों के भाव को विविध स्वर–समूहों द्वारा व्यक्त किया जाता है।

इसमें मींड, कण का खूब प्रयोग होता है। स्थायी, अंतरा में काम करने के बाद जब पुनः गीत की स्थायी में आते हैं तो कहरवा ताल में आ जाते हैं। गायक और तबला वादक दोनों विभिन्न प्रकार के सुंदर बोल बनाते हैं, और कुछ देर के बाद पुनः पूर्व ठेके में आ जाते हैं। बनारस, लखनऊ और पंजाब की ठुमरियाँ विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। ठुमरी में सुंदरता बढ़ाने के लिए विभिन्न रागों की छाया दिखाते हैं। इसका आविष्कार लखनऊ के अंतिम नवाब वाजिद अली शाह ने किया था।

**टप्पा** – यह हिंदुस्तानी संगीत की एक विशिष्ट शैली है। इस गायन–शैली को मुगल काल में दरबारी गायन के रुप में स्थापित करने का श्रेय शोरी मियाँ को जाता है।

इसके गीत अक्सर पंजाबी भाषा के होते हैं, इसकी प्रकृति बहुत चपल होती है। इसका उद्भव उत्तर पश्चिमी भारत के ऊँट सवारों के लोकगीतों में हुआ था। इस शैली में लय बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, क्योंकि इसकी रचना सूक्ष्म और जटिल होती है। यह गायन–शैली श्रृंगार रस–प्रधान है। ख्याल के समान टप्पा का भी केवल दो भाग स्थायी और अंतरा होते हैं। इनमें छोटी और पेंचदार तानों का अत्यधिक प्रयोग होता है। इसमें खट्का, मुर्की, कण आदि का प्रयोग अधिक होता है।

**दादरा** – दादरा गायन–शैली ठुमरी गायन की तरह ही श्रृंगार–रस–प्रधान गायकी है। इस गायन–शैली को अधिकतर भैरवी, पीलू, देश, पहाड़ी, मांड, खमाज आदि रागों में गाया जाता है। ठुमरी गाने वाले गायक या गायिकाएँ अक्सर दादरा गाते हैं। यही कारण है कि दादरा गायन–शैली को अधिकतर ठुमरी अंग के रागों में गाया जाता है। दादरा ठुमरी की अपेक्षा अधिक चपल होती है।

दादारा गायन–शैली में भी अन्य गायन शैली की तरह दो भाग होते हैं, स्थायी और अन्तरा । दादरा गायन में राग की शुद्धता पर विशेष ध्यान न देकर रंजकता पर ही ध्यान केंद्रित किया जाता है। दादरा को दादरा ताल में ही प्रायः गाया जाता है। इसके अतिरिक्त कहरवा रूपक तालों में भी यह सुना गया है।

**सादरा** – अर्द्ध–शास्त्रीय संगीत और लोकगीत के बीच की कड़ी है, इस की लय दादरा से बहुत मिलती–जुलती है। सादरा को अधिकतर कत्थक गायक गाते हैं। इसमें कहरवा, रुपक, झपताल तथा दादरा इन तालों का प्रयोग होता है। भाव की सृष्टि से गीतों में श्रृंगार रस और उसकी चंचलता की प्रधानता रहती है, इसलिए इसकी प्रकृति प्रायः ठुमरी की तरह होती है। वाजिद अली शाह ने कई सादरा गीत भी लिखे जो अधिकांशतः खमाज राग में है। कुछ विद्वानों का ऐसा विचार है कि मध्य काल में ठुमरी के साथ मिलती–जुलती एक शैली प्रचार में आयी जिसको सादरा कहा गया। क्रमिक पुस्तक मालिका के छह भागों में ध्रुवपद के अन्तर्गत झपताल की बंदिशें भी प्राप्त होती है, जिसमें सादरा शैली का आयाम मिलता है।

सादरा के भाग ध्रुवपद के तरह ही दो अथवा चार भागों में बँटा होता है, स्थायी, अन्तरा, संचारी और आभोग। सादरा गायन में स्थायी को शुद्धता से ध्रुवपद की परम्परा से गाया जाता है।

**त्रिवट** – त्रिवट एक विशिष्ट गायन–शैली है जो तराना के समान गायी जाती है किन्तु यह गायकी तराना से कुछ कठिन है। इसे त्रिवट के नाम से जाना जाता है। इसे सभी रागों में गाया जा सकता है। यह गायन शैली दक्षिण में चोल्लूकेटू नाम से पुकारा जाता है। त्रिवट की रचनाएँ प्राचीन गुणीजनों के द्वारा रची गयी थीं, आज के युग में त्रिवट गायकी का प्रचार कम हो गया है।

**लक्षण गीत** – गीत के शब्द में राग के वादी, संवादी, वर्जित स्वरों, गायन–समय आदि का वर्णन किया जाता है इसे ही लक्षण गीत कहते हैं। लक्षण गीत के तीन प्रकार हैं–

1. राग लक्षण गीत, 2. ताल लक्षण गीत, 3. शास्त्र लक्षण गीत

1. राग लक्षण गीत – राग लक्षण गीत किसी राग विशेष के लक्षणों को बताने वाला गीत है। वर्तमान समय में राग लक्षण गीत की रचनाएँ भी लक्षण गीत के अन्य प्रकारों से अधिक पायी जाती है। इसमें राग के थाट, स्वर, वादी, संवादी, गायन, समय एवं प्रकृति इत्यादि का वर्णन मिलता है।
2. ताल लक्षण गीत – ताल के लक्षणों को बताने वाले गीत को ताल लक्षण गीत की संज्ञा दी गयी है। इसमें किसी ताल–विशेष के लक्षण अथवा मात्रा, विभाग, खाली, ताली तथा प्रकति इत्यादि के अतिरिक्त यह विवरण भी मिलता है कि यह किस ताल, वाद्य या बजने वाला ताल है।
3. शास्त्र लक्षण गीत – लक्षण गीत के इस प्रकार से संगीत के विभिन्न शास्त्रीय भेदों की चर्चा मिलती है, जैसे– नाद, श्रुति, स्वर, ग्राम एवं मूर्छना इत्यादि ।

**तराना** – तराना हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत के अंतर्गत आने वाली एक गायन शैली है जो मध्यकाल में उपजी, फली–फूली और विकसित हुई। कुछ विद्वानों के मतानुसार तराना की उत्पत्ति 'तरुनम' शब्द से हुई है। 'तरुनम' अरबी भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ स्वर–माधुर्य, खुश आवाज आदि है। तराना के आविष्कार के विषय में कई मत हैं, कुछ लोग तरान का आविष्कारक अमीर खुसरो को मानते हैं। 'मारिफुन्नगमात' के रचयिता नवाब अली के अनुसार तराना दिल्ली घराना के अमीर खुसरो का आविष्कार किया हुआ है। श्रीपदबन्दोपाध्याय के अनुसार तराना लोकप्रिय गायन का एक प्रकार है जिसमें, अर्थहीन शब्द, जैसे– ता, ना, दानी आदि के प्रयोग से तराना–शैली बनी है।

**तराना की गायन**– शैली ख्याल के समान होती है। तराना छोटा ख्याल के बाद गाते हैं। कुछ तराना बिलंबित लय में भी पाये जाते हैं, लेकिन अधिकांशतः तराना द्रुत लय में ही गाने की परम्परा है। गीत के इस प्रकार में नोम्, तोम्, तननन, दिर, दिर, दानी, तदानी, अली, यललि आदि वर्ण होते हैं। तराना सभी रागों में तथा ख्यालों के सभी तालों में गाया जाता है। गायक अपनी तैयारी के अनुसार अधिकतम गति में पहुँचकर तराना समाप्त करता है। तराना का मूल उद्देश्य तैयारी, लयकारी और उच्चारण अभ्यास है। उस्ताद अमीर खाँ के मतानुसार तराना के शब्दों का भी अर्थ होता है। तराना में अरबी, फारसी के शब्द होते हैं, जिनमें बंदा खुदा से प्रार्थना करता है।

**चतुरंग** – चतुरंग हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत पद्धति की एक उत्कृष्ट गायन शैली है। चतुरंग का आविष्कार मतंग के समय से माना जाता है अर्थात् मतंग काल से इसका प्रचलन आरंभ हुआ। चतुरंग के पहले भाग में गीत के शब्द, दूसरे में तराना के बोल, तीसरे में सरगम, और चौथे भाग में मृदंग के बोलों की एक छोटी–सी परन होती है। यह द्रुत लय–प्रधान गायन–शैली है। इसमें छोटे–छोटे आलाप, बोल आलाप तथा बहलावे होते हैं। इसमें भाव–पक्ष की अपेक्षा कला–पक्ष का अधिक महत्व होता है। यह अधिकतर चंचल प्रकृति के रागों में ही गाया जाता है।

**सरगम** – संगीत के सुरों का नाम सरगम दिया गया है। सरगम शब्द प्रथम चार स्वरों के नामों के प्रथम अक्षरों के मेल से बनाया गया है। संगीत के मुख्य सात स्वर होते हैं, जिसके नाम षड्ज, ऋषभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद है। बोल–चाल की भाषा में इसे सा, रे, ग, म, प, ध तथा नि कहा जाता है। उपरोक्त सात मुख्य स्वर के अतिरिक्त पाँच सहायक भी होते हैं, जिन्हें कोमल रे, कोमल ग, तीव्र म, कोमल ध और कोमल नी कहा जाता है । इन्हीं स्वरों की सहायता से संगीत की रचना की जाती है।

**रागमाला** – एक ही बंदिश में अनेक रागों के नामानुसार

स्वरों में बँधे प्रबन्ध को 'रागमालिका' या 'रागमाला' कहते हैं। हिंदुस्तानी संगीत में इसे प्रायः 'रागसागर' कहते हैं। इसमें प्रायः भिन्न–भिन्न रागों के नाम आते हैं। यह एक कठिन परन्तु सुन्दर शैली है ।

**होरी** – 'होरी' शब्द की व्युत्पत्ति का सम्बंध शास्त्रीय संगीत की धमार–शैली के साथ जोड़ा जा सकता है क्योंकि इसके साहित्य में प्रायः होरी का वर्णन मिलता है। भारतीय संस्कृति में श्रृंगार और आनन्द महोत्सव के रूप में बसंत एवं होली क्रीड़ा का हमेशा से महत्व रहा है। प्राचीन ग्रंथों में इसे मदनोत्सव कहा जाता है। ऋतुराज के आने पर उसके मनमोहक वातावरण में स्वयं को सम्मलित करने का त्योहार है होली। यह मूलतः ब्रज शैली का गायन है। यह गीत का वह प्रकार है जो ठुमरी के ही ढंग पर दीपचंदी ताल में तथा मुख्यतः काफी राग में गायी जाती है। इसमें कृष्ण से सम्बंधित ब्रज की होली का वर्णन मिलता है। इसमें मींड, खट्का, कण, मुर्की, आदि सुंदर लगते हैं।

**कजरी** – कजरी पूर्वी उत्तरप्रदेश का प्रसिद्ध लोकगीत है। कजरी की उत्पत्ति मीर्जापुर में मानी जाती है। यह वर्षा–ऋतु का लोकगीत है। इसे सावन के महीने में गाया जाता है। यह अर्द्ध–शास्त्रीय गायन के रुप में भी विकसित हुआ। कजरी गीतों में वर्षा–ऋतु का वर्णन, विरह–वर्णन तथा राधा–कृष्ण की लीलाओं का वर्णन अधिकतर मिलता है। कजरी की प्रकृति क्षुद्र है। इसमें श्रृंगार रस की प्रधानता होती है। उत्तरप्रदेश एवं बिहार में भी कजरी गाने का प्रचार खूब है। प्राचीन काल से ही उत्तरप्रदेश का मिर्जापुर जनपद विंध्यवासिनी के शक्तिपीठ के रुप में आस्था का केंद्र रहा है। प्राचीन कजरियों में शक्ति स्वरुपा देवी का ही गुणगान मिलता है। आज कजरी का विषय काफी विस्तृत है परंतु कजरी गायन का प्रारंभ देवी गीत से ही होता है। यह महिलाओं द्वारा गाया जाने वाला लोकगीत है। मांगलिक अवसर पर महिलाएँ समूह में कजरी गायन करती हैं तो उसे ढुनमुनिया कजरी कहा जाता है। कजरी के गीतों में ननद–भाभी के हाव–भाव से सम्बंधित गीत के बोल भी होते हैं।

संगीत को कम समझने वाला व्यक्ति भी लय, स्वर तथा ताल में बहुत भावकतापूर्ण रचना का आनंद प्राप्त कर सकता है।

**निष्कर्ष**– इस प्रकार शास्त्रीय संगीत एवं उप–शास्त्रीय संगीत की विविध गायन–शैलियाँ हैं जिसके कारण हमारा संगीत समृद्ध है । ये सभी गायन–शैलियाँ भारतीय संगीत के प्राण हैं।

**संदर्भ सूची :**

1. सिंह, गजेंद्र नारायण, बिहार की संगीत परम्परा, शारदा प्रकाशन पटना
2. बृहस्पति, कैलाशचंद्र देव, ध्रुवपद और उसका विकास, बिहार, राष्ट्रभाषा परिषद, पटना
3. गर्ग, डॉ० लक्ष्मीनारायण, संगीत मुसलमान और भारतीय संगीत अंक, संगीत कार्यालय हाथरस ( उ०प्र०)
4. गर्ग, लक्ष्मीनारायण, निबंध संगीत, संगीत कार्यालय, हाथरस ( उ०प्र०)
5. श्रीवास्तव, प्रो० हरिश्चंद्र, संगीत निबंध संग्रह, संगीत सदन प्रकाशन, इलाहाबाद
6. शर्मा, प्रो० स्वतंत्र, भारतीय संगीत : एक ऐतिहासिक विश्लेषण, 618/95/38, सर्वोदय नगर, अल्लापुर, इलाहाबाद (उ०प्र०)
7. बहरदार, डॉ० छोटेलाल, लोकगीतों का समाजशास्त्रीय अध्ययन, भारतीय प्रकाशन, नई दिल्ली

# Blurring the line between fact and fiction in Colleen Hover's Verity

**Dr. Anurag Kumar**** **Rashmi Jasrotia***

**Abstract**

*The present research paper aims at examining the blurring line between fact and fiction in Colleen Hover's Verity. This study employs Biographical Legend and Narrative Transportation Theories and performs textual analysis to support the claim. This paperargues that blurring the line between reality and fiction can have real-life consequences. Author and reader have a crucial role in obscuring the line between fact and fiction.This paper analyses the reasons for intermixing fact and fiction, the role of the author and readers in blurring the line between reality and fiction, impact on readers by intermixing fact and fiction in the novel Verity. Narrative-based pedagogy should be introduced to avoid this intermixing of reality and fiction. These learning practices help learners to develop their critical and analytical thinking.*

**Keywords :** *fact, fiction, narrative-based pedagogy, biographical legend, narrative transportation theory.*

**Methodology :** *This study is supported by secondary sources.*

## 1. Introduction

Any narrative is termed as fiction if it is produced and originated from the imagination, neither represented as fact nor as true event, though it may be framed from as a true event or situation is termed as fiction. The word 'fiction' is taken from the Latin word 'fictio'which means "the act of making fashioning or moulding".[1] According to M.H Abhram"in an inclusive sense, fiction is any literary narrative, whether in prose or verse, which is invented instead of being an account of events that actually happened".[2] Imaginative narration can be found in this kind of literature especially in prose form.Some examples of fiction are given as the novel, short stories, and novella. A narrative that provides us information or narratesreal-life events is known as nonfiction. In regards to information, events, or people, these nonfiction narratives are only used to present truth and precision. Non-fiction can be described as both subjectively or objectively. These non-fiction narratives aren't embedded in a fictional narrative. Non-fiction books are formed on real-life events. Non-fiction comprises autobiographies, Biographies, memoir, travel guides, travelogues, Academic texts,etc. I. A. Richards describes that fiction is a form of 'emotive language' formed by 'pseudostatements' and that whereas a statement in 'referential language' is "justified by its truth, that is, its correspondence…with the fact to which it points," a pseudostatement "is justified entirely by its effect in releasing or organizing our attitudes" (I.A. Richards, Science and Poetry, 1926). Like fiction,there is a fantasy that comprises of those situations which are not true but just imaginations, and similarly, like non-fiction, there is a reality that includes events that happened in real situations. If we go with the definitions, they suggest that fantasy is not the same as reality, they are completely different from one another but there are some instances where the line between reality and fiction gets blurred. Sometimes readers incline to the opinion that fiction is real. As said by Francesca Lo that "Fiction isn't antithesis to reality-it helps to shape it". There is a very thin boundary between fiction and reality. As in some reality shows, the participants are actual but the circumstances are

*Gali Ram Kala Mandir, Court Road Uhampur, Jammu & Kashmir
**Asstt. Prof. English, Shri Mata Vaishno Devi University, Katra, Jammu & Kashmir

not. When fiction gets the idea from the real world it gets more operative due to the similarity with the truth. Everything that reflects the finer description of reality enthuses human beings in such a fashion that they incline to trust it. Fictional works should not give a delusion that looks like the truth as it can come to light as threatening. Concocted truths inflict more harm than good. In movies, online spaces, books, films the line between fantasy and reality is getting blurrier. Factual and fictional information share alike goals i.e. conveying knowledge, linking people, able to make people laugh, or even antagonizing and alienating others. Factual stories achieving these goals by using real events or information whereas fictional narratives do so without laying claims of truthfulness. As a result, overlooking and leaving, these dissimilarities can have outcomes for individuals who accept and believe fiction as a fact. According to the researchers, out of 7804 responses they recorded, more than 80 percent of the middle school students thought that advertisements on the internet were actually true stories, and in the case of high school students, 80 percent of them had a hard time differentiating between real and fake pictures and videos resulting that "overall, young people's ability to reason about information on the internet can be summed up in one word: bleak".[3] Certainly, not being able to distinguish between fantasy and non-fiction on online platforms can have consequences in real life which can be more significant life-threatening.

## 2. Real Life Incidences which results due to blurring the line between fact and fiction

In the spring of 2014, two 12 years-old girls tried to impress a fictional character which is a famous internet meme and often appears in horror stories and movies by inviting her for a sleepover and then stabbing her 19 times in a wooded location. One of the accused girls told the authorities that they often visited a webpage and Slenderman was the leader of that page, further, they added that to gain slender man's respect his followers had to kill somebody.[4]

In Russia, there were accounted 130 suicides due to an online suicide game called "Blue Whale Challenge". There were also reported a great number of deaths around the globe. This game with its unusual, bizarre memes and creepy stories persuaded the players to trespass the line which separates reality and fiction. Teenagers with depressed and suicidal mindsets are most likely to be fascinated and drawn towards online platforms such as "Blue Whale Challenge" in the exploration of like-minded people. According to an investigation done by Radio Free Europe, there is no formal mention of such groups or the Blue Whale game in the police investigation of the quoted Russian teen suicide yet.[5] The point is that game still held scarcely accountable for the suicides.

In 2012, after watching his favorite animal character 'Itachi Uchiha's' death on television in an animated movie 'Naruto-Hurricane Chronicle', a Russian teen jumped out from his apartment. His father stated in his statement that he always used to warn him about the extreme time that he was spending on watching television and that he didn't know the difference between reality and fiction anymore.[6] These cases prompted journalist and researchers to debate and discuss the issues which are related to the real-life influence of the stories that young internet exposed to in online spaces. Although we do realize that movies are fictional after watching movies like Jaws before visiting a beach, which can change our behavior significantly we will begin to wonder that is it even safe to take a dip in the ocean.[7] This draws a result that journey, events, and tours in the narrative world can leave an individual's power to differentiate between fictional narrative experiences and altered reality.

For blurring the line between reality and fiction, interactive fiction also plays an important role and must be held responsible. Games like Ever

Quest provide such an enticing experience of gaming that this makes it an interactive narrative. This interactive experience of gaming is a mixed blessing. It can become an alternative world that is more tantalizing and alluring than their simple and plain lives that they are living in the real world.[8]

Gerrig (1993) stated that "when we experience fictional narratives, we presume the information to be true until we find the reasons to disbelieve it."For instance, Even though we realize that Harry Potter's use of a magic wand does not exist in real life, it makes sense when we read it in the context of the Harry Potter world. Similarly, there is no evidence of the non-existence of Slenderman therefore the children and teenagers who read about Slenderman might not investigate his actuality and existence.Yet we amalgamate that knowledge in our brain without ever addressing it.

### 3. Books roles in intermixing the line between fact and fiction

As Books are threatening to blur the lines between fiction and reality. According to the teen site member Intergalactic Zen, Dangerous books occasionally bring a narrative to life, sometimes bring life to a narrative, but they're dangerous for the courses of actions they make us experience. The question arises that how can a book be dangerous. Books can't give us bruises or scars. It is easy to assume, therefore, that the most dangerous books would be so because of the brutality of their depictions of their subjects; murder, violence, wars.

A dangerous book is threatening because the way it makes us feel dangerous can be considered threatening. These books introduce the impossible and unreasonable in a very possible manner because of their terrifying and dramatic narrative.

In 2008, Khaled Hosseini's The Kite Runner ranked at number eight in the American Literacy Association's most recurring banned books list. The practical representation of ongoing events was the most frightening aspect of Hosseini's books. Forming a feeling of detachment, alienation and make a difference between ourselves, and the characters we study is the main part of the course of reading. Merely to observe and notice their existence; and at most, to empathize with it is the primary role of the readers. But then a character utter or does something we would, obsesses and possessed over a sensation with which we are very familiar,after that immediately all sense of omnipresence fades away and we as a reader vision ourselves at the center of a murder plan or an accident or some other brutal twist of fate.

The present study explores the above-mentioned veritable position of fiction and reality in Colleen Hover's *Verity*.

### 4. Biographical Legend

Biographical Legend is the deliberate fusion of fact and fiction. This theory was given by Boris Tomashevsky. Tomashevsky stated that the boundary between literature and reality becomes blurred. He further states that when the question of imitating characters from life has appeared, writers a member in his novels, a "living hero." Tomashevsky states "A double transformation takes place: heroes are taken for living personages, and poets become living heroes…" Tomashevsky argues that "sometimes difficult to decide whether literature recreates phenomena from life or whether the opposite is in fact the case: that the phenomena of life are the result of the penetration of literary clichés into reality." He further stated that the biographies of the writers "cultivated as oral legends". The biography of the writer "as a premise to his creations not his actual curriculum vitae but his ideal biographical legend". These legends being a "premise which the author himself took into

account during the creative process"[9]

Tomashevsky's essay 'Literature and Biography' reveals the biographical legends around the authors such as Voltaire and Pushkin. He further states that in the form of a letter, diaries, and discreet anecdotes, a biographical legend was intentionally devised through the autobiographical way of representation, producing fiction of autobiography. In this similar way, Pushkin selects to paint and represent a fictional Pushkin. These biographies were formed alongside their literary work, and the biography which is the writer's biographical legend exercised as the desired mode for reading and interpretation. The Biographical legend is the intentional synthesis of fact and fiction.

## 5. Narrative Transportation Theory

Narrative transportation theory states that when people lose the track of themselves in a narrative, their attitude and objectives alter to follow that narrative. The notion of Narrative Transportation Theory was first coined by Gerrig. Green, Clatham and Sestir mentioned that "psychological immersion into someone else's story-also called "narrative transportation"- entails emotionality and attentional focus". Other two studies by them proposed that "when reader's pre-reading emotional states matched the emotional tone of a narrative, transportation into that narrative was increased". Another study (Green et al) proposed that "individuals could often develop a sense of connection with the people that they encountered in these narrative worlds, which reinforced their belonging to a specific community. This connection, a result of their immersion in a specific story world is a "process that consists of increasing loss of self-awareness and its temporary replacement with heightened emotional and cognitive connections" with a person or a cause" (Cohen).

The question arises that what makes a story so strong that it can transfer the readers to the narrative world of the story. Green and black presented in their 'description of Transportation Theory 'that "the enjoyment of stories relies more on immersion in anarrative world than on the type of mediait self". A chain of experiments indicated that "more participants were transported in a story, the more they believed its content to be true". The author argues that "it was the idea of transportation, or "the emotional reactions, mental imagery, and loss of access to real-world information, " that made a story persuasive" (Green and Brock) "Narrative transportation provides us enjoyment, allows us to escape, to self-transform, and to develop empathy and connections with characters, but can also lead the way to influential persuasion" (Green, Brock and Kaufman 2004). Gerrig stated that "when we experienc efictional stories, we presume the information to be true until we find reasons to disbelieve it".

## 6. Analysis of the novel Verity

Summary

The novel Verity is written by Colleen Hoover. It is about the life story of Verity which is narrated by her in her different works i.e. autobiography (So Be It) and letter and there is no POV of Verity in the novel because she is in coma. Lowen Ashleigh, a struggling writer in the novel, is hired by Verity's husband Jeremey Crawford to complete the remaining books of Verity's book series. Lowen discovers the autobiography of Verity named So Be It in verity's study room. Lowen, as a curious person starts reading the autobiography. In this autobiography, she found all the horrors and menacing acts done by Verity. The line of reality and fiction is not only blurred for Lowen but Jeremey also believed the contents of the autobiography. They believed that Verity is a criminal who killed her daughter Harper and she is an evil person by nature. So, when they came to know that Verity is acting to be in a coma. They decided to kill Verity without

even listening to her part of the story. In the last, when Lowen discovered the letter of Verity in her room, in which she clarifies that she is only doing antagonistic journaling to improve her writing skills. Jeremey also believed in the autobiography of Verity even before Lowen finds the autobiography. For Lowen, the line between reality and fiction collapsed again and she believed in the contents of the letter and flushed it down so that Jeremey wouldn't find the letter.

### 7. Instances of blurring the line between Reality and Fiction in the novel Verity

Some of the points show that the line between fact and fiction got blurred.Tomashevsky argues that it "sometimes difficult to decide whether literature recreates phenomena from life or whether the opposite is in fact the case: that the phenomena of life are the result of the penetration of literary clichés into reality."In the novel, Lowen and Jeremy are framing their lives by the process of converting literary works of Verity into reality. Lowen read the autobiography of Verity and believed all its content because of her narrative transportation into the autobiography which results in blurring the line between fact and fiction. This line is so blurred for Lowen that she helps Jeremey in murdering Verity. So, Lowen took autobiography as a fact which shows that she lost her ability to distinguish between fact and fiction. This instance in the novel when Lowen lets Jeremey kill Verity because she thinks Verity is an evil person as she has described herself in the autobiography.

"I don't even argue with him. There is not a single cell in her body that deserves to live after all she's done."

Lowen rejects true autobiography and believed in the letter in the end. She swallowed half of the torn letter and flushed half of the content of the letter because of the fear of Jeremy finding it out. She mixes the truth and fiction and believed it as a fact. The act of swallowing down and flushing the letter proves that Lowen considers the letter as a fact. So, for her this is also a fact. This instance in the novel shows that Lowen has taken the letter as fact. Lowen to herself.

> He found out the manuscript wasn't real and that Verity never harmed Harper, he wouldn't be able to survive that kind of truth… I kneel in front of the toilet and I start ripping each page into tiny shreds. I flush some of the paper and eat as many pieces of the letter I can find with Jeremy's name. I want to make sure no one ever reads a word of this.[10]

Lowen believed both the narratives that are autobiography and letter at different times and Jeremey also believes the content of the autobiography. The reason behind that might be Verity's popularity in writing as she is the best seller writer in the novel. This might leads to the transportation of the readers presented in the novel to the world of narratives.Radway argued in her book that crime thrillers and romance novels may not be the "great" literature but thousands of people are enthusiastic about these books. These books are designed in such a way that leads to transportation.[11] Green and Brock stated that "Best-seller status could be a mark of transportingness."[12]

Another instance in the novel shows that line between fact and fiction is blurred for Lowen. Lowen herself, in the novel, admits that she fell in love with Jeremey as Verity describes him in her autobiography. Green and Brock argued that "a protagonist may serve as an 'internal' source of information or beliefs, transportation may lead to greater liking for sympathetic protagonist". This paragraph in the novel indicates that

> That manuscript is definitely fucking with my head. I feel like I'm falling in love with the man, and I've only known him for a few weeks. But I'm not only falling in love with him in real life.

> I've fallen in love with him because of Verity's words. Everything she revealed about him has given me insight into the kind of person he is, and he deserves better than what she gave him.[13]

So she is forming opinions against Verity and at the same time and also believing everything to be truly written by her in her narrative. This shows Lowen's loss of ability to differentiate between fact and fiction.

**8. Impact of blurring the line between reality and fiction on readers in novel Verity**

Narrative transportation "process that consists of increasing loss of self-awareness and its temporary replacement with heightened emotional and cognitive connections" for a "person or a cause" (Cohen).These "heightened emotional and cognitive connections" lead to further blur the line between reality and fiction it has a great impact on the readers that are present in the novel. Lowen has a clear thought at the beginning of the novel. She hates that her boyfriend fell in love with her character rather than her.

> It has to be confusing, falling in love with a writer's words before you meet the actual writer. Some people find it difficult to separate a character from the individual who created them. Corey, surprisingly, is one of those people, despite being a literary agent. He met and fell in love with the female protagonist of my first novel, Open Ended, before he ever spoke to me. He assumed my character's personality was a close reflection of my own, when in fact, I couldn't be more opposite from her.[14]

These lines are the thoughts of Lowen on her boyfriend at the beginning of the novel. This paragraph shows that Lowen's boyfriend Corey is in love with the character of her novel. Before going into the relationship with her, Corey thought that Lowen and her character in the novel must have similar traits.

She starts reading the autobiography, she became confused. It became difficult for her in what to believe or what to disbelieve. "I know a writer who admitted she uses her husband's name in every manuscript until she can come up with a name for her character. Maybe that's what Verity does. Maybe it was just another work of fiction, and Jeremy's name was only there as a placeholder." After reading few more chapters, Lowen altered her opinion again "A mother wouldn't write that about herself-about her daughters-if it weren't the truth. A mother who never had those feelings or thoughts would never even dream of them. I don't care how good of a writer Verity is; she would never compromise herself as a mother by writing something so horrid if she didn't actually experience that"[15] and after that, her opinions and perspectives changed. At the beginning of the novel, she always used to hate her boyfriend for believing in her narrative but now she started believing in someone else's narrative and her whole opinions and perspective changed. According to Van Laer et al "the effect of narrative transportation, which manifest itself in story receiver's affective and cognitive responses, beliefs, attitudes, and intentions from being swept away by a story and transported into a narrative world that modifies their perception of their world of origin". The narrative transportation of the readers i.e. Jeremy and Lowen in the autobiography which leads them to believe everything to be true as written by Verity.

Green and Clark argue that "Transportation effects work through reducing counter arguing, creating connections (identification and liking) with characters and increasing perceptions of realism and emotional involvement". When Lowen started reading the autobiography of Verity, she starts believing everything written in the autobiography to be true. Lowen is emotionally attached to the

autobiography and she stops to think rationally. Lowen even murders Verity based on her reading of autobiography which shows how much of a big impact it has on the reader. Jeremy who lives with his wife Verity also believes everything which is penned down by Verity in her autobiography and killed her based on that. It also leads us to think how much a work of fiction has power over the readers that are present in the novel.

Lowen's belief in the letter also leads us to think about the power and impact a narrative has on its reader. Lowen's belief in the letter also makes her feel regret over the crime that she committed. So, the readers in the novels faced a lot of difficulties when they lost their ability to distinguish between fact and fiction.

### 9. Role of Author in blurring the line between Reality and Fiction in Colleen Hover's Verity

Verity is an excellent writer. She is a very successful writer. Verity, as an author had a big role in blurring the line between reality and fiction. As Tomashevsky describes the biography of the writer "as a premise to his creations not his actual curriculum vitae but his ideal biographical legend". These legends being a "premise which the author himself took into account during the creative process"[16]

Case 1: Let's consider the autobiography as fiction.

The above condition justified that Verity has created her biographical legend (different self) in her autobiography and she creates her legend around her life which leads the reader in the novel to believe her legend as her true self and the readers in the novel murdered her based on the image build by her legend.

Case 2: Let's consider the letter as fiction.

Considering this condition that autobiography is fact and letter is fiction, Verity is again successful in creating a biographical legend in her letter which is different from her autobiographical self. Reader i.e. Lowen again believes this legend as Verity's true self. As Lowen tore the letter into pieces, half of the letter she swallowed down and half pieces of the letter she flushed, in fear of Jeremy finding out that letter.

Case 3: Let's consider that both letter and autobiography is fiction.

Verity is successful in creating different biographical legends for her different works and readers believed her both legends as true at different times and truth is altogether something different.

Lowen, herself a writer, and Jeremy, husband of Verity aren't able to make difference between the writer and the real person. These are some lines in the letter of Verity that represent Jeremy isn't able to differentiate between the writer and the actual person "I can't explain the mind of a writer to you, Jeremy. Especially the mind of a writer who has been through more devastation than most writers combined. We're able to separate our reality from fiction in such a way that it feels as if we live in both worlds, but never both worlds at once".

### 10. Role of readers in blurring the line between fact and fiction in Colleen Hover's Verity

The role of the readers in blurring the line between reality and fiction can be showed by narrative transportation theory. Readers in the novel are 'psychologically immersed in someone else's narrative' which leads to their transportation into the narrative world and they are no longer capable of differentiating between fact and fiction anymore and this transportation of both the readers into the world of narratives leads them to commit the crime in the novel. At first, Lowen is in dilemma in believing the autobiography but when she starts reading more chapters of the manuscript, she completely transferred herself into the narrative. She didn't even think of the real world.

For Lowen, the narrative of autobiography and letter is equal to the life events of the characters. As for Jeremy, he believed the autobiography at once too. So, these two characters as the readers in the novel are fully immersed in the narrative worlds created by Verity.

## 11. Conclusion

The present research paper shows various incidents such as the Slenderman incident, 'Blue Whale' online game incident to reveal the extent to which the line is blurring between reality and fantasy in the contemporary world. It is difficult for people to differentiate between fact and fiction in online platforms, interactive games, and some books. This research paper aimed at finding the intermixing of the line between fact and fiction in Colleen Hover's Verity. This paper discusses that narrative transportation into some else's narrative which is one of the main reasons for intermixing the line between fact and fiction. The author plays a certain role by creating their legend, they build their image which is completely different from their real self. As in contemporary times, people are more on social media, it further became difficult for them to distinguish between reality and fiction. So, the concept of close reading should be introduced to young students. Teachers need to create some lessons which can develop analytical and critical thinking in students. Narrative-based pedagogy should be introduced by educators as "beyond the close reading of isolated texts, narrative-based pedagogy emphasizes holistic practices of creation, critique and interpretation."[17] Narrative-based pedagogy will help students in meaning-making and interpretation in this contemporary world. "Countering narrative transportation through narrative-based pedagogies that reinforces students' media literary is an effort that needs to undertake in our educational system-particularly in times of political and social transformation."

**Reference :**

1. Britannica, and T. Editors of Encyclopedia. "Fiction." www.britannica.com. Encyclopedia Britannica, Published January 17, 2019. https://www.britannica.com/art/fiction-literature.
2. Abhrams, M.H, and Geoffrey Galt Harpham. *A Glossary of Literary Terms*. Cengage Learning, 2015.
3. Stanford History Education Group. "Evaluating Information: The Cornerstone of Civic Online Reasoning." stacks.strandford.edu. Published November 22, 2016. https://stacks.stanford.edu/file/druid:fv751yt5934/SHEG%20Evaluating%20Information%20Online.pdf
4. Hanna, Jason, and Dana Ford. "12-year-old Wisconsin girl stabbed 19 times; friends arrested." www.cnn.com. CNN, Published June 4, 2014. https://edition.cnn.com/2014/06/03/justice/wisconsin-girl-stabbed/index.html
5. Adeane, Ant. "Blue Whale: What is the truth behind an online 'suicide challenge'?" www.bbc.com. BBC News, Published January 13, 2019. https://www.bbc.com/news/blogs-trending-46505722.
6. Webb, Sam. "Russian teen leaps from apartment block after seeing his favorite Japanese cartoon character die on television." www.dailymail.co.uk. Daily Mail Online, Published November 1, 2012. https://www.dailymail.co.uk/news/article-2226324/Russian-teen-leaps-apartment-block-seeing-favourite-Japanese-cartoon-character-die-television.html
7. Gretter, Sarah, Aman Yadav, and Benjamin W. Gleason. "Walking the Line between Reality and Fiction in Online Spaces: Understanding the Effects of Narrative Transportation." *Journal of Media Literacy Education* 9, (2017): 22. Accessed April 17, 2021
8. Simmons, Keith. "EverQuest: Blurring the Lines between Reality and Fantasy." (2004): 15. Accessed April 15, 2021. https://web.stanford.edu/group/htgg/cgi-bin/drupal/sites/default/files2/ksimmons_2003_1.pdf
9. "Boris Tomashevsky "Literature and Biography" (1923)", *Readings in Russian Poetics: Formalist*

*and Structuralist Views,* Edited by Ladislav Matìjka Edited by, and Krystyna Pomorska. Cambridge: MA: MIT Press,1962. https://www.scribd.com/document/133539661/09-a-Tomashevsky-Literature-and-Biography

10. Colleen, Hover. Verity: Chapter 24: 2018
11. Radway, J. *A feeling for Books*. Chapel hill, NC: University of North Carolina Press, 1997.
12. Kaufman, G.F, Libby, L.K. "Changing Beliefs and Behaviour through experience-taking." *Journal of Personality and Social Pshycology,* (2012): 1-19.
13. Colleen, Hover. Verity: Chapter 20: 2018
14. Colleen, Hoover. *Verity*: Chapter 2 : 2018
15. Colleen, Hoover. *Verity*: Chapter 7 : 2018
16. "Boris Tomashevsky "Literature and Biography" (1923)", *Readings in Russian Poetics: Formalist and Structuralist Views,* Edited by Ladislav Matìjka Edited by, and Krystyna Pomorska. Cambridge: MA: MIT Press,1962.https://www.scribd.com/document/133539661/09-a-Tomashevsky-Literature-and-Biography
17. Gretter, Sarah, Aman Yadav, and Benjamin W. Gleason. "Walking the Line between Reality and Fiction in Online Spaces: Understanding the Effects of Narrative Transportation." *Journal of Media Literacy Education* 9, (2017): 22. Accessed April 17, 2021. https://lib.dr.iastate.edu/edu_pubs/99.

**Works Cited**

Abhrams, M.H, and Geoffrey Galt Harpham. A Glossary of Literary Terms. Cengage Learning, 2015.

Adeane, Ant. "Blue Whale: What is the truth behind an online 'suicide challenge'?" www.bbc.com. BBC News, Published January 13, 2019. https://www.bbc.com/news/blogs-trending-46505722

Basso, Francesca Lo. "How Reading Fiction Can Shape Our Real Lives." greatergood. berkleley. edu. Greater Good Magazine, Published September 21, 2020. https://greatergood.berkeley.edu/article/item/how_reading_fiction_can_shape_our_real_lives.

Boris Tomashevsky "Literature and Biography" (1923)", Readings in Russian Poetics: Formalist and Structuralist Views, Edited by Ladislav Mat?jka Edited by, and Krystyna Pomorska. Cambridge: MA: MIT Press, 1962.https://www.scribd.com/document/133539661/09-a-Tomashevsky-Literature-and-Biography

Britannica, and T. Editors of Encyclopaedia. "Fiction." www.britannica.com. Encyclopedia Britannica, Published January 17, 2019. https://www.britannica.com/art/fiction-literature.

Claesson, Dick. The Narratives of the Biographical Legend: The Early Works of William Beckford. University of Gothenburg: 2001.

Cohen, and Jonathan. "Defining Identification: A Theoretical Look at the Identification of Audiences with Media Characters." Mass Communication & Society 4, (2001): 245-264.

Csoseman. "The Line between Fantasy and Reality." www.craigcarey.net. Interpretation of Literature, Published October 10, 2012. http://www.craigcarey.net/fall2012/2012/10/10/the-line-between-fantasy-and-reality/.

Gerrig, Richard J. Experiencing Narrative Worlds: On the Psychological Activities of Reading. Yale University Press, 1993.

Green, Christopher Chatham, and Marc A. Sestir. "Emotion and Transportation into Fact and Fiction." The Scientific Study of Literature 2, (2012): 37-59.

Green, Melanie C, and Timothy C Brock. "The Role of Transportation in the Persuasiveness of Public Narratives." Journal of Personality and Social Psychology, (2000): 701-721.

Green, Timothy C. Brock, and Geoff F. Kaufman. "Understanding Media Enjoyment: The Role of Transportation into Narrative World." Communication Theory 14, (2004): 311-327.

Gretter, Sarah, Aman Yadav, and Benjamin W. Gleason. "Walking the Line between Reality and Fiction in Online Spaces: Understanding the Effects of Narrative Transportation." Journal of Media Literacy Education 9, (2017): 22. Accessed April 17, 2021. https://lib.dr.iastate.edu/edu_pubs/99.

Hanna, Jason, and Dana Ford. "12-year-old Wisconsin

girl stabbed 19 times; friends arrested." www.cnn.com. CNN, Published June 4, 2014. https://edition.cnn.com/2014/06/03/justice/wisconsin-girl-stabbed/index.html.

Haskell, Molly. "A Blurred Line between Fact and Fiction in Films." www.nytimes.com. The New York Times, Published September 4, 2013. https://www.nytimes.com/roomfordebate/2013/09/03/when-movies-trade-on-real-life/a-blurred-line-between-fact-and-fiction-in-films.

Hover, Colleen. Verity. U.S: 2018.

Ho, Olivia. "Blurring the lines between fiction and reality." www.straitstime.com. The Straits Times, Published May 2, 2017. https://www.straitstimes.com/lifestyle/arts/blurring-the-lines-between-fiction-and-reality

IntergalacticZen. "Books are dangerous for blurring the lines between fiction and reality." www.theguardian.com. The Guardian, Published March 16, 2016. https://www.theguardian.com/childrens-books-site/2016/mar/16/books-are-dangerous-for-blurring-the-lines-between-fiction-and-reality.

Michel, Lincoln. "VIDEO: How Fiction Can Change Reality." electricliterature.com. Electric Lit, Published August 26, 2014. https://electricliterature.com/video-how-fiction-can-change-reality/.

Rathi, Nandini. "The truth of 'Blue Whale' challenge: A game said to 'brainwash' teens into committing suicides." indianexpress.com. The Indian Express, Published May 9, 2014. https://www.google.co.in/url?sa=t&source=web&rct=j&url=https://indianexpress.com/article/opinion/web-edits/blue-whale-suicide-challenge-fact-or-fiction-and-a-wake-up-call-4641835/lite/&ved=2ahUKEwiEqdaypa_wAhW57nMBHc 1nAPEQFjAEegQIBx AC&usg= A OvVaw3eeDQMnJfxdEyHmTx RlX_t &ampcf= 1.

Readings in Russian Poetics: Formalist and Structuralist Views. Edited by Ladislav Mat?jka Edited by, and Krystyna Pomorska. Cambridge: MA: MIT Press, 1962.

Richards, I.A. Science and Poetry. London: 1926.

Schaffer, and Jean-Marrie. "Fictional vs. Factual Narration." In The Living Handbook of Narratology, (2012): http://www.lhn.unihamburg.de/article/fictional-vs-factual-narration

Simmons, Keith. "EverQuest: Blurring the Lines between Reality and Fantasy." (2004): 15. Accessed April 15, 2021. https://web.stanford.edu/group/htgg/cgi-bin/drupal/sites/default/files2/ksimmons_2003_1.pdf.

Singh, Abhinav. "How Fiction Can Change Your Perspective on Real Life?." www.entrepreneur.com. Entrepreneur India, Published October 1, 2018. https://www.entrepreneur.com/article/320914.

Stanford History Education Group. "Evaluating Information: The Cornerstone of Civic Online Reasoning." stacks.strandford.edu. Published November 22, 2016. https://stacks.stanford.edu/file/druid:fv751yt5934/SHEG%20Evaluating%20Information%20Online.pdf.

Webb, Sam. "Russian teen leaps from apartment block after seeing his favorite Japanese cartoon character die on television." www.dailymail.co.uk. Daily Mail Online, Published November 1, 2012. https://www.dailymail.co.uk/news/article-2226324/Russian-teen-leaps-apartment-block-seeing-favourite-Japanese-cartoon-character-die-television.html.

# बनारस और यहाँ के कलाकार

**जगजीत शाह***

**सारांश**

*बनारस के संगीत से कोई भी संगीत–प्रेमी अछूता नहीं है, बनारस के कलाकार संगीत जगत के कोने–कोने में अपनी कला का परचम फहरा रहे हैं तथा बनारस का नाम रोशन कर रहे हैं। बनारस की गली–गली में संगीत की फुहार होती है तथा हर मंदिर देवालय में संगीत का आवरण बना रहता है। बनारस में गायन–वादन–नृत्य की भव्य परंपरा प्राप्त होती है तथा कलाकारों में, शिष्यों में उस परंपरा को निर्वहन करने का हौसला तथा उत्सुकता भी दिखाई देती है। देश, काल की परिस्थितियों को लांघते हुए अपने लक्ष्य की प्राप्ति के प्रति व्यापक सोच बनारस के कलाकारों में दिखाई देती है। इस धारा के कलाकार संगीत को पूजा की तरह मानते हैं। यहां के कलाकार बनारस के कण–कण को श्रद्धा से प्रणाम करते हैं।*

**सूचक शब्द** : *बनारस, कलाकार, परंपरा, गायन, वादन, नृत्य*

**शोध–प्रविधि** : *इस लेख के लिए द्वितीयक स्रोतों का प्रयोग किया गया है तथा इस लेख के लिए अवलोकन एवं सर्वेक्षण पद्धति का उपयोग किया गया है।*

**अध्ययन क्षेत्र** :

बनारस भारत के प्राचीनतम शहरों में से एक है। "यह नगर अर्ध चंद्राकर रूप में गंगा के किनारे बसा है गंगा का यह किनारा एक ऊंचे कंकरीले से बना है। जिसकी ऊंचाई समुद्र तल से लगभग 90 मीटर है। वर्तमान में यह नगर भारतवर्ष का प्रसिद्ध सांस्कृतिक व अध्यात्मिक नगर है। बनारस शुरू से ही धर्म, कला, साहित्य, व्यापार, शिल्प, संगीत, शिक्षा आदि का केंद्र रहा है। बनारस पूर्ण विश्व में अपनी अनेक परिप्रेक्ष्यों की अमिट छवि के लिए जाना जाता है।

संगीत जगत में बनारस संगीत की तीनों विधाओं गायन, वादन, नृत्य की उच्चस्तरीय परंपराओं के लिए जाना जाता है। बनारस संगीत में सदैव अग्रणी रहा है। बनारस में संगीत आदि काल से ही चला आ रहा है। धार्मिक केंद्र होने के कारण यहाँ मंत्रोच्चारण, भजन, कीर्तन पुरातन काल से ही होता है। भगवान शिव की इस नगरी में अनेक संप्रदाय, अनेक मंदिर, देवालयो का स्थान है, जहाँ दिनभर कीर्तन की परंपराएँ चलती रहती है। लगभग सभी संप्रदायों की आराधना–पद्धति संगीत ही रही है। प्राचीन काल में तो संगीत का प्रयोग केवल आराधना के लिए ही किया जाता था, उस समय संगीत मनोरंजन का साधन नहीं था, इसी प्रकृति व इन्हीं संस्कारों के कारण सभी कलाकार मंदिरों, देवालियों में होने वाले संगीत के आयोजनों का भी हिस्सा बनते हैं।

भक्ति संगीत ही नहीं, लोक संगीत भी बनारस की गलियों में फैला हुआ है, साथ ही काशी के अगल–बगल का ग्रामीण हिस्सा भी लोक संगीत में अभिभूत है। हर समारोह तथा जन–जीवन के अनुष्ठानों में लोक संगीत खूब जाते हैं। बनारस की संगीत–परंपरा सैकड़ों वर्ष पुरानी है जिसके साहित्यिक प्रमाण भी मिलते हैं। कुछ विशेष बिंदुओं के द्वारा हम बनारस की संगीत परंपरा के कलाकारों को जान सकते हैं–

**विषय चर्चा**

बनारस अध्यात्म की नगरी होने के कारण बनारस में अनेक संत महात्मा हुए जो न केवल संत थे बल्कि अपनी भक्ति का माध्यम के रूप में उन्होंने संगीत को ही चुना, जैसे– श्री वल्लभाचार्य, गोस्वामी तुलसीदास, संत कबीर दास, संत रविदास, संत बाबा कीनाराम, संत देव तीर्थ (कास्ट जीवा स्वामी), महर्षि वेदव्यास इत्यादि इन संत महात्माओं ने संगीत के द्वारा ही प्रभु का गुणगान किया। इनके अलावा बनारस के अनेक मंदिरों में, देवालयों में, अनेक राज्य स्तरीय, राष्ट्रीय व अंतरराष्ट्रीय स्तर के संगीत कार्यक्रमों का आयोजन होता है तथा कुछ आयोजन "गंगा नदी" के किनारे आयोजित किए जाते हैं। इन कार्यक्रमों में

*शोधार्थी, संगीत विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़ए

मुख्य गंगा महोत्सव, गुलाब बाड़ी, संकट मोचन संगीत समारोह, व्यास महोत्सव, बुढ़वा मंगल, गोपाल मंदिर इत्यादि हैं। इन कार्यक्रमों में अंतर्राष्ट्रीय कलाकार जो शास्त्रीय संगीत में प्रवीण हैं, सभी शिरकत करते हैं। सभी कलाकार बड़ी श्रद्धा व प्रेम से इन सभी कार्यक्रमों का हिस्सा बनते हैं। इनके अलावा कुष्मांडा मंदिर महोत्सव, संगीत परिषद काशी, संगीत कला प्रकाश, बुद्ध महोत्सव, वरुणा महोत्सव, संगीत सभा काशी, महामृत्युंजय महोत्सव, श्रीमठ संगीत सम्मेलन, अंतरराष्ट्रीय ध्रुपद मेला, पूर्णाचार्य संगीत समारोह, सुबह–ए–बनारस इत्यादि कार्यक्रम हैं। इनमें से अनेक कार्यक्रम सैकड़ों वर्षों से चले आ रहे हैं तथा हर वर्ष ही बड़े हर्षोल्लास से मनाए जाते हैं।

बनारस की संगीत–परंपरा बहुमुखी है। इस परंपरा में ध्रुपद, धमार, ख्याल, ठुमरी, टप्पा, कजरी, चैती, पूर्वी गायन–शैलियाँ भी गाई जाती है। इनके अलावा सारंगी, शहनाई, सितार, सरोद, वायलिन वादन भी बनारस के कलाकारों से अछूते नहीं हैं। इस दृष्टि से बनारस की संगीत–परंपरा सबसे समृद्ध मानी जाती है। बनारस में त्योहारों पर भी अनेक गीत शैलियाँ गाई जाती हैं। होरी, चैती, कजरी, झूल, इत्यादि बनारस की परंपराओं को खास बनाती हैं।

बनारस में पीढ़ी–दर–पीढ़ी संगीत चलता है तथा विशेष बनारस घराना स्थापित हो जाता है। इन घरानों की नींव सैकड़ों वर्ष पुरानी है, जैसे पियरी घराना, पंडित शिवदास प्रयाग जी घराना, पंडित जगदीश मिश्र घराना, बेतिया घराना, पंडित दरगाही मिश्र घराना, पंडित ठाकुर प्रसाद मिश्र जी घराना, पंडित मथुरा जी मिश्रा घराना, देनीयानाला घराना, बनारस का कथक घराना, बनारस का तबला घराना, बनारस का गायन के घराने इत्यादि प्रसिद्ध हैं। इन घरानों की परंपराएँ सैकड़ों वर्ष पुरानी है।

बनारस को यदि कला, साहित्य विद्या का गढ़ कहा जाय तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। इस नगरी में हर प्रकार के लोग आकर बस गए तथा अपनी निरंतर कठोर साधना के द्वारा अपनी विद्या को निरंतर आगे बढ़ाते रहे।

शास्त्रीय संगीत की बात की जाए तो अनेक कलाकारों ने स्वरचित रचनाएँ की जिनको पूरे संगीत जगत में सराहा गया और जिनमें सबसे प्रमुख गायक पंडित बड़े रामदास जी तथा नृत्य में पंडित बिरजू महाराज प्रमुख हैं। इनके अलावा अनेक कलाकार ऐसे भी हैं जिन्होंने स्वरचित रचनाएँ की परंतु उन्होंने अपना नाम न देकर अपने गुरु को समर्पित कर दिया।

यहाँ के कलाकार बनारस के अलावा अनेक राज–दरबारों में भी नियुक्त थे, जैसे– पंडित बड़े रामदास जी को नेपाल नरेश ने अपने दरबार में विशिष्ट गायक नियुक्त किया। महाराजा पटियाला के विवाह–उपलक्ष्य में आप को आमंत्रित किया गया था जिसमें अनेक राजा–महाराजा उपस्थित थे, आपने अपने कंठ माधुर्य से सबको मंत्रमुग्ध कर दिया था। आप के विषय में एक किंवदंती है कि एक रोज बाबा विश्वनाथ ने आपको स्वप्न में आदेश दिया कि "स्वयं रचनाएँ कर ईश्वर को समर्पित करो"। आपने बाबा का ध्यान करते हुए सरल–से–सरल पदों से लेकर राग और तालों में उत्कृष्ट विद्वतापूर्ण चमत्कारिक रचनाएँ भी बनाई जो संगीत जगत की अमूल्य धरोहर हुई। आप अपने युग के अद्वितीय संगीत गौरव थे।

बनारस के गायक कलाकार ख्याल, ठुमरी, कजरी, चेती इत्यादि सभी विधाओं में निपुण थे। पुरुष कलाकारों में प्रमुख कलाकार पंडित दिलराम मिश्रा, जगमाल मिश्र, ठाकुर दयाल, परसिद्धु मनोहर, राम कुमार मिश्र, लक्ष्मीदास मिश्र, शिव सहाय मिश्र, रामसेवक मिश्र, शिव सेवक मिश्र, श्री रामकृष्ण मिश्र, भानु सेवक मिश्र, विष्णु सेवक मिश्र, प्रयाग मिश्र, मिठाई लाल मिश्र, भानु सेवक मिश्र, विष्णु सेवक मिश्र, जगन्नाथ मिश्र, शिवदयाल मिश्र, गुरु प्रसाद मिश्र, पंडित बड़े रामदास, पंडित छोटे रामदास, पं. महादेव मिश्र, श्री दामोदर मिश्र, गणेश प्रसाद मिश्र, पं. अमरनाथ पशुपति नाथ मिश्र, पंडित छोटेलाल मिश्र, पं. छन्नूलाल मिश्र, राजेश्वर प्रसाद मिश्र, रामेश्वर प्रसाद मिश्र, राजन–साजन मिश्र आदि।

बनारस में गायन की महिला कलाकारों में विशेषतया ठुमरी की कलाकार हुईं, परंतु उनको शास्त्रीय राग–गायन का भी उतना ही ज्ञान था जिनमेंसे शिवकुमार बाई, विद्याधरी बाई, हुस्ना बाई, बड़ी मैना, टॉमी बाई, अनवरी बेगम, बड़ी मोतीबाई, जद्दनबाई, राजेश्वरी बाई, काशीबाई, रसूलन बाई, शाहजहां बेगम, मलका बाई, दुर्गेश नंदिनी, छोटी मोतीबाई, कमला राधा, 'पद्मश्री' सिद्धेश्वरी देवी, कमलेश्वरी देवी, ताराबाई, पन्ना जूही, रत्ना विदुषी हीरा देवी, विदुषी सविता देवी, विदुषी बागेश्वरी देवी, श्रीमती कौमुदी, 'पद्म विभूषण' विदुषी गिरजा देवी, श्रीमती निर्मला अरुण, श्रीमती मंजू सुंदरम, श्रीमती पूर्णिमा चौधरी, श्रीमती

डॉ मंगला तिवारी, प्रो. डा. शारदा वेलंकर, प्रोफेसर संगीता पंडित, 'पद्मश्री' मालिनी अवस्थी, 'पद्मश्री' सोमा घोष, डॉक्टर सुचरिता गुप्ता इत्यादि गायिकाएँ प्रमुख रूप से जानी जाती हैं।

तंत्री वाद्य कलाकारों में दरगाही मिश्र, संत बाबू श्री ओम बाबू, डॉक्टर लालमणि मिश्र, पं. सुरेंद्र मोहन मिश्र, श्री बच्चाजी मिश्र, श्री चंद्र मिश्र, श्री दामोदर मिश्र, श्री कमल मिश्र, पंडित रविशंकर, श्री शिव नाथ मिश्र, महादेव मिश्र, राजभान मिश्र, श्री सादिक अली खान, उस्ताद मुश्ताक अली खान, श्री रामदास चक्रवर्ती, श्रीमती कृष्णा चक्रवर्ती, श्री गुरु महाराज, श्री रविंद्र नारायण गोस्वामी, श्री मोहन राम नगर, श्री नंदगोपाल, मोतीलाल, राम गांगुली का नाम उल्लेखनीय है।

सारंगी के कलाकारों में तामखू मिश्र, श्री श्यामाचरण, बिहारी मिश्र, बिरई मिश्र, बचाउ मिश्र, शंभू नाथ मिश्र, बड़े गणेश प्रसाद मिश्र, पं. नारायण मिश्र, पं. संतोष मिश्र इत्यादि प्रसिद्ध हुए।

वायलिन कलाकारों में श्री गगन बाबू, श्री जी एन गोस्वामी, 'पद्मभूषण' डॉ. एन राजम, श्री रामू शास्त्री, श्री आरवी देशपांडे, डॉक्टर उमा शंकर राय चौधरी, श्री गोपाल मिश्र, श्री पूर्णेन्दु भट्टाचार्य, श्री कृष्ण विनायक भागवत, प्रो. वी. बालाजी इत्यादि और संतूर में पं. शिवकुमार शर्मा, प. ओम प्रकाश चौरसिया, तथा श्री सिद्धनाथ प्रसिद्ध कलाकार हैं।

नृत्य कलाकारों में कालिका प्रसाद, सुखदेव महाराज, श्री कृष्ण प्रसाद, श्रीमती अलकनंदा देवी, श्रीमती तारा देवी, श्रीमती सितारा देवी, चतुर्भुज चौबे महाराज, श्री नंदकिशोर मिश्र, नटराज गोपीकृष्ण, श्री गोविंदा प्रसाद, श्री माधव कृष्ण, श्री मोहन कृष्ण, श्री राम कृष्ण, जयंती माला–प्रिय माला, प्रभु शंकर मिश्र, मधु मिश्रा, पंडित जानकी प्रसाद, श्रीमती सुनैना हजारीलाल इत्यादि कलाकार हैं।

तबला के कलाकारों में कंठे महाराज, रामसहाय, पंडित शारदा सहाय, राम शंकर मिश्रा, श्री दीपक सहाय, पं. सामता प्रसाद, पंडित किशन महाराज, पूरन महाराज, श्री सुखविंदर सिंह पिंकी, कुमार बोस, अरविंद कुमार आजाद, संजू सहाय शुभ महाराज हरि नारायण शाह इत्यादि कलाकार है । बनारस के अनेक और भी कलाकार हैं जिनका नाम इसमें सम्मिलित नहीं हुआ है।

**निष्कर्ष** : काशी की संगीत–परंपरा में सैकड़ों कलाकार हैं, जिनका संगीत के प्रति प्रेम अद्वितीय है तथा उनका योगदान संगीत जगत के लिए अत्यंत स्मरणीय है। बनारस की आधारशिला जितनी सशक्त है, उतनी ही सशक्त उस पर निर्मित विशाल शिष्य–परंपरा रही है, जिस का निर्वहन आज तक होता चला आ रहा है। निश्चित रूप से सुदृढ़ नींव पर निर्मित उत्कृष्ट भवन का दीर्घकाल तक अस्तित्ववाद रहना स्वतः सिद्ध है।

**संदर्भ ग्रंथ सूची** :


1. अग्रवाल, कुंवरजी, काशी का इतिहास, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण,1986
2. जौहरी, रेनू, भारतीय संगीत में वाराणसी का योगदान, क्लासिकल पब्लिकेशन कंपनी, न्यू दिल्ली 110015, प्रथम संस्करण, 2004
3. मिश्र, कमेश्वर नाथ, काशी की संगीत परंपरा, भारत बुक सेंटर, लखनऊ, प्रथम संस्करण, 2018
4. गर्ग, लक्ष्मी नारायण, हमारे संगीत रत्न, संगीत कार्यालय हाथरस, 1984
5. चंद्र, डॉ. मोती, काशी का इतिहास, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण, 1962
6. गर्ग, लक्ष्मी नारायण, कथक नृत्य, संगीत कार्यालय हाथरस, जनवरी, 2016
7. वसंत, संगीत विशारद, संगीत कार्यालय हाथरस, 2004
8. मित्तल, सतीश चंद्र, भारत का संक्षिप्त इतिहास, सुरुचि प्रकाशन, न्यू दिल्ली 2014
9. सिंह, गोपाल, भारत का भूगोल, द्वितीय संस्करण जनवरी 2009
10. मिश्र, विष्णु, बनारस की संगीत परंपरा में विभिन्न गायन शैलियाँ : एक अध्ययन, पृष्ठ–132 (शोध प्रबंध)
11. राय, डॉ सुरेश व्रत, बनारस की संगीत परंपरा, छायानट पत्रिका, अंक 44

यूजीसी–केयर सूचीबद्ध, पिअर रिव्यूड वार्षिक शोध पत्रिका

**स्तोम 2023**

# उत्तराखण्ड के लोक गीतों में स्वर, लय एवं ताल

**प्रो० आशा पाण्डे****

**कु० शैलबाला***

**सारांश**

*उत्तर प्रदेश का अविभाजित खण्ड था उत्तराखण्ड। 09 नवम्बर 2000 को यह भारत का सत्ताइसवाँ गणराज्य उत्तरांचल उत्तर प्रदेश से अलग हुआ। 2000 से 2006 तक यह उत्तरांचल नाम से ही प्रचलित रहा। उसके बाद जनवरी 2007 में यह उत्तराखण्ड हुआ जिसके उत्तर में तिब्बत, दक्षिण में उत्तर प्रदेश के राज्य, पूर्व में नेपाल है तो पश्चिम में हिमाचल प्रदेश है। प्राचीन शास्त्र एवं साहित्य में इसका उल्लेख उत्तराखण्ड के रूप में ही प्राप्त होता है। इस राज्य में गंगोत्री और यमुनोत्री सहित अनेक वैदिक सांस्कृतिक तीर्थस्थल हैं। इस राज्य का सबसे बड़ा नगर देहरादून इसकी राजधानी है। यह एक पहाड़ी प्रदेश है। यहाँ वर्ष–भर उत्सव मनाए जाते हैं। लोक कलाओं की यहाँ भरमार है। यहाँ का लोक संगीत बहुत सम्पन्न और अन्य क्षेत्रों से बिल्कुल भिन्न है। लोकगीतों की समृद्ध परम्परा है, जैसे– न्योली, जोड़, झोड़ा, छपेली, बैर फाग आदि। लोक गीतों की धुनें अत्यन्त आकर्षक हैं। ढोल–दमुआ और बीन बाजा प्रसिद्ध एवं विशिष्ट वाद्य हैं जो प्रत्येक आयोजनों में प्रयुक्त होते हैं। इसके अतिरिक्त नगाड़, रणसिंग, भेरी, हुड़का, डौंरा, कुरूली, अलगाजा आदि वाद्य भी लोक गीतों में प्रचलित हैं। यहाँ की लोक गाथा भी प्रसिद्ध हैं। लोक नृत्य छोलिया, झुमैला, झोड़ा आदि हैं। इसके अलावा सर्प नृत्य, पाण्डव नृत्य, जौनसारी, चाँचरी भी प्रचलित लोक नृत्य हैं। अलग–अलग अंचलों में झोड़ा नृत्य में लय तथा ताल में अन्तर दृष्टिगोचर होता है।*

**मुख्य शब्द** : *उत्तराखण्ड, लोक गीत, लय, ताल, वाद्य*

**शोध प्रविधि** : *इस लेख को तैयार करने के लिए द्वितीयक स्रोतों से सामग्री संकलित की गई है।*

साहित्य का संबंध मूलतः मानवीय संवेदनाओं, तथ्यों एवं अन्तर–सत्यों से होता है। जब तथ्य जगत मानव के अन्तर जगत में विलीन हो जाता है तो इसके फलस्वरूप वह लोक विषय में परिवर्तित हो जाता है। आदिकाल से ही संगीत मानव–जीवन का अभिन्न अंग रहा है। मानव सामाजिक एवं भावुक प्राणी है। अतः आदिकाल से ही मानव के अन्तः करण में निरन्तर विविध भाव उद्‌भूत होते गये। वह प्राकृतिक छवियों, स्थितियों एवं मानव–जीवन में घटित विभिन्न घटनाओं, प्रक्रियाओं तथा भावों का अनुभव करने लगा। इन्हीं भावनाओं एवं अनुभूतियों को प्रकट करने के लिये मानव जीवन में संगीत का आगमन हुआ।[1]

मनुष्य में शनैः–शनैः सामाजिक एवं सामूहिक भावना का विकास प्रारम्भ हुआ। मनुष्य ने नाना प्रकार की नवीन सामाजिक एवं लोक विषयक छवियों को निहारना आरम्भ किया, परिणामस्वरूप उसके मन में विभिन्न भाव लहरियाँ प्रस्फुटित हुईं जिससे मानव शिलाओं पर मूर्तियों का निर्माण तथा मनोरंजन एवं आनन्दोत्सव के लिये गीत गायन के साथ नृत्य करने लगा। त्यौहारों, ऋतु आगमन एवं आखेट में विजय प्राप्त करने पर समूह में खुशियाँ मनाने लगा। मानव शंख एवं बाँसुरी का वादन कर अपनी कलात्मक अभिव्यक्ति को प्रदर्शित करने लगा। यही जनसाधारण द्वारा गाये गये गीत परम्परागत रूप में प्रचलित हुए, जो कालान्तर में लोक संगीत कहलाया जाने लगा।[2]

प्राचीन काल में स्वर एवं शब्द अल्प मात्रा में प्राप्त होते थे तथा एक ही धुन की पुनरावृत्ति होती रहती थी। सम्भवतः इसका कारण यह है कि प्रारम्भिक समय में वर्तमान की भाँति सभ्यता, संस्कृति एवं भाषा विकसित नहीं थी। इसके अतिरिक्त यह मान्यता प्रचलित रही है कि भाव लोक गीत एवं कलाओं की आत्मा रहे होंगे, लेकिन वर्तमान की भांति मानव मन के भाव अधिक जटिल नहीं थे।[3] आधुनिक मानव के समान बौद्धिक स्तर, ज्ञान, चेतना, चिन्तन एवं विचार विश्लेषण शक्ति विकसित नहीं थी। तत्कालीन मानव के पास अपनी भावनाओं, अनुभूतियों, एवं व्यथाओं को व्यक्त करने की आधुनिक शब्दावली का अभाव

*शोधार्थी, संगीत विभाग, हे० न० ब० गढ़वाल (केन्द्रीय) विश्वविद्यालय, श्रीनगर गढ़वाल, उत्तराखण्ड

**विभागाध्यक्षा संगीत विभाग, हे० न० ब० गढ़वाल (केन्द्रीय) विश्वविद्यालय, श्रीनगर गढ़वाल, उत्तराखण्ड

था। परिणामस्वरूप कहा जा सकता है कि संगीत की उत्पत्ति मानव की इन अनुभूतियों को व्यक्त करने के प्रयासों से अंकुरित हुई है। इसके अतिरिक्त जीवन–यापन के संघर्षों से मनुष्य की चेतना तथा विचार शक्ति विकसित हुई जिससे मनुष्य में आत्मरक्षा के लिये सहयोग एवं सहकारिता की भावना जागृत हुई। फलस्वरूप मनुष्य ने समूह में विचरण करने के साथ ही शिकार करना प्रारम्भ किया। इसी शिकार में सफलता प्राप्त करने पर हर्षित मन से चिल्लाकर, कूदकर एवं नृत्य के साथ अंग–संचालन के माध्यम से अपने भाव प्रकट करने लगा। वास्तव में मनुष्य की यही स्वाभाविक आत्माभिव्यंजना की प्रवृत्ति ही लोक संगीत की परिभाषा मानी जाती है। इसके साथ ही अंकुरित होते बीजों पर मानव दृष्टिपात के फलस्वरूप कृषि कार्यों में उसकी रूचि पल्लवित हुई। कृषि–कार्यों के निष्पादन हेतु पशुपालन मनुष्य की आवश्यक प्राथमिकता बन गई। इन समस्त क्रियाकलापों में सहयोग की भावना ने गांव को जन्म दिया। इस सामाजिक–निर्माण के परिणामस्वरूप मनुष्य में प्रेम, श्रद्धा, भक्ति, ममता, स्नेह, विरह एवं वियोग की भावनाओं की जागृति हुई। मानव अपनी भावनाओं को व्यक्त करने के लिये रेखाओं रंगों तथा संकेतों का प्रयोग करने लगा जिससे मानव द्वारा शब्दों का अन्वेषण सम्भव हुआ। समय एवं मानव विकास के साथ धीरे–धीरे सामाजिक भावनाओं ने संयमित रूप धारण किया, जिससे शब्दों एवं स्वरों का विस्तार होता चला गया।[4]

प्राचीन समय में लोक संगीत सहज एवं सुलभ होता था, परिणामस्वरूप यह भावों के विनिमय का प्रचलित एवं उत्कृष्ट साधन बन गया। लोक कलाओं एवं लोक काव्य के साथ लोक संगीत भी निरन्तर विकसित होता चला गया। संगीत के पर्याप्त अभ्यास ने गीत, काव्य एवं कलाओं के विभिन्न अंगों को विकास एवं समृद्धि प्रदान की।[5] इस प्रकार संगीत का सरल रूप 'भाव संगीत' है जिसमें लोक संगीत समाहित होता है। लोक संगीत के अन्तर्गत सदियों से गतिमान रीति–रिवाजों एवं परम्पराओं के दर्शन होते हैं।

संगीत में स्वर एवं ताल का समान महत्व है, संगीत में स्वर शरीर एवं ताल को उसकी आत्मा के रूप में स्वीकार्यता प्राप्त है। शरीर में आत्मा की अनुपस्थिति से शरीर महत्वहीन हो जाता है और संगीत स्वर, ताल विहीन होने पर महत्त्वहीन हो जाता है। स्वर एवं ताल को संगीत की आधारशिला माना जाता है। लोक संगीत में विभिन्न प्रकार के गायन विधाओं में अनेक स्वरों तालों का प्रयोग किया जाता है जो गीतों को आकर्षक बनाता है। लोक धुनों में शास्त्रीय संगीत की भांति ताल की नियमबद्धता जटिल नहीं होती है। लोक धुनों में ताल को आसानी से आत्मसात किया जा सकता है।[6]

लोक संगीत में लय का भी ताल के समान महत्वपूर्ण स्थान है एवं यह संगीत का अभिन्न अंग है। सुर, लय का आपस में घनिष्ट सम्बन्ध है तथा ये एक–दूसरे के पूरक हैं। लोक संगीत में साधारणतः विलम्बित लय का अभाव रहता है लेकिन आवश्यकतानुसार विलम्बित लय के लिये अनिबद्ध शैली का प्रयोग किया जाता है। सम्भवतः विलम्बित लयहीन पंक्तियों को द्रुत एवं मध्य लय के अन्तर्गत समायोजित किया जाता है। लोक संगीत में अधिकांश मध्य एवं द्रुत लय का ही प्रयोग किया जाता है। भारतीय लोक संगीत में लयात्मक स्वरूप सर्वाधिक है।[7] लोक संगीत में निश्चित काल माप का निर्वाह करते हुए असंख्य क्लिष्ट लयों का सृजन चर्म वाद्यों पर होता है जिसमें लोक वादकों को इन लयों का पूर्ण ज्ञान होता है।

भारतीय लोक संगीत में लय की ध्वनियों का क्रम प्रारम्भ से अन्त तक निरन्तर बना रहता है।[8] भारतीय संगीत में गीत भेद के माध्यम से रस की निष्पति संम्भव होती है। करूण, श्रृंगार, रौद्र एवं वीभत्स जैसे अनेक रसों के लिये ताल की विभिन्न गतियों का अत्यधिक महत्व है। इस प्रकार लोक संगीत में रागात्मक एवं लयात्मक स्वरूप सुलभता से देखा जा सकता है। लोक संगीत नियमों के बन्धनों को पूर्ण रूप से नहीं मानता है, स्पष्ट है कि यह स्वच्छन्द रूप में विद्यमान है।[9] इस प्रकार लोक धुनों के स्वरों में प्रायः अन्य स्वरों को समायोजित करके उन्हें शास्त्रीय रागदारी के नियमों में पिरोया गया है जिनमें तिलंग, कामोद, मांड, पहाड़ी एवं दुर्गा प्रमुख हैं।[10]

लोक संगीत में लय का स्वतः समावेश होता है इनमें दादरा एवं कहरवा जैसी सरल एवं बराबर मात्रा वाली तालों का प्रमुख स्थान है।[11] सामान्यतः विशेष प्रकार के गीतों में पंजाबी, अद्धा, धुमाली एवं दीपचंदी जैसी जटिल एवं विषम विभाग वाली तालों का भरपूर प्रयोग दृष्टिगोचर होता है।[12] लोक संगीत उत्तराखण्ड के जनमानस को भी प्रतिबिम्बित करता है इस क्षेत्र को देवभूमि के नाम से भी जाना जाता है। अविभाजित उत्तराखण्ड पूर्व में उत्तर प्रदेश

में शामिल था जो 9 नवम्बर 2000 को उत्तरांचल के नाम से निर्मित हुआ। तत्पश्चात् इसका नाम परिवर्तित किया गया जो वर्तमान उत्तराखण्ड के नाम जाना जाता है।[13] उत्तराखण्ड में अनेकानेक लोक गीत प्रचलित हैं इनमें राग, ताल एवं लय का पुट निहित होता है। इन लोक गीतों में संस्कार गीत, जागर गीत, ऋतु गीत, होली गीत एवं कृषि गीत प्रमुख हैं।

**निष्कर्ष** : निसन्देह निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि लोक संगीत शास्त्रीय संगीत की जननी है। उत्तराखण्ड में भी लोक संगीत बाजारीकरण के कारण अपने मूल स्वरूप से पृथक्करण की दिशा में गतिमान है। स्पष्ट है कि लोक संगीत के संरक्षण एवं संवर्धन की आवश्कता अपेक्षित है, जिससे यह सांस्कृतिक धरोहर अपने मूल स्वरूप में यथावत विद्यमान रहे।

**सन्दर्भ–**

1. श्रीवास्तव, वीणा, 'बुन्देलखण्डी लोक गीतों में सांगीतिक–तत्व', राधा पब्लिकेशन नई दिल्ली, 2004, पृ० 5
2. धनकर, रीता, 'हरियाणा तथा पंजाब की संगीत परम्परा', संजय प्रकाशन, नई दिल्ली, 2003, पृ० 3
3. वीणा, श्रीवास्वत, 'भारतीय लोक संगीत संरक्षण संवर्धन एवं समस्याएँ', राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2012, पृ० 284
4. पाण्डे, आशा, 'हिन्दुस्तानी संगीत में कुमाऊंनी होली गायन परम्परा,' राज पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2016, पृ० 135.
4. जैन, शान्ति, 'लोक गीतों के सन्दर्भ और आयाम', विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1999, पृ० 285
5. तदैव, पृ० 286
6. मिश्रा, जया, 'वर्तमान सामाजिक परिवेश में संगीत की नई भूमिका', अनुभव पब्लिकेशन हाउस, इलाहबाद, 2012, पृ० 109
7. तदैव, पृ० 111
8. जौहरी, सीमा, 'संगीतायन', राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2003, पृ० 95
9. चौबे, सुशील कुमार, 'हमारा आधुनिक संगीत', हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 2005, पृ० 63
10. तिवारी, ज्योति, 'कुमाऊंनी लोक संगीत एवं शास्त्रीय संगीत', कनिष्क पब्लिकेशन, देहरादून, 2002, पृ० 19
11. तदैव, पृ० 19
12. जौहरी, सीमा, संगीतायन, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2003, पृ० 96
13. बलूनी, दिनेश चन्द्र, 'उत्तरांचल की राजनीतिक एवं सामाजिक संस्कृति का इतिहास', प्रकाश बुक डिपो, बरेली, 2003, पृ० 83

# पंजाब के समकालीन गायक : गुरदास मान, सरदूल सिकंदर और हंसराज हंस

**श्रुति होरा**** **सुनीता रानी***

**संक्षेपण**

*पंजाबी संगीत में 1980 सें 1990 के वर्षों में गुरदास मान, सरदूल सिकंदर, हंसराज हंस ऐसे गायक हुए हैं जो पंजाबी संगीत जगत में यमला जट्ट, कुलदीप मानक, पूरन शाह कोटी जैसे गायक कलाकारों के बाद इस क्षेत्र में अपनी जगह मजबूत बनाने और बरकार रखने में कामयाब हुए हैं। इन के गीतों में पंजाब की सभ्यता, स्नेह अथवा प्रेम–भाव भरपूर सम्मिलित है। शायद ही कोई गीत हो जो लोगों द्वारा न सराहा गया हो। आप तीनों की अधिकांश विशेषताएँ एक समान हैं, जैसे आप तीनों ने ही गायन के साथ पंजाबी फिल्मों में अभिनय किया, इसके अलावा आपने फिल्मों में पार्श्व गायक की भूमिका भी निभाई है। तीनों ही ने उस्ताद चरणजीत आहूजा से गायन की शिक्षा प्राप्त की है। आधुनिक समय में आप की महान उपलब्धियों के कारण 'गुरदास मान' को पंजाबी संगीत का 'बाबा बोहड़' कहा जाता है तो हंसराज हंस ने हर तरह की गायन–शैली को गाया है लेकिन सूफीगायन की वजह से उन्हें 'सूफीगायक' संबोधित किया जाता है। सरदूल सिकंदर को 'सुरों का सौदागर' या 'सुरों का बादशाह' कहा जाता है।*

**बीज शब्द** : *पंजाबी संगीत, गुरदास मान, हंस राज हंस, सरदूल सिकंदर, पंजाबी गायक।*

**शोध प्रविधि** : *प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोत।*

**गुरदास मान :**

गुरदास मान का जन्म 4 जनवरी 1957 को गाँव गिदड़बाहा, ज़िला मुक्तसर, पंजाब में हुआ। आपकी माता का नाम श्रीमती तेज कौर, पिता गुरदेव सिंह मान हैं। आपने अपनी आरंभिक शिक्षा अपने गाँव के स्कूल में ही प्राप्त की। आपको बचपन से ही संगीत के प्रति लगाव था। आपने अपनी स्कूली–शिक्षा के साथ–साथ अपने शौक को भी पूरा किया। आपने कॉलेज के दिनों से ही गाना प्रारम्भ कर दिया था। आपका सर्वप्रथम गीत, 'दिल दा मामला है' से दूरदर्शन से शुरुआत की । इसके बाद 'मामला गड़बड़ है', 'छल्ला', 'सज्जना वे सज्जना' इत्यादि एक–के–बाद एक हिट गीत आए जिसने पंजाब ही नहीं तथा देश–विदेश में आपकी लोकप्रियता बढ़ाई। आपने कुछ समय पंजाब बिजली बोर्ड में भी नौकरी की, आप को पंजाबी यूनिवर्सिटी के द्वारा डॉक्टर की उपाधि से भी सम्मानित किया गया। आपने बहुत सारे एकल गीत, भजन, शबद, सूफी कलाम गाए। गुरदास मान ने संगीत के सफर के साथ–साथ फिल्मी दुनिया में भी खूब नाम कमाया है। आपने हिन्दी, पंजाबी, तमिल फिल्मों मे काम किया है। आप जितने अच्छे गायक हैं उतने ही अच्छे अदाकार भी हैं। आपने सर्वप्रथम 'मामला गड़बड़ है' में काम किया, उसके बाद 'उच्चादर बाबे नानक दा', 'लॉन्ग दा लिशकारा', 'शहीद–ए–आजम भगत सिंह', 'वारिस शाह' इत्यादि फिल्में आई। आप ने पंजाबी, हिन्दी, बंगाली, तमिल, हरियाणवी, राजस्थानी फिल्मों में पार्श्व गायक की भूमिका निभाई है।[1] आप को पंजाब और पंजाबी भाषा का 'मान' कहा जाता है। आप ने पंजाबी सभ्यता, संस्कृति को पंजाबी भाषा को सुनने एवं समझने वालों के दिल में ही नहीं बल्कि विश्व भर में उतार दिया है।

आप में गायन के अलावा गीत–रचना और अभिनय प्रतिभा भी मौजूद है। आप ने अपने जीवन का प्रथम गीत 'मामला गड़बड़ है' की रचना खुद ही की जो आज भी लोगों की जुबान पर वैसे ही सुनाई पड़ता है, जैसे अभी कल ही आया हो। आप ने जिस तरह गीतों से लोगो के दिलों मे जगह बनाई है उसी तरह फिल्मों में भी आप ने अपनी जगह बरकार रखी हुई है। आपकी हर एक फिल्म को बहुत प्यार मिला है। आप ने अपनी अदाकारी से अनेक पुरस्कार भी प्राप्त किए हैं।

एक गायक में सबसे अहम् भूमिका गायकी के साथ गीत की प्रस्तुति, उसे फिल्माने का ढंग होता है जो आप में बाखूबी मौजूद है। आप एक ऐसे गायक हैं जिन्होंने

*पी–एच.डी. शोधार्थी, (संगीत विभाग), पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़
**एसोसिएट प्रोफेसर, पी. जी. जी. सी.जी. सेक्टर 11, चंडीगढ़

अपनी गायकी के इतने लंबे समय से अपनी मातृ भाषा से जुड़े हुए हैं जिसका सबूत आपके गीतों, आपकी वेष–भूषा से लगाया जा सकता है। गुरदास मान गायन और वादन दोनों के ज्ञाता हैं। आप अपने मंच–प्रदर्शन के समय हमेशा डफली वाद्य की संगत स्वयं करते हैं।

**सरदूल सिकंदर :**

सरदूल सिकंदर का जन्म 15 जनवरी 1961 ई० को ज़िला लुधियाना के गाँव खेड़ी नौध सिंह में हुआ। आपके पिता का नाम सागर मस्ताना और माता का नाम लीलावती है। आप तीन भाई और तीन बहनें हैं। आपके पिता सागर मस्ताना, दादा रल्ले खान, पड़दादा कर्म बख्श, नकड दादा करीम बख्श सभी महाराजा पटियाला के दरबारी गायक थे। आपने पिता सागर मस्ताना से तबला और शास्त्रीय गायकी की शिक्षा रागी संपूरण सिंह से प्राप्त की थी।[2]

आप को बचपन से गाने का शौक था लेकिन आप इसे अपना पेशा नहीं बनाना चाहते थे । फिर भी लेकिन घर की आर्थिक हालत सही नहीं होने के कारण संगीत को रोजगार के रूप में अपनाना पड़ा। फिर धीरे–धीरे आप को संगीत से लगाव हो गया। बचपन में ही आप ने अपने पिता और भाइयों के साथ गाना प्रारम्भ कर दिया। आप साईकल से ही कई–कई मीलों तक सफर कर गाने जाते थे। हारमोनियम और तबला भी आप के साथ ही होता था। आपके संगीत के सफर की शुरुआत दिल्ली एच. एम. वी. कंपनी द्वारा हुई। वहाँ आप की मुलाकात पंजाबी संगीत सम्राट चरणजीत आहूजा से हुई। उन्होंने आप का प्रथम गीत 'रोडवेज दी लारी' रिकॉर्ड करवाया जिससे आप की पंजाबी संगीत जगत में पहचान बनी। इसके बाद एक के बाद एक हिट एल्बम आई । आपने सोलो एल्बम के साथ दोगाना एल्बम, धार्मिक एल्बम, फिल्मों में पार्श्व गायक (हिन्दी, पंजाबी) की भूमिका भी बाखूबी निभाई है। आप को पंजाबी संगीत जगत में 'सूरा दा सौदागर' संबोधित किया जाता है। आपने देश–विदेशों मे लाइव मंचप्रदर्शन भी किया है। पंजाब के गायक आप को अपना गुरु एवं आदर्श मानते हैं। अपने सांगीतक सफर में कई सम्मान–पुरस्कार प्राप्त हुए, जैसे– 'शान–ए–पंजाब' पुरस्कार 1994 लुधियाना (पंजाब) में मिला। इसके अलावा पंजाब सरकार की तरफ से 'पंजाब रत्न' पुरस्कार प्राप्त हुआ। 'किंग आफ बीट' पुरस्कार इंगलैंड में वर्ष 2003 में प्राप्त हुआ।

सरदुल रियाज़ के संबंध में बहुत संजीदा थे। वे अपना रियाज़ कभी नहीं छोड़ते थे।[3] वे रियाज़ को गीत की 'रूह' कहते थे। इसके इलावा वे लय और ताल में भी हर पक्ष से पूर्ण थे। उन्होंने स्वर, लय और ताल के साथ–साथ शब्दों के उच्चारण मे भी शुद्धता को बनाए रखा। "सरदूल जी के हर एक गीत में शुद्धता स्पष्ट दिखाई पड़ती है। उनका गीत में बोल उच्चारण का माध्यम अन्य से भिन्न है।"[4] आपके गीतों में सामाजिक संबंधों को मुख्य रूप से देखा जा सकता है। आपके गीत केवल सुर और राग ही नहीं बल्कि प्रेरणास्त्रोत भी हैं। सरदूल जी के सभी गीत राग आधारित होते थे– "आप अपने गीतों में रागों को बहुत अहम् मानते। सरदूल जी के लिए रागरहित गाना उतना ही मुश्किल है जितना किसी संगीतविहीन मनुष्य के लिए कोई राग गाना"।[5]

**हंसराज हंस :**

हंसराज हंस का जन्म 9 अप्रैल 1962 ई० को ज़िला जालंधर के एक गाँव सफीपुर में हुआ। आपके पिता अर्जुन सिंह पेशे से खेती–बाड़ी करते थे। आप की माता का नाम श्रीमती अजित कौर है। आप से बड़े तीन भाई और दो बहनें आप से छोटी थीं।[6] हंसराज जी को संगीत के प्रति लगाव बचपन में उस समय के कुशल गायक उस्ताद यमला जट्ट को सुनकर हुआ। आपने उनकी गायकी को सुन कर ही गाना सीखा था। हंस के चाचा गियानी जी 'दोतारा' वाद्य के साथ लोक गाथाएँ गाते थे। हंस जी के मन में बाल अवस्था में ही लोक गाथाओं का शुभ बीज बोया जा चुका था। गियानी जी जो सूफी तबीयत के मालिक थे, उनकी आवाज़, दोतारे का संगीत और खेतों की हरियाली ने हंस की आत्मा को आकर्षित किया। आप के मन में उस वक्त संगीत के बीज अंकुरित होने लगा। जब गियानी (चाचा) जी मस्त मलंग, खुद की ही अद्भुत रिद्म में पैरों की ताल के साथ गाते थे, झूमते जैसे मीरा बाई संगीत में कृष्ण के प्रेम में मगन होकर नाचती, झूमती रही हो, तो जमीन चाहे तेजाबी हो संघर्षशील आत्मा का अंकुर उस उम्र में ही पड़ता है।[7]

आपने जालंधर डी. ए. वी. स्कूल में पढ़ते समय वहाँ बी. एस. नारंग से शास्त्रीय संगीत की शिक्षा हासिल की। 6 वर्ष की आयु में पूरन शाह कोटि को सुना और तब से पूरन शाह कोटि जी ही संगीत–शिक्षा प्राप्त करने का मन बना लिया। 1983 में आपकी प्रथम एल्बम "एच. एम. वी.

कंपनी" के द्वारा आई जिसका नाम था "जोगियाँ दे कन्ना विच्च" धीरे–धीरे आप की आवाज और गायकी से लोग काफी प्रभावित होने लगे और कुछ सालों में ही आप विश्वभर में अपनी गायकी के द्वारा प्रसिद्ध हो गए। आपने पंजाबी और हिन्दी फिल्मों में पार्श्व–गायन किया है। इसके अलावा आपने धार्मिक और सूफी गायकी में भी अपनी कला का प्रदर्शन बखूबी किया है। आपकी लोक गायकी और सूफी गायकी विश्वभर में ऊंचाइयों तक पहुंचने के बाद पंजाब सरकार ने 'राज गायक' की उपाधि से सम्मानित किया।[8] इसके साथ आप को वर्ष 2008 में भारत के राष्ट्रपति श्रीमती प्रतिभा पाटिल के द्वारा राष्ट्रपति भवन में 'पद्मश्री' पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

आपने अपने जीवन के शुरुआती दौर में संगीत जगत के साथ–साथ कई पंजाबी फिल्मों में बतौर अदाकार कार्य किया। आप में गायन, वादन दोनों का विशेष ज्ञान, रागों की समझ, गायकी में भाव एवं कला पक्ष इत्यादि सम्मिलित है। हंसराज एक गायक होने के साथ–साथ एक अच्छे गीतकार और संगीतकार भी हैं। उन्होने कई गीतों की रचना और धुनें तैयार की है। आप ने पहली बार रेडियो पर 23 फरवरी 1982 को ऑडिशन पास किया। 6 नवंबर 1998 को आपको 'ए' ग्रेड से सम्मानित किया गया। 24 सितंबर 2008 को हंस जी को रेडियो की तरफ से 'टॉप' ग्रेड दिया गया।

**निष्कर्ष** : इस प्रकार हम देखते हैं कि उपर्युक्त तीनों गायक किसी पहचान के मोहताज नहीं। इन्होंने अपनी कला से अपनी अमिट छाप बनाई है जो जनता के दिलों में पीढ़ी–दर–पीढ़ी सदियों तक रहेगी।

**संदर्भ सूची** :

1. गुरदास मान इंटरव्यू, यू ट्यूब
2. सरदूल सिकंदर से हुई भेंटवार्ता, 25 मई 2014
3. चरणजीत आहूजा से हुई भेंटवार्ता, 18 मई 2015
4. फिरोज खान से हुई भेंटवार्ता, 02 जून 2015
5. पंडित हरि देव जी से हुई भेंटवार्ता, 10 मई 2015
6. www.wikipedia.hansrajhans
7. हमदर्द, बीबी प्रकाश कौर, तस्वीर पत्रिका, लेख 'फर्श से अर्श तक पहुँच कर भी चाचे को..... परमपाल गिल्ल, भटिंडा, जनवरी 2007, पृ. 16
8. http://mtimesofindia.com

**कुमार प्रिन्टर्स**
लाह बाजार, शिल्पी पोखरा, छपरा, सारण (बिहार)
(निबंधित कार्यालय : प्रभुनाथ नगर, छपरा)
Mob. : 9431090666